चौखम्बा संस्कृत सीरीज १५३

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

उत्तरार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

चौ. सं. सी. १५३

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

सम्पादक एवं अनुवादक
प्रो. दलवीर सिंह चौहान

2

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo 9839814784

चौखम्बा संस्कृत सीरीज

१५३

****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

एम. ए., पी-एच.डी. (पुराणेतिहासाचार्य)

भू. पू. अध्यक्ष : संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

उत्तरार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : संस्करण : तृतीय, वि.सं. २०७६, सन् २०१९

ISBN : 978-81-7080-423-9 (उत्तरार्द्ध)
978-81-7080-424-6 (सेट)

इस पुस्तक का सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित है। इसके किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे—इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यन्त्र में भण्डारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सके, प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
153
*****

BRAHMĀṆḌAMAHĀPURĀṆAM

OF

MAHARSHI VYASA

With

'Nirmala' Hindi Commentary, Scientific Notes and Sloka Index etc.

BY
Prof. Dalvir Singh Chauhan
M.A., Ph. D. (Puranetihas)
Ex. Head, Sanskrit Department,
Magadh University, Bodhgaya, (Bihar)

Vol. II

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

ISBN : 978-81-7080-423-9 (Vol. II)
978-81-7080-424-6 (Set)

© CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

Also can be had from :-
CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

अथोत्तरभागप्रारम्भः

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

आभूतसंप्लवाख्यवर्णनं नाम

प्रथमोऽध्यायः

श्रुत्वा पादं तृतीयं तु क्रांतं सूतेन धीमता। ततश्चतुर्थं पप्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमाः॥१॥

ऋषय ऊचुः

पादः क्रांतस्तृतीयोऽयमनुषंगेण नस्त्वया। चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्त्तय॥२॥
मन्वंतराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह। सप्तर्षीणामथैतेषां सांप्रतस्यांतरे मनोः॥३॥
विस्तरावयवं चैव निसर्गस्य महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि नः॥४॥

सूत उवाच

भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम्। पादं त्विमं ससंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः॥५॥
मनोर्वैवस्वतस्येमं संप्रतस्य महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं श्रृणुत द्विजाः॥६॥
मन्वंतराणां संक्षेपं भविष्यैः सह सप्तभिः। प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत॥७॥
एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तसप्तसु वै प्रजाः। मन्वंतराणि संक्षेपाच्छ्रृणुता नागतानि मे॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय-१

प्रलय का आख्यान

परम बुद्धिमान् सूत द्वारा तृतीय पाद को सुनकर ऋषियों ने चतुर्थपाद को पूँछा।।१।।

ऋषियों ने कहा—सूत जी आप प्रसङ्ग सहित तृतीय पाद को हमें सुना चुके हैं, अब चौथे उपसंहार नामक पाद का विस्तार से वर्णन कीजिये।।२।। पूर्व मन्वन्तरों के साथ साथ जो अन्य मन्वन्तर हैं तथा इन मन्वन्तरों के जो जो सप्तर्षि हैं, उन सबका तथा महात्मा मनु की सृष्टि की उत्पत्ति और विस्तार सब पूर्व से लेकर विस्तार सहित बतलाइये।।३-४।।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! मैं आप सबको जो आप लोगों ने पूँछा है, उस सबको यथा तथा रूप में बतला रहा हूँ। आप लोग इस चतुर्थ उपसंहारपाद का वर्णन सुनिये।।५।। साथ ही इस समय वैवस्वत मनु के इस सृष्टि विस्तार का भी विस्तारपूर्वक क्रमशः वर्णन कर रहा हूँ। आप लोग सुनिये।।६।। बीते हुए सातों मन्वन्तरों का भी भविष्य काल के सातों मन्वन्तरों के साथ संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। लोकों का प्रलय किस प्रकार होता है, यह मैं बता रहा हूँ। अतः आप लोग बताने वाले मुझसे जानिये।।७।। वैसे तो मैं पूर्व में भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का विशद वर्णन कर चुका हूँ, पर यहाँ प्रसंगवश भविष्यकालीन मन्वन्तरों का वर्णन संक्षेप से पुनः कर रहा हूँ।।८।।

सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह। भविष्यस्य भविष्यं तु समासात्तन्निबोधत॥९॥
अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षयः। कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गवः॥१०॥
द्वैपायनो वशिष्ठश्च कृपः शारद्वतस्तथा। आत्रेयो दीप्तिमांश्चैव ऋष्यशृंगस्तु काश्यपः॥११॥
भरद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महायशाः। एते सप्त महात्मानो भविष्याः परमर्षयः।
सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैव गणाश्रयः॥१२॥
तेषां गणस्तु देवानामेकैको विंशकः स्मृतः। नामतस्तु प्रवक्ष्यामि निबोधध्वं समाहिताः॥१३॥
ऋतुस्तपश्च शुक्रश्च कृतिर्नेमिः प्रभाकरः। प्रभासो मासकृद्धर्मस्तेजोरश्मिः क्रतुर्विराट्॥१४॥
अर्चिष्मान् द्योतनो भानुर्यशःकीर्त्तिर्बुधो धृतिः॥१५॥
विंशतिः सुतपा ह्येते नामभिः परिकीर्त्तिताः। प्रभुर्विभुर्विभासश्च जेता हंता रिहा ऋतुः॥१६॥
सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महो महान्।
देही मुनिरिनः पोष्टा समः सत्यश्च विश्रुतः॥१७॥
इत्येते ह्यमिताभास्तु विंशतिः परिकीर्त्तिताः।
दामो दानी ऋतः सोमो वित्तं वैद्यो यमो निधिः॥१८॥
होमो हव्यं हुतं दानं देयं दाता तपः शमः। ध्रुवं स्थानं विधानं च नियमश्चेति विंशतिः॥१९॥
सुखा ह्येते समाख्याताः सावर्ण्ये प्रथमेंतरे। मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य महात्मनः॥२०॥

इस समय सावर्ण मनु और वैवस्वत मनु के मन्वन्तरों का जो कि भविष्य में होने योग्य हैं तथा जो होंगे, उनका संक्षेप से वर्णन कर रहा हूँ। आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये।।९।। जो मन्वन्तर अभी नहीं आये हैं, उन मन्वन्तरों में सात ही ऋषि होंगे, उनके नाम हैं—कुशिकगोत्रीय गालिव, जमदग्नि पुत्र परशुराम, द्वैपायन वशिष्ठ, शारद्वतवंश में उत्पन्न कृपाचार्य, अत्रिवंशोत्पन्न दीप्तिमान्, कश्यपगोत्रीय ऋष्यशृंग एवं भरद्वाज गोत्रीय द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ये सात परम प्रभावशाली महात्मागण आने वाले मन्वन्तर में परम ऋषि नाम से प्रसिद्ध होंगे।।१०-१२।। तथा आने वाले मन्वन्तर में सुतपा, अमिताभ और सुख ये तीन देवगण होंगे। इनमें एक एक गण में बीस-बीस देवता विराजमान होंगे। उन सबके नाम बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये।।१३।। वे हैं—१. ऋतु, २. तप, ३. शुक्र, ४. कृति, ५. नेमि, ६. प्रभाकर, ७. प्रभास, ८. मासकृत्, ९. धर्म, १०. तेजस्, ११. रश्मि, १२. क्रतु, १३. विराट्, १४. अर्चिष्मान्, १५. द्योतन, १६. भानु, १७. यश, १८. कीर्ति, १९. बुध, २०. धृति, ये बीस देवगण सुतपा नामक गण में आते हैं। इसलिये सुतपा नामक गण कहे जाते हैं।।१३-१५½।। १. प्रभु, २. विभु, ३. विभास, ४. जेता, ५. हन्ता, ६. रिहा, ७. ऋतु, ८. सुमति, ९. प्रमति, १०. दीप्ति, ११. समाख्यात, १२. मह, १३. महान्, १४. देह, १५. मुनि, १६. नय, १७. ज्येष्ठ, १८. सम, १९. सत्य और २०. विश्रुत ये बीस अमिताभदेव गण हैं।।१५½-१७½।। १. दाम, २. दानी, ३. ऋत, ४. सोम, ५. वित्त, ६. वैद्य, ७. यम, ८. निधि, ९. होम, १०. हव्य, ११. हुत, १२. दान, १३. देय, १४. दाता, १५. तप, १६. शम, १७. ध्रुव, १८. स्थान, १९. विधान और २०. नियम बीस सुख नामक देवगण हैं। ये सब सावर्ण मन्वन्तर की प्रथम अवस्था के देवगण हैं।।१७½-१९½।। ये सब देवगण मरीचि पुत्र महात्मा कश्यप के ही पुत्र हैं। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के उपरान्त

सांप्रतस्य भविष्यति षष्टिर्देवास्तदंतरे। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्यंति नवैव तु॥२१॥
विरजाश्चार्वरीवांश्च निर्मोकाद्यास्तथा परे। नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेष्वंतरेषु वै॥२२॥
सावर्णमनवश्चान्ये भविष्याः ब्रह्मणः सुताः। मेरुसावर्णितस्ते वै चत्वारो दिव्यदृष्टयः॥२३॥
दक्षस्य ते हि दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुताः। महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः॥२४॥
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता। महर्लोकं गता वृत्ता भविष्या मेरुमाश्रिताः॥२५॥
महानुभावास्ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेंतरे। जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतांतरे॥२६॥
प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये। सावर्णा नामतः पंच चत्वारः परमर्षिजाः॥२७॥
संज्ञापुत्रस्तु सावर्णिरिको वैवस्वतस्तथा। ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः॥२८॥
वैवस्वतेंऽतरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभाः। चतुर्दशैते मनवः कीर्त्तिता कीर्तिवर्द्धनाः॥२९॥
वेदे स्मृतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः। प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः॥३०॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः॥३१॥
प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरस्तेषु वक्ष्यते। चतुर्द्दशैते विज्ञेयाः सर्गाः स्वायंभुवादयः॥३२॥
मन्वंतराधिकारेषु वर्त्तंतेऽत्र सकृत्सकृत्। विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः॥३३॥
समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षट् च तथाऽपरे। पूर्वेषु सांप्रतश्चायं शास्ति वैवस्वतः प्रभुः॥३४॥

सावर्ण् के मन्वन्तर में ये ही सृष्टि देवगणों के स्थान पर प्रतिष्ठित होंगे। सावर्ण मनु के पुत्र नौ ही होंगे।।१९½-२१।। वे हैं—विरज, आर्वरीवान्, निर्मोक आदि तथा अन्य। इसके अतिरिक्त अन्य सावर्ण मन्वन्तरीय नव मनुपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध होंगे जिनका वर्णन सावर्ण मन्वन्तर वर्णन क्रम में करूँगा।।२२।। सावर्ण मन्वन्तर में भविष्य के अन्य मनु ब्रह्मा के पुत्र होंगे। दिव्य दृष्टि वाले लोग उन सबको मेरु सावर्णि के नाम से देखते हैं।।२३।। वे सब प्रजापति दक्ष के नाती हैं तथा दक्ष पुत्री कृता के पुत्र हैं। वे सब महान् तप से युक्त हैं और सुमेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर निवास करते हैं।।२४।। वे ब्रह्मादि देवों द्वारा और बुद्धिमान् दक्ष द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वे महर्लोकवासी की उत्पत्ति पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर में हुई थी। उसी समय उन भविष्यत्कालीन मनुओं की उत्पत्ति होती है।।२६।। उनमें से सावर्ण मनुगण प्रचेता पुत्र दक्ष प्रजापति के नाती (धेवते) तथा चार मनुगण पम ऋषियों द्वारा उत्पन्न है तथा एक विवस्वान् मनु के संयोग से संज्ञा के पुत्र हैं। संज्ञा के पुत्र परम ऐश्वर्यशाली वैवस्वत मनु इन सावर्ण मनु से ज्येष्ठ हैं।।२७-२८।।

वैवस्वत मन्वन्तर जब आता है, तब उन दोनों मनुओं की शुभ उत्पत्ति होती है। इन कीर्तिवर्धन मनुओं की संख्या चौदह कही गयी है।।२९।। वेदों, स्मृतियों और पुराणों में ये सब ऐश्वर्यशाली प्रजाओं के स्वामी तथा समस्त प्राणियों के अधीश्वर के रूप में वर्णित हैं।।३०।। उन सब महात्मा नरपतियों द्वारा यह समस्त सात द्वीपों वाली पृथ्वी पूरे हजार युगों तक पालन की जाती है।।३१।। अब मैं उन मन्वन्तरों में होने वाली प्रजा तपस्या एवं सृष्टि विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ। स्वायम्भुव आदि मनुओं की वह सृष्टि चौदह ही जाननी चाहिये।।३२।। सभी मनु अपने अपने मन्वन्तर के अधिकार में एक एक बार उपस्थित रहते हैं। जब उनका अधिकार समाप्त हो जाता है, तब वे महर्लोक का आश्रय ग्रहण करते हैं।।३३।। उन चौदह मनुओं में से आठ मनुओं के अधिकार बीत चुके हैं, अभी शेष छः

ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामि सह देवर्षिदानवैः। सह प्रजा निसर्गेण सर्वांस्तेऽनागतान्द्विजः॥३५॥
वैवस्वत निसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः। अनूना नातिरिक्तास्ते यस्मात्सर्वे विवस्वतः॥३६॥
पुनरुक्तबहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम्। मन्वंतरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च॥३७॥
कुलेकुले निसर्गास्तु तस्माज्ज्ञेया विभागशः। तेषामेव हि सिद्ध्यर्थं विस्तरेण क्रमेण च॥३८॥
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता। सर्वकन्यावरिष्ठा तु ज्येष्ठा या वीरिणीसुता॥३९॥
गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽतिके। वैराजस्थमुपासीनं धर्मेण च भवेन च॥४०॥
भवधर्मसमीपस्थं दक्षं ब्रह्माऽभ्यभाषत। दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रता॥४१॥
चतुरो वै मनून्पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्छुभान्। ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा॥४२॥
तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह।
सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत॥४३॥
सदृशानूपतस्तेषां चतुरो वै कुमारकान्। संसिद्धाः कार्यकरणे संभूतास्ते श्रियान्विताः॥४४॥
उपभोगासमर्थैश्च सद्योजातैः शरीरकैः। ते दृष्ट्वा तान्स्वयंभूतान्ब्रह्मव्याहारिणस्तदा॥४५॥
सरंब्धा वै व्यकर्षंत मम पुत्रो ममेत्युत। अभिध्यायात्मनोत्पन्नानूचुर्वै ते परस्परम्॥४६॥

मनुओं का अधिकार काल शेष है। पूर्व मनुष्यों का अधिकार काल बीत जाने पर इस समय वैवस्वत मनु का अधिकार काल चल रहा है।।३४।। अब जो शेष मनुगण हैं, उनके अधिकार काल का वर्णन तत्कालीन देवों, ऋषियों, दानवों एवं ब्राह्मणादि द्विजातियों की सृष्टि परम्परानुसार बता रहा हूँ।।३५।। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि विस्तार के अनुसार ही उन भावी मन्वन्तरों का सृष्टि विस्तार समझना चाहिये। वे सब वैवस्वत मन्वन्तर के विस्तार से न कम होते हैं और न उसके अतिरिक्त ही होते हैं।।३६।। बीते हुए और आने वाले मन्वन्तरों में प्रत्येक वंश में जो सृष्टि होती है, उसका वर्णन पुनरुक्ति और आधिक्य के कारण नहीं कर रहा हूँ। केवल उनका सविभाग विस्तार एवं क्रम बतला रहा हूँ।।३७।। दक्ष प्रजापति की एक सुव्रता नामक धर्म में निष्ठा रखने वाली, सब कन्याओं में वरिष्ठ एवं सबसे बड़ी वीर कन्या थी।।३८।। पिता दक्ष एक बार अपनी उस कन्या को साथ लेकर ब्रह्मा के पास गये। उस समय ब्रह्मा जी धर्म और भगवान् शंकर के साथ वैराज नामक लोक में विराजमान थे।३९।।

भगवान् शंकर और धर्मराज के समीप स्थित दक्ष से ब्रह्मा जी ने कहा कि हे दक्ष! तुम्हारी यह कन्या सुव्रता चार कल्याणकारी पुत्रों को उत्पन्न करेगी, जो भविष्य चारों में वर्णों की स्थापना करने वाले मनु होंगे।।४०-४१½।। ब्रह्माजी के वचन को सुनकर दक्ष प्रजापति, धर्मराज और भगवान् शंकर ने ब्रह्माजी के साथ ही उस कन्या के साथ मन से समागम (सम्भोग) किया।।४१½-४२½।। सत्य का ध्यान करने वाले उन चारों को शीघ्र ही उस कन्या ने उन्हीं चारों के समान रूप गुण वाले चार कुमारों को जन्म दिया।।४२½-४३½।। वे कुमार सभी कार्यों के पूर्ण करने वाले परम बुद्धिमान्, श्रीमान् तथा अपने उसी शीघ्र उत्पन्न शरीर से अनेकों प्रकार के भोगों में सामर्थ्य रखने वाले थे।।४३½-४४½।। तब उन स्वयं उत्पन्न हुए चारों कुमारों को देखकर इन सभी ब्रह्म का व्यवहार करने वाले देवताओं में यह पुत्र मेरा है, यह मेरा है, ऐसी बातें कह कहकर छीना-झपटी होने लगी।।४४½-४५½।। वे चारों पुत्र उन चारों

योयस्य वपुषा तुल्यो भजतां सततं सुतम्। यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्ये च मानतः॥४७॥
तं गृह्णातु स भद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः। ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा॥४८॥
तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुर्मातुश्च वीर्यतः। एवं ते समयं कृत्वा सर्वेषां जगृहुः सुतान्॥४९॥
चाक्षुषस्यांतरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य ह। रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः॥५०॥
भूत्यामुत्पादितो यस्तु भौत्यो नाम कवेः सुतः। वैवस्वतेंऽतरे जातौ द्वौ मनू तु विवस्वतः॥५१॥
वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्च वै श्रुतः। ज्ञेयः संज्ञासुतो विद्वान्मनुर्वैवस्वतः प्रभुः॥५२॥
सवर्णायाः सुतश्चान्यः स्मृतो वैवस्वतो मनुः। सावर्णमनवो ये च चत्वारस्तु महर्षिजाः॥५३॥
तपसा संभृतात्मानः स्वेषु मन्वन्तरेषु वै। भविष्येषु भविष्यंति सर्वकार्यार्थसाधकाः॥५४॥
प्रथमे मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः। परामरीचिगर्भाश्च सुधर्माणश्च ते त्रयः।
संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेंतरे॥५५॥
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः। भविष्यंति भविष्यास्तु एकैको द्वादशो गणः॥५६॥
ऐश्वरश्च ग्रहो राहुर्वाकुर्वंशस्तथैव च। पारा द्वादश विज्ञेया उत्तरांस्तु निबोधत॥५७॥
वाजिपो वाजिजिच्चैव प्रभूतिश्च ककुद्यथ। दधिक्रावा विपक्वश्च प्रणीतो विजयो मधुः॥५८॥
उतथ्योत्तमकौ द्वौ तु द्वादशैते मरीचयः। सुधर्माणस्तु वक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत॥५९॥

महान् देवों के मानसिक ध्यान से पैदा हुए थे, अतः उन्होंने आपस में यह कहा कि जो पुत्र जिसके शरीर के समान हो, वह उस पुत्र को अपना पुत्र माने।।४५½-४६½।। रूप, पराक्रम और नाम और वर्ण से जिसके अपने समान हों, वह उस पुत्र को ग्रहण करे; क्योंकि निश्चित ही पुत्र सदैव पिता के स्वरूप का अनुकरण करता है। पराक्रम में भी पुत्र माता-पिता समान होता है।।४६½-४८½।। इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवों ने आपस में सहमति करके जो जिसके वर्ण के थे, उसके अनुसार अपने अपने पुत्रों को ग्रहण किया।।४८½-४९।।

चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में प्रजापति रुचि को रौच्य नामक पुत्र हुआ।।५०।। भूति नामक माता में उत्पन्न होने के कारण वह पुत्र भौत्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान के मनु नामक दो पुत्र राजा हुए, जिनमें एक वैवस्वत मनु और दूसरे सावर्ण मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें एक विद्वान् वैवस्वत मनु संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र कहे जाते हैं और दूसरे वैवस्वत मनुष्य सवर्णा छायारूपिणी संज्ञा के पुत्र कहे जाते हैं। सवर्ण जो चार मनुगण हुए, वे महर्षियों से उत्पन्न थे।।५१-५३।। ये सभी मनुगण बहुत बड़े तपस्वी थे। ये सभी भविष्य में होने वाले मन्वन्तरों में सभी कार्यों में समर्थ होकर विराजमान होंगे।।५४।। प्रथम मनु दक्षपुत्र मेरु सावर्णि थे, उनका दूसरा नाम प्रजापति रोहित था। ये आगे आने वाले मन्वन्तर के भावी मनु होंगे। इनके मन्वन्तर में परा, मरीचि और गर्भा ये तीन धर्मात्मा पुत्र हुए। ये सभी महात्मा वैवस्वत मन्वन्तर में हुए थे।।५५।।

ये सभी दक्ष पुत्र प्रजापति रोहित के पुत्र थे। ये भविष्य में होने वाले एक एक के बारह गण होंगे।।५६।। जिनके नाम हैं—१. ऐश्वर, २. ग्रह, ३. राहु, ४. वाकु ५. वंश तथा अन्य सात और हैं, इन सबको पारागण समझना चाहिये। अन्यान्य का विवरण सुनिये।।५७।। १. वाजिप, २. वाजिजित्, ३. प्रभूति, ४. ककुदी, ५. दधिक्रावा, ६. विपक्व, ७. प्रणीत, ८. विजय, ९. मधु, १०. उतथ्य, ११. उत्तमक, १२. दूसरे उत्तमक ये बारह मरीचिगण

वर्णस्तथाथगर्विश्च भुरण्यो व्रजनोऽमितः। अमितो द्रवकेतुश्च जंभोऽथाजस्तु शक्रकः॥६०॥
सुनेमिर्द्युतयश्चैव सुधर्माणः प्रकीर्तिताः। तेषामिंद्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः॥६१॥
स्कंदोऽसौ पार्वतीयो वै कार्तिकेयस्तु पावकिः।
मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च॥६२॥
ज्योतिष्मान्भार्गवाश्चैव द्युतिमानंगिरास्तथा। वसिनश्चैव वासिष्ठ हव्यवाहनः॥६३॥
सुतपाः पौलहश्चैव सप्तैते रोहितेतरे। धृतिकेतुर्दीप्तिकेतुः शाहपहस्तनिरामयाः॥६४॥
पृथुश्रवास्तथाऽनीको भूरिद्युम्नो बृहद्यशः। प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः॥६५॥
दशमे त्वथ पर्याये धर्मपुत्रस्य वै मनोः। द्वितीयस्य तु सावर्णेर्भाव्यस्वैवांतरे मनोः॥६६॥
सुधामानो विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणौ स्मृतौ। दीप्तिमन्तश्च ते सर्वे शतसख्याश्च ते समाः॥६७॥
प्राणानां यच्छतं प्रोक्तं ऋषिभिः पुरुषेति वै। देवास्ते वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः॥६८॥
तेषामिंद्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शांतिरुच्यते। हविष्मान्पौलहः श्रीमान्सुकीर्तिश्चाथ भार्गवः॥६९॥
आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वसिष्ठश्चापवः स्मृतः।
पौलस्त्योऽग्रतिमश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः॥७०॥
अभिमन्युश्चांगिरसः सप्तैते परमर्षयः। सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिसेनश्च वीर्यवान्॥७१॥

के अधीन थे। सुशर्मा का विवरण बताता हूँ, सुनिये।।५८-५९।। ये भी बारह हैं—१. वर्ण. २. अंग, ३. गर्वि, ४. मुख्य, ५. व्रजन, ६. अमित, ७. द्रवकेतु, ८. जम्भ, ९. अजस्र, १०. शक्रक, ११. सुनेमि और १२. द्युति ये बारह सुधर्मा नाम के देवगण कहे गये हैं। भविष्यकाल में अद्भुत नामक देव इन सबका इन्द्र होगा।।६०-६१।। अग्नि के समय पार्वती पुत्र स्कन्द, जिन्हें कार्तिकेय कहा जाता है। १. पुलस्त्य गोत्रीय मेधातिथि, २. कश्यप गोत्रीय वसु, ३. भृगुवंशोत्पन्न ज्योतिष्मान्, ४. अंगिरा पुत्र द्युतिमान्, ५. वशिष्ठ गोत्रोत्पन्न वसिन, ६. अत्रिकूलभूषण हव्यवाहन, ७. पौलहवंशीय सुतपा ये सात रोहित मन्वन्तर के ऋषि कहे गये हैं।।६२-६३½।। १. धृतिकेतु, २. दीप्तिकेतु, ३. शाप, ४. हस्त, ५. निरामय, ६. पृथुश्रवा, ७. अनीक, ८. भूरिद्युम्न और ९. वृहद्यश ये प्रथम सावर्णिमनुके नौ पुत्र कहे गये हैं।।६३½-६५।।

दशम पर्याय मैं धर्म के पुत्र द्वितीय मनु का नाम भाव्य होगा, इन भाव्य मनु के मन्वन्तर में सुधामान[1] और विरुद्ध नामक दो देवों के गण कहे जाते हैं। ये सभी देवगण दीप्तिमान् हैं तथा संख्या में सौ तथा समान धर्म वाले हैं।।६६-६७।।

ऋषियों ने इन्हें पुरुषों का प्राणायाम बताया है। वे सब देवगण धर्मपुत्र मनु के मन्वन्तर में स्थित होंगे।।६८।। उन देवताओं के सात गोत्र हैं और सात ही इन्द्र हैं, जो क्रमशः इन्द्र परम विद्वान् शान्ति कहे जाते हैं। १. हविष्मान् पुलह गोत्र वाले, २. भार्गववंशीय शोभासम्पन्न सुकीर्ति अर्थात् सुन्दर यश वाले, ३. अत्रिवंशज-आपोमूर्ति, ४. वशिष्ठ वंशज-आपव, ५. पुलस्त्य कुलभूषण प्रतिप, ६. कश्यपगोत्रीय-नाभाग, ७. अंगिरागोत्रोत्पन्न-अभिमन्यु, ये सात उस

१. *वायुपुराण सुखमना।*

शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः। भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दशैते मानवाः स्मृताः॥७२॥
एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके। निर्वाणरतयो देवाः कामगा वै मनोजवाः॥७३॥
गणास्त्वेते त्रयः ख्याता देवतानां महात्मनाम्।
एकैकस्त्रिंशतस्तेषां गणस्तु त्रिदिवौकसाम्॥७४॥
मासस्याहानि त्रिंशत्तु यानि वै कवयो विदुः। निर्वाणरतयो देवा रात्रयस्तु विहंगमाः॥७५॥
गणस्तृतीयो यः प्रोक्ते देवतानां भविष्यति। मनोजवा मूहूर्त्तास्तु इति देवाः प्रकीर्तिताः॥७६॥
एते हि ब्रह्मणः पुत्रा भविष्या मानवाः स्मृताः।
तेषामिंद्रो वृषा नाम भविष्यः सुरराट् ततः॥७७॥
तेषां सप्तऋषींश्चापि कीर्त्यमानान्निबोधत। हविष्मान्काश्यपश्चापि वपुष्मांश्चैव भार्गवः॥७८॥
आरुणिश्च तथात्रेयो वसिष्ठो नग एव च। पुष्टिरांगिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा॥७९॥
पौलहो ह्यतितेजाश्च देवा ह्येकादशेंतरे। सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः॥८०॥
क्षेमधर्मा ग्रहेषुश्च आदर्शः पौंड्रको मरुः। सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै नव॥८१॥
द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः। चतुर्थो रुद्रसावर्णो देवांस्तस्यांतरे श्रृणु॥८२॥
पंचैव तु गणाः प्रोक्ता देवतानामनागताः। हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा॥८३॥
सुकर्माणः सुतारश्च विद्वांश्चैव सहस्त्रदः। पर्वतोऽनुचरश्चैव अपाशुश्च मनोजवः॥८४॥

मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं तथा दश मन्वतन्त के मनु हैं—जो १. सुक्षेत्र, २. उत्तमौजा, ३. वीर्यवान्, ४. पराक्रमी, ४. भूरिसेन, ५. शतानीक, ६. निरामित्र, ७. वृषसेन, ८. जयद्रथ, ९. भूरिद्युम्न और १०. सुवर्चा ये दश दशवें मन्वन्तर के मनुगण हैं।।६९-७२।। ग्यारहवें (मन्वन्तर) में तीसरे सावर्णि मनु का जब अधिकार काल होगा, तब निर्वाणरत, कामग और मनोजव ये तीन विख्यात महात्माओं के देवगण होंगे। उन स्वर्गवासी देवताओं के एक एक के तीस गण होंगे।।७३-७४।। विद्वान् लोग मास में जिन तीन दिनों की गणना करते हैं, वे ही निर्माणरति देवगण हैं। रात्रि और विहंगमात्मक देवगण, कामग और मुहूर्तगण मनोजव देव कहे गये हैं।।७५-७६।। इस प्रकार भविष्यत्काल के ये ब्रह्मा के पुत्र मानव कहे गये हैं। उनका इन्द्र वृषा नाम का भविष्यत्कालीन देवताओं का राजा होगा।।७७।। उस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम वर्णन करने वाले मुझसे ध्यानपूर्वक सुनिये, वे हैं—१. कश्यप गोत्रोत्पन्न हविष्मान्, २. भार्गवगोत्रीय वपुष्मान्, ३. अत्रिकुलोद्भव आरुणि, ४. वशिष्ठगोत्रोत्पन्न नग, ५. अंगिरावंशज पुष्टि, ६. पुलस्त्य वंशज निश्चर, ७. पुलहगोत्रोत्पन्न अतितेज, ये सात ऋषिगण ग्यारहवें पर्याय (मन्वन्तर) के ऋषिगण हैं तथा १. सर्ववेग, २. सुधर्मा, ३. देवानीक, ४. पुरोवह, ५. क्षेमधर्मा, ६. ग्रहेषु, ७. आदर्श, ८. पौण्ड्रक और ९. मरु ये सावर्णि प्रजापति के नौ पुत्र हैं।।७८-८१।।

अब बारहवें मन्वन्तर में शिवपुत्र ऋत सावर्णि का अधिकारकाल होगा, उस काल में रहने वाले देवगणों के पाँच विशेष गण कहे जाते हैं, उनको सुनिये।।८२।। वहाँ आने वाले देवताओं के पाँच ही गण कहे गये हैं—वे हैं—१. हरित, २. रोहित, ३. सुमना, ४. सुकर्मा, ५. सुतार, ६. विद्वान्, ७. पर्वतानुचर, ८. अपाशु, ९.

ऊर्जा स्वाहा स्वधा तारा दशैते हरिताः स्मृताः।
तपो ज्ञानी मृतिश्चैव वर्चा बंधुश्च यः स्मृतः॥८५॥
रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च। पुष्टिर्विधिश्च वै देवा दशैत रोहिताः स्मृताः॥८६॥
तुषिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिशत्प्रकीर्तिताः। ते वै सुमनसो वेद्यान्निबोधत सुकर्मणः॥८७॥
सुपर्वा वृषभः पृष्टा कपिद्युम्नविपश्चितः। विक्रमश्च क्रमश्चैव विभृतः कांत एव च॥८८॥
एते देवाः सुकर्माणः सुतरांश्च निबोधत। वर्षो दिव्यस्तथांजिष्ठो वर्चस्वी द्युतिमान्कविः॥८९॥
शुभो हविः कृतप्राप्तिर्व्यापृतो दशमस्तथा। सुतारा नामतस्त्वेते देवा वै संप्रकीर्तिताः॥९०॥
तेषामिंद्रस्तु विज्ञेयो ऋतधामा महायशाः। द्युतिर्वसिष्ठपुत्रस्तु आत्रेयः सुतपास्तथा॥९१॥
तपोमूर्तिस्त्वांगिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा। तपोधनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपोरतिः॥९२॥
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु तपोधृतिः। एते सप्तर्षयः सिद्धा अन्त्ये सावर्णिकेंऽतरे॥९३॥
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः। मित्रवान् मित्रसेनोऽथ चित्रसेनो ह्यमित्रहा॥९४॥
मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः। त्रयोदशे तु पर्याये भाव्ये रौच्येंतरे पुनः॥९५॥
त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवानां तु स्वयंभुवा। ब्रह्मणो मानसाः पुत्रास्ते हि सर्वे महात्मनः॥९६॥
सुत्रामाणः सुधर्माणः सुकर्माणश्च ते त्रयः।
त्रिदशानां गणाः प्रोक्ता भविष्याः सोमपायिनाम्॥९७॥
त्रयस्त्रिंशद्देवता याः पृथगिज्यास्तु याज्ञिकैः। आज्येन पृषदाज्येन ग्रहश्रेष्ठेन चैव ह॥९८॥

मनोजव, १०. ऊर्जा, ११. स्वाहा, स्वधा और तारा ये दश हरितगण कहे गये हैं तथा १. तपः २. ज्ञानी, ३. मृति, ४. वर्चा, ५. बंधु, ६. रज, ७. राज, ८. स्वर्णपाद, ९. पुष्टि और १०. विधि ये दश रोहितगण कहे गये हैं।।८२-८६।। तुषित आदि जो देवता स्मरण किये गये हैं, वे तेंतीस कहे गये हैं। उन्हें सुमनागण देवों के अन्तर्गत जानिये।।८७।। वे हैं—१. सुपर्वा, २. वृषभ, ३. पृष्ठ, ४. कपिद्युम्न, ५. विपश्चित, ६. विक्रम, ७. क्रम, ८. विभ्रत और ९. कान्त, १०. सुकर्मा, ये दश सुकर्मा देवगण के अधीन हैं। अब उनके पुत्रों को सुनिये। १. वर्ष, २. दिव्य, ३. अंजिष्ठ, ४. वर्चस्वी, ५. द्युतिमान्, ६. कवि, ७. शुभ, ८. हवि, ९. कृतप्राप्ति और दशमें १०. व्यापृत ये सुतारा नाम से देवगण कहे गये हैं।।८८-९०।। महान् यशस्वी, ऋतुधामा उन देवगणों के इन्द्र जानना चाहिये तथा १. वशिष्ठ पुत्र द्युति, २. अत्रि पुत्र सुतपा, ३. अंगिरा पुत्र तपोमूर्ति, ४. कश्यपसुत तपस्वी, ५. पुलस्त्य वंशोत्पन्न तपोधन, ६. पुलह कुलशिरोमणि तपोरति तथा ७. सातवें भृगुवंशीय तपोधृति। ये सप्तर्षिगण उक्त सावर्णि के अन्तर्गत जानने चाहिये।।९१-९३।। १. देववान्, २. उपदेव, ३. देवश्रेष्ठ, ४. विदूरथ, ५. मित्रवान्, ६. मित्रसेन, ७. चित्रसेन, ८. अमित्रहा, ९. मित्रबाहु, १०. सुवर्चा, ये दश बारहवें मनु के पुत्र हैं।।९४-९४½।।

तेरहवें रौच्य नामक मन्वन्तर में देवताओं के तीन ही गणों के होने की बात स्वयंभू ब्रह्मा ने बतलायी है। वे सब परम महात्मा एवं ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं।।९४½-९६।। उनके नाम हैं—१. सुत्रामा, २. सुधर्मा, ३. सुकर्मा, ये तीनों हैं, जो भविष्यत्कालीन सोमपान करने वाले देवताओं के गण कहे गये हैं।।९७।। यज्ञकर्ताओं

ये वै देवास्त्रयस्त्रिंशत्पृथक्त्वेन निबोधत।
सुत्रामाणः प्रयाज्यास्तु आज्याशा ये तु सांप्रतम्॥९९॥
सुकर्माणोऽनुयाज्याख्याः पृषदाज्याशिनस्तु ये।
उपयाज्याः सुधर्माण इति देवाः प्रकीर्त्तिताः॥१००॥
दिवस्पतिर्महासत्वस्तेषामिंद्रो भविष्यति। पुलहात्मजपुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः॥१०१॥
अंगिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्योऽप्यव्ययसतु।
सः पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः॥१०२॥
निष्प्रकंप्यस्तथाऽत्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा। सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु त्रयोदश॥१०३॥
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मो धृतो भवः। अनेकः क्षत्रविद्धश्च सुरसो निर्भयो दश॥१०४॥
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा ह्यंतरे तु त्रयोदशे। चतुर्दशे तु पर्याये भौत्यस्याप्यंतरे मनोः॥१०५॥
देवतानां गणाः पंच प्रोक्ता ये तु भविष्यति।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजितास्तथा॥१०६॥
वाचावृद्धाश्च इत्येते पंच देवगणाः स्मृताः।
निषादाद्याः स्वराः सप्त सप्त तान्विद्धि चाक्षुषान्॥१०७॥
बृहदाद्यानि सामानिकनिष्ठान्सप्त तान्विदुः।
सप्त लोकाः पवित्रास्ते भ्राजिताः सप्तसिंधवः॥१०८॥
वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायंभुवस्य ये। सर्वे मन्वंतरेंद्राश्च विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः॥१०९॥

सहित ये तैंतीस देवता हैं—१. आज्य, २. पृषदाज्य, ३. गृहश्रेष्ठ एवम् अन्यान्य देवगणों को मिलाकर भी वह संख्या तैंतीस ही होती है। इनका अलग अलग वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये—इस समय प्रयाज और आज्य नाम से प्रसिद्ध सभी देवगण सुत्रामा नामक गण के अधीन हैं तथा अनुयाज्य पृषद् आज्य के योग करने वाले देवगण सुकर्मा नामक गण के अन्तर्गत हैं।।९८-१००।। उस काल देवताओं के इन्द्र महापराक्रमी दिवस्पति होंगे। रुचि के इन पुत्रों को पुलह के पौत्र जानना चाहिये।।१०१।। १. अंगिरा पुत्र धृतिमान्, २. पुलस्त्य गोत्रोत्पन्न अव्यय (पथ्यवान् वा.) ३. पुलहसुत तत्त्वदर्शी, ४. भृगुनन्दन निरुत्सुक, ५. अत्रिवंशज निष्प्रकम्प्य, ६. कश्यमगोत्रीय निर्मोह और ७. वशिष्ठगोत्रोद्भव सुतपा ये सात ऋषिगण तेरहवें मन्वतर के सप्तर्षि होंगे।।१०२-१०३।।

१. चित्रसेन, २. विचित्र, ३. नय, ४. धर्म, ५. धृत, ६. भव, ७. अनेक, ८. क्षत्रविद्ध, ९. सुरस और १०. निर्भय ये तेरहवें रौच्य मन्वन्तर में मनुपुत्र कहे जायेंगे।।१०४-१०४½।। भविष्यकाल में होने वाले भौत्य नामक चौदहवें मन्वन्तर में मनु के पाँच देवता जो कहे गये हैं, वे होंगे—१. चाक्षुष, २. पवित्र, ३. कनिष्ठ, ४. भ्राजित और ५. वाचावृद्ध इस प्रकार ये पाँच देवगण स्मरण किये गये हैं, जो चौदहवें मन्वन्तर के देवगण होंगे। निषाद आदि सात देवगण और सात चाक्षुष देवगण जानिये।।१०४½-१०७।। वृहद् आदि साम समूहों को ही सात कनिष्ठ देवगण बतलाते हैं। सातों लोक पवित्र (परित्रस्त) एवं सातों समुद्र भाजर (भाजित) नाम से जाने जाते हैं।।१०८।। स्वायम्भुव

तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः। त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च॥११०॥
सर्वशः स्वैर्गुणैस्तानि इंद्रास्तेऽभिभवंति वै। भूतापवादिनो हृष्टा मध्यस्था भूतवादिनः॥१११॥
भूताभवादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम्।
आग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः॥११२॥
भार्गवो ह्यग्निबाहुश्च शुचिरांगिरसस्तथा। शुक्रश्चैव तु वासिष्ठः पौलहो मुक्त एव च॥११३॥
आत्रेयः श्चाजितः प्रोक्तो मनुपुत्रानतः श्रृणु।
उरुर्गुरुश्च गंभीरो बुद्धः शुद्धः शुचिः कृती॥११४॥
ऊर्जस्वी सुबलश्चैव भौत्स्यैते मनोः सुताः। सावर्णा मनवो ह्येते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः॥११५॥
एको वैवस्वतश्चैव सावर्णो मनुरुच्यते। रौच्यो भौत्यश्च यौ तो तु मतौ पौलहभार्गवौ।
भौत्यस्यैवाधिपत्ये तु तूर्णं कल्पस्तु पूर्वते॥११६॥

सूत उवाच

निःशेषेतु तु सर्वेषु तदा मन्वंतरेष्विह॥११७॥
अंतेऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते। सप्तैते भार्गवा देवा अंते मन्वंतरे तदा॥११८॥

मनु के वाचावृद्ध ऋषियों को इस मन्वन्तर के सप्तर्षि जानो तथा स्वायम्भुव मन्वन्तर से लेकर सभी मनुओं के अधिकार काल में जितने भी इन्द्र हो चुके हैं, उन सबकी एक ही मर्यादा, एक ही स्वभाव और प्रभाव समझना चाहिये।।१०९।। अपने तेज, तपस्या, बुद्धि, बल, वेदज्ञान और पराक्रमों से त्रिलोकी के समस्त प्राणियों का वे इन्द्र अतिक्रमण करते हैं अर्थात् त्रिलोकी के समस्त प्राणियों से बढ़कर उनके समान कोई नहीं है।।११०-११०½।। भूतों का अपवाद करने वाले अर्थात् प्राणिजगत् को मिथ्या मानने वाले ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'' कहने वाले संसार में प्रसन्न रहते हैं। भूतवादी मध्यस्थ हैं अर्थात् संसार प्राणिजगत् को ही सबकुछ समझते हैं, वे न प्रसन्न हैं और न दुःखी हैं तथा प्रसन्न भी हैं और दुःखी भी हैं। उन्हें धन पुत्रादि की प्राप्ति में प्रसन्नता और हानि में दुःख होता है। संसार की सभी वस्तुएँ नित्य एवं अविनाशी हैं। ऐसा समझकर जो सांसारिक मोहमाया में लिप्त हैं, वे भूताभिवादी हैं, वे दुःखी ही रहेंगे, इस प्रकार वेदों में प्रवादियों की तीन व्याख्यायें की गयी हैं।।११०½-१११½।।

१. कश्यप गोत्रीय अग्नीध्र, २. पुलस्त्य-गोत्रज, मागध, ३. भृगुगोत्रीय-अग्निबाहु, ४. अंगिरा पुत्र शुचि, ५. वशिष्ठ गोत्रोत्पन्न शुक्र, ६. पुलह गोत्रीय मुक्त और ७. अत्रिगोत्रजश्चाजित ये सात ऋषि चौदहवें भौत्य मन्वन्तर के सप्तर्षिगण हैं। अब मनु पुत्रों को सुनिये।।१११½-११३½।। वे मनु पुत्र हैं—१. उरु, २. गुरु, ३. गंभीर, ४. बुद्ध, ५. शुद्ध, ६. शुचि, ७. कृती, ८. ऊर्जस्वी और ९. सुबल ये सब भौत्य मनु के पुत्र होंगे, ये जो चार मनु हैं, जो सावर्ण मनु के नामसे विख्यात हैं, वे ब्रह्मादि चारों देवताओं के पुत्र हैं।।११३½-११५।। एक सूर्य के पुत्र वैवस्वत भी सावर्ण मनु कहे जाते हैं। रुचि पुत्र रौच्य तथा भूतिपुत्र भौत्य जो दो पुलहगोत्रज और भृगुगोत्रज माने गये हैं, इन्हीं भौत्य मनु के अधिकार काल में कल्प पूर्ण हो जाता है।।११६।।

सूत जी बोले हे ऋषिवृन्द! सभी मन्वन्तरों के समाप्त हो जाने पर तथा उनके अनेक युगों के बीत जाने पर सृष्टि का संहार होता है। ऐसा कहा जाता है। ये सात भृगुवंशीय देवगण अन्तिम मन्वन्तर में इकहत्तर युगों तक समस्त

भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्येकसप्ततीः।
पितृभिर्मनुभिः सार्द्धं क्षीणे मन्वंतरे तदा॥११९॥
अनाधारमिदं सर्वं त्रैलेयं वै भविष्यति। ततः स्थानानि शुभ्राणि स्थानिनां तानि वै तदा॥१२०॥
प्रभ्रश्यंते विमुक्तानि तारा ऋक्षग्रहैस्तथा। ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह॥१२१॥
संप्राप्तेषु महर्लोकं यस्मिंस्ते कल्पवासिनः। अजिताद्या गणा यत्र आयुष्मंतश्चतुर्दश॥१२२॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु देवास्ते वै चतुर्दशः। सशरीराश्च श्रूयंते जनलोके सहानुगाः॥१२३॥
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति। भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरां तेषु तेषु वै॥१२४॥
शून्येषु लोकस्थानेषु महांतेषु भुवादिषु। देवेषु च गतेष्वूर्द्धं सायुज्यं कल्पवासिनाम्॥१२५॥
संहृत्य तास्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान्। संस्थापयति वै सर्गमहर्दृष्ट्वा युगक्षये॥१२६॥
चतुर्युगसहस्त्रांतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्त्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥१२७॥
नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवात्यंतिकोऽर्थतः। त्रिविधिः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसंचरः॥१२८॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः। प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः॥१२९॥
ज्ञानाच्चात्यंतिकः प्रोक्तः कारणानामसंभवः।
ततः संहृत्य तान्ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः॥१३०॥

त्रिलोकी में विराजमान रहकर सभी भागों का उपभोग करेंगे और फिर भोग करके पितरों, मुनियों, सप्तर्षियों, अन्यान्य यज्ञपरायण यजमानों एवं भक्तों के साथ तीनों लोकों को छोड़कर वे सर्वसमर्थ देवगण महर्लोक को चले जायेंगे।।११७-११९।। उसके बाद उन सबके छोड़कर चले जाने पर यह त्रैलोक्य निराधार हो जायेगा। विप्रो! उस समय सब स्थान शून्य हो जायेगा। स्थानी देवता भी अपने अपने स्थान छोड़देंगे। तारा, नक्षत्र, ग्रह आदि निराधार होकर नष्ट हो जायेंगे। जब त्रैलोक्य की समस्त सामर्थ्ययुक्त शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, तब चौदहों इन्द्रादि प्रमुख देवता, 'चाक्षुष आदि सभी मनु तथा अजित आदि सभी देवगण महर्लोक में जाकर वहाँ कल्पपर्यन्त स्थिर निवास करने वाले देवताओं के साथ मिल कर रहते हैं तथा जब प्रलय का जोर अधिक बढ़ जाता है, तब वे चौदहों मनुगण अपने अनुगामियों के साथ शरीर सहित जनलोक चले जाते हैं, सुने जाते हैं।।११९-१२३।।

इस प्रकार देवताओं के महर्लोक से जनलोक चले जाने पर तब केवल पञ्चभूतादि स्थावर समूहों के शेष रह जाने पर उन उन शून्य लोकों के शून्य स्थानों में देवगण कल्पपर्यन्त निवास करने वाले अन्य अन्य देवों के समान स्थान प्राप्त कर ऊपर चले जाते हैं। उस समय देवों, दानवों, ऋषियों और पितरों सब का संहार कर युग के नष्ट होनेपर भारी वर्षा द्वारा सृष्टि की पुनः स्थापना करते हैं।।१२४-१२६।। एक हजार बार चार युगों सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है और इसी प्रकार एक हजार बार चारों युगों के बीतने पर उनकी एक रात्रि होती है। दिन और रात को जानने वाले ज्योतिषी लोग यह जानते हैं।।१२७।। नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक तीन प्रकार के अर्थानुसार सब प्राणियों के प्रलय होते हैं।।१२८।। इनमें ब्रह्मा द्वारा किया गया। कल्प का दाह प्रकृष्ट रूप से तथा सम्यक् रूप से नियन्त्रित है तथा वही नैमितिक है। जिस प्रलय में पञ्चमहाभूतों के कारणों (प्रकृति) का क्षय हो जाता है, उसे प्राकृतिक प्रलय कहते हैं।।१२९।। अच्छी तरह जानबूझकर किये गये

प्रहरांते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः। सुषुप्सुर्भगवान्ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा॥१३१॥
ततो युगसहस्त्रांते संप्राप्ते च युगक्षये। तत्रात्मस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः॥१३२॥
तदा भवत्यनावृष्टिः संतता शतवार्षिकी। तया यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले॥१३३॥
तान्येवात्र प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च। सप्तरश्मिरथो भूत्वा उदत्तिष्ठद्विभावसुः॥१३४॥
असह्यरश्मिर्भगवान्पिबत्यंभो गभस्तिभिः। हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्ततिः॥१३५॥
भूय एव विवर्त्तंते व्याप्नुवंतोंबरं शनैः। भौमं काष्ठेंधनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते॥१३६॥
तस्मादुदकभृत्सूर्यस्तपतीति हि कथ्यते। नावृष्ट्या तपते सूर्य्यो नावृष्ट्या परिषिच्यते॥१३७॥
नावृष्ट्या परिविश्येत वारिणा दीप्यते रविः। तस्मादपः पिबन्यो वै दीप्यते रविरंबरे॥१३८॥
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबंत्यंभो महार्णवात्। तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवंत्युत॥१३९॥

उस महाप्रलय को जिसमें कि कारणों के कारण का उत्पन्न होना ही समाप्त हो जाता है, उनका अस्तित्व ही नहीं रहता, उसको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। उस प्रलय में ब्रह्मा त्रैलोक्यवासी देवताओं का संहार कर अपने एक दिन सृष्टि के बाद प्रलय करते हैं। अर्थात् एक दिन सृष्टि पर सब जीवों, देवों, पितरों, ऋषियों, दानवों आदि की सृष्टि स्थिति करते हुए जान-बूझकर दिन के पूरे हो जाने पर प्रहार कर तीनों लोकों के सभी देवादिकों को मारकर प्रलय कर देते हैं। उस समय जैसे दिन भर कार्य करने के बाद मनुष्य को रात में सोने की इच्छा होती है, उसी तरह उन ब्रह्मा को भी दिन भर सृष्टि का पालन करते हुए थकान हो जाती है और वे सोने की इच्छा से प्रजा का संहार कर देते हैं।।१३०-१३१।। उसके बाद हजार बार चारों यगुों के बीत जाने पर जब युगों के नाश का समय समाप्त हो जाता है, तब वे प्रजापति अपनी आत्मा में स्थित समस्त प्रजाओं का पुनः विस्तार करते हैं। भाव यह है कि सृष्टि और प्रलय अथवा यों कहिये ब्रह्मा का दिन और रात बराबर समय के होते हैं। सृष्टि के समय ब्रह्मा प्रजाओं को सृष्टि पर विस्तृत कर देते हैं तथा प्रलय के समय वे सब प्रजाओं (प्राणियों) की आत्माओं को अपनी आत्मा में स्थित कर लेते हैं। सृष्टि करते समय उन्हें फिर विस्तृत करते हैं।।१३३।।

अब प्रलय की स्थिति को बताते हैं कि जब प्रलयकाल आता है, तो सबसे पहले सौ वर्ष तक लगातार घोर अनावृष्टि होती है अर्थात् वर्षा ही नहीं होती तथा पृथ्वी पर जो अल्पसार प्राणी हैं, वे सब विलीन हो जाते हैं और भूमित्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जलकर राख होकर मिट्टी बन जाते हैं। सूर्य की सात किरणें अलग-अलग हो जाती हैं और भगवान् सूर्य सात किरणों वाले होकर उठते हैं और फिर भगवान् असह्य किरणों वाले होकर अपने किरणों से भूमण्डल पर स्थित नदियों, पर्वतों और समुद्रों के जल को पीते हैं। उन सूर्य की हरित वर्ण वाली किरणें बहुत ही तीक्ष्ण हो जाती हैं। वे सत्तर गुनी अधिक तीव्र हो जाती हैं।।१३४-१३५।। वे हरितवर्ण की किरणें धीरे-धीरे समस्त आकाश में व्याप्त होकर सब कुछ बदल देती हैं। भूमि पर होने वाले समस्त पदार्थ, काष्ठ, ईंधन, तेज आदि में पुनः पुनः प्रवृत्त होकर वे रश्मियां जल से और अधिक प्रदीप्त हो उठती हैं। इसीलिये जल से भरा हुआ सूर्य और अधिक तपता है, ऐसा कहा जाता है। नावृष्ट्या (अनावृष्टि) वर्षा न होने से सूर्य तप्त नहीं होते और न वर्षा न होने से उनके मण्डल में कोई विशेष दीप्ति होती है। यही नहीं वर्षा न होने से उनकी किरणें पृथ्वी के पदार्थों नदी, वन, समुद्र, पर्वतादि से जल का संचयन नहीं कर पातीं। केवल जल से ही सूर्य पूरी तरह दीप्त होते हैं। उसी कारण जल पीते

ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम्। चतुर्लोकमिमं सर्वं दहंति शिखिनस्तदा॥१४०॥
प्राप्नुवंति च ताभिस्तु ह्यूर्द्धं चाधश्च रश्मिभिः।
दीप्यंते भास्कराः सप्त युगांताग्निप्रतापिनः॥१४१॥
ते वारिणा प्रदीप्ताश्च बहुसाहस्त्ररस्मयः। स्वयं समावृत्य तिष्ठंति निर्दहंतो वसुंधराम्॥१४२॥
ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुंधरा। साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी निस्नेहा समपद्यत॥१४३॥
दीप्ताभिः संतताभिश्च चित्राभिश्च समंततः।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च संरुद्धा सूर्यरश्मिभिः॥१४४॥
सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम्। एकत्वमुपयातानामेकज्वाला भवत्युत॥१४५॥
सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वाऽनुमंडली। चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा॥१४६॥
ततः प्रलीने सर्वस्मिञ्जंगमे स्थावरे तथा। निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमा भवेत्॥१४७॥
अंबरीषमिवाभाति सर्वमप्यखिलं जगत्। सर्वमेव तदर्चिभिः पूर्णं जाज्वल्यते घनः॥१४८॥
भूतले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च। ततसनि प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च॥१४९॥
द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः। सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः॥१५०॥
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वशः।
पिबत्यपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन्॥१५१॥

हुए सूर्य आकाश में प्रदीप्त होते हैं। उन सूर्य की वे सात किरणें, जो सात रंगों की हैं, महासमुद्र से जल का पान करती हैं। अतः महासमुद्रों से जल के आहार से सन्दीप्त सूर्य सात हो जाते हैं।।१३५-१३९।। उसके बाद वे सात किरणें सात सूर्य होकर चारों दिशाओं में व्याप्त हो जाती हैं और तब वे सूर्य की किरणें अग्नि बनकर इन चारों लोकों को जला देती हैं।।१४०।। नीचे ऊपर नीचे सर्वत्र उन प्रखर किरणों द्वारा प्रलयकालीन अग्नि के समान बहुत अधिक जलते हुए वे सातों सूर्य बहुत अधिक तप्त हो उठते हैं।।१४१।। वे सूर्य जल से प्रदीप्त अनेकों हजार किरणों वाले हो जाते हैं और उन किरणों से स्वयं को आवृत कर समस्त भूमण्डल को पूरी तरह जलाते हुए स्थित रहते हैं।।१४२।।

उसके बाद उनके अपरिमित प्रताप से समस्त जलती हुई पृथ्वी पर्वतों, नदियों और समुद्रों सहित जलरहित हो जायेंगी।।१४३।। आग की तरह जलती हुई बहुत अधिक तापयुक्त चित्र-विचित्र रंग-बिरंगी सूर्य की किरणों से चारों ओर ऊपर नीचे तिरछे इधर-उधर भूमण्डल के चिह्न भी नहीं रहेंगे।।१४४।। बहुत अधिक बढ़ी हुई सूर्य की अग्नियों के परस्पर मिल जाने से एक होकर एक ज्वाला के रूप में हो जाने पर एक मण्डलाकार रूप धारण कर वह प्रचण्ड सूर्य की अग्नि शीघ्र ही अपने तेज से चारों लोकों को जलाकर भस्म कर देगी।।१४५-१४६।। तब समस्त लोकों के स्थावर और जङ्गम पूरी तरह विलीन हो जायेंगे और यह पृथ्वी वृक्षोंरहित, घासरहित होकर कछुए की पीठ के समान हो जायेगी।।१४७।। उस समय समस्त संसार एक भाड़ की भाँति प्रतीत होता है। सारा आकाशमण्डल ज्वालाओं पूर्णरूप से जलने लगता है।।१४८।। भूतल पर और समुद्र में जितने भी जीव रहते हैं, वे सभी नष्ट होकर खाक होकर पृथ्वी के रूप में बदल जाते हैं।।१४९।। भूमण्डल पर जितने द्वीप हैं, पर्वत हैं, देश हैं तथा महासमुद्र है, उन सबको वे सर्वात्मा अग्नि भस्म कर देते हैं।।१५०।। उस समय पृथ्वी पर प्रचण्ड रूप से जलते हुए अग्निदेव

ततः संवर्द्धितः शैलानतिक्रम्य ग्रहांस्तथा। लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्त्तकोऽनलः॥१५२॥
ततः स पृथिवीं भित्त्वा रसातलमशोषयत्। निर्दह्यांते तु पातालं वायुलोकमथादहत्॥१५३॥
अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा तूर्द्धं स दहतो दिवम्।
योजनानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च॥१५४॥
उदतिष्ठञ्छिखास्तस्य बह्व्यः संवर्त्तकस्य तु। गंधर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान्॥१५५॥
तदा दहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्वशः। भूर्लोकं च भुवर्ल्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा॥१५६॥
घोरो दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयाम्। व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्धमथाग्निना॥१५७॥
तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः। अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते॥१५८॥
ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः।
उत्तिष्ठंति तदा घोरा व्योम्नि संवर्तका घनाः॥१५९॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः। केचिद्वैडूर्यसंकाशा इंद्रनीलनिभाः परे॥१६०॥
शंखकुंदनिभाश्चान्ये जात्यंजननिभास्तथा।
धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः॥१६१॥
केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षरसनिभास्तथा। मनशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथांबुदाः॥१६२॥

समुद्रों, नदियों और पातालों से चारों ओर से जल को पीते हैं।।१५१।। उसके बाद वह प्रलय की अग्नि इतनी बढ़ जाती है कि पर्वतों का अतिक्रमण करता हुआ समस्त लोकों का संहार कर देता है।।१५२।। और फिर प्रलयाग्नि पृथ्वी का भेदन करके रसातल को भी सोख लेता है और पाताल को जलाता हुआ वायुलोक को जला देता है।।१५३।। वह प्रचण्ड अग्नि नीचे पृथ्वी को जलाकर ऊपर आकाश को जलाती हुई प्रलयाग्नि की ज्वालायें हजारों-लाखों-अरबों योजनों तक ऊपर को उठती हैं और वे प्रचण्ड ज्वालायें गन्धर्वों, पिसाचों, महान् सर्पों, राक्षसों तथा पृथ्वी एवं आकाश के समस्त पिण्डों को जलाती हुई भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक और महर्लोक को जला देती हैं।।१५४-१५६।। इस प्रकार वह घोर कालाग्नि चारों लोकों को जला डालती है तथा समस्त लोकों में अग्नि ही अग्नि व्याप्त हो जाती है तथा चारों लोक अग्नि में व्याप्त हो जाते हैं। सर्वत्र ऊपर-नीचे इधर-उधर चारों ओर अग्नि ही अग्नि होती है।।१५७।। सर्वत्र अग्नि के फैल जाने पर वह अग्नि का तेज शीघ्र ही इस समस्त जगत् को जलाकर जलते हुए लाल-लाल लोहे के पिण्ड की भाँति चमकने लगता है।।१५८।।

जब सब कुछ जलकर एक पिण्ड के रूप में तपाये हुए लोहे की भाँति हो जाता है, तब उसके बाद आकाश में हाथियों के आकार वाले विद्युत् से युक्त संवर्तक नाम के घोर मेघ उठते हैं। ये संवर्तक नामक मेघ केवल प्रलयकाल में ही उठते हैं।।१५९।। उन मेघों में कुछ नीलकमल की भाँति श्याम वर्ण वाले काले-काले भयंकर होते हैं, कुछ कुमुद के समान श्वेत वर्ण के, कुछ वैदूर्यमणि के समान लाल वर्ण के, कुछ इन्द्रनीलमणि के समान नीले, कुछ शंख और कुन्द के समान बहुत श्वेत तथा दूसरे मेघ काजल के समान बहुत काले, कुछ धुएँ के रंग के तथा पीले रंग के बादल (मेघ) होते हैं।।१६०-१६१।। वे बादल कुछ गधे के वर्ण की आभा वाले, कुछ मेंहदी के रंग के, कुछ मनसिल के वर्ण वाले, कुछ कबूतर के रंग वाले होते हैं।।१६२।।

इंद्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा। चाषपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठंति घना दिवि॥१६३॥
केचित्पुरवराकाराः केचिद्गजकुलोपमाः।
केचित्पर्वतसंकाशाः केचित्स्थलनिभा घनाः॥१६४॥
क्रीडागारनिभाः केचित्केचिन्मीनकुलोपमाः। बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः॥१६५॥
तदा जलधरा; सर्वे पूरयंति नभस्तलम्। ततस्ते जलदा घोराराविणो भास्करात्मकाः॥१६६॥
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयंत्युत। ततस्ते जलदा वर्षं मुंचंति च महौघवत्॥१६७॥
सुघोरमशिवं सर्वं नाशयंति च पावकम्। प्रवृष्टैस्च तथात्यर्थं वारिणा पूर्यते जगत्॥१६८॥
अद्भिस्तेजोभिभूतं च तदाग्निः प्रविशत्यपः।
नष्टे चाग्नौ वर्षगते पयोदाः पावकोद्भवाः॥१६९॥
प्लावयंतो जगत्सर्वं बृहज्ज्वलपरिस्त्रवैः। धाराभिः पूरयंतीमं चोद्यमानाः स्वयंभुवा॥१७०॥
अन्ये तु सलिलौघैस्तु वेलामभिभवंत्यपि। साद्रिद्वीपांतरं पीतं जलमन्नेषु तिष्ठति॥१७१॥
पुनः पतति भूमौ तत्पयोधरस्तान्नभस्तले। संवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समंततः॥१७२॥
तस्मिन्नेकार्णवे घोरो नष्टे स्थावरजंगमे। पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते॥१७३॥

कुछ बादल बरसात के बाद जमीन से निकलने वाली लाल रंग की सुन्दर राम की गुड़िया की भाँति होते हैं। कुछ हरिताल की आभा वाले होते हैं तथा कुछ नीलकंठ पक्षी के पंखों की भाँति नीली आभा वाले होते हैं।।१६३।। जो बादल आकाश में उठते हैं, वे कुछ ग्रामों और पृथ्वी के खण्डों के समान आकार वाले होते हैं, तो कुछ हाथियों के समान होते हैं, कुछ पर्वतों के समान होते हैं, तो कुछ पृथ्वी के आकार के होते हैं। कुछ खेल के मैदान जैसे होते हैं, तो कुछ मछलियों के आकार के होते हैं। इस प्रकार वे मेघ अनेकों प्रकार के रूप वाले, भयंकर रूप वाले और घोर स्वर करने वाले (भयंकर गर्जना करने वाले) होते हैं।।१६४-१६५।। उस समय वे सब मेघ समस्त आकाशतल को घेर लेते हैं और सूर्य की आत्मा वाले बन कर घोर गर्जना करते हैं।।१६६।। और फिर सूर्यात्मक वे मेघ सात भागों में विभक्त होकर अग्नि को शान्त कर देते हैं और उसके बाद वेमेघ महानदी के समान बरसते हैं।।१६७।। इस प्रकार बरसते हुए वे मेघ बहुत अधिक भयंकर सर्व विनाशक अग्नि को नष्ट कर देते हैं। घनघोर वर्षा द्वारा समस्त संसार जल से पूर्ण हो जाता है।।१६८।।

उस समय जलों से अग्नि का तेज शान्त हो जाता है और अग्नि जल में प्रविष्ट हो जाती है। वर्षा होने पर और अग्नि के नष्ट हो जाने पर मेघ अग्नि के द्वारा उत्पन्न होने वाले हो जाते हैं। अर्थात् वह प्रलयाग्नि जब जल में समा जाती है, तब मेघ अग्नि से पैदा होने वाले हो जाते हैं, भाव यह है कि जब गर्मी पड़ती है, तब ही मेघ पैदा होते हैं। यह यहाँ वैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन है।।१६९।। उस समय इतना जल बरसता है कि सारा संसार जलप्लावित हो जाता है। स्वायम्भुव ब्रह्मा निरन्तर जल की वर्षा करती हुई विशाल जलधाराओं से सारे संसार को जलमग्न कर देते हैं।।१७०।। अन्य मेघ तो बरसते हुए अपनी मर्यादा का भी उल्लंघन कर देते हैं।।१७०१।। तब पर्वत द्वीप समुद्रों से पिया हुआ जल मेघों में स्थित रहता है और फिर आकाश तल में स्थित होकर उस जल को नीचे भूमि पर गिराते हैं और घोर आत्मा वाला वायु उस जल को आकाश में चारों ओर से घेर लेता है। उस महान्

अथांभसाऽऽवृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः। अथ भूमिर्जलं खं च वायुश्चैकार्णवे तदा॥१७४॥
नष्टेऽनलेऽन्धभूतेतु प्राज्ञायत न किंचन। पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो दैव्याश्च सर्वशः॥१७५॥
असरन्त्यो ब्रजंत्यैक्यं सलिलाख्यां भजन्त्युत।
आगतिागतिके चैव तदा तत्सलिलं स्मृतम्॥१७६॥
प्रच्छाद्यति महीमेतार्मणवाख्यं तु तज्जवलम्।
आभाति यस्मात्तद्धामिभो शब्दो व्याप्तिदीप्तिषु॥१७७॥
भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादंभो निरुच्यते। नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वे अर उच्यते॥१७८॥
एकार्णवे तदा ह्यो वै न शीघ्रस्तेन ता नराः। तस्मिन्युगसहस्रांते दिवसे ब्रह्मणो गते॥१७९॥
तावंतं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत्। तदा तु सर्वे व्यापारा निवर्त्तंते प्रजापतेः॥१८०॥

भीषण एक समुद्र के रूप में परिणत जगत् के सारे जड़-चेतन जीव समूह नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार पूरे एक हजार चतुर्युग बीत जाते हैं, अर्थात् एक हजार चतुर्युग तक सृष्टि रही, तब उतने ही समय तक प्रलय की स्थिति बनी रहती है। इसे ही कल्प कहा जाता है।।१७०½-१७३।। जब सारा संसार जल से आवृत हो जाता है, उसे विद्वान् लोग एकार्णव कहते हैं, अर्थात् सारा प्रपंच, सभी समुद्र, वन, पर्वत, नदियाँ, विलीन होकर एक समुद्र बन जाती हैं, जिसे एकार्णव कहा जाता है। तब भूमि, जल, आकाश, वायु एकार्णव में समा जाते हैं।।१७४।। उस समय अग्नि नष्ट हो जाती है। चारों ओर घोर अन्धकार छा जाता है। वहाँ कौंन कहाँ है? कहाँ क्या है? यह सब कुछ कहीं भी पता नहीं चलता। पृथ्वी सम्बन्धी, समुद्र सम्बन्धी, तैजस् सम्बन्धी जलराशि चारों ओर प्रवाहित होती हुई, उस समय केवल एक सलिल जल का रूप धारण कर लेती है। नहीं चलते हुए, जो एकता को प्राप्त करते हैं, वे ही सलिल की प्रसिद्धि को प्राप्त करते हैं। वह जलराशि इधर-उधर आती-जाती रहती है, इसीलिए यह जल सलिल कहा जाता है। अर्थात् उनकी अपनी अलग-अलग कोई पहचान नहीं रह जाती।।१७५-१७६।।

वह प्रलयकालीन जल समस्त पृथ्वी को एक अर्णव के रूप में ढँक लेता है। "आभाति यस्मात्" प्रकाशित करता है और व्याप्त करता है। इस अर्थ में 'भा' धातु आती है, अतः 'भा' का अर्थ है, जो प्रकाशित करता है और व्याप्त करता है। इस समय समस्त संसार समूह के नष्ट हो जाने पर यह जल ही चारों ओर व्याप्त रहता है, प्रकाशित होता है, अर्थात् सर्वत्र जल ही जल दिखाई देता है। इसीलिए यह जल अम्भ कहा गया है। अतः यह 'अम्भ' शब्द सार्थक है। प्रलयकालीन दृश्य के आधार सर्वत्र व्याप्त और प्रकाशित होने के कारण इस जल को अम्भ कहा गया है। यही नहीं प्रलयकालीन प्रचण्ड अग्नि से जलकर भस्म बने हुए सब प्रपंच को यह जल पुनः प्राप्त करता है, इसलिए भी यह अम्भ कहलाता है। 'अर्' धातु अनेकत्व तथा शीघ्रत्व को प्रकट करता है तथा अर् धातु से (अच्) प्रत्यय से अर शब्द हुआ, जिसका अर्थ है—अनेक होना और शीघ्रता करना; परन्तु न + अर से नार शब्द बना, तब अर्थ हुआ, अनेक न होने वाला तथा शीघ्रता न करने वाला, अर्थात् एक रूप और शान्त निश्चल अर्थ हुआ। अतः वह जलराशि एक रूप में एकार्णव में शीघ्रता से नहीं चलती, इसलिए नार कही जाती है।।१७७-१७८½।। एक हजार युग के समाप्त होने पर ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता है, ठीक उतने ही समय तक समस्त जगत् एकार्णव के रूप में परिणत रहता है। उस समय ब्रह्मा सब प्रकार के कार्यों से निवृत्त हो जाते हैं।।१७८½-१८०।।

एकमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे। तदा स भवति ब्रह्मा सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्॥१८१॥
सहस्त्रशीर्षा सुमनाः सहस्त्रपात्सहस्त्रचक्षुर्वदनः सहस्त्रवाक्।
सहस्त्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रियीमयो यः पुरुषो निरुच्यते॥१८२॥
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः प्रथमस्तुराषाट्।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महान्वैसंपठ्यते वै रजसः परस्तात्॥१८३॥
चतुर्युगसहस्त्रान्ते सर्वतः सलिलाप्लुते। सुषुप्सुरप्रकाशेप्सुः स रात्रिं कुरुते प्रभुः॥१८४॥
चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वा लयं गताः। पश्यंति तं महात्मानं कालं सप्त महर्षयः॥
जनलोकं विवर्त्तास्ते तपसा लब्धचक्षुषः॥१८५॥
भृग्वादयो महात्मानः पूर्वे व्याख्यातलक्षणाः॥१८६॥
सत्यादीन्सप्तलोकान्वै ते हि पश्यंति चक्षुषा।
ब्रह्माणं ते तु पश्यंति सदा ब्राह्मीषु रात्रिषु॥१८७॥
सप्तर्षयः प्रपश्यंति स्वप्नं कालं स्वरात्रिषु।
कल्यानां परमेष्ठित्त्वात्तस्मादाद्यः स पठ्यते॥१८८॥
स स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनःपुनः। एवमेशयित्वा तु ह्यात्मन्येव प्रजापतिः॥१८९॥
अथात्मनि महातेजाः सर्वमादाय सर्वकृत्। ततः स वसते रात्रिं तमस्येकार्णवे जले॥१९०॥

इस प्रकार उस महान् एकार्णव में जबकि समस्त जड़-चेतन संसार नष्ट हो चुका होता है, तब सहस्त्र नेत्र, सहस्त्र चरण, सहस्त्र शीर्षा, सुन्दर मन वाले सहस्त्रचक्षु, सहस्त्रमुख, सहस्त्रवाक्, सहस्त्रबाहु प्रथम प्रजापति, जो त्रयीमय (वेदत्रय वर्णित) पुरुष कहे जाते हैं। सूर्य के समान प्रखर हो जाते हैं। समस्त लोकों के रक्षक, अपूर्व, अद्वितीय, अपने तेज से सभी को अभिभूत करने वाले महान् अन्धकार रूप अज्ञान से परे हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा स्थित रहते हैं। एक हजार बार चारों युगों के बीत जाने पर जब समस्त संसार मण्डल एकार्णव में डूब जाता है, तब महिमामय भगवान् शयन करने की इच्छा से महान् अन्धकारपूर्ण अपनी महारात्रि की कल्पना करते हैं।।१८१-१८४।।

जिस समय चारों प्रकार की प्रजाओं को उस विशाल अण्डकोष में परिणत करके सर्वसमर्थ प्रभु शयन करते हैं, उस समय उनको केवल सात महर्षिगण देखते रहते हैं। वे भृगु आदि महात्मा, जिन्होंने अपनी तपस्या से दिव्य चक्षुओं को प्राप्त कर लिया है, जिनके विशेष लक्षण पूर्व में बताये जा चुके हैं। वे उस समय जनलोक में निवास करते हैं। वे अपने ज्ञानचक्षुओं से भू, भुव, स्व, मह, जन, तप और सत्य सातों लोकों को देखते रहते हैं। लोकसृष्टा पितामह ब्रह्मा को वे सदैव ब्राह्मी रात्रियों में देखते रहते हैं।।१८५-१८७।। लोकसृष्टा ब्रह्मा जब रात्रि में सो रहे होते हैं, तब सप्तर्षिगण उन्हें देखते हैं। समस्त कल्पान्त में एक ब्रह्मा ही परमेष्ठि (परम शेष) हैं तथा वे ही आद्य (प्रथम) पुरुष हैं।।१८८।। कल्पों के आदि में पुनः पुनः समस्त पञ्चभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) तथा समस्त प्राणियों की रचना करने वाले वे प्रजापति ब्रह्मा समस्त प्रपञ्च को अपने अधिकार में करके स्थित हैं।।१८९।। इसलिए वे सब कुछ करने वाले महा तेजस्वी ब्रह्मा समस्त जड़-चेतन पदार्थों को अपनी आत्मा में समेट कर अन्धकाराच्छन्न एकार्णव के जल में रात्रि में निवास करते हैं।।१९०।।

ततो रात्रिक्षये प्राप्ते प्रतिबुद्धः प्रजापतिः। मनः सिसृक्षया युक्तः सर्गाय निदधे पुनः॥१९१॥
एवं स लोके निर्वृत्त उपशांते प्रजापतौ। ब्राह्मे नैमित्तिके तस्मिन्कल्पिते वै प्रसंयमे॥१९२॥
देहैर्वियोगः सत्त्वानां तस्मिन्वै कृत्स्नशः स्मृतः।
ततो दग्धेषु भूतेषु सर्वेष्वादित्यरश्मिभिः॥१९३॥
देवर्षिमनुवर्येषु तस्मिन्नंबुप्लवे तदा। गंधर्वादीनि सत्त्वानि पिशाचांतानि सर्वशः॥१९४॥
कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयंति वै। तिर्यग्योनीनि नरके यानि यानि गतान्यपि॥१९५॥
तदा तान्यापि दग्धानि धूतपापानि सर्वशः। जले तान्युपपद्यंते यावत्संप्लवते जगत्॥१९६॥
व्युष्टायां च रजन्यां तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः।
जायंते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नशः॥१९७॥
ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः। तेषामपि च सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते॥१९८॥
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमने स्मृते। तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते॥१९९॥
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवः संसार उच्यते। यथा सर्वाणि भूतानां जायंते वर्षणेष्विह॥२००॥
स्थावरादीनि नियमात्कल्पे कल्पे तथा प्रजाः।
यथार्त्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये॥२०१॥
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मद्युरात्रिषु। प्रत्याहारे विसर्गे च गतिमंति ध्रुवाणि च॥२०२॥

उसके बाद प्रलयरूपी रात्रि के नष्ट हो जाने पर प्रजापति ब्रह्मा सृष्टि करने की इच्छा से पुनः मन को सृष्टि करने में लगाते हैं।।१९१।। इसी प्रकार ब्रह्मा के नैमित्तिक प्रलय में लोकों के विनष्ट हो जाने पर तथा प्रजापति ब्रह्मा के उपशान्त हो जाने पर सभी प्राणी समूह अपने-अपने शरीरों से रहित हो जाते हैं।।१९२-१९२½।। तब उस प्रलय में भगवान् भास्कर की प्रखर किरणों से सभी जीव तो क्या ऋषि-महर्षि, देवताओं और मनुश्रेष्ठों के भस्म हो जाने पर गन्धर्व आदि प्राणी पिशाचादि सब ओर प्रलय के आदि में प्रलयाग्नि से तप्त होकर जनलोक का आश्रय लेते हैं।।१९२½-१९४½।। उस समय जो तिर्यक् योनि में पैदा होने वाले प्राणी रहते हैं, अथवा जिनका घोर नरकादि में निवास रहता है, वे भी पूरी तरह जल कर पापरहित हो जाते हैं और जनलोक में तब तक विद्यमान रहते हैं, जब तक कि समस्त जगत् जल में आप्लावित रहता है।।१९४½-१९६।। ब्रह्मा की उस महारात्रि के समाप्त हो जाने पर वे सब जीव ब्रह्मा की अव्यक्त योनि से पुनः उत्पन्न होते हैं।।१९७।।

ऋषिगण, मनुगण, देवगण और प्रजा, ये सब चारों प्रकार भी पुनः उत्पन्न होते हैं। अतः उन सब सिद्ध पुरुषों की मृत्यु और उत्पत्ति कही जाती है।।१९८।। जिस प्रकार इस संसार में सूर्य का उदय और अस्त होता है, उसी प्रकार इस संसार के प्राणियों का जन्म लेना और मृत्यु होना देखा जाता है।।१९९।। समस्त जीवों के इस महान् विनाश के बाद पुनः उत्पत्ति होती है, इसीलिये इस लोक को संसार कहा जाता है, जिस प्रकार पृथ्वी पर सभी वनस्पतियाँ वर्षा ऋतु में स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं। उसी प्रकार प्रलय के प्रत्येक कल्प में जिन-जिन जीवों का जो-जो स्वरूप होता है तथा जैसा आकार-प्रकार रहता है, ब्राह्मरात्रि के समाप्त हो जाने पर पुनः नवीन कल्प के आरम्भ होने पर वे उसी प्रकार के रूप एवं आकार-प्रकार के उत्पन्न हुए देखे जाते हैं। संसार की प्रलय और सृष्टि में गतिशील

निष्क्रमन्ते विशंते च प्रजाः काले प्रजापतिम्।
ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम्॥२०३॥
स स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः।
व्यक्तोऽव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥२०४॥
येनैव सृष्टाः प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन्।
पूर्वं प्रयातेन यथात्वथापस्तेनैव तेनैव तु स्वर्व्रजंति॥२०५॥
यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव तत्रैव विवर्त्तमानाः।
मर्त्यास्तु देहांतरभावितत्वाद्रवेर्वशादूर्ध्वमधश्चरंति॥२०६॥
ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धाः।
तद्भाविताः ख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्विसर्गेण भवंति सत्त्वाः॥२०७॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंप्लवम्।
मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजाः॥२०८॥
सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश। सा युगाख्या सहस्त्रं तु सर्वाण्येवांतराणि वै॥२०९॥

और निश्चल जितनी भी प्रजाएँ हैं, वे सब और समस्त भूत तत्त्व महायोगेश्वर उन महेश्वर ब्रह्मा के शरीर से निकलती हैं और उनमें ही प्रवेश करती हैं।।२००-२०३।। कल्पों के आदि में वो महेश्वर ब्रह्मा व्यक्त और अव्यक्त समस्त चराचर प्राणियों की पुनः पुनः उत्पत्ति करके इस सारे संसार का पालन करते हैं। वे व्यक्त भी हैं और अव्यक्त भी हैं, अर्थात् इस संसार में जो कुछ इन्द्रियों से जानने योग्य पदार्थ हैं, वे सब भी उन्हीं के रूप हैं तथा जो इन्द्रियों से भी परे पदार्थ यथा आत्मा आदि हैं, वे सब भी उन्हीं के रूप हैं।।२०४।। जिन्होंने ही सबसे पहले प्रयाण करने वाले जल को इस महीतल पर उत्पन्न किया, अतः सबसे पहले पैदा की गयी जलराशियाँ जिस मार्ग से गमन करती हैं, उसी मार्ग से अन्यान्य जलराशियाँ भी गमन करती हैं। भाव यह है कि उन जगत्सृष्टा ब्रह्मा ने समस्त पदार्थों के विषय में उनके क्रियाकलापों के नियम बना दिये हैं, उन्हीं के नियमों पर संसार के पंचभूतादि सभी तत्त्व कार्य करते हैं। पृथ्वी का कार्य गमन करना है, सूर्य का ऊर्जा प्रदान करना है, सभी ग्रह-नक्षत्रों का कार्य अपने नियम में गमन करना है, पानी-हवा को बहना है, अग्नि को जलाना है, ये सब यथा निर्धारित हैं। सब अपने-अपने मार्ग का अनुसरण करते रहते हैं।।२०५।।

मनुष्यों ने जो शुभ अथवा अशुभ कर्म किये हैं, तदनुसार उनको वहाँ-वहाँ घूमते हुए, जन्म ग्रहण करते हुए, दूसरे शरीर में जाना ही है, इस भवितव्यता के कारण सूर्य की किरणों के वशीभूत होकर ऊपर और नीचे विचरण करते रहते हैं।।२०६।। और ये जितने भी देवता, मनुगण, प्रजापति एवं अन्यान्य सिद्ध पुरुष हैं, वे सभी भी भवितव्यतावश अपने-अपने धर्म की मर्यादा के अनुरूप स्वभावतः जन्म धारण करते हैं।।२०७।।

सूतजी ने कहा कि ऋषियों! इसके बाद अब मैं प्रलय काल के विषय में बतला रहा हूँ। मन्वन्तर जितने होते हैं, उनको मैं बता चुका हूँ।।२०८।। देवों के साथ और प्रजा के निसर्ग के साथ कुल चौदह मन्वन्तर होते हैं। वे सभी मन्वन्तर एक हजार युगों के होते हैं।।२०९।।

अस्याः सहस्रे द्वे पूर्णे विशेषः कल्प उच्यते। एतद्ब्राह्ममहर्ज्ञेयं तस्य संख्या निबोधत॥२१०॥
निमेषतुल्यमात्रा हि कृता लब्धक्षणेन तु। मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पंचदश स्मृताः॥२११॥
नव क्षणस्तु पंचैव विंशत्काष्ठा तु ते त्रयः।
प्रस्था सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लवः स्मृतः॥२१२॥
लवास्त्रिंशत्कला ज्ञेया मुहूर्त्तस्त्रिंशतः कलाः। मुहूर्त्तास्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रमिति स्थितिः॥२१३॥
अहोरात्रं कलानां तु अधिकानि शतानि षट्। ताश्चैव संख्यया ज्ञेयाश्चंद्रादित्यगतिर्यथा॥२१४॥
निमेषा दश पंचैवं काष्ठास्तास्त्रिंशतः कला।
त्रिंशत्कला मुहूर्त्तं तु दशभागं कला स्मृतम्॥२१५॥
चत्वारिंशत्कलाः पंच मुहूर्त्त इति संज्ञितः। मुहूर्त्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः॥२१६॥
तथानेनांभसश्चापि पलान्यथ त्रयोदश। मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते॥२१७॥
एते वागप्लुतप्रस्थाश्चत्वारो नालिकोच्चयः। हेममार्षैः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरंगुलैः॥२१८॥
समाहनि च रात्रौ च मुहूर्त्ता वै द्विनालिकाः। रगेर्वतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषु नित्यशः॥२१९॥
अधिकं षट्शतं यच्च कलानां प्रविधीयते। तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रं तु दशाधिकम्॥२२०॥
सावनेन तु मानेन अब्दोऽयं मानुषः स्मृतः। एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः॥२२१॥
अह्नानेन तु या संख्या मासर्त्वयनवार्षिकी। तदा बद्धमिदं ज्ञानं संज्ञया ह्युपलक्षितम्॥२२२॥

इसी प्रकार दो हजार युगों के बीत जाने पर एक कल्प की समाप्ति होती कही जाती है।यह अवधि ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है, उसकी संख्या सुनिये।।२१०।। समय की माप बताते हुए कहते हैं कि एक लघु अक्षर के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं। मनुष्य के पलक मारने में जो समय लगता है, उसे भी निमेष कहते हैं। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है।।२११।। पाँच क्षण का एक लव होता है, बीस काष्ठा का तीन लव होता है। साढ़े सात प्रस्थ का एक लव होता है।।२१२।। तीस लव की एक कला और तीस कलाओं का एक मुहूर्त जानना चाहिए, पुनः तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात होता है।।२१३।। इस प्रकार दिन और रात छः सौ दो कलाओं का होता है, इन्हीं कलाओं से चन्द्र-सूर्य की गति जाननी चाहिए।।२१४।। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला तथा तीस कला का एक मुहूर्त होता है। मुहूर्त के दशवे भाग की कला होती है।।२१५।।

कुछ लोग चालीस कला का मुहूर्त बताते हैं। समय का प्रमाण जानने वालों ने यही समय की माप निश्चित की है।।२१६।। जल द्वारा भी एक प्रकार से परिमाण का निश्चय होता है। मागध मान के अनुसार तेरह पल जल का एक प्रस्थ होता है, ऐसे चार प्रस्थों का एक नालिक घट होता है।।२१७।। एक कलश में चार अंगुल पर चार सुवर्णमाष के समान दो छिद्रों द्वारा दिन और रात में प्रतिमुहूर्त दो नलिका जल निकलता है। सूर्य की गति की न्यूनता के रहते हुए भी सभी ऋतुओं में एक दिन-रात छः सौ से अधिक कलाओं वाला होता है, यह दिन मनुष्यों का है। नाक्षत्रिक दिन-रात का परिमाण छः सौ दश कलाओं का होता है। यही एक सावन का भी मान है। इस मान से बारह मास का एक मानव वर्ष होता है। उतना ही एक दिव्य वर्ष का मान है। ऐसा शास्त्रों का निश्चय है।।२१८-२२१।। इसी दिनमान से मास, अयन एवं वर्ष आदि की गणना होती है। ये संज्ञाएँ ब्रह्मा के एक दिन की उपलक्षण मात्र हैं।।२२२।।

कलानां तु परीमाणं कला इत्यभिधीयते। यदहो ब्रह्मणः प्रोक्तं दिव्या कोटी तु सा स्मृता॥२२३॥
शतानां च सहस्त्राणि दशद्विगुणितानि च। नवतिं च सहस्त्राणि तथैवान्यानि यानि तु॥२२४॥
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमाद्भुतम्। संख्यासंभजनं ज्ञानमपृच्छन्सुतरां तदा॥२२५॥

ऋषय ऊचुः

संप्रकालनमानं तु मानुषेणैव सम्मतम्। मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थपदाक्षरम्॥२२६॥
तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः। संक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्ट्वात्प्रोवाच वचनं प्रभुः॥२२७॥
एते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके। तासां संख्याथ वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहः क्षये॥२२८॥
कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु।
द्वात्रिंशच्च तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः॥२२९॥
तथा शतसहस्त्राणि एकोननवतिः पुनः। अशीतिश्च सहस्त्राणि एष कालः प्लवस्य तु॥२३०॥
मानुषाख्येन संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लव। सप्तसूर्यप्रदग्धेषु तदा लोकेषु तेषु वै।
महाभूतेषु लीयंते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः॥२३१॥
सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजंगमे॥२३२॥
विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ। निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तमसा वृते॥२३३॥
ईश्वराधिष्ठिते त्वस्मिंस्तदा ह्येकार्णवे किल। तावदेकार्णवे ज्ञेयं यावदासीदहः प्रभोः॥२३४॥

कलाओं द्वारा गिना जाने के कारण समय काल नाम से पुकारा जाता है। ब्रह्मा का एक दिन एक करोड़ बीस लाख नौ हजार से अधिक दिव्य वर्षों का होता है।।२२३-२२४।। यह सुन कर के ऋषिगण परम विस्मित हो गये, तब काल की संख्या को जान कर ऋषि लोगों ने पुनः पूँछा।।२२५।।

ऋषियों ने कहा कि हे सूत जी! हम लोग मानव मान से सम्मत संख्या द्वारा प्रलय का परिमाण सुनना चाहते हैं। आप संक्षेप से छोटे-छोटे शब्दों में हमें समझाइए।।२२६।। उन ऋषियों की बात सुनकर लोककल्याण में निरन्तर लगे हुए प्रभु वायुदेव दिव्य चक्षु से ज्ञेय वस्तु को जानकर संक्षेप में यह वचन बोले।।२२७।। कि लौकिक दिन-रात का प्रमाण तो बताया जा चुका है, उन्हीं के माध्यम से ब्रह्मा के उस पूर्व दिवस का मान मैं आपको बता रहा हूँ, जो कि पहले नष्ट हो चुका।।२२८।। मनुष्यों के चार सौ बत्तीस करोड़ नवासी (उन्यासी) लाख अस्सी हजार वर्षों में प्रलय होता है। (४३२,८९,८००००) मनुष्य कालमान के अनुसार उतने ही वर्ष में प्रलय की अवधि होती है[१]।।२२९-२३०½।। जब प्रलय के अवसर पर सात सूर्य उदित होते हैं। सभी लोकों में जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज चारों प्रकार की प्रजायें महाभूतों में विलीन हो जाती हैं। समस्त लोक जलमग्न हो जाता है। जब जड़-चेतन निकाय पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। जब संहार कार्य समाप्त कर प्रजापति ब्रह्मा उपशान्त हो जाते हैं, जब पूरी तरह जलकर भस्म हुए लोकों में प्रकाश के समाप्त होने पर अन्धकार छा जाता है। जब प्रजापति ब्रह्मा अपने घर एकार्णव (महासमुद्र) में अधिष्ठित हो जाते हैं, तब तक प्रभु प्रजापति ब्रह्मा का एक दिन उस एकार्णव में जानना चाहिए। उसके

---

१. पृथ्वी की आयु का यह समय विज्ञान सम्मत है। आधुनिक वैज्ञानिक भी पृथ्वी की आयु लगभग ४ अरब वर्ष ही बताते हैं, जो डिस्कवरी चेनल पर अनेकों बार बताया जा चुका है।

रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ वाप्यहः स्मृतम्। अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते॥२३५॥
आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः। त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च॥२३६॥
आभूतेभ्यः प्रलीयंते तस्मादाभूतसंप्लवः। अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः॥२३७॥
दिव्यसंख्या प्रसंख्याता अपरार्धगुणीकृताः। परार्द्धं द्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम्॥२३८॥
एतावान्स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः। स्थित्यंतं प्रतिसर्गश्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥२३९॥
यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुषशाम्यति। तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति॥२४०॥
तथा स्वप्रतिसंसृष्टे महदादौ महेश्वरे। महत्प्रलीयते व्यक्ते गुणसाम्यं ततो भवेत्॥२४१॥
इत्येष वः समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः। ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः।
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्णयामि वः॥२४२॥
य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः। कीर्त्तयेद्वर्णयेद्वापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात्॥२४३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे आभूतसंप्लवाख्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

बाद जब तक वे उस एकार्णव जल में वे ब्रह्मा शयन करते हैं, तब तक उनकी एक रात्रि होती है। इसके बाद दिन कहा जाता है। इसी क्रम से ब्रह्मा के दिन-रात बदलते रहते हैं।।२३०½-२३५।। इस प्रकार सृष्टिकाल से लेकर प्रलय की समाप्ति तक ब्रह्मा का दिन-रात कहा गया है। तीनों लोकों में जितने भी गतिशील एवं निश्चल पदार्थ हैं, वे सभी जब पंचभूतों तक विलीन हो जाते हैं, इसीलिये इस प्रलय को आभूत संप्लव कहा जाता है, अर्थात् इस प्रलय में आभूत-पंचभूतों तक सम्-सम्यक् प्रकार से, प्लव = डूब जाना। इस प्रकार जिसमें समस्त पंचभूतात्मक जगत् पूरी तरह जल में विलीन हो जाये, उसे प्रलय कहा जाता है। समस्त प्रजाओं में सबसे पहले भूत (उत्पन्न) हुए थे, इसलिए प्रजापति भूत हैं, उन्हीं से यह समस्त जगत् भूत (बीता हुआ) अर्थात् नाश हो जाता है, इसलिए भी उस प्रलय को आभूत संप्लव कहा जाता है।।२३६-२३६½।। अतीत, वर्तमान और भविष्य की प्रजाओं के तीन कालों का आयु प्रमाण दिव्य संख्या में अपरार्द्ध कहा जाता है।।२३६½-२३७½।। प्रजापति ब्रह्मा की आयु दो परार्द्ध काल है, यही प्रजापति ब्रह्मा का स्थितिकाल है। इसके उपरान्त उन ब्रह्मा का प्रतिसर्ग (प्रलय) काल होता है।।२३६½-२३९।। जिस प्रकार वायु के वेग से दीपक की ज्योति शान्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रलय द्वारा ब्रह्मा शान्त हो जाते हैं।।२४०।। उस समय जब अव्यक्त (प्रधान) (प्रकृति) में महत्तत्त्व (बुद्धि) विलीन हो जाती है और प्रकृति सहित महत्तत्त्वादि जब उन महेश्वर में विलीन हो जाते हैं, तब प्रकृति में गुणसाम्य हो जाता है, अर्थात् प्रकृति के तीनों गुण समान हो जाते हैं।।२४१।। इस प्रकार मैं आप लोगों का आभूत संप्लव (भूततत्त्वों का प्रलय) बता चुका हूँ। यही ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है। मैंने इसे संक्षेप में बता दिया है, अब इसके आगे क्या बताना है।।२४२।। जो व्यक्ति इस वृत्तान्त को सुनेगा, धारण करेगा अथवा वर्णन कर दूसरों को सुनायेगा, वह महती सिद्धि को प्राप्त करेगा।।२४३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद प्रथम अध्याय प्रलय का आख्यान का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

शिवपुरवर्णनम्

द्वितीयोध्यायः

वायुरुवाच।

असाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्जनैः। धर्मा वैशेषिकाश्चैव आचीर्णाः सूक्ष्मदर्शिभिः॥१॥
ते देवैः सह तिष्ठंति महर्लोकनिवासिनः। चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनात्॥२॥
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये। देवाश्च ऋषयश्चैव मनवः पितरस्तथा॥३॥
सर्वे ह्युक्ता मयातीता महर्लोकं समाश्रिताः। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैः सहितैः सरैः॥४॥
तैस्तथाकारिभिर्युक्तैः श्रद्धावद्भिरदर्पितैः। वर्णाश्रमाणां धर्मेषु श्रौतस्मार्त्तेषु संस्थितैः।
विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वंतरक्षयः॥५॥

ऋषय ऊचुः

महर्ल्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिश्वंस्त्वया विभोः॥६॥
प्रतिलोके तु कर्त्तव्यं तत्र किं समधिष्ठितम्। प्रोवाच मधुरं वाक्यं यथा तत्त्वेन तत्त्ववित्॥७॥

वायुरुवाच।

चतुर्दशैव स्थानानि निर्मितानि महर्षिभिः। लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषां तिष्ठंति मानवाः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय– २

शिवपुर वर्णन

वायुदेव ने कहा कि महर्षियों! जो असाधारण व्यवहारों से युक्त यज्ञादि अनुष्ठान कर शास्त्रोक्त वैशेषिक धर्म का पालन करते हैं, वे सब मनुष्य देवों के साथ महर्लोक के निवासी बन कर प्रतिष्ठित रहते हैं। पूर्व प्रसंग में जिन अतीत, वर्तमान और भविष्यत्कालीन परम यशस्वी चौदह मनुओं का जो वर्णन किया गया है, वे सब सप्तर्षियों, देवों, गन्धर्वों के साथ प्रत्येक मन्वन्तर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों, धार्मिकों और उन शुभ कर्म करने वालों से युक्त श्रद्धावानों, निरभिमानों के साथ वेद और स्मृतियों के धर्मों में स्थित रहने वालों के साथ समस्त अधिकार और कर्तव्यों से रहित होकर जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक महर्लोक में आश्रय ग्रहण करते हैं।।१-५।।

ऋषियों ने कहा कि हे वायुदेव! आपने जिस महर्लोक की चर्चा की है, वह किस प्रकार का है? वहाँ प्रत्येक लोक में जो कर्तव्य है, वह वहाँ क्या है? जब ऋषियों ने यह पूँछा, तब तत्त्ववेत्ता वायुदेव उनसे मधुर वाक्य बोले।।६-७।।

वायुदेव ने कहा—महर्षियों ने चौदह स्थानों को बताया है, जिन्हें लोक कहा जाता है, जिनमें कि मनुष्य रहते हैं।।८।।

सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै। भूरादयस्तु सत्यान्ताः सप्त लोकाः कृतास्त्विह॥९॥
अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै।
स्थानानि स्थानिभिः सार्द्धं कृतानि तु निबंधनम्॥१०॥
पृथिवी चांतरिक्षं च दिव्यं यच्च महः स्मृतम्।
स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्यावर्णकानि च॥११॥
क्षयातिशययुक्तानि तथायुक्तानि चक्षते। यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठंत्याभूतसंप्लवात्॥१२॥
जनस्तपश्च सत्यं च स्थानान्येतानि त्रीणि तु।
एकांतिक्रानि तानि स्युस्तिष्ठंतीहाप्रसंयमात्॥१३॥
व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै।
भूर्लोकः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु भुवः स्मृतः॥१४॥
स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै महः स्मृतः। जनस्तु पंचमो लोकस्तपः षष्ठो विभाव्यते॥१५॥
सत्यस्तु सप्तमो लोको निरालोकस्ततः परम्।
भूरिति व्याहृतेः पूर्वं भूर्लोकश्च ततोऽभवत्॥१६॥
द्वितीयो भुव इत्युक्त अंतरिक्षं ततोऽभवत्। तृतीयं स्वरितीत्युक्तो दिवं प्रादुर्बभूव ह॥१७॥
व्याहारैस्त्रिभिरेतैस्तु ब्रह्मा लोकमकल्पयत्।
ततो भूः पार्थिवो लोको ह्यंतरिक्षं भुवः स्मृतम्॥१८॥
स्वर्लोकं वै दिवं ह्येष पुराणे निश्चयो गतः। भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपतिः स्मृतः॥१९॥

उनमें सात लोक कृत कहे जाते हैं और अन्य सात अकृत कहे जाते हैं। भू, भुव, स्व, मह, जन, तप और सत्य ये सात लोक कृत लोक हैं।।९।। तथा सात ही अकृत लोक हैं, जिन्हें प्राकृत भी कहा जाता है। स्थानाभिमानी देवों के साथ कृत लोकों की स्थिति है।।१०।। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्य और मह ये चारों लोक आर्णविक कहे जाते हैं, अर्थात् ये अर्णव (जल) से सम्बन्धित हैं।।११।। ये लोक क्षय और अतिशय वाले लोक हैं, अर्थात् इनमें लोगों का घटना-बढ़ना, नाश होना आदि लगा रहता है। अब क्षय-वृद्धि से रहित लोकों को बता रहा हूँ। जितने भी नैमित्तिक लोक हैं, वे प्रलय काल तक स्थिर रहने वाले हैं।।१२।। जन, तप और सत्य लोक ऐकान्तिक और सत्त्वगुण वाले लोक हैं। ये सब कल्प पर्यन्त स्थिर रहते हैं।।१३।। अब व्यक्त कहे जाने वाले अर्थात् जो सात प्रकट हैं, उन लोकों को बता रहा हूँ। उन सब में प्रथम भूर्लोक है, दूसरा भुवः, तीसरा स्वः, चौथा महः, पाँचवाँ जनः, छठा तपः और सातवाँ सत्यलोक है। उसके बाद अन्धकार ही अन्धकार है।।१३-१५½।।

पूर्वकाल में प्रजापति ब्रह्मा ने जब 'भूः' शब्द का उच्चारण किया तो भूर्लोक पैदा हो गया, उसके बाद 'भुवः' इस प्रकार उच्चारण किया तो अन्तरिक्ष उत्पन्न हो गया। तीसरी बार 'स्वः' कहने पर दिव (स्वर्ग) उत्पन्न हो गया।।१६-१७।। इस प्रकार 'भूर्भुवः स्वः' इन तीनों उच्चारणों से उक्त तीनों की ब्रह्मा ने प्रकल्पना की। उसके बाद भूः पृथ्वी लोक हुआ, अन्तरिक्ष भुवः कहा गया और स्वः स्वर्गलोक नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऐसा पुराण में निश्चय किया

वायुर्भुवश्चाधिपतिस्तेन वायुर्भुवस्पतिः। दिवस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पतिः॥२०॥
महेति व्याहृतेनैव महर्लोकस्ततोऽभवत्। विनिवृत्ताधिकाराणां देवानां तत्र वै क्षयः॥२१॥
जनस्तु पंचमो लोकस्तस्माज्जायंति वै जनाः।
तासां स्वायंभुवाद्यानां प्रजानां जननाज्जनः॥२२॥
ये त स्वायंभुवाद्या हि पुरस्तत्परिकीर्त्तिताः। कल्प एते यदा लोके प्रतिष्ठंति तदा तपः॥२३॥
ऋभुः सनत्कुमाराद्या यत्रासन्नूर्द्ध्वरेतसः। तपसा भावितात्मानस्तत्र संतीति वा तपः॥२४॥
सत्येति ब्रह्मणः शब्दः सत्तामात्रस्तु स स्मृतः।
ब्रह्मलोकस्ततः सत्यः सप्तमः स तु भास्वरः॥२५॥
गंधर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसाः। सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुषैः॥२६॥
स्वर्लोकवासिनः सर्वे देवा भुवि निवासिनः। मरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवास्तथाश्विनौ॥२७॥
अनिकेतांतरिक्षास्ते भुवर्लोका दिवौकसः।
आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा॥२८॥
ऋषयोंगिरसश्चैव भुवर्लोकं समाश्रिताः। एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिनः॥२९॥
आरंभंते तु तन्मात्रैः शुद्धास्तेषां परस्परम्। शुक्राद्याश्चाक्षुषांताश्च ये व्यतीता भुवं श्रिताः॥३०॥

गया है।।१८-१८½।। अग्नि भूतों अर्थात् पृथ्वी पर उपस्थित समस्त प्राणियों के स्वामी हैं, इसलिए अग्नि को भूतपति कहा गया है। वायु अन्तरिक्ष के अधिपति हैं, उसी कारण वायु को भुवः पति कहा गया है। दिव लोक (स्वर्ग) के अधिपति सूर्य हैं, इसीलिए सूर्य को दिवस्पति कहा गया है।।१८½-२०।। ब्रह्माजी ने महः शब्द का उच्चारण किया, उसके बाद महर्लोक उत्पन्न हो गया। उस महर्लोक में अपने-अपने अधिकारों से विशेष रूप से पूरी तरह निवृत्त होने के बाद देवताओं का वहाँ प्रलयकाल में निवास रहता है।।२१।। जनः पाँचवाँ लोक है, उससे मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इसी लोक से स्वायम्भुव मनु आदि की प्रजाओं का जनन होता है, इसीलिए उसको जनलोक कहा गया है।।२२।। वे जो स्वायम्भुव आदि मनुगण जिनका कि विस्तार से वर्णन किया जा चुका है, वे सब कल्प की समाप्ति में समस्त लोकों के भस्म हो जाने पर तपोलोक में आश्रय प्राप्त करते हैं, क्योंकि यह तपोलोक नष्ट नहीं होता।।२३।।

भृगु, सनत्कुमार आदि जितने भी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी, तपस्वीगण हैं तथा जिन्होंने तपस्या से अपनी आत्मा को वश में कर लिया है, वे सब वहाँ तपोलोक में ही निवास करते हैं, क्योंकि वहाँ पर तपस्वी रहते हैं, इसीलिये उसे तपोलोक कहा जाता है।।२४।। सत्य यह एक ब्रह्म का शब्द है, जो सत्ता मात्र के अर्थ में स्मरण किया गया है। इसीलिये ब्रह्मलोक सत्यलोक के नाम से प्रसिद्ध है, वह परम प्रकाशमय लोक सभी लोकों में अन्तिम अर्थात् सातवाँ है।।२५।। गन्धर्व, अप्सरायें, यक्षगण, गुह्यक, राक्षस, सब भूत-पिशाच, नाग और सभी स्वर्गवासी देवगण मनुष्यों के साथ पृथ्वी तल के निवासी हैं।।२६।। मरुद्गण, वायुगण, रुद्रगण, कुछ देवगण, दोनों अश्विनीकुमार, ये यद्यपि किसी घर में रहने वाले नहीं हैं, तदपि इनका प्रमुख निवास स्थान भुवर्लोक ही है।।२६½।। स्वर्गलोक में निवास करने वाले आदित्यगण, ऋभुगण, विश्वेदेवगण, साध्यगण, पितरगण एवं अंगिरा वंश में उत्पन्न ऋषिगण भी भुवर्लोक में आश्रय प्राप्त करते हैं।।२६½-२८½।। ये सभी वैमानिक देवतागण जो तारों को घर बनाकर रहने वाले हैं, अर्थात्

महर्लोकश्चतुर्थस्तु तस्मिंस्ते कल्पवासिनः। इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसंभवाः॥३१॥
भूर्लोकप्रथमा लोका महरंताश्च ते स्मृताः। तान्सर्वान्सप्तसूर्यास्ते अर्चिभिर्निर्दहंति वै॥३२॥
मारीचिः कश्यपो दक्षस्तथा स्वायंभुवोंगिराः। भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुरित्येवमादयः॥३३॥
प्रजानां पतयः सर्वे वर्त्तंते तत्र तैः सह। निःसत्त्वा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्द्धरेतसः॥३४॥
ऋभुः सनत्कुमाराद्या वैराजास्ते तपोधनाः। मन्वंतराणां सर्वेषां सावर्णानां ततः स्मृताः॥३५॥
चतुर्दशानां सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः। योगं तपश्च सत्त्वं च समाधाय तदात्मनि॥३६॥
षष्ठे काले निवर्त्तंते तदा प्राहुर्विपर्ययात्। सत्यस्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगामिनाम्॥३७॥
ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः। पर्यासपरिमाणेन भूर्लोकः समभिस्मृतः॥३८॥
भूम्यंतरं यदादित्यादंतरिक्षं भुवः स्मृतम्। सूर्यध्रुवांतरं यच्च स्वर्गलोको दिवः स्मृतः॥३९॥

ध्रुवाज्जनांतरं यच्च महर्लोकः सुच्यते।
व्याख्याताः सप्त लोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः॥४०॥
भूर्लोकवासिनः सर्वे अन्नादास्तु रसात्मकाः।
भुवि स्वर्गे च ये सवेर सोमपा आज्यपाश्च ते॥४१॥

जो तारों के रूप में आकाश में दिखाई पड़ते हैं, ये भी भुवर्लोक में ही निवास करते हैं। इस प्रकार जिन लोकों की चर्चा यहाँ की गयी है, वे सब तन्मात्राओं से आरम्भ किये गये हैं, वे परस्पर शुद्ध हैं, एक-दूसरे से मिले हुए नहीं हैं। शुक्र से लेकर चाक्षुष मनु तक पृथ्वी लोकवासी जो व्यतीत हो चुके हैं, वे भी कल्पान्त में उस चौथे महर्लोक में जाकर निवास करते हैं। इस प्रकार इन ब्रह्मा के शब्दोच्चारण के आधार पर नाम रखे गये सभी लोकों का मैं वर्णन कर चुका हूँ।।२८½-३१।। अब आगे बताते हैं कि भूर्लोक प्रथम लोक है। उससे लेकर अन्तिम लोक महर्लोक पर्यन्त उन सबको वे सात सूर्य अपनी किरणों से जलते हैं, उस समय मरीचि, कश्यप, दक्ष, स्वायम्भुव, अंगिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि और प्रजाओं के सभी स्वामी एक साथ जनलोक में निवास करते हैं।।३२-३३½।। निःसत्त्व, निर्मम, ऊर्ध्वरिता संसार से विरक्त ऋषिगण तपोलोक में निवास करते हैं। सावर्णादि चौदह मनुओं के अधिकार काल की पुनरावृत्ति इसी तपोलोक से की जाती है। जब उस महान् लोक के विनाश का अवसर आता है, उस समय जनलोक आदि निम्न श्रेणी के लोकों में निवास करने वाले प्राणी अपने-अपने योग, सत्य और तप के बल से उस तपोलोक में आश्रय ग्रहण करते हैं।।३३½-३६।।

यह तपोलोक छठा लोक है, इसमें जब सब निवृत्त हो जाते हैं, तब सत्यलोक जाते हैं। सत्यलोक सातवाँ लोक है, वहाँ जाकर तो पुनः लौटकर जन्म ग्रहण नहीं किया जाता।।३७।। इस सत्य लोक का तो कभी नाश ही नहीं होता। इसे ही ब्रह्मलोक कहा जाता है। परिमाण के अनुसार भूर्लोक मध्यवर्ती माना जाता है।।३८।। पृथ्वीतल से लेकर सूर्य तक अन्तरिक्ष में भुवर्लोक स्थित माना जाता है। सूर्य से ध्रुव पर्यन्त स्वर्ग लोक स्थित है, इसे दिव लोक कहा गया है।।३९।। ध्रुव से लेकर जनलोक पर्यन्त महर्लोक है, इसी प्रकार अन्य-अन्य लोकों की स्थिति है, यहाँ तक सातों लोकों की व्याख्या कर दी गयी है। अब मैं उनकी सिद्धियाँ बताऊँगा।।४०।। भूलोक में रहने वाले सभी अन्न खाने वाले हैं, वे छः रसों का स्वाद लेने वाले हैं। भुवर्लोक में निवास करने वाले सब सोमरस का पान करने वाले

चतुर्थे येऽपि वर्त्तंते महर्लोकं समाश्रिताः। विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पंचलक्षणा॥४२॥
सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्वमीप्सितम्। एते देवा यजंते वै यज्ञैः सर्वैः परस्परम्॥४३॥
अतीता वर्त्तमानाश्च तथा ये चाप्यनागताः। प्रथमानंतरोद्दिष्टा अंतराः सांप्रतैः पुनः॥४४॥
निवर्त्तते हि संबंधोऽतीते देवगणे तपः। विनिवृत्ताधिकाराणां सिद्धिस्तेषां तु मानसी॥४५॥
तेषां तु मानसी ज्ञेया शुद्धा सिद्धिः परस्परात्।
उक्ता लोकास्तु चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा।
समासेन मया विप्रा भूयस्तं वर्णयामि वः॥४६॥

वायुरुवाच

मरीचिः कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चांगिरा भृगुः॥४७॥
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरित्येवमादयः। पूर्वं ते संप्रसूयंते ब्रह्मणो मानसा इह॥४८॥
ततः प्रजाः प्रतिष्ठाप्य जनमेवाश्रयंति ते। कल्पदाहेषु तु सदा तथा कालेषु तेषु वै॥४९॥
भूरादिषु महान्तेषु भृशं व्याप्ते यथाग्निना। शिखाः संवर्त्तकाग्नेर्याः प्राप्नुवंति सवासनाः॥५०॥
यामादयो गणाः सर्वे महर्लोकनिवासिनः। महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयंति ते॥५१॥
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थाश्च भवंति ते। तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्तिधरास्तता॥५२॥

हैं तथा स्वर्लोक के आदित्यादि देवगण आज्यपा अर्थात् घी का पान करने वाले हैं।।४१।। जो चतुर्थ लोक महर्लोक में निवास करने वाले हैं। उनकी मानसिक सिद्धियाँ पाँच होती हैं। मन में सोचने मात्र से उनको समस्त मनोवांछित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।४२-४२½।। सभी देवता लोग सभी प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान से परस्पर सन्तुष्टि लाभ करते हैं। वर्तमान देवगण अतीत काल के देवों के लिये भविष्यत्कालीन देवगण वर्तमान देवताओं के लिए यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। इस प्रकार बाद में उत्पन्न हुए देवगण अपने से पहले उत्पन्न देवगणों की सन्तुष्टि के लिए इन यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं।।४२½-४४।। देवगणों के व्यतीत हो जाने पर उनका सम्बन्ध निवृत्त (समाप्त) हो जाता है। सम्बन्ध समाप्त होने पर जब उनका अधिकार काल समाप्त हो जाता है, तब भी उनमें परम विशुद्ध मानसी सिद्धियों की परम्परा विद्यमान जाननी चाहिए। वायुदेव ने कहा कि हे ऋषियों! मैंने आप लोगों को जनलोक तथा उससे नीचे स्थित लोकों की चर्चा संक्षेप में सुना दी है, अब फिर उसी का सविस्तार वर्णन कर रहा हूँ।।४५-४६।।

वायु ने कहा कि—ऋषिगण! मरीचि, कश्यप, दक्ष, वशिष्ठ, अंगिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि ऋषिगण सबसे पहले ब्रह्मा के मानस पुत्रों के रूप में पैदा होते हैं।।४७-४८।। और उसके बाद अपनी-अपनी प्रजाओं का विस्तार करके पुनः जनलोक का आश्रय लेते हैं तथा सदैव उन-उन कल्पदाह के कालों में जबकि पृथ्वी लोक तथा महत्तत्त्वादि भूत तत्त्वों में अग्नि पूरी तरह व्याप्त हो जाती है तथा जब प्रलयाग्नि की जो शिखाएँ सर्वत्र सब कुछ को भस्म करने लग जाती हैं, तब यम आदि सभी गण जो महर्लोक में निवास करते हैं, वे सब महर्लोक के जलने पर जनलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं।।४९-५१।। उस समय वहाँ वे सब सूक्ष्म शरीरस्थ हो जाते हैं और फिर वहीं उसी जनलोक में स्थित हो जाते हैं। उस समय वहाँ वे सब समान शक्ति वाले और समान मूर्ति धारण करने वाले

जनलोके विवर्त्तते संवर्त्तः प्लवते जगत्। व्युष्टायां तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः॥५३॥
अहरादौ प्रसूयंते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह। स्वायंभुवादयः सर्वे मरीच्यंतास्तु साधकाः॥५४॥
देवास्ते वै पुनस्तेषां जायंते निधनेष्विह। यामादयः क्रमेणैव कनिष्ठाद्याः प्रजापतेः॥५५॥
पूर्वं पूर्वे प्रसूयंते पश्चिमे पश्चिमास्तथा। देवान्वये देवता हि सप्त संभूतयः स्मृताः॥५६॥
व्यतीताः कल्पजास्तेषां तिस्रः शिष्टास्तथापरे। आवर्त्तमाना देवास्ते क्रमेणैतेन सर्वशः॥५७॥
गत्वा जवजवीभावं दशकृत्वः पुनःपुनः। ततस्ते वै गणाः सर्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम्॥५८॥
भाविनोऽर्थस्य च बलात्पुण्यख्यातिबलेन च। निवृत्तवृत्तयः सर्वेऽत्रस्थाः सुमनस्तथा॥५९॥
वैराजमुपपद्यंते लोकानुत्सृज्य तं गताः। ततोऽनेनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः॥६०॥
कथनाच्चैव धर्मस्य तेषां ते जज्ञिरेऽन्वये। इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थानान्यापूरयंत्युत॥६१॥
देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्वशः। एवं देवगणाः सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै॥६२॥
वैराजेषूपपन्नास्ते दश तिष्ठंत्युपप्लवान्। पूर्णेपूर्णे ततः कल्पे स्थित्वा वैराजके पुनः॥६३॥
ब्रह्मलोके विवर्त्तंते पूर्वपूर्वक्रमेण तु। एतस्मिन्ब्रह्मलोके तु कल्पे वैराजके गते॥६४॥
वैराजः पुनरव्यक्ते कल्पस्थानमकल्पयत्। एवं पूर्वानुपूर्व्येण ब्रह्मलोकगतेन वै॥६५॥

हो जाते हैं और फिर तब तक उस जनलोक में निवास करते हैं, जब तक कि प्रलय संसार का विनाश करती है, अर्थात् महान् विनाशकाल तक वे वहीं जनलोक में रहते हैं।।५२-५२½।। अव्यक्त योनि ब्रह्माजी की महारात्रि (प्रलय) के बीत जाने पर जब पुनः उनका दिन आरम्भ होता है, तब वे स्वायंभुव आदि मनु, मरीचि आदि सब साधक-ऋषिगण अपने-अपने पूर्व में पैदा हुए पुरुषों की मृत्यु के बाद पूर्वक्रम से पुनः-पुनः जन्म लेते हैं।।५२½-५५½।। देववंश में देवताओं की जिन सात विभूतियों का स्मरण किया जाता है, उनमें से चार कल्पज देवल व्यतीत हो चुके हैं तथा दूसरे तीन शेष हैं।।५५½-५६½।। इस प्रकार वे देवता लोग क्रमशः अनेकों बार जन्म ग्रहण करते हुए शीघ्रातिशीघ्र पुनः-पुनः मरण और जन्म भाव को प्राप्त होकर दश बार मरण-जन्म के क्रम से जन्म-मरण से गुजरते हुए इस संसार के सभी पदार्थों एवं भावों में अनित्यता का दर्शन करते हैं।।५६½-५८।। उसके बाद भवितव्यतावश तथा अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से प्रशान्तचित्त हो जाते हैं और सभी कार्यों से निवृत्त होकर स्वस्थ मन से इस जनलोक को छोड़कर वैराजलोक को चले जाते हैं।।५९-५९½।। उसके बाद इसी समय से लेकर नित्य तपस्या में लगे रहकर वे लोग धर्म का कथन करने (धर्मोपदेश देने) के प्रभाव से उन परम धार्मिकों के वंश में जन्म ग्रहण करते हैं।।५९½-६०½।।

उसके बाद वे उत्पन्न होकर देव, ऋषि और मनुष्यों के जन्म ग्रहण कर उन-उन स्थानों की पूर्ति करते हैं। सभी देवगण इस प्रकार दश बार जन्म ग्रहण करने के बाद वैराज नामक लोकों में आश्रय प्राप्त कर दश कल्प तक निवास करते हैं।।६०½-६२½।। एक कल्प के पूर्ण होने पर वैराज में स्थित होकर वे देवगण पूर्व-पूर्व क्रम से ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं।।६२½-६३½।। इस ब्रह्मलोक में तो वे वैराज कल्पों के व्यतीत हो जाने पर निवास करते हैं। कुछ लोग वैराजलोक को कल्प पर्यन्त स्थायी मानते हैं। इसी पूर्व में कहे गये के अनुसार ब्रह्मलोक जाने के द्वारा अपने-अपने तप के प्रभाव से वैराज लोक में जा-जाकर वहाँ दस कल्प तक निवास करते हैं, अर्थात् ब्रह्मलोक जाने से पहले दश बार वैराज लोक का चक्कर काटते हैं। जब ब्रह्मलोक जाने के योग्य पुण्य कार्य पूर्ण हो जाते हैं, तब ब्रह्मलोक

वैराजेषूपपद्यंते दशकृत्वे विवर्त्यत। एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्त्रशः॥६६॥
निधनं ब्रह्मलोके तु गतानामृषिभिः सह। न शक्यमानुपूर्व्येण तेषां वक्तुं प्रविस्तरम्॥६७॥
अनादित्वाच्च कालस्य ह्यसंख्यानाच्च सर्वशः। एवमेव न संदेहो यथावत्कथितं मया॥६८॥
तदुपश्रुत्य वाक्यार्थमृषयः संशयान्विताः। सूतमाहुः पुराणज्ञं व्यासशिष्यं महामतिम्॥६९॥

ऋषय ऊचुः

वैराजास्ते यदाहारा यत्सत्त्वाश्च यदाश्रयाः। तिष्ठंति चैव यत्कालं तन्नो ब्रूहि यथातथम्॥७०॥

तदुक्तमृषिभिर्वाक्यं श्रुत्वा लोकार्थतत्त्ववित्।
सूतः पौराणिको वाक्यं विनयेनेदमब्रवीत्॥७१॥

ततः प्राप्य तु सर्वेशं शुद्धबुद्धिं तमाश्रयत्। आभूतसंप्लवास्तत्र दश तिष्ठंति तेऽज्वराः॥७२॥
सर्वे सूक्ष्म शरीरास्ते विद्वांसो घनमूर्तयः। स्थितलोकस्थितत्वाच्च तेषां भूतं न विद्यते॥७३॥
ऊचुः सनत्कुमाराद्याः सिद्धास्ते योगधर्मिणः। एवमेव महाभागाः प्रणवं संप्रविश्य ह॥७४॥
ब्रह्मलोके प्रवर्त्तामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति। एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मांडाऽध्यवसायिनः॥७५॥

को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वैराज नामक लोक में जो लोग जाते हैं, वे दश बार जन्म लेकर निवृत्त होते हैं। इसी प्रकार देवों के हजारों युग बीत चुके हैं। ऋषियों के मृत्यु प्राप्त करके वे देवगण वैराज में निवास करने के बाद ब्रह्मलोक चले जाते हैं।।६३½-६६½।।

सूतजी बोले—हे ऋषिवृन्द! उन देवताओं की सृष्टि और प्रलय को पूर्व से लेकर अन्त तक विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि काल अनादि है, वह आदि रहित है तथा संख्या की कोई इयत्ता नहीं। अर्थात् संख्या इतनी है, यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए अब तक जो मैंने आप लोगों को बताया है, उसमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिए। यह सब वैसा ही हुआ है, जैसा मैंने कहा है।।६६½-६८।। सूत की इन बातों को सुनकर ऋषियों को बहुत सन्देह हो गया, तब वे पुराण को जानने वाले महर्षि वेदव्यास के शिष्य महामति सूतजी से बोले।।६९।।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! हमें यह बतलाइये कि वैराज लोक में रहने वाले वे देवता क्या आहार करते हैं? क्या उनके पराक्रम हैं? किन वस्तुओं का उन्हें आश्रय प्राप्त है तथा कितने समय तक वे वहाँ स्थित रहते हैं? इन सब बातों को हम यथार्थतः सुनना चाहेंगे। कृपया हमें बताइए।।७०।।

ऋषियों द्वारा उस कथित वाक्य को सुनकर लौकिक अर्थ के तत्त्व को जानने वाले पुराण ज्ञाता सूत जी विनम्रतापूर्वक यह बोले।।७१।। ऋषिवृन्द! धर्म का आचरण करने के बाद जो परम शुद्ध और विकार रहित हो जाते हैं, वे लोग उस वैराज नामक लोक में दश कल्प तक निवास करते हैं।।७२।। वे सब विद्वान् सूक्ष्म शरीर से युक्त होते हैं तथा मेघों की आकृति में रहते हैं तथा उस लोक में अनन्त तक स्थित रहने से उनके शरीर में भूतों पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का सम्पर्क नहीं रहता।।७३।। इस कल्प के बाद वैराज लोक में निवास करने वाले योगधर्म परायण सिद्ध सनत्कुमारादि महर्षिगण आपस में कहते हैं कि इस प्रकार ही महाभाग्यशाली हम सब प्रणव ॐकार रूप ब्रह्म में प्रवेश करके ब्रह्मलोक में प्रवर्त हों, वही हमारा कल्याण होगा। ऐसा कहकर तब वे सब ब्रह्माण्ड में जाने का प्रयास करने वाले ऋषीगण अपनी आत्मा को ऊपर ब्रह्म में लगाकर योगधर्म में प्रवृत्त होते

याजयित्वा तदाऽत्मानो वर्त्तंते योगधर्मिणः। तत्रैव संप्रलीयंते शांता दीपार्चिषो यथा॥७६॥
ब्रह्मकायमवर्त्तंत पुनरावृत्तिदुर्लभम्। लोकं तं समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम्॥७७॥
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्य अमृतत्वाय ते गताः। वैराजेभ्यस्तथैवोर्द्धमंतरे षड्गुणे ततः॥७८॥
ब्रह्मलोकः समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहितः।
ते सर्वे प्रणवात्मानो बुद्धिशुद्धतया स्थिताः॥७९॥
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्य ह्यमृतत्वं भजंत्युत। द्वंद्वैस्ते नाभिभूयंते भावत्रयविवर्जिताः॥८०॥
आधिपत्यं विना तुल्या ब्रह्मणस्ते महौजसः। प्रभावविजयैश्वर्यस्थितिवैराग्यदर्शनः॥८१॥
ते ब्रह्मलौकिकाः सर्वे गतिं प्राप्यानिवर्त्तिनीम्। ब्रह्मणा सहदेवैश्च संप्राप्ते प्रतिसंचरे॥८२॥
तपसोंऽते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिणः। अव्यक्ते संप्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिनः॥८३॥
इत्येतदमृतं शुक्रं नित्यमक्षयमव्ययम्। देवर्षयो ब्रह्मसत्रं सनातनमुपासते॥८४॥
अपुनर्मारकादीनां तेषां चैवोर्द्धरेतसाम्। कर्माभ्यासकृतां श्रद्धां वेदांतेषूपलक्ष्यते॥८५॥
तत्र तेऽभ्यासिनो युक्ताः परां काष्ठामुपासते। हित्वा शरीरं पाप्मानममृतत्वाय ते गताः॥८६॥

हैं। जैसे ही वे योगधर्म में प्रवृत्त होते हैं, तब वे उस सम्यक् प्रकार से उसी स्थान पर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।।७४-७६।। उस समय ब्रह्म के शरीर में स्थित हो जाते हैं, तब उनकी पुनरावृत्ति समाप्त हो जाती है। अर्थात् जन्म-मरण से रहित हो जाते हैं और वे सब उस भावनामय लोक को सम्यक् प्रकार से प्राप्त कर ब्रह्म में लीन होकर ब्रह्म के अलौकिक आनन्द को प्राप्त कर वे अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं, अर्थात् अमर हो जाते हैं। वैराज लोक से वह लोक छः गुना अधिक ऊपर है। उसको ब्रह्मलोक के रूप में ख्याति प्राप्त है, जहाँ कि ब्रह्मा पुरोहित हैं।।७७-७८½।। वहाँ के सभी निवासी परम शुद्ध बुद्ध एवं तपोनिष्ठ हैं। प्रणव ॐ कार ही उनकी आत्मा होती है। ब्रह्मानन्द में स्थित होकर वे अमृत का उपभोग करते हैं।।७८½-७९½।।

उनके सुख और दुःख दोनों की दुविधा समाप्त हो जाती है, अर्थात् हमें सुख प्राप्त होगा अथवा दुःख यह सब द्वन्द्व भाव नहीं रहता तथा वे तीनों भावों से रहित हो जाते हैं। जब भाव रहते ही नहीं तब सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भावों के उदय होने का सवाल ही कहाँ है।।७९½-८०।। भले ही उनका किसी पर आधिपत्य नहीं रहता, वे महा ओजस्वी आधिपत्य के बिना भी सभी बातों में ब्रह्म के समान प्रभावशाली हो जाते हैं। भला उसको किसी के आधिपत्य की क्या आवश्यकता है, जो सबका अधिपति ब्रह्म ही बन चुका हो। वे प्रभाव, स्थिति, वैराग्य, ज्ञानादि में ब्रह्मा ही के समान होते हैं।।८१।। वे ब्रह्म में निवास करने वाले ऋषिगण कभी न बदलने वाली गति को प्राप्त कर ब्रह्मा और देवों के साथ प्रलय के प्राप्त होने पर तपस्या के अन्त में क्रियाशील ज्ञान की अवस्था वाले वे क्षणदर्शी मनीषी लोक अव्यक्त (ब्रह्म प्रकृति) में विलीन हो जाते हैं।।८२-८३।। यही नित्य शुद्ध, अक्षय, अव्यय और परमशुद्ध अमृतपद है। इसी जन्म-मरण रहित सनातन परम पद की प्राप्ति के लिये ऊर्ध्वरेता एवं ऋषिगण वेदान्तों में उपलक्षित मङ्गलमय कर्मों में नित्य लगे रहकर शुद्धि प्राप्त करते हैं और लगातार योगाभ्यास में मन लगाकर उसकी अन्तिम सीमा तक उपासना करते हैं और अन्त में इस पापमय शरीर को त्याग कर अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं।।८४-८६।।

वीतरागा जितक्रोधा निर्मोहाः सत्यवादिनः।
शांताः प्रणिहितात्मानो दयावंतो जितेंद्रियाः॥८७॥
निःसंगाः शुचयश्चैव ब्रह्मसायुज्यगाः स्मृताः।
अकामयुक्तैर्ये वीरास्तपोभिर्दग्धकिल्बिषाः॥८८॥
तेषामभ्रंशिनो लोका अप्रमेयसुखाः स्मृताः। एतद्ब्रह्मपदं दिव्यं परमे व्योम्नि भास्वरम्।
यत्र गत्वा न शोचंति ह्यमरा ब्रह्मणा सह॥८९॥

ऋषय ऊचुः

कस्मादेषु परार्द्धश्चकश्चैव पर उच्यते। एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम॥९०॥

सूत उवाच

श्रृणुध्वं मे परार्द्धस्य परिसंख्यां परस्य च॥९१॥
एकं दशशतं चैव सहस्त्रं चैव संख्यया। विज्ञेयमासहस्त्रं तु सहस्त्राणि दशायुतम्॥९२॥
एकं शतसहस्त्रं तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः। तथा शतसहस्त्राणां दशप्रयुतमुच्यते॥९३॥
तथा दशसहस्त्राणामयुतं कोटिरुच्यते। अर्बुदं दशकोट्यस्तु ह्यब्जं कोटिशतं विदुः॥९४॥
सहस्त्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः। दशकोटिसहस्त्राणि निखर्वमिति तं विदुः॥९५॥

इस ब्रह्मलोक की प्राप्ति इतनी सरल नहीं, यह अमृतत्त्व उन्हीं लोगों को प्राप्त होता है, जिनकी कि आसक्ति समाप्त हो गयी है, जिन्होंने क्रोध को जीत लिया है, जिनको किसी के प्रति मोह नहीं रह गया है, जो सत्यवादी हैं, जो आत्मा को वश में रखने वाले हैं, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है तथा जो दयावान् एवं संग विरहित हैं, ऐसे पवित्रात्मा जन ही उस ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करते सुने जाते हैं। जो वीरात्मा, कामना रहित, योगपरायण, तपस्या द्वारा पापों को नष्ट कर देने वाला है, वही उस अनश्वर लोक को प्राप्त करता है, उनके वे लोक कभी भी नष्ट नहीं होने वाले हैं तथा वहाँ ऐसे सुख हैं, जो अप्रमेय हैं। अर्थात् वे सुख यथार्थ अनुभव के भी विषय नहीं, उन सुखों की कोई सीमा नहीं, न ही उनकी कोई इयत्ता है। यह दिव्य पद परम व्योम में प्रकाशमान है, यह ऐसा पद है कि जहाँ देवता लोग ब्रह्मा के साथ रहकर अथवा धर्मात्मा मनुष्य अमर होकर ब्रह्मा के साथ रहकर किसी प्रकार का शोक नहीं करते हैं।।८७-८९।।

ऋषियों ने पूँछा कि परमादरणीय सूतजी! यह परार्द्ध क्या है? पर किसे कहते हैं? यह हम जानना चाहते हैं, वह हमें कृपा करके बतलाइये।।९०।।

सूतजी बोले कि अब आप लोग मुझसे परार्द्ध और पर की परि संख्या (गणना) सुनिये।।९१।। एक, दश, सौ और हजार, इन हजार तक की संख्याओं को तो आप जानते ही हैं। अब आगे दश हजार का एक अयुत होता है।।९२।। सौ हजार (एक लाख) का एक नियुत होता है, यह विद्वानों द्वारा कहा जाता है तथा सौ हजार (एक लाख) का दश प्रयुत कहा जाता है।।९३।। तथा दश हजार अयुत १०,०००×१०,००० = १०,००,००,०००का दस करोड़ होता है, दस करोड़ का एक अर्बुद होता है। सौ करोड़ १००,००००००० एक अरब का एक अब्ज होता है।।९४।। एक हजार करोड़ (१०००,००००००० दस अरब) का एक खर्ब और दश करोड़ हजार (१००००००००००० एक खर्ब) का एक निखर्ब होता है।।९५।। १००,०००००००००० सौ करोड़

शतं कोटि सहस्त्राणां शंकुरित्यभिधीयते। सहस्त्रं तु सहस्त्राणां कोटीनां पद्ममुच्यते॥९६॥
सहस्त्राणि सहस्त्राणां कोटीनां दशधा पुनः।
गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः॥९७॥
कोटीसहस्त्रनियुतमंत्यमित्यभिधीयते। कोटीसहस्त्रप्रयुतं मध्यमित्यभिसंज्ञितम्॥९८॥
कोटिकोटिसहस्त्रं तु परार्द्ध इति कीर्त्यते। परार्द्धं द्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः॥९९॥
शतमाहुः परिवृढं सहस्त्रं परिपद्मकम्। विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः॥१००॥
अर्बुदं न्यर्बुदं चैव खर्बुदं च ततः स्मृतम्। खर्वं चैव निखर्वं च शंकुः पद्मं तथैव च॥१०१॥
समुद्रमंत्यं मध्यं च परार्द्धं च परं ततः। एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ॥१०२॥
शतादीनि विजानीयात्संज्ञितानि महर्षिभिः।
कल्पसंख्याप्रवृत्तस्य परार्द्धो ब्रह्मणः स्मृतः॥१०३॥
तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यांते प्रतितिष्ठते।
पर एव परार्द्धश्च संख्यातः संख्यया मया॥१०४॥
यस्मादस्य परं वीर्यं परमायुः परं तपः। परा शक्तिः परो धर्मः परा विद्या परा धृतिः॥१०५॥
परं ब्रह्म परं ज्ञानं परमैश्वर्यमेव च। तस्मात्परतरं भूतं ब्रह्मणो यन्न विद्यते॥१०६॥

हजार (दश खरब) का एक शंकु होता है। हजारों हजार करोड़ का १०००,०००,००००००० एक नील का एक पद्म कहा जाता है।।९६।। हजारों के हजार करोड़ १०००,०००,०००००००० उसके बाद उसका दश गुना को संख्या जानने वाले विद्वान् समुद्र कहते हैं।।९७।। हजार करोड़ नियुत १०००,०००००००,००००० को अत्यन्त कहा जाता है और हजार करोड़ प्रयुत १०००,०००००००००००००० (दस पद्म) को मध्यम संख्या कहा जाता है।।९८।। तथा करोड़ करोड़ हजार १०००००००,०००००००,००० एक शंख की संख्या परार्द्ध कहलाती है। परार्द्ध की दूनी संख्या को मनीषी लोग परा संख्या कहते हैं।।९९।। सौ को परिवृट कहा जाता है। हजार को परिपद्मक कहा जाता है, उसके बाद अयुत, फिर नियुत, फिर प्रयुत अर्बुद फिर निर्बुद उसके बाद खर्बुद, फिर खर्ब, निखर्ब, शंकु, फिर पद्म, उसके बाद समुद्र तब अन्त्य, मध्य, फिर परार्द्ध और अन्त में पर, ये अठारह प्रकार की संख्याएँ हैं, जो गणना में प्रयुक्त होती हैं।।१००-१०२।।

ये संख्याएँ आपस में गुणित होने पर सौ सौ की संख्या में बदल जाती हैं। महर्षियों ने बताया है कि ब्रह्मा के एक कल्प समय की परिमाण संख्या सृष्टि प्रारम्भ होने के काल से लेकर एक परार्द्ध होती है। उसके बाद एक परार्द्ध काल ही सृष्टि रहित अवस्था अर्थात् प्रलय की स्थिति में व्यतीत होता है। उसके बाद फिर सृष्टि का आरम्भ होता है। इस प्रकार एक सृष्टि के आरम्भ काल से दूसरी सृष्टि के आरम्भ काल तक दो परार्द्ध का समय बीत जाता है, जिसे पर काल कहते हैं। पर तथा परार्द्धकाल की संख्या मेरे द्वारा बतायी जा चुकी है।।१०३-१०४।। उन प्रजापति भगवान् ब्रह्मा का पराक्रम परम है, उनकी आयु एवं तप भी पर है, उनकी शक्ति परा है, उनका धर्म पर है, उनकी विद्या परा है, उनका धैर्य भी पर। अतः वे ब्रह्मा पर हैं तथा उनका ज्ञान एवं ऐश्वर्य भी पर हैं, अर्थात् उनका पराक्रम, उनकी

परे स्थितो ह्येष परः सर्वार्थेवु ततः परम्। संख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्यार्द्धस्य परार्द्धता॥१०७॥
संख्येयं चाप्यसंख्येयं सततं चापि तांत्रिकम्।
संख्येयं संख्यया दृष्टमपरार्द्धाद्विभाष्यते॥१०८॥
राशौ दृष्टे न संख्याऽस्ति तदसंख्यास्तु लक्षणम्।
आनंत्यं सिकताद्येषु हृष्टं चान्यं त्वलक्षणम्॥१०९॥
ईश्वरैस्तत्प्रसंख्यानं शुद्धत्त्वाद्दिव्यदृष्टिभिः। एवं ज्ञानप्रतिष्ठत्वात्सर्वं ब्रह्मानुपश्यति॥११०॥
एतच्छुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः। बाष्पपर्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वराः॥१११॥
पप्रच्छुर्मातरिश्वानं सर्वे ते ब्रह्मवादिनः। ब्रह्मलोकस्तु भगवन्यावन्मात्रान्तरे प्रभो॥११२॥
योजनाग्रेण संख्यातः साधनं योजनस्य तु।
क्रोशस्य च परीमाणं श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥११३॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवत्। उवाच मधुरं वाक्यं यथादृष्टं यथाक्रमम्॥११४॥

आयु, ज्ञान एवं उनका ऐश्वर्य किसी सीमा में अवस्थित नहीं है, उनका सब कुछ सीमातीत है। संक्षेप में निष्कर्षतः यही कहना उचित होता कि उस ब्रह्म से परे अन्य कुछ भी नहीं है।।१०५-१०६।। वही एकमात्र सभी अर्थों में उनकी सीमा में पर रूप से स्थित है। अर्थात् वह सबसे आगे है। इसी कारण समस्त सांसारिक अर्थों में उन्हें ही पर पद से विशिष्ट समझना चाहिए। इसीलिए उनके इस महान् अधिकार काल (सृष्टि काल) को परार्द्ध कहा जाता है, क्योंकि वह उन पर स्वरूप ब्रह्मा का आधा काल है। उनका पर काल सृष्टि और प्रलय दोनों मिलाकर होगा।।१०७।। वे तीनों ही पुरुष प्रकृति और ब्रह्मा संख्याओं द्वारा असंख्य हैं, अर्थात् संख्याओं द्वारा उनकी गणना नहीं की जा सकती; परन्तु अनुमान किया जा सकता है, इसलिए अनुमान के आधार पर गणना करके इन्हें संख्येय भी कह दिया गया है। यह संख्या की गणना व्यावहारिक रूप से दिखायी गयी है; परन्तु यह सब अपरार्द्ध से विभाषित होती है, अर्थात् इस संख्या को असंख्य ही कहना चाहिए।।१०८।। जैसे कि किसी वस्तु का ढेर पड़ा हो, जैसे कि सरसों का गेहूँ की राशि (ढेर) है, उसकी गिनती नहीं की जाती है, उसे असंख्य कह दिया जाता है तथा यही उसका लक्षण है तथा जैसे बालू की राशि की गिनती सम्भव नहीं, वहाँ तो उसकी अनन्तता ही कही जायेगी तथा अनन्त या असंख्य कहा जाना ही उसका लक्षण है। इसलिए उस ब्रह्म को तथा उसके परार्द्ध का अनन्त या असंख्य ही कहा जायेगा। उनकी गणना करने में सारी संख्याएँ समाप्त हो जाती हैं, फिर भी अन्त नहीं प्राप्त होता, इसलिए उन्हें असंख्य और अनन्त कहना ही उनका लक्षण है।।१०९।। फिर भी शुद्धबुद्धि, दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगाभ्यास परायण लोग ही अपने ज्ञान की प्रतिष्ठा से तत्त्वनिर्णय में समर्थ होते हैं। इस सब को वे ब्रह्मा ज्ञानप्रतिष्ठता के कारण यथार्थतः देखते हैं।।११०।।

वायुदेवता की इस बात को सुनकर ब्रह्मवेत्ता नैमिषारण्य निवासी तपस्वीगण अत्यन्त हर्ष से उत्कण्ठित होकर आँसू बहाने लगे।।१११।। तब उन सभी ब्रह्मवादी तपस्वियों ने वायुदेव से पूँछा कि हे प्रभो! भगवान् वायुदेव! यह ब्रह्मलोक कितनी मात्रा की दूरी पर है।।११२।। तथा इनकी दूरी कितने योजनों पर है तथा उन योजनों की माप क्या है? इन सब बातों को जानने की हमारी इच्छा होती है, इसकी यथोचित जानकारी हमें कराइये। क्रोश का परिमाण भी हम तत्त्वतः जानना चाहते हैं।।११३।। उन ब्रह्मवादी तपस्वियों के उस वचन को सुनकर वायुदेव ने विनम्रतापूर्वक जो कुछ देखा था, तदनुसार क्रमशः मधुर वचनों को कहा।।११४।।

वायुरुवाच।

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मे विवक्षितम्।
अव्यक्ताव्यक्तभागो वै महान्स्थूलो विभाष्यते॥११५॥

दशैव महतो भागा भूतादिः स्थूल उच्यते। दशभागाधिकं चापि भूतादिपरिमाणकम्॥११६॥
परमाणुः सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा। यदभेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणुवत्॥११७॥
जालांतरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः। प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते॥११८॥
अष्टानां परमाणूनां समवायो यदा भवेत्। त्रसरेणुः समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यते॥११९॥

त्रसरेणवोऽथ येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः।
तेऽप्यष्टौ समवायस्था बालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः॥१२०॥
बालाग्राण्यष्टलिक्षा स्याद्यूकालिक्षाष्टकं भवेत्।
यूकाष्टकं यवं प्राहुरंगुलं तु यवाष्टकम्॥१२१॥

द्वादशांगुलपर्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते। रत्निश्चांगुलिपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशतिः॥१२२॥
चत्वारो विंशतिश्चैव हस्तः स्यादंगुलानि तु। किष्कुर्द्विरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदंगुलः॥१२३॥

वायु बोले कि हे ऋषिवृन्द! मैं आप लोगों को यह बताऊँगा। आप लोग जो मैं कहना चाहता हूँ, उसे सुनिये। अव्यक्त प्रकृति से पैदा होने वाला भाग महान् (महत्तत्त्व) स्थूल तत्त्व कहा जाता है।।११५।। तथा महत्तत्त्व बुद्धि के दशभाग अर्थात् श्रोत्र, त्वक्, आँख, जिह्वा और नासिका तथा हस्त, पाद, मुख, गुदा और उपस्थ, ये दश इन्द्रियाँ तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पञ्च महाभूत, ये सब स्थूल कहे जाते हैं तथा उन दश इन्द्रियों के भाग से अधिक भूतादि का परिमाण है।।११६।। परमाणु तो बहुत ही सूक्ष्म है, उसका होना आँख से ग्राह्य नहीं है, अर्थात् वह आँख से नहीं देखा जा सकता। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म कण, जो तोड़ा नहीं जा सके, वह परमाणु के समान समझना चाहिए।।११७।। परमाणु की व्याख्या करते हुए वायु देव कहते हैं कि किसी खिड़की के छेद में से होकर जो सूर्य की किरणें अन्दर आती हैं, उनमें जो उड़ते हुए धूलि के कण दिखाई देते हैं, वे ही प्रमाणों में प्रथम परमाणु कहे जाते हैं[१]।।११८।।

आठ परमाणुओं का जब योग किया जाता है, तब वह त्रसरेणु होता है। इसे पद्मरज भी कहते हैं।।११९।। इस प्रकार आठ त्रसरेणु के योग से एक रथरेणु बनता है, अर्थात् आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु होता है। वे आठ रथरेणु जब मिलते हैं, तब एक बालाग्र बुद्धिमान् लोगों द्वारा बताया जाता है।।१२०।। आठ बालाग्र की एक लिक्षा होती है तथा आठ लिक्षा की एक यूका होती है। आठ यूका का एक यव (जौ) होता है और आठ यव का एक अंगुल होता है।।१२१।। बारह अंगुल परिमाण का एक वितस्ति (विलांद) स्थान कहा जाता है। कानी अंगुलि से अंगूठा की नाप वितस्ति (विलांद) होती है। इसी प्रकार इक्कीस अंगुल की एक रत्नि होती है।।१२२।। चौबीस अंगुल अर्थात् दो

१. यह यहाँ इस वैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि जिस परमाणु का आज अनुसन्धान हो चुका है, उसका प्रथम विचार पुराणों में किया जा चुका था अर्थात् यह परमाणु चर्चा में आ चुका था, जिसे परमाणुवाद के प्रथम अनुसन्धाता महामना डाल्टन महोदय ने भी अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही स्वीकार किया है, देखें—Daltan's theory of Atoms. Page-1

षण्णवत्यंगुलं चैव धनुराहुर्मनीषिणः। एतद्गव्यूतिसंख्यायामादनं धनुषः स्मृतम्॥१२४॥
धनुर्दंडयुगं नाली तुल्यान्यस्तैस्तथांगुलैः। धनुषां त्रिशतं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः॥१२५॥
धनुःसहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते। अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तु विधीयते॥१२६॥
एतेन धनुषा चैव योजनं तु समाप्यते। एतत्सहस्रं विज्ञेयं शक्रकोशांतरं तथा॥१२७॥
योजनानां च संख्यातं संख्याज्ञानविशारदैः। एतेन योजनाग्रेण शृणुध्वं ब्रह्मणोऽतरे॥१२८॥
महीतलात्सहस्राणां शतदूर्ध्वं दिवाकरः। दिवाकरात्सहस्रे तु शते चौर्द्ध्वं निशाकरः॥१२९॥
पूर्णं शतसहस्रं तु योजनानां निशाकरात्। नक्षत्रमंडलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशत॥१३०॥
शतं सहस्रं संख्यातमेतद्विगुणितं पुनः। ग्रहांतरमर्थकैकमूर्द्धं नक्षत्रमंडलात्॥१३१॥
ताराग्रहाणां सर्वेषामधस्ताच्चरते बुधः। तस्योर्द्धंचरते शुक्रस्तस्मादूर्द्धं च लोहितः॥१३२॥
ततो बृहस्पतिस्छोर्द्धं तस्मादूर्द्धं शनैश्चरः। उद्ध्वं शतसहस्रं तु योजनानां शनैश्चरात्॥१३३॥
सप्तर्षिमंडलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते। ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूद्र्ध्वं विभाष्यते॥१३४॥
योऽसौ तारामथे दिव्येविमाने ह्रस्वरूपके। उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि॥१३५॥

त्रैलोक्यस्यैष उत्सेधो व्याख्यातो योजनैर्मया।
मन्वंतरेषु देवानामिज्या यत्रैव लौकिकी॥१३६॥

वितस्ति का एक हाथ होता है। दो रत्नि का अथवा यों कहिये कि बयालीस अंगुल का एक किष्कु होता है।।१२३।। छियानवे अंगुल का एक धनु मनीषी लोग कहते हैं। यह धनुष गव्यूति की संख्या अर्थात् दो कोश नापने में एक साधन माना जाता है।।१२४।। संख्या के तत्त्वों के जानकार लोग धनुष, दण्ड, युग और नाली को अंगुलों द्वारा एक समान बतलाते हैं। अर्थात् ये चारों नाप छियानवे अंगुल के कहे जाते हैं। संख्या को जानने वाले लोग तीन सौ धनुष परिमाण को एक नल्व कहते हैं।।१२५।। दो हजार धनुष की एक गव्यूति होती है तथा आठ हजार धनुष का एक योजन होता है।आठ हजार धनुष को यदि गजों में बदलें तो ९६ अंगुल अर्थात् २४ अंगुल का एक हाथ तथा ४ हाथ का एक धनु हुआ। ४ हाथ = २ गज का एक धनु तथा ८०००० धनु में १६ हजारा गज हुए। इस प्रकार १६ हजार गज का एक योजन हुआ, तब लगभग १५ कि. मी. का एक योजन हुआ।१२६।। इस धनुष के द्वारा योजन तो समाप्त हो जाता है। इस प्रकार योजन हजार कोश का अन्त समझना चाहिए।।१२७।। संख्या ज्ञान विशारद लोगों ने इस योजन की संख्या को ही अपनाया है, अब इस योजन के परिमाण द्वारा ब्रह्मलोक की दूरी सुनिये।।१२८।। पृथ्वी तल से सौ हजार योजन दूरी पर सूर्य की स्थिति है अर्थात् एक लाख योजन दूरी पर सूर्य स्थित हैं, सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा हैं।।१२९।। पूरे एक लाख योजन चन्द्रमा से दूर समस्त नक्षत्रमण्डल चारों ओर ऊपर प्रकाशित है।।१३०।। एक लाख संख्या का दुगुना नक्षत्र में एक-एक ग्रह की दूरी है।।१३१।। सभी ताराग्रहों में बुध निम्न प्रदेश में विचरण करते हैं। उनके ऊपर शुक्र का लोक है। उससे ऊपर मंगल ग्रह है।।१३२।। उसके ऊपर बृहस्पति ग्रह है और बृहस्पति से भी ऊपर शनैश्चर है। ये सब एक लाख योजन दूरी पर हैं। शनैश्चर ग्रह से एक लाख योजन ऊपर समस्त सप्तर्षि मण्डल प्रकाशित हो रहा है। सप्तर्षियों से भी एक लाख योजन ऊपर तारामय दिव्य लघु विमान पर उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव स्वर्ग के प्रमुख चिह्न रूप होकर विराजमान हैं।।१३३-१३५।। मैंने

वर्णाश्रमेभ्य इष्टा तु लोकेऽस्मिन्संप्रवर्त्तते। सर्वासां देवयोनीनां स्थितिहेतुः स वै स्मृतः॥१३७॥

त्रैलोक्यमेतव्द्याख्यातमत ऊद्ध्वं निबोधत।
ध्रुवादूद्ध्वं महर्लोको यस्मिंस्ते कल्पवासिनः॥१३८॥
एकायोजनकोटीशा इत्येवं निश्चयो गतः।
द्विकोट्यां तु महर्लोकाज्जनलोको व्यवस्थितः॥१३९॥
यत्र ते ब्रह्मणः पुत्रा दक्षाद्याः साधकाः स्मृताः॥१४०॥

वै राजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिताः। षड्गुणं तु तपोलोकात्सत्यलोकांतरं स्मृतम्॥१४१॥
अपुनर्मारको नाम ब्रह्मलोकः स उच्यते। यस्मिन्न च्यवते भूयो ब्रह्माणं य उपासते॥१४२॥

एककोटिर्योजनानां पंचाशन्नियुतानि तु।
ऊद्ध्र्वभागस्ततोऽडस्य ब्रह्मलोकात्परः स्मृतः॥१४३॥

चतुर्दशैव कोट्यस्तु नियुतानि च पंच षट्। स चोर्द्ध्वं संप्रचारोऽस्य गत्यंतश्चापरः स्मृतः॥१४४॥

ध्रुवाग्रमेतव्द्याख्यातं योजनाग्राद्यथाश्रुतम्।
अधोगतीनां वक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाम्॥१४५॥

गच्छंति घोरकर्माणः प्राणिनो यत्र कर्मभिः। नरको रौरवो घोरः शूकरस्ताल एव च॥१४६॥

योजनों द्वारा त्रैलोक्य की ऊँचाई बता दी है। सभी मन्वन्तरों में देवताओं की यज्ञादि प्रक्रिया एवं लौकिक अनुष्ठान इस लोक में होते रहते हैं।।१३६।। इस लोक में वर्ण और आश्रमों के लिए यज्ञादि कार्य होते रहते हैं। सब देवयोनियों की स्थिति का कारण स्मरण किया गया है।।१३७।। यह त्रैलोक्य का वर्णन कर दिया गया, अब इससे ऊपर सुनिये। ध्रुवलोक से ऊपर महर्लोक है, जिसमें प्रलयकाल में अत्यन्त शुभ कर्म करने वाले महात्माओं का निवास रहता है।।१३८।। इसकी ध्रुव से दूरी एक करोड़ योजन है, ऐसा निश्चय किया गया है और फिर महर्लोक से दो करोड़ योजन की दूरी पर जनःलोक स्थित है।।१३९।। जहाँ कि वे ब्रह्मा के पुत्र दक्ष आदि जो साधक स्मरण किये गये हैं। जनलोक से चार करोड़ योजन दूरी पर तपोलोक स्थित है। इस लोक में कल्प पर्यन्त (प्रलय काल पर्यन्त) देवता लोग भूत और तापों (दुःखत्रयों) से रहित होकर निवास करते हैं, वे ही वैराज कहे जाते हैं। तपोलोक से छः गुनी अर्थात् छः करोड़ योजन दूरी पर सत्यलोक स्थित स्मरण किया गया है। वही पुनरावृत्ति रहित (जन्म-मरण से रहित) सिद्धों का ब्रह्मलोक कहा जाता है।।१४०-१४१½।।

उस ब्रह्मलोक को प्राप्त कर उन देव, ऋषियों, तपस्वियों का फिर पतन नहीं होता, वे ब्रह्मा की उपासना में लगे रहते हैं। इस ब्रह्मलोक (ब्रह्माण्ड के ऊपर के भाग का परिमाण) एक करोड़ पचास नियुत (एक करोड़ पचास लाख) योजन और नीचे के भाग का परिमाण चार करोड़ पैंसठ नियुत (चार करोड़ पैंसठ लाख) योजन कहा जाता है। इस ब्रह्मलोक के ऊपर किसी ग्रह की गति नहीं है, नीचे सभी ग्रहादि गतिशील हैं।।१४१½-१४४।। वायुदेव ऋषियों से कहते हैं कि मैंने ध्रुवलोक के ऊपर स्थित उपर्युक्त लोकों की स्थिति योजनों द्वारा जैसी सुनी थी, मैंने आपलोगों को बता दी है। अब इसके बाद अधोगति को प्राप्त होने वाले जीवों के निवासस्थलों का वर्णन करूँगा, जहाँ पर घोर पाप करने वाले पापी अपने कर्मों के अनुसार पहुँचते हैं।१४५-१४५½।। वे नरक हैं—रौरव, घोर, शूकर, ताल,

तप्तकुम्भो महाज्वालः शबलोऽथ विमोहनः।
कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशंसनः॥१४७॥
अधःशिराः पूयवहो रुधिरांधुस्तथैवच। विष्टाकीर्णश्च नरको मूत्राकीर्णस्तथैव च॥१४८॥
तथा वैतरणी कृष्णमसिपत्रवनं तथा। अग्निज्वालो महाघोरः संदंशोऽथाश्वभोजनः॥१४९॥
तमश्च कृष्णसूत्रश्च लोहश्चाप्यभिजस्तथा। अप्रतिष्ठोऽथ वीचिश्च नरका ह्येवमादयः॥१५०॥
तामसा नरकाः सर्वे यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणः पतंतीह पृथक्पृथक्॥१५१॥
भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्याः प्रकीर्त्तिताः। रौरवे कूटसाक्षे तु मिथ्या यश्चाभिशंसति॥१५२॥
क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यसक्तः पतते नरः। रोधो गोध्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च॥१५३॥
शूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुरापः स्वर्णतस्करः। ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यं च मज्जति॥१५४॥
ब्रह्महत्या च यः कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पगः।
तप्तकुम्भेष्वसौ गामी तथा राजभटश्च यः॥१५५॥
संताप्यते वाऽश्ववणिक्तथाच धनरक्षिता। साध्वीविक्रयकर्त्ता च यस्तु भक्तं परित्यजेत्॥१५६॥
महाज्वाले दुहितरं स्नुषां गच्छति यस्तु वै। वेदं विक्रीणते ये च वेदं वै दूषयंति ये॥१५७॥
गुरूँश्चैवावमन्यन्ते वाक्शरैस्ताडयंति च। अगम्यगामी च नरो नरकं शबलं व्रजेत्॥१५८॥

तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोहन, कृमी, कृमीभक्ष, लालाभक्ष, विशंसन, अधःशिरा, पूयवह, रुधिरान्धु, विष्टाकीर्ण, मूत्राकीर्ण, वैतरणी, कृष्ण, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदंश, अश्वभोजन, तमः, कृष्णसूत्र, लौह, अभिज, अप्रतिष्ठ, वीचि, नरक आदि हैं।।१४५-१५०।। ये सब नरक तामस नरक हैं और यमराज के देश में स्थित हैं। जिन नरकों में दुष्कर्म करने वाले जैसे जिस प्रकार के उनके दुष्कर्म होते, तदनुसार उस-उस अलग-अलग नरक में गिरते हैं।।१५१।।

भूमि के नीचे सभी रौरव आदि नरक कहे गये हैं। कूट साक्ष में जो झूठी गवाही देता है, क्रूर पक्ष का जो समर्थन करता है, वह मनुष्य रौरव नरक में गिरता है। गोहत्या करने वाला, भ्रूण हत्या करने वाला (गर्भ गिराने वाला) और नगर अथवा गाँव में आग लगाने वाला रोध नामक नरक में गिरता है।।१५२-१५३।। ब्रह्म हत्या करने वाला, शराबी और स्वर्ण की तस्करी करने वाला शूकर नामक नरक में गिरता है। क्षत्रिय को मारने वाला, जो वैश्य को मारता है और ब्राह्मण की हत्या करता है तथा गुरुपत्नी के साथ सम्भोग करता है, वह ताल नामक नरक में गिरता है। जो अपनी बहिन के साथ पापाचार करता है तथा राजा का वध करता है, वह तप्तकुम्भ नामक नरक में गिरता है।।१५४-१५५।। दूसरे के घोड़े को चुराकर बेचने वाला और अपनी साध्वी पत्नी को बेचने वाला तथा अपने अनुचर भक्त को जो छोड़ दे, अपनी पुत्री अथवा पुत्रवधू के साथ सम्भोग करने वाला पापी नर महाज्वाल नामक नरक में गिरता है।।१५६-१५६।। जो पापी वेद का विक्रय करता है अथवा जो वेद को दूषित करते हैं, जो अपने गुरु का अपमान करता है, उन्हें गाली देता है या मारता-पीटता है अथवा जिनके साथ सम्भोग नहीं करना चाहिए, ऐसी स्त्रियों माता, बहिन, पुत्री, पुत्रवधू, अनुजवधू आदि के साथ जो सम्भोग करता है, वह नीच पापी शबल नामक

विमोहे पततं घोरे मर्यादां यो भिनत्ति वै। दुरिष्टं कुरुते यस्तु कीटलोहं प्रपद्यते॥१५९॥
देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरूणां वाप्यपूजकः। रत्नं दूषयते यस्तु कृमिभक्षे प्रपद्यते॥१६०॥
पर्यश्नाति य एकोऽन्नं ब्राह्मणान्सुहृतो विना। लालाभक्षे स तिष्ठेत्तु दुर्गंधे नरके गतः॥१६१॥
कांडकर्त्ता कुलालश्च निष्कहर्ता चिकित्सकः।
आरामेऽप्यग्निदाता यः पतते स विशंसने॥१६२॥
असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजकः। नक्षत्रैर्जीवते यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम्॥१६३॥
क्षीरं सुरां च लवणं लाक्षां गंधं रसं तिलान् एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत्॥१६४॥
यः कुक्कुटान्निबध्नाति मार्जारान्सूकरांस्तथा।
पक्षिणश्च मृगाञ्छागान्सोऽप्येनं नरकं व्रजेत्॥१६५॥
अजाविको माहिषिकस्तथा चक्रध्वजी च यः।
रंगोपजीवको विप्रः साकनिर्ग्रामयाजकः॥१६६॥
अगारदाही गरदः कुंडाशी सोम विक्रयी। सुरापो मासभक्षश्च तथा च पशुघातकः॥१६७॥
विशस्ता महिषादीनां मृगहन्ता तथैव च। पर्वकारश्च सूची च यश्चस्यान्मित्रघातकः॥१६८॥
रुधिरांधौ पतंत्येते ह्येवमाहुर्मनीषिणः। उपविष्टं भोक्तुमथ पंक्त्यां वै वंचयंति ये॥१६९॥

घोर नरक में गिरता है।।१५६$\frac{1}{2}$-१५८।। जो दूसरे के धन का अपहरण करने वाला है, पापी चोर किसी की चहारदीवारी को लाँघ कर अथवा सेंध लगाकर चोरी करता है, वह विमोह नामक नरक में गिरता है, जो किसी का अनिष्ट साधन है, वह पापी कीट लौह नामक नरक में निवास करता है।।१५९।। जो देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुओं के साथ विशेष द्वेष (वैर) करता है तथा जो रत्न को दूषित करता है, वह कृमिभक्ष नामक घोर नरक में गिरता है।।१६०।। जो मनुष्य ब्राह्मण अथवा मित्र को खिलाये बिना एक अन्न का दाना भी खाता है, वह लालाभक्ष नामक दुर्गन्धयुक्त नरक में गिरता है।।१६१।। अपने व्यवसाय को बुरा कहने वाला नमकहराम, कुलाल, स्वर्णमुद्रा लेने वाला चिकित्सक अर्थात् अधिक पैसे लेकर इलाज करने वाला चिकित्सक, किसी के बाग अथवा उपवन में आग लगाने वाला, ये सब विशंसन नामक नरक में गिरते हैं।।१६२।। असत् कर्मों द्वारा धन इकट्ठा करने वाला अथवा नीच लोगों से धन लेने वाला, जो यज्ञ कराने योग्य नहीं हो, उससे यज्ञ कराने वाले तथा नक्षत्रों से अपनी जीविका चलाने नाला अर्थात् हस्तरेखा अथवा ग्रह-नक्षत्र देखकर भविष्य बताने वाला ज्योतिषी ये सब मनुष्य अधोमुख नामक नरक में गिरते हैं।।१६३।। दूध, शराब, नमक, लाक्षा (महावर) गन्ध, रस और तिल आदि बेचने वाला घोर पूयवह नामक नरक में गिरता है। यहाँ यह जानना चाहिए कि इन सबमें मिलावट करने वालों को ही पूयवह नरक में जाना होगा।।१६४।। जो मुर्गों, बिलावों, सूअरों, पक्षियों, हिरनों, बकरे-बकरियों को मारता है, वह भी इस पूयवह नामक नरक में गिरता है।।१६५।।

जो ब्राह्मण होकर भी भेड़ों-भैंसों का पालन करता है, चक्र एवं ध्वज ग्रहण करता है, रंगरेज का काम करता है, गाँवों में इधर-उधर यज्ञ करता फिरता है, किसी के घर में आग लगाता है, किसी को विष देता है, वर्णसंकर लोगों के घर खाना खाता है, सोमरस विक्रय करता है तथा सुरा पान करता है, मांस खाता है तथा पशुओं को मारता है।

पतन्ति नरके घोरे विड्भुजे नात्र संशयः। मृषावादी नरो यश्च तथा प्राक्रोशकोऽशुभः॥१७०॥
पतते नरके घोरे मूत्राकीर्णे स पाप कृत्। मधुग्राहाभिहंतारो यांति वैतरणीं नराः॥१७१॥
उन्मत्ताश्छित्तभगाश्च शौचाचारविवर्जिताः।
क्रोधना दुःखदा ये च कुहकाः कृष्णगामिनः॥१७२॥
असिपत्रे वनच्छेदकृतो ह्यौरभ्रिकाश्च ये। कर्त्तनेषु विकृत्यन्ते मृगव्याधैः सुदारुणैः॥१७३॥
आश्रम प्रत्यवसिता ह्यग्निज्वाले पतंति वै। भक्ष्यंते श्यामशबलैरयस्तुडश्च वायसैः॥१७४॥
इष्टापूर्तव्रतालोपात्संदंशे नरके पतेत्। स्कंदंते ये दिवास्वप्ने व्रतिनो ब्रह्मचारिणः॥१७५॥
पुत्रैरध्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये। तेन सर्वं नरकं यांति नियतं तु श्वभोजनम्॥१७६॥
वर्णाश्रमविरुद्धा ये क्रोधहर्षसमन्विताः। कर्माणि ये तु कुर्वंति सर्वे निरयवासिनः॥१७७॥
उपरिष्टात्स्थितो घोर उष्णात्मा रौरवो महान्।
सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपः स्मृतः॥१७८॥
एवमादिक्रमेणैव वर्ण्यमानान्निबोधत। भूमेरधस्तात्सप्तैव नरकाः प्रकीर्त्तिताः॥१७९॥
अधर्मसूतयस्ते स्युरंधतामिस्त्रकादयः। रौरवः प्रथमस्तेषां महारौरव एव च॥१८०॥

भैंसों की बलि चढ़ाता है तथा मृगों को मारता है, गाँठें बनाता है, सिलाई करता है तथा मित्रों की हत्या करता है, वह रुधिरान्ध नामक नरक में गिरता है। ऐसा मनीषी लोग कहते हैं।।१६५-१६८½।। जो एक पंक्ति में बैठाये हुए व्यक्तियों को भोजन कराने में भेद करता है, वह पापी विड्भुज नामक नरक में गिरते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।।१६८½-१६९½।। जो मनुष्य मिथ्यावादी है तथा जो सदैव दूसरों को कोसता रहता है, वह पापी घोर मूत्राकीर्ण नामक नरक में गिरता है।।१६९½-१७०½।। जो पापी मधु ग्रहण करने वाले को मारता है अथवा जो अपना भला करने वाले को मारते हैं, वे मनुष्य वैतरणी नामक नरक में वास करते हैं। जो मनुष्य उन्मत्त है, जिनका चित्त भग्न है तथा जो शौचाचार से रहित है, जो अकारण क्रोध करता है, दूसरों को दुःख देने वाला है, जो जादू-टोना करके दूसरों को अपने वश में रखकर उनके साथ अत्याचार करते हैं, वे पापी असिपत्रवन नामक घोर नरक में क्रूर स्वभाव वाले हिंसक जन्तुओं द्वारा काट-काट कर इधर-उधर खींचे जाते हैं।।१६९½-१७३।।

जो आश्रमधर्म का पालन नहीं करते तथा उसकी मर्यादा को भूल जाते हैं, वे पापी अग्निज्वाल नामक घोर नरक में जाते हैं। वहीं लोहे के समान चोंच वाले तथा श्यामवर्ण एवं चितकबरे पक्षी उनका शरीर नोंच-नोंच कर खाते हैं।।१७४।। यज्ञ को पूरा न कर व्रत का लोप करने से मनुष्य संदंश नामक नरक में गिरता है। जो यति, संन्यासी या ब्रह्मचारी दिन के स्वप्न में समागम करने से स्खलित हो जाता है अथवा जो पुत्रों द्वारा पढ़ाये जाते, पुत्रों द्वारा अनुशासित किये जाते हैं, वे सब निश्चित ही श्वभोजन नामक नरक में गिरते हैं।।१७६।। जो व्यक्ति वर्ण और आश्रम धर्मों के विरुद्ध क्रोध और हर्ष से युक्त कर्म किया करते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं।।१७७।। अब वायुदेव द्वारा कथित उपदेश को बताते हुए सूतजी नरकों की स्थिति बताते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त रौरव नामक नरक बहुत विस्तृत और घोर है। वह ऊपर से शीतल और नीचे की ओर अत्यन्त ही उष्ण है।।१७८।। इस प्रकार आदि वर्णन किये जाते हुए नरकों को सुनिये। भूमि के नीचे सात नरक बताये गये हैं।।१७९।। उन अधर्म से पैदा हुए नरकों के नाम

अस्याधः पुनरप्यन्यः शीतस्तप इति स्मृतः।
तृतीयः कालसूत्रः स्यान्महाहिर्विविधः स्मृतः॥१८१॥
अप्रतिष्ठश्चतुर्थः स्यादवीचिः पंचमः स्मृतः। लोहः षष्ठः स्मृतस्तेषामविधेयस्तु सप्तमः॥१८२॥
गोरत्वाद्रौरवः प्रोक्तः सोष्णको दहनः स्मृतः।
सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपोऽधमः॥१८३॥
सर्पो निकृंतनः प्रोक्तो कालसूत्रोऽतिदारुणः।
अप्रतिष्ठे स्थितिर्नास्ति भ्रमस्तस्मिन्सदा स्मृतः॥१८४॥
अवीचिर्दारुणः प्रोक्तो यंत्रसंपीडनाच्च सः।
तस्मात्सुदारुणो लोहः कर्माणां श्रयणाच्च सः॥१८५॥
तथाभूतशरीत्वादविधेयस्तु स स्मृतः। पीडाबंधवधासंगादप्रतीकारलक्षणः॥१८६॥
ऊद्ध्वांधः संगतास्ते तु निरालोकाश्च ते स्मृताः।
दुःखोत्कर्षस्तु सर्वेषु ह्यधर्मस्य निमित्ततः॥१८७॥
ऊद्ध्वलोकैः समावेतौ निरालोकौ च तावुभौ। कूटागारप्रमाणैश्च शरीरैस्तत्र नारकाः॥१८८॥

अन्धतामिस्र आदि हैं। उनमें रौरव नामक नरक सबसे पहला है, जो महान् कष्टपूर्ण है।।१८०।। इस नरक के नीचे एक दूसरा शीत और तप नामक नरक कहा जाता है। जहाँ शीतल और उष्ण दोनों ही कष्टपूर्ण हैं। तीसरा कालसूत्र नामक नरक है, जो अनेकों प्रकार के महासर्पों से युक्त स्मरण किया गया है।।१८१।। अप्रतिष्ठ नामक चौथा नरक है तथा पाँचवाँ अवीचि नामक नरक है। उनमें लोहपृष्ठ नामक छठा नरक है और उनमें सातवाँ नरक अविधेय नरक है।।१८२।। घोर होने के कारण अर्थात् सबसे अधिक कष्टपूर्ण होने के कारण उस नरक को घोर कहा गया है तथा उष्णक नामक नरक जलाने वाला कहा गया है। वहाँ बहुत अधिक गर्मी पड़ती है। शीत नामक अत्यन्त शीतलता युक्त है। वहाँ दारुण शीत से मनुष्य को भारी कष्ट होता है। उसके नीचे आतप वाला नरक है, जो अत्युष्ण है तथा अधम नरक है।।१८३।। कालसूत्र नरक अत्यन्त कठोर कष्ट वाला नरक है, वह सर्पों के काटने वाला नरक कहा गया है, अर्थात् वहाँ पर सर्प ही सर्प हैं, जो मनुष्यों को भारी कष्ट देते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक में कोई स्थिति नहीं है। उस नरक में मनुष्य ठहर नहीं सकता, क्योंकि उसमें मनुष्य सदा घूमता रहता है, अतः वह भँवर के समान है।।१८४।। अवीचि नामक नरक तो बहुत ही दारुण है, क्योंकि उसमें मनुष्य को यन्त्र द्वारा पीड़ित किया जाता है। उससे भी अधिक दारुण लौहपृष्ठ नामक नरक है, उसमें मनुष्यों के कर्मों का फल मिलता है।।१८५।।

सातवें अविधेय नामक नरक में भूतशरीर वाला अर्थात् जिसका शरीर नहीं है, ऐसे व्यक्ति को भी पीड़ा, बन्धन, वध और असंग आदि इतने कठोर दण्ड दिये जाते हैं, जिनका कि कोई उपाय नहीं है।।१८६।। ये लोक ऊपर और नीचे स्थित हैं और सर्वथा प्रकाश से रहित हैं, उन सब में घोर अन्धकार व्याप्त है। उन सभी नरकों में मनुष्यों को अधर्म करने के कारण दुःखों का उत्कर्ष है अर्थात् अधर्म करने वाले मनुष्यों को इतना कष्ट दिया जाता है कि उसकी कोई सीमा नहीं है।।१८७।। विशेष रूप से ऊपर के दो लोक अन्य लोकों के समान होते हुए भी बहुत ही दारुण अन्धकार से आवृत होते हैं। जैसे किसी घर में किसी वस्तु के ढेर भर दिये जाते हैं, वस्तुएँ कबाड़े के रूप

उपभोगसमर्थैस्तु सद्यो जायंति कर्मभिः। दुःखप्रकर्षश्चोग्रस्तु तेषु सर्वेषु वै स्मृतः॥१८९॥
यातनाश्चाप्यसंख्येया नारकाणां तथा स्मृताः।
तत्रानुभूयते दुःखं क्षीणे कर्मणि वै पुनः॥१९०॥
तिर्यग्योनौ प्रसूयते कर्मशेषेण तेंऽततः। देवांश्च तारकाश्चैव ह्यूर्द्ध्वं चाधश्च संस्थिताः॥१९१॥
धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो [1]जायंति मूर्त्तयः। उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मतः॥१९२॥
पश्यंति नारकान्देवा ह्यधोवक्रा ह्यधोगतान्।
नारकांश्च तथा देवान्सर्वान्पश्यंत्यधोमुखान्॥१९३॥
अनयोस्तुल्यता यस्माद्धारणाश्च स्वभावतः।
तस्मादूद्र्ध्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते॥१९४॥
एषा स्वाभाविक संज्ञा लोकालोके प्रवर्त्तते। अथाब्रुवन्पुनर्वायुं ब्राह्मणाः सत्रिणस्तदा॥१९५॥

ऋषय ऊचुः

सर्वेषामेव भूतानां लोकालोकनिवासिनाम्। संसारे संसरंतीह यावंतः प्राणिनश्च ते॥१९६॥
संख्यया परिसंख्याय तान्नः प्रब्रूहि कृत्स्नशः।
ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वा मरुतो वाक्यमब्रवीत्॥१९७॥

में भर दी जाती हैं, उसी तरह से नरकों में लोगों को ठेल दिया जाता है।।१८८।। इन नरकों में अपने-अपने कर्मों के द्वारा शीघ्र ही पहुँचते हैं और कर्मों के भोग भोगते हैं तथा उन नरकों में दुःखों की पराकाष्ठा होती है, कठोर से कठोर दुःख दिये जाते हैं।।१८९।। उन नरकों में व्यक्तियों को असंख्य यातनाएँ दी जाती हैं। वहाँ उन नरकों में मनुष्य अपने दुष्कर्मों के फल का अनुभव करते हैं और कर्मों के क्षीण हो जाने पर कर्मों के शेष रह जाने पर अन्ततः पुनः तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होते हैं।।१९०-१९०½।। ऊपर रहने वाले देवता और नीचे रहने वाले नारकीय मानव सभी अपने किये गये धर्म और अधर्म के कारण शीघ्र ही शरीर धारण करते हैं। इस शरीर धारण के लिए वे स्वयं जिम्मेवार हैं, उन्होंने जो कर्म किये हैं, उसके अनुसार फल भोगने के लिए ही वे शरीर धारण करते हैं।।१९०½-१९२।। देवता लोग अधोभाग में नीचे को मुख करके लटकते हुए प्राणियों को देखते हैं, इसी प्रकार वे नरकवासी नारकीय भी सभी देवताों को नीचे को मुख कर लटकते हुए देखते हैं।।१९३।। उन दोनों लोकों में अग्र भाग निम्न भाग का कोई भेद नहीं है। उनकी धारणा स्थिति स्वभावतः समान है। इसलिए उन लोक और अलोक में ऊर्ध्व भाव और अधोभाव नहीं है।।१९४।। इस प्रकार लोकालोक की यह स्वाभाविक संज्ञा प्रवृत्त होती है। इसके बाद वायु की इन बातों को सुनकर यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों ने फिर पूँछा।।१९५।।

ऋषियों ने कहा कि हे वायुदेव! लोक और अलोक में निवास करने वाले जितने प्राणी इस संसार में संसरण करते हैं, उनकी संख्या और परिसंख्या क्या है? यह सब हमें कृपया बतायें। ऋषियों के उस वचन को सुनकर वायुदेव ये वाक्य बोले।।१९६-१९७।।

१. परस्मैपदमार्षम्। यहाँ आत्मने पद होना चाहये था; परन्तु छन्द भंग न होने के लिये परस्मै पद किया गया है।

वायुरुवाच।

न शक्यं दिव्यया दृष्ट्या ज्ञातुं ज्ञानेन वा पुनः।
चक्षुषा वै प्रसंख्यातुमतो ह्यंते न च द्विजाः॥१९८॥
अनाध्यानादमेयत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते। ब्रह्मणा संज्ञितं यत्तु संख्यया तन्निबोधत॥१९९॥
यः सहस्त्रतमो भागः स्थावराणां भवेदिह। पार्थिवाः कृमयस्तावत्संसेकाद्येषु संभवः॥२००॥
संसेकजानां भागेन सहस्त्रेणैव संमिताः। औदका जंतवः सर्वे निश्चयात्तन्निधार्यतम्॥२०१॥
सहस्त्रेणैव भागेन सत्त्वानां सलिलौकसाम्।
विहंगमास्तु विज्ञेया लौकिकास्ते च सर्वशः॥२०२॥
यः सहस्त्रतमो भागस्तेषां वै पक्षिणां भवेत्।
पसवस्तत्समा ज्ञेया लौकिकास्तु चतुष्पदाः॥२०३॥
चतुष्पदानां सर्वेषां सहस्त्रेणैव संमिताः। द्विपदास्तत्सहस्त्रेण संमिता धार्मिकाः पुनः॥२०४॥
सहस्त्रेणैव भागेन धार्मिकेभ्यो दिवं गताः।
यः सहस्त्रतमो भागो धार्मिकाणां भवेद्दिवि॥२०५॥
संमितास्तेन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि। स्वर्गो पपादकैस्तुल्या यातनास्थानवासिनः॥२०६॥
पतिता धर्मविद्वेषाहुरात्मानो म्रियंति ये। रौरवे तमसि ह्येते शीतोष्णं प्राप्नुवंति त॥२०७॥

वायु ने कहा कि हे ऋषियों! उन सबकी संख्या दिव्य ज्ञान दृष्टि से नहीं जानी जा सकती। उनकी संख्या अनाध्याय अर्थात् ध्यान नहीं की जा सकती तथा अगण्य है। आँख से गिनती करके भी विद्वान् लोग अन्त तक नहीं जा सकते। अतः ध्यान करने से भी न जानने योग्य और यथार्थ अनुभव न करने योग्य यह प्रश्न है, जिसका उत्तर समान नहीं है। ब्रह्मा ने इस विषय में संख्या द्वारा जो जाना है, उसे सुनिये।।१९८-१९९।।

इस संसार में स्थावरों मिट्टी, पत्थर आदि की जो संख्या है, उसके हजारवें भाग पृथ्वी पर पैदा होने वाले कीड़े-मकोड़े, मच्छर-मक्खी आदि हैं। जो संसेक (जड़ छिड़काव वर्षा आदि) से पैदा होते हैं।।२००।। उन वर्षा आदि के जल छिड़काव से पैदा होने वाले जीवों के हजारवें भाग के जल में रहने वाले मत्स्य मकरादि अनेकों प्रकार के जीव हैं। इस बात को निश्चित रूप से सही मानना चाहिए।।२०१।। फिर जलजन्तुओं के हजारवें भाग पक्षियों को समझना चाहिए, वे लोक में सब ओर व्याप्त हैं।।२०२।। उन पक्षियों के हजारवें भाग पशुओं को जानना चाहिए, जो कि चार पैर वाले हैं तथा लोक में सभी जगह पाये जाते हैं।।२०३।। चार पैर वाले पशुओं के हजारवें भाग दो पैर वाले मनुष्य हैं तथा उन मनुष्यों में भी हजारवें भाग धार्मिक मनुष्य हैं।।२०४।। उन धार्मिक मनुष्यों के हजारवें भाग के मनुष्य ही स्वर्ग को जाने वाले हैं, जो स्वर्ग में धार्मिकों का हजारवाँ भाग है।।२०५।। तथा उन स्वर्गगामी पुरुषों के हजारवें भाग के लोग ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, अर्थात् स्वर्ग में जाने वाले एक हजार में से केवल एक व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करता है। वे स्वर्ग में जा चुके हैं, वहाँ भी कुछ असत् कार्य करते हैं, तब पुनः निम्न लोकों में आते; परन्तु यदि स्वर्ग में भी धार्मिक कार्य करते हैं, तब उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है, वह मोक्ष भी एक हजार स्वर्गवासियों में से एक को ही मिल पाता है।।२०६।। जो पापात्मा मनुष्य धर्म से विशेष द्वेष रखने के कारण मर जाते हैं, वे

वेदनाः कटुकाः स्तब्धा यातनास्थानमागताः। उष्णस्तु रौरवो ज्ञेयस्तेजोघोररसात्मकः॥२०८॥
ततोऽधनामकश्चापि शीतात्मा सततं तपः।
एवं सुदुर्लभाः संतः स्वर्गे वा धार्मिका नराः॥२०९॥
एषा संज्ञीकृता संख्या चेश्वरेण स्वयंभुवा।
गणना दिनिवृत्तैषा संख्या ब्राह्मी त्वमानुषी॥२१०॥

ऋषय ऊचुः

महाञ्जनस्तपः सत्यो भूतो भव्यो भवस्तथा।
उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामंतरेण च॥२११॥
लोकांतरं च यादृक् च तन्नो ब्रूहि यथा तथा। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम्।
स वायुर्दृष्टतत्त्वार्थ इदं तत्वमुवाच ह॥२१२॥

वायुरुवाच।

व्यक्तं तर्केण पश्यंति योगात्प्रत्यक्षदर्शिनः॥२१३॥
प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा क्षयमात्मनः। ऋभुः सनत्कुमाराद्याः संबुद्धाः शुद्धबुद्धयः॥२१४॥
व्यपेतकोशा विरजाः संतो ब्रह्मैव सत्तमाः।
अक्षयाः प्रीतिसंयुक्ता ब्राह्मे तिष्ठंति योगिनः॥२१५॥

घोर अन्धकारपूर्ण रौरव नरक में गिरते हैं और वहाँ वे जमा देने वाली ठण्डक (शीत) और जला देने वाली गर्मी को प्राप्त करते हैं।।२०७।। उन यातनाओं के स्थानों में पहुँचकर वे असहनीय वेदना की कटुता को चुपचाप स्तब्ध होकर सहन करते हैं। रौरव नरक बहुत ही उष्ण तेजोमय और घोर रसात्मक समझना चाहिए।।२०८।। उसके बाद अन्धतामिस्र नामक नरक उससे भी अधिक शीतता युक्त है। इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहना होगा कि बहुत कम ही ऐसे धार्मिक लोग होते हैं, जो स्वर्ग में जा पाते हैं।।२०९।। इस प्रकार यह संख्या ईश्वर स्वायम्भुव ब्रह्मा ने निश्चित की है, यह संख्या मनुष्य द्वारा गणना आदि द्वारा नहीं बतायी जा सकती। अतः यह ब्राह्मी संख्या है, मानुषी नहीं है।।२१०।।

ऋषियों ने कहा कि हे भगवान् वायुदेव! आपने मह, जन, तप, सत्य, भूत (भू) भाव्य (भुव) इन सातों लोकों की स्थिति एक के बाद एक बतलायी है। उन सब लोकों में एक के बाद दूसरे में क्या अन्तर है? यह हमको आप बतलाइए।।२११-२११½।। उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों के वचनों को सुनकर तत्त्वार्थद्रष्टा वायुदेव यह तत्त्व की बात बोले—

वायुदेव ने कहा— ऋषियों! प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले योगी लोग योग से और तर्क द्वारा व्यक्त उस व्यक्त को देखते हैं। वे सब अपनी इन्द्रियों को वश में करके ध्यान द्वारा, तपस्या द्वारा अपने विनाश को भी देखते हैं।।२११½-२१२½।। ऋभु, सनत्कुमार आदि प्रत्येक वस्तु का ज्ञान रखने वाले, शुद्ध बुद्धि वाले, शोक विहीन, रजोगुण रहित श्रेष्ठ सन्त, जो कि ब्रह्मा ही हैं तथा जो विनाश रहित प्रीतिसंयुक्त योगी ब्रह्म में ही स्थित हैं, वे तथा बालखिल्यादि महान् ऐश्वर्यशाली महर्षिगण जो यह कहते हैं कि मैंने यहीं वहाँ उन ब्रह्म का सान्निध्य करते हुए, उसे

ऋषीणां बालखिल्यानां तैर्यथाकृतमीश्वरैः। यथाऽत्रैव मया दृष्टं सांनिध्यं तत्र कुर्वता॥२१६॥
अग्राह्यमकृतार्थानामालयं चेश्वरस्य यत। ईश्वरः परमाणुत्वाद्भावग्राह्यो मनीषिणाम्॥२१७॥
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः। द्रष्टृत्वमात्मसंबंधमधिष्ठातृत्वमेव च॥२१८॥
अव्ययानि दशैतानि तस्मिंस्तिष्ठंति शंकरे। विभुत्वात्खलु योगाढ्यो ब्रह्मणोऽनुग्रहे रतः॥२१९॥
स लोकविग्रहो भूत्वा साहाय्यमुपतिष्ठते। अक्षरं ध्रुवमव्यग्रमष्टमं त्वौपसर्गिकम्॥२२०॥
तस्येश्वरस्य चिन्मात्रं स्थानं मायामयं परम्। मायया कृतमाचष्टे मायी देवो महेश्वरः॥२२१॥
देवानामुपसंहारस्तत्प्रमाणं हि कीर्त्यते। विस्तरेणानुपूर्व्या च ब्रुवतो मे निबोधत॥२२२॥
त्रयोदशैव कोट्यस्तु नियुतानि दशेषवः। भूलौकाद्ब्रह्मलोको वै योजनैः संप्रकीर्त्यते॥२२३॥
एका योजनकोटी तु पंचाशन्नियुतानि च। ऊर्द्ध्वं भगवतोंऽडं तु ब्रह्मलोकात्परं स्मृतम्॥२२४॥
एषोर्द्ध्वगः प्रचारस्तु गत्यंतश्च ततः स्मृतः। नित्या ह्यपरिसंज्ञाताः परस्परगुणाश्रयात्॥२२५॥
सूक्ष्माः प्रसवधर्मिण्यस्ततः प्रकृतयः स्मृताः।
येभ्योऽधिकर्त्ता संजज्ञे क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः॥२२६॥

मैंने देखा है। अतः वे कहते हैं कि वह ईश्वर का घर सत्पुरुषों को कृतार्थ न करने वालों के लिये ग्रहण करने योग्य नहीं है, वह ईश्वर परमाणु के समान अति सूक्ष्म होने से केवल मनीषी पुरुषों की भावनाओं द्वारा ग्रहण किया जा सकता है।।२१२½-२१७।। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धैर्य, देखने वाला गुण, आत्मा में अधिष्ठित होने वाला गुण तथा कभी नाश अथवा ह्रास न होने वाला गुण उस शंकर में स्थित है। विभुत्वात् अर्थात् विभु होने के कारण वह शंकर सर्वसमर्थ है, अतः उनकी सर्वसमर्थता के कारण उन ब्रह्म की कृपा में योगी लोग सदैव रत रहते हैं। वह प्रभु परम ब्रह्म लौकिक शरीर धारण कर सामान्य पुरुषों की सहायता के लिए उपस्थित होता है।।२१८½-२१९½।। उस शंकर का स्थान चिन्मात्र है, अर्थात् उसमें जीव (आत्मा) ही रह कते हैं, उनका स्थान मायामय है और सबसे परे है, वह स्थान कभी घटने-बढ़ने वाला तथा नष्ट होने वाला नहीं है तथा अक्षुब्ध निश्चल एवं समस्त विपत्तियों का सामना करने योग्य है। उसके घर में पहुँचकर मनुष्य को कोई विपत्ति नहीं हो सकती। स्वयं माया पैदा करने वाले महेश्वर माया से आवृत्त होकर स्थित रहते हैं, उसी स्थान पर देवताओं का उपसंहार होता है, यही उनके घर का प्रभाव है। वायुदेव ऋषियों से बोले कि अब वर्णन करते हुए मुझसे उनके घर का प्रमाण पूर्व से लेकर विस्तारपूर्वक सुनिये।।२१९½-२२२।।

इस भूलोक से ब्रह्मलोक का अन्तर तेरह करोड़ पन्द्रह लाख योजन कहा जाता है। उस ब्रह्मलोक से भी ऊपर जहाँ तक ब्रह्माण्ड का अंश है, वह एक करोड़ पचास लाख योजन सुना जाता है। इसके ऊपर किसी की गति नहीं है।।२२३-२२४½।। उस महेश्वर की प्रकृति है कि वह नित्य (सदा रहने वाला अर्थात् अपरिसंज्ञात है, अर्थात् उसे सब ओर से अच्छी तरह कोई जान नहीं सकता है कि वह कितना लम्बा, कितना चौड़ा, कितना मोटा है, क्योंकि वह परस्पर गुणों पर आश्रित है तथा प्रसवधर्मी है, अर्थात् उससे सब कुछ पैदा हुआ है, ये सब उसकी प्रकृतियाँ कहीं गयी हैं। जिन प्रकृतियों से ब्रह्म नामधारी संसार को बनाने वाले क्षेत्रज्ञ (आत्मा) का प्रादुर्भाव होता है। इस क्षेत्रज्ञ को ही ब्रह्म नाम दिया गया है, जिसे आत्मा कहा जाता है।।२२४½-२२६।।

तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम्। अनुत्पाद्यं परं धाम परमाणु परेशयम्॥२२७॥
अक्षयश्चाप्यनूह्यश्च त्वमूर्त्तिर्मूर्त्तिमानसौ। प्रादुर्भावस्तिरोभावः स्थितिश्चैवाप्यनुग्रहः॥२२८॥
विधिरन्यैरनौपम्यः परमाणुमहेश्वरः। सतेजा एष तमसो यः पुरस्तात्प्रकाशकः॥२२९॥
यदंडमासीत्सौवर्णं प्रथमं त्वौपसर्गिकम्। बृहत्तु सर्वतो वृत्तमीश्वरात्तद्व्यजायते॥२३०॥
ईश्वराद्बीजनिर्भेदः क्षेत्रज्ञो बीजमिष्यते। योनिं प्रकृतिमाचष्टे सा च नारायणात्मिका॥२३१॥
विभुर्लोकस्य सृष्ट्यर्थं लोकसंस्थानमेव च। सन्निसर्गः सतत्त्वाच्च लोकधातुर्महात्मनः॥२३२॥

पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य ह्यंडादर्वाक् च ब्रह्मणः।
तयोर्मध्ये पुरं दिव्यं मनोमयमनायमयम्॥२३३॥

तद्विग्रहवतः स्थानमीश्वरस्यामितौजसः। शिवं नाम पुरं तत्र शरणं जन्मभीरुणाम्॥२३४॥
सहस्राणां शतं पूर्वं योजनानां द्विजोत्तमाः। अभ्यंतरं तु विस्तीर्णं महीमंडलसंस्थितम्॥२३५॥
मध्याह्नार्कप्रकाशेन परतेजोऽभिमर्दिना। शातकौंबेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा॥२३६॥
द्वारैश्चतुर्भिः सौवर्णैर्मुक्तादामविभूषितैः। तपनीयनिभैः शुभ्रैर्गाढं सुकृतवेष्टनम्॥२३७॥
तच्चाकाशे पुरे रम्यं दिव्यं घंटादिनादितम्। रम्ये पुरवरश्रेष्ठे तस्मिन्वैहायभूमिषु॥२३८॥

उन्हीं में प्रकृतिमय, सूक्ष्म, अधिष्ठानात्मक, अनश्वर, अनुत्पाद्य, परमाणुस्वरूप, अक्षय, अतर्क्य, परेशय, अमूर्तिस्वरूप, मूर्तिमान परमधाम परमेश्वर विराजमान रहते हैं।।२२७-२२७½।।

वह प्रादुर्भाव, तिरोभाव, स्थिति और अनुग्रह स्वरूप परमाणु परमेश्वर विधि अन्य किसी से तुलना करने योग्य नहीं है, अर्थात् वह परमेश्वर सृष्टि की रचना करता है, प्रलय करता है और पालन करता है तथा प्रलय के बाद अनुग्रह कर पुनः सृष्टि करता है, अतः वह प्रादुर्भाव, तिरोभाव, स्थिति और अनुग्रह चारों स्वरूप वाला है।।२२७½-२२८½।। वह अपने तेजबल से सामने स्थित तमोराशि को प्रकाशित करने वाला है। जो वह स्वर्णमय अण्ड था, वही तो सर्वप्रथम सृष्टि को उत्पन्न करने वाला सब ओर से वृत्ताकार और विशाल है, जो उसी ईश्वर से उत्पन्न होता है।।२२८½-२३०।। उस परमेश्वर से अभेद्य बीज पैदा हुआ है, जो बीज क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, योनि को प्रकृति कहा जाता है, जो नारायणात्मिका है।।२३१।। सभी लोकों को बनाने वाला वह सर्वसमर्थ परमात्मा लोक की सृष्टि और उसकी स्थिति के लिए प्रकृति के सहयोग से ब्रह्मलोक और ब्रह्मा के अण्ड का निर्माण करता है। उन दोनों के मध्य में एक दिव्य पुर है, जो मनोमय नाम से विख्यात है, जो सभी व्याधियों से रहित है। वह परम तेजस्वी ईश्वर का शिव नामक पुर है, जो पुनः जन्म लेने के भीषण कष्टों से डरे हुए मनुष्यों का शरण-स्थल है।।२३२-२३४।। हे द्विजश्रेष्ठों! वह शिव नामक पुर सौ हजार योजन विस्तार वाला है। अन्दर में वह पृथ्वी मण्डल की भाँति विस्तृत है।।२३५।। इस महापुरी के चारों ओर एक अन्य चहारदीवारी है, जो मध्यकालीन सूर्य की भाँति परम तेजस्वी है तथा जो दूसरे पदार्थों के तेज को मलिन कर देने वाली स्वर्ण निर्मित है।।२३६।। उस महापुरी में मोतियों की माला से विभूषित परम शुभ्र और शोभासम्पन्न, स्वर्णनिर्मित सजे हुए चार द्वार हैं। उस पुरी के चारों ओर एक परम पुष्ट रक्षा दीवाल भी खड़ी है। आकाश में वह परम सुशोभित पुरी घण्टाओं के मनोहर नादों से कूजित रहती है। अब उस

नानारत्नविचित्रेषु पाताकाबहुलेषु च सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु॥२३९॥
राजतेषु गृहांतेषु शातकौंभमयेषु च। संध्याभ्रसन्निकाशेषु कैलासप्रतिमेषु च॥२४०॥
हृष्टैः शब्दादिभिर्भोगैर्ये भविष्यानुसारिणः। प्रासादवरपृष्ठेषु तेषु मोदंति सुव्रताः॥२४१॥
ब्रह्मघोषैरविरताः कथाश्च विविधाः शुभाः। गीतवादित्रघोषाश्च संस्त्रवाश्च समंततः॥२४२॥
संहताश्चैवमतुला जनाश्रयकृतस्तथा। एवमादीनि वर्तंते तेषां प्रासादमूर्द्धनि॥२४३॥
सहस्त्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः। अनौपम्यैर्वरैः रत्नैः सर्वतः संविभूषितः॥२४४॥
स्फाटिकैश्चंद्रसंकाशैर्वैडूर्यमणि सप्रभैः। बाल[1]सूर्यमयैश्चापि सौवर्णैश्चाग्निसप्रभैः॥२४५॥
चुक्रुशुर्मुनयः श्रुत्वा नैमिषेयास्तपस्विनः। आपन्नसंशयाश्चेमं वाक्यमूचुः समीरणम्॥२४६॥

ऋषय ऊचुः

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुसारिणः। अनुग्राह्यतमाः सम्यक्प्रमोदंते पुरोत्तमे॥२४७॥

ऋषीणां वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमुदैरयत्।

वायुरुवाच।

श्रूयतां देवदेवस्य भक्तिर्यैरनुकल्पिता॥२४८॥

पुर में रहने वालों का वर्णन किया जायेगा।।२३७-२३७½।। अन्तरिक्ष में स्थित उस परम रमणीक शिवपुरी में अनेक सुन्दर-सुन्दर महल बने हुए हैं, जिनमें अनेकों प्रकार के रंग-बिरंगे रत्न जड़े हुए हैं। असंख्य पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही हैं। सभी मनोरथों को ये पूर्ण करने वाले हैं। सुन्दर वन और उपवन से सुशोभित हैं।।२३७½-२३९।।

उनमें से कितने विशाल महल चाँदी के हैं और कितने स्वच्छ सोने के हैं। उनमें से अनेकों महलों की शोभा संध्याकालीन मेघों के समान लाल वर्ण की है और कितने ही कैलाश पर्वत के समान श्वेत वर्ण के हैं। वे महल ऐसे हैं कि उनमें भगवान् शंकर के सद्व्रत परायण सेवकगण संगीत आदि भोग के उपयुक्त सामग्री से आनंद का अनुभव करते हैं।।२४०-२४१।। उन भवनों में चारों ओर ब्रह्म की चर्चा का सुन्दर स्वर गूँजता रहता है तथा अनेकों प्रकार की शुद्ध कथाएँ होती रहती हैं। गीत-संगीत से युक्त स्तोत्र सभी ओर चलते रहते हैं।।२४२।। इस प्रकार अनेकों प्रकार के स्वरों से एक विचित्र मनोहारी जैसी वाहकी हो जाती है। वहाँ के सभी महलों के ऊपर मांगलिक कथाओं, स्तोत्रों, गायन-वादनादि मनोरंजक साधन एवं कार्यक्रम चलता रहता है। इस प्रकार सुन्दर महलों में सर्वश्रेष्ठ महल है। जहाँ कि हजार पैरों वाले पुरुष से सुशोभित एवं स्वर्णमय है। वह सभी ओर से अनुपम रत्नों से विभूषित है।।२४३-२४४।। वे रत्न चन्द्रमा के समान संगमरमर की चमक वाले हैं तथा उदय होते हुए सूर्य के समान मनोहर तथा अग्नि एवं स्वर्ण के समान सुन्दर हैं।।२४५।। वायुदेव के इस वर्णन को सुनकर नैमिषारण्य निवासी तपस्वी ऋषिगण संशय को प्राप्त होकर वायु से इस प्रकार बोले।।२४६।।

ऋषियों ने कहा कि हे वायुदेव! यह बताइये कि वहाँ पर कौंन महात्मागण भगवान् शंकर के सेवक हैं, जो वहाँ सभी सुखों का अनुभव करते हैं।।२४७।। ऋषियों के इस वचन को सुनकर वायुदेव ने यह वाक्य कहा—कि

१. बालसूर्य्यो मणिविशेष। बालसूर्यमय का अर्थ है बालसूर्य्यमणियुक्त अर्थात् बालसूर्य्य नामक एक विशेष मणि से युक्त उन भगवान् शंकर को कहा गया है।

ह्रीमंतस्फूर्जिता दांताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपाः।
कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनांतरात्मना॥२४९॥
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम्। तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम्॥२५०॥
भवस्य रूपसादृश्यं गताश्चैव ह्यनुत्तमम्। वैश्वानरमुखाः सर्वे विश्वरूपाः कपर्दिनः॥२५१॥
नीलकंठाः शितग्रीवास्तीक्ष्णदंष्टास्त्रिलोचनाः।
अर्द्धचंद्रकृतोष्णीषा जटामुकुटधारिणः॥२२५॥
सर्वे दशभुजा वीराः पद्मांतरसुगंधिनः। तरुणादित्यसंकाशाः सर्वे ते पीतवाससः॥२५३॥
पिनाकपाणयः सर्वे श्वेत गोवृषवाहनाः। श्रियान्विताः कुंडलिनो मुक्ताहारविभूषिताः॥२५४॥
तेजसाभ्यधिकैर्दैहैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः। विभज्य बहुधात्मानं जरामृत्युविवर्जिताः॥२५५॥
क्रीडंते विविधैर्भावैर्भोगान्प्राप्य सुदुर्लभान्।
स्वच्छंदगतयः सिद्धाः सिद्धैश्चान्यैर्विबोधिताः॥२५६॥
एकादशानां रुद्राणां कोट्यो नैका महात्मनाम्। एभिः सह महात्मा वै देवदेवो महेश्वरः॥२५७॥
भक्तानुकंपी भगवान्मोदते पार्वतीप्रियः। नाहं तेषां तु रुद्राणां भवस्य च महात्मनः॥२५८॥

भगवान् शिव की शरण में वे ही लोग रहते हैं, जो कि देवाधिदेव भगवान् शंकर की भक्ति करते हैं।।२४८।। जो बुरे कार्य से लजाते हैं, जिनमें स्फूर्ति होती है, जो इन्द्रियों का दमन करते हैं, जो शौर्य युक्त हैं, जो लोभी, लालची नहीं हैं तथा जो कर्म से, मन से और वाणी से विशुद्ध अन्तरात्मा वाले हैं, वे ही लोग भव की शरण में जाते हैं।।२४९।। तथा जिन्होंने अनन्य मन से भगवान् शिव की सेवा की है, उन्होंने ही भगवान् रुद्र के अव्यय और शाश्वत् सालोक्य पद को प्राप्त किया है। अर्थात् भगवान् रुद्र की अनन्य मन से सेवा करने वाले मनुष्य उनके कभी नष्ट न होने वाले, सदा रहने वाले लोक में स्थान प्राप्त करते हैं।।२५०।। तथा वे ही भगवान् शिव के अत्यन्त उत्तम रूप की समानता प्राप्त करते हैं, अर्थात् भगवान् शिव के भक्त साक्षात् शिव ही बन जाते हैं। वे सभी कपर्दी शिव के स्वरूप वाले, अग्नि के समान मुखवाले होते हैं।।२५१।।

नीलकण्ठ, श्वेत कण्ठ वाले, तीक्ष्ण दन्त वाले, तीन नेत्र वाले, अर्धचन्द्र को शिर में धारण करने वाले, जटाओं के मुकुट से विभूषित होते हैं।।२५२।। दश भुजाओं वाले वीर, लाल कमल की सुगन्ध वाले, तरुण सूर्य के समान वे सब पीले वस्त्र पहनने वाले होते हैं।।२५३।। वे सब भगवान् शिव के भक्त, शिव की तरह पिनाक नामक धनुष को हाथ में धारण करने वाले होते हैं। श्वेत गो, वृषभ के वाहन वाले होते हैं। वे कानों में कुण्डल धारण करने वाले शोभायुक्त एवं मोतियों के हारों से विभूषित होते हैं।।२५४।। वे सब तेज से प्रकाशित शरीरों से सर्वज्ञ और सर्वत्र समान देखने वाले होते हैं। वे सब अपनी आत्मा से अनेकों प्रकारों में बाँट कर वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित होते हैं।।२५५।। वे सब अनेकों प्रकार के भावों से अत्यन्त दुर्लभ भोगों को प्राप्त करके स्वतन्त्र गति से चलने वाले सिद्ध पुरुष होते हैं, वे अन्य सिद्ध गणों से प्रबुद्ध रहते हैं।।२५६।। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली एकादश रुद्रगणों की संख्या शिवपुर में अनेकों करोड़ हैं, इनके साथ वे महात्मा देवदेवेश्वर भक्तों पर कृपा करने वाले, पार्वती के प्रिय, भगवान् शिव आनन्द का अनुभव करते हैं।।२५७-२५७½।। वायुदेव कहते हैं कि हे ऋषियों! मैं उन ग्यारह रुद्रों

नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः। मातरिश्वाब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वराच्छ्रुताम्॥२५९॥
अथ ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः। श्रुत्वेमां परमां पुण्यां कथां त्रैयंबकीं ततः॥२६०॥
भृशं चानुग्रहं प्राप्य हर्षं चैवाप्यनुत्तमम्। संभाजयित्वा चाप्येनं वायुमूचुर्महाबलम्॥२६१॥

ऋषय ऊचुः

समीरण महाभाग त्वस्माकं च त्वया विभो। ईश्वरस्योत्तमं पुण्यमष्टमं त्वौपसर्गिकम्॥२६२॥
तस्य स्थानं प्रमाणं च यथावत्परिकीर्तितम्। योगधर्मसमृद्धं वै परमं परमात्मनः॥२६३॥
महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि। स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्त्रस्यामितौजसः॥२६४॥
यस्य भक्तेषु संमोहो ह्यनुकंपार्थमेव च। ब्राह्मी लक्ष्म्या स्वयं जुष्टा या साऽप्रतिमशालिनी॥२६५॥
व्याप्य ज्योत्स्नेव चंद्रस्य विन्यस्ता विश्वरूपिणः। विभूतिर्भ्राजतेऽत्यर्थं देवदेवस्य वेश्मनि॥२६६॥
महादेवस्य तुल्यानां रुद्राणां तु महात्मनाम्। तत्सर्वं निखिलेनेदं वक्त्रादमृतनिस्त्रवः॥२६७॥
आपीतं खलु शर्वस्य भक्त्यास्माभिस्तु सुव्रत। नास्ति किंचिदविज्ञेय मन्यच्चैवानुगामिनः।
प्रश्नं देववरप्राण यथावद्वक्तुमर्हसि॥२६८॥

सूत उवाच

स खलूवाच भगवान्किं भूयो वर्त्तयाम्यहम्।
यन्मया चैव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि सुव्रताः॥२६९॥

को और महात्मा भगवान् शिव के अनेक रूपों को देख नहीं पाता, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ।।२५७½-२५८½।। वे सब अभिन्न हैं, सब एक समान उनको पहचानना असम्भव है। स्वयं भगवान् के मुख से सुनी हुई त्र्यम्बक की इस पुण्य कथा को वायु ने जब उन सूर्य की प्रभा के समान तेजस्वी ऋषियों के मुख से सुना तो वे बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं को बहुत ही धन्य माना, फिर इस कथा की प्रशंसा करके वे महा बलवान् वायु से बोले।।२५८½-२६१।।

ऋषियों ने कहा कि हे महाभाग वायुदेव! हे महाप्रभो! आपने हमें उन ईश्वर भगवान् शिव के परम पुण्यमय सर्वश्रेष्ठ अष्टम औपसर्गिक स्थान का प्रमाण एवं परिचयात्मक वर्णन सुनाया। जो परमात्मा के योगधर्म से सर्वथा समृद्ध है।।२६२-२६३।। महादेव का माहात्म्य देवताओं द्वारा भी कठिनाई से जानने योग्य है। वे अपने ही पराक्रम से असीमित तेज वाले, अनेकों अनुचरों को पैदा करने वाले हैं।।२६४।।

जिनके भक्तों में सम्मोह अनुकम्पा के लिये ही है। लक्ष्मी के साथ वह अनुपम शक्तिशालिनी ब्राह्मी स्वयं ही उनके द्वारा उपमुक्त होती है।।२६५।। उन देवाधिदेव महादेव के घर में समस्त आकाश एवं चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका चाँदनी सर्वदा सर्वत्र व्याप्त रहती है।।२६६।। ऐसे सर्वशक्तिशाली महादेव के समान ही पराक्रमी महात्मा रुद्रों की शक्ति है। वह समस्त कथा आपके मुख से अमृत की धारा के समान हम सबने भक्तिपूर्वक पान की है।।२६७।। उससे हम सब पूर्ण तृप्त हो गये हैं। अब हम सब अनुगामियों को कुछ भी जानने योग्य नहीं है। हे श्रेष्ठ देवों के प्राण! अब हम लोगों का एक प्रश्न है, उसका यथावत् उत्तर देने की कृपा करें।।२६८।।

सूत जी बोले कि नैमिषारण्यवासी ऋषियों की बात सुनकर भगवान् वायु ने कहा कि फिर अब मैं आप लोगों को क्या बताऊँ? हे सुव्रत ऋषिगण! अब मुझे जो कहना है, वह आप लोगों को बताऊँगा।।२६९।।

ऋषय ऊचुः

आदित्याः परिपार्श्वे ये सिंहा वै क्रोधविक्रमाः।
वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्रश्चैवानुगामिनः॥२७०॥
आभूतसंप्लवे घोरे सर्वप्राणिभृतां क्षये। किमवस्था भवंत्येते तन्नो ब्रूहि यथार्थवत्॥२७१॥
विज्ञायेश्वरसद्भावमव्यक्तं प्रभवं तथा।

वायुरुवाच।

यत्र पूर्वं गतास्ते तु कुमारा ब्रह्मणः सुताः॥२७२॥
सनंदनश्च सनकस्तृतीयश्च सनातनः। वोढुश्च कपिलस्तेषामासुरिश्च महायशाः॥२७३॥
मुनिः पंचशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमादयः। ततः काले व्यतिक्रांते कल्पानां पर्यये गते॥२७४॥
महाभूतविनाशांते प्रलये प्रत्युपस्थिते। अनेकरुद्रकोट्यस्तु या प्रसन्ना महेश्वरीम्॥२७५॥
शब्दादीन्विषयान्भोगान्संत्यज्याष्टविधाश्रयात्।
प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा॥२७६॥
विहाय पदमव्यग्रं भूतानामनुकंपया। तत्र यांति महात्मानः परमाणुं महेश्वरम्॥२७७॥
तरंति सुमहावर्त्तां जन्ममृत्यूदकां नदीम्। ततः पश्यंत्यपर्वाणं परं ब्रह्माणमेव च॥२७८॥
देव्या वै सहिताः सप्त या देव्यः परिकीर्त्तिताः।
यत्तत्सहस्त्रं सिंहानामादित्यानां तथैव च॥२७९॥

ऋषियों ने कहा— हे भगवन् वायुदेव! भगवान् शंकर के पास मैं आदित्यगण क्रोधी और पराक्रमी सिंह, वैश्वानर, भूतगण और व्याघ्रगण उनके सेवक के रूप में रहते हैं, उन सबकी घोर प्रलयकाल में सब प्राणियों का नाश हो जाने पर क्या दशा होती है? उन भगवान् शिव की उत्पत्ति को और उनकी शक्ति को विशेष रूप से जानकर हमें यथावत् रूप से बतलाइए।।२७०-२७१।।

वायुदेव ने कहा—हे ऋषिवृन्द! मैं तुम्हें परम गुह्य तत्त्व बता रहा हूँ, जो पहले ही ब्रह्मा के पुत्र कुमार सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, बोढु, कपिल, आसुरि एवं महायशस्वी मुनिवर पंचशिख ऋषि हैं तथा इनके अतिरिक्त जो अन्य भी आदि ऋषिगण हैं, वे सब बहुत समय बीत जाने पर कल्पों की समाप्ति के अवसर पर पंच महाभूतों के विनाश के अन्त में प्रलय के उपस्थित होने पर करोड़ रुद्रगण प्रसन्न चित्त हो सत्य का आश्रय लेकर शब्दादि विषयों और भोगों से विरक्त होकर अर्थात् इन्द्रिय सम्बन्धी विषय भोगों को त्याग कर अपने ज्ञानयुक्त तेज से समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करने की दृष्टि से समस्त जीवधारियों में आत्मा के रूप में प्रविष्ट होकर वैहायस (अव्यग्र) पद को प्राप्त करते हैं और फिर वे सब परमाणु स्वरूप महेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं।।२७२-२७७।। तब उन परमाणु स्वरूप महेश्वर को प्राप्त करके वे जन्म-मृत्युरूपी भयंकर भँवरों वाली जलपूर्ण नदी को पार करते हैं। उसके बाद वहाँ वे सर्वव्यापी परब्रह्म का दर्शन करते हैं।।२७८।। ऊपर जिन सात देवियों को बताया गया है, उन्हीं के साथ वे वहाँ पर उपस्थित होते हैं।।२७८½।। एक हजार सिंहों और आदित्यों को तथा वैश्वानर, भूतगणों, भव्य, व्याघ्र एवं

वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्राश्चैवानुगामिनः।
आवेश्यात्मनि तान्सर्वान् संख्यायोग्यभवांस्तथा॥२८०॥
लोकान्सप्त इमान्भूयो महाभूतानि पंच च। विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च॥२८१॥
स रुद्रो यः साममयस्तथैव च यजुर्मयः। स एष ओतःप्रोतश्च बहिरंतश्च निश्चयात्॥२८२॥
एको हि भगवान्नाथः प्रभवश्चांतकृद्द्विजाः। ततस्ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः॥२८३॥
सुसत्यं श्रवसः सम्यगारोप्याग्निं तथात्मनि। कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनांतरात्मना॥२८४॥
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपद्यते महेश्वरम्। व्रतोपवासनिरताः सर्वभूतदयापराः॥२८५॥
योगं त्वनुपमं दिव्यं प्राप्तं तैश्छिन्नसंशयैः। प्रपद्य परया भक्त्या ज्ञानयुक्तेन तेजसा॥२८६॥
तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम्।
यः पठेत्तपसा युक्तो वायुप्रोक्तामिमां श्रुतिम्॥२८७॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा स्वक्रियापरः।
लभते रुद्रलोकं वै कारणं लोककारणम्॥२८८॥
विनिवृत्ते तदा सर्गे प्रकृत्यावस्थितेन वै। तदात्यंतपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्यचित्॥२८९॥
अनाख्यानादबोध्यत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामपि। आगतागतिकत्वाच्च ग्रहणं तन्न विद्यते॥२९०॥

अनुगामी रुद्रगण, इस सबको अपनी आत्मा में लीन करके इन सातों लोकों को और पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश पञ्च महाभूतों को भी शिव अपने में समविष्ट कर लेते हैं। इस प्रकार विष्णु के साथ वे इस संसार को पैदा करते हैं और विनष्ट करते हैं।।२७८½-१८१।। वह रुद्र, जो साममय (सामवेद में वर्णित) हैं, यजुर्मय (यजुर्वेद में वर्णित) हैं। वे बाहर और भीतर निश्चय से ओत-प्रोत हैं। हे ब्राह्मणों! व्रत और उपवास में संलग्न और सब प्राणियों के प्रति दया करने वाले होकर एक ही भगवान् शिव सबके स्वामी हैं। वे ही सबको उत्पन्न करने वाले हैं और वे ही सबका अन्त करने वाले हैं।।२८२-२८२½।। उसके बाद सूर्य के समान कान्ति वाले वे सब नैमिषारण्यवासी ऋषिगण अपने आश्रम में अग्नि का आधान कर कर्म, मन और वाणी से विशुद्ध अन्तरात्मा से अपनी आत्मा में अनन्य मन होकर भगवान् शिव की आराधना करने लगे।।२८२½-२८४½।।

वे सब व्रत और उपवास में निरत हो गये, सभी जीवों पर दया करने लगे, उनके समस्त सन्देह छिन्न-भिन्न हो गये और फिर सन्देह हीन उन सबने यम के पश्चात् दिव्य भोग को प्राप्त किया।।२८४½-२८५½।। उसके बाद उन्होंने कभी न नष्ट होने वाले शाश्वत रुद्र सालोक्य पद को प्राप्त किया।।२८५½-२८६½।। अब सूतजी इस कथा श्रवण के लाभ को बताते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति तपस्या से युक्त हो, इस वायु द्वारा कही गयी कथा को पढ़ेगा, वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो अथवा वैश्य, अपने-अपने कार्य करते हुए सभी लोकों के कारण के कारण रुद्रलोक को प्राप्त करता है।।२८६½-२८८।। जब सृष्टि समाप्त हो जाती है और सृष्टि के महत्तत्त्व, अहंकार, एकादश इन्द्रिय, पंच तन्मात्राएँ और पंच महाभूत प्रकृति में अवस्थित हो जाते हैं। तब आदि अन्त किसी का कुछ पता नहीं चलता, सब कुछ अदृष्ट हो जाता है, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, किसी का कुछ नाम रूप स्थान आदि का आख्यान नहीं किया जा सकने के कारण ज्ञानियों को भी कुछ ज्ञात नहीं हो पाता तथा उस समय कौंन गया, कौंन आया, इसका

भावग्राह्यानुमानाच्च चिंतयित्वेदमुच्यते। स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मके॥२९१॥
अनिर्देश्ये प्रवृत्तिर्वै स्वात्मिकाकारणेन तु। एवं सप्तद्विरभ्यस्ताः क्रमात्प्रकृतयस्तु वै॥२९२॥
प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशंति परस्परम्। येनेदमावृतं सर्वमंडलमप्सु प्रलीयते॥२९३॥
सप्तद्वीपसमुद्रांतं सप्तलोकं सपर्वतम्। उदकावरणं यच्च ज्योतिष्यालीयते तु यत्॥२९४॥
यत्तेजसं चावरणं मारुतो [1]ग्रसते नु यत्। यद्वायव्यं चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत्॥२९५॥
आकाशावरणं यच्च भूतादिर्ग्रसते तु तत्। भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः॥२९६॥
महांतं ग्रसते[2]ऽव्यक्तं गुणसाम्यं ततः परम्।
एतौ संहारविस्तारौ ब्रह्मा व्यक्तौ ततः पुनः॥२९७॥
सृजते ग्रसते चैव विकारात्सर्गसंयमे। संसिद्धकार्यकारणाः संसिद्धा ज्ञानिनस्तु ये॥२९८॥
गत्वा जवं जवीभावे स्थाने स्वेषु प्रसंयमात्। प्रत्याहारेऽधिषुज्यंते क्षेत्रज्ञाः करणैः पुनः॥२९९॥

भी बोध नहीं होता।।२८९-२९०।। ऐसी स्थिति में भावनाओं से ग्रहण करके और अनुमान से विचार करके यह कहा जाता है कि उस समय वे सब पदार्थ सद् और असद् आत्मक नित्य कारण प्रकृति में स्थित रहते हैं। यह स्वतन्त्र प्रकृति कारण द्वारा अनिर्देश्य है, अर्थात् इस प्रकृति का कोई कारण नहीं, यही सबका कारण है। प्रकृति के जो सात उपादान हैं, वे क्रमशः प्रकृति में विलीन कहे जाते हैं, वे सात हैं—महत्तत्त्व, अहंकार तथा पंच तन्मात्राएँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इस प्रकार गन्ध रस में, रस रूप में, रूप स्पर्श में, स्पर्श शब्द में, शब्द अहंकार में, अहंकार महत्तत्त्व (बुद्धि) में और फिर महत्तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाता है।।२९१-२९२।। प्रत्याहार काल में इसी प्रकार इनका आपस में एक-दूसरे में क्रमशः प्रवेश होता है। जिसने सब पदार्थों, सातों द्वीप, सातों सागरों, समस्त नदियों, पर्वतों को आवृत किया है, वह विशाल ब्रह्माण्ड सबसे पहले जलों में विलीन होता है।।२९३।। उसके बाद वह समस्त जलराशि ज्योति पदार्थ अग्नि में विलीन होता है।।२९४।। उसके बाद उस अग्नि तत्त्व को वायु तत्त्व ग्रस लेता है, अर्थात् अग्नि तत्त्व वायु तत्त्व में विलीन हो जाता है। फिर उस वायु तत्त्व को आकाश ग्रस लेता है।।२९५।।

उस आकाश तत्त्व को जो पञ्चमहाभूतों के आदि में है, वह अहंकार ग्रस लेता है तथा भूतादि अहंकार को महत्तत्त्व, जिसका लक्षण बुद्धि है, वह ग्रस लेता है।।२९६।। अन्त में उस महत्तत्त्व बुद्धि को अव्यक्त ग्रस लेता है, यह अव्यक्त ही प्रकृतितत्त्व है। जो कि प्रधान तत्त्व है, किसी भी इन्द्रिय द्वारा न व्यक्त होने के कारण ही इस प्रकृति को अव्यक्त कहा गया है। सृष्टि का यह संहार और विस्तार प्रकृति से होता है तथा वह प्रकृति ब्रह्म में स्थित है।।२९७।।

सृष्टि और प्रलय करने के लिये ही यह प्रकृति समस्त विकारों को उत्पन्न करती है और ग्रस लेती है। सर्ग में क्रमशः उत्पन्न करती है, तो प्रतिसर्ग में क्रमशः ग्रस लेती है।।२९७½।। इस प्रकार यह समस्त संसार कार्य और कारण पर आधारित है। सभी तत्त्व एक-दूसरे के कारण और कार्य हैं; परन्तु प्रकृति किसी का कारण नहीं है, अर्थात् प्रकृति से क्रमशः सभी उत्पन्न हुए हैं, प्रकृति किसी से उत्पन्न नहीं है। इस रहस्य को जो जानते हैं, वे परम ज्ञानी सिद्ध लोग हैं। वे सिद्ध पुरुष इस संहार काल में अपने पूर्ण संयम से स्वयं तीव्र गति से आकृष्ट होकर क्षेत्रज्ञ करणों से वियुक्त हो जाते हैं।।२९७½-२९९।।

---

१. आत्मनेपदमार्षम्। २. आत्मनेपदमार्षम्।

अव्यक्तं क्षेत्रमित्याहुर्ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते। सधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो नादिमांस्तयोः॥३००॥
एवं सर्गेषु विज्ञेयः क्षेत्रज्ञेष्विह ब्राह्मणाः। ब्रह्मविच्चैव विज्ञेयः क्षेत्रज्ञानात्पृथक्पृथक्॥३०१॥
विषयाविषयत्वं च क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोः स्मृतम्। ब्रह्मा त्वविषयो ज्ञेयो विषयः क्षेत्रमुच्यते॥३०२॥
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं क्षेत्रं क्षेत्रज्ञार्थं प्रचक्षते। बहुत्वाच्च शरीराणां शरीरी बहुधा स्मृतः॥३०३॥
अव्यूहाशंकराच्चैव ज्योतिर्यच्च व्यवस्थितम्।
यस्मात्प्रतिशरीरं हि सुखदुःखोपलब्धिता॥३०४॥
तस्मात्पुरुषनानात्वं विज्ञेयं तु विजानता। यदा प्रवर्त्तते चैषां भेदानां चैव संयमः॥३०५॥
स्वभावकारिताः सर्वे कालेन महता तदा। निवर्त्तन्ते तदा तस्मिन्स्थितरागाः स्वयंभुवः॥३०६॥

अव्यक्त (प्रकृति) क्षेत्र कही जाती है तथा ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। समानता और विषमता के आधार पर उन दोनों का संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है।।३००।। क्षेत्र का अर्थ खेत है, क्षेत्रज्ञ का अर्थ है खेतवाला अर्थात् खेत में बीज बोने वाला। अतः प्रकृति खेत है तथा वह ब्रह्म कहें अथवा आत्मा कहें, वह क्षेत्रज्ञ है, यह क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) (आत्मा) जब प्रकृतिरूपी खेत में बीज डालता है, तब वह उगता है। अब रही समानता और विषमता की बात, वह यों कि क्षेत्रज्ञ (आत्मा) और प्रकृति दोनों ही अव्यक्त हैं, अतः समान हैं; परन्तु प्रकृति अन्य तत्त्वों का कारण है; परन्तु वह क्षेत्रज्ञ किसी का कारण नहीं है। यही दोनों में विषमता है। प्रकृति ब्रह्म का विषय है; परन्तु ब्रह्म किसी का विषय नहीं। सूतजी ने कहा कि हे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों! सृष्टि की रचना में क्षेत्रज्ञ के विषय में यही क्रम जानना चाहिए। जो अलग-अलग रूप से इस क्षेत्र (प्रकृति) का ज्ञान तत्त्व जानता है, उसी को ब्रह्मज्ञानी समझना चाहिए।।३०१।। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विषय और अविषय होना स्मरण किया गया है। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का विषय और क्षेत्रज्ञ किसी का विषय नहीं है। ब्रह्म ही अविषय है तथा विषय क्षेत्र कहा जाता है।।३०२।।

क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) में ही क्षेत्र अधिष्ठित है तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्मा) के उपभोग के लिये क्षेत्र (प्रकृति) को बनाया गया है। शरीरों (प्रकृति)के बहुत होने के कारण शरीरी (क्षेत्रज्ञ) (आत्मा) भी बहुत स्मरण किये जाते हैं। ब्रह्मा आत्मा, जीव, पुरुष—ये प्रायः एक ही हैं। कुछ लोग ब्रह्म और आत्मा को एक नहीं मानते; परन्तु आत्मा और परमात्मा तो एक ही है तथा क्षेत्र, प्रकृति, माया, चण्डी, पार्वती आदि हैं। सब एक ही है। किन्तु ये ज्योति की भाँति बिना घिरे हुए और बिना मिले हुए रहते हैं। अर्थात् जैसे कि प्रकाश एक ही है; परन्तु स्थान भेद से अलग प्रतीत होता है, जहाँ नहीं पहुँचता है, वहाँ अंधेरा रहता है, कहीं कम कहीं अधिक प्रकाश होता है। उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ की क्षेत्र में यही दशा है, कहीं क्षेत्रज्ञ पूर्ण प्रकाशित है, तो कहीं बिल्कुल नहीं, तो कहीं कम है। इसी के कारण प्रत्येक शरीर में सुख और दुःख की प्राप्ति होती है। अर्थात् जहाँ पर क्षेत्रज्ञ का अधिक प्रकाश है, वहाँ सुख, जहाँ कम है, वहाँ दुःख है।।३०३-३०४।। इसलिए विज्ञ विज्ञानता विशेष ज्ञान रखने वाले लोग क्षेत्रज्ञ (आत्मा, पुरुष, ब्रह्मा) का अनेक होना मानते हैं। यहाँ विज्ञानता का अर्थ नहीं जानने वाले भी हो सकता है; क्योंकि 'वि' उपसर्ग दो अर्थों में लगता है। विशेष और विना। अतः विज्ञानता का विशेष ज्ञान से और विना ज्ञान से भी हो सकता है। तब यहाँ अर्थ होगा कि अज्ञानी लोग क्षेत्रज्ञ (पुरुष) को अनेक होना मानते हैं; परन्तु वह एक है। जैसे कि एक प्रकाश स्थान भेद से अनेक लगता है, उसी प्रकार वह क्षेत्रज्ञ (पुरुष) क्षेत्र (प्रकृति) में स्थित होने के भेद से अनेक प्रतीत होता है।।३०५-३०६।।

सह सायुज्यकैः सर्वैर्ब्रह्मलोकनिवासिभिः।
विनिवृत्तेस्तदा तेषां स्थितेरात्मनिवासिनाम्॥३०७॥
तत्कालवासिनां तेषां तत्र वै दोषदर्शिनाम्। उत्पद्यतेऽथ वैराग्यमात्म[1]वाद प्रणाशनम्॥३०८॥
भोज्यभोक्तृत्वनानास्तैस्तेषां तद्भावदर्शिनाम्।
पृथग्ज्ञानेन क्षेत्रज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलौकिकाः॥३०९॥
प्रकृतौ कारणातीताः सर्वे नानाप्रदर्शिनः। स्वात्मन्येवावतिष्ठंते प्रशांतादर्शनात्मकाः॥३१०॥
शुद्धा निरंजनाः सर्वे चेतनाचेतनास्तथा। तत्रैव परिनिर्वार्णाः स्मृता[2]नागामिनस्तु ते॥३११॥
निर्गुणत्वाग्निरात्मानः प्रकृत्यंते व्यतिक्रमात्।
इत्येवं प्राकृतः प्रोक्तः प्रतिसर्गः स्वयंभुवा॥३१२॥
वर्णाश्रमाचारयुतः प्रतिसर्गं श्रृणोति यः। स व्रजेच्छिवसालोक्यं भक्तिमान्विगतज्वरः॥२१३॥
अमद्यपश्च यः शूद्रो भवभक्तो जितेंद्रियः। आभूतसंप्लवस्थायी अप्रतीघातलक्षणः॥३१४॥

बहुत समय बीतने पर जब पुरुष और प्रकृति के भेद का ज्ञान तथा प्रकृति तथा पुरुष के स्वभाव का ज्ञान हो जाता है, तब ब्रह्म क्षेत्रज्ञ (पुरुष) की बुद्धि प्रकृति से निवृत्त हो जाती है और उस समय ब्रह्मलोक निवासी सहसा अपनी-अपनी स्थिति के व्यवहार में दोष देखकर विरक्त हो जाते हैं, अर्थात् उनमें वैराग्य पैदा हो जाता है और आत्मवाद (अहंकार) का नाश हो जाता है, उस समय बुद्धि अहंकार से अलग होकर प्रकृतिस्थ हो जाती है, तब स्वार्थपरक अहंकार का सर्वथा नाश हो जाता है।।३०७-३०८।। तब पुरुष का यह भाव कि मैं भोक्ता हूँ तथा यह प्रकृति भोग्य है, मैं क्यों न इसका भोग करूँ, यह भाव समाप्त हो जाता है। तब वे अनेकत्व के भाव से निवृत्त होकर आत्मस्थ हो जाते हैं। वे समस्त ब्रह्मलोक निवासी अलग-अलग क्षेत्र का ज्ञान होने के कारण ही क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं, क्योंकि उन्हें क्षेत्र प्रकृति का ज्ञान हो चुका है कि यह प्रकृति आत्मा को अनेकों प्रकार के भोगों, विषयों में फँसाती है, यह जानकर वे इस प्रकृति से अलग हो जाते हैं। अतः वे सब प्रकृतिगत सभी कारणों से परे हैं और प्रकृति के अनेक होने को देखते हैं तथा देखकर उनसे अलग होकर प्रशान्त भाव से अपनी आत्मा में ही अवस्थित हो जाते हैं।।३०९-३१०।। वे चेतन-अचेतन, शुद्ध बुद्ध चैतन्य वहीं पर मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं। वे फिर इस लोक में लौटकर आने वाले नहीं हैं। फिर वे जब आत्मस्थ हो जाते हैं, तो निर्गुण हो जाते हैं और उनमें स्वार्थभाव मिट जाता है। तब उनको पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता।।३११-३११½।।

इस प्रकार यही ब्रह्मा द्वारा प्रकृति का प्राकृत प्रतिसर्ग कहा गया है। वर्ण और आश्रमों के आचरण का पालन करता हुआ, जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस ब्रह्मा के प्रतिसर्ग का श्रवण करता है, वह समस्त व्याधियों से रहित होकर शिव के सालोक्य को प्राप्त होता है।।३११½-३१३।। मद्यपान न करने वाले जितेन्द्रिय भगवान् शिव का भक्त शूद्र इसको पढ़ता है, वह प्रलयकाल तक जन्म-मरण के लक्षणों से रहित होकर सार्वकालिक गणपति के स्थान को प्राप्त करता

---

१. आत्मात्राहंकार (यहाँ आत्मा का अर्थ अहंकार)

२. स्मृतमनागमनमेषामिति भाव:

गाणपत्यं स लभते स्थानं वा सार्वकालिकम्। मद्यपो मद्यपैः सार्द्धं भूतसंघैश्च मोदते।।३१५।।
सेव्यमानो महीपृष्ठे मर्त्यानां वरदो भवः। इति होवाच। भगवान्वायुर्वाक्यमिदं वरम्।।३१६।।

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे शिवपुरवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

प्रतिसर्गोनाम

तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यांते स्वयंभुवः। ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिंस्तदा प्रभोः।।१।।
यथेदं कुरुते व्यक्तं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः। अव्यक्तं ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः।।२।।
पुरांतव्यणुकाद्यानां संपूर्णे कल्पसंक्षये। उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित्।।३।।
अंते द्रुमस्य संप्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा। अंते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते।।४।।

है और फिर जो मद्यपान करने वाला है, वह मद्यपान करने वाले भूतों के साथ आनन्द प्राप्त करता है।।३१४-३१५।। वह पृथ्वी पर सेवा किया जाता हुआ मृत्युलोक में वर देने वाला शिव है। इस प्रकार भगवान् वायु ने यह वाक्य कहा।।३१६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद द्वितीय अध्याय शिवपुर वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय–३

प्रतिसर्ग वर्णन

सूतजी बोले—अब इसके बाद मैं परब्रह्म स्वयम्भू भगवान् के प्रत्याहार (प्रलय) का वर्णन करूँगा। परंभू ब्रह्मा के स्थितिकाल के समाप्त होने पर जिस प्रकार ये अत्यन्त सूक्ष्म ईश्वर अपने में समस्त व्यक्त संसार को स्थिर कर लेते हैं, वह बताऊँगा। प्रलयकाल में अव्यक्त (प्रकृति) समस्त व्यक्त (महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्राएँ, एकादश इन्द्रियों, पञ्च महाभूतों) को ग्रस लेती है।।१-२।। पुराने सभी अणुओं के क्षीण एवं सम्पूर्ण कल्प के समाप्त हो जाने पर महाघोर संकट काल उपस्थित होता है, जो पूर्णतः परोक्ष है, उसकी जानकारी किसी को नहीं होती है। तब सबसे अन्तिम मनु द्रुम का अन्त प्राप्त होने पर उस अन्तिम कलियुग के क्षीण (समाप्त) होने पर (संहार) प्रलय कहा जाता है।।३-४।।

संप्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते। प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रसंक्षये॥५॥
महदादिविकारस्य विशेषांतस्य संक्षये। स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृष्टे प्रतिसंचरे॥६॥
आपो ग्रसंति वै पूर्वं भूमेर्गंधात्मकं गुणम्। आत्तगंधा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते॥७॥
प्रणष्टे गंधतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत्। आपस्तदा प्रविष्टास्तु वेगवत्यो महास्वनाः॥८॥
सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठंति विचरंति च। आपामपि गणो यस्तु ज्योतिःष्वालीयते रसः॥९॥
नश्यंत्यापस्तदा तत्र रसतन्मात्रसंक्षयात्। तीव्रतेजोहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवंत्युत॥१०॥
ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्षते। अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलं तदा॥११॥
सर्वमापूर्यतेऽर्चिर्भिस्तदा जगदिदं शनैः। अर्चिभिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्ततः॥१२॥
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरत्ति प्रकाशकम्। प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते॥१३॥
प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः। उपशाम्यति तेजो हि वायुराधूयते महान्॥१४॥
निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि। ततस्तु मूलमासाद्य वायुः संबंधमात्मनः॥१५॥

जब समस्त प्रपञ्च का जल में डूबने का समय प्रवृत्त होता है, तब उस प्रलयकाल के उपस्थित होने पर उस प्रलय में समस्त पञ्चमहाभूत और उनकी तन्मात्राओं का पूर्णतः विनाश हो जाता है।।५।। उस समय महदादि समस्त विकारों का भी विनाश हो जाता हैं। यह सब स्वाभाविक प्रलय है, इसका होना स्वाभाविक है तथा यथासमय अवश्यम्भावी है।।६।। जब यह प्रलय होने को होती है, तब जल पृथ्वी के गन्धात्मक गुण को ग्रस लेता है। गन्धरहित पृथ्वी प्रलय करने की कल्पना करती है। स्वाभाविक है कि जब पृथ्वी का गुण गन्ध ही नहीं, तब पृथ्वी कैसे रह सकती है?।।७।। अतः गन्ध तन्मात्रा के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी की जलावस्था हो जाती है, तब सर्वत्र जल ही जल हो जाता है और वह जलराशि समस्त संसार में व्याप्त होकर वेगवती हो सर्वत्र विचरण करने लगती है, उसके बाद जलों का भी जो गुण रस है, वह ज्योति (तेज) में विलीन हो जाता है।।८-९।।

तब जब कि जल का गुण रस ही अग्नि के तेज तत्त्व में विलीन हो गया, तब जल का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। तीव्र तेज द्वारा जिस जल का रस ग्रास कर लिया गया है, वह रस अब तेज में परिणत हो जाता है। अर्थात् रस ज्योतित्व को प्राप्त कर लेते हैं, अर्थात् रस तेज बन जाते हैं।।१०।। जब तेज जल को ग्रस्त कर लेता है, तब सर्वत्र सामने तेज ही तेज दिखाई देता है और अग्नि सर्वत्र व्याप्त होकर उस जल को पूरी तरह ग्रस लेती है।।११।। तब यह संसार धीरे-धीरे अग्नि की ज्वालाओं से सर्वत्र भर जाता है। उस समय अग्नि की लपटें इधर-उधर, ऊपर-नीचे सर्वत्र फैल जाती हैं।।१२।। अग्नि के गुण तेज (रूप) को जो कि प्रकाश करने वाला है। रूप का प्रकाशक होने के कारण ही तो उसका गुण रूप कहा जाता है, अतः अग्नि के गुण को रूप तेज या ज्योति कहा जाता है। अतः अग्नि के गुण रूप के प्रकाशक तेज को भी वायु ग्रस लेता है। तब उस वायु में अग्नि की वह तेजोराशि उसी प्रकार विलीन हो जाती है, जैसे कि वायु से दीपक की शिखा बुझ जाती है।।१३।। अग्नि की तन्मात्रा रूप (तेज) के नष्ट हो जाने पर अग्नि रूपरहित हो जाती है, तब तेज (ज्वाला) शान्त हो जाती है और महान् वायु तेजी से बहने लगता है।।१४।। उस समय समस्त जगत् प्रकाशविहीन हो जाता है, क्योंकि तेज भी उस समय वायु बन जाता है। उसके बाद वह वायु अपने मूल उत्पत्ति स्थान आकाश को प्राप्त करके समस्त आकाश में ऊपर-नीचे, तिरछे, इधर-

ऊध्वरं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश।
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते च तत्॥१६॥
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम्। अरूपमरसस्पर्शमगंधं न च मूर्तिमत्॥१७॥
सर्वमापूरयच्छब्दैः सुमहत्तत्प्रकाशते। तस्मिँल्लीने तदा शिष्टमाकाशं शब्दलक्षणम्॥१८॥
शब्दमात्रं तदाऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति। तत्र शब्दं गुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः॥१९॥
भूतेंद्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै। अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः॥२०॥
भूतादिर्ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः। महानात्मा तु विज्ञेयः संकल्पो व्यवसायकः॥२१॥
बुद्धिर्मनश्च लिंगं च महानक्षर एव च। पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिंतकाः॥२२॥
संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये ततो महान्। लीयंते गुणसाम्यं तु स्वात्मन्येवावतिष्ठते॥२३॥
लीयंते सर्वभूतानां कारणानि प्रसंगमे। इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां कारणैः सह॥२४॥
तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तको द्विजाः। धर्माधर्मौ तपो ज्ञानं शुभं सत्यानृते तथा॥२५॥
ऊर्ध्वभागो ह्यधोभावः सुखदुःखे प्रियाप्रिये। सर्वमेतत्प्रपंचस्थं गुणमात्रात्मकं स्मृतम्॥२६॥

उधर सर्वत्र दशों दिशाओं को बार-बार कम्पित करता है। उसके वायु के भी गुण स्पर्श को आकाश ग्रस लेता है।।१५-१६।। जब वायु के स्पर्श गुण को आकाश ग्रस लेता है, तब वायु शान्त हो जाता है और आकाश अनावृत होकर स्थित रहता है। वह आकाश उस समय रूप, रस, स्पर्श और गन्धरहित होता है तथा वह मूर्तिमान् नहीं, उस समय आकाश आकृति विहीन होता है।।१७।। उस समय आकाश का गुण शब्द ही होता है, वह आकाश अपने शब्द गुण से समस्त जगत् को निनादित करता हुआ महान् मण्डलाकार आकाश प्रकाशित होता है, वह आकाश केवल शब्दात्मक है, क्योंकि शब्द ही तो आकाश का लक्षण है।।१८।। तब शब्द मात्रा वाला आकाश सब जगत् को आवृत कर स्थित होता है।।१८½।। उसके बाद उस आकाश के गुण शब्द को पञ्चभूतों के आदि में रहने वाला अहंकार (अहंतत्त्व) ग्रस लेता है।।१९।। पञ्चभूतों से युक्त जो इन्द्रियाँ हैं, उनमें पंचमहाभूत आदि भी स्थित हैं तथा अहंकार तत्त्व से इन्द्रियों की उत्पत्ति है। अतः समस्त भूतों को और उन पर आश्रित इन्द्रियों को वह अहङ्कार तत्त्व ग्रस लेता है तथा यह भूतों का आदि रूप अहंकार अभिमानात्मक भूतादि तामस कहा गया है।।२०।।

अब भूतादि तामस, जिसे अहंकार कहा गया है, उसे महत्तत्त्व ग्रस लेता है, जिसे महान् कहा जाता है, जिसका लक्षण बुद्धि है। यह महान् आत्मा बुद्धि संकल्प और विकल्प करने वाला कहा गया है। अध्यवसाय जिसका लक्षण है, अर्थात् यह बुद्धि किसी कार्य को करने न करने का निर्णय लेने वाली है। तत्त्व का चिन्तन करने वाले विद्वान् इसी को बुद्धि, मन, लिङ्ग, महान् एवं अक्षर आदि पर्यायवाची शब्दों से पुकारते हैं।।२१-२२।। फिर जब बुद्धि तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाता है, तब समस्त भूतों के विलीन हो जाने पर प्रकृति में महान् गुणसाम्य हो जाता है। समस्त जगत् तमोमय हो जाता है। गुणसाम्य होकर आत्मा में स्थित हो जाते हैं, जो जिसका कारण है, उसमें वह लीन होता चला जाता है। इस प्रकार यही तत्त्वों का कारणों के साथ संयम है।।२३-२४।। सूतजी बोले कि हे द्विजवृन्द! यह तत्त्वसंयम ही आवर्तक स्मरण किया गया है,. अर्थात् तत्त्वों का परस्पर अपने कारणों में विलीन होने का जो नियम है, वही प्रलय करनेवाला है।।२४½।। धर्म, अधर्म, तप, ज्ञान, शुभ, सत्य, असत्य, ऊर्ध्व भाव, अधोभाव, सुख,

निरिंद्रियाणां च तदा ज्ञानिनां यच्छुभाशुभम्। प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठति॥२७॥
यात्यवस्था तु सा चैव देहिनां तु निरुच्यते। जंतूनां पापपुण्यं तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम्॥२८॥
अवस्थास्थानि तान्येव पुण्यपापानि जंतवः। योजयंति पुनर्देहान्परत्वेन तथैव च॥२९॥
धर्माधर्मौ तु जंतूनां गुणमात्रात्मकावुभौ। कारणैः स्वैः प्रचीयेते कायत्वेनेह जंतुभिः॥३०॥
सचेतनाः प्रलीयंते ज्ञेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः। सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारे चैव जंतवः॥३१॥
संयुज्यंते वियुज्यंते कारणैः संचरंति च। राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः॥३२॥
गुणमात्राः प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा। उद्ध्र्वदेशात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः॥३३॥
तयोः प्रवर्त्तकं मध्ये इहैवावर्त्तकं रजः। इत्येवं परिवर्तंते त्रयश्चेतोगुणात्मकाः॥३४॥
लोकेषु सर्वभूतानां तन्न कार्यं विजानता। अविद्याप्रत्ययारंभा आरभ्यन्ते हि मानवैः॥३५॥

एतास्तु गतयस्तिस्रः शुभात्पापात्मिकाः स्मृताः।
तमसोऽभिभवाज्जंतुर्याथातथ्यं न विंदति॥३६॥

दुःख, प्रिय, अप्रिय यह सब पंचभूतात्मक प्रपञ्च में स्थित हैं, अर्थात् ये सब तो पंचभूतात्मक संसार में तथा पंचभूत निर्मित इस शरीर में स्थित हैं तथा इन पञ्चभूतों को गुणमात्रात्मक कहा है, क्योंकि इन सबके गुण हैं।।२४½-२६।। इन्द्रियों से परे अर्थात् जितेन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न व्यक्तियों के जो कुछ भी शुभ-अशुभ पुण्य तथा पापात्मक कर्म हैं, वे सब प्रकृतिवश अवस्थित हैं।।२७।। जो अत्यवस्था प्राणियों की कही जाती है, जो प्राणियों का स्वभाव है, जैसी उनकी अवस्था है, वह सब उसकी प्रकृति में प्रतिष्ठित है। प्राणियों के पाप और पुण्य उसकी प्रकृति में प्रतिष्ठित रहते हैं। जैसी जिसकी प्रकृति होती है, तदनुसार वह अच्छे-बुरे कर्म करता है।।२८।। सभी प्राणी अपनी-अपनी अवस्था (प्रकृति) में स्थित अपने उन पुण्य और पापों को पुनः दूसरे शरीरों में ले जाता है।।२९।। प्राणियों के धर्म और अधर्म दो गुण और मात्रात्मक हैं। कार्य की दशा में अपने-अपने कारणों द्वारा प्राणियों के स्वभाव में वृद्धि करते हैं।।३०।।

इस संसार में क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सचेतन गुण समुदाय सृष्टि और प्रलयावस्था में अपने-अपने कारणों द्वारा संयुक्त-वियुक्त और संचरणशील होते हैं। अर्थात् जब प्रकृति और पुरुष का मेल होता है, तभी सृष्टि होती है तथा जब क्षेत्रज्ञ (पुरुष) प्रकृति में मिलता है, वे जड़ पदार्थ पंचतत्त्व सचेतन होते हैं। अतः ये सचेतन पदार्थ अपने-अपने कार्य उत्पन्न करते चले जाते हैं। तब इनके संयुक्त होने से सृष्टि की स्थिति होती है तथा जब ये अपने कारणों में विलीन होते चले जाते हैं, तब संहार की स्थिति है, यही भाव है। इस प्रकार ये सभी पंचभूतादि अपने-अपने कारणों से संयुक्त होते हैं और वियुक्त होते हैं और संचरण करते रहते हैं। जब ये संयुक्त होते हैं, तब सृष्टि होती है और जब वियुक्त होते हैं, तब प्रलय होती है तथा जब ये परस्पर संचरण करते हैं, तब संसार की स्थिति होती है।।३१-३१½।।

इस प्रकृति की राजसी, तामसी और सात्त्विकी तीन वृत्तियाँ होती हैं। ये प्रकृति की तीनों प्रकार की वृत्तियाँ गुण और मात्रा रूप से पुरुष में अधिष्ठित होती हैं।।३१½-३२½।। सत्त्व ऊर्ध्व भागात्मक होता है, तम अधोभागात्मक होता है और उन दोनों का प्रवर्तक मध्य में स्थित रज होता है, जो उन दोनों का प्रवर्तक है, अर्थात् उन सत्त्व और तम को गतिशील बनाता है।।३२½-३३½।। समस्त त्रिलोकी में सब जीवों में ये ही तीन भाव परिवर्तित होते रहते हैं। तमोगुण से अभिभूत होकर मनुष्य इस सबको यथातथ्य रूप से अर्थात् वास्तविक रूप से नहीं जानता है और इस प्रकार

अतत्त्वदर्शनात्सोऽथ विविधं वध्यते ततः। प्राकृतेन च बन्धेन तथ्यावैकारिकेण च॥३७॥
दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यंतं विवर्त्तते। इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बंधा ह्यज्ञानहेतुकाः॥३८॥
अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम्।
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः॥३९॥
येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात्। रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम्॥४०॥
अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः। कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्त्तते॥४१॥
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणजा तथा। पुनर्भवकरी दुःखात्कर्मणा जायते तृषा॥४२॥
सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणाः फलैः। तैलपीडकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्त्तते॥४३॥
तस्मान्मूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते। तं शत्रुमवधार्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत्॥४४॥
ज्ञानाद्धि त्यजते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते।
वैराग्याच्छुध्यते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते॥४५॥

तत्त्वों को अच्छी तरह न जानने और न देखने के कारण तीन प्रकार के बन्धनों से आबद्ध होते हैं। प्रथम प्राकृत बन्धन, द्वितीय वैकारिक बन्धन और तृतीय दक्षिणात्मक बन्धन। इन तीनों से बहुत अधिक बंधकर प्राणीगण दुःख का अनुभव करते हैं। इन तीनों ही बंधनों का कारण अज्ञान है, इसलिए ये अज्ञानहेतुक कहे गये हैं।।३८।। अनित्य पदार्थों को नित्य का नाम देना, दुःख में सुख देखना, जो अपना नहीं उसे अपना मानना, जो अपवित्र है, उसे पवित्र समझना, ये सब इन अज्ञानी प्राणियों के उल्टे क्रम से मन के दोष तथा ज्ञान के दोष हैं तथा जब किसी विशेष व्यक्ति, वस्तु, स्थान के प्रति आसक्ति तथा किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान के प्रति द्वेष भाव की निवृत्ति (समाप्ति) हो जाती है, वही ज्ञान कहा गया है।।३९-४०।। तमोगुण का मूल अज्ञान है, शुभ और अशुभ कर्मों का मूल रजोगुण है अर्थात् रजोगुण शुभ और अशुभ कर्म करने की प्रेरणा देता है। कर्म से उत्पन्न पुनर्देह है, अर्थात् कर्मों से पुनर्जन्म लेना पड़ता है, जिससे महादुःख की प्राप्ति होती है।।४१।।

कान से, आँख से, त्वचा से, जिह्वा से और नाक से कर्म उत्पन्न होते हैं, अर्थात् कान से शब्द को सुनकर उसके प्रति आसक्ति अनासक्ति होना कर्म का कारण है। आँख से किसी सुन्दर, असुन्दर वस्तु को देखकर उसके प्रति आसक्त होना कर्म का कारण है, त्वचा से सुन्दर असुन्दर स्पर्श से सुख दुःख का अनुभव कर आसक्त अनासक्त होना कर्म का कारण है, स्वादिष्ट अस्वादिष्ट रस का स्वादु लेकर उसके प्रति आसक्ति अनासक्ति तथा किसी सुगन्धित असुगन्धित द्रव्य को सूँघकर उसके प्रति आसक्त अनासक्त होना कर्म का कारण है। इस प्रकार ये ज्ञानेन्द्रियाँ ही सब कर्मों का कारण हैं। जो कर्म पुनर्जन्म के कारण होते हैं। कर्म से तृष्णा पैदा होती है और दुःख से भी तृष्णा पैदा होती है।।४२।। अपने-अपने किये गये कर्मों के फलों के द्वारा ही तृष्णा युक्त अज्ञ जीव को तेली के बैल की तरह कर्मों के बन्धन में फँसकर उन्हीं इन्द्रियों के विषयों में बार-बार चक्कर काटना पड़ता है।।४३।। उसी कारण से अनर्थों के मूल अज्ञान से बचने का उपदेश दिया जाता है तथा उस अज्ञान नामक शत्रु को समझकर ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।।४४।। ज्ञानसे इन्द्रियों के विषयों के प्रति पैदा हुए अज्ञान का त्याग किया जाता है तथा ज्ञान पैदा होने पर मनुष्य सब कुछ छोड़ देता है। तब त्याग से बुद्धि सब विषयों से विरक्त हो जाती है, अर्थात् बुद्धि में

अत ऊद्ध्वं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम्। अभिष्वंगाय योगः स्याद्विषयेष्ववशात्मनः॥४६॥
अनिष्टमिष्टमप्रीतिप्रीतितापविषादनम्। दुःखलाभे न तापश्च सुखानुस्मरणं तथा॥४७॥
इत्येष वैषयो रागः संभूत्याः कारणं स्मृतः। ब्रह्मादौ स्थावरांते वै संसारे ह्यादिभौतिके॥४८॥
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत्। यस्य चार्षे न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च॥४९॥
वर्णाश्रमविरुद्धो यः शिष्टशास्त्रविरोधकः। एष मार्गो हि निरये तिर्य्यग्योनौ च कारणम्॥५०॥
तिर्य्यग्योनिगतं चैव कारणं तन्निरुच्यते। त्रिविधो यातनास्थाने तिर्य्यग्योनौ च षड्विधे॥५१॥
कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वशः। अनैश्वर्यं तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम्॥५२॥
इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा। सत्त्वस्थमात्रकं चित्तं यथासत्त्वं प्रदर्शनात्॥५३॥
तत्त्वानां च यथातत्त्वं दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात्। सत्त्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतन्नानार्थदर्शनम्॥५४॥

वैराग्य पैदा हो जाता है और वैराग्य से मन शुद्ध हो जाता है। शुद्ध मन से सात्त्विक प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और सात्त्विक प्रवृत्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है, अर्थात् जीवात्मा कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाता है।।४५।। सूतजी ने कहा कि अब इसके आगे मैं प्राणियों के ज्ञान का अपहरण करने वाले राग का वर्णन करूँगा। यह राग ही अज्ञान का कारण है। राग का अर्थ है—आसक्ति, किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान के प्रति बहुत अधिक प्रेम या लगाव पैदा होना राग है। इसी राग के कारण प्राणिसमूह लाचार होकर विषय वासनाओं, सांसारिक भोग-विलासों में फँस जाते हैं।।४६।।

राग से अनिष्ट, इष्ट, अप्रीति, प्रीति, ताप, विषाद का जन्म होता है। दुःख प्राप्त होने से ताप पैदा होता है और इच्छित वस्तु के प्राप्त न होने पर दुःख होता है तथा उसका स्मरण करने से सुख होता है।।४७।। इस प्रकार यह सांसारिक भोगविलासों से सम्बन्धित विषयगत राग है, जो सब दुःखों की उत्पत्ति का कारण है। ब्रह्मा से लेकर सभी स्थावर जंगम समूह के सभी आधिभौतिक जगत् में पैदा हुए राग के कारण अज्ञान से आवृत होकर जन्म ग्रहण करते हैं। इसलिए इस अज्ञान से सर्वथा बचे रहना चाहिए। जिस अज्ञान का शास्त्र में कोई प्रमाण नहीं है तथा न ही यह शिष्टाचार है, अर्थात् अज्ञान से सांसारिक भोगों में फँसे रहना कोई शिष्ट पुरुषों का आचरण नहीं है। यह अज्ञान वर्णों और आश्रमों के विरुद्ध है तथा ज्ञान की शिक्षा देने वाले शिष्ट शास्त्रों का विरोध करने वाला है। यह अज्ञान पथ ही नरक में तिर्यक् योनि (जानवरों की योनि) में जन्म लेने का कारण है।।४८-५०।।

पशु-पक्षी की योनियों में गये हुए जीवों के दुःख का कारण यह अज्ञान कहा जाता है। उस तिर्यक् योनि में जन्म लेने से मनुष्य को अनेकों प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।। ६ प्रकार के कारणों एवं विषयों में जो भी कष्ट जीव को भोगने होते हैं, वे सब इच्छाओं को दबाने से होते हैं। अज्ञान के विषयभोगों में तो प्रतिघात (एक-दूसरे को धोखा देना, मारना, बदला लेना) सभी ओर है। अतः संसार में असफलता और ऐश्वर्य का अभाव अर्थात् समाज में प्रतिष्ठा, वह सब प्रतिघातात्मक ही स्मरण किये गये हैं। अर्थात् प्रतिघात करने से मनुष्य में ईश्वरत्व समाप्त हो जाता है। वह सर्वत्र निन्दा का पात्र बनता है।।५१-५२।। इस प्रकार पञ्च महाभूत निर्मित प्राणियों की चार प्रकार की तामसी वृत्तियाँ होती हैं। सात्त्विक भावना का यदि मन प्रदर्शन करता है, तो उस मन को सत्त्वस्थ मन कहा जायेगा।।५३।। जब बुद्धि में सत्त्व स्थित होता है, तब तत्त्वों में यथातत्त्व को देखकर पूरी तरह उस तत्त्व में औचित्यानौचित्य का निर्णय करने में बुद्धि समर्थ हो जाती है। सत्त्वयुक्त मन वाली बुद्धि क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के अनेक होने का दर्शन करती है। यह

नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वै योग उच्यते। तेन बद्धस्य वै बंधो मोक्षो मुक्तस्य तेन च॥५५॥
संसारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिंगेन मुच्यते। निःसंबंधो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते॥५६॥

स्वात्मन्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः॥५७॥
स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शिभिः।
पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीये रागसंक्षयात्॥५८॥
तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षकारणम्।
लिंगाभावात्तु कैवल्यं कैवल्यात्तु निरंजनम्॥५९॥

निरंजनात्वाच्छुद्धस्तु नेताऽन्यो नैव विद्यते। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात्॥६०॥
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पंचलक्षणे। अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः कर्त्तव्यो दोषदर्शनात्॥६१॥

आत्माओं का अनेक होना देखना ही सच्चा ज्ञान है। आत्माओं के अनेकत्व को जान लेने पर सत्त्वस्थ बुद्धि उसके एकत्व रूप परब्रह्म के सान्निध्य में जाने के लिये प्रयत्नशील होती है। अतः आत्माओं के अनेक होने का दर्शन ही ज्ञान है और उस ज्ञान से ही योग की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहा जाता है। मनुष्य सांसारिक विषयों में फँसे हुए अज्ञान के द्वारा बंधन में पड़े हुए व्यक्ति का बन्धन होता है और जब उस अज्ञान से मनुष्य मुक्त हो जाता है, तब उस मुक्त जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है।।५४-५५।। सांसारिक विषयों की समाप्ति हो जाने पर जब जीव को मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तब वह शरीर से मुक्त हो जाता है। उस समय उस जीव का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, उसकी अचैतन्य अवस्था रहती है और अपनी आत्मा में ही स्थित रहता है।।५६।।

जीव की यह अवस्था जबकि वह अपनी आत्मा में ही स्थित होता है, विरूप नाम से लिखी जाती है। सूतजी बोले कि इस प्रकार मैंने संक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण बताया है।।५७।। तत्त्वदर्शियों ने वह मोक्ष भी तीन प्रकार का बताया है। उसमें पहला मोक्ष ज्ञान के बल से सांसारिक विषय-वासनाओं से वियोग होना कहा जाता है तथा दूसरा मोक्ष जीवों के प्रति राग-द्वेष का पूर्णतः समाप्त हो जाना है, अर्थात् न ही किसी से प्रेम अति, न ही किसी से वैर, यह भाव पैदा होना ही दूसरा मोक्ष है तथा तीसरा मोक्ष है, तृष्णा का क्षय। अतः इस प्रकार तीन प्रकार के मोक्ष हैं। मोक्ष क्या? ये सब उस कैवल्य मोक्ष के मार्ग हैं। पहले सांसारिक विषयों से वियोग होना तथा जब सांसारिक विषयों से जीव अलग होगा, तो उनके प्रति आसक्ति और द्वेष तो रह ही जायेगा। अतः दूसरा मोक्ष है—रागद्वेष की समाप्ति तथा जब सांसारिक विषयों एवं जीवों के प्रति रागद्वेष समाप्त हो जायेगा, तब उनके प्रति तृष्णा तो रह ही जायेगी, अतः यहाँ तृष्णा का भी नाश ही, परम मोक्ष का कारण है। इस प्रकार ये तीन ही मोक्ष के कारण बताये गये हैं। अतः जब मोक्ष प्राप्त हो जाता है, तब इस शरीर का अभाव हो जाता है और शरीर का अभाव होने पर कैवल्य हो जाता है, अर्थात् जीव केवल एक ही होता है तथा कैवल्य से जीव निरञ्जन हो जाता है। अर्थात् जब जीव केवल एक ही रह जाता है, तब वह निरंजन (निष्पाप) रूप हो जाता है और निरंजनत्व से जीव को शुद्धत्व प्राप्त होता है तथा जब जीव विशुद्ध हो जाता है, तब उसे मार्गदर्शक की कोई आवश्यकता नहीं रहती।।५८-५९½।। आगे सूतजी कहते हैं कि इसलिये अब मैं वैराग्य में दोष देखने वाले कारणों को बताऊँगा। पाँच प्रकार के दिव्य (देवों से सम्बन्धित) और मनुष्यों

तापप्रीतिविषादानां कार्यं तु परिवर्जनम्। एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत्॥६२॥
अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्यानुचिंत्य च। विशुद्धं कार्यकरणं सत्त्वस्यातिनिषेवया॥६३॥
परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति। ततः प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा॥६४॥
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः। स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्नुणद्धि वै॥६५॥
प्राणस्थानानि भिंदन्हि छिंदन्मर्माण्यतीत्य च। शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूर्द्ध्वं तूत्क्रमते ततः॥६६॥
स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः। समासात्संवृते ज्ञाने संवृत्तेषु च कर्मसु॥६७॥
स जीवो नाभ्यधिष्ठानः कर्मभिः स्वैः पुराकृतैः। अष्टांप्राणवृत्तिं वै स विच्यावयते पुनः॥६८॥
शरीरं प्रजहन्सोंऽते निरुच्छ्वासस्ततो भवेत्। एवं प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते॥६९॥
यथेह लोके स्वप्ने तं नीयमानमितस्ततः रंजनं तद्विधेयस्य ते तान्यो न च विद्यते॥७०॥
तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम्। शब्दाद्ये विषये दोषदृष्टिर्वै पंचलक्षणे॥७१॥
अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः प्रीतितापविवर्जनम्। वैराग्यकारणं ह्येते प्रकृतीनां लयस्य च॥७२॥

अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेयाः पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम्।
अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतांताः प्रकृतेर्भवाः॥७३॥

से सम्बन्धित विषयों में अनासक्ति और द्वेषभाव का व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि उनमें दोष दिखायी देते हैं।।५९½-६१।। ताप, प्रीति, विषाद (दुःख) को छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार वैराग्य का आश्रय ग्रहण कर शरीरी (आत्मा) ममता रहित हो जाता है।।६२।। यह संसार अनित्य, अमंगलकारी है और दुःखपूर्ण है। इस प्रकार सत्त्वगुण से निविष्ट बुद्धि से विचार कर कार्य एवं कारण से विशुद्ध तत्त्व को जानकर ही परिपक्व कषाय चित्त होकर अर्थात् निःस्वादुचित्त होकर जीव को समस्त दोषों का दर्शन होता है।।६३-६३½।। उससे महाप्रयाण काल में नैमित्तिक दोषों के कारण शरीर में तीव्र वायु से युक्त ऊष्मा का प्रकोप होता है और वह शरीर में पैदा होनेवाले समस्त दोषों को रोकता है।।६३½-६५।। वह वायु प्राणों के स्थानों को भेदता हुआ तथा मर्मस्थलों का छेदन करता हुआ शीतलता से और अधिक क्रोधित होता हुआ वायु ऊपर की ओर उत्क्रमण करता है।।६६।।

वह यह प्राणवायु सब प्राणियों के स्थानों में अवस्थित है तथा अन्त समय में सबकी यही दशा होती है। संक्षेप से समस्त चेतना एवं किये हुए कर्मों के संकुचित हो जाने पर वह जीव अपने किये गये पूर्व कर्मों के साथ शीर से स्वयं को अलग कर लेता है। आठों अंगोंसे प्राणों के व्यापार को वह समेट लेता है। अतः आठों अंग अपना-अपना काम बन्द कर देते हैं।।६७-६८।। इस शरीर को छोड़ता हुआ जीवात्मा श्वासरहित हो जाता है। इस प्रकार प्राणों द्वारा छोड़ा हुआ व्यक्ति मृत ऐसा कह दिया जाता है।।६९।। जिस प्रकार इस संसार में स्वप्न में इधर-उधर ले जाते हुए जीव को आनन्द प्राप्त होता है, स्वप्न समाप्त होने पर कुछ भी नहीं रहता, वही दशा प्राणों की तथा शरीर की है।।७०।। तृष्णा का समाप्त होना ही तीसरे मोक्ष का लक्षण कहा गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँच विषयों के प्रति द्वेष एवं बहुत अधिक आसक्ति (लगाव) का न रखना, प्रीति एवं ताप का त्याग ही वैराग्य एवं प्रकृति के लय के कारण कहे गये हैं।७१-७२।। आठ प्रकार की प्रकृतियाँ जाननी चाहिएँ, जो पहले ही क्रमानुसार कही

वर्णाश्रमाचारयुक्तः शिष्टः शास्त्राविरोधनः। वर्णाश्रमानां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम्।।७४।।
ब्रह्मादीनि पिशाचांतान्यष्टौ स्थानानि देवता। ऐश्वर्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम्।।७५।।
निमित्तमप्रतीघाते दृष्टे शब्दादिलक्षणे। अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम्।।७६।।
क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्जंते गुणमात्रात्मकानि तु। प्रावृट्काले पृथग्मेघं पश्यंतीव सचक्षुषः।।७७।।
पश्यंत्येवं विधाः सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा। खादतश्चान्नपानानि योनीः प्रविशस्तथा।।७८।।
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम्। जीवः प्राणस्तथा लिंगं करणं च चतुष्टयम्।।७९।।
पर्यायवाचकैः शब्दैरेकार्थैः सोऽभिलष्यते।
व्यक्ताव्यक्तप्रमाणोऽयं स वै भुंक्ते तु कृत्स्नशः।।८०।।
अव्यक्तानुग्रहांत च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत्। एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै विप्रमुच्यते।।८१।।

गयी हैं। जो अव्यक्त से लेकर पाँचों महाभूतों तक कही जाती हैं। यही आठ प्रकृति के लय हैं। शास्त्र से विरोध न करने वाले वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुयायी शिष्ट कहे जाते हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था के धर्म देवस्थानों की प्राप्ति के कारणभूत हैं। अर्थात् वर्ण और आश्रमों के धर्मों का पालन करने से देवताओं के स्थान प्राप्त होते हैं।।७३-७४।। ब्रह्मा से लेकर पिशाचों तक आठ देव स्थान कहे जाते हैं।[१] अणिमा आदि ईश्वरीय सिद्धियाँ भी आठ हैं।।७५।।

१. हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, जिह्वा, मुख, नासिका, कान और आँखें, ये आठ अंग हैं। देवस्थानों में रहने पर प्रत्यक्ष रूप में शब्दादि लक्षण प्रतिघातजन्य दुःख नहीं होते। ये आठ रूप, जो क्रमानुसार प्राकृत हैं। वे क्षेत्रज्ञों (आत्माओं) में अनुसरण करते हुए स्थित रहते हैं। उनमें पाँच रूप कुछ गुणमात्रात्मक हैं, अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँच ये हुए, जो प्रकृति भूत सेन्द्रिय शरीर में रहते हैं तथा तीन हैं—१. अप्रद्वेष अनभिष्वङ्ग (विषयों के प्रति राग-द्वेष का त्याग), २. प्रेम और ताप का त्याग, ३. तृष्णा का विनाश। इस प्रकार ये कुल आठ हुए। ये आठों जो प्रकृतिस्थ पञ्च महाभूत शरीर के गुण हैं, वे क्षेत्रज्ञ आत्मा में भी व्याप्त रहते हैं। जिस प्रकार वर्षाकाल में नेत्र वाले लोग मेघ को जल से पृथक् देखते हैं, उसी प्रकार इस प्रकार के सिद्ध पुरुष जीव को दिव्य चक्षु से देखते हैं। सामान्य लोग जीव को नहीं देख सकते। वह जीवात्मा खाने वाली और अन्न पान करने वाली योनियों में प्रवेश करता है। वे योनियाँ पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों अथवा मनुष्यों की होती हैं। अतः उन नीची-ऊँची सभी योनियों में प्रवेश करता है तथा वह क्रमानुसार उन निम्न और उच्च योनियों में दौड़ता रहा है।।७६-७८½।।

इस क्षेत्रज्ञ को जीव, प्राण, लिङ्ग और कारण आदि शब्दों द्वारा पुकारा जाता है, जिन सबका एक ही अर्थ है—जीवात्मा। व्यक्त (पञ्चभूतात्मक दृश्यमान पदार्थों), अव्यक्त (पंचभूतादि पदार्थों का मूल कारण प्रकृति) इन सबका प्रमाण यह जीवात्मा ही है। व्यक्त और पञ्चमहाभूत पञ्चतन्मात्राएँ एकादश इन्द्रियों से अहंकार महत्तत्त्व (बुद्धि युक्त) अव्यक्त (प्रकृति) वाले इस शरीर में जब तक जीवात्मा का प्रवेश नहीं, तब तक उसकी कोई पहचान नहीं, कोई प्रमाण नहीं है। जीवात्मा के अभाव में न कोई खा सकता है, न पी सकता है। यह जीवात्मा ही प्रकृति (शरीर) के माध्यम से खाता-पीता एवं भोग करता है। अतः वह जीवात्मा ही समस्त का भोग करता है।।७८½-८०।। अव्यक्त (प्रधान प्रकृति) की कृपा पर ही क्षेत्रज्ञ (पुरुष) इस शरीर में रहता है। शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर इसको छोड़ना ही पड़ेगा। जब इस रहस्य को समस्त जगत् के इन समस्त कारणों को जो भलीभाँति जान ले, वह प्राणी पवित्र हो जाता है और

नष्टं चैव यथा तत्त्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शने। यथेष्टं परिनर्याति भिन्ने देहे सुनिर्वृते॥८२॥
भिद्यते करणं चापि ह्यव्यक्तज्ञानिनस्ततः। मुक्तो गुण शरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वशः॥८३॥
नान्यच्छरीरमादत्ते दग्धे बीजे यथांकुरः। ज्ञानी च सर्वसंसाराविज्ञशारीरमानसः॥८४॥
ज्ञनाच्चतुर्दशाबुद्धः प्रकृतिस्थो निवर्तते। प्रकृतिं सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते॥८५॥
असद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते। अनामरूपं क्षेत्रज्ञं नामरूपं प्रचक्षते॥८६॥
यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते। क्षेत्रं प्रत्ययते यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते॥८७॥
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञैर्विभाष्यते। क्षेत्रं त्वत्प्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययः सदा॥८८॥
क्षपणात्कारणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च। भोज्यत्वविषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः॥८९॥
महदाद्यं विशेषांतं सवैरूप्यं विलक्षणम्। विकारलक्षणं तद्वै सोऽक्षरः क्षरमेति॥९०॥

उसे लोग विप्र की संज्ञा देते हैं।।८१।। संसार के सभी कारणों एवं तत्त्वों का भलीभाँति दर्शन कर लेने पर जीवात्मा यथेष्ट रूप से शरीर छोड़कर बाहर निकलता है। अव्यक्त (प्रकृति) और उसके कार्यभूत व्यक्त (शरीर) का ज्ञान होने के कारण प्राणी के अन्य जन्मादि कारणों का विनाश हो जाता है। गुणों के परिणामों से वह मुक्त हो जाता है और इस प्रकार शान्तिपूर्वक प्राणादि छोड़ने के बाद वह शरीर एवं मानस कर्मसूत्रों के सर्वथा विनष्ट हो जाने पर बीज के भस्म हो जाने पर अंकुर न निकलने की भाँति वह अन्य शरीर को धारण नहीं करता।।८२-८३½।। समस्त संसार का ज्ञान रखने वाला वह शुद्ध जीवात्मा है। अर्थात् जीवात्मा ज्ञान स्वरूप है, वही ज्ञानी है तथा यह शरीरयुक्त जो मानस है, वह अविज्ञ है, इस आत्मा के संयोग से ही उसमें ज्ञान की उत्पत्ति होती है। चौदह प्रकार के ज्ञानों से अच्छी तरह परिचित होकर वह शुद्धात्मा प्रकृति से निवृत्त होता है।।८३½-८४½।। विद्वान् लोग प्रकृति को ही सत्य कहते हैं। प्रकृति के विकारों (महत्तत्त्व, अहंकार, मन सहित दशों इन्द्रियों, पंचतन्मात्राओं एवं पञ्चमहाभूतों) को असत्य कहते हैं, जिनका असद्भाव है, अर्थात् जो विनाशशील है, वे असत्य हैं तथा जो नित्य एवं जो सदा रहने वाला है, वह सत्य है। इस प्रकार प्रकृति सदा रहने वाली एवं अविनाशशील है। वह क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) जिसका न कोई नाम है, न कोई रूप है, वही जीवात्मा जब प्रकृति से मिल जाता है, तब वह नाम और रूप वाला है।।८४½-८६।।

क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) क्षेत्र (प्रकृति) को जानता है, इसलिए उसे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। उस क्षेत्र को भलीभाँति जानने के कारण क्षेत्र क्षेत्रज्ञ शुभ कहा जाता है।।८७।। जीवगण इसीलिए शुभ क्षेत्रज्ञ का स्मरण करते हैं। क्षेत्र प्रत्यय (ज्ञान) है, तो क्षेत्रज्ञ सदैव प्रत्ययी (ज्ञानी) है।।८८।। क्षय, करण, क्षतत्राण, भोज्य एवं विषयत्व के कारण क्षेत्रज्ञ लोगों ने उसे क्षेत्र नाम दिया है तथा वह नाम उचित है; क्योंकि यह शरीर (क्षेत्र) क्षय = नाशशील, करण जीवात्मा है, क्षतत्राण है, क्योंकि जीवात्मा की क्षत से रक्षा करता है तथा यह जीवात्मा का यह शरीर भोज्य पदार्थ है, जीवात्मा भोक्ता है तथा यह शरीर उस आत्मा का विषय है। आत्मा विषयी है, अतः इस शरीर को उचित ही क्षेत्र नाम दिया गया है। जैसे किसान और उसका खेत किसान है, तो खेत है किसान, किसान नहीं तो खेत नहीं किसान ही खेत में बीज बोता है। अतः जीवात्मा किसान क्षेत्रज्ञ है और यह शरीर (प्रकृति) क्षेत्र (खेत) है।।८९।। रूपरहितता वाले महत्तत्त्व बुद्धि से लेकर विशेष तक सभी पदार्थ समूह विकार कहे जाते हैं। उन सभी विकारों, इन्द्रियों, पञ्चभूतों, तन्मात्राओं से बने शरीरों में पुनः क्षरण होता देखा गया है, इसीलिए उन्हें क्षर कहा जाता है।।९०।।

तमेवानुविकारं तु यस्माद्वै क्षरते पुनः। तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते॥९१॥
संसारे नरकेभ्यश्च त्रायते पुरुषं च यत्। दुःखत्राणात्पुनश्चापि क्षेत्रमित्यभिधीयते॥९२॥
सुखदुःखमहंभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते। अचेतनत्वाद्विषयस्तद्विधर्मा विभुः स्मृतः॥९३॥
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत्। अक्षरं तेन वाप्युक्तम क्षीणत्वात्तथैव च॥९४॥
यस्मात्पूर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते। पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते॥९५॥
पुरुषं कथय स्वाथ कथितोऽज्ञैर्विभाष्यते। शुद्धो निरंजनाभासो ज्ञाता ज्ञानविवर्जितः॥९६॥
अस्तिनास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः।
नैर्हेतुकात्त्वनिर्देश्यादहस्तस्मिन्न विद्यते॥९७॥
शुद्धत्वान्न तु दृश्यो वै द्रष्टृत्वात्समदर्शनः। आत्मप्रत्ययकारित्वादन्यूनं वाप्यहेतुकम्॥९८॥
भावग्राह्यमनुमानच्चिंतयन्न प्रमुह्यते। यदा पश्यति ज्ञातारं शांतार्थं दर्शनात्मकम्॥९९॥

महत्तत्त्व (बुद्धि) विशेष पर्यन्त इनका कोई रूप नहीं, न ही इनका कोई विशेष लक्षण ही है। इनका लक्षण है विकार अर्थात् ये सब प्रकृति के विकार हैं। इसीलिये ये क्षर और अक्षर दोनों कहे जाते हैं। इनमें प्रकृति अक्षर है, क्योंकि उसका क्षरण नहीं होता तथा अन्य सभी महत्तत्त्व से लेकर पञ्चमहाभूतों तक सभी क्षर हैं, क्योंकि उनमें क्षरण होता रहता है।।९१।। संसार में जो जीवात्मा (पुरुष) की नरक से रक्षा करता है तथा जो जीवात्मा पुरुष की दुःख से, दुःखों से रक्षा करता है, इसलिए इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है।।९२।। सुख और दुःखों का अहंभाव से भोग करता है, अर्थात् मैं भोगता हूँ, इस भाव से सुख और दुःखों को भोग करता है, इसलिए क्षेत्र को भोग्य कहा जाता है। पुरुष अचेतन विषय होने के कारण वह सर्वव्यापी विभु नाम से पुकारा जाता है।।९३।।

अब पुरुष (जीवात्मा) के विषय में बताते हैं कि जो न कभी नष्ट होता है और न कभी घटता है। जो अपने विकारों से फैलता बढ़ता है, इसलिए अक्षर नाम से भी विख्यात है, अतः न क्षीण होने के कारण वह अक्षर कहा जाता है।।९४।। पुर में (शरीर में) सदा शयन करता (पुरिशेते) इस व्युत्पत्तिजन्य अर्थ के अनुसार उस जीवात्मा का नाम पुरुष पड़ा है। पुर का प्रत्ययी होने के कारण भी इस जीवात्मा को पुरुष कहा गया है।।९५।।

अब पुरुष के लक्षण क्या हैं? उसे किस रूप में जानते हैं? इसे बता रहे हैं, सुनिये। वह पुरुष शुद्ध, निष्पाप, प्रकाशस्वरूप और ज्ञान एवं अज्ञान से रहित है।।९६।। वह है, नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता, अतः है, नहीं है, इन विशेषणों से रहित है (उसके लिए, वह बँधा हुआ) है, मुक्त (छूटा हुआ है) चलता है, नहीं चलता है, ये कोई भी विशेषण लागू नहीं होते। वह हेतुवाद से रहित है, उसका कोई कारण नहीं, न ही वह किसी का कारण है। उस पुरुष में अहंभाव नहीं है।।९७।। वह परम शुद्ध है। अपनी परम शुद्धता के कारण वह देखने योग्य नहीं है, अर्थात् वह पुरुष इतना शुद्ध (सूक्ष्म) है कि देखा भी नहीं जा सकता है; परन्तु वह सबको देखने वाला है अर्थात् वह किसी को दिखायी नहीं देता; परन्तु वह सबको देखता है, सबको देखने वाला होने के कारण वह समदर्शन है, अर्थात् वह सर्वत्र समान देखता है। यहपुरुष स्वयं ही आत्मज्ञान करने वाला है। वह महान्, है, विशाल है, वह कम नहीं है तथा वह अहैतुक है, अर्थात् उसका कोई कारण नहीं है।।९८।। वह भावनाओं द्वारा ग्राह्य तथा अनुमानों और चिन्तनों द्वारा ज्ञेय है। इन उपायों द्वारा देखे जानने वाले मोह में नहीं फँसते।।९८½।। इस दृश्य एवं अदृश्य विश्व

दृश्यादृश्येषु निर्देश्यं तदा तद्बुर्द्धरं वरम्। विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्वशः॥१००॥
स्वेनात्मना तथात्मानं कारणात्मा नियच्छति। प्रकृतौ कारणे तत्र स्वात्मन्येवोपतिष्ठति॥१०१॥
अस्तिनास्तीति सोऽन्यो वा इहामुत्रेति वा पुनः।
एकत्वं वा पृथक्त्वं वा क्षेत्रज्ञः पुरुषोऽपि वा॥१०२॥
आत्मा वा स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा।
कर्त्ता वा सोऽप्यकर्त्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव च॥१०३॥
यद्गत्वा न निवर्त्तंते क्षेत्रज्ञं तु निरंजनम्। अवाच्यं तदनाख्यानादग्राह्यं वादहेतुभिः॥१०४॥
अप्रतर्क्यमचिंत्यत्वादवार्यत्वाच्च सर्वशः। नालप्यं वचसा तत्त्वमप्राप्यं मनसा सह॥१०५॥
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शांते क्षीणे निरंजने। व्यपेतसुखदुःखे च निरुद्धे शांतिमागते॥१०६॥
निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यं न विद्यते।
एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः॥१०७॥
सृज्यते ग्रसते चैव व्यक्तौ पर्यवतिष्ठते। ज्ञेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्गे प्रवर्त्तते॥१०८॥
अधिष्ठानं प्रपद्येत तस्यांते बुद्धिपूर्वकम्। साधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो विदितस्तयोः।
अनादिमांश्च संयोगो महापुरुषजः स्मृतः॥१०९॥

प्रपंच में एकमात्र निर्देश्य परम श्रेष्ठ, ज्ञानमय, शान्तिमय, सर्वज्ञ पुरुष को जब प्राणी देखता है, तभी वह समस्त तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा तभी उसे वास्तविक शान्ति उपलब्ध होती है। विशेष ज्ञान रखने वाला वह जीवात्मा इस संसार में सबको अलग-अलग रूप में नहीं देखता है।।१००।। आत्मा द्वारा वह कारणात्मा ब्रह्म से संयुक्त होता है। प्रकृति एवं कारण में वह सर्वत्र अपनी आत्मा में ही उपस्थित होता है।।१०१।। इस लोक अथवा परलोक में वह है और नहीं भी है, वह एक है, अथवा अनेक है, क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है।।१०२।। वह आत्मवान् है अथवा निरात्मा है, चेतन है अथवा अचेतन है, कर्ता है अथवा अकर्ता है, भोक्ता है अथवा भोज्य है।।१०३।। वह पुरुष (आत्मा) जो जाकर के फिर नहीं लौटता है, शरीर से निकलने के बाद कितने ही प्रयास करो, फिर नहीं लौटता है। वह क्षेत्रज्ञ निरंजन (निष्पाप) है। उसका कोई नाम नहीं है, इसलिए उसका कोई आख्यान (वर्णन) नहीं किया जा सकता, उसका कोई हेतु नहीं होने के कारण वह अग्राह्य है।।१०४।। सब प्रकार के चिन्तन का विषय न होने के कारण तथा कहीं न हटाया जाने के कारण वह जीवात्मा तर्क का भी विषय नहीं है, अतः वह ऐसा है, वैसा है, यह तर्क भी नहीं किया जा सकता है। वाणी से उसको बताया नहीं जा सकता। मन के साथ उसका तत्त्व प्राप्त करने योग्य नहीं है।।१०५।।

जब वह क्षेत्रज्ञ (पुरुष) निर्गुण है, शुद्ध है, शान्त है, क्षीण है, निर्दोष, सुख और दुःख से परे है, शक्ति आने पर निरुद्ध है तथा निरात्मक है, इसलिए वह बताने योग्य अथवा न बताने योग्य नहीं है।।१०६-१०६½। व्यक्त (पञ्चभूतादि तत्त्व) एवं अव्यक्त (प्रकृति) का संहार और विस्तार यह पुरुष ही करता है। क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित यह पुरुष ही सृष्टि की रचना करता है और उसे ग्रस लेता है। उसके बाद पुनः सृष्टि की रचना करता है। यह पुरुष ही व्यक्ति में पर्यवस्थित रहता है।।१०६½-१०८।। बुद्धिपूर्वक अहंकार तन्मात्राओं सेन्द्रिय पंच महाभूतों की सृष्टि एवं लय उसी के अधिष्ठान भूत होते हैं। प्रकृति और पुरुष की समानता और असमानता घटित होती है। उसका संयोग अनादि है।

यावच्च सर्गप्रतिसर्गकालस्तावज्जगत्तिष्ठति संनिरुध्य।
पूर्वं हि तस्यैव च बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तते तत्पुरुषार्थमेव॥११०॥
एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वा प्राधानिकी चेश्वरकारिता वा।
अनाद्यनंता ह्यभिमानपूर्वकं वित्रासयन्ती जगदभ्युपैति॥१११॥
इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः। उक्तो ह्यस्मिंस्तदात्यंतं कालं ज्ञात्वा प्रमुच्यते॥११२॥
इत्येष प्रतिसर्गो वस्त्रिविधः कीर्त्तितो मया।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्त्तयाम्यहम्॥११३॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे प्रतिसर्गो नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

वह कब हुआ, यह आदिकाल ज्ञात नहीं है, वह चिरकाल से तथा वह संयोग महापुरुष के द्वारा उत्पन्न किया हुआ स्मरण किया गया है।।१०९।। जब तक सृष्टि और प्रलय काल होता है, तब तक वह पुरुष जगत् को सम्यक् प्रकार से रोककर स्थित रहता है। उस अवस्था में पुरुष से अबुद्धिपूर्वक यह सृष्टि प्रवर्तित होती है, उसे पुरुष का पुरुषार्थ ही मानते हैं। संसार की इस सृष्टि एवं प्रलय की प्रक्रिया को कोई तो ईश्वरकृत मानता है, तो कोई प्रकृतिकृत। यह प्रकृतिकृत हो या ईश्वरकृत; परन्तु अनादि एवं अनन्त है। संसार को अभिमानपूर्वक विकसित करती हुई, यह प्रकृति ही संसार की प्रतिज्ञा करती हैं अर्थात् यह प्रकृति जब विशेष रूप से अपने सत्त्वगुण से विशेषतः त्रासित होती है, तब संसार की रचना (जीवन की उत्पत्ति) करती है।।१११।।

इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग तृतीय हेतु का लक्षण है, जिसका वर्णन किया गया है। इसमें अत्यन्त निष्ठा रखता हुआ व्यक्ति अत्यन्त काल को जानकर मुक्ति प्राप्त करता है। सूतजी ने कहा कि इस प्रकार मैं आप लोगों से तीन सर्गों की चर्चा विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुका, अब आगे क्या वर्णन करना है? आप लोग बताइए।।११२-११३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद तृतीय अध्याय प्रतिसर्ग वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

ब्रह्माण्डावर्तनाम

चतुर्थोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

श्रुतं समुहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम्। प्रजानां मनुभिः सार्द्धं देवानामृषिभिः सह॥१॥
पितृगंधर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम्। दैत्यानां दानवानां च यक्षाणामेव पक्षिणाम्॥२॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि विविधा धर्मनिश्चयाः। विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम्॥३॥
तत्कथ्यमानमस्माकं भवता श्लक्ष्णया गिरा। मनः कर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसन्निभम्॥४॥
एवमाराध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः। पप्रच्छुः सात्रिणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्त्तनम्॥५॥
कथं सूत महाप्राज्ञ पुनःसर्गः प्रपत्स्यते। बन्धेषु संप्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये॥६॥
विकारेष्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते। अप्रवृत्ते ब्रह्मणा तु सहसा योज्यगैस्तदा॥७॥
कथं प्रपत्स्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्। एवमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः॥८॥
व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्त्तनम्। अत्र वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय–४

ब्रह्माण्डावर्त वर्णन

ऋषियों ने सूतजी से कहा—हे सूतजी! आप द्वारा वर्णित मनुओं और ऋषियों के साथ देवताओं और प्रजाओं के महान् आख्यान को हमने सुना।।१।। पितृगण, गन्धर्वों, भूतगणों, पिशाचों, सर्पगणों, राक्षसों, दैत्यों, दानवों, यक्षों, पक्षियों के अति अद्‌भुत कर्मों, उनके अनेकों प्रकार के धर्मनिश्चयों और उनकी विचित्र कथाओं को तथा उनके अग्रजन्मों के वर्णनों को आपने हमें मधुर वाणी से कहा है। जो कथाएँ मन के लिए सुखकर हैं तथा मन को अमृत के समान प्रसन्न करती हैं।।२-४।। इस प्रकार महात्मा सूतजी की आराधना करके और उनका सत्कार करके उन सब याज्ञिक महर्षियों ने सूतजी से पूँछा।।५।। कि हे महाप्राज्ञ सूतजी! प्रलयकाल में जब सब सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण समान हो जाते हैं, संसार अन्धकारमय हो जाता है, तब पुनः सृष्टि की रचना कैसे होगी।।६।। प्रलयकाल में प्रकृति के समस्त विकारों महत्तत्त्व, अहंकार, एकादशेन्द्रिय, पंचतन्मात्राओं, पञ्चमहाभूतों को जब अव्यक्त प्रकृति अपने में विलीन कर लेती है, तब ब्रह्मा के अप्रवृत्त रहने पर सहसा पदार्थों के यौग से कैसे सृष्टि होगी? उस तथ्य को कृपया पूँछने वाले हमको बताइए।।७-७½।

ऋषियों ने जब इस प्रकार कहा, तब वे लोमहर्षण सूतजी प्रलय के बाद पुनः सृष्टि की रचना होने की व्याख्या करने का उपक्रम करने लगे।।७½-८½।। सूतजी बोले कि यहाँ अब मैं जिस प्रकार पुनः सृष्टि की रचना होती है,

पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समात्तान्निबोधत। दृष्टेनैवानुमेयं च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः॥१०॥
यस्माद्वाचो निवर्त्तंते त्वप्राप्य मनसा सह। अव्यक्त वत्परोक्षत्वाद्गहनं तद्दुरासदम्॥११॥
विकारैः प्रतिसंसृष्टो गुणः साम्येन वर्त्तते। प्रधानं पुरुषाणां च साधर्म्येणैव तिष्ठति॥१२॥
धर्माधर्मो प्रलीयते ह्यव्यक्ते प्राणिनां सदा। सत्त्वमात्रात्मको धर्मो गुणे सत्त्वे प्रतिष्ठितः॥१३॥
तमोमात्रात्मको धर्मो गुणे तमसि तिष्ठति। अविभागेन तावेतौ गुणसाम्ये स्थितावुभौ॥१४॥
सर्वं कार्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते। अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान्गुणान्॥१५॥
एवं तानभिमाने प्रपत्स्य[1]ति पुनस्तदा। यदा प्रवर्त्तितव्यं तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः॥१६॥
भोज्यभोक्तृत्वसंबंधाः प्रपत्स्यंते च तावुभौ।
तस्मादक्षरमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकम्॥१७॥
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तत्र वैषम्यं भजते तु तत्। ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः॥१८॥
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति। महदाद्यं विशेषांतं चतुर्विंशगुणात्मकम्॥१९॥

वह बताऊँगा। यह तो पूर्व में भी पूर्व प्रसंगों की भाँति वह भी जानने योग्य है। आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये।।८½-९½।। प्रत्यक्ष प्रमाण से जो अनुमान करने योग्य है, जिसको मन से भी प्राप्त न करके वाणी भी नहीं बता सकती है। उसे युक्तिपूर्वक तर्क के साथ वर्णन करूँगा।।९½-१०½।।

यह प्रकृति परोक्ष होने के कारण अव्यक्त के समान है, किसी भी इन्द्रिय से इसे जाना नहीं जा सकता तथा किसी भी प्रकार से इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकृति के जितने भी महत्तत्त्व, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ तथा पाँच महाभूत, ये तेईस विकार हैं, उन सब विकारों से प्रकृति सदैव मिली हुई रहती है, अर्थात् जो गुण प्रकृति में हैं, वे ही गुण उसके विकारों में वर्तमान रहते हैं। प्रकृति और उसके विकारों के गुणों में समानता रहती है। पुरुषों की प्रकृति साधर्म्य से स्थित रहती है, अर्थात् जो-जो गुण प्रकृति में होते हैं, वे गुण पुरुष में समान रूप से समाविष्ट हो जाते हैं।।१०½-१२।। अव्यक्त (प्रकृति) में प्राणियों के धर्म और अधर्म सदा विलीन हो जाते हैं। प्रकृति के तीन गुण हैं, सत्त्व, रजस् और तमस्। सत्त्वमात्रात्मक धर्म सत्त्वगुण में स्थित रहता है। तमोमात्रात्मक धर्म तमोगुण में स्थित रहता है। बिना विभाग किये हुए ये दोनों गुण सत्त्वगुण और तमोगुण समानता से स्थित रहते हैं।।१३-१४।। सृष्टि में सब कार्य बुद्धि से पूर्व जो प्रकृति तत्त्व है, वही करता है। अबुद्धि पूर्व क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) उन गुणों को अपने में अधिष्ठित करता है, अर्थात् जो प्रकृति के गुण हैं, उन्हीं गुणों को आत्मा स्वीकार करता है।।१५।। इस प्रकार जब क्षेत्रज्ञ प्रकृति के साथ मिलता है, तो बुद्धि से संयुक्त है और फिर तब अभिमान (अहंकार) से भी मिलता है, जब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ (प्रकृति और पुरुष) दोनों का मिलन होता है, तब भोज्य और भोक्ता सम्बन्ध स्थापित होता है।।१५½।। इसलिए तीन गुणों वाला, कभी नष्ट न होने वाला अव्यक्त समानता में स्थित होकर जब पुरुष में अधिष्ठित होता है, तब उसमें विषमता पैदा हो जाती है। उसके बाद प्रकृति और पुरुष दोनों व्यक्त (सेन्द्रिय पञ्चतत्त्वभूत शरीर) में अधिष्ठित होंगे।।१५½-१८।। जब प्रधान तत्त्व (प्रकृति) क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित हो जाती है, तब यह प्रकृति महदादि से पञ्चभूत

१. आत्मनेपदेनार्षम्।

क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रवत्स्र्यंतः[1]। आदिदेवः प्रधानस्यानुग्रहाय प्रचक्षते॥२०॥
अनाद्यौ वरमुत्पादौ उभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ। अनादिसंयोगयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च॥२१॥
अबुद्धिपूर्वकं युक्तमशक्तौ तु वरौ तदा। अप्रत्ययममोघं च स्थितावुदकमत्स्यवत्॥२२॥
प्रवृत्तपूर्वतौं तौ पूर्वं पुनः सर्वं प्रपत्स्यते। अज्ञा गुणैः प्रवर्त्तंते रजःसत्त्वतमोऽभिधैः॥२३॥
प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नो महत्त्वभूतादिविशेषतां च।
विशेषतां चेंद्रियतां च याति गुणावसानौषधिभिर्मनुष्यः॥२४॥

पर्यन्त समस्त व्यक्त शरीर में विकार पैदा करेगी। अर्थात् ये सब एक-दूसरे के विकार से पैदा होते हैं। भाव यह कि पुरुषाधिष्ठित प्रकृति में जब सत्त्व को उद्रेक हुआ, तब प्रकृति का विकार, जो त्रिगुणात्मक सत्त्व, रजस् और तमस् युक्त है, वह त्रिगुणात्मक होने के कारण पञ्चमहाभूतों और इन्द्रियों का कारण है। प्रकृति से जैसे महत्तत्त्व व्याप्त है, उसी तरह महत्तत्त्व से अहंकार व्याप्त है। भूतादि रूप तामस अहंकार ने विकृत होकर शब्द तन्मात्रात्मक आकाश को पैदा किया। शब्द तन्मात्रा में विकार पैदा हुआ तो स्पर्श तन्मात्रात्मक वायु की उत्पत्ति हुई, तब आकाश ने वायु को आवृत किया, फिर वायु विकृत हुआ, तब तेजमात्रात्मक अग्नि को उत्पन्न किया, जो वायु से आवृत रहा, फिर अग्नि विकृत हुआ तो उसने रसमात्रात्मक जल को उत्पन्न किया, जो अग्नि से आवृत रहा, फिर जब जल में विकृति पैदा हुई तो उसने गन्धतन्मात्रात्मक पृथ्वी को पैदा किया, जो पृथ्वी जल से आवृत रही। फिर उधर अहंकार राजसिय से मन और दश इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार से इन चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति वैकारिक है और सभी महदादि से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सभी चौबीस तत्त्व गुणात्मक हैं। ये सभी प्रकृति के विकार हैं, इसलिए प्रकृति के गुणों से युक्त हैं।।१९।। क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) प्रधान (प्रकृति) में वर्तमान रहता है तथा वह सबसे पहले उत्पन्न है, वह जीवात्मा आदिदेव है तथा वह सृष्टि रचना करने के लिए प्रकृति पर अनुग्रह करता है।।२०।।

ये दोनों ही अव्यक्त और क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्रकृति और पुरुष या यों कहिये कि सेन्द्रिय पञ्चभूतात्मक शरीर का मूल (प्रधान तत्त्व) (प्रकृति) और आत्मा ये दोनों ही अनादि हैं। इनका आदि काल नहीं है, दोनों संसार को पैदा करने वाले हैं और दोनों सूक्ष्म स्मरण किये गये हैं तथा इनका संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है तथा सब कुछ क्षेत्रज्ञ पर ही निर्भर है। क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) के रहने पर ही प्रकृति का अस्तित्त्व है। जीवात्मा के रहने पर प्रकृति सक्रिय होती है, न रहने पर उसके कोई क्रिया नहीं होती।।२१।।

जब तक प्रकृति में क्षेत्रज्ञ की व्याप्ति नहीं होती, जब तक प्रकृति में क्षेत्रज्ञ अधिष्ठित नहीं होता, तब तक उस प्रकृति का विकृत तत्त्व बुद्धि भी कार्य नहीं करता अर्थात् प्रकृति अबुद्धिपूर्वक रहती है तथा प्रकृति अशक्त रहती है। क्षेत्रज्ञ के बिना अव्यक्त (प्रकृति) ज्ञानविहीन तथा अमोघ है तथा उसकी स्थिति जल और मछली के समान है, जैसे मछली जल के बिना जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार यह प्रकृति (अव्यक्त) क्षेत्रज्ञ के बिना नहीं रह सकती।।२२।। प्रवृत्ति से पूर्व अर्थात् सृष्टि करने से पहले दोनों पूरी तरह एक-दूसरे में व्याप्त होते हैं, वह ज्ञानहीन पुरुष प्रकृति के रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण से प्रवृत्त होता है।।२३।। प्रवृत्ति के समय महत्तत्त्व (बुद्धि) से लेकर पंचमहाभूतादि विशेषों तक सभी तत्त्व रजोगुण से आवृत होते हैं तथा रजोगुण आवृत महत्तत्त्व बुद्धि भूतादि विशेषता को प्राप्त होती

१. बुद्धिः स्यसनोरिति परस्मैपदम्।

सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम्।
रजःसत्त्वतमोव्यक्ता विधर्माणः परस्परम्॥२५॥
आद्यंतं वै प्रपत्स्यंते क्षेत्रमज्ञाम्बु सर्वशः। संसिद्धकार्यकरणा उत्पद्यंतेऽभिमानिनः॥२६॥
सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यंते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च।
प्राक्सृतौ ये त्वसुवहाः साधकाश्चाप्यसाधकाः॥२७॥
असंशांतास्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह। कार्याणि प्रतिपत्स्यंते उत्पत्स्यन्ते पुनः पुनः॥२८॥
गुणमात्रात्मकावेव धर्माधर्मौ परस्परम्। आरप्संते हि चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण वा॥२९॥
शर्वस्तुल्यप्रसृष्ट्यर्थं सर्गादौ याति विक्रियाम्। गुणास्तं प्रतिधीयंते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥३०॥
गुणास्ते यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्या प्रतिपेदिरे। तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥३१॥

है, ठीक वैसे ही, और फिर वह भूतादि विशेषता इन्द्रियता को प्राप्त करती है, अर्थात् जब तन्मात्रात्मक पञ्चभूतों की उत्पत्ति हो जाती है, तब सबके संकल्प-विकल्पात्मक मन का अहंतत्त्व से प्रादुर्भाव होता है। फिर शब्द तन्मात्रा के ज्ञानार्थ श्रोत्रेन्द्रिय का रसतन्मात्रा के ज्ञानार्थ त्वगिन्द्रिय का फिर रूपतन्मात्रात्मक को देखने के लिए नेत्रों का इस तन्मात्रात्मक जल के स्वाद के लिए जिह्वा का तथा गन्धतन्मात्रात्मक पृथ्वी के ज्ञानार्थ घ्राणेन्द्रिय का प्रादुर्भाव हुआ। तदनुसार पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी पैदा हुईं, जो सब पुरुष से अधिष्ठित हैं तथा प्रकृति के गुणों से अभिभूत हैं तथा गुणों की समाप्ति की औषधियों से मनुष्य गमन करता है।।२४।। सत्य का मनन करने वाले ध्यानी लोग इस प्रकृति को सत्त्व, रजस् और तमस् युक्त विशेष धर्म वाली तथा एक-दूसरे की कारण मानते हैं।।२५।। ये क्षेत्र (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (पुरुष) आदि से अन्त तक सब प्रकार से ये अभिमानी कार्य और कारण के क्रम से उत्पन्न होते चले जाते हैं तथा कार्यकारण ही इनकी सफलता का आधार है।।२६।। अव्यक्त से पूर्व ही सब सत्त्वगुण प्रपन्न हो जाते हैं, अर्थात् जब प्रकृति सृष्टि के लिए प्रवृत्त होती है, तब उसमें सत्त्वगुण का उद्रेक होता है। सृष्टि से पहले प्राणों को वहन करने वाले सत्त्वगुण साधक और असाधक दोनों होते हैं।।२७।। अर्थात् सत्त्वगुण प्राणों को देने वाले हैं, अर्थात् सत्त्वगुण का उद्रेक है, तो शरीर साधक होता है, नहीं होने पर असाधक होता है।।२७।।

ये सब अभिमानी महत्तत्त्व से लेकर पञ्चभूत पर्यन्त सभी स्थान और प्रकरणों के साथ पूर्णतः अशान्त निश्चेष्ट रहते हैं और फिर जब सत्त्वगुण से एक-दूसरे का कार्य कारण बनते हुए कार्य रूप में करण से निकलते हैं और कार्य को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार पुनः कार्यों को उत्पन्न करते हैं।।२८।। ये महदादि २४ तत्त्व कार्यकारण के रूप में गुणमात्रात्मक होते हैं। जो गुण कारण में होता है, वही गुण कार्य में आता है। यथा प्रकृति में जो गुण है, वही बुद्धि तत्त्व में होता है, फिर उसके कार्य, अहंतत्त्व में रहता है, उसके बाद उसके धर्म और अधर्म भी कार्यकारणात्मक होते हैं, जो धर्म या अधर्म कारण में है, वह कार्य में भी रहता है, यह तो प्रकृति का गुण ही है। इस प्रकार ये सभी तत्त्व परस्पर श्रेष्ठता और अनुग्रह के द्वारा सृष्टि का आरम्भ करते हैं।।२९।। भगवान् शर्व महादेव तुल्य सृष्टि करने के लिए सृष्टि के आदि में विशेष क्रिया को प्राप्त होते हैं, अर्थात् एक विशेष क्रिया करते हैं। वे उस व्यक्ति में उस गुण का प्रतिधान कर देते हैं, जो उनको अच्छा लगता है।।३०।। वे गुण तथा जो कर्म पूर्व सृष्टि में प्रतिपादित किये थे, वे ही गुण एवं कर्म पुनः पुनः सृष्टि करते हुए सिद्ध किये जाते हैं।।३१।।

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते। तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥३२॥
महाभूतेषु नानात्वमिंद्रियार्थेषु मूर्त्तिषु। विप्रयोगश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्त्तते॥३३॥
इत्येष वो मया ख्यातः पुनः सर्गः समासतः।
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम्॥३४॥
अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात्। प्रधानपुरुषाभ्यां तु जायते च महेश्वरः॥३५॥
स पुनः संभावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः। सृजते स पुनर्लोकानभिमान गुणात्मकान्॥३६॥
अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चात्मनः। युगपत्संप्रवर्त्तंते भूतान्येवेंद्रियाणि च॥३७॥
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्त्तते। विस्तरावयवस्तेषां यथाप्राज्ञं यथाश्रुतम्।
कीर्त्त्यतो वो यथापूर्वं तथैवाप्युपधार्यताम्॥३८॥
एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्तिं सुस्थितिं चाप्ययं च।
तस्मिन्सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः प्राप्नुवंति॥३९॥
यथा यूयं विधिना देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृतं प्राप्य शुद्धाः।
त्यक्त्वा देहानायुषोंऽते कृतार्थाः पुण्यं लोकं प्राप्य मोदध्वमेवम्॥४०॥

हिंसक, अहिंसक, कोमल स्वभाव, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य इन सब भावों से युक्त गुण उस व्यक्ति में भर दिये जाते हैं, जो जिसको अच्छे लगते हैं।।३२।। पञ्च महाभूतों में इन्द्रियों के विषय मूर्तियों में भूतों का वियोग गुणों से सम्यक् रूप से प्रवृत्त होता है।।३३।।

सूतजी ऋषियों से बोले कि इस प्रकार मैंने संक्षेप में पुनः सृष्टि की रचना को बताया है। अब मैं संक्षेप से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन करूँगा।।३४।। उस अव्यक्त कारण प्रकृति (Nature) जो कि नित्य है, जिसका कभी नाश नहीं है। जो सद् और असद् आत्मक है, अर्थात् वह है अथवा नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। वही प्रकृति अव्यक्त अथवा प्रधान कही जाती है, अतः उस प्रकृति से तथा पुरुष से महेश्वर पैदा होते हैं।।३५।। फिर वे महेश्वर उत्पन्न होकर ब्रह्म की संज्ञा प्राप्त करते हैं, अर्थात् ब्रह्मा नाम से पुकारे जाते हैं। उसके बाद अभिमान गुण वाले लोकों की रचना करते हैं।।३६।।

तब वे अपने महत्तत्त्व (बुद्धि) से अहंकार को पैदा करते हैं और उसी महत्तत्त्व से अपने पञ्चमहाभूतों को एक साथ पञ्च भूतों और इन्द्रियों को पैदा करते हैं।।३७।। फिर उन पञ्चमहाभूतों अनेकों प्रकार के भूतभेद पैदा होते हैं, क्योंकि संसार के जितने भी पशु-पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, पर्वत, नद-नदी, समुद्र सभी तो भूतभेद ही हैं। अतः उन महाभूतों से ये सभी अचेतन पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सृष्टि प्रवृत्त होती है, उन पंचमहाभूतों के अंगों का विस्तार, जो विद्वानों ने बताया है, उनको मैंने जो पूर्व में वर्णन किया है, वैसा ही समझें।।३८।। इस प्रकार नैमिषारण्य निवासी ऋषियों ने सूतजी द्वारा वर्णित लोकों की उत्पत्ति, उनकी सम्यक् स्थिति और प्रलय को सुनकर उस यज्ञ में यज्ञ की समाप्ति पर स्नान करके शुद्ध और पुण्य लोकों को प्राप्त किया।।३९।। जिस प्रकार तुम सब ने विधिपूर्वक देवताओं आदि का यज्ञ करके, स्नान करके शुद्ध हो गये हो। अतः तुम सब बहुत अधिक आयु वाले शरीरों को प्राप्त कर अन्त में कृतार्थ होकर पुण्यलोक को प्राप्त कर आनन्द करो।।४०।।

एते ते नैमिषेया वै दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च वै तदा।
जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वे तु सत्रिणः॥४१॥
विप्रास्तथा यूयमपि इष्टा बहुविधैर्मखैः। आयुषोंऽते ततः स्वर्गं गंतारः स्थ द्विजोत्तमाः॥४२॥
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायास्तु परिग्रहः। अनुषंग उपोद्घात उपसंहार एव च॥४३॥
एवमेव चतुःपादं पुराणं लोकसम्मतम्। उवाच भगवान्साक्षाद्वायुलोकहिते रतः॥४४॥
नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तम। तत्प्रसादं च संसिद्धं भूतोत्पत्तिलयान्वितम्॥४५॥
प्राधानिकीमिमां सृष्टिं तथैवेश्वरकारिताम्। सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति॥४६॥
इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽप च॥४७॥
स्थानेषु स महेंद्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः। ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोदते॥४८॥
तेषां कीर्तिमतां कीर्तिं जेशानां महात्मनाम्। प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति॥४९॥
धन्यंयशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम्। कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना॥५०॥
मन्वंतरेश्वराणां च यः कीर्तिं प्रथयेदिमाम्। देवतानामृषीणां च भूरिद्रविणतेजसाम्॥५१॥
स सर्वैर्मुच्यते पापैः पुण्यं च महदाप्नुयात्। यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि॥५२॥
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते। यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमंततः॥५३॥

ये सब नैमिषारण्य निवासी यज्ञकर्त्ता ऋषिलोग इस यज्ञ को देखकर और स्पर्श करके तथा सभी याज्ञिक स्नान कर स्वर्ग को चले गये।।४१।। सूतजी सामने उपस्थित ऋषियों से बोले कि जिस प्रकार वायुप्रोक्त कथा को सुनकर वे ऋषिगण स्वर्ग चले गये, उसी प्रकार द्विजश्रेष्ठ! ब्राह्मणों! तुमने भी अनेकों प्रकार के मुख्य यज्ञ किये हैं, अतः सभी लोग स्वर्ग जाने वाले हो।।४२।। इस प्रकार इस ब्रह्माण्डपुराण में प्रथम प्रक्रियापाद है, जिसमें कथा का परिग्रह है। उसके बाद अनुषंग पाद है, फिर उपोद्घात पाद है और अन्त में उपसंहार पाद ही है। इस चार पाद वाले लोकसम्मत ब्रह्माण्ड महापुराण लोककल्याण में लगे हुए भगवान् वायुदेव ने साक्षात् मुझसे कहा था।।४४।। अतः हे मुनिश्रेष्ठ! नैमिषारण्य में यज्ञ को प्राप्त कर मुनियों से पञ्चमहाभूतों तथा सब प्राणियों की उत्पत्ति, उनका विनाश वाली प्रधान प्रकृति वाली इस ईश्वर द्वारा करायी गयी सृष्टि की कथा को जानकर बुद्धिमान् पुरुष मोह को प्राप्त नहीं होता।।४५-४६।। विद्वान् ब्राह्मण इस ब्रह्माण्डपुराण वर्णित पुरातन इतिहास को सुनेगा अथवा सुनायेगा अथवा पढ़ेगा, वह देवों के राजा इन्द्र के स्थानों में सदा-सर्वदा आनन्द भोगेगा और फिर वह ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त कर ब्रह्म के साथ परमानन्द प्राप्त करेगा।।४७-४८।।

इन प्रजा की सृष्टि करने वाले कीर्तिमान् महापुरुषों की तथा राजाओं की कथा कहता हुआ मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है।।४९।। इस धन, आयु, यश और पुण्य प्रदान करने वाली वेदसम्मत पुराण कथा को ब्रह्मवादी कृष्ण द्वैपायन ने कहा था।।५०।। जो व्यक्ति मन्वन्तरों के स्वामी मनुओं, देवताओं, ऋषियों की, शक्तिशाली तेजस्वियों की इस कीर्ति का वर्णन करे, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और महान् पुण्य को प्राप्त करता है।।५१।। और जो विद्वान् सदैव पर्व में (त्यौहारों पर) इस कथा को सुनाये तो उसके सब पाप धुल जाते हैं और फिर वह स्वर्ग को जीत कर ब्रह्म होने की कल्पना करता है, अर्थात् ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है।।५१½-५२।। और जो व्यक्ति श्राद्ध में

अक्षेयं सर्वकामीयं पितृंस्तच्चोपतिष्ठते। यस्मात्पुरा ह्य[1]णंतीदं पुराणं तेन चोच्यते॥५४॥
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते। तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या अधीयते॥५५॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम्। यावंत्यस्य शरीरेषु रोमकूपानि सर्वशः॥५६॥
तावत्कोटिसहस्त्राणि वर्षाणि दिवि मोदते। ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते॥५७॥
सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च। ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरश्विने॥५८॥
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः। बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनंतरम्॥५९॥
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेंद्राय वै पुनः। इंद्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च॥६०॥
सारस्वतस्त्रिधाम्नेऽथ त्रिधामा च शरद्वते। शरद्वांस्तु त्रिविष्टाय सोंऽतरिक्षाय दत्तवान्॥६१॥
चर्षिणे चांतरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च। त्रय्यारुणाद्धनंजयः स वै प्रादात्कृतंजये॥६२॥
कृतंजयत्तृणंजयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ। गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्य्यंतरे पुनः॥६३॥
निर्य्यंतरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय वै। स ददौ सौमशुष्माय स चादात्तृणबिंदवे॥६४॥
तृणबिंदुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये। शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम्॥६५॥
पराशराज्जातुकर्ण्यस्तस्माद्वैपायनः प्रभुः। द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तम॥६५॥

इस पुराण की अक्षय और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली इस कथा को अन्त तक ब्राह्मणों को सुनाये, वह पितृलोकों को प्राप्त करता है।।५२½-५३½।। "यस्मात् पुरा भवति" तत्पुराणम् अर्थात् जो पहले हुआ है, उसको वर्णन करने वाला पुराण कहा जाता है। इस पुराण की निरुक्ति को जो जानता है, वह सब पापों से विमुक्त हो जाता है।।५३½-५४½।। उसी प्रकार तीनों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों में जो मनुष्य इस पुराण को पढ़ता है, वह तथा जो इस इतिहास को सुनकर धर्म में बुद्धि को धारण करे, तो जितने इस शरीर पर रोम कूप हैं, उतने हजारों करोड़ वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करता है और फिर ब्रह्म की समानता प्राप्त कर देवताओं के साथ आनन्द भोगता है।।५४½-५७।। इस समस्त पापों को नष्ट करने वाले पुण्य, पवित्र और यशस्वी पुराण को ब्रह्मा जी ने वायुदेव को प्रदान किया था।।५८।। उन वायुदेव से शुक्राचार्य ने प्राप्त कर लिया और फिर शुक्राचार्य से बृहस्पति ने प्राप्त किया, उसके बाद बृहस्पति ने सविता को कहा।।५९।।

उसके बाद सविता ने मृत्यु को और मृत्यु ने इन्द्र को कहा। इन्द्र ने वसिष्ठ को कहा, वसिष्ठ ने सारस्वत को कहा।।६०।। फिर सारस्वत ने त्रिधामा को और त्रिधामा ने शरद्वत को, शरद्वत ने त्रिविष्टा को, त्रिविष्टा ने अन्तरिक्ष को प्रदान किया।।६१।। फिर अन्तरिक्ष ने चर्षी को, उन चर्षी ने त्रय्यारुण को, फिर त्रय्यारुण से धनञ्जय ने प्राप्त किया, तब उन धनञ्जय ने कृतञ्जय को कहा।।६२।। कृतञ्जय से तृणञ्जय ने प्राप्त किया और उसने भी भारद्वाज को प्रदान किया, भरद्वाज ने गौतम को दिया, गौतम ने फिर निर्य्यन्तर को कहा।।६३।। निर्य्यन्तर ने तो फिर वाजश्रवा के लिए कहा, उन वाजश्रवा ने सोमसुष्म के लिए, सोमसुष्म ने तृणबिन्दु को प्रदान किया।।६४।। तृणबिन्दु ने दक्ष को कहा और दक्ष ने शक्ति को कहा। शक्ति से गर्भस्थ पाराशर ने इस पुराण को सुना।।६५।।

---

१. अत्रर्षीणां कर्तृत्वम्।

मया चैतत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये। इत्येव वाक्यं ब्रह्मादिगुरूणां सुदाहृतम्॥६७॥
नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम्॥६८॥
पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा। नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते॥६९॥
नाश्रद्दधानेऽविदुषे नापुत्राय कथंचन। नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम्॥७०॥

अव्यक्तं वै यस्य योनिं वदंति व्यक्तं देहं कालमेतं गतिं च।
वह्निर्वक्त्रं चंद्रसूर्यो च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम्॥७१॥
वाचो वेदा अंतरिक्षं शरीरं क्षितिः पादास्तारका रोमकूपाः।
सर्वाणि द्यौर्मस्तकानि त्वतो वै विद्याश्चैवोपनिषद्यस्य पुच्छम्॥७२॥
तं देवदेवं जननं जनानां यज्ञात्मकं सत्यलोकप्रतिष्ठम्।
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये॥७३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते द्वादशसाहस्र्यां संहितायां उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे ब्रह्मांडावर्त्तं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

पाराशर ने जातुकर्ण्य ने प्राप्त किया और उन जातुकर्ण्य से प्रभु द्वैपायन ने प्राप्त किया, उसके बाद हे मुनिश्रेष्ठ! द्वैपायन से मैंने प्राप्त किया।।६६।। मैंने फिर इस पुराण को असीमित बुद्धिवाले अपने पुत्र को कहा। इस प्रकार यह पुराण ब्रह्मा आदि गुरुओं का कहा हुआ वाक्य है। यह कोई सामान्य नहीं है।।६७।। अतः मनस्वी पुरुषों द्वारा यत्न से गुरुओं को नमस्कार किया जाना चाहिए।।६७½।। ब्राह्मणों को सदैव इस धन देने वाले, यश देने वाले, आयु प्रदान करने वाले, पुण्यशाली, सब मनोरथों को सिद्ध करने वाले पापनाशक पुराण को नियमपूर्वक सुनना चाहिए।।६७½-६८½।। इस पुराण को कभी भी अपवित्र व्यक्ति को, पापी को, संवत्सर विहीन व्यक्ति को, अश्रद्धावान् व्यक्ति को, अविद्वान् को और पुत्रहीन व्यक्ति को और अहित करने वाले व्यक्ति को इस पुराण को कभी नहीं देना चाहिए।।६८½-७०।।

इसके बाद सूतजी स्तुति प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जिनकी योनि अव्यक्त (प्रकृति) है, जिसको कि कोई व्यक्त कहता है, कोई देह कहता है, कोई काल कहता है, कोई गति कहता है, जिन ब्रह्म का मुख अग्नि है, चन्द्रमा और सूर्य जिनके दोनों नेत्र हैं। दिशायें जिनके कान हैं, वायु जिनकी नासिका है, वेद जिनकी वाणी है, अन्तरिक्ष जिनका शरीर है, पृथ्वी जिनके पैर हैं। तारगण जिनके रोमकूप हैं। सभी स्वर्ग जिनके मस्तक हैं, विद्या और उपनिषदें जिनकी पूँछ हैं, उन देवों के देव, उत्पन्न करने वालों को उत्पन्न करने वाले, यज्ञात्मक, सत्यलोक में प्रतिष्ठित, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ, वर देने वाले महेश्वर आदि देव ब्रह्मा को प्रयत्नपूर्वक नमन करता हूँ।।७३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद चतुर्थ अध्याय ब्रह्माण्डावर्त वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

॥श्रीगणेशाय नमः॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

अगस्त्ययात्राजनार्दनाविर्भावोनाम

पञ्चमोऽध्यायः

अथ श्रीललितोपाख्यानं प्रारभ्यते

चतुर्भुजे चंद्रकलावतंसे कुचोन्नते कुङ्कुमरागशोणे।
पुंड्रेक्षुपाशाङ्कुशपुष्पबाणहस्ते नमस्ते जगदेकमातः॥१॥

अस्तु नः श्रेयसे नित्यं वस्तु वामाङ्गसुन्दरम्। यतस्तृतीयो विदुषां तृतीयस्तु परं महः॥२॥

अगस्त्यो नाम देवर्षिर्वेदवेदाङ्गपारगः। सर्वसिद्धान्तसारज्ञो ब्रह्मानन्दरसात्मकः॥३॥

चचाराद्धुतहेतूनि तीर्थान्यायतनानि च। शैलारण्यापगामुख्यान्सर्वाञ्जनपदानपि॥४॥

तेषु तेष्वखिलाञ्जंतूनज्ञानतिमिरावृतान्। शिश्नोदरपरान्दृष्ट्वा चिन्तयामास तान्प्रति॥५॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–५

अगस्त्ययात्राजनार्दन का आविर्भाव

सर्वप्रथम श्रीललिता देवी को नमस्कार प्रस्तुत किया जाता है। यही ललिता देवी महात्रिपुर सुन्दरी, दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती तथा प्रकृति कही जाती है। अतः माँ ललितेश्वरी को नमन करते हुए कहते हैं कि हे चार भुजाओं वाली, मस्तक पर चन्द्रकला को धारण करने वाली, उन्नत स्तनों वाली, कुङ्कुम (केसर) के रंग के समान वर्ण वाली, हाथों में पुण्ड्र नामक गन्ने, पाश, अंकुश और पुष्पबाण को रखने वाली, संसार की एकमात्र जननी! तुम्हें नमस्कार है।

उपर्युक्त श्लोक में ललितादेवी के रूप में प्रकृति का वर्णन किया गया है। ये जितने भी विशेषण प्रस्तुत किये गये हैं, वे प्रकृति के प्रतीक हैं। यथा माँ ललिता की चार भुजाओं में से प्रकृति की चारों दिशाओं में व्याप्तता सूचित होती है, मस्तक पर चन्द्रकला से समस्त ग्रह नक्षत्र, सूर्य-चन्द्रादि को वही धारण किये हुए हैं। माँ ललिता के उन्नत स्तन ऊँचे प्रकृति के पर्वतों के प्रतीक हैं। एक हाथ में गन्ना प्रकृति की मधुर वनस्पतियों, वृक्षादिकों का प्रतीक है, पाश और अंकुश पापियों को दण्ड के प्रतीक हैं और पुष्पबाण उसकी मोहन शक्ति कामभाव पैदा करने के प्रतीक हैं। संसार की एकमात्र जननी से तो पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। ये सभी देवियाँ लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, पार्वती, चण्डी कालिका, सब उस प्रकृति के ही नाम हैं, क्योंकि वही एकमात्र संसार की जननी हैं। अतः वे माँ ललितेश्वरी प्रकृति देवी हैं, जिन्हें विभिन्न नामों से पुकारा गया है, वे ही शिव परंब्रह्म की शक्ति हैं। अतः उन माँ ललितेश्वरी को लेखक तथा अनुवादक दोनों का भूरि-भूरि नमन है। वेदों-वेदांगों में पारंगत, समस्त सिद्धान्तों के रहस्य के ज्ञाता, ब्रह्मानन्द के रस का आनन्द लेने वाले अगस्त्य नाम के देवर्षि थे, जिन्होंने अद्‌भुत कारणों वाले विशाल तीर्थों में, पर्वतों, वनों, नदियों, मुख्य जनपदों में भ्रमण किया था।।३-४।। तब उन स्थानों पर शिश्न और योनिपरायण समस्त प्राणियों को अज्ञानरूपी अन्धकार में घिरे हुए देखकर वे उनके प्रति विचार करने लगे।।५।।

तस्य चिन्तयमानस्य चरतो वसुधाभिमाम्। प्राप्तमासीन्महापुण्यं कांचीनगरमुत्तमम्॥६॥
तत्र वारणशैलेन्द्रमेकाम्रनिलयं शिवम्। कामाक्षीं कलिदोषघ्नीमपूजयदथात्मवान्॥७॥
लोकहेतोर्दयार्द्रस्य धीमतश्चिन्तनो मुहुः। चिरकाले तपसा तोषितोऽभूज्जनार्दनः॥८॥
हयग्रीवां तनुं कृत्वा साक्षाच्चिन्मात्रविग्रहाम्। शङ्खचक्राक्षवलयपुस्तकोज्ज्वलबाहुकाम्॥९॥
पूरयित्रीं जगत्कृत्स्नं प्रभया देहजातया। प्रादुर्बभूव पुरतो मुनेरमिततेजसा॥१०॥
तं दृष्ट्वानन्दभरितः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः। विनयावनतो भूत्वा सन्तुष्टाव जगत्पतिम्॥११॥
अथो वाच जगन्नाथस्तुष्टोऽस्मि तपसा तव। वरं वरय भद्रं ते भविता भूसुरोत्तमः॥१२॥
इति पृष्टो भगवता प्रोवाच मुनिसत्तमः। यदि तुष्टोऽसि भगवन्निमे पामरजन्तवः॥१३॥
केनोपायेन मुक्ताः स्युरेतन्मे वक्तुमर्हसि। इति पृष्टो द्विजेनाथ देवदेवो जनार्दनः॥१४॥
एष एव पुरा प्रश्नः शिवेन चरितो मम। अयमेव कृतः प्रश्नो ब्रह्मणा तु ततः परम्॥१५॥
कृतो दुर्वाससा पश्चाद्भवता तु ततः परम्॥१६॥
भवद्भिः सर्वभूतानां गुरुभूतैर्महात्मभिः। ममोपदेशो लोकेषु प्रथितोऽस्तु वरो मम॥१७॥
अहमादिर्हि भूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः। सृष्टिस्थितिलयानां तु सर्वेषामपि कारकः॥१८॥

इस पृथ्वी पर विचार करते हुए विचरण करने वाले वे चलते-चलते एक महापुण्यशाली कांची नामक नगर में पहुँचे।।६।। इसके बाद वहाँ अमात्यवान् ने वारण नामक पर्वतराज पर एकाग्र भवन में रहने वाले भगवान् शिव और कलियुग के दोषों को मारने वाली देवी कामाक्षी का पूजन किया।।७।। संसार का कल्याण करने वाले दयालु, बुद्धिमान्, चिन्तनशील अनेकों बार की चिरकालीन तपस्या से जनार्दन भगवान् शिव प्रसन्न हो गये।।८।। तब उन्होंने हयग्रीव (घोड़े की गर्दन) वाला शरीर बनाकर साक्षात् चैतन्यमात्र शरीर वाले शङ्ख, चक्र, अक्षमाला, वलय, पुस्तक से उज्ज्वल हाथ वाली, अपने शरीर से उत्पन्न असीमित तेज वाली प्रभा से समस्त संसार को व्याप्त करती हुई देवी को उन अगस्त्य मुनि के सामने प्रकट कर दिया।।९-१०।। उसको देखकर आनन्द से भरे हुए उन्होंने विनयावनत होकर बार-बार प्रणाम करके संसार के स्वामी भगवान् शिव को सन्तुष्ट किया।।११।। इसके बाद संसार के स्वामी ने उनसे कहा कि मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ, इसलिए हे विप्रवर! आपका कल्याण हो, आप वर माँगिये।।१२।।

इस प्रकार जब भगवान् शिव ने कहा, तब मुनिश्रेष्ठ बोले कि हे भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो कृपया ये बताइए कि इस संसार में नीच पापी प्राणी किस उपाय से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसके बाद उन ब्राह्मण अगस्त्य मुनि ने जब भगवान् शिव से पूँछा तो भगवान् शिव ने कहा कि यही प्रश्न प्राचीन काल में मुझसे घूमते हुए भगवान् शिव ने पूँछा था तथा उसके बाद मुझसे ब्रह्माजी ने पूँछा।।१३-१५।। उसके बाद यह प्रश्न दुर्वासा ऋषि ने पूँछा था, आपने तो उन दुर्वासा ऋषि के बाद पूँछा है।।१६।। समस्त संसार के प्राणियों के गुरु बने हुए आप महात्माओं द्वारा कहा गया मेरा उपदेश समस्त लोकों में प्रसिद्ध होवे, यह मेरा वरदान है।।१७।। मैं संसार के समस्त प्राणियों के आदि में था और समस्त प्राणियों का आदि कर्ता हूँ, अर्थात् सबसे पहले प्राणियों को मैंने ही पैदा किया है। मैं ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि (उत्पत्ति), स्थिति (पालन) और प्रलय लीला करता हूँ तथा संसार में जो कुछ भी है, उस सबको बनाने वाला मैं ही हूं। मैं ही सबको उत्पन्न करने वाला प्रभु हूँ।।१८।।

त्रिमूर्तिस्त्रिगुणातीतो गुणहीनो गुणाश्रयः॥१९॥
इच्छाविहारो भूतात्मा प्रधानपुरुषात्मकः। एवं भूतस्य मे ब्रह्मंस्त्रिजगद्रूपधारिणः॥२०॥
द्विधाकृतमभूद्रूपं प्रधानपुरुषात्मकम्। मम प्रधानं यद्रूपं सर्वलोकगुणात्मकम्॥२१॥
अपरं यद्गुणातीतं परात्परतरं महत्। एवमेव तयोर्ज्ञात्वा मुच्यते ते उभे किमु॥२२॥
तपोभिश्चिरकालोत्थैर्यमैश्च नियमैरपि। त्यागैर्दुष्कर्मनाशांते मुक्तिराश्वेव लभ्यते॥२३॥
यद्रूपं यद्गुणयुतं तद्गुण्यैक्येन लभ्यते। अन्यत्सर्वजगद्रूपं कर्मभोगपराक्रमम्॥२४॥
कर्मभिर्लभ्यते तच्च तत्त्यागेनापि लभ्यते। दुस्तरस्तु तयोस्त्यागः सकलैरपि तापस॥२५॥
अनपायं च सुगमं सदसत्कर्मगोचरम्॥२६॥

मैं ही त्रिमूर्ति हूँ, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा यों कहिये कि सृष्टि, स्थिति और प्रलयवाली तीनों मूर्ति मैं ही हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही विष्णु हूँ और मैं ही महेश्वर हूँ। मैं ही सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों गुणों से भी परे हूँ। मेरी स्थिति उनसे भी आगे है तथा मैं गुणहीन भी हूँ, अर्थात् मेरे अन्दर प्रकृति के तीनों गुण नहीं भी हैं तथा तीनों गुण ही क्या मेरे अन्दर तो कोई गुण ही नहीं है, मैं तो निर्गुण हूँ। अतः मुझे कोई नहीं बता सकता कि मैं छोटा हूँ, मोटा हूँ, लाल हूँ, पीला हूँ, उदार हूँ, अनुदार हूँ। अतः मैं गुणविहीन हूँ। यही नहीं, मैं गुणविहीन होते हुए भी गुणयुक्त हूँ, क्योंकि तीन गुणों वाली प्रकृति से युक्त होकर जब मैं सृष्टि, स्थिति और प्रलय की स्थिति में हूँ, तब मैं सगुण हूँ, इसलिए मैं गुणाश्रय हूँ। मैं ही अपनी इच्छा से सर्वत्र विहार करने वाला भूतात्मा (प्राणियों की आत्मा) हूँ। प्रधान और पुरुष कहा जाने वाला मैं हूँ, प्रधान प्रकृति को कहा जाता है तथा पुरुष (आत्मा (जीव) है, अतः ये दोनों अलग-अलग नहीं, दोनों मैं ही हूँ।।१९-१९½।। इस प्रकार हे ब्रह्मन्! तीनों लोकों को धारण करने वाले मेरे दो प्रकार के रूप बना दिये हैं, एक प्रधान और दूसरा पुरुष।।१९½-२०½।।

मेरा जो प्रधान रूप है, वह समस्त संसार रूपी गुण वाला है, अर्थात् यह जो सारा संसार दिखाई दे रहा है, वह मेरा गुणात्मक रूप है। अर्थात् संसार के जड़-चेतन जितने भी पदार्थ हैं, वे सब मेरा प्रधान रूप हैं, जिन्हें प्रकृति भी कहा जाता है। यह मेरा प्रधान रूप गुणात्मक रूप है तथा दूसरा जो मेरा गुणातीत रूप है, वह पर से भी पर है, अर्थात् अपार है, वह निर्गुण है, इतना ही कहा जा सकता है। निर्गुण कहना भी उसका एक गुण ही है, अतः उसे किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता है, वह क्या है? कोई न जानता है, पर है कुछ यही मानता है।।२०½-२१½।। इस प्रकार ही उन दोनों रूपों प्रधान और पुरुष को जानकर वे दोनों मुक्त हो जाते हैं, अर्थात् जब पुरुष आत्मा यह समझ लेता है कि मैं प्रकृति के बन्धन में हूँ, तब वह समझकर मुक्त हो जाता है। तब फिर चिरकाल तक उठाये गये पक्षों और नियमों वाली तपस्याओं से वे दोनों प्रधान और पुरुष मुक्त हो जाते हैं और त्यागों द्वारा दुष्कर्मों का विनाश होने पर अन्त में शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त होती है।।२१½-२३।। जो रूप है तथा जो उस गुण वाला है, वह गुण रखने वाला एकता से प्राप्त होता है। अन्य जो समस्त संसार का रूप है, वह कर्म भोग का पराक्रम है, अर्थात् संसार में जो कुछ रूप या गुण मनुष्य को प्राप्त हुआ है, वह कर्म भोग के लिए प्राप्त हुआ है, उस सब में कर्म के भोग का ही पराक्रम है।।२४।। वह जो कर्मों से प्राप्त होता है, वह त्याग से भी प्राप्त हो सकता है, इसलिए हे तापस अगस्त्यजी! उन दोनों कर्म और त्याग में त्याग ही सबसे दुस्तर (कठिन) है तथा सदसत्कर्मगोचर अर्थात् शुभ-अशुभ कर्म के ज्ञान का मार्ग अनश्वर और सुगम है।।२५-२६।।

आत्मस्थेन गुणेनैव सता चाप्यसतापि वा। आत्मैक्येनैव यज्ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।२७।।
वर्णत्रयविहीनानां पापिष्ठानां नृणामपि। यद्रूपध्यानमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते।।२८।।
येऽर्चयंति परां शक्तिं विधिनाऽविधिनापि वा। न ते संसारिणो नूनं मुक्ता एव न संशयः।।२९।।
शिवो वा यां समाराध्य ध्यानयोगबलेन च। ईश्वरः सर्वसिद्धानामर्द्धनारीश्वरोऽभवत्।।३०।।
अन्येऽब्जप्रमुखा देवाः सिद्धास्तद्ध्यानवैभवात्। तस्मादशेषलोकानां त्रिपुराराधनं विना।।३१।।
न स्तो भोगापवर्गौ तु यौगपद्येन कुत्रचित्। तन्मनास्तद्गतप्राणस्तद्याजी तद्गहेतकः।।३२।।
तादात्म्येनैव कर्माणि कुर्वन्मुक्तिमवाप्स्यसि। एतद्रहस्यमाख्यातं सर्वेषां हितकाम्यया।।३३।।
सन्तुष्टेनैव तपसा भवतो मुनिसत्तम। देवाश्च मुनयः सिद्धा मानुषाश्च तथापरे।
त्वन्मुखांभोजतोऽवाप्यसिद्धिं यांतु परात्परम्।।३४।।
इति तस्य वचः श्रुत्वा हयग्रीवस्य शार्ङ्गिणः। प्रणिपत्य पुनर्वाक्यमुवाच मुधुसूदनम्।।३५।।
भगवन्कीदृसं रूपं भवता यत्पुरोदितम्। किंविहारं किंप्रभावमेतन्मे वक्तुमर्हसि।।३६।।

हयग्रीव उवाच

एषोंऽशभूतेषु देवर्षे हयग्रीवो ममापरः। श्रोतुमिच्छसि यद्यत्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि।।३७।।

आत्मा में स्थित गुण के भी होने अथवा न होने से आत्मा की एकता से जो ज्ञान पैदा होता है, वह ज्ञान सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है।।२७।। आत्मा की एकता से जिस रूप का ध्यान करने मात्र से तीनों वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के कर्मों से हीन पापी मनुष्यों के भी दुष्कर्म सुकर्म बन जाते हैं।।२८।। जो मनुष्य उस पराशक्ति की विधि से अथवा बिना विधि से पूजा करते हैं, वे सांसारिक कर्म करने वाले व्यक्ति मुक्त न हों, ऐसा नहीं, अर्थात् वे अवश्य मुक्त होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२९।। ध्यान और योग के बल से जिसकी सम्यक् आराधना करके भगवान् शिव सब सिद्धों के ईश्वर अर्धनारीश्वर हो गये थे।।३०।। अन्य प्रमुख ब्रह्मा आदि देवता उसके वैभव के प्रभाव से ही सिद्ध सफल हुए हैं, उस तीनों लोकों के स्वामी त्रिपुरा की आराधना के बिना भोग और मोक्ष एक साथ कहीं भी नहीं हैं। उनमें मन लगाने वाला, उनमें ही अपने प्राणों को अर्पित करने वाला अर्थात् उनको ही ध्यान कर प्राणायाम करने वाला उनके लिये ही यज्ञ करने वाला, उनको जानने की इच्छा रखने वाला, उनमें एक रूप रहता हुआ सामान्य रूप में कर्मों को करता हुआ मुक्ति प्राप्त करेगा।।३१-३२½।।

हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी तपस्या से सन्तुष्ट मैंने सब प्राणियों के कल्याण की कामना से इस रहस्य को बताया है।।३२½-३३½।। देवता, मुनिगण, मनुष्य, सिद्धगण तथा अन्य सभी तुम्हारे मुख से निकले हुए कथामृत का भोग कर पर से पर सिद्धि को प्राप्त करें, अर्थात् परा ज्ञान को प्राप्त करें।।३४।। इस प्रकार उन हयग्रीव विष्णु के वचनों को सुनकर उन्हें प्रणाम करके उन मधुसूदन भगवान् विष्णु से अगस्त्य मुनि बोले कि भगवान्! ये आपका कैसा रूप था, जो आपने पहले धारण किया था, क्या उसका विहार है तथा क्या उसका प्रभाव है, उसे हमें बताइए।।३५-३६।।

हयग्रीव ने कहा कि हे देवर्षि! यह हयग्रीव (घोड़े की गर्दन) वाला मेरा अंशभूत दूसरा रूप है। जो जो तुम सुनना चाहते हो, वह सब हमें बताओ।।३७।।

इत्यादिश्य जगन्नाथो हयग्रीवं तपोधनम्। पुरतः कुम्भजातस्य मुनेरंतरधाद्धरिः॥३८॥
ततस्तु विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा तपोधनः। हयग्रीवेण मुनिना स्वाश्रमं प्रपद्यत॥३९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने अगस्त्ययात्राजनार्दनाविर्भावो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

हिंसाद्यरूप कथनंनाम

षष्ठोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

अथोपवेश्य चैवैनमासने परमाद्भुते। हयाननमुपागत्यागस्त्यो वाक्यं समब्रवीत्॥१॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्तम। लोकाभ्युदयहेतुर्हि दर्शनं हि भवादृशाम्॥२॥
आविर्भावं महदेव्यास्तस्या रूपान्तराणि च। विहाराश्चैव मुख्या ये तान्नो विस्तरतो वद॥३॥

इस प्रकार जगन्नाथ भगवान् विष्णु कुम्भ से पैदा हुए अगस्त्य मुनि के सामने तपस्वी हयग्रीव को आदेश देकर अन्तर्धान हो गये।।३८।। इसके बाद आश्चर्ययुक्त प्रसन्नचित्त तपस्वी अगस्त्य मुनि हयग्रीव मुनि के साथ अपने आश्रम को चले गये।।३९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ५वाँ अध्याय अगस्त्ययात्राजनार्दन का आविर्भव का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्छित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–६

हिंसादि रूप कथन

इन्द्र बोले—इसके बाद परम अद्भुत आसन पर बैठाकर हयग्रीव के पास आकर अगस्त्य मुनि इस प्रकार वाक्य बोले।।१।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि सब धर्मों को जानने वाले, सब सिद्धान्तों को जानने वाले भगवन्! आप जैसे लोगों का दर्शन संसार के कल्याण का कारण है, अतः हे भगवन्! आप महादेवी ललिता का आविर्भाव एवं उन महादेवी के अनेकों तथा उनके मुख्य विहारों को हमें विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।।२-३।।

हयग्रीव उवाच

अनादिरखिलाधारा सदसत्कर्मरूपिणी। ध्यानैकदृश्या ध्यानांगी विद्यांगी हृदयास्पदा॥४॥
आत्मैक्याव्द्यक्तिमायाति चिरानुष्ठानगौरवात्॥५॥
आदौ प्रादुरभूच्छक्तिर्ब्रह्मणो ध्यानयोगतः। प्रकृतिर्नाम सा ख्याता देवानामिष्टसिद्धिदा॥६॥
द्वितीयमुदभूद्रूपं प्रवृत्तेऽमृतमंथने। शर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम्॥७॥
यद्दर्शनादभूदीशः सर्वज्ञोऽपि विमोहितः। विसृज्य पार्वतीं शीघ्रं तया रुद्धोऽतनोद्रतम्॥८॥
तस्यां वै जनयामास शास्तारमसुरार्दनम्॥९॥

अगस्त्य उवाच

कथं वै सर्वभूतेशो वशी मन्मथ शासनः। अहो विमोहितो देव्या जनयामास चात्मजम्॥१०॥

हयग्रीव उवाच

पुरामरपुराधीशो विजयश्रीसमृद्धिमान्। त्रैलोक्यं पालयामास सदेवासुरमानुषम्॥११॥
कैलासशिखराकारं गजेन्द्रमधिरुह्य सः। चचाराखिललोकेषु पूज्यमानोऽखिलैरपि।
तं प्रमत्तं विदित्वाथ भवानीपतिरव्ययः॥१२॥
दुर्वाससमथाहूय प्रजिघाय तदंतिकम्। खण्डानिजधरो दंडी धूरिधूसरविग्रहः।
उन्मत्तरूपधारी च ययौ विद्याधराध्वना॥१३॥

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य मुने! जो अनादि, अखिल, विश्व की आधार, अच्छे और बुरे कर्म कराने वाली, एक ध्यान से दर्शनीय, ध्यान के अंग वाली, विद्या रूप शरीर वाली, हृदय में स्थान वाली है तथा जो अपनी आत्मा की एकता से बहुत अधिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ करने से प्रकट होती है, दिखायी देती है।।४-५।। सृष्टि के आदि काल में ब्रह्माजी के ध्यानयोग से वह शक्ति उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम प्रकृति हुआ, जो देवताों की इच्छा और उनको सिद्धि प्रदान करने वाली थी।।६।। उन महादेवी प्रकृति का दूसरा रूप समुद्र मन्थन के समय उत्पन्न हुआ, जो रूप भगवान् शंकर को मोह पैदा करने वाला और वाणी, मन और ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जानने योग्य था।।७।। जिन महादेवी के दर्शन से सब कुछ जानने वाले जगदीश्वर भगवान् शिव विशेष मोहित हो गये और शीघ्र ही पार्वती को छोड़कर उस शक्ति रूप महादेवी से संयुक्त हो गये।।८।। तब भगवान् शंकर के द्वारा उससे संयुक्त हो जाने पर उस देवी में उन्होंने शासन करने वाले असुरार्दन को जन्म दिया।।९।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि सब प्राणियों को पैदा करने वाले इन्द्रियों को वश में करने वाले, कामदेव को शासित करने वाले भगवान् शंकर ने कैसे देवी से विमोहित होकर पुत्र को उत्पन्न किया?।।१०।।

भगवान् हयग्रीव ने कहा कि प्राचीन काल में विजयश्री से समृद्ध अमरपुरी शिव के अधीश्वर इन्द्र ने देवता, मनुष्य और असुरों सहित त्रैलोक्य का पालन किया।।११।। तब उन्होंने कैलासपर्वत के आकार वाले गजराज पर चढ़कर सभी लोगों से पूजित होते हुए समस्त लोकों में विचरण किया। अविनाशी भवानीपति शंकर ने उसे प्रमत्त देखकर इसके बाद दुर्वासा ऋषि को बुलाकर उनके पास में जाकर उन्हें प्रेरित किया।।१२-१२½।। तब फटे हुए मृगचर्म को धारण करने वाले दण्डी धूरि-धूसर शरीर वाले उन्मत्त रूपधारी शिव विद्याधर मार्ग से गये।।१३।।

एतस्मिन्नन्तरे काले काचिद्विद्याधरांगना। यदृच्छया गता तस्य पुरश्चारुतराकृतिः॥१४॥
चिरकालेन तपसा तोषयित्वा परांबिकाम्। तत्समर्पितमाल्यं च लब्ध्वा संतुष्टमानसा॥१५॥
तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीमुवाच मुनिपुंगवः। कुत्र वा गम्यते भीरु कुतो लब्धमिदं त्वया॥१६॥
प्रणम्य सा महात्मानमुवाच विनयान्विता। चिरेण तपसा ब्रह्मन्देव्या दत्तं प्रसन्नया॥१७॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सोऽपृच्छन्माल्यमुत्तमम्। पृष्टमात्रेण सा तुष्टा ददौ तस्मै महात्मने॥१८॥

कराभ्यां तत्समादाय कृतार्थोऽस्मीति सत्वरम्।
दधौ स्वशिरसा भक्त्या तामुवाचातिर्षितः॥१९॥
ब्रह्मादीनामलभ्यं यत्तल्लब्धं भाग्यतो मया।
भक्तिरस्तु पदांभोजे देव्यास्तव समुज्ज्वला॥२०॥
भविष्यच्छोभनाकारे गच्छ सौम्ये यथासुखम्।
सा तं प्रणम्य शिरसा ययौ तुष्टा यथागतम्॥२१॥

प्रेषयित्वा स तां भूयो ययौ विद्याधराध्वना। विद्याधरवधूहस्तात्प्रतिजग्राह वल्लकीम्॥२२॥

दिव्यस्त्रगनुलेपांश्च दिव्यान्याभरणानि च।
क्वचिद्दधौ क्वचिदृह्णन्क्वचिद्गायन्क्वचिद्धसन्॥२३॥

स्वेच्छाविहारी स मुनिर्यत्रौ यत्र पुरंदरः। स्वकरस्थां ततो मालं शक्राय प्रददौ मुनिः॥२४॥

इसी समय कोई सुन्दरतर आकृति वाली विद्याधराङ्गना स्वेच्छा से उनके सामने गई।।१४।। चिरकाल की तपस्या द्वारा उन परा अम्बिका को सन्तुष्ट करके उनके द्वारा समर्पित की गयी माला को सन्तुष्ट मन से प्राप्त कर उसको देख कर मुनिश्रेष्ठ ने मृगछौने की आँखों के समान उस सुन्दरी से कहा कि हे डरने वाले स्वभाव वाली सुन्दरि! तुम कहाँ जा रही हो तथा तुमने इस माला को कहाँ से प्राप्त किया?।।१५-१६।। उसने प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक महात्मा मुनि से कहा कि ब्रह्मन्! चिरकाल की तपस्या द्वारा प्रसन्न देवी ने मुझे इस माला को दिया है।।१७।। उसके वचन को सुनकर उन्होंने उत्तम माल्य को पूँछा, पूँछने मात्र से प्रसन्न उसने वह माला उन महात्मा को दे दी।।१८।।

दोनों हाथों से माला को लेकर शीघ्र ही उन्होंने कहा कि मैं इस माला को लेकर आपका आभारी हूँ। उसके बाद उन्होंने भक्तिपूर्वक उस माला को सिर पर धारण किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे बोले।।१९।। कि जो ब्रह्मा आदि के लिए अलभ्य है, उस माला को आज मैंने भाग्य से प्राप्त कर लिया। हे कमलचरणे! तुम्हें देवी की समुज्ज्वल भक्ति होवे। हे सौम्य! तुम भविष्य में शोभन आकार में सुखपूर्वक जाओ। फिर वह उन मुनि को शिर झुकाकर प्रणाम करके जिस मार्ग से आयी थी, उसी मार्ग से चली गयी।।२०-२१।। फिर उसको पुनः भेजकर वे मुनि विद्याधर के मार्ग से चले गये और विद्याधर वधू के हाथ से माला को ग्रहण कर लिया।।२२।। तब दिव्य माला और सुगन्धित लेपों तथा दिव्य आभूषणों को कहीं से ग्रहण करते हुए, कहीं गाते हुए और कहीं रहते हुए कहीं धारण किया।।२३।। और इस प्रकार स्वेच्छा से विचरण करने वाले वे मुनि अगस्त्य वहाँ गये, जहाँ कि इन्द्र थे। उसके बाद उन मुनि ने अपने हाथ में स्थित माला को इन्द्र के लिये दे दिया।।२४।।

तां गृहीत्वा गजस्कंधे स्थापयामास देवराट्। गजस्तु तां गृहीत्वाथ प्रेषयामास भूतले॥२५॥
तां दृष्ट्वा प्रेषितां मालां तदा क्रोधेन तापसः। उवाच न धृता माला शिरसा तु मयार्पिता॥२६॥
त्रैलोक्यैश्वर्यमत्तेन भवता ह्यवमानिता। महादेव्या धृता या तु ब्रह्माद्यैः पूज्यते हि सा॥२७॥
त्वया यच्छासितो लोकः सदेवासुरमानुषः। अशोभनो ह्यतेजस्को मम शापाद्भविष्यति॥२८॥
इति शप्त्वा विनीतेन तेन संपूजितोऽपि सः। तूष्णीमेव ययौ ब्रह्मनाभाविकार्यमनुस्मरन्॥२९॥
विजयश्रीस्ततस्तस्य दैत्यं तु बलिमन्वगात्। नित्यश्रीर्नित्यपुरुषं वासुदेवमथान्वगात्॥३०॥
इन्द्रोऽपि स्वपुरं गत्वा सर्वदेवसमन्वितः। विषण्णचेता निःश्रीकश्चिन्तयामास देवराट्॥३१॥
अथामरपुरे दृष्ट्वा निमित्तान्यशुभानि च। बृहस्पतिं समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह॥३२॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानकोविद। दृश्यतेऽदृष्टपूर्वाणि निमित्तान्यशुभानि च॥३३॥
किंफलानि च तानि स्युरुपायो वाऽथ कीदृशः। इति तद्वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रस्य बृहस्पतिः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मार्थसहितं शुभम्॥३४॥
कृतस्य कर्मणो राजन्कल्पकोटिशतैरपि। प्रायश्चित्तोपभोगाभ्यां विनाशो न जायते॥३५॥

इंद्र उवाच

कर्म वा कीदृशं ब्रह्मन्प्रायश्चित्तं च कीदृशम्। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद॥३६॥

उस माला को लेकर इन्द्र ने अपने हाथी के कन्धे में डाल दिया। इसके बाद हाथी ने उस माला को लेकर पृथ्वी तल पर गिरा दिया।।२५।। तब उस माला को पृथ्वी पर गिरी हुई देखकर तपस्वी मुनि ने इन्द्र से कहा कि तुमने मेरी दी हुई माला को शिर पर धारण नहीं किया। जिस माला को महादेवी ने धारण किया था, ब्रह्मा आदि देवों द्वारा जिसकी पूजा की जाती है, उस माला का तुमने तीनों लोकों के राजा होने के मद (घमण्ड) से अपमान किया है, इसलिए तुम्हारे द्वारा शासित मनुष्यों, असुरों और देवताओं का यह लोक मेरे शाप से शोभाहीन और तेजहीन हो जायेगा।।२६-२८।। इस प्रकार शाप देकर विनम्र इस इन्द्र द्वारा पूजित वे मुनि आगे क्या करना है, यह याद करते हुए चुपचाप चले गये।।२९।। उसके बाद उन राजा इन्द्र की विजयश्री दैत्यराज बलि को प्राप्त हो गयी। अब त्रैलोक्य के राजा बलि हो गये। नित्यश्री नित्यपुरुष वासुदेव भगवान् का अनुसरण करने लगी।।३०।।

इन्द्र भी अपने नगर इन्द्रपुरी में जाकर सब देवों के साथ दुःखी मन और राज्यश्री रहित होकर चिन्ता करने लगे।।३१।। इसके बाद इन्द्रपुरी में जाकर अशुभ कारणों को देखकर देवगुरु बृहस्पति को बुलाकर यह वाक्य कहा।।३२।। कि भगवन्! आप धर्म को जानने वाले तथा भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता हैं। भविष्य में कुछ अशुभ होने की सूचना देने वाले अपशकुन दिखाई दे रहे हैं।।३३।। इन अपशकुनों के क्या परिणाम होंगे तथा उनका उपाय कैसा होना चाहिए? इस प्रकार देवेन्द्र के इस वचन को सुनकर देवगुरु बृहस्पति धर्म और अर्थयुक्त शुभ वाक्य बोले।।३४।। हे राजन्! जो किया हुआ कर्म है, उसका फल सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी प्रायश्चित्त अथवा उपभोग के बिना नाश नहीं होता है, अर्थात् अवश्य भोगना पड़ता है।।३५।।

इन्द्र बोले कि ब्रह्मन्! कैसा कर्म और उसका कैसा प्रायश्चित्त, मैं कुछ समझा नहीं, मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ, कृपया मुझे विस्तारपूर्वक समझाइए।।३६।।

बृहस्पतिरुवाच।

हननस्तेयहिंसाश्च पानमन्यांगनारतिः। कर्म पंचविधं प्राहुर्दुष्यकृतं धरणीपतेः॥३७॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रगोतुरगखरोष्ट्रकाः। चतुष्पदोऽण्डजाब्जाश्च तिर्यंचोऽनस्थिकास्तथा॥३८॥
अयुतं च सहस्त्रं च शतं दश तथा दश। दशपंचत्रिरेकार्धमानुषूर्व्यादिदं भवेत्॥३९॥
ब्रह्मक्षत्रविशां स्त्रीणामुक्तार्थे पापमादिशेत्। पितृमातृगुरुस्वामिपुत्राणां चैव निष्कृतिः॥४०॥
गुर्वाज्ञया कृतं पापं तदाज्ञालंघनेऽर्थकम्। दशब्राह्मणभृत्यर्थमेकं हन्याद्विजं नृपः॥४१॥
शत ब्राह्मणभृत्यर्थं ब्राह्मणो ब्राह्मणं तु वा। पंचब्रह्मविदामर्थे वैश्यमेकं तु दंडयेत्॥४२॥
वैश्यं दशविशामर्थे विशां वा दंडयेत्तथा। तथा शतविशामर्थे द्विजमेकं तु दंडयेत्॥४३॥
शूद्राणां तु सहस्त्राणां दंडयेद्ब्राह्मणं तु वा। तच्छतार्धं तु वा वैश्यं तद्दशार्द्धं तु शूद्रकम्॥४४॥
बंधूनां चैव मित्राणामिष्टार्थे तु त्रिपादकम्। अर्थं कलत्रपुत्रार्थे स्वात्मार्थे न तु किंचन॥४५॥
आत्मानं हन्तुमारब्धं ब्राह्मणं क्षत्रियं विशम्। गां वा तुरगमन्यं वा हत्वा दोषैर्न लिप्यते॥४६॥
आत्मदारात्मजभ्रातृबंधूनां च द्विजोत्तम। क्रमाद्दशगुणो दोषो रक्षणे च तथा फलम्॥४७॥

वृहस्पति ने कहा कि हे राजन्! हनन (किसी को आघात पहुँचाना), स्तेय (चोरी करना), हिंसा (हत्या करना), पान (शराब, धूम्रादि का का पान करना) और अपनी पत्नी के अलावा अन्य स्त्री के साथ सम्भोग करना, ये पाँच प्रकार के पापकर्म कहे गये हैं।।३७।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, गौ, अश्व, गधा, ऊँट, ये चार पैर वाले तथा अन्य चार पैर वाले तथा अण्डों से पैदा होने वाले पक्षी आदि तिर्यक् योनि वाले जीव तथा जो हड्डी रहित प्राणी हैं, वे सब लाखों, हजारों और सैकड़ों दश पाँच तीन अथवा एकाध ही हैं, जो पूर्वकृत कर्म को अवश्य भोगते हैं।।३८-३९।। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की स्त्रियों के हनन में पाप का आदेश देना चाहिए। पिता, माता, गुरु और स्वामी के पुत्रों का प्रायश्चित्त है, अर्थात् वे प्रायश्चित्त कर सकते हैं।।४०।।

गुरु की आज्ञा द्वारा किया गया पाप गुरु की आज्ञा के उल्लंघन से होता है। राजा को दश ब्राह्मणों का पालन करने के लिए एक द्विज को मारना चाहिए, अर्थात् सौ ब्राह्मणों की जीविका के लिए एक ब्राह्मण को दण्ड देना चाहिए। भाव स्पष्ट है कि यदि सौ ब्राह्मणों की जीविका एक बहुत धनी ब्राह्मण द्वारा हो सकती है, तो उस एक ब्राह्मण की दौलत को १०० में बाँट देना चाहिए। पाँच ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों के लिए एक वैश्य को दण्ड देना चाहिए।।४१-४२।। दश वैश्यों के लिए एक वैश्य को तथा वैश्यों को दण्ड देना चाहिए तथा सौ वैश्यों के लिए एक वैश्य को दण्ड देना चाहिए।।४३।। सौ अथवा हजार शूद्रों के लिए एक ब्राह्मण को दण्ड देना चाहिए। उसको सौ का आधा वैश्य को तथा दश का आधा पाँच शूद्र को दण्ड देना चाहिए। भाई बन्धुओं और मित्रों की भलाई के लिये तीन चौथाई ३/४ धन देना चाहिये स्त्री और पुत्र के लिये भी तीन चौथाई धन देना चाहिए अपने लिये कुछ भी नहीं।।४५।।

यदि स्वयं को कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, गौ, अश्व अथवा अन्य कोई भी मारने को आये तो उन सबको मारने से कोई पाप नहीं होता है।।४६।। हे द्विजोत्तम! अपनी पत्नी, अपना पुत्र, अपने भाई-बन्धुओं को मारने पर दश गुना पाप होता है तथा उनकी रक्षा करने पर दश गुना फल (पुण्य) होता है।।४७।।

विशेष—यह दण्ड देने और मारने से तात्पर्य धनी से लेकर गरीब को देना है, ताकि समाज में समता बनी रहे।

भूपद्विजश्रोत्रियवेदाविद्व्रतीवेदान्तविद्वेदविदां विनाशे।
एकद्विपंचाशदथायुतं च स्यान्निष्कृतिश्चेति वदंति संतः।।४८।।
तेषां च रक्षणविधौ हि कृते च दाने, पूर्वोदितोत्तरगुणं प्रवदन्ति पुण्यम्।
तेषां च दर्शनविधौ नमने च कार्ये, शूश्रूषणेऽपि चरतां सदृशांश्च तेषाम्।।४९।।
सिंहव्याघ्रमृगादीनि लोकहिंसाकराणि तु। नृपो हन्याच्च सततं देवार्थे ब्राह्मणार्थके।।५०।।
आपत्स्वात्मार्थके चापि हत्वा मेध्यानि भक्षयेत्।।५१।।
नात्मार्थे पाचयेदन्नं नात्मार्थे पाचयेत्पशून्। देवार्थे ब्राह्मणार्थे वा पचमानो न लिप्यते।।५२।।
पुरा भगवती माया जगदुज्जीवनोन्मुखी। ससर्ज सर्वदेवांश्च तथैवासुरमानुषान्।।५३।।
तेषां संरक्षणार्थाय पशूनपि चतुर्दश। यज्ञाश्च तद्विधानानि कृत्वा चैनानुवाच ह।।५४।।
यजध्वं पशुभिर्देवान्विधिनानेन मानवाः। इष्टानि ये प्रदास्यंति पुष्टास्ते यज्ञभाविताः।।५५।।
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। दरिद्रो नारकश्चैव भवेज्जन्मनि जन्मनि।।५६।।
देवतार्थे च पित्रर्थे तथैवाभ्यागते गुरौ। महदागमने चैव हन्यान्मेध्यान्पशून्द्विजः।।५७।।

राजा, ब्राह्मण, श्रोत्रिय (वेदपाठ करने वाले) वेदों का ज्ञान रखने वाले, वेदान्त को जानने वाले और वेदज्ञों का विनाश करने पर एक, दो, पचास या दश लाख का प्रायश्चित्त होना चाहिए, ऐसा सन्त लोग कहते हैं।।४८।। तथा यदि ब्राह्मण, श्रोत्रिय, व्रती, वेदज्ञों की रक्षा करने विधि में तथा उन्हें दान देने से पूर्व में जो दण्ड कहा गया है, उससे कई गुना पुण्य का फल होता है। यही नहीं उनका दर्शन करने पर, उनको नमन करने पर, उनकी सेवा करने पर तथा उनके साथ समान व्यवहार करने पर भी कई गुना पुण्य होता है।।४९।। सिंह, व्याघ्र, मृग आदि जो संसार में हिंसा करने वाले जीव हैं, उन सबको देवताओं और ब्राह्मणों के लिए राजा को मारना चाहिए।।५०।। यदि अपने ऊपर कोई आपत्ति आ रही हो, भूखे मरने की स्थिति हो, खाने की कोई वस्तु नहीं दिखाई दे, तब ऐसी स्थिति में किसी पशु आदि को मारकर उसका मांस खा लेना चाहिए।।५१।।

अपने लिये अन्न को नहीं पकाना चाहिए तथा अपने लिये पशुओं को भी नहीं पकाना चाहिए। देवताओं के अर्थात् यज्ञादि करने के लिए और ब्राह्मणों के लिए पकाने वाला व्यक्ति पाप से लिप्त नहीं होता है। भाव यह है कि यज्ञावशिष्ट अन्न तथा यज्ञ में दी गयी बलि से अवशिष्ट मांस खाना पाप नहीं है तथा ऐसे केवल अपने लिये खाना अथवा मांस पकाकर खाना पाप है।।५२।। प्राचीन काल में भगवती माया इस संसार को जीवन देने के लिये तैयार हुईं। सब देवताओं ने उसी प्रकार मनुष्यों और असुरों को पैदा किया और उनके संरक्षण के लिए चौदह पशुओं को यज्ञों और उनके विधि-विधानों को करके उनसे कहा।।५३-५४।। कि हे मनुष्यो! पशुओं, देवताओं की इस विधि से यज्ञ करो। यज्ञ से भावित एवं पुष्ट वे देवता लोग तुम्हें तुम्हारी मनोकामनाओं को प्रदान करेंगे।।५५। इस प्रकार इस संसार में यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। दरिद्र एवं नारकी मनुष्य जन्म-जन्म में होने चाहिएँ।।५६।। देवताओं के लिए, पितरों के लिए, उसी प्रकार अतिथियों के लिए और गुरु के लिए अथवा किसी महान् पुरुष के आगमन पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्वारा उनके साकारार्थ भोजन के लिये पशुओं को मारना चाहिए।।५७।।

आपत्सु ब्राह्मणो मांसं मेध्यमश्नन्न दोषभाक्।
विहितानि तु कार्याणि प्रतिषिद्धानि वर्जयेत्॥५८॥
पुराभूद्युवनाश्वस्य देवतानां महाक्रतुः। ममायमिति देवानां कलहः समजायत॥५९॥
तदा विभज्य देवानां मानुषांश्च पशूनपि। विभज्यैकैकशः प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः॥६०॥
ततस्तु परमा शक्तिर्भूतसंघसहायिनी। कुपिताभूत्ततो ब्रह्मा तामुवाच नयान्वितः॥६१॥
प्रादुर्भूता समुद्वीक्ष्य भूतानंदभयान्वितः। प्राजंलिः प्रणतस्तुत्वा प्रसीदेति पुनः पुनः॥६२॥
प्रादुर्भूता यतोऽसि त्वं कृतार्थोऽस्मि पुरो मम।
त्वयैतदखिलं कर्म निर्मितं सुशुभाशुभम्॥६३॥
श्रुतयः स्मृतयश्चैव त्वयैव प्रतिपादिताः। त्वयैव कल्पिता यागा मन्मुखात्तु महाक्रतौ॥६४॥
ये विभक्तास्तु पशवो देवानां परमेश्वरि। ते सर्वे तावकाः संतु भूतानामपि तृप्तये॥६५॥
इत्युक्त्वांतर्दधे तेषां पुर एव पितामहः। तदुक्तेनैव विधिना चकार च महाक्रतून्॥६६॥
इयाज च परां शक्तिं हत्वा मेध्यान्पशूनपि। तत्तद्विभागो वेदेषु प्रोक्तत्वादिह नोदितः॥६७॥
स्त्रियः शूद्रास्तथा मांसमादद्युर्ब्राह्मणं विना। आपत्सु ब्राह्मणो वापि भक्षयेद्गुर्वनुज्ञया॥६८॥
शिवोद्भवमिद पिण्डमत्यथ शिवतां गतम्।
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवः सञ्छिवो ह्यसि॥६९॥

आपत्तियों में ब्राह्मण को मांस खाना पाप नहीं है। आपत्ति का अर्थ है कि भूख से पीड़ित हों तथा कुछ भी न मिले, तब ऐसा करे; परन्तु अन्य जो कार्य नहीं करने योग्य हैं, जो शास्त्र द्वारा निषिद्ध हैं, उन्हें छोड़ देना चाहिए।।५८।। प्राचीन काल में युवनाश्व और देवताओं का महायज्ञ हुआ, तब यह यज्ञ मेरा है, यह दोनों ने आपस में कहा, जिससे परस्पर कलह पैदा हो गया।।५९।। तब वहाँ लोकपितामह ब्रह्माजी ने देवताओं, मनुष्यों और पशुओं को विभाजित करके एक-एक को एक-एक प्रदान कर दिया।।६०।।

उसके बाद भूतसंघ सहायिनी शक्ति कुपित हो गयी। उसके बाद नीतियुक्त ब्रह्माजी ने उनसे कहा। उन भूतों की सहायता करने वाली शक्ति को प्रकट हुई देखकर (भूतों) प्राणियों के आनन्द भय से युक्त ब्रह्माजी हाथ जोड़कर स्तुति करके बोले कि हे देवि! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ। हे देवि! जिस कारण से तुम मेरे सामने प्रकट हुई हो, मैं धन्य हो गया हूँ। आप द्वारा ही इस संसार में शुभ और अशुभ कर्म बनाये गये हैं।।६१-६३।। हे देवि! वेद और स्मृतियाँ, ये सब तुम्हारे द्वारा ही प्रतिपादित हैं। तुम्हारे द्वारा महायज्ञों में मेरे मुख से याग (यज्ञमन्त्र) बनाये गये हैं।।६४।। हे परमेश्वरि! देवताओं के लिए जो पशु विभक्त किये गये हैं, वे सब आपके ही हैं तथा आपके भूतों की (प्राणियों की) तृप्ति के लिये हैं।।६५।। ऐसा कहकर उनके सामने ही पितामह अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार उस कहे गये विधि-विधान से ही महायज्ञों को किया गया।।६६। तब मेध्य (यज्ञ के योग्य) पशुओं को मारकर पराशक्ति की पूजा की, उन उनका विभाग वेदों में बताया गया है कि किस यज्ञ में कौंन पशु वध्य है। यहाँ इसका वर्णन नहीं किया जा रहा है।।६७।। अतः स्त्री और शूद्रों को, ब्राह्मण को खिलाये बिना मांस नहीं खाना चाहिए। अथवा आपत्तिकाल में ब्राह्मण को भी गुरु की आज्ञा से मांस भक्षण करना चाहिए।।६८।। इसके बाद शिवजी से उत्पन्न

ईशः सर्वजगत्कर्ता प्रभवः प्रलयस्तथा। यतो विश्वाधिको रुद्रस्तेन रुद्रोऽसि वै पशो॥७०॥
अनेन तुरगं गा वा गजोष्ट्रमहिषादिकम्। आत्मार्थं वा परार्थं वा हत्वा दोषैर्न लिप्यते॥७१॥
गृहानिष्टकरान्वापि नागाखुबलिवृश्चिकान्। एतद्गृहाश्रमस्थानां क्रियाफलभीप्सताम्।
मनःसंकल्पसिद्धानां महतां शिववर्चसाम्॥७२॥
पशुयज्ञेन चान्येषामिष्टा पूर्तिकरं भवेत्। जपहोमार्चनाद्यैस्तु तेषामिष्टं च सिध्यति॥७३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने
हिंसाद्यस्वरपकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

वह मांसपिण्ड शिवत्व को प्राप्त हो गया था। हे पशो! शिवजी तुम अशिव नहीं हो, तुम तो सच्चे शिव हो, अर्थात् तुम तो सबका कल्याण करने वाले हो।।६९।। आप ही समस्त विश्व को पैदा करने वाले, पालन करने वाले और प्रलय करने वाले हैं। इसलिए विश्व से अधिक रुद्र है और हे पशो! भगवान् शिव आप ही रुद्र हो।।७०।। इसी कारण से अश्व को हाथी, ऊँट, भैंसे आदि को अपने लिये अथवा दूसरों के लिए मारकर मनुष्य दोषों से लिप्त नहीं होता है।।७१।। अनिष्ट करने वाले गृहों, सर्प, चूहे, बिच्छू आदि के प्रकोपों से भी मनुष्य बच जाता है। यह गृह और आश्रम में स्थित यज्ञ क्रिया के फलों को चाहने वाले मन के सङ्कल्पों से सिद्ध महान् शिव के पराक्रम को चाहने वालों तथा अन्य इच्छा को रखने वालों की इच्छापूर्ति पशुयज्ञ से होनी चाहिए। इस प्रकार जप होम और पूजा-अर्चना आदि से उनकी मन की इच्छा सफल होती है।।७२-७३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ६वाँ अध्याय हिंसादि रूप कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

स्तेयपान कथनंनाम

सप्तमोऽध्यायः

इंद्र उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं हिंसाद्यस्य तु लक्षणम्। स्तेयस्य लक्षणं किं वा तन्मे विस्तरतो वद॥१॥

बृहस्पतिरुवाच।

पापानामधिकं पापं हननं जीवजातिनाम्। एतस्मादधिकं पापं विश्वस्ते शरणं गते॥२॥

विश्वस्य हत्वा पापिष्ठं शूद्रं वाप्यंत्यजातिजम्।

ब्रह्महत्याधिकं पापं तस्मान्नास्त्यस्य निष्कृतिः॥३॥

ब्रह्मज्ञस्य दरिद्रस्य कृच्छ्रार्जितधनस्य च। बहुपुत्रकलत्रस्य तेन जीवितुमिच्छतः।

तद्द्रव्यस्तेयदोषस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥४॥

विश्वस्तद्रव्यहरणं तस्याप्यधिकमुच्यते। विश्वस्ते वाप्यविश्वस्ते न दरिद्रधनं हरेत्॥५॥

ततो देवद्विजातीनां हेमरत्नापहारकम्। यो हन्यादविचारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥६॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–७

स्तेय पान कथन

इन्द्र ने कहा कि भगवान्! आपने जो हिंसा आदि का लक्षण कहा, वह हमने जान लिया, अब स्तेय (चोरी) करने का क्या लक्षण है, उसे हमें बताइए।।१।।

बृहस्पति ने कहा— पापों में सबसे बड़ा पाप जीवों की जातियों की हत्या करना है। इससे भी अधिक पाप है कि जो विश्वास करके तुम्हारी शरण में आया है, उसकी हत्या करना। विश्वस्त को मारकर पापी, शूद्र तथा अन्त्य जाति से उत्पन्न व्यक्ति को मारना भी पाप है; परन्तु ब्रह्महत्या से अधिक पाप कोई नहीं है, क्योंकि उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है।।२-३।। ब्रह्मज्ञानी का धन, दरिद्र का धन तथा कठिनाई से अर्जित किये हुए व्यक्ति का धन, बहुत पुत्र और स्त्रियों वाले का धन तथा जिस धन से जो जीवित रहने की इच्छा करता हो, उसका धन, ऐसे धन को जो चुराता है, उस चोरी का इतना बड़ा पाप है कि उसका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है।।४।। जो किसी पर विश्वास करता हो तथा विश्वास करके अपना धन सौंप दे, अथवा अधिकार दे तो उसका धन हड़प लेना तो उपर्युक्त धन हरण से भी बढ़कर पाप है। इसलिए कोई यदि आप पर विश्वास करके धरोहर रख दे, उसका धन कभी हरण नहीं करना चाहिए। यदि कोई हरण करेगा तो उसका फल शीघ्र एवं अवश्य मिलता है। इसलिए विश्वस्त व्यक्ति का धन हरण नहीं करना चाहिए तथा विश्वस्त अथवा अविश्वस्त किसी का भी धन नहीं चुराना चाहिए।।५।। उसके बाद देवताओं तथा ब्राह्मण क्षत्रिय

गुरुदेवद्विजसुहृत्पुत्रस्वात्मसुखेषु च। स्तेयादधःक्रमेणैव दशोत्तरगुणं त्वधम्॥७॥
अंत्यजात्पादजाद्वैश्यात्क्षत्रियाद्ब्राह्मणादपि। दशोत्तरगुणैः पापैर्लिप्यते धनहारकः॥८॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्। रहस्यातिरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम्॥९॥
पुरा कांचीपुरे जातो वज्राख्यो नाम चोरकः। तस्मिन्पुरवरे रम्ये सर्वैश्वर्यसमन्विताः।
सर्वे नीरोगिणो दांताः सुखिनो दययांचिताः॥१०॥
सर्वैश्वर्यसमृद्धेऽस्मिन्नगरे स तु तस्करः। स्तोकास्तोकक्रमेणैव बहुद्रव्यमपाहरत्॥११॥
तदरण्येऽवटं कृत्वा स्थापयामास लोभतः। तद्गोपनं निशार्धायां तस्मिन्दूरं गते सति॥१२॥
किरातः कश्चिदागत्य तं दृष्ट्वा तु दशांशतः। जहाराविदितस्तेन काष्ठभारं वहन्ययौ॥१३॥
सोऽपि तच्छिलयाच्छाद्य मृद्भिरापूर्य यत्नतः। पुनश्च तत्पुरं प्रायाद्वज्रोऽपि धनतृष्णया॥१४॥
एवं बहुधनं त्दृत्वा निश्चिक्षेप महीतले। किरातोऽपि गृहं प्राप्य बभाषे मुदितः प्रियाम्॥१५॥
मया काष्ठं समाहर्तुं गच्छता पथि निर्जने। लब्धं धनमिदं भीरु समाधत्स्व धनार्थिनि॥१६॥
तच्छ्रुत्वा तत्समादाय निधायाभ्यंतरे ततः। चिंतयंती ततो वाक्यमिदं स्वपतिमब्रवीत्॥१७॥
नित्यं संचरते विप्रो मामकानां गृहेषु यः। मां विलोक्यैवमचिराद्बहुभाग्यवती भवेत्॥१८॥

एवं वैश्य के स्वर्ण और रत्नों को चुराने वाले को जो बिना विचारे ही मार दे, वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।।६।। जो गुरु, देवता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं मित्र, पुत्र तथा अपने सुखों के लिए धन चुराता है, वह नीचे के क्रम से अर्थात् पापों का दश गुना पापी ही तो है।।७।। नीची जातियों से उत्पन्न व्यक्ति से पादज शूद्र से, वैश्य से, क्षत्रियों से और ब्राह्मण से भी धन का हरण करता है, वह भी दशगुने पापों से लिप्त होता है।।८।। अब यहीं पर पुरातन इतिहास का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो कि रहस्यों में भी अत्यन्त रहस्यमय एवं समस्त पापों का नाश करने वाला है।।९।। प्राचीन काल में कांचीपुर में वज्राख्य नामक चोर पैदा हुआ था। उस रम्य श्रेष्ठ नगर में सभी मनुष्य ऐश्वर्यसमन्वित थे तथा सभी निरोग, इन्द्रियों का दमन करने वाले, सुखी और दयावान् थे।।१०।। उस सभी ऐश्वर्यों से समृद्ध नगर में उस चोर ने एक चोरी के बाद दूसरी चोरी करने के क्रम से बहुत धन चुरा लिया।।११।।

फिर उसने वहाँ उस वन में गड्ढा बनाकर लोभ से उस धन को गाड़ दिया। उस धन को उसने उस गाँव से बहुत दूर आधी रात में गड्ढे में गाड़ा था।।१२।। किसी किरात ने आकर और उस धन को देखकर उसका दशवाँ भाग चुरा लिया, यह किसी को भी मालूम नहीं हो पाया और वह किरात लकड़ियों को ढोता हुआ चला गया।।१३।। उसने भी उस धन को एक शिला से ढँक कर मिट्टी से दबाकर यत्नपूर्वक उस धन को छिपा दिया, फिर वह वज्र नामक चोर भी धन की तृष्णा से उस नगर में गया।।१४।। इस प्रकार उस वज्र नामक चोर ने बहुत धन चुराकर जमीन में गाड़ दिया। किरात ने भी घर जाकर प्रसन्न होकर अपनी पत्नी से कहा।।१५।। कि मैं जब लकड़ी लेने के लिये जा रहा था तो सुनसान मार्ग में यह धन मिल गया, अतः हे धन चाहने वाली भीरु! अब इस धन को सम्हाल कर रखो।।१६।। पति की उस बात को सुनकर और उस धन को अन्दर रखकर चिन्ता करती हुई अपने पति से यह वाक्य बोली।।१७।। कि हमारे घरों में नित्य जो ब्राह्मण घूमता है, मुझे देख कर शीघ्र ही उसने कहा था कि शीघ्र ही तुम्हें भाग्यवती होना चाहिए।।१८।।

चातुर्वर्ण्यासु नारीषु स्थेयं चेद्राजवल्लभा। किं तु भिल्ले किराते च शैलूषे चांत्यजातिजे।
लक्ष्मीर्न तिष्ठति चिरं शापाद्वल्मीकजन्मनः॥१९॥
तथापि बहुभाग्यानां पुण्यानामपि पात्रिणे। दृष्टपूर्वं तु तद्वाक्यं न कदाचिद्वृथा भवेत्॥२०॥
अथ वात्मप्रयासेन कृच्छ्राद्यल्लभ्यते धनम्। तदेव तिष्ठति चिरादन्यद्गच्छति कालतः॥२१॥
स्वयमागतवित्तं तु धर्मार्थैर्विनियोजयेत्। कुरुष्वैतेन तस्मात्त्वं वापीकूपादिकाञ्छुभान्॥२२॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा भाविभाग्यप्रबोधितम्। बहूदकसमं देशं तत्र तत्र व्यलोकयत्॥२३॥
निर्ममेऽथ महेंद्रस्य दिग्भागे विमलोदकम्। सुबहुद्रव्यसं साध्यं तटाकं चाक्षयोदकम्॥२४॥
दत्तेषु कर्मकारिभ्यो निखिलेषु धनेषु च। असंपूर्णं तु तत्कर्म दृष्ट्वा चिंताकुलोऽभवत्॥२५॥
तं चोरं वज्रनामानमज्ञातोऽनुचराम्यहम्। तेनैव बहुधा क्षिप्तं धनं भूरि महीतले॥२६॥
स्तोकंस्तोकं हरिष्याभि तत्रतत्र धनं बहु। इति निश्चित्य मनसा तेनाज्ञातस्तमन्वगात्॥२७॥
तथैवाहृत्य तद्द्रव्यं तेन सेतुमपूरयत्। मध्ये जलावृतस्तेन प्रासादश्चापि शार्ङ्गिणः॥२८॥
तत्तटाकमभूद्दिव्यमशोषितजलं महत्। सेतुमध्ये चकारासौ शंकरायतनं महत्॥२९॥

चारों वर्णों की स्त्रियों में जो राजाओं की पत्नियाँ होती हैं, वहीं यह धन टिकता है, किन्तु भील जाति, किरात जाति और शूद्र जाति में पैदा होने वाले चाण्डाल आदि जातियों के पास लक्ष्मी अधिक समय तक नहीं ठहरती है। यह वल्मीक से पैदा होने ववाले वाल्मीकि मुनि का शाप है, उस शाप के कारण निम्न जातियों के घरों में लक्ष्मी नहीं ठहरती।।१९।। तथापि जो बहुत भाग्यशाली, पुण्यात्मा और पात्र (श्रेष्ठ) व्यक्ति होते हैं, उनके पास ही लक्ष्मी आती है। अतः जिन भविष्यज्ञाताओं ने यह कहा है, उनका वाक्य कभी व्यर्थ (विफल) नहीं होना चाहिए।।२०।। अथवा अपने प्रयत्न से, कर्म करने से, बहुत कठिनाई से जो धन प्राप्त किया जाता है, वह धन ही बहुत समय तक ठहरता है, अन्य धन तो थोड़े से समय में ही चला जाता है।।२१।। स्वयं आये हुए धन को तो धर्मार्थ के कार्यों में लगा देना चाहिए। इसलिए आप इस धन से बावड़ी, कूप आदि बनवाकर शुभ कार्यों को कीजिये।।२२।।

इस प्रकार भविष्य में भाग्य को जगाने वाले पत्नी के वचन को सुनकर उसने बहुत जल वाले समान देश को जहाँ-तहाँ देखा।।२३।। और फिर महेन्द्र पर्वत की दिशा की तरफ बहुत धन लगाकर साफ जल वाला ऐसा तालाब बनवाया कि जिसका जल कभी भी समाप्त नहीं होता था।।२४।। उस तालाब के बनवाने में सभी कारीगरों को धन देने पर जब धन समाप्त हो गया और कार्य सम्पूर्ण नहीं हुआ, तब वह चिन्ता से व्याकुल हो गया।।२५।। तब उसने सोचा कि मैं उस वज्रनाभ नामक चोर का जो धन है, उसको मैं जानता हूँ तथा वह वज्र चोर इस बात को नहीं जानता है कि मुझे उस चोर का गड़ा हुआ धन मालूम है, अतः मैं उस चोर के धन को लाता रहूँगा और इस कार्य को पूरा कर लूँगा। थोड़ा-थोड़ा धन लाता रहूँगा, क्योंकि वहाँ तो बहुत सारा धन है, ऐसा निश्चय करके वह किरात वहाँ गया।।२६-२७।। और वहाँ से उस धन को ला-लाकर उसने उस सेतु को पूर्ण कर दिया तथा उस जलाशय के मध्य में उसने भगवान् शंकर का एक मन्दिर भी बनवा दिया।।२८।। वह कभी न सूखने वाले जल से युक्त महान् दिव्य तालाब था तथा उसके बीच में एक सेतु के मध्य में उसने भगवान् शंकर का महान् मन्दिर बनवा दिया।।२९।।

काननं च क्षयं नीतं बहुसत्त्वसमाकुलम्। तेनाग्र्याणि महार्हाणि क्षेत्राण्यापि चकार सः॥३०॥
देवताभ्यो द्विजेभ्यश्च प्रदत्तानि विभज्य वै। ब्राह्मणांश्च समामंत्र्य देवव्रातमुखान्बहून्॥३१॥
संतोष्य हेमवस्त्राद्यैरिदं वचनम ब्रवीत्। क्व चाहं वीरदत्ताख्यः किरातः काष्ठविक्रयी॥३२॥
क्व वा महासेतुबंधः क्व देवालयकल्पना।
क्व वा क्षेत्राणि क्लृप्तानि ब्राह्मणायतनानि च॥३३॥
कृपयैव कृतं सर्वं भवतां भूसुरोत्तमाः। प्रतिगृह्य तथैवैतद्देवव्रातमुखा द्विजाः॥३४॥
द्विजवर्मेति नामास्मै तस्यै शीलवतीति च। चक्रुः संतुष्टमनसो महात्मानो महौजसः॥३५॥
तेषां संरक्षणार्थाय बंधुभिः सहितो वशी। तत्रैव वसतिं चक्रे मुदितो भार्यया सह॥३६॥
पुरोहिताभिधानेन देवरातपुरं त्विति। नाम चक्रे पुरस्यास्य तोषयन्नखिलाद्विजान्॥३७॥
ततः कालवशं प्राप्तो द्विजवर्मा मृतस्तदा। यमस्य ब्रह्मणो विष्णोर्दूता रुद्रस्य चागताः॥३८॥
अन्योऽन्यमभवत्तेषां युद्धं देवासुरोपमम्। अत्रांतरे समागत्य नारदो मुनिरब्रवीत्॥३९॥
मा कुर्वंतु मिथो युद्धं शृण्वंतु वचनं मम। अयं किरातश्चौर्येण सेतुबंधं पुराकरोत्॥४०॥
वायुभूतश्चरेदेको यावद्द्रव्यवतो मृतिः। स बहुभ्यो हरेद्द्रव्यं तेषां यावत्तथा मृतिः॥४१॥
गतेष्वखिलदूतेषु श्रुत्वा नारदभाषितम्। चचार द्वादशाब्दं तु वायुभूतोंऽतरिक्षगः॥४२॥

वह वन, जो बहुत से हिंसक जीवों से भरा हुआ था, उसको नष्ट कर दिया और वहाँ उसने उस धन से बहुत ही सुन्दर महल और क्षेत्र बनवा दिये।।३०।। फिर उसने देवताओं और ब्राह्मणों के दान दिये तथा देवताओं का व्रत रखने वाले बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर उन सबको स्वर्ण वस्त्र आदि से पूरी तरह सन्तुष्ट करके यह वचन कहा।।३१-३१½।। कि कहाँ तो मैं लकड़ी बेचने वाला वीरदत्त नामका किरात और कहाँ इतना विशाल सेतु बाँधना, जलाशय तथा सुन्दर क्षेत्र बनाना तथा कहाँ ब्राह्मणों के घर बनाना।।३१½-३३।। अतः हे पूज्य ब्राह्मणश्रेष्ठों! आपकी ही कृपा से मैंने यह सब किया है। तब इसके बाद बहुत ही प्रसन्न मन से महा तेजस्वी महात्मा उन देवव्रातमुख ब्राह्मणों ने उसी प्रकार उसके आदर को स्वीकार करके उसका नाम द्विजवर्मा रख दिया और उसकी पत्नी का नाम शीलवती रख दिया।।३४-३५।। अब उन ब्राह्मणों के संरक्षण के लिए अपने बन्धुओं सहित वह जितेन्द्रिय प्रमुदित होकर पत्नी के साथ वहीं पर रहने लगा।।३६।। क्योंकि उसने पुरोहितों का स्वागत किया था, इसलिए उस नगर का नाम देवरात पुर रखा गया तथा यह नाम समस्त ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए रखा गया था।।३७।।

उसके बाद कालवश वह द्विजवर्मा मर गया, तब उसे लेने के लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के दूत आ गये।।३८।। तब वे एक-दूसरे से कहने लगे कि हम ले जायेंगे, हम ले जायेंगे, इस प्रकार वहाँ उनमें देवासुर संग्राम की भाँति युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसी बीच नारद मुनि वहाँ आकर बोले।।३९।। नारदजी बोले कि आप लोग आपस में युद्ध मत करो, मेरी बात सुनो। इस किरात ने चोरी से इस सेतुबंध का निर्माण किया है।।४०।। अतः वायु बनकर तब तक विचरण करे, जब तक कि धनवान् होकर मरे, वह बहुतों से धन हरण करे, जब तक कि उसकी मृत्यु हो।।४१।। तब सभी दूतों के चले जाने पर नारद जी की बात को सुनकर बारह वर्षों तक वायु बनकर अन्तरिक्ष में गमन करने वाला बनकर वह द्विजवर्मा विचरण करता रहा।।४२।।

भार्यां तस्याह स मुनिस्तव दोषो न किंचन। त्वया कृतेन पुण्येन ब्रह्मलोकमितो व्रज॥४३॥
वायुभूतं पतिं दृष्ट्वा नेच्छति ब्रह्ममंदिरम्। निर्वेदं परमापन्ना मुनिमेवमभाषत॥४४॥
विना पतिमहं तेन न गच्छेयं पितामहम्। इहैवास्ते पतिर्यावत्स्वदेहं लभते तथा॥४५॥
ततस्तु या गतिस्तस्य तामेवानुचराम्यहम्। परिहारोऽथवा किं तु मया कार्यस्तु तेन वा॥४६॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा प्रीतः प्राह तपोधनः। भोगात्मकं शरीरं तु कर्म कार्यकरं तव॥४७॥
मम प्रभावाद्भविता परिहारं वदामि ते। निराहारो महातीर्थे स्नात्वा नित्यं हि सांबिकम्॥४८॥
पूजयित्वा शिवं भक्त्या कंदमूलफलाशनः। ध्यात्वा हृदि महेशानं शतरुद्रमनुं जपेत्॥४९॥
ब्रह्महा मुच्यते पापैरष्टोत्तरसहस्रतः। पापैरन्यैश्च सकलैर्मुच्यते नात्र संशय;॥५०॥
इत्यादिश्य ददौ तस्यै रुद्राध्यायं तपोधनः। अनुगृह्येति तां नारीं तत्रैवांतर्द्धिमागमत्॥५१॥
भर्तुः प्रियार्थे संकल्प्य जजाप परमं जपम्। विमुक्तस्तेयदोषेण स्वशरीरमवाप सः॥५२॥
ततो वज्राभिधश्चौरः कालधर्ममुपागतः। अन्ये तद्द्रव्यवंतोऽपि कालधर्ममुपागताः॥५३॥
यमस्तु तान्समाहूय वाक्यं चैतदुवाच ह॥५४॥
भवद्भिस्तु कृतं पापं दैवात्सुकृतमप्युत। किमिच्छथ फलं भोक्तुं दुष्कृतस्य शुभस्य वा॥५५॥

उसकी पत्नी से नारद मुनि ने कहा कि तुम्हारा तो कुछ भी दोष नहीं है, तुमने जो पुण्य किया है, उस पुण्य से तुम ब्रह्मलोक को जाओ।।४३।। उसकी पत्नी ने अपने पति को वायु बना हुआ देखकर ब्रह्मलोक को जाना नहीं चाहा और बहुत शोक व्यक्त करती हुई, मुनि नारद से इस प्रकार बोली।।४४।। कि हे पितामह! मैं उस पुण्य के द्वारा बिना पति के ब्रह्मलोक नहीं जाऊँगी। यहीं पर मैं रहती हूँ, जब तक मेरे पति अपने शरीर को नहीं प्राप्त होते हैं।।४५।। उसके बाद जो गति उनकी होगी, उनकी गति का मैं अनुसरण करती रहूँगी। जब मेरे पति का ही परिहार है, तब मुझे उस पुण्य से क्या कार्य है।।४६।। इस प्रकार उसके वचन को सुनकर प्रसन्न हुए तपस्वी नारद बोले कि तुम्हारा शरीर भोगात्मक है और तुम्हारा कर्म कारगर है।।४७।। मैं तुमसे कहता हूँ कि मेरे प्रभाव से तुम्हारा परिहार प्रायश्चित्त (पाप से छुटकारा) हो जायेगा, अतः निराहार रहकर महातीर्थ में स्नान करके अम्बिका सहित भगवान् शंकर को भक्ति से पूजकर कंदमूल फल खाते हुए ध्यान करके महा ईशान शतरुद्र का जप करो।।४८-४९।। क्योंकि ब्रह्महत्या करने वाला भी एक हजार आठ बार जप करने से पापों से मुक्त हो जाता है तथा वह अन्य सभी पापों से भी मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५०।।

इस प्रकार आदेश देकर उन तपस्वी नारद ने उस द्विजवर्मा की पत्नी को रुद्राध्याय प्रदान कर दिया। उस स्त्री पर कृपा करके वे महामुनि नारद वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।५१।। अपने प्रियतम की भलाई के लिए संकल्प करके द्विजवर्मा की पत्नी ने परम तप किया, तब उसकी तपस्या के प्रभाव से चोरी के दोष से विमुक्त होकर उसके पति ने अपने शरीर को प्राप्त कर लिया।।५२।। उसके बाद वज्र नाम का चोर कालधर्म को प्राप्त हुआ और उस चोरी के धन वाले भी कालधर्म को प्राप्त हो गये। अर्थात् वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गये।।५३।। तब यमराज ने उन सबको बुलाकर यह कहा।।५४।। कि आप लोगों ने तो जो पाप किया है, अर्थात् जो आपने पाप का धन एकत्र किया था, उस धन को मन्दिर, तालाब सेतुबन्ध बनाकर शुभ कार्य में लगा दिया गया। अतः आपका किया हुआ पाप था,

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वज्रादिकास्ततः।
सुकृतस्य फलं त्वादौ पश्चात्पापस्य भुज्यते॥५६॥
पुनराह यमो यूयं पुत्रमित्रकलत्रकैः। एतस्यैव बलात्सर्वे त्रिदिवं गच्छत द्रुतम्॥५७॥
तेऽधिरुह्य विमानाग्र्यं द्विजवर्माणमाश्रिताः। यथोचितफलोपेतास्त्रिदिवं जग्मुरंजसा॥५८॥
द्विजवर्माखिलाँल्लोकानतीत्य प्रमदासखः। गाणपत्यमनुप्राप्य कैलासेऽद्यापि मोदते॥५९॥

इंद्र उवाच

तारतम्याविभागं च कथय त्वं महामते। सेतुबंधादिकानां च पुण्यानां पुण्यवर्धनम्॥६०॥

बृहस्पतिरुवाच।

पुण्यस्यार्द्धफलं प्राप्य द्विजवर्मा महायशाः। वज्रः प्राप्य तदर्धं तु तदर्धेन युताः परे॥६१॥
मनोवाक्कायचेष्टाभिश्चतुर्धा क्रियते कृतिः। विनश्येत्तेन तेनैव कृतैस्तत्परिहारकैः॥६२॥

इंद्र उवाच

आसवस्य तु किं रूपं को दोषः कश्च वा गुणः। अन्नं दोषकरं किं तु तन्मे विस्तरतो वद॥६३॥

वह दैवयोग से शुभ कर्म में बदल गया। अब आप लोग दुष्कर्म कर्म का फल भोगना चाहते हैं, अथवा शुभ का।।५५।। उस यमराज के इस वचन को सुनकर वज्र आदि (वज्र नामक चोर) तथा जिनका धन चुराया गया था, वे सभी यमराज से बोले कि पहले शुभ कर्म का फल भोगेंगे, बाद में पाप का।।५६।। फिर यम ने कहा कि तुम सब अपने पुत्र, मित्र और पत्नियों सहित इसी के बल से शीघ्र स्वर्ग चले जाओ।।५७।। वे सब द्विजवर्मा पर आश्रित होकर विमान पर चढ़कर यथोचित फल से युक्त होकर तीव्रता से स्वर्ग को चले गये।।५८।। तथा द्विजवर्मा समस्त लोकों को पार करके अपनी पत्नी के साथ गाणपत्य को प्राप्त कर अर्थात् भगवान् शिव के गणों के स्वामी बनकर आज भी कैलास पर्वत पर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।।५९।।

इन्द्र ने गुरु बृहस्पति से कहा कि हे गुरुदेव! हे महामते! सेतुबन्धादि पुण्यों का पुण्य बढ़ाने वाला तारतम्य विभाग हमें बताइए।।६०।।

बृहस्पति बोले कि पुण्य का आधा फल प्राप्त करके द्विजवर्मा गाणपत्य को प्राप्त हुए अर्थात् भगवान् शिव के गणों के स्वामी बन गये। उसका आधा फल वज्र नामक चोर को प्राप्त हुआ और उसका आधा फल अन्य लोगों ने लिया।।६१।। मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं से चार प्रकार के कार्य होते हैं, अर्थात् शुभ अथवा अशुभ कार्यों को मन से, वाणी से, शरीर से और चेष्टाओं के करने पर उनका तदनुसार फल मिलता है, अर्थात् मन से किसी का बुरा सोचना भी पाप है, वाणी से किसी को ऐसी बात को कहना, जिससे उसे दुःख हो, वह भी पाप है। शरीर से किसी को मारना-पीटना तो स्पष्ट पाप है, यही नहीं किसी को मारने की चेष्टा करना भी पाप है। इस प्रकार ये कार्य चार प्रकार के हैं। अतः जो कर्म जैसे हैं, जिससे पैदा हुए हैं, उनको ही परिहार कर नष्ट कर देना चाहिए, अर्थात् मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं से यदि कोई पाप पैदा हुआ है, तो उसको मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं से दूर करके विनष्ट कर देना चाहिए।।६२।।

इन्द्र ने कहा कि गुरुदेव! शराब (मद्य) पान का क्या रूप है तथा इसमें क्या दोष अथवा गुण है, उसको मुझे विस्तार से बताइए।।६३।।

बृहस्पतिरुवाच।

पैष्टिकं तालजं कैरं माधूकं गुडसंभवम्। क्रमान्न्यूनतरं पापं तदर्द्धार्द्धार्द्धतस्तथा॥६४॥
क्षत्रियादित्रिवर्णानामासवं पेयमुच्यते। स्त्रीणामपि तृतीयादि पेयं स्याद्ब्राह्मणीं विना॥६५॥
पतिहीना च कन्या च त्यजेदृतुमती तथा। अभर्तृसन्निधौ नारी मद्यं पिबति लोलुपा॥६६॥
उन्मादिनीति साख्याता तां त्यजेदन्त्यजामिव॥६७॥
दशाष्टषट्चतस्त्रस्तु द्विजातीनामयं भवेत्। स्त्रीणां मद्यं तदर्द्धं स्यात्पादंस्याद्भर्तृसङ्गमे॥६८॥
मद्यं पीत्वा द्विजो मोहात्कृच्छ्रचान्द्रायणं चरेत्। जपेच्चायुतगायत्रीं जातवेदसमेव वा॥६९॥
अम्बिका हृदयं वापि जपेच्छुद्धो भवेन्नरः।
क्षत्रियोऽपि त्रिवर्णानां द्विजादधोऽर्धतः क्रमात्॥७०॥
स्त्रीणामर्धार्धक्लृप्तिः स्यात्कारयेद्वाद्विजैरपि। अन्तर्जले सहस्त्रं वा जपेच्छुद्धिमवाप्नुयात्॥७१॥
लक्ष्मीः सरस्वती गौरी चंडिका त्रिपुरांबिका।
भैरवो भैरवी काली महाशास्त्री च मातरः॥७२॥

बृहस्पति ने कहा कि पाँच प्रकार की शराब (आसव) होती है, वह है—१. पैष्टिक—जो अन्न को सड़ाकर बनायी जाती है, २. तालज—जो ताड़ अथवा खजूर से बनाई जाती है, जिसे ताड़ी भी कहते हैं, ३. कैर—जो केर को सड़ा कर बनायी जाती है, ४. माधूक—महुआ की शराब तथा ५. गुड़ से पैदा होने वाली शराब। इस प्रकार ये पाँच प्रकार के आसव (मद्य) हैं, इनका पान करना पाप है तथा इनमें सबसे अधिक पाप सड़े अन्न से बनी शराब पीने से होता है, फिर क्रमशः आधा होता चला जाता है तथा सबसे कम पाप गुड़ से बनी शराब पीने से होता है।।६४।। क्षत्रियादि वर्णों का तो आसव पेय कहा जाता है। स्त्रियों को भी कैर नामक आसव को पीना चाहिए; परन्तु ब्राह्मणी को नहीं पीना चाहिए।।६५।। पतिहीन, विधवा नारी, कन्या और रजस्वला नारी को मद्यपान छोड़ देना चाहिए तथा अपने पति के पास न रहने वाली स्त्री लोलुप होकर मद्यपान करती है, वह उन्मादिनी कही गयी है, उस स्त्री को अन्त्यज (चाण्डाल नारी) की भाँति छोड़ देना चाहिए।।६६-६७।। दश, आठ, छः और चार यह द्विजातियों का होना चाहिए, स्त्रियों को उसका आधा मद्यपान तथा चौथायी पति के साथ समागम करने से होता है अर्थात् ब्राह्मण को शराब पीने से दश गुना, क्षत्रिय को आठ गुना, वैश्य को छः गुना और शूद्र को चार गुना पाप होता है और सब वर्ण की स्त्रियों को उस वर्ण का आधा तथा समागम करते समय पीने पर चौथाई पाप होता है।।६८।।

ब्राह्मण को मोहवश मद्यपान करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिए तथा दश हजार बार गायत्री मन्त्र का अथवा जातवेद मन्त्र का जाप करना चाहिए।।६९।। अम्बिका को हृदय में रखकर यदि मनुष्य जप करे, तो शुद्ध हो जाना चाहिए तथा क्षत्रिय को ब्राह्मण से आधे बार अर्थात् पाँच हजार बार उपर्युक्त जाप करना चाहिए, फिर अन्य वर्णों को उसके आधे तथा फिर आधे के आधे बार जाप करना चाहिए, इस प्रकार वैश्य को पच्चीस सौ बार तथा शूद्र को बारह सौ पचास बार गायत्री अथवा जातवेद मन्त्र का जाप करना चाहिए।।७०।। स्त्रियों को उसके आधे के आधे बार जाप करना चाहिए; परन्तु वह जाप उन्हें जल के अन्दर खड़े होकर एक हजार बार करना होगा, तब वे शुद्धि प्राप्त करेंगीं तथा ऐसा ब्राह्मणों द्वारा भी किया जाना चाहिए।।७१।। लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, चण्डिका, त्रिपुराम्बिका,

अन्याश्च शक्तयस्तासां पूजने मधु शस्यते। ब्राह्मणस्तु विना तेन यजेद्वेदाङ्गपारगः॥७३॥
तन्निवेदितमश्नंतस्तदनन्यास्तदात्मकाः। तासां प्रवाहा गच्छन्ति निर्लेपास्ते परां गतिम्॥७४॥
कृतस्याखिलपापस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा। प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पराशक्तेः पदस्मृतिः॥७५॥
अनभ्यर्च्य परां शक्तिं पिबेन्मद्यं तु योऽधमः। रौरवे नरकेऽब्दं तु निवसेद्बिंदुसंख्यया॥७६॥
भोगेच्छया तु यो मद्यं पिबेत्स मानुषाधमः। प्रायश्चित्तं न चैवास्य शिलाग्निपतनादृते॥७७॥
द्विजो मोहान्न तु पिबेत्स्नेहाद्वा कामतोऽपि वा। अनुग्रहाच्च महतामनुतापाच्च कर्मणः॥७८॥
अर्चनाच्च पराशक्तेर्यमैश्च नियमैरपि। चांद्रायणेन कृच्छ्रेण दिनसंख्याकृतेन च।
शुद्ध्येच्च ब्राह्मणो दोषाद्द्विगुणाद्बुद्धिपूर्वतः॥७९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने
स्तेयपानकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

भैरव, भैरवी, काली और महाशास्त्री ये सब माताएँ हैं।।७२।। अन्य भी शक्तियाँ हैं, उनके पूजन में मधु (आसव) के साथ बलि दी जाती है। वेद और (वेदाङ्गों में पारङ्गत ब्राह्मण को तो मधु के बिना ही यज्ञ पूजनादि करने चाहिएँ।।७३।। जो लोग निवेदन करने पर आसव का उपभोग नहीं करते हैं तथा उससे अन्य जो उसका सेवन करते हैं, अतः जो सेवन करते हैं, उनका किये गये समस्त पापों के जो कि जानते हुए हुए हों, अथवा अज्ञान से हुए हों, उसका प्रायश्चित्त यही है कि वह पराशक्ति के चरणों का स्मरण करे, अर्थात् पराशक्ति का ध्यान करे तथा उनका जाप करे।।७४-७५।। जो अधम व्यक्ति पराशक्ति की अर्चना न करके मद्यपान करता है, वह विन्दुओं की संख्या में असंख्य बार रौरव नरक में गिरता है।।७६।।

भोग करने की इच्छा से जो मनुष्य मद्यपान करता है, वह मनुष्य अधम (नीच) होता है तथा भोग की इच्छा से पिये गये मद्यपान के पाप का पत्थर की शिला पर शिर पटकने के अलावा कोई प्रायश्चित्त नहीं है।।७७।। ब्राह्मण को मोह से मद्य नहीं पीना चाहिए न किसी द्वारा प्रेमपूर्वक देने से पीना चाहिए और न ही काम (संभोग) की दृष्टि से मद्यपान करना चाहिए।।७७½।। तथा ब्राह्मण यदि पान कर ले तो उसे महान् पुरुषों के अनुग्रह से और कर्म के अनुपात से यम और नियमों द्वारा पराशक्ति की अर्चना से और चान्द्रायण व्रत से बुद्धिपूर्वक दुगुने दोषों से शुद्ध होना चाहिए।।७७½-७९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ७वाँ अध्याय स्तेय पान कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

अगम्यागमयोः प्राश्चित्त वर्णनं नाम

अष्टमोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

अगम्यागमनं किं वा को दोषः का च निष्कृतिः। एतन्मे मुनिशार्दूल विस्तराद्वक्तुमर्हसि॥१॥

बृहस्पतिरुवाच।

अगम्यागमनं नाम मातृस्वसृगुरुस्त्रियः। मातुलस्य प्रिया चेति गत्वेमा नास्ति निष्कृतिः॥२॥

मातृसङ्गे तु यदघं तदेव स्वसृसङ्गमे। गुरुस्त्रीसंगमे तद्वद्गुरवो बहवः स्मृताः॥३॥

ब्रह्मोपदेशमारभ्य यावद्वेदांतदर्शनम्। एकेन वक्ष्यते येन स महागुरुरुच्यते॥४॥

ब्रह्मोपदेशमेकत्र वेदशास्त्राण्यथैकतः। आचार्यः स तु विज्ञेयस्तदेकैकास्तु देशिकाः॥५॥

गुरोरात्मांतमेव स्यादाचार्यस्य प्रियागमे। द्वादशाब्दं चरेत्कृच्छ्रमेकैकं तु षडब्दतः॥६॥

मातुलस्य प्रियां गत्वा षडब्दं कृच्छ्रमाचरेत्। ब्राह्मणस्तु सजातीयां प्रमदां यदि गच्छति॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–८

अगम्य और आगमादि और उनका प्रायश्चित्त वर्णन

इन्द्र ने कहा कि गुरुदेव! यह बतलाइए कि जिनके साथ समागम नहीं करना चाहिए तथा उनके साथ करने पर घोर पाप होता है, उनको बताइए। अर्थात् जो अगम्य है, जिनके साथ समागम नहीं करना चाहिए तथा उनके साथ करने में क्या दोष है तथा उससे बचने का उपाय क्या है, यह विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए।।१।।

बृहस्पति ने कहा कि अगम्यागमन का नाम है कि माता, बहिन और गुरुपत्नी और मामा की पत्नी अर्थात् मामी, इन सबके साथ समागम नहीं करना चाहिए तथा यदि किसी ने कर लिया है, तो उससे बचने का कोई उपाय नहीं, उस घोर पाप का फल भोगना ही पड़ेगा।।२।। माता के साथ समागम करने में जो पाप है, वही पाप बहिन के साथ सम्भोग करने में है। उसी प्रकार गुरुपत्नी के साथ भी उसके बराबर पाप है। तब गुरु तो बहुत स्मरण किये गये हैं, तो बताते हैं कि ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्रारम्भ करके वेदान्त दर्शन का उपदेश जिस एक के द्वारा दिया जाता है, वह महागुरु कहा जाता है।।४।। ब्रह्म का उपदेश एक स्थान पर है और वेदशास्त्र एक तरफ, अतः वेदशास्त्रों को पढ़ाने वाला आचार्य समझना चाहिए और एक एक को पढ़ाने वाले को देशिक कहा जाता है।।५।। गुरु की पत्नी के साथ समागम से आत्मा का अन्त ही हो जाना चाहिए तथा आचार्य की प्रियतमा के साथ समागम करने में बारह वर्ष कृच्छ्र नामक नरक में अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है तथा वह दोनों को स्त्री तथा पुरुष को छः-छः वर्ष नरक भोगना पड़ता है।।६।। मामा की पत्नी से समागम करने वाले को छः वर्ष तक अत्यन्त पीड़ादायक कृच्छ्र नामक नरक को भोगना चाहिए। ब्राह्मण यदि अपनी जाति की स्त्री से यदि समागम करता है, तो उसे घर से तीन रात तक बाहर रहकर

उपोषितस्त्रिरात्रं तु प्राणायामशतं चरेत्। कुलटां तु सजातीयां त्रिरात्रेण विशुध्यति॥८॥
पञ्चाहात्क्षत्रियां गत्वा सप्ताहाद्वैश्यजामपि। चक्रीकिरातकैवर्तकर्मकारादियोषितः॥९॥
शुद्धिः स्याद्द्वाहशाहेन धराशक्त्यर्चनेन च।
अन्त्यजां ब्राह्मणो गत्वा प्रमादादब्दतः शुचिः॥१०॥
देवदासी ब्रह्मदासी स्वतंत्रा शूद्रदासिका। दासी चतुर्विधा प्रोक्ता द्वे चाद्ये क्षत्रियासमे॥११॥
अन्या वेश्याङ्गनातुल्या तदन्या हीनजातिवत्।
आत्मदासीं द्विजो मोहादुक्तार्थे दोषमाप्नुयात्॥१२॥
स्वस्त्रीमृतुमतीं गत्वा प्राजापत्यं चरेद्व्रतम्। द्विगुणेन परां नारीं चतुर्भिः क्षत्रियांगनाम्॥१३॥
अष्टभिर्वैश्यनारीं च शूद्रां षोडशभिस्तथा। द्वात्रिंशता संकरजां वेश्यां शूद्रामिवाचरेत्॥१४॥
रजस्वलां तु यो भार्यां मोहतो गंतुमिच्छति। स्नात्वान्यवस्त्रसंयुक्तमुक्तार्थेनैव शुध्यति॥१५॥
उपोष्य तच्छेषदिनं स्नात्वा कर्म समाचरेत्। तथैवान्यांगनां गत्वा तदुक्तार्थं समाचरेत्॥१६॥
पित्रोरनुज्ञया कन्यां यो गच्छेद्विधिना विना। त्रिरात्रोपोषणाच्छुद्धिस्तामेवोद्वाहयेत्तदा॥१७॥

सौ प्राणायाम करने चाहिएँ। अपनी जाति की स्त्री यदि कुलटा है, तो वह ब्राह्मण तीन रात में शुद्ध होता है।।७-८।। यदि ब्राह्मण पराई क्षत्रिया स्त्री के साथ समागम करे, तो पाँच दिन तक तथा वैश्य की लड़की के साथ समागम करने पर सात दिन तक घर से बाहर रहकर सौ सौ बार प्राणायाम करना चाहिए, तब वह ब्राह्मण विशुद्ध होता है। चक्री, किरात, कैवर्त और कर्मकार आदि की स्त्री के साथ समागम करने पर ब्राह्मण की शुद्धि बारह दिन तक घर से बाहर रहकर सौ सौ प्राणायम करने से तथा पृथ्वी और पराशक्ति के पूजन से होती है। यदि चाण्डाल की पुत्री के साथ प्रमाद से ब्राह्मण समागम करे, तो उसकी एक वर्ष तक बाहर रहकर प्राणायाम तथा पृथ्वी और शक्ति का पूजन करने से शुद्धि होती है।।९-१०।। देवदासी, ब्रह्मदासी, स्वतन्त्रा और शूद्रदासी इस प्रकार दासियाँ चार प्रकार की होती हैं, इनमें प्रारम्भ की दो देवदासी और ब्रह्मदासी क्षत्रियों की दासियाँ होती हैं। अन्य दो दासियाँ, स्वतन्त्रा और शूद्रदासिका ये दासियाँ वैश्य की स्त्री के तुल्य उसके अन्य सब हीन जाति के समान होती हैं। अपनी दासी से यदि कोई ब्राह्मण समागम करे, तो वह दोष को प्राप्त करता है।।११-१२।।

अपनी रजस्वला स्त्री से यदि कोई ब्राह्मण समागम करे, तो उसे प्राजापत्य व्रत करना चाहिए तथा यदि पराई रजस्वला स्त्री से समागम करे, इससे दुगुना और चार गुना तक व्रत करना चाहिए।।१३।। तथा वहीं पर ब्राह्मण यदि वैश्य रजस्वला नारी से समागम करे, तो आठ बार, यदि शूद्रा के साथ करे, तो सोलह बार प्राजापत्य व्रत करना चाहिए तथा यदि वर्णसंकर जाति की रजस्वला हो, तो बत्तीस बार प्राजापत्य व्रत का आचरण करे। वैश्य और शूद्रा रजस्वला के साथ विप्र समागम से भी बत्तीस प्राजापत्य व्रत का विधान है।।१४।। जो अत्यधिक कामावेश में रजस्वला पत्नी के साथ समागम करना चाहता है, वह स्नान करके अन्य वस्त्र से संयुक्त हो, मुक्त अर्थ से शुद्ध होता है।।१५।। तथा वह घर से बाहर रहकर उस शेष दिन स्नान करके ही कोई कर्म करना चाहिए। उसी प्रकार अन्यों की रजस्वला स्त्रियों के साथ समागम करके शरीर शुद्धि करनी चाहिए।।१६।। कन्या के माता-पिता की अनुमति के बिना जो व्यक्ति बिना विधि के समागम करे, तो उसकी शुद्धि तीन रात घर से बाहर रहने से हो तथा तब उसका विवाह भी उसी के

कन्यां दत्त्वा तु योऽन्यस्मै दत्ता यश्चानुयच्छति। पित्रोरनुज्ञया पाददिनार्धेन विशुध्यति॥१८॥
ज्ञातः पितृभ्यां यो मासं कन्याभावे तु गच्छति। वृषलः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥१९॥
ज्ञातः पितृभ्यां यो गत्वा परोढां तद्विनाशने। विधवा जायते नेयं पूर्वगन्तारमाप्नुयात्॥२०॥
अनुग्रहाद्द्विजातीनामुद्वाहाविधिना तथा। त्यागकर्माणि कुर्वीत श्रौतस्मार्तादिकानि च॥२१॥

आदाबुद्वाहिता वापि तद्विनाशेऽन्यदः पिता।
भोगेच्छोः साधनं सा तु न योग्याखिलकर्मसु॥२२॥

ब्रह्मादिपिपीलकांतं जगत्स्थावरजंगमम्। पञ्चभूतात्मकं प्रोक्तं चतुर्वासनयान्वितम्॥२३॥
जन्माद्याहारमथननिद्राभीत्यश्च सर्वदा। आहारेण विना जुंतुर्नाहारो मदनात्स्मृतः॥२४॥
दुस्तरो मदनस्तस्मात्सर्वेषां प्राणिनामपि। पुन्नारीरूपवत्कृत्वा मदननैव विश्वसृक्॥२५॥
प्रवृत्तिमकरोदादौ सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्। तत्प्रवृत्त्या प्रवर्तंते तन्निवृत्त्याक्षयां गतिम्॥२६॥

साथ होना चाहिए।।१७।। जो अपनी कन्या अन्य को देकर दी हुई कन्या को फिर वापस ले लेता है, वह माता-पिता की अनुमति से आधे दिन में शुद्ध होता है।।१८।। माता-पिता के जानते हुए, जो उसकी कन्या से एक मास तक समागम करे, तो उसे शूद्र समझना चाहिए तथा उसे सब कर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिए।।१९।। माता-पिता के जानते हुए, जो व्यक्ति पराई स्त्री से समागम करे और फिर वह मर जाये तो उसके मरने पर यह विधवा अपने पूर्व समागम कर्ता को न प्राप्त करे। अर्थात् उस समागमकर्ता की ही पत्नी मानी जानी चाहिए। यहाँ इसका यह अर्थ हो सकता है कि पिता-माता की जानकारी में कोई अन्य को विवाहित स्त्री से समागम करे, तो उसके मरने पर वह विधवा नहीं होती, वह पूर्व समागमकर्ता की पत्नी ही मानी जानी चाहिए।।२०।। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य द्विजातियों के अनुग्रह से विवाह विधि से विवाही गई पत्नी को वेद विहित एवं स्मृतियों में वर्णित त्याग कर्मों को करना चाहिए।।२१।। जो स्त्री पहले विवाहित हो और विवाहित होते ही उसका पति मर जाये तो पिता उसे अन्य पुरुष को देने वाला होता है, अर्थात् पिता अन्य पुरुष के साथ उसका विवाह कर सकता है; परन्तु वह गृहस्थी के सभी कर्म करने के योग्य नहीं होती, अर्थात् पूजा-पाठ आदि कार्यों में वह पत्नी के पद का निर्वाह नहीं कर सकती।।२२।।

ब्रह्म आदि से लेकर एक चींटी तक यह जड़-चेतन संसार पञ्चभूतात्मक कहा गया है। चार वासनाओं से युक्त है।।२३।। पहले जन्म आदि होता है, फिर आहार, मैथुन, निद्रा और भय सर्वदा सभी जीवों में रहता है। आहार के बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। आहार ही मैथुन का कारण होता है।।२४।। आहार किया है, तो वीर्य बनेगा, जो मैथुन का कारण होगा। इसलिये इस मदन (कामदेव) को जीतना, उसको वश में करना बहुत कठिन है, क्योंकि यह मदन सब प्राणियों से दुस्तर है तथा सब प्राणियों का कारण भी है। यदि कामदेव (मैथुन) नहीं होता तो प्राणी नहीं होते। संसार के समस्त प्राणी मैथुन से ही उत्पन्न हुए हैं।।२४½।। विश्व की रचना करने वाले ब्रह्मा ने आदिकाल में पुरुष और नारी का रूप धारण करके मदन (मैथुन) से ही सृष्टि, स्थिति और लयात्मक प्रवृत्ति की थी।।२४½-२५½।। उस कामदेव (मैथुन) के प्रवृत्त होने अर्थात् मैथुन करने से संसार प्रवृत्त होता है, अर्थात् संसार में जीव की उत्पत्ति होती है और स्थिति भी होती है; क्योंकि बच्चा पैदा करने के बाद मैथुन की आसक्ति के कारण ही तो प्राणी एक-दूसरे मिले-जुले रहते हैं, जिससे यह संसार चलता रहता है। यदि यह मैथुन की आसक्ति नहीं होती

प्रवृत्त्यैव यथा मुक्तिं प्राप्नुयुर्ये न धीयुताः। तद्रहस्यं तदोपायं शृणु वक्ष्यामि सांप्रतम्॥२७॥
सर्वात्मको वासुदेवः पुरुषस्तु पुरातनः। इयं हि मूलप्रकृतिर्लक्ष्मीः सर्वजगत्प्रसूः॥२८॥
पंचापंचात्मतृप्त्यर्थं मथनं क्रियतेतराम्। एवं मंत्रानुभावात्स्यान्मथनं क्रियते यदि॥२९॥
तावुभौ मंत्रकर्माणौ न दोषो विद्यते तयोः॥३०॥
तपोबलवतामेतत्केवलानामधोगति;। स्वस्त्रीविषय एवेदं तयोरपि विधेर्बलात्॥३१॥
परस्परात्म्यैक्यहृदोर्देव्या भक्त्यार्द्रचेतसोः। तयोरपि मनाक्चेन्न निषिद्धदिवसेष्वधम्॥३२॥
इयमंबा जगद्धात्री पुरुषोऽयं सदाशिवः। पंचविंशतितत्त्वानां प्रीतये मथ्यतेऽधुना॥३३॥
एतन्मंत्रानुभावाच्च मथनं क्रियते यदि। तावुभौ पुण्यकर्माणौ न दोषो विद्यते तयोः॥३४॥
इदं च शृणु देवेंद्र रहस्यं परमं महत्। सर्वेषामेव पापानां यौगपद्येन नाशनम्॥३५॥
भक्तिश्रद्धासमायुक्तः स्नात्वांतर्जलसंस्थितः। अष्टोत्तरसहस्रं तु ज़पेत्पंचदशाक्षरीम्॥३६॥
आराध्य च परां शक्तिं मुच्यते सर्वकिल्विषैः। तेन नश्यंति पापानि कल्पकोटिकृतान्यपि।
सर्वापद्भ्यो विमुच्येत सर्वाभीष्टं च विंदति॥३७॥

तो बच्चा पैदा करने के एक बार सम्भोग के बाद वे एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते तथा जब इस कामदेव की समाप्ति हो जाती है, तब प्रलय होती है, जो अक्षय है, अवश्यम्भावी है, जिसे होना ही है।।२६।। इस मदन की प्रवृत्ति द्वारा जिन बुद्धिमानों ने मुक्ति प्राप्त की है, उस रहस्य को तथा उसके उपाय को सुनो, इस समय मैं तुमको बताऊँगा। यह बृहस्पति ने इन्द्र से कहा।।२७।। सबकी आत्मा वासुदेव हैं, जो कि सबसे पुरातन पुरुष हैं तथा यह मूल प्रकृति लक्ष्मी है, जो कि समस्त संसार को पैदा करने वाली है।।२८।। पाँचों तत्त्व अपनी तृप्ति के लिये मंथन करते रहते हैं, अर्थात् वे पाँचों तत्त्व पाँचों में परस्पर एक-दूसरे में मिलते हैं। इस प्रकार मन्त्रों का अनुभावन करने से यदि मन्थन किया जाता है, फिर वे मन्त्र और कर्म ही सब कुछ है। मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्त्व हैं, जो मन्थन (सम्भोग) में एक हो जाते हैं; क्योंकि इन सबका अस्तित्व है। उन मन्त्र और कर्म ही सब कुछ है अर्थात् मन्त्र का अर्थ है—किसी कार्य को करने का विचार करना, फिर विचार करने के बाद उसे कार्य के रूप में बदलना। इस प्रकार मन्त्र और कार्य दो ही इस संसार के सार हैं। अतः इन मन्त्र और कर्म दोनों में कोई दोष नहीं है।।२९-३०।। जिनका केवल तपस्या का बल होता है, उनकी भी स्त्री के विषय में विधि के बल से अधोगति होती है।।३१।। आपस में दो आत्माओं की एकता और दो हृदयों को भक्ति से आर्द्र चित्त होकर निषिद्ध दिन में सम्भोग करते हैं, उनकी भी स्त्री के विषय में अधोगति होती है। ये आद्या प्रकृति संसार को धारण करने वाली हैं और ये सदाशिव पुरुष हैं। ये पच्चीस तत्त्वों की प्रीति के लिए अब भी मन्थन करते रहते हैं। यदि मन्त्र के अनुभाव से मन्थन किया जाता है, तो वे दोनों ही पुण्यकर्म करने वाले हैं। तब उन दोनों में कोई दोष नहीं है।।२२-३४।। बृहस्पति ने कहा कि हे देवेन्द्र! सभी पापों को एक साथ नाश करने वाले अब परम महान् रहस्य को सुनो। भक्ति और श्रद्धा समन्वित व्यक्ति स्नान करके, जल में स्थित होकर पन्द्रह अक्षरों वाले मन्त्र का एक हजार आठ बार पराशक्ति की आराधना करके जाप करे, तो मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उस जाप से करोड़ों कल्पों के पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य सब आपत्तियों से विमुक्त हो जाता है और सब मनवाञ्छित फल को प्राप्त करता है।।३५-३७।।

इंद्र उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वभूतहिते रत। संयोगजस्य पापस्य विशेषं वक्तुमर्हसि॥३८॥

बृहस्पतिरुवाच।

संयोगजं तु यत्पापं तच्चतुर्धा निगद्यते। कर्ता प्रधानः सहकृन्निमित्तोऽनुमतः क्रमात्॥३९॥
क्रमाद्दशांशतोऽधं स्याच्छुद्धिः पूर्वोक्तमार्गतः॥४०॥
मद्यं कलंजं निर्यासं छत्राकं गृंजनं तथा। लशुनं च कलिंगं च महाकोशातकीं तथा॥४१॥
बिंबीं च कवकं चैव हस्तिनीं शिशुलंबिकाम्।
औदुंबरं च वार्ताकं कतकं बिल्वमल्लिका॥४२॥
क्रमाद्दशगुणं न्यून मघमेषां विनिर्दिशेत्। पुरग्रामांगवैश्यांगवेश्योपायनविक्रयी॥४३॥
सेवकः पुरसंस्थश्च कुग्रामस्थोऽभिशस्तकः। वैद्यो वैखानसः शैवो नारीजीवोऽन्नविक्रयी॥४४॥
शस्त्रजीवी परिव्राट् च वैदिकाचारनिंदकः। क्रमाद्दशगुणान्न्यूनमेषामन्नादने भवेत्॥४५॥
स्वतंत्रं तैलक्लृप्तं तु ह्युक्तार्थं पापमादिशेत्। तैरेव दृष्टं तद्भुक्तमुक्तपापं विनिर्दिशेत्॥४६॥

इन्द्र ने कहा कि हे सर्व धर्मों के ज्ञाता, सब प्राणियों के हित में लगे हुए गुरुदेव! संयोग से उत्पन्न पाप के विशेष रहस्य को हमें बताइए।।३८।।

बृहस्पति ने कहा—संयोग से पैदा होने वाला जो पाप है, वह चार प्रकार का बताया जाता है। १. प्रधान कर्त्ता, २. सहकारी, ३. निमित्त और ४. अनुमत। उसका दश भाग का योग होता है, जैसे कि संयोगज पाप में करने वाला जो प्रधान है, वह जिस अंश का है, उसके दशवें अंश के पाप का भागी उस पाप में सहयोग करने वाला होता है तथा उसके दशवें भाग का भोक्ता वह होता है, जिसके लिये वह पाप किया गया तथा जिसने उस पाप को करने की अनुमति दी, वह निमित्त के दशवें पाप का भागी होता है। इस प्रकार क्रम से प्रत्येक क्रमशः एक के बाद दूसरे दश में अंश के पाप का भागी होता है अर्थात् इन कामों को करने वाला जितने पाप का भी भागी होता है, उसके दशवें भाग का भागी उस कार्य का सहयोगी होता है तथा जिसके लिये वह कार्य किया गया है, वह सहयोगी के दशवे भाग का भोगी होता है तथा जिसने उस काम की अनुमति दी है, वह भी सहयोगी के दशवे भाग का भोगी होता है तथा उस पाप से शुद्धि पूर्व मार्ग के अनुसार करनी चाहिए।।४०।।

मद्य, कलंज (मांस) निर्यास (पौधों का अर्क) छत्राक (कुकुरमुत्ता) गृञ्जन (गांजा) लशुन, कलिंग, महाकोशातकी, बिंबी (कुंदरू), कवक (कुकुरमुत्ता), हस्तिनी (गन्ध द्रव्य) शिशुलम्बिका (जल जन्तु), औदुम्बर (गूलर) वार्ताक (वैंगन), कतक (रीठा) बिल्वमल्लिका। इन सबको खाने से क्रमशः दश गुना कम पाप होता है।।४१-४२½।। नगर अथवा ग्राम के अंग को बेचने वाला, वैश्य के अंश और वेश्या के उपहारों को बेचने वाला, नगरस्थ सेवक, कुग्रामस्थ (असभ्य लोगों के गाँव में रहने वाला), अभिशस्तक (दूसरो को निन्दा करने वाला), वैद्य, तपस्वी, शैव, नारी, जीव और अन्न को बेचने वाला, शस्त्र बना कर जीविका चलाने वाला और सन्यासी, वैदिक आचार की निन्दा करने वाला, इनका अन्न खाने से क्रमशः दश गुना कम पाप होता है।।४२½-४५।। स्वतन्त्र और तेल से बना हुआ अन्न भी उपर्युक्त वाला पाप होता है। उनके द्वारा देखे गये तथा खाये गये अन्न में भी उक्त पाप का

ब्रह्मक्षत्रविशां चैव सशूद्राणां यथौदनम्। तैलपक्वमदृष्टं च भुंजन्पादमघं भवेत्॥४७॥
द्विजात्मदासीक्लृप्तं च तया दृष्टे तदर्धके। वेश्यायास्तु त्रिपादंस्यात्तथा दृष्टे तदोदने॥४८॥
शूद्रावत्स्यात्तु गोपान्नं विना गव्यचतुष्टयम्। तैलाज्यगुडसंयुक्तं पक्वं वैश्यान्न दुष्यति॥४९॥
वैश्यावद्ब्राह्मणी भ्रष्टा तया दृष्टेन किंचन॥५०॥
ब्रुवस्यान्नं द्विजो भुक्त्वा प्राणायामशतं चरेत्।
अथवांतर्जले जप्त्वा द्रुपदां वा त्रिवारकम्॥५१॥
इदं विष्णुस्त्र्यंबकं वा तथैवांतर्जले जपेत्। उपोष्य रजनीमेकां ततः पापाद्विशुध्यति॥५२॥
अथवा प्रोक्षयेदन्नमब्लिंगैः पावमानिकैः। अन्नसूक्तं जपित्वा तु भृगुर्वै वारुणीति च॥५३॥
ब्रह्मार्पणमिति श्लोकं जप्त्वा नियममाश्रितः।
उपोष्य रजनीमेकां ततः शुद्धो भविष्यति॥५४॥
स्त्री भुक्त्वा तु ब्रुवाद्यन्नमेकाद्यान्भोजयेद्द्विजान्।
आपदि ब्राह्मणो ह्येषामन्नं भुक्त्वा न दोषभाक्॥५५॥
इदं विष्णुरिति मंत्रेण सप्तवाराभिमंत्रितम्।
सोऽहंभावेन तद्ध्यात्वा भुक्त्वा दोषैर्न लिप्यते॥५६॥
अथवा शंकरं ध्यायञ्जप्त्वा त्रैय्यंबकं मनुम्। सोऽहंभावेन तज्ज्ञानान्न दोषैः प्रविलिप्यते॥५७॥

निर्देश करना चाहिए।।४६।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भात और तेल से पका हुआ भोजन, जिसे पकते हुए नहीं देखा है, उसे खाते हुए चौथाई पाप होता है।।४७।। ब्राह्मण का अपनी दासी का पकाया हुआ तथा उसके द्वारा देखने पर आधा पाप होता है तथा वेश्या द्वारा पकाये हुए अथवा देखे हुए भात को खाने पर ३/४ पौना पाप होता है।।४८।। शूद्रा के अन्न के समान गोपा (गाय पालने वाली) ग्वालिनी का अन्न होता है। उस पाप को चार गव्य अर्थात् गोबर को छोड़कर दुग्ध, दही, घृत और मूत्र द्वारा दूर किया जा सकता है। तेल, घी, गुड़ से युक्त पकाया हुआ वैश्य स्त्री का अन्न दोष युक्त होता है। वैश्या के समान जो ब्राह्मणी भ्रष्ट है, उसके द्वारा देखा गया अन्न दूषित होता है।।४९-५०।। जिसकी जाति आदि का पता नहीं हो तथा अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कहता हो, उसका अन्न ब्राह्मण खाकर सौ प्राणायाम करे। अथवा जल के अन्दर जाप करके दो बार अथवा तीन बार प्राणायाम करे तथा वह विष्णुस्त्र्यम्बक स्तोत्र को जल में खड़े होकर जाप करे तथा फिर एक रात तक घर से बाहर रहे, तब उसके बाद वह पाप से शुद्ध होता है।।५१-५२।। अथवा पावमानिक तथा अब्लिङ्ग नामक विशिष्ट वैदिक ऋचाओं द्वारा अन्न का प्रोक्षण करे अथवा भृगु ऋषि द्वारा लिखित अन्नसूक्त का जाप करके वारुणी के ब्रह्मार्पण नामक श्लोक का जाप करके नियम का पालन करता हुआ एक रात घर से बाहर रहकर शुद्ध होगा।।५३-५४।।

यदि स्त्री किसी बुव (किसी अज्ञात जाति वाले) का अन्न खाकर किसी अन्य ब्राह्मण को खिलाये तो आपत्ति काल में इसके अन्न को खाकर दोष (पाप) का भागी नहीं होता है।।५५।। तथा वह इदं विष्णु इस मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित 'सोऽहं' भाव से विष्णु का ध्यान करके खाये तो वह दोषों से लिप्त नहीं होता है।।५६।। अथवा भगवान्

इदं रहस्यं देवेन्द्र शृणुष्व वचनं मम। ध्यात्वा देवीं परां शक्तिं जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्॥५८॥
तन्निवेदितबुद्ध्यादौ योऽश्नाति प्रत्यहं द्विजः। नास्यान्नदोषजं किंचिन्न दारिद्र्यभयं तथा॥५९॥
न व्याधिजं भयं तस्य न च शत्रुभयं तथा। जपतो मुक्तिरेवास्य सदा सर्वत्र मंगलम्॥६०॥
एष ते कथितः शक्र पापानामपि विस्तरः। प्रायश्चित्तं तथा तेषां किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥६१॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

शंकर का ध्यान करते हुए त्र्यंबक मनु का जप करके 'सोऽहं' भाव से उसके ज्ञान से वह दोषों से लिप्त नहीं होता है।।५७।।

तब बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि हे देवेन्द्र! यह रहस्य है, अतः तुम मेरा वचन सुनो। वह यह कि पराशक्ति देवी का ध्यान करके 'पंचदशाक्षरी' का जाप करके बुद्धि आदि में उनको निवेदन करता हुआ, जो ब्राह्मण प्रतिदिन भोजन करता है, उसको कोई अन्न दोष नहीं होता और न उसको कोई दरिद्रता का भय होता है, अर्थात् वह कभी गरीब नहीं होता।।५८।। यही नहीं, उस व्यक्ति को व्याधि से उत्पन्न भय भी नहीं होता और न उसे शत्रु से कोई भय ही रहता है। इस प्रकार जप करते हुए उसकी मुक्ति होती है तथा सदा और सर्वत्र मंगल ही मंगल रहता है।।५९-६०।। इस प्रकार हे इन्द्र! मैंने पापों का विस्तार बताया है तथा उनका प्रायश्चित्त भी बता दिया है, अब आगे क्या सुनना चाहते हो?।।६१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ८वाँ अध्याय अगम्य और आगमादि और उनका प्रायश्चित्त वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

देवासुरामृतमन्थनोनाम

नवमोऽध्यायः

इंद्र उवाच

भगवन्सर्व धर्मज्ञ त्रिकालज्ञानवित्तम। दुष्कृतं तत्प्रतीकारो भवता सम्यगीरितः॥१॥
केन कर्मविपाकेन ममापदि यमागता। प्रायश्चित्तं च किं तस्य गदस्व वदतां वर॥२॥

बृहस्पतिरुवाच।

काश्यपस्य ततो जज्ञे दित्यां दनुरिति स्मृतः। कन्या रूपवती नाम धात्रे तां प्रददौ पिता॥३॥
तस्याः पुत्रस्ततो जातो विश्वरूपो महाद्युतिः। नारायणपरो नित्यं वेदवेदांगपारगः॥४॥
ततो दैत्येश्वरो वव्रे भृगुपुत्रं पुरोहितम्। भवानधिकृतो राज्ये देवानामिव वासवः॥५॥
ततः पूर्वे च काले तु सुधर्मायां त्वयि स्थिते।
त्वया कश्चित्कृतः प्रश्न ऋषीणां सन्निधौ तदा॥६॥
संसारस्तीर्थयात्रा वा कोऽधिकोऽस्ति तयोर्गुणः। वदतु तद्विनिश्चित्य भवन्तो मदनुग्रहात्॥७॥
तत्प्रश्नस्योत्तरं वक्तुं ते सर्व उपचक्रिरे। तत्पूर्वमेव कथितं मया विधिबलेन वै॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–९

देवासुर अमृत मंथन

इन्द्र ने कहा कि सब धर्मों को जानने वाले, भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानने वालों में श्रेष्ठ! भगवन्! आपने पाप और उससे बचने के उपाय सम्यक् प्रकार से बता दिये हैं; परन्तु यह बताइये कि मैंने कौंन-सा पाप किया है? जिसके कारण मुझ पर यह आपत्ति आयी है तथा इस पाप से मुक्ति का प्रायश्चित्त क्या है? उसे हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! मुझे बताइए।।१-२।।

बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि मैं बता रहा हूँ कि पूर्वकाल में काश्यप मुनि ने दिति नामक अपनी पत्नी में दनु नामक पुत्र को जन्म दिया था और उन पिता ने दनु को रूपवती नाम की कन्या को प्रदान किया।।३।। उसके बाद उस कन्या का महा क्रान्तिकारी विश्वरूप नाम का पुत्र हुआ, जो नित्य नारायण की सेवा में लीन रहता था और वेदों और वेदाङ्गों में पारङ्गत था।।४।। उसके बाद उस दैत्यराज विश्वरूप ने भृगुपुत्र शुक्राचार्य से कहा कि आपके द्वारा राज्य पर अधिकार किया गया है तथा उस पर देवताओं के राजा इन्द्र राज्य कर रहे हैं।।५।। उस समय पूर्वकाल में जब आप (इन्द्र) ने अपने अच्छे धर्म पर स्थित थे, तब आपने ऋषियों के पास में कोई प्रश्न किया था।।६।। वह यह कि संसार रूपी तीर्थयात्रा में उन दोनों इन्द्र और विश्वरूप में कौंन अधिक गुण वाला है। आप मेरे ऊपर कृपा करके बताइए।।७।। उस प्रश्न का उत्तर बताने के लिए वे सब उपक्रम करने लगे, तब मैंने पहले ही कहा था कि

तीर्थयात्रा समधिका संसारादिति च द्रुतम्। तच्छ्रुत्वा ते प्रकुपिताः शेपुर्मामृषयोऽखिलाः॥९॥
कर्मभूमिं व्रजेः शीघ्रं दारिद्र्येण मितैः सुतैः।
एवं प्रकुपितैः शप्तः खिन्नः कांचीं समाविशम्॥१०॥
पुरीं पुरोधसा हीनां वीक्ष्य चिंताकुलात्मना। भवता सह देवैस्तु पौरोहित्यार्थमादरात्॥११॥
प्रार्थितो विश्वरूपस्तु बभूव तपतां वरः। स्वस्त्रीये दानवानां तु देवानां च पुरोहितः॥१२॥
नात्यर्थमकरोद्वैरं दैत्येष्वपि महातपाः। बभूवतुस्तुल्यबलौ तदा दैत्येन्द्रवासवौ॥१३॥
ततस्त्वं कुपितो राजन्स्वस्त्रीयं दानवेशितुः। हंतुमिच्छन्नगाश्चाशु तपसः साधनं वनम्॥१४॥
तमासनस्थं मुनिभिस्त्रिशृंगमिव पर्वतम्। त्रयी मुखरदिग्भागं ब्रह्मानंदैकनिष्ठितम्॥१५॥
सर्वभूतहितं तं तु मत्वा चेशानुकूलितः। शिरांसि यौगपद्येन छिन्नान्यासंस्त्वयैव तु॥१६॥
तेन पापेन संयुक्तः पीडितश्च मुहुर्मुहुः। ततो मेरुगुहां नीत्वा बहूनब्दान्हि संस्थितः॥१७॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा ज्ञात्वा तु मुनिवाक्यतः। पुत्रशोकेन संतप्तस्त्वां शशाप रुषान्वितः॥१८॥
निःश्रीको भवतु क्षिप्रं मम शापेन वासवः। अनाथकास्ततो देवा विषण्णा दैत्यपीडिताः॥१९॥
त्वया मया च रहिताः सर्वे देवाः पलायिताः। गत्वा तु ब्रह्मसदनं नत्वा तद्वृत्तमूचिरे॥२०॥
ततस्तु चिंतयामास तदघस्य प्रतिक्रियाम्। तस्य प्रतिक्रियां वेत्तुं न शशाकात्मभूस्तदा॥२१॥

विधि के बल से ही सब कुछ होता है। संसार से तीर्थ यात्रा बहुत अधिक है। इसका कोई अन्त नहीं है। उसको सुनकर सब ऋषियों ने मुझ बृहस्पति को शाप दे दिया था।।९।। कि तुम अपनी दरिद्रता और पुत्रों के साथ कर्मभूमि पर जाओ। तब इस प्रकार क्रोधित ऋषियों द्वारा शाप प्राप्त मैं खिन्न हो कांची नगर में आ गया था।।१०।। तब उस पुरी को पुरोहित हीन देख कर चिन्ता से व्याकुल हो गये, तब आपके साथ देवताओं द्वारा आदरपूर्वक पुरोहित बनाने को प्रार्थित विश्वरूप तो तप करने वालों में श्रेष्ठ हो गये थे।।११-११½।। तब दानवों के भगिना (भांजे) और देवों के पुरोहित बृहस्पति ने कहा कि हे महातपस्वी! दैत्यों के साथ अत्यधिक वैर नहीं करना चाहिए, क्योंकि तब दैत्येन्द्र और इन्द्र दोनों ही समान बल वाले हो गये थे।।११½-१३।। उसके बाद हे राजन्! तुमने क्रोधित होकर दानवों के स्वामी अपने भगिना विश्वरूप को मारने की इच्छा करते हुए शीघ्र ही वन को तपस्या का साधन बनाया था।।१४।।

तब आसन पर बैठे हुए उस तीन चोटियों वाले पर्वत के समान तीनों दिशाओं में मुखर होते हुए ब्रह्मानन्द में स्थित होकर तथा उनको सब प्राणियों की भलाई में लगा हुआ मानकर ईशानुकूलित होकर आपने ही तो उनके शिरों को काट दिया था।।१५-१६।। उस पाप से युक्त होकर बार-बार पीड़ित सुमेरु पर्वत की गुफा में जाकर बहुत वर्षों तक ठहरे थे।।१७।। उसके बाद उसके वचन को सुनकर और मुनि के वाक्य से जानकर पुत्रशोक से संतप्त क्रोधित उन्होंने शाप दिया था कि इन्द्र! तुम मेरे शाप से श्रीविहीन हो जाओ।।१८।। इसके बाद सब देवता अनाथ हो गये और दैत्यों से पीड़ित होकर दुःखी हो गये।।१९।। तुमसे और मुझसे रहित सभी देवता भाग गये और फिर ब्रह्माजी के घर जाकर उन्होंने सब वृत्तान्त कह दिया।।२०।। उसके बाद उस पाप की प्रतिक्रिया को सोचने लगे, तब उस पाप की प्रतिक्रिया को जानने में ब्रह्मा जी भी समर्थ नहीं हो सके।।२१।।

ततो देवैः परिवृतो नारायणमुपागमत्॥२२॥
नत्वा स्तुत्वा चतुर्वक्रस्तद्वृत्तांतं व्यजिज्ञपत्।
विचिंत्य सोऽपि बहुधा कृपया लोकनायकः॥२३॥
तदघं तु त्रिधा भित्त्वा त्रिषु स्थानेष्वथार्पयत्। स्त्रीषु भूम्यां च वृक्षेषु तेषामपि वरं ददौ॥२४॥
तदा भर्त्तृसमायोगं पुत्रावाप्तिमृतुष्वपि। छेदे पुनर्भवत्वं तु सर्वेषामपि शाखिनाम्॥२५॥
खातपूर्तिं धरण्याश्च प्रददौ मधुसूदनः। तेष्वगं प्रबभूवाशु रजोनिर्यासमूषरम्॥२६॥
निर्गतो गह्वरात्तस्मात्त्वमिंद्रो देवनायकः। राज्यश्रियं च संप्राप्तः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥२७॥
तेनैव सांत्वितो धाता जगाद च जनार्दनम्। मम शापो वृथा न स्यादस्तु कालांतरे मुने॥२८॥
भगवांस्तद्वचः श्रुत्वा मुनेरमिततेजसः। प्रहृष्टो भाविकार्यज्ञस्तूष्णीमेव तदा ययौ॥२९॥
एतावंतमिमं कालं त्रिलोकीं पालयन्भवान्। ऐश्वर्यमदमत्तत्वात्कैलासाद्रिमपीडयत्॥३०॥
सर्वज्ञेन शिवेनाथ प्रेषितो भगवान्मुनिः। दुर्वासास्त्वन्मदभ्रंशं कर्त्तुकामः शशाप ह॥३१॥
एकमेव फलं जातमुभयोः शापयोरपि। अधुना पश्य निःश्रीकं त्रैलोक्यं समजायत॥३२॥
न यज्ञाः संप्रवर्त्तंते न दानानि च वासव। न यमा नापि नियमा न तपांसि च कुत्रचित्॥३३॥

तब उसके बाद देवों से घिरे हुए वे ब्रह्माजी नारायण भगवान् विष्णु के पास गये।।२२।। भगवान् विष्णु को नमस्कार करके और उनकी स्तुति करके चतुर्मुख ब्रह्मा ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन लोकनायक भगवान् ने अच्छी तरह विचार करके अपनी कृपा से उस पाप को तीन भागों में फोड़ कर तीन स्थानों में स्त्रियों में, भूमि में और वृक्षों में अर्पित कर दिया और उनको वर भी दिया।।२३-२४।। कि स्त्रियां ऋतुकाल में अपने पति से सम्भोग कर सन्तान प्राप्त करें, इसीलिये ही स्त्रियां जिस आयु में ऋतुमती होती हैं, तभी सन्तान पैदा करती हैं। दूसरा वर वृक्षों को दिया कि वृक्ष काटने पर पुनः पैदा हो जायें। यह सब वृक्षों को वर दिया तथा पृथ्वी को वर दिया कि उसका गड्ढा स्वतः भर जायेगा। तभी से पृथ्वी में धूलि का निकलना और ऊषर होना प्रारम्भ हो गया।।२५-२६।।

उसके बाद जब इन्द्र के पाप के तीन टुकड़े कर दिये, तब तुम इन्द्र उस गम्भीर पाप रूपी गर्त से बाहर निकले और उसके बाद तुमने उन परमेष्ठी भगवान् विष्णु के प्रसाद से राज्यश्री को प्राप्त किया।।२७।। तब शान्त हुए ब्रह्मा ने जनार्दन भगवान् विष्णु से कहा कि हे मुने! मेरा शाप कालान्तर में भी कभी व्यर्थ नहीं हो सकता।।२८।। अमित तेजस्वी मुनि के वचन को सुनकर भविष्य के कार्य को जानने वाले भगवान् प्रसन्न होकर शान्त भाव से चले गये।।२९।। बृहस्पति इन्द्र से बोले कि इतने समय तीनों लोकों का पालन करते हुए आपने ऐश्वर्य के मद में मत्त होकर कैलाश पर्वत को पीड़ित कर दिया।।३०।। इसके बाद सर्वज्ञ भगवान् शिव ने मुनि दुर्वासा को भेजा, तब दुर्वासा मुनि ने तुम्हारे घमण्ड को नष्ट करने की इच्छा से तुम्हें शाप दे दिया।।३१।। अतः दोनों पापों का एक ही फल हुआ कि अब देखो समस्त त्रैलोक्य निःश्रीक हो गया है, अर्थात् श्रीविहीन हो गया है।।३२।। इसीलिये हे इन्द्र! न कहीं यज्ञ होते हैं, न दानादि ही दिये जाते हैं, न कोई यमों का पालन करते हैं, न कहीं नियमों का पालन किया जा रहा है और न कहीं तप ही हैं।।३३।।

विप्राः सर्वेऽपि निःश्रीका लोभोपहतचेतसः।
निःसत्त्वा धैर्यहीनाश्च नास्तिकाः प्रायशोऽभवन्॥३४॥
निरौषधिरसा भूमिर्निर्वीर्या जायतेतराम्। भास्करो धूसराकारश्चंद्रमाः कांतिवर्जितः॥३५॥
निस्तेजस्को हविर्भोक्ता मरुद्धूलिकृताकृतिः।
न प्रसन्ना दिशां भागा नभो नैव च निर्मलम्॥३६॥
दुर्बला देवताः सर्वा विवांत्यन्यादृशा इव। विनष्टप्रायमेवास्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३७॥

हयग्रीव उवाच

इत्थं कथयतोरेव बृहस्पतिमहेन्द्रयोः। मलकाद्या महादैत्याः स्वर्गलोकं बवाधिरे॥३८॥
नंदनोद्यानमखिलं चिच्छिदुर्बलगर्विताः। उद्यानपालकान्सर्वानायुधैः समताडयन्॥३९॥
प्राकारभवभिद्यैव प्रविश्य नगरांतरम्। मंदिरस्थसुरान्सर्वानत्यंतं पर्यपीडयन्॥४०॥
आजह्रुरप्सरोरत्नान्यशेषाणि विशेषतः। ततो देवाः समस्ताश्च चक्रुर्भृशमबाधिताः॥४१॥
तादृशं घोषमाकर्ण्य वासवः प्रोज्झितासनः सर्वैरनुगतो देवैः पलायनपरोऽभवत्॥४२॥
ब्राह्मं धाम समभ्येत्य विषण्णवदनो वृषा। यथावत्कथयामास निखिलं दैत्यचेष्टितम्॥४३॥
विधातापि तदाकर्ण्य सर्वदेवसमन्वितम्। हृतस्त्रीकं हरिं[१]हयमालोक्येदमुवाच ह॥४४॥
इन्द्रत्वमखिलैर्देवैर्मुकुन्दं शरणं व्रज। दैत्यारातिर्जगत्कर्ता स ते श्रेयो विधास्यति॥४५॥

सभी ब्राह्मण प्रायः श्रीविहीन, लोभी, लालची, सत्त्वहीन, धैर्यहीन और नास्तिक हो गये हैं।।३४।। पृथ्वी औषधिरसों से हीन और बीजविहीन हो गयी, सूर्य धूसराकार हो गये, चन्द्रमा कान्तिविहीन हो गये।।३५।। हवि का भोग करने वाली अग्नि तेजहीन हो गयी, उसकी आकृति मरुस्थल की धूलि के समान हो गयी। उस समय दिशायें भी प्रसन्न नहीं रहीं और आकाश निर्मल नहीं रहा।।३६।। सभी देवता लोग दुर्बल होकर अन्य ही तरह के प्रतीत हो रहे थे। इस समय चराचर जगत् भी विनष्ट प्राय ही हो चुका था।।३७।।

हयग्रीव ने कहा—बृहस्पति और इन्द्र दोनों को कहते हुए अर्थात् वे इस प्रकार कह ही रहे थे, उसी समय मलक आदि महादैत्यों ने स्वर्गलोक को बाधित कर दिया।।३८।। बलगर्वित असुरों ने इन्द्र का समस्त नन्दन उद्यान छिन्न-भिन्न कर दिया और उद्यान के पालक माली आदि को अस्त्रों से पूरी तरह पीटा।।३९।। इन्द्रपुरी के प्राकार (परकोटा) को तोड़कर वह नगर के अन्तर्गत प्रविष्ट होकर उन्होंने मन्दिरों (घरों) में स्थित देवों को पूर्णतः पीड़ित कर दिया।।४०।। अप्सराओं के समस्त रत्नों को छीन लिया, उसके बाद सब देवता लोग बहुत अधिक बाधित कर दिये गये।।४१।। वैसे कोलाहल को सुनकर इन्द्र सिंहासन छोड़कर भागने लगे तथा उनके पीछे देवता लोग भी भागने लगे।।४२।। देवताओं के साथ ब्रह्मधाम में पहुँचकर इन्द्र ने दैत्यों द्वारा की गयी अपनी सारी व्यथा कथा को ब्रह्माजी को कहा।।४३।। सब देवों से युक्त ब्रह्माजी ने उन देवों की स्त्रियों के चुराने वाली व्यथा कथा को सुनकर इन्द्र को देखकर यह कहा।।४४।। हे इन्द्र! तुम समस्त देवताओं के साथ भगवान् विष्णु की शरण में जाओ। दैत्यों के शत्रु, संसार को बनाने वाले वे विष्णु तुम्हारा कल्याण करेंगे।।४५।।

---

१. हरि का अर्थ यहाँ शक्र (इन्द्र) है।

इत्युक्त्वा तेन सहितः स्वयं ब्रह्मा पितामहः। समस्तदेवसहितः क्षीरोदधिमुपाययौ॥४६॥
अथ ब्रह्मादयो देवा भगवंतं जनार्दनम्। तुष्टुवुर्वाग्वरिष्ठाभिः सर्वलोकमहेश्वरम्॥४७॥
अथ प्रसन्नो भगवान्वासुदेवः सनातनः। जगाद स कलान्देवाञ्जगद्रक्षणलंपटः॥४८॥

श्रीभगवानउवाच

भवतां सुविधास्यामि तेजसैवोपबृंहणम्। यदुच्यते मयेदानीं युष्माभिस्तद्विधीयताम्॥४९॥
ओषधिप्रवराः सर्वाः क्षिपत क्षीरसागरे। असुरैरपि संधाय सममेव च तैरिह॥५०॥
मंथानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्रं च वासुकिम्।मयि स्थिते सहाये तु मथ्यताममृतं सुराः॥५१॥
समस्तदानवाश्चापि वक्तव्याः सांत्वपूर्वकम्।
सामान्यमेव युष्माकमस्माकं च फलं त्विति॥५२॥
मथ्यमाने तु दुग्धाब्धौ या समुत्पद्यते सुधा। तत्पानाद्बलिनो यूयममर्त्याश्च भविष्यथ॥५३॥
यथा दैत्याश्च पीयूषं नैतत्प्राप्स्यंति किंचन। केवलं क्लेशवंतश्च करिष्यामि तदा ह्यहम्॥५४॥
इति श्रीवासुदेवेन कथिता निखिलाः सुराः। संधानं त्वतुलैर्दैत्यैः कृतवंतस्तदा सुराः।
नानाविधौषधिगणं समानीय सुरासुराः॥५५॥
क्षीराब्धिपयसि क्षिप्त्वा चंद्रोऽधिकनिर्मलम्। मंथानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्रं तु वासुकिम्।
प्रारेभिरे प्रयत्नेन मंथितुं यादसां पतिम्॥५६॥
वासुकेः पुच्छभागे तु सहिताः सर्वदेवताः। शिरोभागे तु दैतेया नियुक्तास्तत्र शौरिणा॥५७॥

इस प्रकार कह कर उस इन्द्र के साथ स्वयं पितामह ब्रह्मा समस्त देवताओं के साथ क्षीरसागर में पहुँचे।।४६।। इसके बाद ब्रह्मा आदि देवताओं ने समस्त लोकों के महेश्वर भगवान् जनार्दन विष्णु को सुन्दर-सुन्दर वाणियों से प्रसन्न किया।।४७।। उसके बाद प्रसन्न हुए संसार की रक्षा में लगे हुए सनातन पुरुष भगवान् वासुदेव ने कहा।।४८।।

श्रीभगवान् विष्णु ने कहा कि मैं आपको तेज से बढ़ाकर सुविधा प्रदान करूंगा। इस समय जो मैं कहूँ, वह सब तुम करो।।४९।। समस्त औषधियों को क्षीरसागर में फेंक दो और असुरों से सन्धि करके उनके साथ ही उनके यहाँ इस क्षीरसागर में इस मन्दराचल को मथानी बनाकर, वासुकि नाग को रस्सी बनाकर मेरी सहायता में स्थित रहकर अमृत का मन्थन करो।।५०-५१।। समस्त दानवों से शान्तिपूर्वक कहो कि समुद्रमन्थन से जो फल मिलेगा, उसमें हमारा-तुम्हारा समान भाग हो।।५२।। क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर जो अमृत उत्पन्न होता है, उसका पान करके तुम सब देवता लोग अमर हो जाओगे।।५३।। जैसा कि वहाँ यह होगा कि दैत्य लोग कुछ भी अमृत नहीं प्राप्त कर सकेंगे। मैं उन्हें केवल मन्थन करने में कष्ट सहन करने वाला ही बनाऊँगा।।५४।। इस प्रकार श्री वासुदेव भगवान् विष्णु ने देवताओं से कहा और सभी देवताओं ने असुरों से सन्धि कर ली और देवों और असुरों ने अनेकों प्रकार की औषधियों को लाकर उस क्षीरसागर के जल में फेंक कर चन्द्रमा के समान अत्यन्त निर्मल मन्दर पर्वत को मथानी बनाकर और वासुकी नाग की रस्सी (नेती) बनाकर प्रयत्नपूर्तक समुद्र का मन्थन आरम्भ कर दिया।।५५-५६।। वासुकि नाग की पूँछ वाले भाग में सब देवता लगे हुए थे और वासुकि के शीर्ष भाग की तरफ बहादुरी के साथ दैत्य

बलवंतोऽपि ते दैत्यास्तन्मुखोच्छ्वासपावकैः निर्दग्धवपुषः सर्वे निस्तेजस्कास्तदाभवन्॥५८॥
पुच्छदेशे तु कर्षंतो मुहुराप्यायिताः सुराः। अनुकूलेन वातेन विष्णुना प्रेरितेन तु॥५९॥
आदिकूर्माकृतिः श्रीमान्मध्ये क्षीरपयोनिधेः। भ्रमतो मंदराद्रेस्तु तस्याधिष्ठानतामगात्॥६०॥
मध्ये च सर्वदेवानां रूपेणान्येन माधवः। चकर्ष वासुकिं वेगाद्दैत्यमध्ये परेण च॥६१॥
ब्रह्मरूपेण तं शैलं विधार्याक्रांतवारिधिम्। अपरेण च देवर्षिर्महता तेजसा मुहुः॥६२॥
उपबृंहितवान्देवान्येन ते बलशालिनः। तेजसा पुनरन्येन बलात्कारसहेन सः॥६३॥
उपबृंहितवान्नागं सर्वशक्तिजनार्दनः। मथ्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः॥६४॥
आविर्बभूव पुरतः सुरभिः सुरपूजिता। मुदं जग्मुस्तदा देवा दैतेयाश्च तपोधन॥६५॥
मथ्यमाने पुनस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवतानवैः। किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिंतयतां तदा॥६६॥
उत्थिता वारुणी देवी मदाल्लोलविलोचना। असुराणां पुरस्तात्सास्मयमाना व्यतिष्ठत॥६७॥
जगृहुर्नैव तां दैत्या असुराश्चाभवंस्ततः। सुरा न विद्यते येषां तेनैवासुरशब्दिताः॥६८॥
अथ सा सर्वदेवानामग्रतः समतिष्ठत। जगृहुस्तां मुदा देवाः सूचिताः परमेष्ठिना।
सुराग्रहणतोऽप्येते सुरशब्देन कीर्तिताः॥६९॥

लगे हुए थे।।५७।। दैत्य सभी बलवान् थे; परन्तु वासुकि के मुख की तरफ लगे होने के कारण वासुकि नाग के मुख की श्वासाग्नि से उन सब दैत्यों के शरीर जलकर काले हो गये और तब वे दैत्यगण निस्तेज हो गये।।५८।। वासुकि के पुच्छभाग को खींचते हुए देवगण आप्यायित (परेशान) हो गये। तब विष्णु ने अनुकूल हवा चलाकर उन्हें प्रेरित किया।।५९।। आदि कच्छप की आकृति वाले विष्णु क्षीरसागर के मध्य में घूमते हुए मन्दर पर्वत के अधिष्ठानता को प्राप्त हो गये अर्थात् वे कच्छप बनकर पर्वत का आधार बन गये।।६०।। सब देवताओं के मध्य में भगवान् विष्णु अन्य रूप द्वारा दैत्यों के मध्य के विपरीत दूसरी ओर खींचने लगे।।६१।। ब्रह्मरूप से समुद्र में हलचल मचा देने वाले उस पर्वत को दूसरी ओर देवर्षि महान् तेज से बार-बार खींचने लगे।।६२।। दूसरी ओर देवर्षि ने महान् तेज से देवताओं को बढ़ाया, जिससे वे बलशाली देवता और अधिक बढ़ गये, फिर अन्य बलात्कार के सहयोग से उन सर्वशक्तिशाली जनार्दन भगवान् विष्णु ने वासुकि नाग को और अधिक बढ़ा दिया। उसके बाद उस क्षीरसागर का देव-दानवों द्वारा मन्थन किया जाने पर सामने ही देवताओं द्वारा पूजित सुरभि (कामधेनु) प्रकट हो गयी, तब सभी देवता और दानव आनन्दमग्न हो गये।।६३-६५।।

उसके बाद देव-दानवों द्वारा पुनः क्षीरसागर में मन्थन किये जाने पर उस समय मद से चञ्चल नेत्रों वाली वारुणी देवी उठ कर खड़ी हो गयी, उसे देखकर स्वर्ग में सिद्ध लोग आश्चर्ययुक्त होकर सोचने लगे कि यह क्या है? प्रकट होकर वह वारुणी देवी (सुरा) असुरों के सामने मुस्कराती हुई बैठ गई।।६६-६७।। तब उसको दैत्यों ने नहीं ग्रहण किया, इसलिए वे दैत्य उसी समय से असुर हो गये; क्योंकि उस सुरा को उन्होंने नहीं ग्रहण किया, इसलिए 'सुरा न विद्यते येषां तेन ते सुरा' जिनके पास सुरा नहीं है, वे असुर कहलाये।।६८।। इसके बाद वह वारुणी (सुरा) देवताओं के आगे जाकर बैठ गयी, तब विष्णु द्वारा सूचित देवताओं ने उसे प्रसन्न होकर ग्रहण कर लिया। सुरा ग्रहण करने के कारण वे देवता सुर शब्द से प्रसिद्ध हो गये।।६९।।

मथ्यमाने ततो भूयः पारिजातो महाद्रुमः। आविरासीत्सुगंधेन परितो वासयञ्जगत्॥७०॥
अत्यर्थसुंदराकारा धीराश्चाप्सरसां गणाः। आविर्भूताश्च देवर्षे सर्वलोकमनोहरा;॥७१॥
ततः शीतांशुरुदभूत्तं जग्राह महेश्वरः। विषजातं तदुत्पन्नं जगृहुर्नागजातयः॥७२॥
कौस्तुभाख्यं ततो रत्नमाददे तज्जनार्दनः। ततः स्वपत्रगंधेन मदयंती महौषधीः।
विजया नाम संजज्ञे भैरवस्तामुपाददे॥७३॥
ततो दिव्यांबरधरो देवो धन्वंतरिः स्वयम्। उपस्थितः करे बिभ्रदमृताढ्यं कमंडलुम्॥७४॥
ततः प्रहृष्टमनसो देवा दैत्याश्च सर्वतः। मुनयश्चाभवंस्तुष्टास्तदानीं तपसां निधे॥७५॥
ततो विकसितांभोजवासिनी वरदायिनी। उत्थिता पद्महस्ता श्रीस्तस्मात्क्षीरमहार्णवात्॥७६॥
अथ तां मुनयः सर्वे श्रीसूक्तेन श्रियं पराम्। तुष्टुवुस्तुष्टहृदया गंधर्वाश्च जगुः परम्॥७७॥
विश्वाचीप्रमुखाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः। गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च स्नानार्थमुपतस्थिरे॥७८॥
अष्टौ दिग्दंतिनश्चैव मेध्यपात्रस्थितं जलम्। आदाय स्नापयांचक्रुस्तां श्रियं पद्मवासिनीम्॥७९॥
तुलसीं च समुत्पन्नां पराध्यामैक्यजां हरेः। पद्ममालां ददौ तस्यै मूर्तिमान्क्षीरसागरः॥८०॥

उसके बाद देव-दानवों ने फिर समुद्र का मन्थन किया तो फिर कल्पवृक्ष नाम का महावृक्ष प्रकट हो गया, जिसने अपनी सुगन्ध से समस्त संसार को सुवासित कर दिया।।७०।। उसके बाद हे महर्षि! बहुत ही सुन्दर आकार वाले समस्त संसार के मनुष्यों के मन को हर लेने वाले अप्सराओं के समूह प्रकट हो गये।।७१।। उसके बाद मन्थन करने पर शीत किरणों वाले चन्द्रमा प्रादुर्भूत हुए, जिनको भगवान् शंकर ने ग्रहण कर लिया। उसके बाद उत्पन्न हुए विष को नाग जातियों (सर्पों) ने ग्रहण कर लिया।।७२।।

उसके बाद कौस्तुभ नामक रत्न प्रादुर्भूत हुआ, जिसे जनार्दन भगवान् विष्णु ने ले लिया। उसके बाद अपने पत्र की गन्ध से मदमस्त करती हुई विजया नामक महौषधि निकली, जिसको भैरव भगवान् ने ग्रहण कर लिया।।७३।। उसके बाद दिव्य आकाश को धारण करने वाले देवता स्वयं धन्वन्तरि प्रकट हुए, जो अपने हाथ में अमृत से भरा हुआ कमण्डलु लिये हुए थे।।७४।। हयग्रीव बोले, हे तपस्यानिधि! महर्षे! उसके बाद देवता और दानव सभी सब प्रकार से प्रसन्न हो उठे। उस समय सभी मुनि लोग सन्तुष्ट हो गये।।७५।। उसके बाद खिले हुए कमल में निवास करने वाली, वर प्रदान करने वाली, हाथ में कमल लिये हुए लक्ष्मी उस क्षीरसागर से प्रादुर्भूत हो गयीं।।७६।।

इसके बाद सब मुनियों ने उन परम श्री की श्रीसूक्त द्वारा स्तुति की और प्रसन्न हृदय होकर गन्धर्व लोग परमगान करने लगे।।७७।। विश्वाची नामक प्रमुख अप्सरायें नृत्य करने लगीं, गङ्गा आदि पुण्य नदियाँ उनके स्नान के लिए उपस्थित हो गयीं।।७८।। आठों दिशाओं के हाथियों ने पूजा के पात्र में स्थित जल को लेकर संसार में सबकी समानता को नष्ट करने वाली विष्णु के एकत्व से उत्पन्न, पूजनीय पराशक्ति कमलवासिनी लक्ष्मी को स्नान कराया। क्षीरसागर से साक्षात् मनुष्य रूप में उपस्थित होकर उन्हें पद्ममाला प्रदान की और विश्वकर्मा ने उन्हें दिव्य आभूषणों को समर्पित किया। तब दिव्यमाला और वस्त्रों को धारण करने वाली दिव्य आभूषणों से भूषित वे रमा (लक्ष्मी) सबके

भूषणानि च दिव्यानि विश्वकर्मा समर्पयत्। दिव्यमाल्यांबरधरा दिव्यभूषणभूषिता।
ययौ वक्षस्थलं विष्णोः सर्वेषां पश्यतां रमा॥८१॥
तुलसी तु धृता तेन विष्णुना प्रभविष्णुना। पश्यति स्म च सा देवी विष्णुवक्षस्थलालया।
देवान्दर्यार्द्रया दृष्ट्या सर्वलोकमहेश्वरी॥८२॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने अमृतमंथनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

मोहिनी प्रादुर्भाव मलकासुरवधनाम

दशमोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

अथ देवा महेन्द्राद्या विष्णुना प्रभविष्णुना। अङ्गीकृता महाधीराः प्रमोदं परमं ययुः॥१॥
मलकाद्यास्तु ते सर्वे दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः। संत्यक्ताश्च श्रिया देव्या भृशमुद्वेगमागताः॥२॥
ततो जगृहिरे दैत्या धन्वंतरिकरस्थितम्। परमामृतसाराढ्यं कलशं कनकोद्भवम्।
अथासुराणां देवानामन्योन्यं कलहोऽभवत्॥३॥

देखते हुए विष्णु के वक्षःस्थल को प्राप्त हुईं।।७९-८१।। और उन सबको उत्पन्न करने वाले विष्णु ने तुलसी को धारण किया। उसके बाद समस्त लोकों को पैदा करने वाली देवानन्द से आर्द्र दृष्टि से उन देवी ने विष्णु के वक्षःस्थल को देखा।।८२।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ९वाँ अध्याय देवासुर अमृत मंथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१०

मोहिनी का प्रकट होना, मलकासुर वध

हयग्रीव ने कहा कि जब समुद्र मन्थन हो गया और लक्ष्मीजी को सर्वसमर्थ सबमें प्रविष्ट करने वाले भगवान् विष्णु ने प्राप्त कर लिया, तब महेन्द्र आदि महाधीर सभी देवता परमानन्द को प्राप्त हुए।।१। परन्तु मलक आदि जो विष्णु के विपरीत रहने वाले दैत्य थे, वे सब देवी द्वारा छोड़ दिये गये थे, इसलिए वे सब बहुत उद्विग्न हो गये।।२।। उसके बाद उन सब दैत्यों ने धन्वन्तरि के हाथ में स्थित परम अमृत से भरे हुए स्वर्ण कलश को ग्रहण

एतस्मिन्नंतरे विष्णुः सर्वलोकैकरक्षकः। सम्यगाराधयामास ललितां स्वैक्यरूपिणीम्॥४॥
सुराणामसुराणां च रणं वीक्ष्य सुदारुणम्। ब्रह्मा निजपदं प्राप शंभुः कैलासमास्थितः॥५॥
मलकं योधयामास दैत्यानामधिपं वृषा। असुरैश्च सुराः सर्वे सांपरायमकुर्वत॥६॥
भगवानपि योगीन्द्रः समाराध्य महेश्वरीम्। तदेकध्यानयोगेन तद्रूपः समजायत॥७॥
सर्वसंमोहिनी सा तु साक्षाच्छृङ्गारनायिका। सर्वश्रृंगारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता॥८॥
सुराणामसुराणां च निवार्य रणमुल्वणम्। मंदस्मितेन दैतेयान्मोहयंती जगाद ह॥९॥
अलं युद्धेन किं शस्त्रैर्मर्मस्थानविभेदिभिः। निष्ठुरैः किं वृथालापैः कंठशोषणहेतुभिः॥१०॥

अहमेवात्र मध्यस्था युष्माकं च दिवौकसाम्।
यूयं तथामी नितरामत्र हि क्लेशभागिनः॥११॥

सर्वेषां सममेवाद्य दास्याम्यमृतमद्भुतम्। मम हस्ते प्रदातव्यं सुधापात्रमनुत्तमम्॥१२॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा दैत्यास्तद्वाक्यमोहिताः। पीयूषकलशं तस्यै ददुस्ते मुग्धचेतसः॥१३॥
सा तत्पात्रं समादाय जगन्मोहनरूपिणी। सुराणामसुराणां च पृथक्पंक्तिं चकार ह॥१४॥

द्वयोः पंक्त्योश्च मध्यस्थास्तानुवाच सुरासुरान्।
तूष्णीं भवंतु सर्वेऽपि क्रमशो दीयते मया॥१५॥

कर लिया (छीन लिया)। इसके बाद देवताओं और दैत्यों में कलह पैदा हो गया।।२-३।। इसी बीच सभी लोकों के एकमात्र रक्षक भगवान् विष्णु ने अपने आत्मैक्य रूप वाली ललिता देवी की सम्यक् प्रकार से आराधना की।।४।। सुर और असुरों का अत्यन्त भीषण रण देखकर ब्रह्माजी अपने स्थान पर चले गये और भगवान् शंकर कैलाश पर्वत पर जाकर स्थित हो गये।।५।। उस मलक नामक दैत्याधिपति से सभी देवताओं ने मिलकर युद्ध किया।।६।। योगीन्द्र भगवान् विष्णु ने माहेश्वरी ललिता की सम्यक् प्रकार से आराधना करके एकमात्र उनके ही ध्यानयोग से उनके रूप को उत्पन्न कर दिया।।७।। वे सभी को सम्मोहित करने वाली, साक्षात् शृङ्गारनायिका थीं। वे सभी प्रकार के शृङ्गारवेषों से युक्त थीं और सभी प्रकार के भूषणों से भूषित थीं।।८।।

युद्धस्थल में लड़ रहे देवताओं और दैत्यों को हटाकर (अलग-अलग करके) वे महादेवी मन्द मुस्कान से दैत्यों को मोहित करती हुई बोलीं।।९।। युद्ध मत करो, इन मर्मस्थलों को विदीर्ण करने वाले शस्त्रों से क्या लाभ है? तथा युद्ध में अपने कण्ठों को सुखाने वाले व्यर्थ के वार्तालापों (गाली-गलौजों) से क्या लाभ है?।।१०।। मैं यहाँ आपके और इन देवताओं के मध्य स्थित हूँ। आप सब लोग तथा ये देवगण दोनों ही यहाँ बहुत ही कष्ट को भोग रहे हैं, आपस में खून बहा रहे हैं।।११।। मैं यह आप सबको समान रूप से इस अद्भुत अमृत को दे दूँगी। इसलिए आप दैत्य लोग इस अत्युत्तम अमृतपात्र को मेरे हाथ में दे दीजिए।।१२।। इस प्रकार उन देवी का वचन सुनकर उनके वाक्य से मोहित मुग्धचित्त दैत्यों ने उस अमृतकलश को उन ललितादेवी को दे दिया।।१३।। संसार को मोहित करने वाली उन देवी ने उस अमृत पात्र को लेकर देवताओं और दैत्यों की अलग-अलग पंक्ति बना दी तथा दोनों पंक्तियों के बीच में खड़ी होकर वे उन सुर और असुरों से बोलीं कि आप सभी लोग चुप हो जाइए, मैं क्रमशः सभी को दे रही हूँ। मेरे द्वारा सभी को क्रमशः दिया जा रहा है।।१४-१५।।

तद्वाक्यमुररीचक्रुस्ते सर्वे समवायिनः। सा तु संमोहिताश्लेषलोका दातुं प्रचक्रमे॥१६॥
क्वणत्कनकदर्वीका क्वणन्मंगलकंकणा। कमनीयविभूषाढ्या कला सा परमा बभौ॥१७॥
वामे वामे करांभोजे सुधाकलशमुज्ज्वलम्। सुधां तां देवतापंक्तौ पूर्वं दर्व्या तदादिशत्॥१८॥
दिशंती क्रमशस्तत्र चन्द्रभास्करसूचितम्। दर्वीकरेण विच्छेद सैंहिकेयं तु मध्यगम्।
पीतामृतशिरोमात्रं तस्य व्योम जगाम च॥१९॥
तं दृष्ट्वाऽप्यसुरास्तत्र तूष्णीमासन्विमोहिताः। एवं क्रमेण तत्सर्वं विबुधेभ्यो वितीर्य सा।
असुराणां पुरः पात्रं सा निनाय तिरोदधे॥२०॥
रिक्तपात्रं तु तं दृष्ट्वा सर्वे दैतेयदानवाः। उद्वेलं केवलं क्रोधं प्राप्ता युद्धचिकीर्षया॥२१॥
इंद्रादयः सुराः सर्वे सुधापानाद्बलोत्तराः। दुर्बलैरसुरैः सार्धं समयुद्ध्यन्त सायुधाः॥२२॥
ते विध्यमानाः शतशो दानवेन्द्राः सुरोत्तमैः।
दिगंतान्कतिचिज्जग्मुः पातालं कतिचिद्ययुः॥२३॥
दैत्यं मलकानामानं विजित्य विबुधेश्वरः। आत्मीयां श्रियमाजह्रे श्रीकटाक्ष समीक्षितः॥२४॥
पुनः सिंहासनं प्राप्य महेन्द्रः सुरसेवितः। त्रैलोक्यं पालयामास पूर्ववत्पूर्वदेवजित्॥२५॥
निर्भया निखिला देवास्त्रैलोक्ये सचराचरे। यथाकामं चरंति स्म सर्वदा हृष्टचेतसः॥२६॥
तदा तदखिलं दृष्ट्वा मोहिनीचरितं मुनिः। विस्मितः कामचारी तु कैलासं नारदो गतः॥२७॥

उन सभी ने मिलकर उन महादेवी के वचन को हृदयङ्गत किया। उन्होंने अपनी सम्मोहन शक्ति से भी मोहित करते हुए अमृत देना आरम्भ किया।।१६।। बाँटने में प्रयुक्त सोने का चमचा बजाती हुई और साथ ही हाथ में पहने हुए मंगल कंकण बजाती हुई, अत्यन्त ही आनन्द प्रदान करने वाली वेषभूषा से युक्त वे महादेवी अत्यन्त सुशोभित हुईं।।१७।। बायें करकमल में उज्ज्वल अमृत को लेते हुए और दायें हाथ से बाँटते हुए उन्होंने सबसे पहले देवताओं की पंक्ति में चम्मच से देना प्रारम्भ किया।।१८।। वे क्रमशः बाँट रही थीं कि वहाँ पर चन्द्रमा और सूर्य द्वारा सूचित सिंहिका पुत्र राहु ने बीच में चम्मच वाले हाथ को छेद दिया और उस अमृत को शिरमात्र में पीकर आकाश में चला गया।।१९।। उसको देखकर भी सभी असुर ललिता देवी के रूप पर मोहित होते हुए चुपचाप खड़े रहे। इस प्रकार क्रमशः वे सब अमृत को बाँटकर असुरों के सामने पात्र को खाली करके अन्तर्धान हो गयीं।।२०।।

उस खाली पात्र को देखकर सभी दितिपुत्र दानव युद्ध करने की इच्छा से उद्वेलित और क्रोधित हो गये।।२१।। इन्द्र आदि सभी देवता अमृत पान करके उनसे अधिक बलवान् हो गये थे, अतः उन्होंने दुर्बल असुरों के साथ आयुधों से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।।२२।। उत्तम देवताओं द्वारा घायल हुए दानव राजागण कुछ इधर-उधर की दिशाओं में चले गये तथा कुछ पाताल लोक को भाग गये।।२३।। मलक नामक दैत्य को जीतकर देवेश्वर इन्द्र ने श्री ललिता देवी के कटाक्ष से समीहित अपनी राजलक्ष्मी को पुनः प्राप्त कर लिया।।२४।। फिर सुरसेवित इन्द्र ने पुनः सिंहासन को प्राप्त कर पूर्ववत् पूर्व देवों से जीती हुई त्रिलोकी का पालन किया।।२५।। उसके सभी देवता निर्भय होकर प्रसन्न चित्त से इस समस्त चराचर त्रैलोक्य में सर्वदा इच्छानुसार विचरण करने लगे।।२६।। तब उन

नंदिना च कृतानुज्ञः प्रणम्य परमेश्वरम्। तेन संभाव्यमानोऽसौ तुष्टो विष्टरमास्त सः॥२८॥
आसनस्थं महादेवो मुनिं स्वेच्छाविहारिणम्।
पप्रच्छ पार्वतीजानिः स्वच्छस्फटिकसन्निभिः॥२९॥
भगवन्सर्ववृत्तज्ञ पवित्रीकृतविष्टर। कलहप्रिय देवर्षे किं वृत्तं तत्र नाकिनाम्॥३०॥
सुराणामसुराणां वा विजयः समजायत। किं वाप्यमृतवृत्तांतं विष्णुना वापि किं कृतम्॥३१॥
इति पृष्टो महेशेन नारदो मुनिसत्तमः। उवाच विस्मयाविष्टः प्रसन्नवदनेक्षणः॥३२॥
सर्वं जानासि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतस्ततः। तथापि परिपृष्टेन मया तद्वक्ष्यतेऽधुना॥३३॥
तादृशे समरे घोरे सति दैत्यदिवौकसाम्। आदिनारायणः श्रीमान्मोहिनीरूपमादधे॥३४॥
तामुदारविभूषाढ्यां मूर्तां शृङ्गारदेवताम्। सुरासुराः समालोक्य विरताः समरोद्यमात्॥३५॥
तन्मायामोहिता दैत्याः सुधापात्रं च याचिताः। कृत्वा तामेव मध्यस्थामर्पयामासुरंजसा॥३६॥
तदा देवी तदादाय मंदस्मितमनोहरा। देवेभ्य एव पीयूषमशेषं विततार सा॥३७॥
तिरोहितामदृष्ट्वा तां दृष्ट्वा शून्यं च पात्रकम्।
ज्वलन्मन्युमुखा दैत्या युद्धाय पुनरुत्थिताः॥३८॥
अमरैरमृतास्वादादत्युल्वणपराक्रमैः। पराजिता महादैत्या नष्टाः पातालमभ्ययुः॥३९॥

मोहिनी के समस्त चरित्र को देखकर स्वेच्छा से विचरण करने वाले नारद मुनि कैलास पर्वत पर गये।।२७।। वहाँ भगवान् शंकर के द्वारपाल नन्दी से अनुमति लेकर परमेश्वर महादेव को प्रणाम करके भगवान् शंकर द्वारा स्वागत प्राप्त कर वे प्रसन्न हो गये और प्रसन्न होकर आसन पर बैठे।।२८।। तब स्वच्छ स्फटिक मणि (संगमरमर) के समान पार्वती पति महादेव ने स्वेच्छा से विहार करने वाले आसनस्थ नारद मुनि से पूँछा।।२९।। भूतभावन भगवान् शिव ने पूँछा कि हे सारे संसार का सब हाल जानने वाले इस आसन को पवित्र करने वाले कलहप्रिय भगवान् मुझे बताइये कि स्वर्ग का हाल क्या है?।।३०।। सुरों और असुरों में किनकी विजय हुई? अथवा अमृत का क्या वृत्तान्त है? वहाँ विष्णु ने क्या किया?।।३१।। ऐसा जब भगवान् शंकर ने पूँछा तो आश्चर्य से युक्त प्रसन्न मुख और नेत्र वाले नारद जी शंकरजी से बोले कि भगवान्! आप इधर-उधर, यहाँ-वहाँ का सब कुछ जानते हैं, फिर भी आप पूछ रहे हैं, तो मैं अब अवश्य कहूँगा।।३२-३३।।

वैसे उस घोर युद्ध के प्रारम्भ होने पर अर्थात् जब अमृत को लेकर देवों और दानवों में घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया, तब उन भगवान् आदिनारायण लक्ष्मीपति विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर लिया।।३४।। उन उदार और विशेष प्रकार के आभूषणों से भूषित साक्षात् शृङ्गार की मूर्त्ति उन देवी को देवता और असुर देखकर युद्ध से विरत हो गये। उन्होंने युद्ध करना बन्द कर दिया।।३५।। उनकी माया से मोहित दैत्यों ने उनसे अमृत के पात्र को माँगा। तब उन देवी को अध्यक्ष करके उन्हीं से शीघ्र अमृत की याचना की।।३६।। उन देवी ने उस अमृत कलश को लेकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए देवताओं के लिए समस्त अमृत को बाँट दिया।।३७।। समस्त अमृत को देवों में बाँटकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं, तब क्रोध से जलते हुए दैत्य लोग युद्ध के लिए पुनः उठ खड़े हुए।।३८।। अमृत के स्वाद से अत्यन्त बढ़े हुए पराक्रम वाले देवताओं ने महादैत्यों को पराजित कर दिया और वे नष्ट हो गये, जो बचे

इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भवानीपतिरव्ययः। नारदं प्रेषयित्वाशु तदुक्तं सततं स्मरन्॥४०॥
अज्ञातः प्रमथैः सर्वैः स्कन्दनंदिविनायकैः। पार्वतीसहितो विष्णुमाजगाम सविस्मयः॥४१॥
क्षीरोदतीरगं दृष्ट्वा सस्त्रीकं वृषवाहनम्। भोगिभोगासनाद्विष्णुः समुत्थाय समागतः॥४२॥
वाहनादवरुह्येशः पार्वत्या सहितः स्थितम्। तं दृष्ट्वा शीघ्रमागत्य संपूज्यार्घ्यादितो मुदा॥४३॥
सस्नेहं गाढमालिङ्ग्य भवानीपतिमच्युतः। तदागमनकार्यं च पृष्टवान्विष्टरश्रवाः॥४४॥
तमुवाच महादेवो भगवन्पुरुषोत्तम। महायोगेश्वर श्रीमन्सर्वसौभाग्यसुन्दरम्॥४५॥
सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम्। यद्रूपं भवतोत्पात्तं तन्मह्यं संप्रदर्शय॥४६॥
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं शृङ्गारस्याधिदैवतम्। अवश्यं दर्शनीयं मे त्वं हि प्रार्थितकामधृक्॥४७॥
इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवेन तेन सः। यद्ध्यानवैभवाल्लब्धं रूपमद्वैतमद्भुतम्॥४८॥
तदेवानन्यमनसा ध्यात्वा किंचिद्विहस्य सः। तथास्त्विवति तिरोऽधत्त महायोगेश्वरो हरिः॥४९॥
शर्वोऽपि सर्वतश्चक्षुर्मुहुर्व्यापारयन्क्वचित्। अदृष्टपूर्वमाराममभिरामं यलोकयत्॥५०॥
विकसत्कुसुम श्रेणीविनोदिमधुपालिकम्। चंपकस्तवकामोदसुरभीकृतदिक्तटम्॥५१॥

थे, वे पाताल लोक चले गये।।३९।। इस वृत्तान्त को सुनकर अविनाशी भवानी पति शंकर ने नारद मुनि को विदा कर दिया और फिर नारद मुनि द्वारा कहे देवी के रूप का स्मरण करने लगे और अपने सब गणों एवं कार्तिकेय तथा गणेश जी को बिना जताये हुए ही आश्चर्ययुक्त हो पार्वती के साथ विष्णु के पास आ गये।।४०-४१।। क्षीरसागर के तट पर पत्नी सहित बैल पर सवार भगवान् शंकर को देखकर शेषनाग के आसन से उठकर भगवान् विष्णु उनके पास आ गये।।४२।। अपने बैल के वाहन से उतरकर, पार्वती के साथ भगवान् शंकर ने सामने खड़े हुए विष्णु को देखकर, शीघ्र आकर, उनका सत्कार किया और फिर स्नेह के साथ गाढ़ आलिंगन करके भगवान् विष्णु ने भवानीपति से उनके आगमन का कार्य पूँछा।।४३-४४।। उसके बाद पुरुषोत्तम महायोगेश्वर भगवान् महादेव ने लक्ष्मीपति सर्वसौभाग्यसुन्दर, सभी में सम्मोहन पैदा करने वाले, वाणी, मन और इन्द्रियों से न जानने योग्य भगवान् विष्णु से बोले कि जो रूप आपने अमृत मन्थन के समय धारण किया था, उस रूप को मुझे भी दिखाओ।।४५-४६।। शृङ्गार के अधिदेवता, आपके रूप को मैं देखना चाहता हूँ। अतः हे काम को धारण करने वाले भगवन्! आपको मुझे वह रूप अवश्य दिखाना है।।४७।। इस प्रकार महादेव के द्वारा अनेक बार प्रार्थना किये जाने पर ध्यान के वैभव से प्राप्त उस अद्भुत रूप को अनन्य मन से ध्यान करके कुछ हँसकर वे महायोगेश्वर भगवान् विष्णु 'ठीक है, ऐसा ही होगा' यह कहकर अन्तर्धान हो गये और मोहिनी रूप में प्रकट हो गये।।४८-४९।।

भगवान् शंकर भी चारों ओर घूमने वाले नेत्रों के व्यापार को रोककर, कहीं न देखते हुए, ऐसा कभी नहीं देखा था, ऐसे उस सुन्दर रूप को देखने लगे।।५०।। उन मोहिनी का ऐसा रूप था कि ऐसा सुन्दर रूप भगवान् शंकर ने पहले कभी नहीं देखा था। वह कैसा रूप था तथा किस प्रकार वह रूप दिखाई दिया, उसका वर्णन आगे किया जा रहा है। वह रूप खिले हुए फूलों की पंक्तियों के पराग से सुशोभित था। चम्पक पुष्प के गुच्छे की आनन्ददायक सुगन्ध से समस्त दिशाओं को सुगन्धित करते हुए उन मोहिनी को जब भगवान् शंकर ने देखा, तो उस समय प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त ही सुन्दर हो गया था। चारों ओर खिले हुए फूलों से आनन्ददायक मधु वाले

माकन्दवृन्दमाध्वीकमाद्यदुल्लोलकोकिलम्।
अशोकमण्डलीकांडसतांडवशिखण्डिकम्।।५२।।
भृङ्गालिनवझंकारजितवल्लकिनिस्वनम्। पाटलोदारसौरभ्यपाटलीकुसुमोज्ज्वलम्।।५३।।
तमाललताहिंतालकृतमालाविलासितम्। पर्यंतदीर्घिकादीर्घपङ्कजश्रीपरिष्कृतम्।।५४।।
वातपातचलच्चारुपल्लवोत्फुल्लपुष्पकम्। सन्तानप्रसवामोदसन्तानाधिकवासितम्।।५५।।
तत्र सर्वत्र पुष्पाढ्ये सर्वलोकमनोहरे। पारिजाततरोर्मूले कान्ता काचिददृश्यत।।५६।।
बालार्कपाटलाकार नवयौवनदर्पिता। आकृष्टपद्मरागाभा चरणाब्जनखच्छदा।।५७।।
यावकश्रीविनिक्षेपपादलौहित्यवाहिनी। कलनिःस्वनमञ्जीरपदपद्ममनोहरा।।५८।।
अनंगवीरतूणीरदर्पोन्मदनजंघिका। करिशुण्डाकदलिकाकांतितुल्योरुशोभिनी।।५९।।
अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शन तनीयसा। अलंकृतनितंबाढ्या जघनाभोगभासुरा।।६०।।
नवमाणिक्यसन्नद्धहेमकांचीविराजिता। नूतनाभिमहावर्त्तत्रिवल्यूर्मिप्रभाझरा।।६१।।
स्तनकुङ्कुमलहिंदोलमुक्तादामशतावृता। अतिपीवरवक्षोजभारभंगुरमध्यभूः।।६२।।
शिरीषकोमलभुजा कंकणांगदशालिनी। सोर्मिकां गुलिमन्मृष्टशंखसुन्दरकंधरा।।६३।।

चम्पक के फूलों के गुच्छों की मन को आह्लादित कर देने वाली सुगन्ध ने समस्त क्षीरसागर को सुगन्धित कर दिया था।।५१।। मोर शोक रहित होकर अलग-अलग खण्डों में मण्डली बनाकर नृत्य कर रहे थे। उस समय पुष्प के पराग से मदमस्त भौंरे नवीन-नवीन तरह की गुंजार करते हुए लताओं पर झूम रहे थे। केसर की उदार सुगंध से लोध्र के पुष्पों से उज्ज्वल वह स्थान था।।५२।। तमाल, ताल और खजूर के वृक्ष चारों तरफ इस प्रकार पंक्ति बनाकर खड़े थे कि उससे वह क्षीरसागर मालाओं से विलास युक्त लग रहा था। चारों तरफ कमलों की शोभा से परिष्कृत वह स्थान था तथा वायु द्वारा गिरे हुए चञ्चल और सुन्दर पल्लवों और खिले हुए फूलों के विस्तार से उत्पन्न आमोद फूलों के बिछाने से और अधिक सुगन्धित हो गया था।।५३-५५।। वहाँ सर्वत्र पुष्पों से युक्त समस्त संसार के मन को हरने वाले कल्पवृक्ष के मूल में कोई सुन्दरी दिखाई दी।।५६।।

जो सुन्दरी प्रातःकालीन सूर्य की आभा के समान पाटल पुष्प (गुलाब) के समान वर्ण वाली थी। उसके चरणकमल की शोभा पद्म के राग को आकृष्ट कर रही थी।।५७।। पैरों में जो महावर लगाया था, उन पैरों को पृथ्वी पर रखने से वहाँ लालिमा हो जाती थी। उनके चरणकमलों में बँधे हुए मंजीरों का कलकल स्वर मन को हरण करने वाला था।।५८।। वीर कामदेव के तूणीर के दर्प से मदमस्त कर देने वाली हाथी की सूंड़ तथा कदली स्तम्भ की कान्ति के समान शोभिनी जंघायें थीं।।५९।। वे लाल रंग के स्पर्श करने में अत्यन्त सुन्दर दुपट्टे से शरीर को ढँके हुए थीं। उनके नितम्ब समृद्ध और अलंकृत थे तथा जंघाओं का विस्तार अत्यन्त भव्य था।।६०।। वे नवमाणिक्य से सन्नद्ध स्वर्ण करधनी से सुशोभित थीं, जैसे किसी नदी में महान भँवर पड़े हों, उसी तरह उनकी त्रिवली तीन धाराओं की प्रभा से सुशोभित थी।।६१।। उनका झूलता हुआ स्तन मण्डल सैकड़ों मोतियों की चमक से आवृत था। अत्यन्त स्थूल स्तनों के भार से वे पृथ्वी की ओर कुछ झुकी हुई सीधी थीं।।६२।। उनकी भुजाएँ शिरीष के फूल के समान कोमल थीं और कंकड़ांगद शालिनी थीं। प्रकाश युक्त सुगठित स्वच्छ शंख के समान सुन्दर उनकी गर्दन थी।।६३।।

मुखदर्पणवृताभचुबुकापाटलाधरा। शुचिभिः पंक्तिभिः शुद्धैर्विद्यारूपैर्विभास्वरैः॥६४॥
कुंदकुड्मलसच्छायैर्दंतैर्दर्शितचंद्रिका। स्थूलमौक्तिकसन्नद्धनासाभरणभासुरा॥६५॥
केतकांतर्द्दलद्रोणिदीर्घदीर्घविलोचना। अर्धेन्दुतुलिताफाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छटा॥६६॥
पालीवतंसमाणिक्यकुंडलामंडितश्रुतिः। नवकर्पूरकस्तूरीरसामोदिवीटिका॥६७॥
शरच्चारुनिशानाथमंडलीमधुरानना। स्फुरत्कस्तूरितिलका नीलकुंतलसंहतिः॥६८॥
सीमंतरेखाविन्यस्तसिंदूरेणिभासुरा॥६९॥
स्फुरच्चंद्रकलोत्तंसमदलोलविलोचना। सर्वश्रृंगारवेषाढ्या सर्वाभरणमंडिता॥७०॥
तामिमां कंदुकक्रीडालोलामालोलभूषणाम्।
दृष्ट्वा क्षिप्रमुमां त्यक्त्वा सोऽन्वधावदथेश्वरः॥७१॥
उमापि तं समावेक्ष्य धावंतं चात्मनः प्रियम्।
स्वात्मानं स्वात्मसौन्दर्यं निंदंती चातिविस्मिता।
तस्थाववबाङ्मुखी! तूष्णीं लज्जासूयासमन्विता॥७२॥
गृहीत्वा कथमप्येनामालिलिंग मुहुर्मुहुः। उद्धूयोद्धूय साप्येवं धावति स्म सुदूरतः॥७३॥
पुनर्गृहीत्वा तामीशः कामं कामवशीकृतः। आश्लिष्टं चातिवेगेन तद्वीर्यं प्रच्युतं तदा॥७४॥
ततः समुत्थितो देवो महाशास्ता महाबलः। अनेककोटिदैत्येंद्रगर्वनिर्वापणक्षमः॥७५॥

मुख दर्पण वृत्त की आभा वाली उनकी ठोड़ी थी तथा गुलाबी होंठ थे। श्वेत पंक्ति वाले शुद्ध सरस्वती रूपी विशेष चमकते हुए खिले हुए चमेली के फूल की कान्तियों वाले दाँतों से ऐसा लगता था, मानों चाँदनी दिखाई दे रही हो। स्थूल मोती लगी हुई, उनकी नासिका की नथुनी चमक रही थी।।६४-६५।। केवड़े के अन्तर्दल के समान बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उनके सिर के बालों की मांग में अर्धचन्द्र से तुलित उत्पन्न बालों की छटा थी।।६६।। कान के छोर में माणिक्य जटित कर्णाभूषण से उनका कान सुशोभित था। नये कपूर और कस्तूरी के रस से आमोद युक्त पान खाये हुई थीं।।६७।। शरत्कालीन सुन्दर चन्द्रमा के मण्डल के समान मधुर उनका मुख था, सुगन्ध फैलाते हुए कस्तूरी के तिलक से युक्त नीलवर्ण का उनके केशों का जूड़ा था।।६८।। उनके सिर के बालों के बीच मांग में सिन्दूर की पंक्ति सुशोभित हो रही थी।।६९।। चमकती हुई चन्द्रकला (चाँदनी) के समान ऊँचे उठे हुए मदमस्त चञ्चल नेत्र थे। वे सब शृङ्गारयुक्त और समस्त आभरणों से सजी हुई थीं।।७०।। उन कन्दुक क्रीडामाला से भूषण वाली मोहिनी को देखकर शीघ्र ही उमा को छोड़कर वे महेश्वर भगवान् शंकर उन मोहिनी के पीछे दौड़ने लगे।।७१।।

उमा भी उन अपने प्रिय को दौड़ता हुआ देखकर अपने सौन्दर्य की निन्दा करती हुई अत्यन्त विस्मित हो गयीं और लज्जा और असूया से युक्त वहीं पर चुपचाप नीचे को मुख करके खड़ी हो गयीं।।७२।। भगवान् शंकर ने किसी प्रकार उन विश्वमोहिनी को पकड़कर बार-बार आलिङ्गन किया; परन्तु वे उठ-उठ करके दूर-दूर तक दौड़ रही थीं।।७३।। फिर काम के द्वारा वश में किये गये उन भगवान् शंकर ने उन विश्वमोहिनी को पकड़कर अत्यन्त वेग से आलिङ्गन कर लिया। तब उनका वीर्य गिर गया।।७४।। उसके बाद अनेकों करोड़ दैत्येन्द्रों के बल को भी शान्त करने में समर्थ, महाबली, महान् शासक महादेव सम्यक् प्रकार से उठे।।७५।।

तद्वीर्यं बिंदुसंस्पर्शात्सा भूमिस्तत्रतत्र च। रजतस्वर्णवर्णाभूल्लक्षणाद्विंध्यमर्दन॥७६॥
तथैवांतर्दधे सापि देवता विश्वमोहिनी। निवृत्तः स गिरीशोऽपि गिरिं गौरीसखो ययौ॥७७॥
अथाद्भुतमिदं वक्ष्ये लोपामुद्रापते शृणु। यन्न कस्यचिदाख्यातं ममैव हृदयेस्थितम्॥७८॥
पुरा भंडासुरो नाम सर्वदैत्यशिखामणिः। पूर्वं देवान्बहुविधान्यः शास्ता स्वेच्छया पटुः॥७९॥
विशुक्रं नाम दैतेयं वर्गसंरक्षणक्षमम्। शुक्रतुल्यं विचारज्ञं दक्षांसेन ससर्ज सः॥८०॥
वामांसेन विषांगं च सृष्ट्वान्दुष्टशेखरम्। धूमिनीनामधेयां च भगिनीं भंडदानवः॥८१॥
भ्रातृब्यामुप्रवीर्याभ्यां सहितो निहताहितः। ब्रह्मांडं खंडयामास शौर्यवीर्यसमुच्छ्रितः॥८२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च तं दृष्ट्वा दीप्ततेजसम्। पलायनपराः सद्यः स्वे स्वे धाम्नि सदावसन्॥८३॥
तदानीमेव तद्बाहुसंमर्द्दन विमूर्च्छिताः। श्वसितुं चापि पटवो नाभवन्नाकिनां गणाः॥८४॥
केचित्पातालगर्भेषु केचिदंबुधिवारिषु। केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुंजेषु भूभृताम्॥८५॥
विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतस्त्रियः। भ्रष्टाधिकारा ऋभवो विचेरुश्छन्नवेषकाः॥८६॥
यक्षान्महोरगान्सिद्धान्साध्यान्समरदुर्मदान्। ब्रह्माणं पद्मनाभं च रुद्रं वज्रिणमेव च।
मत्वा तृणायितान्सर्वांल्लोकान्भंडः शशास ह॥८७॥

तब उनका वीर्य इधर-उधर गिर गया। इस प्रकार उनके वीर्य के बिन्दु के गिरने पर जहाँ-जहाँ उस बिन्दु ने जमीन का स्पर्श किया, वहाँ-वहाँ पर चाँदी और सोने के वर्ण का विन्ध्य पर्वत खड़ा हो गया।।७६।। उसके बाद वह विश्वमोहिनी देवी अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् शंकर भी पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर चले गये।।७७।।

इसके बाद हयग्रीव ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य मुने! इस आश्चर्य को सुनिये, जिसको मैंने किसी से भी नहीं कहा है, जो मेरे हृदय में ही स्थित है।।७८।। वह यह कि प्राचीन काल में भण्डासुर नामक दैत्य सब दैत्यों का शिरोमणि था, जो पूर्व काल में अनेकों देवताओं के ऊपर अपनी इच्छा से चतुर शासन करने वाला था।।७९।। विशुक्र नामक दितिपुत्र जो दैत्यवर्ग का संरक्षण करने में समर्थ था तथा शुक्र के समान विचारों का ज्ञाता था, जिसे उस भण्डासुर दैत्य ने अपने दायें भाग से उत्पन्न किया था।।८०।। बायें भाग से दुष्ट शिरोमणि विषाङ्ग को उत्पन्न किया तथा धूमिनी नाम की भण्ड दानव की बहिन थी।।८१।।

शूरता और पराक्रम से बँटे हुए संसार के अहित में निहित उसने अपने उग्र एवं पराक्रमी भाइयों के साथ ब्रह्माण्ड को खण्डित कर दिया।।८२।। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर उसके दीप्त तेज वाले मुख को देखकर भागते हुए अपने-अपने धाम में जाकर रहने लगे।।८३।। उसी समय ही उसकी भुजाओं के दबाने से मूर्च्छित हुए देवतागण श्वास लेने में भी कुशल न हो सके थे।।८४।। तब उसके आतंक से कुछ पाताल लोक में चले गये थे, कुछ समुद्रों के जलों में छिप गये थे। कुछ दिशाओं के कोनों में तो कुछ पर्वतों की झाड़ियों में छिप गये थे।।८५।। इस प्रकार सभी देवगण बहुत अधिक एवं विशेष रूप से डरे हुए अपनी पत्नियों, पुत्रों और स्त्रियों को छोड़ कर विलीन हो गये तथा अपने-अपने अधिकारों से भ्रष्ट होकर गन्दे-मैले वस्त्र पहने हुए इधर-उधर विचरण करने लगे थे।।८६।। तब वहाँ भण्ड नामक दैत्य ने यक्षों, महासर्पों, सिद्धों, साध्यों, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और इन्द्र आदि सभी को तिनके के समान मानकर समस्त लोकों पर शासन किया।।८७।।

अथ भंडासुरं हंतुं त्रैलोक्यं चापि रक्षितुम्।
तृतीयमुदभूद्रूपं महायागानलान्मुने॥८८॥
यद्रूपशालिनीमाहुर्ललितां परदेवताम्। पाशांकुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भुजाम्॥८९॥
सा देवी परमा शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी। जघान भंडदैत्येन्द्रं युद्धे युद्धविशारदा॥९०॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मोहिनीप्रादुर्भावमलकासुरवधो नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

॥समाप्तश्चोपोद्घातखंडः॥

इसके बाद भण्डासुर को मारने और तीनों लोकों की रक्षा करने के लिए भगवान् विष्णु ने महायज्ञ की अग्नि वाले तीसरे रूप को उत्पन्न किया, जिस रूप वाली पर देवी ललिता कही गयीं। जो अपने हाथों में पाश, कुश, धनुष-बाण लिये हुई थीं। इस प्रकार उनकी सुगठित चार भुजाएँ थीं।।८९।। वे महादेवी परब्रह्म स्वरूप वाली परमा शक्ति थीं, युद्ध में विशारद उन ललिता देवी ने युद्ध में भण्डासुर को मार डाला।।९०।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १०वाँ अध्याय मोहिनी का प्रकट होना, मलकासुर वध का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

॥उपोद्घात खण्ड समाप्त॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

भण्डासुरप्रादुर्भावोनाम

एकादशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

कथं भंडासुरो जातः कथं वा त्रिपुरांबिका। कथं बभंज तं संख्ये तत्सर्वं वद विस्तरात्॥१॥

हयग्रीव उवाच

पुरा दाक्षायणीं त्यक्त्वा पितुर्यज्ञविनाशनम्॥२॥

आत्मानमात्मना पश्यञ्ज्ञानानंदरसात्मकः। उपास्यमानो मुनिभिरद्वंद्वगुणलक्षणः॥३॥

गंगाकूले हिमवतः पर्यन्ते प्रविवेश ह। सापि शंकरमाराध्य चिरकालं मनस्विनी॥४॥

योगेन स्वां तनुं त्यक्त्वा सुतासीद्धिमभूभृतः॥५॥

स शैलो नारदाच्छ्रुत्वा रुद्राणीति स्वकन्यकाम्।

तस्य शुश्रूषणार्थाय स्थापयामास चांतिके॥६॥

एतस्मिन्नंतरे देवास्तारकेण हि पीडिताः। ब्रह्मणोक्ताः समाहूय मदनं चेदमब्रुवन्॥७॥

सर्गादौ भगवान्ब्रह्मा सृजमानोऽखिलाः प्रजाः। न निर्वृतिरभूत्तस्य कदाचिदपि मानसे।

तपश्चचार सुचिरं मनोवाक्कायकर्मभिः॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–११

भण्डासुर की उत्पत्ति

अगस्त्य मुनि ने हयग्रीव से पूँछा कि हे मुने! भण्डासुर नाम का असुर कैसे उत्पन्न हुआ? और कैसे माँ त्रिपुरा उत्पन्न हुईं? तथा कैसे उन्होंने उस भण्डासुर का वध किया? इसे हमें विस्तार से बतलाइए।।१।।

हयग्रीव ने कहा कि प्राचीन काल में जो दक्ष के यज्ञ में उनकी पुत्री सती जी ने अपने शरीर को यज्ञ में आहूत कर यज्ञ को विध्वंस कर दिया था।।२।। उस समय अपने ज्ञान के आनन्द से रस लेने वाले द्वन्द्वगुण से रहित लक्षण वाले अर्थात् निर्गुण मुनियों द्वारा उपासना किये जाने योग्य अपनी आत्मा द्वारा आत्मा को देखते हुए भगवान् शंकर गंगा के किनारे हिमालय पर्वत में प्रवेश कर गये।।३-३½।। तथा वे मनस्विनी सती जी भी बहुत समय तक भगवान् शंकर की आराधना करके योग द्वारा अपने शरीर को त्याग कर हिमालय पर्वत की पुत्री हो गयीं।।३½-५।। उस पर्वत हिमाचल नारद से सुनक अपनी पुत्री रुद्राणी (पार्वती) को अपने पास अपने घर में ही रख लिया था।।६।। इसी बीच देवता लोग तारक नामक असुर से पीड़ित हो गये, ब्रह्माजी के कहने पर उन देवताओं ने कामदेव को बुलाकर कहा।।७।। कि हे कामदेव! सृष्टि के आदिकाल में समस्त प्रजाओं की रचना करते हुए भी ब्रह्माजी को अपने कार्य

ततः प्रसन्नो भगवान्सलक्ष्मीको जनार्दनः। वरेण च्छंदयामास वरदः सर्वदेहिनाम्॥९॥

ब्रह्मोवाच।

यदि तुष्टोऽसि भगवन्ननायासेन वै जगत्। चराचरयुतं चैतत्सृजामि त्वत्प्रसादतः॥१०॥
एवमुक्तो विधात्रा तु महालक्ष्मीमुदैक्षत। तदा प्रादुरभूस्त्वं हि जगन्मोहनरूपधृक्॥११॥
तवायुधार्थं दत्तं च पुष्पबाणेक्षुकार्मुकम्। विजयत्वमजेयत्वं प्रादात्प्रमुदितो हरिः॥१२॥
असौ सृजति भूतानि कारणेन स्वकर्मणा। साक्षिभूतः स्वजनतो भवान्भजतु निर्वृतिम्॥१३॥
एष दत्तवरो ब्रह्मा त्वयि विन्यस्य तद्वरम। मनसो निर्वृत्तिं प्राप्य वर्ततेऽद्यापि मन्मथ॥१४॥
अमोघं बलवीर्यं ते न ते मोघः पराक्रमः॥१५॥
सुकुमाराण्यमोघानि कुसुमास्त्राणि ते सदा। ब्रह्मदत्तवरोऽयं हि तारको नाम दानवः॥१६॥
बाधते सकलाँल्लोकानस्मानपि विशेषतः। शिवपुत्रादृतेऽन्यत्र न भयं तस्य विद्यते॥१७॥
त्वां विनास्मिन्महाकार्ये न कश्चित्प्रवदेदपि।
स्वकराच्च भवेत्कार्यं भवतो नान्यतः क्वचित्॥१८॥

की पूर्णता होने की सन्तुष्टि नहीं हुई, क्योंकि उस समय मानस सृष्टि थी, जिससे सृष्टि की सफल सम्पन्नता नहीं हो सकी थी, तब ब्रह्माजी ने मन, वचन, शरीर और कर्मों से बहुत समय तक तप किया।।८।। उसके बाद सब प्राणियों को वर देने वाले लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने वर देने को कहा।।९।।

तब ब्रह्माजी ने कहा कि भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो अनायास (बिना प्रयत्न के) ही संसार की रचना होती रहे, तो मैं आपकी कृपा से इस चराचर जगत् की रचना करता रहूँ। यह कह कर विधाता (ब्रह्मा) ने महालक्ष्मी को प्रकट कर दिया। तब जब लक्ष्मी जी को प्रकट किया, उसी समय तुम कामदेव संसार को मोहित करने वाले रूप को धारण करके प्रकट हुए थे।।१०-११।। उस समय तुम्हारे आयुध के लिए पुष्प, बाण, इक्षु और धनुष दिये गये थे तथा उस समय प्रमुदित भगवान् विष्णु ने तुम्हें सब पर विजय प्राप्त करना और किसी के भी द्वारा न जीतना भी प्रदान किया था।।१२।। ब्रह्मा जी अपने कर्म रूप कारण से प्राणियों (भूत तत्त्वों) की रचना करते हैं; परन्तु स्वजन से साक्षीभूत होकर उनको उस कार्य की सम्पन्नता आप ही से है। इस प्रकार ब्रह्माजी अपने को विष्णु द्वारा दिये गये सृष्टि रचना सम्बन्धी वर को तुम्हारे द्वारा ही मानते हैं। मन से सम्पन्नता प्राप्त कर अभी आप मन्मथ बने हुए हैं, अर्थात् आपके सारे काम मन से ही होते हैं, आप सदैव मन में ही पैदा होते हैं, जब मन होता है तभी व्यक्ति समागम में प्रवृत्त होता है तथा जब समागम होगा तो सृष्टि होगी ही। आप मन को मथने वाले हैं, इसीलिए आपको मन्मथ कहा जाता है।।१३-१४।। आपका बल और वीरता अमोघ (अचूक) है। अर्थात् कहीं और कभी भी विफल नहीं होता है। तुम्हारा पराक्रम विफल नहीं है।।१५।। तुम्हारे जो कोमल पुष्पबाण हैं, वे सदा अचूक हैं।।१५½।।

ब्रह्माजी द्वारा वर दिया हुआ तारक नामक दानव समस्त लोकों को तथा हम देवताओं को भी बाधित कर रहा है। शिवपुत्र के बिना अन्य किसी के द्वारा उसको भय नहीं है। अर्थात् शिवपुत्र ही उसका वध कर सकते हैं।।१५½-१७।। तुम्हारे बिना इस कार्य में कोई कुछ भी नहीं बोल सकता है। तुम्हारे हाथ से ही यह कार्य होकर रहेगा। आपके अतिरिक्त अन्य द्वारा नहीं हो सकता।।१८।।

आत्म्यैक्यध्याननिरतः शिवो गौर्या समन्वितः। हिमाचलतले रम्ये वर्तते मुनिभिर्वृतः॥१९॥
तं नियोजय गौर्यां तु जनिष्य[१]ति च तत्सुतः। ईषत्कार्यमिदं कृत्वा त्रायस्वास्मान्महाबल॥२०॥
एवमभ्यर्थितो देवैः स्तूयमानो मुहुर्मुहुः। जगामात्मविनाशाय यतो हिमवतस्तटम्॥२१॥
किमप्याराधयंतं तु ध्यानसंमीलितेक्षणम्। ददर्शेशानमासीनं कुसुमेषुरुदायुधः॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमवत्तनया शिवम्। आरिराधयिषुश्चागाद्बिभ्राणा रूपमद्भुतम्॥२३॥
समेत्य शम्भुं गिरिजां गंधपुष्पोपहारकैः। शुश्रूषणपरां तत्र ददर्शातिबलः स्मरः॥२४॥
अदृश्यः सर्वभूतानान्नातिदूरेऽस्य संस्थितः। सुमनोमार्गणैरग्रैस्स विव्याध महेश्वरम्॥२५॥
विस्मृत्य स हि कार्याणि बाणविद्धोऽतिके स्थिताम्।
गौरीं विलोकयामास मन्मथाविष्टचेतनः॥२६॥
धृतिमालंब्य तु पुनः किमेतदिति चिंतयन्। ददर्शाग्रे तु सन्नद्धं मन्मथे कुसुमायुधम्॥२७॥
तं दृष्ट्वा कुपितः शूली त्रैलोक्यदहनक्षमः। तार्तीयं चक्षुरुन्मील्य ददाह मकरध्वजम्॥२८॥

अपनी आत्मा को एकत्र कर ध्यानमग्न शिव गौरी से युक्त होकर हिमालय पर्वत की रम्य तलहटी में मुनियों से घिरे हुए तपस्या कर रहे हैं।।१९।। तुम जाकर उनको पार्वती से मिला दो, तब गौरी में उनका पुत्र पैदा होगा। अतः हे महाबली! इतना सा हमारा कार्य करके आप हमारी रक्षा कीजिए।।२०।।

इस प्रकार देवताओं द्वारा बार-बार स्तुति किये जाने पर कामदेव अपने विनाश के लिए हिमालय के तट पर गये।।२१।। तब वहाँ कामदेव ने ध्यान में आँखें बन्द किये हुए, कुछ आराधना करते हुए आसनस्थ भगवान् शंकर को देखा।।२२।। इसी बीच में हिमालय पुत्री पार्वती ने शिव की आराधना करनी चाही, अतः उन्होंने अद्भुत रूप धारण कर लिया।।२३।। वहाँ पर शम्भु और गिरिजा के पास जाकर गन्ध पुष्पोपहारों द्वारा सेवा करते हुए अत्यधिक बलवान् कामदेव दिखाई दिये। अर्थात् वहाँ पर भगवान् शंकर पार्वती के प्रति प्रेम करने के लिये वशीभूत नहीं हो रहे थे, क्योंकि पूर्वजन्म में सतीजी उनके मना करने पर भी अपने पिता दक्ष के यज्ञ में चली गयी थीं। भगवान् शिव का कहना था कि बिना बुलाये नहीं जाना चाहिए, अतः फिर भी नहीं मानीं, फिर परिणाम जो हुआ। उसके बाद हिमालय पुत्री के रूप में उन्होंने जब पुनः पाने का प्रयास किया, तब वे उन्हें वश में करना चाहती थीं; परन्तु नहीं हुए, तब वहाँ पर कामदेव ने भगवान् शंकर के मन में काम भाव पैदा करने के लिये चारों ओर सुगन्धित वातावरण पैदा कर दिया, ताकि उनके मन में काम भाव जागृत होवे और वे पार्वती से पुनः विवाह करें।।२४।। वहाँ उस कामदेव ने सब प्राणियों से अति दूरी पर स्थित होकर पुष्पों के बाणों को आगे करके शंकरजी को विशेष बाधित किया।।२५।। तब शंकर जी ने कार्यों को भूलकर कारणों पर विचार किया, तो कामदेव के पुष्पबाण से विद्ध कामाविष्ट चित्त वाले शंकरजी ने पार्वती को पास में खड़ी हुई देखा।।२६।। धैर्य का सहारा लेकर शंकरजी ने ध्यान योग से देखा कि यह क्या है? क्यों अचानक मेरे मन में कुछ कुछ होने लगा है? इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने अपने आगे धनुष बाण रखे हुए छोड़ने को उद्यत पुष्पायुध वाले कामदेव को देखा।।२७।। उसको देखकर त्रैलोक्य को जलाने की क्षमता रखने वाले शूलधारी भगवान् शंकर ने अपने

---

१. परस्मैपदमार्षम्।

शिवेनैवमवज्ञाता दुःखिता शैलकन्यका। अनुज्ञया ततः पित्रोस्तपः कर्तुमगाद्वनम्॥२९॥
अथ तद्भस्म संवीक्ष्य चित्रकर्मा गणेश्वरः। तद्भस्मना तु पुरुषं चित्राकारं चकार सः॥३०॥
तं विचित्रतनुं रुद्रो ददर्शाग्रे तु पूरुषम्। तत्क्षणाज्जात जीवोऽभून्मूर्तिमानिव मन्मथः।
महाबलोऽतितेजस्वी मध्याह्नार्कसमप्रभः॥३१॥
तं चित्रकर्मा बाहुभ्यां समालिंग्य मुदान्वितः। स्तुहि बाल महादेवं स तु सर्वार्थसिद्धिदः॥३२॥
इत्युक्त्वा शतरुद्रीयमुपादिशदमेयधीः। ननाम शतशो रुद्रं शतरुद्रियमाजपन्॥३३॥
ततः प्रसन्नो भगवान्महादेवो वृषध्वजः। वरेण च्छंदयामास वरं वव्रे स बालकः॥३४॥
प्रतिद्वंद्विबलार्थं तु मद्बलेनोपयोक्ष्यति। तदस्त्रशस्त्रमुख्यानि वृथा कुर्वंतु नो मम॥३५॥
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य विचार्य किमपि प्रभुः। षष्टिवर्षसहस्राणि राज्यमस्मै ददौ पुनः॥३६॥
एतद्दृष्ट्वा तु चरितं धाता भंडिति बंडिति। यदुवाच ततो नाम्ना भंडो लेकेषु कथ्यते॥३७॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः। दत्त्वाऽस्त्राणि च शस्त्राणि तत्रैवांतरधाच्च सः॥३८॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडासुरप्रादुर्भावो नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

तृतीय नेत्र को खोलकर कामदेव को भस्म कर दिया।।२८।। इस प्रकार शिव द्वारा अपमानित होकर दुःखी शैलपुत्री पार्वती अपने पिता की अनुमति से तप करने के लिए वन को चली गयीं।।२९।। इसके बाद उस कामदेव को जला हुआ भस्म के रूप में देखकर चित्रकर्मा भगवान् शंकर ने उसकी भस्म से चित्राकार पुरुष बना दिया।।३०।। तब भगवान् रुद्र (शिव) ने विचित्र शरीर वाले उस पुरुष को सामने देखा। उसी क्षण से वह कामदेव मूर्तिमान् सा जीव बन गया तथा वह अब महाबलशाली अत्यधिक तेजस्वी और मध्याह्नकालीन सूर्य के समान प्रभा वाला हो गया।।३१।। चित्रकर्मा गणेश्वर ने प्रसन्न होकर उसका दोनों बाहों से आलिङ्गन करके उससे बोले कि हे बालक! तुम सब मनोरथों को सिद्ध करने वाले महादेव की स्तुति करो।।३२।। ऐसा कहकर असीमित बुद्धि वाले गणेश्वर ने शतरुद्रीय के जाप करने का उपदेश दिया और फिर उस बालक ने शतरुद्रीय का जाप करते हुए सौ बार भगवान् रुद्र को नमन किया।।३३।। उसके बाद उसकी उस आराधना से वृषभध्वज भगवान् महादेव बहुत प्रसन्न हुए और उसे वर द्वारा विभूषित किया। उस बालक ने वर माँगा।।३४।। प्रतिद्वन्द्वी के बल के लिये मेरे बल द्वारा उपयोग करेगा, उसके मुख्य अस्त्र-शस्त्र सब मेरे ऊपर व्यर्थ होवें।।३५।। वैसा ही होगा, ऐसा कहकर उन प्रभु ने कुछ विचार करके साठ वर्ष तक के लिए उसे राज्य प्रदान किया।।३६।। यह चरित्र देखकर ब्रह्माजी ने भण्ड भण्ड ऐसा जो कहा, उसके बाद समस्त लोकों में वह भण्ड नाम से कहा जाता है।।३७।। इस प्रकार उसे वर देकर समस्त मुनियों से घिरे हुए वे गणेश्वर उसे अस्त्र-शस्त्र प्रदान कर वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।३८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ११वाँ अध्याय भण्डासुर की उत्पत्ति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ललिताप्रादुर्भावो नाम

द्वादशोऽध्यायः

रुद्रकोपानलाज्जातो यतो भण्डो महाबलः। तस्माद्रौद्रस्वभावो हि दानवश्चाभवत्ततः॥१॥
अथागच्छन्महातेजाः शुक्रो दैत्यपुरोहितः। समायाताश्च शतशो दैतेयाः सुमहाबलाः॥२॥
अथाहूय मयं भंडो दैत्यवंश्यादिशिल्पिनम्। नियुक्तो भृगुपुत्रेण निजगादार्थवद्वचः॥३॥
यत्र स्थित्वा तु दैत्येन्द्रैस्त्रैलोक्यं शासितं पुरा। तद्गत्वा शोणितपुरं कुरुष्व त्वं यथापुरम्॥४॥
तच्छ्रुत्वा वचनं शिल्पी स गत्वाथ पुरं महत्। चक्रेऽमरपुरप्रख्यं मनसैवेक्षणेन तु॥५॥
अथाभिषिक्तः शुक्रेण दैतेयैश्च महाबलैः। शुशुभे परया लक्ष्म्या तेजसा च समन्वितः॥६॥
हिरण्याय तु यद्दत्तं किरीटं ब्रह्मणा पुरा। सजीवमविनाश्यं च दैत्येन्द्रैरपि भूषितम्।
दधौ भृगुसुतोत्सृष्टं भंडो बालार्कसन्निभम्॥७॥
चामरे चंद्रसंकाशे सजीवे ब्रह्मनिर्मिते। न रोगो न च दुःखानि संदधौ यन्निषेवणात्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१२

ललिताप्रादुर्भाव

भगवान् रुद्र की क्रोधाग्नि से वह महाबली भण्डासुर उत्पन्न हुआ था, इसलिए वह दानव रौद्र स्वभाव वाला हुआ।।१।। इसके बाद महातेजस्वी दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य और सैकड़ों महाबलवान् दैत्यपुत्र उसके पास आये।।२।। इसके बाद भण्डासुर ने मय दानव को बुलाया और फिर भृगुपुत्र शुक्राचार्य ने मय दानव को दैत्यकुल का मुख्य शिल्पकार नियुक्त किया, तब उस मयदानव से भण्डासुर ने सार्थक वाणी को कहा।।३।। जहाँ स्थित होकर दैत्य राजाओं ने प्राचीन काल में तीनों पर शासन किया था, वहाँ जाकर शोणितपुर को जैसा वह नगर पहले था, वैसा कर दो।।४।। उस वचन को सुनकर उस मयनामक दानव शिल्पकार ने वहाँ जाकर उस महान् नगर को मन से देखते हुए अमरपुर नामक मुख्य नगर बना दिया, अर्थात् उस शोणितपुर को, जिसमें सर्वत्र खून ही खून था, उसे सजाकर अमरपुर बना दिया।।५।।

इसके बाद शुक्राचार्य तथा महाबली दैत्यों ने भण्डासुर का राज्याभिषेक कर दिया, तब परालक्ष्मी के तेज से समन्वित वह भण्डासुर सुशोभित हुआ।।६।। पूर्वकाल में जिस मुकुट को ब्रह्माजी ने हिरण्य को दिया था, उसी दैत्यराजाओं द्वारा सजाये गये सजीव और अविनाशी प्रातःकालीन सूर्य के समान, शुक्राचार्य द्वारा पहनाये गये मुकुट को भण्डासुर ने अपने मस्तक पर धारण किया।।७।। तथा ब्रह्मा द्वारा बनाये गये चन्द्रमा के समान सजीव दो चामरों को धारण किया, जिन चामरों के रहते न कोई रोग हो सकता था और न कोई दुःख ही होना सम्भव था।।८।।

तस्यातपत्रं प्रददौ ब्रह्मणैव पुरा कृतम्। यस्यच्छायानिषण्णास्तु बाध्यंते नास्त्रकोटिभिः॥९॥
धनुश्च विजयं नाम शंखं च रिपुघातिनम्। अन्यान्यपि महार्हाणि भूषणानि प्रदत्तवान्॥१०॥
तस्य सिंहासनं प्रादक्षय्यं सूर्यसन्निभम्। ततः सिंहासनासीनः सर्वाभरणभूषितः।
बभूवातीव तेजस्वी रत्नमुत्तेजितं यथा॥११॥
बभूवुरथ दैतेयास्तस्याष्टौ तु महाबलाः। इन्द्रशत्रुरमित्रघ्नो विद्युन्माली विभीषणः।
उग्रकर्मोग्रधन्वा च विजयश्रुति पारगः॥१२॥
सुमोहिनी कुमुदिनी चित्रांगी सुंदरी तथा। चतस्रो वनितास्तस्य बभूवुः प्रियदर्शनाः॥१३॥
तमसेवंत कालज्ञा देवाः सर्वे सवासवाः। स्यंदनास्तुरगा नागाः पादाताश्च सहस्रशः॥१४॥
संबभूवुर्महाकाया महांतो जितकाशिनः। बभूवुर्दानवाः सर्वे भृगुपुत्रमतानुगाः॥१५॥
अर्चयंतो महादेवमास्थिताः शिवशासने। बभूवुर्दानवास्तत्र पुत्रपौत्रधनान्विताः।
गृहेगृहे च यज्ञाश्च संबभूवुः समंततः॥१६॥
ऋचो यजूंषि सामानि मीमांसान्यायकादयः। प्रवर्तंते स्म दैत्यानां भूयः प्रतिगृहं तदा॥१७॥
यथाश्रमेषु मुख्येषु मुनीनां च द्विजन्मनाम्। तथा यज्ञेषु दैत्यानां बुभुजुर्हव्यभोजिनः॥१८॥
एवं कृतवतोऽप्यस्य भंडस्य जितकाशिनः। षष्टिवर्षसहस्राणि व्यतीतानि क्षणार्धवत्॥१९॥
वर्धमानमथो दैत्यं तपसा च बलेन च। हीयमानबलं चेन्द्रं संप्रेक्ष्य कमलापतिः॥२०॥

जिस छत्र को पहने ब्रह्माजी ने बनाया था, जिसकी छाया में बैठे हुए को हजारों करोड़ अस्त्रों से भी बाधा नहीं पहुँच सकती थी, उसी छत्र को भण्डासुर को दिया गया।।९।। उस भण्डासुर का विजय नामक धनुष था, जो एक शंख शत्रुओं को मारने वाला था। अन्य भी बेशकीमती आभूषण दिये गये थे।।१०।। उसको सूर्य के समान अक्षय सिंहासन दिया गया, तब उस सिंहासन पर आसीन हो सब आभूषणों से भूषित वह ऐसा अत्यन्त तेजस्वी हो गया, जैसा कि ऊँचे तेज वाला रत्न होता है।।११।। उस महाबली दैत्य के आठ पुत्र हुए, जिनके नाम हैं—१. इन्द्रशत्रु, २. अमित्रघ्न, ३. विद्युन्माली, ४. विभीषण, ५. उग्रकर्मा, ६. उग्रधन्वा, ७. विजय श्रुति और ८. पारग।।१२।। तथा १. सुमोहिनी, २. कुमुदिनी, ३. चित्रांगी और ४. सुन्दरी ये चार उसकी प्रिय दिखाई देने वाली पत्नियाँ हुईं।।१३।। काल को जानने वाले सब देवताओं ने इन्द्र के साथ हजारों रथारोही, अश्वारोही, गजारोही और पैदल सेनायें देकर उस भण्डासुर की सेवा की।।१४।। इस प्रकार वे भृगुपुत्र शुक्राचार्य के मत का अनुगमन करने वाले सभी दानव महाकाय, महान्त और प्रकाश को जीतने वाले हो गये।।१५।। शिव के शासन में महादेव में आस्था रखते हुए तथा महादेव की पूजा करते हुए सब दानव वहाँ पुत्र-पौत्र और धन-धान्य से समृद्ध हो गये। घर-घर में सर्वत्र चारों ओर यज्ञ होने लगे।।१६।। तब ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, मीमांसा, न्याय आदि दैत्यों के प्रत्येक घर में अध्ययन किये जाते थे।।१७।। जिस प्रकार मुनियों और ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के मुख्य आश्रमों में यज्ञादि प्रक्रियाएँ चलती थीं, उसी प्रकार दैत्यों के यज्ञों में हवि का भोग करने वाले भोजन करने लगे। अर्थात् उसी प्रकार यज्ञादि होने लगे।।१८।। इस प्रकार पूर्ण धर्मपूर्वक राज्य करते हुए उस जितकाशी भण्डासुर के साठ हजार वर्ष आधे क्षण के समान बीत गये।।१९।। इस प्रकार तपस्या और बल से बढ़े हुए दैत्य को और इन्द्र के बल को घटता हुआ

ससर्ज सहसा कांचिन्मायां लोकविमोहिनीम्। तामुवाच ततो मायां देवदेवो जनार्दनः॥२१॥

त्वं हि सर्वाणि भूतानि मोहयंती निजौजसा।
विचरस्व यथाकामं त्वां न ज्ञास्यति कश्चन॥२२॥

त्वं तु शीघ्रमितो गत्वा भंडं दैतेयनायकम्। मोहयित्वाचिरेणैव विषयानुपभोक्ष्यसे॥२३॥

एवं लब्ध्वा वरं माया तं प्रणम्य जनार्दनम्।
ययाचेऽप्सरसो मुख्याः सहायार्थं तु काश्चन॥२४॥

तथा संप्रार्थितो भूयः प्रेषयामास काश्चन। ताभिर्विश्वाचि[1]मुख्याभिः सहिता सा मृगेक्षणा।

प्रययौ मानसस्याग्र्यं तटमुज्ज्वलभूरुहम्॥२५॥

यत्र क्रीडति दैत्येंद्रो निजनारीभिरन्वितः। तत्र सा मृगशावाक्षी मूले चंपकशाखिनः।

निवासमकरोद्रम्यं गायंती मधुरस्वरम्॥२६॥

अथागतस्तु दैत्येंद्रो बलिभिर्मंत्रिभिर्वृतः। श्रुत्वा तु वीणानिनदं ददर्श च वरांगनाम्॥२७॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वांगीं विद्युल्लेखामिवापराम्। मायामये महागर्ते पतितो मदना[2]भिधे॥२८॥

अथास्य मंत्रिणोऽभूवन्हृदये स्मरतापि ताः॥२९॥

तेन दैतेयनाथेन चिरं संप्रार्थिता सती। तैश्च संप्रार्थितास्ताश्च प्रतिशुश्रुवुरंजसा॥३०॥

यास्त्वलभ्या महायज्ञैरश्वमेधादिकैरपि। ता लब्ध्वा मोहिनीमुख्या निर्वृत्तिं परमां ययुः॥३१॥

देखकर कमलापति विष्णु ने अचानक किसी लोकविमोहिनी माया को उत्पन्न किया, उसके बाद देवों के देव जनार्दन भगवान् विष्णु ने उस माया से कहा कि हे माये! तुम अपने ओज से समस्त प्राणियों को मोहित करती हुई अपनी इच्छानुसार विचरण करो, तुमको कोई नहीं जानेगा।।२२। अतः हे माये! तुम शीघ्र ही यहाँ से जाकर दैत्यों के नायक भण्डासुर को मोहित करके उसके साथ शीघ्र विषयों का भोग करो।।२३।। इस प्रकार भगवान् विष्णु से वर प्राप्त कर और उन जनार्दन को प्रणाम करके उसने अपनी सहायता के लिए किन्हीं मुख्य अप्सराओं की याचना की।।२४।।

उस माया द्वारा प्रार्थना करने पर कुछ अप्सराओं के साथ में भेज दिया। उन विश्वाची आदि मुख्य अप्सराओं के साथ वह मृगनैनी माया मानसरोवर के अग्रभाग में उज्ज्वल तट पर उगे हुए वृक्षों वाले रम्य स्थान पर चली गयी। जहाँ कि वह दैत्यराज भण्डासुर अपनी नारियों सहित कामक्रीड़ा करता था।।२५-२५½।। वहाँ पर वह मृगछौने के समान नेत्र वाले चम्पक वृक्ष की शाखाओं के मूल में रमणीक मधुर स्वर में गाते हुए निवास करने लगी।।२६।। इसके बाद बलियों और नृत्यों से घिरा हुआ दैत्यराज वहाँ आया और वीणा के सुन्दर स्वर को सुनकर उस श्रेष्ठ अंग वाली माया को उसने देखा।।२७।। उस दूसरी विद्युत् रेखा की भाँति (बिजली की चमक की भाँति) सर्वाङ्गसुन्दरी को देख कर वह काम नामक मायामय महागर्त में गिर गया।।२८।। इसके बाद उसके मन्त्रियों के हृदय में भी वे अप्सरायें कामाग्नि पैदा करने लगीं।।२९।। उस दैत्यराज द्वारा चिरकाल तक प्रार्थना कर रमण की गयी तथा उन अप्सराओं ने भी उनके साथ पूरा-पूरा सहयोग किया।।३०।। अश्वमेधादिक महायज्ञों द्वारा जो परमानन्द नहीं प्राप्त

१. ह्रस्व आर्षः। २. अभूदिति शेष।

विसस्मरुस्तदा वेदांस्तथा देवमुमापतिम्। विजहुस्ते तथा यज्ञक्रियाश्चान्याः शुभावहाः॥३२॥
अवमानहतश्चासीत्तेषामपि पुरोहितः। मुहूर्त्तमिव तेषां तु ययावब्दायुतं तदा॥३३॥
मोहितेष्वथ दैत्येषु सर्वे देवाः सवासवाः। विमुक्तोपद्रवा ब्रह्मनामोदं परमं ययुः॥३४॥
कदाचिदथ देवेंद्र वीक्ष्य सिंहासने स्थितम्। सर्वदेवैः परिवृतं नारदौ मुनिराययौ॥३५॥
प्रणम्य मुनिशार्दूलं ज्वलंतमिव पावकम्। कृतांजलिपुटो भूत्वा देवेशो वाक्यमब्रवीत्॥३६॥
गवन्सर्वधर्मज्ञ परापरविदां वर। तत्रैव गमनं ते स्याद्यं धन्यं कर्तुमिच्छसि॥३७॥
भविष्यच्छोभनाकारं तवागमनकारणम्। त्वद्वाक्यामृतमाकर्ण्य श्रवणानंदनिर्भरम्।
अशेषदुःखान्युत्तीर्य कृतार्थः स्यां मुनीश्वर॥३८॥

नारद उवाच

अथ संमोहितो भंडो दैत्येंद्रो विष्णुमायया। तया विमुक्तो लोकांस्त्रीन्दहेताग्नि[१]रिवापरः॥३९॥
अधिकस्तव तेजोभिरस्त्रैर्मायाबलेन च। तस्य तेजोऽपहारस्तु कर्तव्योऽतिबलस्य तु॥४०॥
विनाराधनतो देव्याः पराशक्तेस्तु वासव। अशक्योऽन्येन तपसा कल्पकोटिशतैरपि॥४१॥

हो सके, उन परमानन्दों को मोहिनी मुख्य अप्सराओं से प्राप्त दैत्यराज मन्त्रियों सहित परम सन्तुष्टि को प्राप्त हुआ।।३१।। तब वे सब दैत्य लोग वेदों को और उमापति महादेव को भूल गये तथा उनकी समस्त शुभ करने वाली याज्ञिक क्रियाएँ समाप्त हो गयीं।।३२।। उनके पुरोहित शुक्राचार्य अवमान हत हो गये। तब उनके दश हजार वर्ष मुहूर्त के समान चले गये।।३३।। जब वे दैत्य उस मोहिनी माया तथा अप्सराओं द्वारा मोहित कर लिये गये, तब इन्द्र सहित सभी देवता उपद्रव रहित होकर परम आमोद को प्राप्त हुए।।३४।। फिर जब असुरों का समय समाप्त हो गया और वे माया से आवृत होकर शक्तिहीन हो गये, तब देवताओं का राज्य हो गया और सिंहासन पर देवराज इन्द्र विराजमान हो गये। तब कभी सब देवों से घिरे हुए देवराज इन्द्र को सिंहासन पर बैठा हुआ देखकर नारद मुनि वहाँ आये।।३५।। तब जलती हुई अग्नि के समान उन मुनिशार्दूल नारद जी को प्रणाम करके हाथ जोड़ कर देवराज इन्द्र यह वाक्य बोले।।३६।। हे सब धर्मों को जानने वाले तथा पर और अपर को जानने वाले भगवन्! आपका गमन वहीं होता है, जहाँ आप उसको धन्य करना चाहते हैं।।३७।। हे महामुने! आपके आगमन का कारण भविष्य में शोभनाकार होता है, अर्थात् जहाँ कुछ शुभ होने को होता है, वहीं पर आप आते हैं। हे मुनीश्वर! कानों को आनन्द प्रदान करने वाले आपके वाक्यामृत को सुनकर समस्त दुःखों को उतार कर (दूर कर) हम लोग कृतार्थ होवें।।३८।।

नारदजी बोले—आप लोग समझिये कि उस दैत्यराज भण्डासुर को विष्णु की माया ने सम्मोहित कर दिया है। उसने जलती हुई अग्नि के समान तीनों लोकों को छोड़ दिया है।।३९।।

जबकि वह आपके तेजयुक्त अस्त्रों और आप लोगों के मायाबल से अधिक है। हे इन्द्र! उस अति बली के तेज का अपहरण पराशक्ति देवी की आराधना के बिना सम्भव नहीं था। अन्य तपादि उपाय द्वारा सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उसके तेज का अपहरण अशक्य था।।४०-४१।।

---

१. सम्भावनायां लिङ्।

पुरैवोदयतः शत्रोराराधयत बालिशाः। आराधिता भगवती सा वः श्रेयो विधास्यति॥४२॥
एवं संबोधितस्तेन शक्रो देवगणेश्वरः। तं मुनिं पूजयामास सर्वदेवैः समन्वितः।
तपसे कृतसन्नाहो ययौ हैमवतं तटम्॥४३॥
तत्र भागीरथीतीरे सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वले। पराशक्तेर्महापूजां चक्रेऽखिलसुरैः समम्।
इन्द्रप्रस्थमभून्नाम्ना तदाद्यखिलसिद्धिदम्॥४४॥
ब्रह्मात्मजोपदिष्टेन कुर्वतां विधिना पराम्। देव्यास्तु महतीं पूजां जपध्यानरतात्मनाम्॥४५॥
उग्रे तपसि संस्थानामनन्यार्पितचेतसाम्। दशवर्षसहस्राणि दशाहानि च संययुः॥४६॥
मोहितानथ तान्दृष्ट्वा भृगुपुत्रो महामतिः। भंडासुरं समभ्येत्य निजगाद पुरोहितः॥४७॥
त्वामेवाश्रित्य राजेंद्र सदा दानवसत्तमाः। निर्भयास्त्रिषु लोकेषु चरंतीच्छाविहारिणः॥४८॥
जातिमात्रं हि भवतो हंति सर्वान्सदा हरिः। तेनैव निर्मिता माया यया संमोहितो भवान्॥४९॥
भवंतं मोहितं दृष्ट्वा रंध्रान्वेषण तत्परः। भवतां विजयार्थाय करोदींद्रो महत्तपः॥५०॥
यदि तुष्टा जगद्धात्री तस्यैव विजयो भवेत्।
इमां मायामयीं त्यक्त्वा मंत्रिभिः सहितो भवान्।
गत्वा हैमवतं शैलं परेषां विघ्नमाचर॥५१॥
एवमुक्तस्तु गुरुणा हित्वा पर्यंकमुत्तमम्। मंत्रिवृद्धानुपाहूय यथावृत्तांतमाह सः॥५२॥

अरे मूर्खों! यदि शत्रु के उदय होने से पहले उनकी तुम आराधना करो तो आराधित वह भगवती आप लोगों का कल्याण करेंगी।।४२।। जब नारद मुनि ने इन्द्र से इस प्रकार कहा तो सब देवों के साथ इन्द्र ने नारद मुनि की पूजा की। उसके बाद वे नारद मुनि तपस्या के लिए हैमवान् पर्वत के तट पर चले गये।।४३।। वहाँ ऋतुओं के उज्ज्वल पुष्पों वाले भागीरथी नदी के किनारे समस्त देवताओं के साथ उन्होंने महाशक्ति की पूजा की। फिर वह स्थान वह आदि और समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला इन्द्रप्रस्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ।।४४।। ब्रह्मा पुत्र नारद जी ने जो उपदेश दिया, उसके अनुसार उन सब देवों ने उन देवी की इतनी महती पूजा की कि वे उन्हीं के जप और ध्यान में लगे रहते थे तथा अन्यत्र कहीं नहीं मन लगाते थे। इस प्रकार उग्र तपस्या करते हुए उनके दश हजार वर्ष बीत गये।।४५-४६।। इस प्रकार भृगुपुत्र महामति पुरोहित शुक्राचार्य ने उन देवताओं को मोहित देखकर भण्डासुर को बुलाकर कहा।।४७।। कि राजेन्द्र भण्डासुर! तुम्हारा आश्रय लेकर ही समस्त दानवश्रेष्ठ सदैव निर्भय होकर तीनों लोकों में इच्छानुसार विहार करते हैं।।४८।।

आपकी जातिमात्र में सबको भगवान् विष्णु सदैव मारते हैं, उन विष्णु ने ही उस माया को उत्पन्न किया है, जिस माया ने आपको मोहित कर लिया है।।४९।। आपको मोहित देखकर कोई दोष (कमी) खोजने में लगे हुए इन्द्र आप पर विजय प्राप्त करने के लिए महान् तप कर रहे हैं।।५०।। यदि संसार को धारण करने वाली वे महामाया उनकी पूजा से सन्तुष्ट हो गयीं तो फिर उस इन्द्र की ही विजय होनी चाहिए। इसलिए इस मायामयी को छोड़कर मन्त्रियों के साथ आप हैमवान् पर्वत पर जाकर दूसरे के विघ्नों को दूर करो।।५१।। इस प्रकार जब गुरु शुक्राचार्य ने कहा तो भण्डासुर ने राज्यभोग के समस्त साधनों को त्याग दिया और मन्त्रियों को बुलाया और उनसे सब वृत्तान्त

तच्छ्रुत्वा नृपतिं प्राह श्रुतवर्मा विमृश्य च। षष्टिवर्षसहस्राणां राज्यं तव शिवार्पितम्।।५३।।
तस्मादप्यधिकं वीर गतमासीदनेकशः। अशक्यप्रतिकार्योऽयं यः कालः शिवचोदितः।।५४।।

अशक्यप्रतिकार्योऽयं तदभ्यर्चनतो विना।
काले तु भोगः कर्त्तव्यो दुःखस्य च सुखस्य वा।।५५।।
अथाह भीमकर्माख्यो नोपेक्ष्योऽरिर्यथाबलम्।
क्रियाविघ्ने कृतेऽस्माभिर्विजयस्ते भविष्यति।।५६।।

तव युद्धे महाराज परार्थ बलहारिणी। दत्ता विद्या शिवेनैव तस्मात्ते विजयः सदा।।५७।।
अनुमेने च तद्वाक्यं भंडो दानवनायकः। निर्गत्य सहसेनाभिर्ययौ हैमवतं तटम्।।५८।।
तपोविघ्नकरान्दृष्ट्वा दानवाञ्जगदंबिका। अलंघ्यमकरोदग्रे महाप्राकारमुज्ज्वलम्।।५९।।
तं दृष्ट्वा दानवेंद्रोऽपि किमेतदिति विस्मितः। संक्रुद्धो दानवास्त्रेण बभंजातिबलेन तु।।६०।।
पुनरेव तदग्रेऽभूदलंघ्यः सर्वदानवैः। वायव्यास्त्रेण तं धीरे बभंज च ननाद च।।६१।।
पौनःपुन्येन तद्भस्म प्राभूत्पुनरुपस्थितम्। एतदृष्ट्वा तु दैत्येंद्रो विषण्णः स्वपुरं ययौ।।६२।।

कहा।।५२।। उस समस्त समाचार को सुनकर मंत्री श्रुतवर्मा ने विचार कर राजा से कहा कि साठ हजार वर्षों तक भगवान् शिव द्वारा समर्पित राज्य तुम्हारा अब तक रहा है।।५३।। तथा उससे भी अधिक समय हो गया था।।५३½।। उन देवताओं ने जो कार्य किया कि वे उन महामाया की पूजा कर रहे हैं, अतः उसके प्रतिकार्य करना असम्मति है तथा यह कार्य तो काल प्रेरित है, अर्थात् समय के अनुसार होना ही था, समय को कोई नहीं जीत सकता। हम लोग उनसे अधिक महादेवी की पूजा नहीं कर सकते, अतः महामाया की पूजा के बिना यह प्रतिकार्य अशक्य है। समय आने पर तो जो कुछ सुख अथवा दुःख भोगना है, वह तो भोगना ही होगा।।५३½-५५।। इस प्रकार उस मन्त्री श्रुतवर्मा ने कहा कि हे राजन्! शत्रु जो महामाया की पूजा कर रहे हैं, वह कर्म बहुत ही भयंकर है, उससे वे जो चाहेंगे सो कर सकते हैं। अतः हमें अपने बल के अनुसार शत्रु के कार्यों की उपेक्षा नहीं करनी, उसका प्रतिकार करना चाहिए। इसलिए हमें उनके कार्य में विघ्न पैदा करना चाहिए, तभी आपकी विजय होगी।।५६।।

मन्त्री ने कहा कि हे महाराज! आपको तो भगवान् शंकर ने यह वरदान दिया है कि आपसे जो शत्रु युद्ध करेगा, उसका आप बल हरण कर लेंगे तथा जब बल हरण ही हो गया तो आपकी विजय सुनिश्चित है। इसलिए आप उनकी पूजा में विघ्न पैदा कीजिए।।५७।। तब दानव नायक भण्डासुर ने मन्त्री श्रुतवर्मा के वाक्य को मान लिया और फिर भण्डासुर जगदम्बिका के तप में लीन देवताओं के तप को भंग करने हेमवान् पर्वत के तट पर पहुँचा।।५८।। देवताओं के तप में विघ्न पैदा करने वाले दानवों को देखकर जगदम्बिका ललिता देवी ने आगे बढ़कर उन देवताओं के चारों ओर अलंघनीय महाप्राकार (चहारदीवारी) बना दी।।५९।। उस महाप्राकार को देखकर दानवराज भण्डासुर आश्चर्यचकित हो गया और बहुत क्रोधित होकर अत्यधिक बल से अस्त्रों द्वारा उस दानवराज ने प्राकार को तोड़ दिया।।६०।। उसके बाद फिर दानवों द्वारा न लांघने योग्य प्राकार बना दिया गया। उसको उस धैर्यशाली भण्डासुर ने वायव्य अस्त्र से तोड दिया और फिर घोर शब्द किया।।६१।। इस प्रकार जैसे दानवराज तोड़ता था, प्राकार पुनः बन जाता था, उसके सब अस्त्र भस्म हो जाते थे। यह देखकर वह दैत्यराज भण्डासुर तंग होकर अपने नगर को चला

तां च दृष्ट्वा जगद्धात्रीं दृष्ट्वा प्राकारमुज्ज्वलम्।
भयाद्विव्यथिरे देवा विमुक्तसकलक्रियाः॥६३॥
तानुवाच ततः शक्रो दैत्येन्द्रोऽयमिहागतः। अशक्यः समरे योद्धुमस्माभिरखिलैरपि॥६४॥
पलायितानामपि नो गतिरन्या न कुत्रचित्।
कुण्डं योजनविस्तारं सम्यक्कृत्वा तु शोभनम्॥६५॥
महायागविधानेन प्रणिधाय हुताशनम्। यजामः परमां शक्तिं महामासैर्वयं सुराः॥६६॥
ब्रह्मभूता भविष्यामो भोक्ष्यामो वा त्रिविष्टपम्। एवमुक्तास्तु ते सर्वे देवाः सेन्द्रपुरोगमाः॥६७॥
विधिवज्जुहुवुर्मासान्युत्कृत्योत्कृत्य मंत्रतः। हुतेषु सर्वमांसेषु पादेषु च करेषु च॥६८॥
होतुमिच्छत्सु देवेषु कलेवरमशेषतः। प्रादुर्बभूव परमन्तेजःपुंजो ह्यनुत्तमः॥६९॥
तन्मध्यतः समुदभूच्चक्राकारमनुत्तमम्। तन्मध्ये तु महादेवीमुदयार्कसमप्रभाम्॥७०॥
जगदुज्जीवनकरीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्। सौन्दर्यसारसीमां तामानंदरससागराम्॥७१॥
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमांबराम्। सर्वाभरणसंयुक्तां शृङ्गारैकरसालयाम्॥७२॥
कृपातरंगितापांगनयनालोककौमुदीम्। पाशांकुशेक्षुकोदंडपंचबाणलसत्कराम्॥७३॥
तां विलोक्य महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः।
प्रणेमुर्मुदितात्मानो भूयोभूयोऽखिलात्मिकाम्॥७४॥

गया।।६२।। उसके बाद संसार को धारण करने वाली उन महादेवी को तथा उनके द्वारा बनाये गये उज्ज्वल प्राकार को देखकर समस्त याज्ञिक क्रियाओं को छोड़कर देवता लोग भय से व्यथित हो गये।।६३।। तब इन्द्र ने उनसे कहा कि यहाँ पर दैत्यराज भण्डासुर आ गया, वह युद्ध में हम सबसे लड़ने में असमर्थ होकर चला गया।।६४।। वह यहाँ से भाग गया है, अतः भागने वाले की क्या गति है, अब वह क्या कर सकता है, उससे हमें कोई भय नहीं है। अब एक योजन विस्तार वाला सुन्दर कुण्ड अच्छी तरह बनाकर महायज्ञ के विधान से अच्छी तरह सब व्यवस्था कर हम सभी देवता लोग महामासों द्वारा उस परमाशक्ति का यज्ञ करते हैं, जिससे हम सभी ब्रह्मभूत हो जायेंगे अथवा स्वर्ग का भोग करेंगे।।६५½-६६½।। इस प्रकार वे सब देवता लोग इन्द्र के साथ इन्द्र को आगे करके उच्च उच्च मन्त्रों का उच्चारण करके मांसों को विधिवत् आहूत करने लगे। जब उस यज्ञ में अपने सब मांस को हाथों और पैरों को आहत कर दिया, तब समस्त शरीर को आहूत करने की इच्छा रखने वाले देवों को अत्यन्त उत्तम परम तेज प्रकट हो गया।।६६½-६९।। उस तेज के मध्य से अत्यन्त उत्तम चक्र का आकार बन गया, उस चक्र के बीच में सूर्य के समान प्रभा वाली महादेवी का उदय हो गया। जो देवी संसार को जीवन देने वाली, ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों की शक्ति वाली अर्थात् सृष्टि, स्थिति और प्रलय तीनों करने वाली थीं, वे सुन्दरता का जो भी सार (मुख्य) आधार है, उसकी सीमा को पार करने वाली थीं, वे आनन्द रूपी रस की सागर थीं। वे जपा कुसुम के समान श्वेत वर्ण वाली और अनार पुष्प के समान वस्त्र धारण किये हुए थीं, समस्त आभूषण पहने हुए थीं। शृङ्गार रस की मानों एकमात्र आलय थीं। वे अपनी कृपा से तरंगित पलकों के युक्त नेत्रों की चाँदनी थीं, उनके हाथों में पाश,.अंकुश, इक्षु, धनुष, पाँच बाण सुशोभित थे।।७०-७३।। उन महादेवी को देखकर सभी देवों ने इन्द्र के साथ पूर्ण आनन्दित होकर उन

तया विलोकिताः सद्यस्ते सर्वे विगतज्वराः। संपूर्णांगा दृढतरा वज्रदेहा महाबलाः।
तुष्टुवुश्च महादेवीमंबिकामखिलार्थदाम्॥७५॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ललिताप्रादुर्भावो नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ललितास्तवराजोनाम

त्रयोदशोऽध्यायः

देवा ऊचुः

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे। जय कल्याणनिलये जय कामकलात्मिके॥१॥
जयकारि च वामाक्षि जय कामाक्षि सुन्दरि। जयाखिलसुराराध्ये जय कामेशि मानदे॥२॥
जय ब्रह्ममये देवि ब्रह्मात्मकरसात्मिके। जय नारायणि परे नंदिताशेषविष्टपे॥३॥

संसार की आत्मा रूप देवी को पुनः पुनः प्रणाम किया।।७४।। उस महादेवी के द्वारा देखे जाते हुए वे सभी विगतज्वर हो गये अर्थात् उनके सब दुःख दूर हो गये। उनके सम्पूर्ण अंग दृढ़तर हो गये तथा सबके शरीर वज्र हो गये और सभी महाबलशाली बन गये तब सभी ने उन देवी की स्तुति की।।७५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १२वाँ अध्याय ललिताप्रादुर्भव का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१३

ललिता देवी की स्तुति

इस प्रकार जब उस महायज्ञ से वे महादेवी ललितेश्वरी प्रकट हो गयीं, तब सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे। देवों ने कहा, हे समस्त संसार की माता! तुम्हारी जय हो, हे पर से पर देवि! तुम्हारी जय हो, हे कल्याण सदने! तुम्हारी जय हो, हे कामकला की आत्मारूप तुम्हारी जय हो।।१।। हे जय करने वाली देवि! तुम्हारी जाय हो, हे वामाक्षि! तुम्हारी जय हो, हे कामाक्षि! तुम्हारी जय हो, हे सुन्दरि! हे समस्त देवों द्वारा आराध्य देवि! तुम्हारी जय हो, हे कामेश्वरि! हे मान प्रदान करने वाली तुम्हारी जय हो।।२।। हे ब्रह्ममय देवि! हे ब्रह्मरूप आत्मा वाली, हे रस रूप आत्मा वाली देवि! तुम्हारी जय हो, हे नारायणि! तुम्हारी जय हो, हे परादेवि! हे नन्दिताशेषविष्टपे! तुम्हारी जय हो।।३।। हे श्रीकण्ठ दयिते! तुम्हारी

जय श्रीकंठदयिते जय श्रीललितेंबिके। जय श्रीविजये देवि विजय श्रीसमृद्धिदे॥४॥
जातस्य जायमानस्य इष्टापूर्तस्य हेतवे। नमस्तस्यै त्रिजगतां पालयित्र्यै परात्परे॥५॥
कलामुहूर्तकाष्ठाहर्मासर्तुशरदात्मने। नमः सहस्रशीर्षायै सहस्रमुखलोचने॥६॥
नमः सहस्रहस्ताब्जपादपंकजशोभिते। अमोरणुतरे देवि महतोऽपि महीयसि॥७॥
परात्परतरे मातस्तेजस्तेजीयसामपि। अतलं तु भवेत्पादौ वितलं जानुनी तव॥८॥
रसातलं कटीदेशः कुक्षिस्ते धरणी भवेत्। हृदयं तु भुवर्लोकः स्वस्ते मुखमुदाहृतम्॥९॥
दृशश्चंद्रार्कदहना दिशस्ते बाहवोऽम्बिके। मरुतस्तु तवोच्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोऽखिला॥१०॥

क्रीडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयः शिवः।
आहारस्ते सदानंदो वासस्ते हृदये सताम्॥११॥
दृश्यादृश्य स्वरूपाणि रूपाणि भुवनानि ते।
शिरोरुहा घनास्ते तु तारकाः कुसुमानि ते॥१२॥

धर्माद्या बाहवस्ते स्युरधर्माद्यायुधानि ते। यमाश्च नियमाश्चैव करपादरुहास्तथा॥१३॥

स्तनौ स्वाहास्वधाकारौ लोकोज्जीवनकारकौ।
प्राणायामस्तु ते नासा रसना ते सरस्वती॥१४॥

प्रत्याहारस्त्विंद्रियाणि ध्यानं ते धीस्तु सत्तमा। मनस्ते धारणाशक्तिर्हृदयं ते समाधिकः॥१५॥

जय हो। हे माँ ललितेश्वरी तुम्हारी जय हो, हे श्री विजये देवी! तुम्हारी जय हो, हे विजयश्री और समृद्धि प्रदान करने वाली देवी! तुम्हारी जय हो।।४।। हे जिनका जन्म हो चुका है, उनकी तथा जो जन्म लेने वाले हैं, उनकी तथा इष्ट की आपूर्ति की कारणरूप माँ तुम्हें नमस्कार है तथा हे पर से परे माँ! तुम्हें नमस्कार है।।५।। जितने भी समय हैं कला, मुहूर्त, काष्ठा, दिन, मास ऋतु शरदादि रूप, सहस्रशीर्ष और सहस्रमुख और नेत्रों वाली माँ, तुम्हें नमस्कार है।।६।। हे सहस्र करकमल और सहस्र चरणकमलों से सुशोभित माँ, तुम्हें नमस्कार है तथा हे अणु से अणु (सूक्ष्म रूप) एवं महानों से महान् माँ, तुम्हें नमस्कार है।।७।। हे पर से भी पर तथा तेजों में भी तेज स्वरूप माँ, तुम्हें नमस्कार है।।७½।। हे माँ सातों लोक तुम्हारे शरीर रूप हैं। तुम्हारे पैरों में अतल है, तुम्हारी जंघायें वितल हैं, तुम्हारे कटिदेश रसातल हैं तथा धरणी (पृथ्वी) तुम्हारी कुक्षि है। हृदय तुम्हारा भुवर्लोक है, तुम्हारा मुख स्वर्गलोक है। इस प्रकार सातों लोक तुम्हारे शरीर में विद्यमान हैं।।७½-९।। सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे दोनों नेत्र हैं तथा हे अम्बिके! दिशा तुम्हारी भुजाएँ हैं, वायु तुम्हारी श्वास है, समस्त वेद तुम्हारी वाणियां हैं। संसार की रचना तुम्हारी क्रीडा है अर्थात् इस संसार की रचना तो तुम्हारा खेल है। चित् स्वरूप (आत्म तत्त्व) शिव तुम्हारे मित्र हैं, सदानन्द तुम्हारा आहार है तथा सज्जनों के हृदय में तुम्हारा वासस्थान है।।१०-११।। दृश्य और अदृश्य स्वरूप रूप तुम्हारे भुवन हैं, अर्थात् चौदहों भुवन तुम्हारे दृश्य और अदृश्य स्वरूप रूप, तुम्हारे भुवन हैं, बादल (घन) तुम्हारे शिर के केश हैं तथा तारे तुम्हारे शिर के केशों में लगे हुए पुष्प हैं।।१२।। धर्म आदि तुम्हारी भुजायें हैं और अधर्मादि तुम्हारे अस्त्र हैं। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वप्रणिधान) तुम्हारे हाथ और पैरों के नाखून हैं।।१३।। स्वाहा और स्वधा तुम्हारे दोनों स्तन हैं तथा लोकों को उज्जीवित करने वाले तुम्हारे दोनों हाथ हैं। प्राणायाम तुम्हारी नासिका है तथा सरस्वती तुम्हारी जिह्वा है।।१४।। प्रत्याहार तुम्हारी इन्द्रियां हैं, ध्यान तुम्हारी बुद्धि है, धारणाशक्ति तुम्हारा मन है तथा योग का आठवां अंग समाधि तुम्हारा हृदय है।।१५।।

महीरुहास्तेंगरुहाः प्रभातं वसनं तव। भूत भव्यं भविष्यच्च नित्यं च तव विग्रहः॥१६॥
यज्ञरूपा जगद्धात्री विश्वरूपा च पावनी। आदौ या तु दयाभूता ससर्ज निखिलाः प्रजाः॥१७॥
हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका॥१८॥
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया। तान्यधिष्ठाय तिष्ठन्त तेष्वसक्तार्थकामदा।
नमस्तस्यै महादेव्यै सर्वशक्त्यै नमोनमः॥१९॥
यदाज्ञया प्रवर्तंते वह्निसूर्येंदुमारुताः। पृथिव्यादीनि भूतानि तस्यै देव्यै नमोनमः॥२०॥
या ससर्जादिधातारं सर्गादावादिभूरिदम्। दधार स्वयमेवैका तस्यै देव्यै नमोनमः॥२१॥
यथा धृता तु धरिणी ययाकाशममेयया। यस्मामुदेति सविता तस्मै देव्यै नमोनमः॥२२॥
यत्रोदेति जगत्कृस्नं यत्र तिष्ठति निर्भरम्। यत्रांतमेति काले तु तस्यै देव्यै नमोनमः॥२३॥
नमोनमस्ते रजसे भवायै नमोनमः सात्त्विकसंस्थितायै।
नमोनमस्ते तमसे हरायै नमोनमो निर्गुणतः शिवायै॥२४॥
नमोनमस्ते जगदेकमात्रे नमोनमस्ते जगदेकपित्रे।

वृक्ष तुम्हारे शरीर के रोम हैं, प्रभात तुम्हारा वस्त्र है, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल तीनों काल रूप नित्यस्वरूप तुम्हारा शरीर है।।१६।। हे मां! तुम संसार को धारण करने वाली यज्ञरूप हो, तुम्ही विश्वरूपा पावनी हो। आदिकाल में दयाभूत होकर तुमने ही समस्त प्रजा की रचना की थी।।१७।। तुम हृदय में स्थित हो, फिर भी लोगों को दिखाई नहीं देती तथा लोगों को मोहित कर देती हो।।१८।। उन महाशक्ति मां का कोई नाम, रूप का विभाग नहीं है, फिर भी उनकी अपनी लीला अर्थात् उनके कार्यों के अनुसार नाम रूप और विभाग किया जाता है। जैसे कि वह सृष्टि की रचना करती हैं; इसलिए ब्राह्मी कही जाती हैं, बहुत ही सुन्दर हैं, इसलिए लक्ष्मी श्री तथा प्रलय में भयंकर रूप धारण करती है, इसलिये चण्डी कही जाती हैं। उसका कोई नाम रूप विभाग नहीं है, वे सब कार्यरूप हैं, फिर भी उन्हीं में वह अधिष्ठित हैं, उनको अधिष्ठान बना करके वे स्थित हैं; परन्तु अर्थ और काम प्रदान करने वाले, वे उन नामों में सक्त नहीं हैं। अतः उन शक्तिस्वरूप महादेवी के लिये नमस्कार है।।१९।। जिन देवी की आज्ञा से अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और वायु पृथिवी आदि भूततत्त्व अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं।।२०।। जिन्होंने सृष्टि आदि संसार को धारण करने वाले ब्रह्मा को उत्पन्न किया और इस भूलोक को पैदा किया तथा जिन्होंने स्वयं ही अकेले इस संसार को धारण किया, उन देवी को नमस्कार है।।२१।। जिस प्रकार जिन देवी ने पृथ्वी को धारण किया था, उसी प्रकार आकाश को भी धारण किया है, जिस देवी में ही सूर्य उदित होते हैं, उन देवी को नमस्कार है।।२२।। जहाँ जिस देवी में समस्त संसार उत्पन्न होता है तथा फिर जिस पर निर्भर रहता है तथा समय आने पर वे ही इस संसार का अन्त कर देती हैं, उन देवी को नमस्कार है।।२३।। हे रजोगुणरूपभवा तुमको नमस्कार है। हे सात्त्विक संस्था रूप तुमको नमस्कार है तथा तमोगुण हररूप तुमको नमस्कार है। हे निर्गुण रूप से शिवा तुमको नमस्कार है।।२४।।

विशेष—यहाँ वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है कि रजस् आज के विज्ञान के अनुसार इलेक्ट्रॉन है; क्योंकि पदार्थ में रजस् का कार्य प्रवृत्त करना है। प्रोट्रान सत्त्व गुण जो पदार्थ को स्थिर रखता है तथा न्यूट्रॉन (तमस्) तत्त्व है जो भार स्वरूप है। रजोगुण इलेक्ट्रॉन का कार्य पदार्थ का निर्माण करना है, सत्त्वगुण प्रोटॉन का कार्य उसे स्थिर रखना है। अत: सत्त्व प्रोटॉन और रजस् इलेक्ट्रॉन दोनों ही समान स्थितियां पदार्थ को स्थिर रखती है। अतः यह वैज्ञानिक विचार प्रस्तुत किया गया है कि रजोगुण भवरूप उत्पन्न करने वाला रूप है, सत्त्वगुण संस्था अर्थात् सृष्टि को स्थित रखने वाला रूप है तथा तमोगुण हर नाश करने वाला रूप है।

नमोनमस्तेऽखिलरूपतंत्र नमोनमस्तेऽखिलयन्त्ररूपे॥२५॥
नमोनमो लोकगुरुप्रधाने नमोनमस्तेऽखिलवाग्विभूत्यै।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै जगदेकतुष्ट्यै नमोनमः शांभवि सर्वशक्त्यै॥२६॥
अनादिमध्यांतमपाञ्चभौतिकं ह्यवाङ्मनोगम्यमतर्क्यवैभवम्।
अरूपमद्वंद्वमदृष्टिगोचरं प्रभावमग्र्यं कथमेव वर्णये॥२७॥
प्रसीद विश्वेश्वरि विश्ववंदिते प्रसीद विद्येश्वरि वेदरूपिणी।
प्रसीद मायामयि मंत्रविग्रहे प्रसीद सर्वेश्वरि सर्वरूपिणी॥२८॥
इति स्तुत्वा महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः। भूयोभूयो नमस्कृत्य शरणं जग्मुरञ्जसा॥२९॥
ततः प्रसन्ना सा देवी प्रणतं वीक्ष्य वासवम्। वरेण च्छन्दयामास वरदाखिलदेहिनाम्॥३०॥

इन्द्र उवाच

यदि तुष्टासि कल्याणि वरं दैत्येंद्रपीडितः। दुर्धरं जीवितं देहि त्वां गताः शरणार्थिनः॥३१॥

श्रीदेव्युवाच

अहमेव विनिर्जित्य भंड दैत्यकुलोद्भवम्। अचिरात्तव दास्यामि त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३२॥

हे संसार की एक मात्र माता आपको नमस्कार है। हे संसार की एक मात्र पिता आपको नमस्कार है। माता का अर्थ बनाने वाली तथा पिता का अर्थ होता है—पालन करने वाला। अतः दोनों ही आप हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि वह आदिशक्ति में कोई लिङ्गभेद नहीं, वह शक्ति स्त्रीलिंग पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग तीनों हैं तथा समस्त तन्त्ररूप तथा यन्त्ररूपमां तुमको नमस्कार है।।२५।। हे प्रधानलोकगुरु तुम्हें नमस्कार है। हे अखिलवाणी की विभूति! आपको प्रणाम है। हे लक्ष्मी तुम्हें नमस्कार है। हे संसार की एक तुष्टिरूप! तुम्हें नमस्कार है।।२६।। हे मां! मैं तुम्हारे आदि मध्य और अन्तरहित, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँचों तत्त्वों से रहित शरीर वाले, वाणी मन और इन्द्रियों द्वारा न जानने योग्य तर्करहित वैभव वाले रूपरहित, द्वन्द्वरहित, न दिखायी देने वाले तथा अग्र प्रभाव वाले रूप को कैसे वर्णन कर सकता हूँ।।२७।। फिर देवों ने कहा हे विश्वेश्वरि! हे विश्ववन्दनीये! प्रसन्न हो जाओ! हे वेदरूप वाली विद्या की देवि! प्रसन्न हो जाओ, हे मायामयि! प्रसन्न हो जाओ, हे मन्त्ररूप शरीर वाली देवि! प्रसन्न हो जाओ, वे सर्वरूप वाली प्रसन्न हो जाओ, हे सर्वेश्वरि! प्रसन्न हो जाओ।।२८।।

इस प्रकार महादेवी की स्तुति करके देवताओं सहित इन्द्र बार-बार नमस्कार कर शीघ्र उनकी शरण में गये।।२९।। उसके बाद वे महादेवी इन्द्र पर प्रसन्न हो गयी और उन इन्द्र को नतमस्तक हुआ देखकर समस्त देहधारियों को वरदेने वाली उन देवी ने इन्द्र को वर मांगने का कहा।।३०।।

इन्द्र बोले! कि हे कल्याण करने वाली देवि! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो मैं दैत्यराज भण्ड से पीड़ित हूँ। अतः आप शरण में आये हुओं को जीवित रहने का वर प्रदान कीजिये।।३१।।

श्री देवी ने कहा कि—मैं शीघ्र दैत्य कुलोत्पन्न भण्डासुर को जीतकर शीघ्र तीनों लोकों का राज्य तुम्हें सौंप दूँगी।।३२।।

निर्भया मुदिताः सन्तु सर्वे देवगणास्तथा।
ये स्तोष्यंति च मां भक्त्या स्तवेनानेन मानवाः॥३३॥
भाजनं ते भविष्यंति धर्मश्रीयसां सदा। विद्याविनयसंपन्ना नीरोगा दीर्घजीविनः॥३४॥
पुत्रमित्रकलत्राढ्या भवन्तु मदनुग्रहात्। इति लब्धवरा देवा देवेन्द्रोऽपि महाबलः॥३५॥
आमोदं परमं जग्मुस्तां विलोक्य मुहुर्मुहुः॥३६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ललितास्तवराजो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

चतुर्दशोऽध्यायः

मदनकामेश्वरप्रादुर्भावोनाम

हयग्रीव उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु ब्रह्मा लोकपितामहः। आजगामाथ देवेशीं द्रष्टुकामो महर्षिभिः॥१॥

उसके बाद सभी देवता निडर और प्रसन्न होवें।।३२½।। इसके बाद देवी ने कहा कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस उपर्युक्त स्तोत्र से मेरी स्तुति करेंगे। वे सदैव लक्ष्मी (धनदौलत) और यश के भागी होंगे।।३२½-३३½।। तथा वे सब विद्या और विनय से सम्पन्न नीरोग तथा दीर्घकाल तक आयु वाले होंगे।।३३½-३४½।। इस प्रकार वर प्राप्त कर देवता लोग तथा महाबली देवराज इन्द्र भी उन देवी को बार बार देखकर परम आमोद (आनन्द) को प्राप्त हुए।।३४½-३६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १३वाँ अध्याय ललिता देवी की स्तुति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१४

मदनकामेश्वर प्रादुर्भाव

भगवान् हयग्रीव ने अगस्त्य मुनि से कहा जैसे ही उन देवी ने देवों को वरदान दिया तथा वे देवता इन्द्रसहित परमप्रसन्न हुए। इसी समय लोक पितामह ब्रह्मा जी उन देवी को देखने की इच्छा से महर्षियों के साथ आये।।१।।

आजगाम ततो विष्णुरारूढो विनतासुतम्। शिवोऽपि वृषमारूढः समायातोऽखिलेश्वरीम्॥२॥
देवर्षयो नारदाद्याः समाजग्मुर्महेश्वरीम्। आययुस्तां महादेवीं सर्वे चाप्सरसां गणाः॥३॥
विश्वावसुप्रभृतयो गंधर्वाश्चैव यक्षकाः। ब्रह्मणाथ समादिष्टो विश्वकर्मा विशां पतिः॥४॥
चकार नगरं दिव्यं यथामरपुरं तथा। ततो भगवती दुर्गा सर्वमंत्राधिदेवता॥५॥
विद्याधिदेवता श्यामा समाजग्मतुरंबिकाम्। ब्राह्म्याद्या मातरश्चैव स्वस्वभूतगणावृताः॥६॥

सिद्धयो ह्यणिमाद्याश्च योगिन्यश्चैव कोटिशः।
'भैरवाः क्षेत्रपालाश्च महाशास्ता गणाग्रणीः॥७॥

महागणेश्वरः स्कंदो बटुको वीरभद्रकः। आगत्य ते महादेवीं तुष्टुवुः प्रणतास्तदा॥८॥
तत्राथ नगरीं रम्यां साट्टप्राकारतोरणाम्। गजाश्वरथशालाढ्यां राजवीथिविराजिताम्॥९॥
सामंतानाममात्यानां सैनिकानां द्विजन्मनाम्। वेतालदासदासीनां गृहाणि रुचिरानि च॥१०॥
मध्यं राजगृहं दिव्यं द्वारगोपुरभूषितम्। शालाभिर्बहुभिर्युक्तं सभाभिरुपशोभितम्॥११॥
सिंहासनसभां चैव नवरत्नमयीं शुभाम्। मध्ये सिंहासनं दिव्यं चिंतामणिविनिर्मितम्॥१२॥
स्वयंप्रकाशमद्वंद्वमुदयादित्यसंनिभम्। विलोक्य चिंतयामास ब्रह्मा लोकपितामहः॥१३॥
यस्त्वेतत्समधिष्ठाय वर्तते बालिशोऽपि वा। पुरस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकाधिको भवेत्॥१४॥
न केवला स्त्री राज्यार्हा पुरुषोऽपि तया विना। मंगलाचार्यसंयुक्तं महापुरुषलक्षणम्।

उसके बाद भगवान् विष्णु विनातसुत गरुड़ पर सवार होकर आ गये। भगवान् शिव भी बूढ़े बैल पर सवार होकर आ गये।।२।। देवेश्वर नारद आदि उन महेश्वरी को देखने को आये तथा सभी अप्सराओं के समूह वहाँ आये।।३।। विश्वावसु आदि गन्धर्व और यक्षगण भी आये तथा ब्रह्मा के साथ प्रजापति विश्वकर्मा भी आये।।४।। उन विश्वकर्मा ने अमरपुर के समान दिव्य नगर बना दिया। तब मन्त्रों की देवी भगवती दुर्गा भी उनको देखने आयीं।।५।। विद्या देवी श्यामा उन अम्बिका को देखने आयीं। ब्राह्मी आदि मातायें अपने अपने गणों से आवृत उन देवी को देखने आयीं।।६।। अणिमा आदि आठ सिद्धियां और करोड़ों योगिनियां, भैरव क्षेत्रपाल, गणों के अग्रणी महाशिक्षक महागणेश्वर, कार्तिकेय, वीरभद्र बटुक आदि सबने वहाँ आकर महादेवी को प्रसन्न किया और प्रणाम किया।।७-८।। उसके बाद वहाँ अट्टालिकाओं सेयुक्त चहारदीवार से घिरी हुई दिव्य नगरी थी, जिसमें हाथी अश्व और रथों की शालायें बनी हुई थी तथा अनेकों राजमार्गों से सुशोभित थीं।।९।। उस नगरी में सामन्तों, अमात्यगणों, सैनिकों और ब्राह्मणों, वेताल दास और दासियों के सुन्दर सुन्दर घर थे।।१०।। उस नगर के मध्य में द्वार और गोपुर से सुशोभित दिव्य राजगृह था। उस राजगृह में अनेकों शालाओं वाले सभा भवनों से सुशोभित था।।११।।

वहाँ शुभरत्नमय एक शुभ सिंहासन सभा थी, उस सिंहासन सभा के मध्य एक दिव्य चिन्तामणि से निर्मित सिंहासन था, जो सिंहासन सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित हो रहा था तथा वह ऐसा था कि उनकी कहीं उपमा नहीं थी।।१२-१२½।। उस सिंहासन को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा चिन्ता करने लगे कि जो यहाँ मूर्ख भी इस पर अधिष्ठित होकर इस नगर के प्रभाव से सब लोकों का स्वामी हो जायेगा। केवल स्त्री पुरुष के विना राज्य के योग्य नहीं हो सकती तथा पुरुष भी उसके विना राज्याधिकारी नहीं होना चाहिये।।१२½-१४½।। शास्त्रों के अनुसार

अनुकूलांगनायुक्तमभिषिंचेदिति श्रुतिः॥१५॥

विभातीयं वरारोहा मूर्ता श्रृंगारदेवता। वरोऽस्यास्त्रिषु लोकेषु न चान्यः शंकरादृते॥१६॥

जटिलो मुंडधारी च विरूपाक्षः कपालभृत।

कल्माषी भस्मदिग्धांगः श्मशानास्थिविभूषणः॥१७॥

अंगलास्पदं चैनं वरयेत्सा सुमंगला। इति चिंतयमानस्य ब्रह्मणोऽग्रे महेश्वरः॥१८॥

कोटिकंदर्पलावण्ययुक्तो दिव्य शरीरवान्। दिव्यांबरधरः स्त्रग्वी दिव्यगंधानुलेपनः॥१९॥

किरीटहारकेयूरकुण्डलाद्यैरलंकृतः। प्रादुर्बभूव पुरतो जगन्मोहन रूपधृक्॥२०॥

तं कुमारमथालिंग्य ब्रह्मा लोकपितामहः। चक्रे कामेश्वरं नाम्ना कमनीयवपुर्धरम्॥२१॥

तस्यास्तु परमाशक्तेरनुरूपो वरस्त्वयम्। इति निश्चित्य तेनैव सहितास्तामथाययुः॥२२॥

अस्तुवंस्ते परां शक्तिं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीं कुमारो नीललोहितः।

अभवन्मन्मथाविष्टो विस्मृत्य सकलाः क्रियाः॥२३॥

सापि तं वीक्ष्य तन्वंगो मूर्तिमंतमिव स्मरम्। मदनाविष्टसर्वांगी स्वात्मरूपममन्यत।

अन्योन्यालोकनासक्तौ तावुभौ मदनातुरौ॥२४॥

सर्वभावविशेषज्ञौ धृतिमंतौ मनस्विनौ। परैरज्ञातचारित्रौ मुहूर्तास्वस्थचेतनौ॥२५॥

मंगलाचार से संयुक्त महापुरुष के लक्षणों वाले तथा अनुकूल स्त्री वाले पुरुष का ही अभिषेक होना चाहिये।।१५।। यह विवाह के योग्य साक्षात् शृङ्गार की मूर्ति सुशोभित हो रही है। शंकर के अलावा तीनों लोकों में इसके अनुरूप कोई वर नहीं है।।१६।। वे जटाओं वाले, गले में नरमुण्डों की माला धारण करने वाले, विरूपाक्ष (तीन आँखों वाले) कपालधारी, कल्माषी, शरीर पर श्मशान की भस्म लगाने वाले, श्मशान की हड्डियों की माला का आभूषण धारण करने वाले हैं।।१७।। वह सुमंगला उन अमंगल के चिह्नों से युक्त शंकर का वरण करे, यह कैसे सम्भव है? ब्रह्मा जी इस प्रकार सोच ही रहे थे कि महेश्वर (भगवान् शंकर) ब्रह्मा के आगे ही करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता से युक्त शरीरवाले हो गये। वे दिव्य वस्त्र पहने हुए थे, माला धारण किये हुए थे, उनके शरीर पर दिव्य गन्ध का लेप लगा हुआ था तथा किसी हार केयूर कुण्डलादि से अलंकृत वे भगवान् शंकर संसार को मोहित करने वाला रूप धारण कर प्रकट हो गये।।१८-२०।।

इसके बाद उन कुमार का आलिङ्गन कर लोकपितामह ब्रह्मा जी ने उन कमनीय शरीर धारण करने वाले कुमार का कामेश्वर नाम रख दिया।।२१।। और फिर ब्रह्मा जी ने सोचा कि उस महादेवी का अनुरूप वर तो यह कुमार कामेश्वर ही है। ऐसा निश्चित करके उनके ही साथ उन महादेवी को कर दिया।।२२½।। इसकेबाद उस मृगशावक के समान नेत्रों वाली देवी को देखकर कुमार नीललोहित सब क्रियाओं को भूलकर कामाविष्ट हो गये।।२३।। वे भगवान् नील लोहित इस प्रकार लग रहे थे, मानो कि कामदेव ही साक्षात् शरीर धारण कर उपस्थित हो गये हों। अतः उनको देखकर उन महादेवी का अंग अंग कामाविष्ट हो गया तथा उन्होंने अपने रूप को कामाविष्ट समझ लिया। इस प्रकार वे दोनों एक-दूसरे को देखकर कामातुर हो गये।।२४।। समस्त भावों को जानने वाले धैर्यशाली मनस्वी, एक दूसरे का चरित्र न जानने वाले मुहूर्त भर के लिये अस्वस्थ चेतना हो गये। अर्थात् थोड़ी देर

अथोवाच महादेवीं ब्रह्मा लोकैकनायिकाम्। इमे देवाश्च ऋषयो गंधर्वाप्सरसां गणाः।
त्वामीशां द्रष्टुमिच्छन्ति सप्रियां परमाहवे॥२६॥
को वानुरूपस्ते देवि प्रियो धन्यतमः पुमान्। लोकसंरक्षणार्थाय भजस्व पुरुषं परम्॥२७॥
राज्ञी भव पुरस्यास्य स्थिता भव वरासने। अभिषिक्तां महाभागैर्देवार्षेभिरकल्मषैः॥२८॥
साम्राज्यचिह्नसंयुक्तां सर्वाभरणसंयुताम्। सप्रियामासनगतां द्रष्टुमिच्छामहे वयम्॥२९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मदनकामेश्वरप्रादुर्भावो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

के लिए कामावेग के कारण वे दोनों चेतनाहीन हो गये।।२५।। इसके बाद प्राजापति ब्रह्मा लोकों की एक मात्र नायिका उन महादेवी से बोले कि ये सभी देवता, ऋषिलोग, गन्धर्व और अप्सराओं के गण आपको और इन कुमार को इस परमयज्ञ में प्रिया सहित देखना चाहते हैं।।२६।। हे महादेवी! तुम्हारे अनुरूप इस संसार में प्रिय और धन्यतम कौंन पुरुष हैं। इसलिए संसार के संरक्षण के लिये आप इस परमपुरुष कुमार को स्वीकार कीजिये।।२७।। अतः हे देवि! आपने सामने स्थित इस पुरुष की तुम रानी हो जाओ और इस श्रेष्ठ आसन पर बैठो। हम सब महाभाग निष्पाप देवर्षियों द्वारा अभिषिक्त आपको साम्राज्यचिह्न से संयुक्त सभी आभूषणों से युक्त अपने प्रिय सहित सिंहासन पर गयी हुई देखना चाहते हैं।।२८-२९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १४वाँ अध्याय मदनकामेश्वरप्रादुर्भावोनाम का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

वैवाहिकोत्सवनाम

पञ्चदशोऽध्यायः

तच्छ्रुत्वा वचनं देवी मंदस्मितमुखांबुजा। उवाच स ततो वाक्यं ब्रह्मविष्णुमुखान्सुरान्॥१॥
स्वतंत्राहं सदा देवाः स्वेच्छाचारविहारिणी। ममानुरूपचरितो भविता तु मम प्रियः॥२॥
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य सर्वैर्देवैः पितामहः। उवाच च महादेवीं धर्मार्थसहितं वचः॥३॥
कालक्रीता क्रयक्रीता पितृदत्ता स्वयंयुता। नारीपुरुषयोरेवमुद्वाहस्तु चतुर्विधः॥४॥
कालक्रीता तु वेश्या स्यात्क्रयक्रीता तु दासिका।
गंधर्वोद्वाहिता युक्ता भार्या स्यात्पितृदत्तका॥५॥
समानधर्मिणी युक्ता भार्या पितृवसंवदा। यदद्वैतं परं ब्रह्म सदसद्भाववर्जितम्॥६॥
चिदानन्दात्मकं तस्मात्प्रकृतिः समजायत। त्वमेवासीच्च तद्ब्रह्म प्रकृतिः सा त्वमेव हि॥७॥
त्वमेवानादिरखिला कार्यकारणरूपिणी। त्वामेव हि विचिन्वंति योगिनः सनकादयः॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१५

महादेवी शंकर विवाहोत्सव वर्णन

जब ब्रह्मा जी ने उन महादेवी से कहा कि हम सब देवता आदि आपको नीललोहित भगवान् शंकर के साथ विवाहित देखना चाहते हैं, तब इस वाक्य को सुनकर मन्द मुस्कान युक्त कमलमुख वाली देवी ने ब्रह्मा विष्णु आदि प्रमुख देवताओं से कहा।।१।। कि हे देवो! मैं सदा स्वतन्त्र हूँ और अपनी इच्छा से आचरण करने वाली तथा विहार करने वाली हूँ। इसलिए मेरे अनुकूल आचरण करने वाला ही मेरा प्रिय होगा।।२।। उसके बाद सब देवताओं ने कहा कि वैसा ही होगा। तब पितामह ब्रह्मा महादेवी से धर्म और अर्थ वचन बोले।।३।। कि हे महादेवि! नारी और पुरुष में चार प्रकार के विवाह होते हैं—१. कालक्रीता, २. क्रयकीता, ३. पितृदत्ता और ४. स्वयंयुता। जिस माध्यम से पुरुष नारी से विवाह करता है, उसी प्रकार चार प्रकार की विवाहिता नारियां होती हैं। इन कालक्रीता नारी वेश्या होती हैं, जिसको किसी भी समय आवश्यकतानुसार पत्नी बनाया जा सकता है। क्रतक्रीता तो दासी होती है; क्योंकि पैसे से खरीदी हुई होती है। गन्धर्व विवाह से युक्त अर्थात् प्रेम विवाह से विवाहित पितृदत्ता होती है; क्योंकि प्रेम होने केबाद वह पिता द्वारा वर को प्रदान की जाती है।।५।।

पिता के वश में रहने वाली पुत्री जो अपने समान धर्म वाले वर का चयन करती है, वह स्वयंयुता होती है, जो अद्वैत परम् ब्रह्म है तथा सत् और असद् भाव से रहित है तथा उस ब्रह्मा से चिदानन्दात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई है तथा हे देवी! तुम वह ब्रह्म थी और तुम ही वह प्रकृति हो।।६-७।। तुम ही अनादि और अखिलरूप वाली हो! तुम्हीं कारण और कार्य रूप हो अर्थात् तुम ही संसार का मूल कारण (प्रकृति) हो और तुम ही कार्यरूप संसार हो। तुम्हारा

सदसत्कर्मरूपाँ च व्यक्ताव्यक्तो दयात्मिकाम्। त्वामेव हि प्रशंसंति पञ्चब्रह्मस्वरूपिणीम्॥९॥
त्वमेव हि सृजस्यादौ त्वमेव ह्यवसि क्षणात्। भजस्व पुरुषं कंचिल्लोकानुग्रहकाम्यया॥१०॥
इति विज्ञापिता देवी ब्रह्मणा सकलैः सुरैः। स्त्रजमुद्यम्य हस्तेन चिक्षेप गगनांतरे॥११॥
तयोत्सृष्टा हि सा माला शोभयंती नभस्थलम्।
पपात कण्ठदेशे हि तदा कामेश्वरस्य तु॥१२॥
ततो मुमुदिरे देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः। ववृषुः पुष्पवर्षाणि मंदवातेरिता घनाः॥१३॥
अथोवाच विधाता तु भगवंतं जनार्दनम्। कर्तव्यो विधिनोद्वाहस्त्वनयोः शिवयोर्हरे॥१४॥
मुहूर्तो देवसम्प्राप्तो जगन्मंगलकारकः। त्वद्रूपा हि महादेवी सहजश्च भवानपि॥१५॥
दातुमर्हसि कल्याणीमस्मै कामशिवाय तु। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्त्रिविक्रम;॥१६॥
ददौ तस्यै विधानेन प्रीत्या तां शङ्कराय तु। देवर्षिपितृमुख्यानां सर्वेषां देवयोगिनाम्॥१७॥
कल्याणं कारयामास शिवयोरादिकेशवः। उपायनानि प्रददुः सर्वे ब्रह्मादयः सुराः॥१८॥
ददौ ब्रह्मेक्षुचापं तु वज्रसारमनश्वरम्। तयोः पुष्पायुधं प्रादादम्लानं हरिरव्ययम्॥१९॥

ही सनक आदि योगी लोग विशेष चिन्तन करते हैं।।८।। और सत् असत् कर्म रूपवाली व्यक्त और अव्यक्त दोनों स्वरूपों वाली, सृष्टि रचना की दया करने वाली, पञ्चब्रह्मस्वरूप वाली, तुम्हारी ही सनकादि ऋषिगण प्रशंसा करते हैं।।९।। तुम ही आदिकाल में सृष्टि की रचना करती हो और तुम ही क्षण भर में नष्ट कर देती हो। अतः हे देवि! तुम लोक पर कृपा करनी की इच्छा से (सृष्टि रचना करने की इच्छा) से किसी पुरुष की सेवा करो अर्थात् किसी पुरुष का साथ लो; क्योंकि अकेली प्रकृति तो सृष्टि रचना नहीं कर सकती। अतः पुरुष (चेतन तत्त्व) जीव के संयोग से ही प्रकृति रचना कर सकती है।।१०।। इस प्रकार समस्त देवताओं और ब्रह्मा जी के अनुरोध किये जाने पर उन देवी ने हाथ से माला को उठाकर आकाश में फेंक दिया।।११।।

तब उन महादेवी द्वारा फेंकी गयी वह माला आकाशतल को सुशोभित करती हुई भगवान् कामेश्वर शिव के गले में गिर गयी।।१२।। उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवगण अत्यन्त आनन्दित हो गये। पुष्पों की वर्षा होने लगी। मन्द वायु से प्रेरित बादल छा गये।।१३।। इसके बाद विधाता ब्रह्मा ने भगवान् जनार्दन हरि से कहा कि अब विधिपूर्वक इन दोनों शिव-शिवा का विवाह कर देना चाहिये। संसार में मंगल करने वाला मुहूर्त भी प्राप्त हो चुका है। ये महादेवी तुम्हारे (शंकर) के ही रूपवाली हैं और वे भी सहज अर्थात् स्वभावतः समान ही हैं।।१४-१५।। आप इन कल्याणी देवी को इन कामरूप शिव के लिये प्रदान कर सकते हैं अर्थात् इनका विवाह शिव के साथ कर सकते हैं।।१५-१५½।।

ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर देवों के देव भगवान् विष्णु ने विधानपूर्वक उन महादेवी का विवाह शंकर जी के साथ कर दिया।।१५½-१६½।। फिर उसके बाद मुख्य देवर्षियों और पितरों के साथ देवों और योगियों का शिव और शिवा का आदिकेशव भगवान् विष्णु ने कल्याण कर दिया।।१६½-१७½।। उसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवों ने उपहार दिये, तब ब्रह्मा जी ने इक्षु और चाप उनको प्रदान किया तथा उन दोनों को भगवान् विष्णु ने कभी न मुरझाने वाला (कभी भी अपना प्रभाव न छोड़ने वाला) पुष्पों का अस्त्र प्रदान किया।।१७½-१९।।

नागपाशं ददौ ताभ्यां वरुणो यादसांपतिः।
अङ्कुशं च ददौ ताभ्यां विश्वकर्मा विशांपतिः॥२०॥
किरीटमग्निः प्रायच्छत्ताटंकौ चन्द्रभास्करौ। नवरत्नमयीं भूषां प्रादाद्रत्नाकरः स्वयम्॥२१॥
ददौ सुराणामधिपो मधुपात्रमथाक्षयम्। चिन्तामणिमयीं मालां कुबेरः प्रददौ तदा॥२२॥
साम्राज्यसूचकं छत्रं ददौ लक्ष्मीपतिः स्वयम्। गङ्गा च यमुना ताभ्यां चामरे चन्द्रभास्वरे॥२३॥
अष्टौ च वसवो रुद्रा आदित्याश्चाश्विनौ तथा।
दिक्पाला मरुतः साध्या गन्धर्वाः प्रमथेश्वराः।
स्वानिस्वान्यायुधान्यस्यै प्रददुः परितोषिताः॥२४॥
रथांश्च तुरगान्नागान्महावेगान्महाबलान्। उष्ट्रानरोगानश्वांस्तान्क्षुत्तृष्णापरिवर्जितान्।
ददुर्वज्रोपमाकारान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥२५॥
अथाभिषेकमातेनुः साम्राज्ये शिवयोः शिवम्।
अथाकरोद्विमानं च नाम्ना तु कुसुमाकरम्॥२६॥
विधाताम्लानमालं वै नित्यं चाभेद्यमायुधैः। दिवि भुव्यंतरिक्षे च कामगं सुसमृद्धिमत्॥२७॥
यद्गंधघ्राणमात्रेण भ्रांतिरोगक्षुधार्तयः। तत्क्षणादेव नश्यंति मनोह्लादकरं शुभम्॥२८॥
तद्विमानमथारोप्य तावुभौ दिव्यदंपती। चामरव्यजनच्छत्रध्वजयष्टिमनोहरम्॥२९॥
वीणावेणुमृदंगादिविविधैस्तौर्यवादनैः। सेव्यमाना सुरगणैर्निर्गत्य नृपमंदिरात्॥३०॥

जलों के देवता वरुण ने उन दोनों को नागपाश प्रदान किया। प्रजापति विश्वकर्मा ने अङ्कुश प्रदान किया।।२०।। अग्नि देवता ने मुकुट तथा चन्द्रमा और सूर्य ने कान की बालियां प्रदान कीं। रत्नों के भण्डार समुद्र ने उनको रत्नमय आभूषण प्रदान किया।।२१।। तब देवाधिपत इन्द्र ने अक्षय मधुपात्र दिया और कुबेर ने चिन्तामणि मय माला प्रदान की।।२२।। साम्राज्यसूचक छत्र स्वयं लक्ष्मीपतिविष्णु ने प्रदान किया तथा गंगा और यमुना ने उन दोनों को चन्द्रमा के समान चमकते हुए दो चामर प्रदान किये।।२३।। आठ वसु (आठ सम्पत्तियां) रुद्र आदित्य तथा अश्विनी कुमारों ने प्रदान की। दिक्पाल, वायु, साध्य, गन्धर्व, प्रमथेश्वरों ने प्रसन्न होकर अपने अपने अस्त्र प्रदान किये तथा रथ, महावेग वाले और महाबलशाली घोड़े और हाथी, ऊँट, रोगरहित अश्व जो कि भूँख, प्यास से रहित थे तथा वज्र के समान सपरिच्छद आयुधों को प्रदान किया।।२४-२५।।

इसके बाद उन दोनों शिव और शिवा का साम्राज्य पद पर कल्याणमय अभिषेक हुआ तथा उनके विमान का कुसुमाकार नाम रखा गया।।२६।। विधाता ने उनको अस्त्रों से अभेद्य नित्य ही खिली रहने वाली कभी न मुरझाने वाली माला प्रदान की। जो माला स्वर्ग में पृथ्वी पर और अन्तरिक्ष में इच्छानुसार काम करने वाली और सुन्दर समृद्धि वाली थी।।२७।। जिस माला की गन्ध को सूँघने मात्र से भ्रान्तिरोग और क्षुधा से पीड़ित रोग उसी क्षण नष्ट हो जाते थे तथा जो माला मनको शुभ आनन्द प्रदान करती थी।।२८।। इस प्रकार की मालायुक्त विमान पर चढ़कर वे दोनों दिव्यदम्पती चामर द्वारा व्यजन किये जाते हुए छत्र और ध्वजा से बहुत ही मनोहर लग रहे थे।।२९।। वे उस समय

ययौ वीथीं विहारेशा शोभयंती निजौजसा। प्रतिहर्म्याग्रसंस्थाभिरप्सरोभिः सहस्रशः॥३१॥
सलाजाक्षतहस्ताभिः पुरंध्रीभिश्च वर्षिता। गाथाभिर्मंगलार्थाभिर्वीणावेण्वादिनिस्वनैः।
तुष्यंती वीवीथिवीथीषु मंदमंदमथाययौ॥३२॥
प्रतिगृह्याप्सरोभिस्तु कृतं नीराजनाविधिम्। अवरुह्य विमानाग्रात्प्रविवेश महासभाम्॥३३॥
सिंहासनमधिष्ठाय सह देवेन शंभुना। यद्यद्वांछंति तत्रस्था मनसैव महाजनाः।
सर्वज्ञा साक्षिपातेन तत्तत्कामानपूरयत्॥३४॥
तद्दृष्ट्वा चरितं देव्या ब्रह्मा लोकपितामहः।
कामाक्षीति तदाभिख्यां ददौ कामेश्वरीति च॥३५॥
ववर्षाश्चर्यमेघोऽपि पुरे तस्मिंस्तदाज्ञया। महार्हाणि च वस्तूनि दिव्यान्याभरणानि च॥३६॥
चिंतामणिः कल्पवृक्षः कमला कामधेनवः।
प्रतिवेश्म ततस्तस्थुः पुरो देव्या जयाय ते॥३७॥
तां सेवैकरसाकारां विमुक्तान्यक्रियागुणः। सर्वकामार्थसंयुक्ता हृष्यंतः सार्वकालिकम्॥३८॥
पितामहो हरिश्चैव महादेवश्च वासवः। अन्ये दिशामधीशास्तु सकला देवतागणाः॥३९॥
देवर्षयो नारदाद्या; सनकाद्याश्च योगिनः। महर्षयश्च मन्वाद्या वशिष्ठाद्यास्तपोधनाः॥४०॥
गंधर्वाप्सरसो यक्षा याश्चान्या देवजातयः। दिवि भूम्यंतरिक्षेषु ससंबाधं वसंति ये॥४१॥

वीणा वेणु मृदंग आदि अनेकों प्रकार तूर्य बाजे बजाते हुये देवताओं द्वारा सेवा किये जा रहे थे।।३०।। उस समय राजमन्दिर से निकलकर अपने ओज से शोभित होती हुई विहार करने के लिये मार्ग में गयी। जब वे मार्ग में चल रही थीं, उस समय मार्ग में बने हुए प्रत्येक प्रासाद के सामने कुछ देर ठहरती थीं, तो वहाँ उन महलों में स्थित हजारों अप्सराओं द्वारा शोभा प्राप्त कर रही थीं।।३१।। तथा उनके ऊपर पति एवं पुत्रों वाली सुहागिनियों द्वारा खीलों और अक्षतों की वर्षा की जा रही थी तथा वे सुहागिनि स्त्रियां मंगलार्थक गाथाओं वाले गीतों के साथ वीणा वांसुरी आदि बजा रही थीं। इस प्रकार प्रत्येक गली मार्गों में उन्होंने धीरे धीरे गमन किया।।३२।।

उसके बाद अप्सराओं द्वारा दीपक आदि ग्रहण कर उनकी आरती की गयी। तब विमान के आगे वाले भाग से उतरकर उन दोनों ने सभा में प्रवेश किया।।३३।। देवों के साथ सिंहासन पर बैठकर उन शम्भु ने उन सभी सर्वज्ञ महापुरुषों को जो वहाँ पर स्थित थे, उन्होंने मन से भी जो-जो कामना की उस उस कामना को पलक मारने मात्र में पूर्ण कर दिया।।३४।। देवी के उस चमत्कार को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा ने उन्हें कामाक्षी तथा कामेश्वरी नाम प्रदान किये।।३५।। तब उस नगर पर उन महादेवी के आज्ञा से आश्चर्य मेघ ने वेशकीमती वस्तुओं और दिव्य आभूषणों की वर्षा की।।३६।। यही नहीं आश्चर्य मेघ ने चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, कमलों और कामधेनुओं की वर्षा की, तब प्रत्येक घर में इन सबकी स्थिति हो गयी।।३७।। उन देवी की सेवा में अन्य क्रिया गुणों को छोड़कर जिन्होंने ध्यान लगाया, उनकी सभी समयों में सभी इच्छायें पूर्ण हुईं तथा धन-धान्य से सम्पन्न हुए।।३८।। उस नगर में पितामह ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र अन्य दिशाओं के अधीश्वर (दिक्पाल) समस्त देवतागण देवर्षि नारद आदि तथा

ते सर्वे चाप्यसंबाधं निवसंति स्म तत्पुरे॥४२॥
एवं तद्वत्सला देवी नान्यत्रैत्यखिलाज्जनात्। तोषयामास सततमनुरागेण भूयसा॥४३॥
राज्ञो महति भूर्लोके विदुषः सकलेप्सिताम्। राज्ञी दुदोहाभीष्टानि सर्वभूतलवासिनाम्॥४४॥
त्रिलोकैकमहीपाले सांबिके कामशंकरे। दशवर्षसहस्त्राणि ययुः क्षण इवापरः॥४५॥
ततः कदाचिदागत्य नारदो भगवानृषिः। प्रणम्य परमां शक्तिं प्रोवाच विनयान्वितः॥४६॥
पर ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमेश्वरि। सदसद्भावसंकल्पविकल्पकलनात्मिका॥४७॥
जगदभ्युदयार्थाय व्यक्तभावमुपागता। असज्जनविनाशार्था सज्जनाभ्युदयार्थिनी।
प्रवृत्तिस्तव कल्याणि साधूनां रक्षणाय हि॥४८॥
अयं भंडोऽसुरो देवि बाधते जगतां त्रयम्। त्वयैकयैव जेतव्यो न शक्यस्त्वपरैः सुरैः॥४९॥
त्वत्सेवैकपरा देवाश्चिरकालमिहोषिता;। त्वदाज्ञया गमिष्यंति स्वानिस्वानि पुराणि तु॥५०॥
अमंगलानि शून्यानि समृद्धार्थानि संत्वतः। एवं विज्ञापिता देवी नारदेनाखिलेश्वरी।
स्वस्ववासनिवासाय प्रेषयामास चामरान्॥५१॥
ब्रह्माणं च हरिं शंभुं वासवादीन्दिशां पतीन्। यथार्हं पूजयित्वा तु प्रेषयामास चांबिका॥५२॥

सनकादि योगीगण महर्षिगण, मनु आदि वशिष्ठ आदि तपस्वी गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष और अन्य देव जातियां जो स्वर्ग में भूमि पर तथा अन्तरिक्ष में बाधाओं से घिरी हुई रहती थीं, वे सब उस नगर में विना किसी बाधा के रह रही थीं।।३९-४२।। इस सभी लोग यह कहते थे कि इस प्रकार जनता को मातृतुल्य प्रेम करने वाली देवी अन्यत्र कहीं भी नहीं। इस प्रकार लगातर बहुत अधिक अनुराग से सन्तुष्ट किया।।४३।। महान् भूलोक में विद्वान् राजा की जो भी सबकुछ चाहने वाले समस्त भूतलवासियों की जो भी इच्छायें होती हैं, उन सबको उन रानी महादेवी ने प्रजाओं को प्रदान किया।।४४।। तीनों लोकों के एकमात्र राजा के रूप में अम्बिका सहित कामशंकर के रहते हुए एक क्षण से दूसरे क्षण के समान दश हजार वर्ष बीत गये।।४५।। उसके बाद कभी भगवान् नारद ऋषि ने आकर और परमाशक्ति को प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक कहा।।४६।।

हे परमब्रह्म! हे परमधाम! पवित्र परमेश्वरि! हे सद् और असत् भाव वाली तथा संकल्प विकल्प आत्मिके! तुम तो अव्यक्त (निराकार) हो, तुम हो अथवा नहीं हो ऐसा संकल्प और विकल्प नहीं किया जा सकता है; वैसे तुम्हारा कोई आकार नहीं है, तुम किसी भी इन्द्रिय मन बुद्धि आदि द्वारा ज्ञेय नहीं है; परन्तु निर्गुण निराकार रूप आप संसार का कल्याण करने के लिए व्यक्त (साकार) रूप में उपस्थित हुई हों। अतः हे कल्याणि! दुष्टों के विनाश को चाहने वाली तथा सज्जनों की उन्नति चाहने वाली तुम्हारी प्रवृत्ति साधुओं की रक्षा के लिये है।।४७-४८।। हे देवि! यह भण्डासुर नामक दैत्य तीनों लोकों को बाधित कर रहा है। वह दैत्य एक तुम्हारे द्वारा ही जीता जा सकता है अन्य किन्हीं देवताओं द्वारा नहीं जीता जा सकता।।४९।। नारद जी ने कहा कि हे दवि! एकमात्र तुम्हारी सेवा करते हुए ये देवगण बहुत समय तक यहाँ रहते हुए तुम्हारी आज्ञा से अपने-अपने नगर को चले जायेंगे।।५०।। अतः ये देवगण अमंगलशून्य एवं समृद्ध होवें। इस प्रकार जब नारद जी ने जब त्रिलोकस्वामिनी देवी को बताया, तब उन महादेवी ने देवताओं को अपने अपने वास और निवास पर भेज दिया।।५१।। तथा ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, इन्द्र और दिशाओं

अपराधं ततस्त्यक्तुमपि संप्रेषिताः सुराः। स्वस्वांशैः शिवयोः सेवामादिपित्रोरकुर्वत॥५३॥
एतदाख्यानमायुष्यं सर्वमंगलकारणम्। आविर्भावं महादेव्यास्तस्या राज्याभिषेचनम्॥५४॥
यः प्रातरुत्थितो विद्वान्भक्तिश्रद्धासमन्वितः। जपेद्धनसमृद्धः स्यात्सुधासंमितवाग्भवेत्॥५५॥
नाशुभं विद्युते तस्य परत्रेह च धीमतः। यशः प्राप्नोति विपुलं समानोत्तमतामपि॥५६॥
अचला श्रीर्भवेत्तस्य श्रेयश्चैव पदेपदे। कदाचिन्नभयं तस्य तेजस्वी वीर्यवान्भवेत्॥५७॥
तापत्रयविहीनश्च पुरुषार्थैश्च पूर्यते। त्रिसंध्यं यो जपेन्नित्यं ध्यात्वा सिंहासनेश्वरीम्॥५८॥
षण्मासान्महतीं लक्ष्मीं प्राप्नुयाज्जापकोत्तमः॥५९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने वैवाहिकोत्सवो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

के स्वामी (दिगीशों) का यथोचित आदर सत्कार करके अम्बिका ने उनके अपने अपने वास निवासों पर भेज दिया।।५२।। उसके बाद अपराध छोड़ने को भी देवों को सम्यक् प्रकार से भेजा। तब उन्होंने अपने अपने अंश से आदि पिता शिव की सेवा की।।५३।। इस प्रकार यह आख्यान जिसमें कि उन महादेवी कामेश्वरी (कामाक्षी) का आविर्भाव और राज्याभिषेक वर्णन किया गया है, वह आयु बढ़ाने वाला और सब प्रकार से घर में मङ्गल पैदा करने वाला है।।५४।। जो विद्वान् प्रातःकाल उठकर भक्ति और श्रद्धापूर्वक इन महादेवी का जप करेगा, वह धन से समृद्ध होगा और अमृत के समान वाणी वाला होगा।।५५।। उस बुद्धिमान् का इस लोक और परलोक में कुछ भी अशुभ नहीं होगा तथा वह अपने बराबर वालों में तथा अपने से उत्तम पुरुषों में बहुत यश प्राप्त करता है।।५६।। और उसकी लक्ष्मी (धनदौलत) अचल हो जाती है, वह कभी समाप्त नहीं होती एवं उसका पद पद पर कल्याण होता है। उसे कभी भी किसी का भय नहीं रहता तथा वह तेजस्वी और वीर्यवान् होता है।।५७।। जो पुरुष प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों सन्ध्याओं में सिंहासनासीन कामेश्वरी का ध्यान करके जप करेगा, वह तीनों तापों (आध्यात्मिक, अधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापों) से कभी भी पीड़ित नहीं होगा तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों से पूर्ण होगा।।५८।। तथा छः मास तक जाप करने वाला उत्तम पुरुष महती लक्ष्मी को प्राप्त करता है।।५९।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १५वाँ अध्याय महादेवी शंकर विवाहोत्सव वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ससेनविजययात्रा नाम

षोडशोऽध्यायः

अथ श्री ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तर भागे हयग्रीवास्त्य संवादे
ललितोपाख्याने ससेनविजययात्रा नाम षोडशोऽध्यायः॥

अथ सा जगतां माता ललिता परमेश्वरी। त्रैलोक्यकंटकं भंडं दैत्यं जेतुं विनिर्ययौ॥१॥
चकार मर्दलाकारानंभोराशींस्तु सप्त ते। प्रभूतमर्द्दलध्वानैः पूरयामासुरंबरम्॥२॥
मृदंगमुरजाश्चैव पटहोऽतुकुलीगणाः। सेलुकाझल्लरीरांघाहुडुकाहुण्डुकाघटाः॥३॥
आनकाः पणवाश्चैव गोमुखाश्चार्धचंद्रिकाः। यवमध्या मुष्टिमध्या मर्द्दलाडिंडिमा अपि॥४॥
झर्झराश्च बरीताश्च इंग्यालिंग्यप्रभेदजाः। उद्धकाश्चैतुहुंडाश्च निःसाणा बर्बराः परे॥५॥
हुंकारा काकतुंडाश्च वाद्यभेदास्तथापरे। दध्वनुः शक्तिसेनाभिरहिताः समरोद्यमे॥६॥
ललितापरमेशान्या अंकुशास्त्रान्समुद्गता। संपत्करी नाम देवी चचाल सह शक्तिभिः॥७॥
अनेककोटिमातंगतुरंगरथपंक्तिभिः। सेविता तरुणादित्यपाटला संपदीश्वरी॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१६

सेना सहित विजय यात्रा

जब नारद जी ने महादेवी ललिता को भण्डासुर दैत्य के अत्याचारों से पीड़ित संसार के बारे में बताया और उसका संहार करने की प्रार्थना की तब, इसके बाद उन संसार की माता ललिता परमेश्वरी तीनों लोकों के कण्टक भण्डासुर दैत्य को जीतने के लिए निकल पड़ीं।।१।। तब उन्होंने बाजे के आकार वाले सात मेघ बनाये और फिर अनेकों ढोलों की ध्वनियों से आकाश को भर दिया।।२।। तब वहाँ कोई मृदंग बजा रहा था, कहीं मुरज बजा रहा था, तो कहीं नगाड़े की घोर ध्वनि हो रही थी, जिससे सारा आकाश गूँज रहा था। उस समद उनकी सेना में सेलुका, झालर, रांधा, हुडुका और हुण्डुका नामक वाद्यों की ध्वनियां होने लगीं।।३।।

आनक नामक सेना का ढोल पणव नामक नगाड़ा गोमुख और अर्धचन्द्रिका नामक बाजे तथा यवमध्य, मुष्टिमध्य, मर्द्दल और डिण्डिम भी बजने लगे।।४।। मँजीरे बरीत, इंग्य और अलिंग्य नाम के अनेकों प्रकार के बाजों की ध्वनि होने लगी तथा उद्धक नामक बहुत तेज ध्वनि वाले तथा अतुहुण्ड निःसाण और बर्बर नामक बाजे बजने लगे।।५।। यही नहीं हुंकार और काकतुण्ड नामक अनेकों प्रकार के दूसरे बाजे बजे, उस समर की तैयारी में शक्ति सेना ने वे सब बाजे बजाने प्रारम्भ कर दिये।।६।। तथा परमेशानी ललिता देवी अंकुश आदि अस्त्रों को लेकर तैयार हो गयीं और फिर सबको सम्पत्ति पैदा करने वाली देवी अपनी शक्तियों के साथ चलने लगीं।।७।। अनेक करोड़

मत्तमुद्दंडसंग्रामरसिकं शैलसन्निभम्। रणकोलाहलं नाम सारुरोह मतंगजम्॥९॥
तामन्वगा ययौ सेना महती घोरराविणी।
लोलाभिः केतुमालाभिरुल्लिखन्ती घनाघनात्॥१०॥
तस्याश्च संपन्नाथायाः पीनस्तनसुसंकटः। कंटको घनसंन्नाहो रुरुचे वक्षसि स्थितः॥११॥
कंपमाना खड्गलता व्यरुचत्तत्करे धृता। कुटिला कालनाथस्य भृकुटीव भयंकरा॥१२॥
उत्पातवातसंपाताच्चलिता इव पर्वता;। तामन्वगा ययुः कोटिसंख्याकाः कुंजरोत्तमाः॥१३॥
अथ श्रीललितादेव्या श्रीपाशायुधसंभवा। अतित्वरितविक्रांतिरश्वारूढाचलत्पुरः॥१४॥
तया सह हयप्रायं सैन्यं हेषातरंगितम्। व्यचरत्खुरकुद्दालविदारितमहीतलम्॥१५॥
वनायुजाश्च कांबोजाः पारदाः सिंधुदेशजाः। टंकणाः पर्वतीयाश्च पारसीकास्तथा परे॥१६॥
अजानेया घट्टधरा दरदाः कालवंदिजाः। वाल्मीकयावनोद्भूता गान्धर्वाश्चाय ये हयाः॥१७॥
प्राग्देशजाता; कैराता प्रांतदेशोद्भवास्तथा।
विनीताः साधु वोढारो वेगिनः स्थिरचेतसः॥१८॥
स्वामिचित्तविशेषज्ञा महायुद्धसहिष्णवः। लक्षणैर्बहुभिर्युक्ता जितक्रोधा जितश्रमाः॥१९॥
पञ्चधारासु शिक्षाढ्या विनीताश्च प्लान्विताः॥२०॥

हाथी, घोड़े और रथों की पंक्तियों से सेवित तरुण सूर्य के समान लाल वर्णवाली वे सब सम्पत्तियों की स्वामिनी महादेवी मत्त एवं उद्दण्ड, संग्रामरसिक पर्वत के समान रणकोलाहल नाम के हाथी पर सवार हो गयीं।।८-९।। उनके पीछे अपनी हिलती हुई ध्वजमालाओं से चमकती हुई महान् घोर शब्द करने वाली सेना चलने लगी।।१०।। उन सम्पत्तियों की स्वामिनी देवी के वक्षस्थल पर स्थूलस्तनों को कष्ट देने वाला कण्टकयुक्त घनसन्नाह (बादलों को पैदा करने वाला) अस्त्र अच्छा लग रहा था।।११।। हाथ में धारण की गयी कांपती हुई तलवार बहुत ही रुचिकर लग रही थी। जो भगवान् शंकर की टेढ़ी भौंह के समान भयंकर थी।।१२।। उस समय उत्पात पैदा करने वाली वायु से पर्वत चलते हुए से प्रतीत हो रहे थे। उन देवी के पीछे करोड़ों उत्तम हाथी चल रहे थे।।१३।। इसके बाद श्री ललिता देवी द्वारा श्रीपाश आयुध से उत्पन्न अतिशीघ्र चलने वाले और विशेष क्रान्ति (हलचल) पैदा करने वाले अश्वों पर आरूढ़ सैनिक आगे चल रहे थे।।१४।। उनके साथ अश्वारोही सेना घोड़ों की हिनहिनाहट के साथ चल रही थी तथा वे घोड़े अपने खुरों से भूतल को खोदते हुए चल रहे थे।।१५।।

उनकी सेना में अनेकों प्रकार की नस्ल के तथा अनेकों देशों में उत्पन्न घोड़े थे, जैसे कि वनायुज, काम्बोज, पारद, सिन्धु देशज, टंकण, पर्वतीय, पारसीक तथा अन्य प्रकार के भी थे।।१६।। यही नहीं अन्य भी जैसे— अजानेय, घट्टधर, दरद कालवन्दिज, अनेकों यौवन से मतमत्त गान्धर्व नाम के घोड़े थे।।१७।। तथा पूर्व देशों में पैदा हुए कैरात प्रान्त में उत्पन्न हुए अनेकों घोड़े थे, जो विनम्र स्वभाव वाले, अच्छी तरह अपने ऊपर बैठाकर ले जाने वाले स्थिर चित्त से वेगपूर्वक चलने वाले थे।।१८।। वे घोड़े अपने स्वामी के मन की बात को अच्छी तरह जानने वाले थे तथा महायुद्ध में होने वाली कठिनाइयों आपत्तियों को सहन करने वाले थे। वे क्रोध को जीतने वाले तथा थकान को जीतने वाले घोड़े बहुत से लक्षणों से युक्त थे।।१९।। अब लक्षणों को बताते हैं—कुछ घोड़े शिखा

फलशुक्तिश्रिया युक्ताः श्वेतशुक्तिसमन्विताः। देवपद्मं देवमणिं देवस्वस्तिकमेव च॥२१॥
अथ स्वस्तिकशुक्तिश्च गड्डुरं पुष्पगंडिकाम्। एतानि शुभलक्ष्माणि जयराज्यप्रदानि च।
वहंतो वातजवना वाजिनस्तां समन्वयुः॥२२॥
अपराजितनामानमतितेजस्विनं चलम्। अत्यंतोत्तुंगवर्ष्माणं कविकाविलसन्मुखम्॥२३॥
पार्श्वद्वयेऽपि पतितस्फुरत्केसरमंडलम्। स्थूलबालधिविक्षेपक्षिप्यमाणपयोधरम्॥२४॥
जंघाकांडसमुन्नद्धमणिकिङ्किणिभासुरम्। वादयंतमिवोच्चण्डैः खुरनिष्ठुरकुट्टनैः॥२५॥
भूमंडलमहावाद्यं विजयस्य समृद्धये। घोषमाणं प्रति मुहुः संदर्शितगतिक्रमम्॥२६॥
आलोलचामरव्याजाद्वहंतं पक्षती इव। भांडैर्मनोहरैर्युक्तं घर्घरीजालमंडितम्॥२७॥
एषां घोषस्य कपटाद्धुंकुर्वाणमिवासुरान्। अश्वारूढा महादेवी समारूढा हयं ययौ॥२८॥
चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमंकुशं वेत्रमेव च। हयवल्गां च दधती बहुविक्रमशोभिनी॥२९॥
तरुणादित्यसङ्काशा ज्वलत्काञ्चीतरंगिणी। सञ्चचाल हयारूढा नर्तयन्तीव वाजिनम्॥३०॥
अथ श्रीदण्डनाथया निर्याणपटहध्वनिः। उद्दंडसिन्धुनिस्वानश्चकार बधिरं जगत्॥३१॥

पर पाँच धाराओं से युक्त थे, जो एक शुभ लक्षण माना गया है। अतः वे विनीत एवं छलांग लगाने वाले थे।।२०।। कुछ उनमें फल और शुक्ति (सीप) की शोभा से युक्त थे तथा कुछ श्वेत सीप से युक्त थे अर्थात् उनके मस्तक पर ये चिह्न थे तथा कुछ देवपद्म, देवमणि तथा देवस्वस्ति चिह्नों वाले थे।।२१।। यही नहीं कुछ घोड़े स्वास्तिक चिह्न और शुक्ति (सीप) दोनों चिह्नों वाले थे तथा कुछ गडुर और फूलों जैसी गण्डिका वाले थे। ये सभी शुभ लक्षण विजय और राज्य प्रदान कराने वाले हैं। इस प्रकार वायु के समान वेग से दौड़ने वाले घोड़े वहाँ उपस्थित थे।।२२।। वे घोड़े अपराजित नाम वाले थे अत्यन्त तेजस्वी तथा चञ्चल थे। उनके शरीर अत्यन्त ऊँचे और मुख लगाम की रस्सी से अत्यन्त सुशोभित थे।।२३।। उन घोड़ों की गर्दन के दोनों ओर गिरे हुए बाल फहरा रहे थे। मोटे मोटे काले काले बालों के बिखरने से ऐसा लगता था, मानों कि बादलों को बिखेर दिया गया हो।।२४।। उनकी जंघाओं के बीच की गांठों पर समुन्नत मणिकिङ्किणी चमक रही थी तथा खुरों में लगी हुई नाल से बाजे से बजते थे।।२५।। उस विजय की समृद्धि के लिये भूमण्डल महावाद्य बन चुका था। उन घोड़ों की चाल के क्रम से बार-बार युद्ध की घोषणा सी की जा रही थी।।२६।। उन महादेवी पर जो चंवर ढुलाया जा रहा था, उसके पंख की जड़ को पकड़ के ढुलाया जा रहा था तथा वह चंवर सुन्दर पात्रों और घुँघरुओं से सजा हुआ था।।२७।।

इस प्रकार की घोष ध्वनि करते हुए असुरों से युद्ध करने के लिए अश्व पर आरूढ़ महादेवी घोड़े पर सम्यक् प्रकार से सवार होकर चलीं।।२८।। वे महादेवी अपने चारों हाथों से एक हाथ में पाश, एक में अंकुश, एक में बेंत (कोड़ा) और एक हाथ में घोड़े की लगाम पकड़े हुई अत्यन्त पराक्रम से शोभित हो रही थीं।।२९।। तरुण सूर्य के समान प्रकाश वाली चमकती हुई कर्धनी वाली, वे देवी घोड़े पर सवार हो घोड़े को नचाती हुई के समान चलीं।।३०।। उसके बाद श्री दण्डनाथा ने अभियान (युद्ध को कूंच करने) का बिगुल बजा दिया, जिस पटह ध्वनि से उद्दण्ड समुद्र की भयंकर ध्वनि से अधिक भीषण उस ध्वनि ने समस्त संसार को बधिक (बहरा) कर दिया।।३१।।

वज्रबाणैः कठोरैश्च भिंदंत्यः ककुभो दश।
अत्युद्धतभुजाश्मानः शक्तयः काश्चिदुच्छ्रिताः॥३२॥
काश्चिच्छ्रीदंडनाथायाः सेनानासीरसङ्गताः। खड्गं फलकमादाय पुप्लुवुश्चंडशक्तयः॥३३॥
अत्यंतसैन्यसम्बाधं वेत्रसंताडनैः शतैः। निवारयंत्यो वेत्रिण्यो व्युच्चलंति स्म शक्तयः॥३४॥
अथ तुंगध्वजश्रेणीर्महिषांका मृगांकिकाम्।
सिंहांकाश्चैव बिभ्राणाः शक्त्यो व्यचलन्पुरा॥३५॥
ततः श्रीदण्डनाथायाः श्वेतच्छत्रं सहस्त्रशः।
स्फुरत्कराः प्रचलिताः शक्तयः काश्चिदादद्दुः॥३६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ससेनविजययात्रा नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

कठोरवज्र वाणों से समस्त दिशाओं को भेदते हुए अत्यन्त अद्भुत वज्र के समान भुजाओं वालीं कुछ शक्तियां उठ खड़ी हुईं।।३२।। कुछ श्री दण्डनाथा की आगे रहने वाली सेना सजी हुई थी तथा चण्ड (भयंकर) शक्तियां खड्ग और फलक लेकर कूद रही थीं।।३३।। सैकड़ों वेतों के सञ्चालन से सेना में अत्यन्त सम्बाध पैदा हो गया था। वेंतधारियों को दूर हटाती हुई शक्तियाँ घूम रही थीं।।३४।। इसके बाद महिष (भैंसे) मृग और सिंह चित्रित ऊँची ऊंची ध्वजायें धारण कर शक्तियाँ इधर उधर चलने लगीं।।३५।। इसके बाद श्री दण्डनाथा की हजारों श्वेत छत्रों को धारण किये हाथों को फड़काती हुई कुछ प्रचलित शक्तियां उपस्थित हो गयीं।।३६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १६वाँ अध्याय सेना सहित विजय यात्रा वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

दण्डकथाश्यामलसेना नाम

सप्तदशोऽध्यायः

दण्डनाथाविनिर्याणे संख्यातीतैः सितप्रभैः। छत्रैर्गगनमारेजे निःसंख्यशशिमण्डितम्॥१॥
अन्योन्यसक्तैर्धवलच्छत्रैरंतर्घनीभवत्। तिमिरं नुनुदे भूयस्तत्काण्डमणिरोचिषा॥२॥
वज्रप्रभान्धकारच्छायापूरितदिङ्मुखाः। तालवृन्ताः शतविधाः क्रोडमुख्या बलेऽचलन्॥३॥
चण्डो दण्डादयस्तीव्रा भैरवाः शूलपाणयः। ज्वलत्केशपिशङ्गाभास्तडिद्भासुरदिङ्मुखाः॥४॥
दहत्य इव दैत्यौघांस्तीक्ष्णैर्मार्गणवह्निभिः। प्रचेलुर्दंडनाथायास्सेना नासीरधाविताः॥५॥
अथ पोत्रीमुखीदेवीसमानाकृतिभूषणाः। तत्समायुधकरास्तत्समानस्ववाहनाः॥६॥
तीक्ष्णदंष्ट्रविनिष्ठ्यूतवह्निधूमामितांबराः। तमालश्यामलाकाराः कपिलाः क्रूरलोचनाः॥७॥
सहस्रमहिषारूढाः प्रचेलुः सूकराननाः। अथ श्रीदंडनाथा च करिचक्ररथोत्तमात्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१७

दण्डिनाथाश्यामलसेना यात्रा

जब दण्डनाथा ने युद्ध के लिये प्रयाण कर दिया, तब उनके प्रयाण कर देने पर श्वेतप्रभा वाले छत्रों से आकाश असंख्य चन्द्रमाओं से मण्डित सा हो गया।।१।। वहाँ चारों ओर इतने धवल छत्र थे कि उनके आपस में सटकर घने होने से उनमें लगे हुए अनेकों मणियों की चमक से अन्धकार का बिल्कुल नाश हो गया।।२।। वज्र की प्रभा से पर्वतों की जो छाया थी, उस छाया से समस्त दिशायें पूर्ण कर दी गयी थीं। सौ प्रकार के तालवृन्ता[1] क्रोडमुख्य सेना में चलने लगे।।३।।

चण्ड दण्ड आदि तीव्र भैरव हाथ में शूल लिये हुए जलते हुए केशों की लाल आभा वाली विद्युत् से समस्त दिशायें प्रकाशित हो गयीं।।४।। खोजने वाली तीक्ष्ण अग्नियों से दैत्य समूहों को जलाते हुए के समान दण्डनाथा की आगे रहने वाली सेना दौड़ रही थी।।५।। इसके बाद यज्ञाग्नि की ज्वाला के मुखवाली देवी ने समान आकृति और समान आभूषण तथा उसी के समान आयुध हाथ में लिये और उसी के समान उसके वाहन भी थे।।६।। तीक्ष्ण दाँतों वाले, मुँह में रखी हुई आग से मानों धुँआ निकाल रहे हों। तमाल वृक्ष की श्यामल आकार वाले, कपिल वर्ण वाले, क्रूर नेत्रों वाले, हजारों भैंसों पर सवार सूअर के मुख वाले, भैरव घूमने लगे।।७-७½।। इसके बाद श्रीदण्डनाथा करिचक्र नामक रथ से उतरकर अपने वाहन महासिंह पर चढ़ गयी।।७½-८½।। उसका नाम वज्रघोष

---

१. तालवृन्त एक प्रकार बाजा भी है तथा तालवृन्त तलवारों को भी कहा जाता है। अतः दोनों अर्थ लिये जा सकते हैं। यहाँ स्पष्टीकरण का अभाव प्रतीत हो रहा है।

अवरुह्य महासिंहमारुरोह स्ववाहनम्। वज्रघोष इति ख्यातं धूतकेसरमंडलम्॥९॥
व्यक्तास्यं विकटाकारं विशंकटविलोचनम्। दंष्ट्राकटकटत्कारबधिरीकृतदिक्तटम्॥१०॥
आदिकूर्मकठोरास्थिखर्परप्रतिमैर्नखैः। पिबंतमिव भूचक्रमापातालं निमज्जिभिः॥११॥
योजनत्रयमुत्तुंगं वेगादुद्धूतवालधिम्। सिंहवाहनमारुह्य व्यचलद्दंडनायिका॥१२॥
तस्यामसुरसंहारे प्रवृत्तायां ज्वलत्क्रुधि। उद्वेगं बहुलं प्राप त्रैलोक्यं सचराचरम्॥१३॥
किमसौ धक्ष्यति रुषा विश्वमद्यैव पोत्रिणी। किं वा मुसलघातेन भूमिं द्वेधा करिष्यति॥१४॥
अथ वा हलनिर्घातैः क्षोभयिष्यति वारिधीन्। इति त्रस्तहृदः सर्वे गगने नाकिनां गणाः॥१५॥
दूराद्द्रुतं विमानैश्च सत्रासं ददृशुर्गताः। ववंदिरे च तां देवा बद्धांजलिपुटान्विताः।
मुहुर्द्वादशनामानि कीर्तयंतो नभस्तले॥१६॥

अगस्त्य उवाच

कानि द्वादशनामानि तस्या देव्या वद प्रभो। अश्वानन महाप्राज्ञ येषु मे कौतुकं महत्॥१७॥

हयग्रीव उवाच

शृणु द्वादशनामानि तस्या देव्या घटोद्भव। यदाकर्णनमात्रेण प्रसन्ना सा भविष्यति।
पंचमी दंडनाथा च संकेता समयेश्वरी॥१८॥
तथा समयसंकेता वाराही पोत्रिणी तथा। वार्ताली च महासेनाप्याज्ञा चक्रेश्वरी तथा॥१९॥

था, जिसका शरीर श्वेत केशों से युक्त था तथा उसका भयंकर आकार साफ-साफ दिखायी देता था, प्रचण्ड आकार का उसका नेत्र मण्डल था, उसके दाँतों की कटाकट की ध्वनि से समस्त दिशायें बहरी हो जाती थीं।।८½-१०।। आदि कच्छप भगवान् के समान जिसकी अस्थि खर्पर के समान जिसके नाखून थे। वह ऐसा लग रहा था मानों पृथ्वी को पाताल तक पी रहो तथा जो सिंह तीन योजन ऊँची छलांग लगाने वाला था, ऐसे सिंह पर सवार होकर वे दण्डनायिका चल रही थीं।।११-१२।। जब वे महादेवी क्रोध से जलती हुई, उस असुर के संहार के लिये तैयार हो गयीं, तब समस्त जड़-चेतन जगत् बहुत अधिक उद्वेग को प्राप्त हो गया। अर्थात् समस्त त्रैलोक्य दुःखी हो गया है।।१३।। क्या यह यज्ञाग्नि अभी ही विश्व को ध्वस्त कर देगी अथवा क्या मूसल की चोट से भूमि के टो टुकड़े कर देगी?।।१४।। अथवा हल के निर्घातों से समुद्रों को क्षोभित कर देगी? इस प्रकार स्वर्ग के सभी स्वर्गीयगण भयभीत हृदय वाले हो गये।।१५।। तब दूर से ही शीघ्र अपने अपने विमानों से उतरकर देवता लोग डरे हुए उन्हें देखने के लिये वहाँ आ गये और फिर हाथ जोड़कर उनकी वन्दना करने लगे। तब उन्होंने फिर उन महादेवी के बारह नामों का आकाशतल में कीर्तन किया।।१६।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे भगवान् हयग्रीव! उनके बारह नाम कौंन-कौंन से हैं, कृपया हमें बतलाइये। हे अश्व के समान मुख वाले महाप्राज्ञ! भगवान् हयग्रीव! इनको सुनने की हमें उत्कण्ठा हो रही है।।१७।।

हयग्रीव ने कहा कि घर से उत्पन्न अगस्त्य मुने! उन महादेवी के बारह नामों को सुनिये, जिन नामों को सुनने मात्र से वह प्रसन्न हो जायेंगी। वे नाम हैं—१-पञ्चमी, २-दण्डनाथा, ३-संकेता, ४-समयेश्वरी, ५-समयसंकेता, ६-वाराही, ७-पोत्रिणी, ८-वार्ताली, ९-महासेना, १०-आज्ञाचक्रेश्वरी, ११- और १२-अरिघ्नी। हे मुने! ये बारह

अरिघ्नी चेति सम्प्रोक्तं नामद्वादशकं मुने। नामद्वादशकाभिख्यवज्रपञ्जरमध्यगः।
संकटे दुःखमाप्नोति न कदाचन मानवः॥२०॥
एतैर्नामभिरभ्रस्थाः संकेतां बहु तुष्टुवुः। तेषामनुग्रहार्थाय प्रचचाल च सा पुनः॥२१॥
अथ संकेतयोगिन्या मंत्रनाथा पदस्पृशः। निर्याणसूचनकरी दिवि दध्वान काहली॥२२॥
शृंगारप्रायभूषाणां शार्दूलस्यामलत्विषाम्।
वीणासंयतपाणीनां शक्तीनां निर्ययौ बलम्॥२३॥
काश्चिद्गायंति नृत्यंति मत्तकोकिलनिःस्वनाः। वीणावेणुमृदंगाद्याः सविलासपदक्रमाः॥२४॥
प्रचेलुः शक्तयः श्यामा हर्षयंत्यो जगज्जनान्।
मयूरवाहनाः काश्चित्कतिचिद्धंसवाहनाः॥२५॥
कतिचिन्नकुलारूढाः कतिचित्कोकिलासनाः।
सर्वाश्च श्यामलाकाराः काश्चित्कर्णीरथस्थिताः॥२६॥
कादंबमधुमत्ताश्च काश्चिदारूढसैन्धवाः। मंत्रनाथां पुरस्कृत्य संप्रचेलुः पुरः पुरः॥२७॥
अथारुह्य समुत्तुंगध्वजचक्रं महारथम्। बालार्कवर्णकवचा मदालोलविलोचना॥२८॥
ईषत्प्रस्वेदकणिकामनोहरमुखांबुजा। प्रेक्षयंती कटाक्षौघैः किंचिद्भ्रूवल्लितांडवैः॥२९॥
समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तीनामुद्धतोद्धतम्। पिच्छत्रिकोणच्छत्रेण विरुदेन महीयसा॥३०॥
आसां मध्ये न चान्यासां शक्तीनामुज्ज्वलोदया।
निर्जगाम घनश्यामश्यामला मंत्रनायिका॥३१॥

नाम कहे गये हैं। इन बारह नामों को कहने वाला व्यक्ति वज्र के समान कठोर पिंजड़े में बँधा हुआ भी निकल सकता है तथा इन नामों का आख्यान करने वाला व्यक्ति कभी भी संकट को प्राप्त नहीं होता है।।१८-२०।। जो इन नामों से उन महादेवी संकेता की स्तुति करेंगे उन पर कृपा करने के लिये वे देवी पुनः चली आयेंगी।।२१।।

इसके बाद उन संकेत योगिनी ने जब युद्ध के लिये कूच किया, तब आकाश में युद्ध के लिये प्रयाण करती हुई काहली दिखायी दी।।२२।। तब शृङ्गारप्राय आभूषणों वाली, सिंह के समान श्यामल शरीर वाली, वीणासंयत हाथों वाली शक्तियों का सैन्य बल निकल पड़ा।।२३।। कोई गा रही थी, कोई नांच रही थी, कोई मत्त कोयल की ध्वनि निकाल रही थी तथा उस समय वीणा, बांसुरी, मृदंग आदि बजाती हुई विलास भाव से एक एक पद बढ़ाती हुई संसार के लोगों को हर्षित करती हुईं श्यामा नामक शक्तियां इधर उधर चलने लगीं।।२४-२४½।। उनमें कुछ मयूर वाहन पर सवार थी, कुछ हंस वाहन पर सवार थीं कुछ नकुल वाहनों वालीं थी, तो कुछ कोयल वाहन पर सवार थीं। सभी शक्तियां श्याम आकार वाली थीं, उनमें कुछ कर्णीरथ पर स्थित थीं।।२४½-२६।। कुछ मद्य के नशे में मत्त होकर घोड़ों पर सवार थीं, जो मन्त्रनाथा को आगे करके आगे आगे चल रही थीं।।२७।। इसके बाद पिच्छ त्रिकोण छत्र से जोर जोर से युद्ध की घोषणा करती हुई इन शक्तियों के बीच में से अन्य शक्तियों से अधिक उज्ज्वल उत्पत्ति वाली काले बादलों के समान मन्त्रनायिका नामक शक्ति निकली। जो ध्वजा और चक्र लगे हुए ऊँचे

तां तुष्टुवुः षोडशभिर्नामभिर्नाकवासिनः। तानि षोडशनामानि शृणु कुंभसमुद्भव॥३२॥
संगीतयोगिनी श्यामा श्यामला मंत्रनायिका।
मंत्रिणी सचिवेशी च प्रधानेशी शुकप्रिया॥३३॥
वीणावती वैणिकी च मुद्रिणी प्रियकप्रिया। नीकप्रिया कदंबेशी कदंबवनवासिनी॥३४॥
सदामदा च नामानि षोडशैतानि कुंभज। एतैर्यः सचिवेशानीं सकृत्स्तौति शरीरवान्।
तस्य त्रैलोक्यमखिलं हस्ते तिष्ठत्यसंशयम्॥३५॥
मंत्रिनाथा यत्रयत्र कटाक्षं विकिरत्यसौ। तत्रतत्र गताशंकं शत्रुसैन्यं पतत्यलम्॥३६॥
ललितापरमेशान्या राज्यचर्चा तु यावती। शक्तीनामपि चचार या सा सर्वत्र जयप्रदा॥३७॥
अथ संगीतयोगिन्याः करस्थाच्छुकपोतकात्। निर्जगाम धनुर्वेदो वहन्सज्जं शरासनम्॥३८॥
चतुर्बाहुयुतो वीरस्त्रिशिरास्त्रिविलोचनः। नमस्कृत्य प्रधानेशीमिदमाह स भक्तिमान्॥३९॥
देवि बंडासुरेंद्रस्य युद्धाय त्वं प्रवर्त्तसे। अतस्तव मया साह्यं कर्तव्यं मंत्रिनायिके॥४०॥
चित्रजीवमिमं नाम कोदंडं सुमहत्तरम्। गृहाण जगतामंब दानवानां निबर्हणम्॥४१॥
इमौ चाक्षयबाणाढ्यौ तूणीरौ स्वर्णचित्रितौ। गृहाण दैत्यनाशाय ममानुग्रहहेतवे॥४२॥

महारथ पर सवार थी, जो प्रातःकालीन सूर्य के वर्ण के समान कवच पहने हुई थीं, जिनकी मद से चञ्चल आँखें थी तथा मुख कमल पर पसीनें की बूँदें थीं तथा जो अपनी भ्रूलता को घुमाती हुई शक्तियों द्वारा उठायी गयी उस समस्त सेना को कटाक्षों द्वारा देख रही थीं।।२८-३१।। उन मन्त्रनायिका को स्वर्गवासी देवताओं ने सोलह नामों से तुष्ट किया। अतः हे घटोत्पन्न अगस्त्य जी! उन सोलह नामों को सुनिये।।३२।। वे हैं—१-संगीत योगिनी, २-श्यामा, ३-श्यामला, ४-मन्त्रनायिका, ५-मन्त्रिणी, ६-सचिवेशी, ७-प्रधानेशी, ८-शुकप्रिया, ९-वीणावती, १०-वैणिकी, ११-मुद्रिणी, १२-प्रियकप्रिया, १३-नीपप्रिया, १४-कदम्बेशी, १५-कदम्बवासिनी और १६-सदामदा। अगस्त्य जी! इस प्रकार ये सोलह नाम हैं। इन नामों द्वारा उन सचिवेशियों की जो शरीर वाला व्यक्ति स्तुति करेगा, उसके हाथ में निश्चित ही समस्त त्रैलोक्य स्थित हो जायेगा। वह तीनों लोकों का स्वामी हो जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३३-३५।।

ये मन्त्रनाथा देवी जहाँ जहाँ अपनी दृष्टि घुमाती थीं, वहाँ वहाँ शत्रु की सेना भयभीत होकर गिर जाती थी।।३६।। जितनी राज्य चर्चा ललिता परमेश्वरी की जय प्रदान करने वाली होती है, उतनी ही सर्वत्र जय प्रदान करने वाली चर्चा शक्तियों की है। अर्थात् ललितापरमेश्वरी के साथ उनकी शक्तियों के स्मरण से ही सर्वत्र जय प्राप्त हो सकती है।।३७।। इसके बाद संगीतयोगिनी के हाथ में स्थित तोते के बच्चे से हाथ में बाण और धनुष लिये हुए धनुर्वेद निकला।।३८।। वह वीर धनुर्वेद चार भुजाओं वाला और तीन सिर तथा तीन आँखों वाला था। उसने प्रधानेशी (मन्त्रनायिका) देवी को नमस्कार करते हुए भक्तिपूर्वक इस प्रकार कहा।।३९।। हे देवि! दैत्यराज भण्डासुर के साथ युद्ध करने के लिए तुम तैयार हुई हो, इसलिए हे मन्त्रनायिके! तुम्हें मेरे साथ कार्य करना चाहिये।।४०।। अतः यह मेरा चित्रजीव नामक बहुत ही महान् यह धनुष है, जो दानवों का नाश करने वाला है, इसे आप ग्रहण कीजिये।।४१।। तथा अक्षय बाणों से भरे हुए दो स्वर्ण चित्रित तूणीर हैं, अतः मेरे ऊपर कृपा करती हुई इनको ग्रहण कीजिये तथा

इति प्रणम्य शिरसा धनुर्वेदेन भक्तितः। अर्पितांश्चापतूणीराञ्जग्राह प्रियकप्रिया॥४३॥
चित्रजीवं महाचापमादाय च शुक प्रिया। विस्फारं जनयामास मौर्वीमुद्वाद्य भूरिशः॥४४॥
संगीतयोगिनी चापध्वनिना पूरितं जगत्। नाकालयानां च मनोनयनानंदसंपदा॥४५॥
यंत्रिणी तंत्रिणी चेति द्वे तस्याः परिचारिके। शुकं वीणां च सहसा वहंत्यौ परिचेरतुः॥४६॥
आलोलवलयक्वाणवर्धिष्णुगुणनिस्वनम्। धारयंती घनश्यामा चकारातिमनोहरम्॥४७॥
चित्रजीवशरासेन भूषिता गीतयोगिनी। कदंबिनीव रुरुचे कदम्बच्छत्रकार्मुका॥४८॥
कालीकटाक्षवत्तीक्ष्णो नृत्यद्भुजगभीषणः।
उल्लसन्दक्षिणे पाणौ विललास शिलीमुखः॥४९॥
गेयचक्ररथारूढां तां पश्चाच्च सिषेविरे। तद्वच्छ्यामलशोभाढ्या देव्यो बाणधनुर्धराः॥५०॥
सहस्राक्षौहिणीसंख्यास्तीव्रवेगा मदालसाः।
आपूरयंत्यः ककुभं कलैः किलिकिलारवैः॥५१॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने दंडनाथाश्यामला-सेनायात्रा नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

इन्हें ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत कीजिये।।४२।। इस प्रकार धनुर्वेद ने शिर से प्रणाम करके भक्तिपूर्वक उन तरकशों को प्रदान कर दिया और प्रियक प्रिया ने उन्हें ग्रहण कर लिया।।४३।। चित्रजीव महाधनुष को लेकर शुक्रप्रिया ने उसकी प्रत्यञ्चा को अनेक बार बजाकर (धनुष की टंकार) से सर्वत्र विस्फार (धनुष की टंकार) पैदा कर दिया।।४४।। उन संगीतयोगिनी ने धनुष की टंकार से समस्त संसार को भर दिया और फिर स्वर्गवासी देवताओं के घरों को आनन्द से भर दिया। स्वर्ग में प्रसन्नता छा गयी।।४५।। उन मन्त्रनाथा देवी के दो परिचारक थे यन्त्रिणी और तन्त्रिणी तथा वे दोनों परिचारक शुक और वीणा को वहन करते हुए सेवा कर रहे थे।।४६।। वे घनश्यामा अत्यन्त मनोहर कंगन को धारण किये हुए थीं, जो हिलाने पर खनखनाहट की बहुत बढ़ी हुई ध्वनि कर रहा था।।४७।। चित्रजीव धनुष से वे गीतयोगिनी देवी सुशोभित थीं। कदम्ब का छत्र और धनुष से वे देवी कादम्बिनी के समान अच्छी लग रही थीं।।४८।। काली के कटाक्ष के समान उनकी तीक्ष्ण भीषण भुजा नृत्य सा कर रही थी तथा दक्षिण कर में बाण शोभित हो रहा था।।४९।। गेयचक्र वाले रथ पर आरूढ़ उन देवी की सेवा की जा रही थी तथा बाण और धनुष को धारण की हुई देवियां श्यामल शोभा से युक्त उन देवी की सेवा कर रही थीं।।५०।। तीव्र वेग वाली, युद्ध के मद में मत्त, एक हजार अक्षौहिणी संख्या वाली सेना की किल किल करने वाली ध्वनि समस्त दिशाओं में गूँज रही थी।।५१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १७वाँ अध्याय दण्डिनाथाश्यामलसेना यात्रा वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ललितापरमेश्वरी सेना जय यात्रा नाम

अष्टादशोऽध्यायः

अथ राजनायिका श्रिताज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत्।
कलनिक्कणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका॥१॥
उदयत्सहस्त्रमहसा सहस्त्रतोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाझरम्।
किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव चंद्रमयमभ्रमंडलम्॥२॥
दशयोजनायतिमता जगत्रयीमभिवृण्वता विशदमौक्तिकात्मना।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा॥३॥
अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः।
नवचंद्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च॥४॥
शक्त्यैकराज्यपदवीमभिसूचयंती साम्राज्यचिह्नशतमंडितसैन्यदेशा।
संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां स्स्तूयमानविभवा विशदप्रकाशा॥५॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यांन

अध्याय-१८

ललितापरमेश्वरी सेना जययात्रा

इसके बाद राजनायिका पर आश्रित, जलते हुए अंकुश वाली, नाग के फन के समान पाश को धारण करने वाली, झनझन करते हुए कंगन वाले हाथ में इक्षु से बने धनुष को धारण करती हुई, प्रदीप्त फूलों रूपी पाँच बाणों को धारण करने वाली, पच्चीस नामरत्नों, प्रपंच और पापों को पूरी तरह शान्त करने में कुशल मरुद्गणों द्वारा सम्यक् प्रकार से स्तुति की जाती हुई, ललिता देवी ने संग्राम को लक्ष्य बनाकर प्रयाण कर दिया।।१।। उस समय वे महादेवी उदय होते हुए सूर्यों की कांति के समान ही नहीं हजारों से अत्यधिक गुलाबी लाल अपने शरीर की प्रभा को दिशाओं में बिखेर रही थीं तथा बदन की कान्ति से ऐसा लगता था मानों कि चन्द्रमा युक्त आकाश मण्डल को मित्र बना रहीं हों।।२।।

दशयोजन विस्तार वाले तीनों लोकों को अभिव्याप्त करने वाले अपने विशद मोती जैसे श्वेत छत्र के चमकते हुए घेरे द्वारा वे चन्द्रमण्डल की मित्रता को प्राप्त हो रही थीं अर्थात् मोती की कान्ति वाला उनका छत्र इतना प्रकाशित हो गया था कि वह चन्द्रमण्डल की समता प्राप्त कर रहा था।।३।। उन देवी के ऊपर मणि कान्त की शोभा वाली विजया आदि परिचारिकायें जो चमर ढुला रही थीं, उन चारों चामरों और चार ध्वजाओं की कान्ति नयी चाँदनी की लहराती कान्ति के समान थी।।४।। उन चामरों और झण्डियों की शक्ति द्वारा एक राज्य पदवी सूचित होती है अर्थात्

वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न कलनीयमनन्यतुल्यम्।।६।।
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसंपदभिमानमभिस्पृशंती।
आबद्धभक्तिविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका कृतसेवनानाम्।।७।।
ब्रह्मेशविष्णुवृषमुख्यसुरोत्तमानां वक्त्राणि वर्षितनुतीनि कटाक्षयंती।
उद्दीप्तपुष्पशरपंचकतः समुत्थैर्ज्योतिर्मयं त्रिभुवनं सहसा दधाना।।८।।
विद्युत्समद्युतिभिरप्सरसां समूहैर्विक्षिप्यमाणजयमंगललाजवर्षा।
कामेश्वरीप्रभृतिभिः कमनीयमाभिः संग्रामवेषरचनासुमनोहराभिः।।९।।
दीप्तायुधद्युतितिरस्कृत भास्कराभिर्नित्याभिरंघ्रिसविधे समुपास्यमाना।
श्रीचक्रनामतिलकं दशयोजनातितुंगध्वजोल्लिखितमेघकदंबमुच्चैः।।१०।।
तीव्राभिरावणसुशक्तिपरंपराभिर्युक्तं रथं समरकर्मणि चालयंती।
प्रोद्यत्पिशंगरुचिभागमलांशुकेन वीतमनोहररुचिस्समरे व्यभासीत्।।११।।
पंचाधिकैर्विंशतिनामरत्नैः प्रपंचपापप्रशमातिदक्षैः।
संस्तूयमाना ललिता मरुद्भिः संग्राममुद्दिश्य समुच्चचाल।।१२।।

त्रैलोक्य एक ही राज्यपदवी हो ऐसा सूचित होता था तथा उससे साम्राज्यों के सैकड़ों चिह्नों से मण्डित सौन्दर्य दशा प्रतीत होती थी। वहाँ जो देवाङ्गनायें गाना बजाना और जो पद रचना कर उनकी स्तुति कर रही थीं, उससे उनका असीमित ऐश्वर्य तथा अत्युत्कट प्रकाश विदित हो रहा था।।५।। वे देवी वाणी से जानने योग्य नहीं थीं तथा न बुद्धि से उन्हें जाना जा सकता था, इस दृष्टि से उनकी किसी से तुलना भी नहीं की जा सकती है। अतः तीनों लोकों के गर्भ से परिपूरित चक्रवर्ती साम्राज्य की सम्पत्ति के अभिमान को स्पर्श करती हुई थी।।६। उन देवी की भक्ति में पंक्तिबद्ध अनेकों हाथ जोड़कर महान् से महान् व्यक्ति खड़े रहते थे, जो सब भक्ति में होड़ करते थे कि मैं सेवा करने में प्रथम हूँ।।७।। ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आदि उत्तम देवताओं के द्वारा प्रशंसा करते हुए मुखों पर मुखों से कटाक्ष करती हुई चमकते हुए अपने पाँच पुष्प बाणों से उठे हुए ज्योतिर्मय त्रिभुवन को सहसा धारण करती हुई, बिजली के समान कान्ति वाली अप्सराओं द्वारा उनके ऊपर जय और मंगल की कामना से खीलों की वर्षा की जा रही थी।।८-८½।। अर्थात् अप्सरायें ब्रह्मा, विष्णु और महेश पर यह कटाक्ष कर रहीं थीं कि आप लोग कुछ नहीं कर पाये, अब ये स्त्री ही सब कुछ करेगी। उन महादेवी की कामेश्वरी आदि शक्तियां सुख प्रदान करने वाली आभाओं वाली संग्राम के अनुकूल वेषभूषा से मनोहर लगने वाली, चमकते हुए आयुधों की कान्ति से सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत करने वाली, नित्या (सर्वदा रहने वाली) कामेश्वरी आदि देवियों द्वारा चरणों के पास बैठकर उपासना की जा रही थीं।।८½-९½।। वे देवी समर कर्म में ऐसे रथ को चलवा रही थीं। जिसमें दशयोजन की अति ऊँचाई पर जहाँ मेघसमूहों की ऊँचाई होती है, उतनी ऊँचाई पर लगी हुई ध्वजा पर श्रीचक्र नामक तिलक खुदा हुआ था तथा जो रथ तीव्र आवरण और अधिक शक्ति की परम्पराओं से युक्त था। उठे हुए पीले रंग के रुचिकर भाग वाले मैले वस्त्र से युक्त होने पर भी अत्यन्त मनोहर कान्ति युद्ध में दिखायी दे रही थी।।९½-११।। इस प्रकार २५ नाम रत्नों

अगस्त्य उवाच

वाजिवक्त्र महाबुद्धे पंचविंशतिनामभिः। ललितापरमेशान्या देहि कर्णरसायनम्॥१३॥

हयग्रीव उवाच

सिंहासना श्रीललिता महाराज्ञी परांकुशा। चापिनी त्रिपुरा चैव महात्रिपुरसुन्दरी॥१४॥
सुन्दरी चक्रनाथा च साम्राज्ञी चक्रिणी तथा। चक्रेश्वरी महादेवी कामेशी परमेश्वरी॥१५॥
कामराजप्रिया कामकोटिगा चक्रवर्तिनी। महाविद्या शिवानंगवल्लभा सर्वपाटला॥१६॥
कुलनाथाम्नायनाथा सर्वाम्नायनिवासिनी। शृङ्गारनायिका चेति पंचविंशतिनामभिः॥१७॥
स्तुवंति ये महाभागां ललितां परमेश्वरीम्। ते प्राप्नुवंति सौभाग्यमष्टौ सिद्धीर्महद्यशः॥१८॥
इत्थं प्रचंडसंरभं चालयंती महद्बलम्। भंडासुरं प्रति क्रुद्धा चचाल ललितांबिका॥१९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ललितापरमेश्वरीसेनाजय यात्रानामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

वाले प्रपंचों और पापों को शान्त करने वाले मरुद्गणों द्वारा स्तुति की जाती हुई, वे ललिता देवी संग्राम को उद्देश्य बना कर सम्यक् प्रकार से चल पड़ीं॥१२॥

अगस्त्य मुनि ने भगवान् हयग्रीव वसे कहा कि हे महामते! हयग्रीव! ललितापरमेशिनी के पच्चीस नामों द्वारा हमें कर्णामृत प्रदान कीजिये॥१३॥

हयग्रीव बोले कि उनके पच्चीस नाम सुनिये, वे हैं—१. सिंहासना, २. श्री ललिता, ३. महाराज्ञी, ४. परांकुशा, ५. चापिनी, ६. त्रिपुरा, ७. महात्रिपुरसुन्दरी, ८. सुन्दरी, ८. चक्रनाथा, १०. साम्राज्ञी, ११. चक्रिणी, १२. चक्रेश्वरी, १३. महादेवी, १४. कामेशी, १५. परमेश्वरी, १६. कामराजप्रिया, १७. कामकोटिगा, १८. चक्रवर्तिनी, १९. महाविद्या, २०. शिवानंगवल्लभा, २१. सर्वपाटला, २२. कुलनाथा, २३. आम्नायनाथा, २४. सर्वाम्नायनिवासिनी, २५. शृङ्गारनायिका। इन उपयुक्त पच्चीस नामों से जो महात्मा ललिता परमेश्वरी की स्तुति करते हैं, वे आठों सिद्धियां और महान् यश प्राप्त करते हैं॥१४-१८॥ इस प्रकार महाबल और प्रचण्ड वेग से चलती हुई क्रुद्ध ललिता अम्बिका भण्डासुर दैत्य की तरफ चलने लगीं॥१९॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १८वाँ अध्याय ललितापरमेश्वरी सेना जययात्रा वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

चक्रराजज्ञेयचक्ररथपर्वस्थ देवता नाम

एकोविंशातितमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

चक्रराजरथेंद्रस्य याः पर्वणि समाश्रिताः। देवता प्रकटाभिख्यास्तासामाख्यां निवेदय॥१॥

संख्याश्च तासामखिला वर्णभेदांश्च शोभनान्। आयुधानि च दिव्यानि कथयस्व हयानन॥२॥

हयग्रीव उवाच

नवमं पर्व दीप्तस्य रथस्य समुपस्थिताः। दश प्रोक्ता सिद्धिदेव्यस्तासां नामानि मच्छृणु॥३॥

अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। ईशिता वशिता चैव प्राप्तिः सिद्धिश्च सप्तमी॥४॥

प्राकाम्यमुक्तिसिद्धिश्च सर्वकामाभिधापरा। एता देव्यश्चतुर्बाह्वयो जपाकुसुमसंनिभाः॥५॥

चिंतामणिकपालं च त्रिशूलं सिद्धिकज्जलम्। दधाना दयया पूर्णा योगिभिश्च निषेविताः॥६॥

तत्र पूर्वार्द्धभागे च ब्रह्माद्या अष्ट शक्तयः। ब्राह्मी माहेश्वरो चैव कौमारी वैष्णवी तथा।

वाराही चैव माहेंद्री चामुंडा चैव सप्तमी॥७॥

महालक्ष्मीरष्टमी च द्विभुजाः शोणविग्रहाः। कपालमुत्पलं चैव बिभ्राणा रक्तवाससः॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१९

श्रीचक्रराजरथ तथा ज्ञेयचक्रपर्वस्थ देवतानामों का प्रकाशन

अगस्त्य ऋषि ने कहा कि हे हयग्रीव! चक्रराज रथेन्द्र के पर्व में जो समाश्रित देवता हैं, उनकी अभिख्या (चमक दमक शोभा कान्ति और नाम) हमको बताइये।।१।। उनकी समस्त संख्या, शोभित होने वाले वर्णभेद तथा उनके अस्त्र शस्त्रों को बताइये।।२।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी! उस चमकते हुए रथ में नौ पर्व उपस्थित हैं और दश सिद्धि देवियां कही गयी हैं। उनके नामों को सुनिये।।३।। वे हैं—१. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. ईशिता, ६. वशिता तथा सातवीं सिद्धि है—प्राप्ति तथा आठवी सिद्धि है—प्राकाम्य मुक्ति सिद्धि, जो सब कामनाओं को पूरी करने वाली है। ये सब देवियां चार भुजाओं वाली और जपा के पुष्प के समान हैं।।३-५।। जो सब देवियां चिन्तामणि, कपाल, और सिद्धि कज्जल धारण करती हुई, योगियों से सेवित और दया से पूर्ण हैं।।६।। उस रथ के पूर्वार्द्ध भाग में ब्रह्मा आदि आठ शक्तियां हैं। जो हैं—१. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. माहेन्द्री तथा ७. चामुण्डा सातवीं शक्ति हैं और आठवीं शक्ति महालक्ष्मी हैं। ये सभी शक्तियां दो भुजाओं वाली हैं तथा लाल रंग के शरीर वाली हैं। ये कपाल, कमल और लालवस्त्र को धारण करने वाली हैं।।७-८।।

अथवान्य प्रकारेण केचिद्ध्यानं प्रचक्षते। ब्रह्मादिसदृशाकारा ब्रह्मादिसदृशायुधाः॥९॥
ब्रह्मादीनां परं चिह्नं धारयन्त्यः प्रकीर्तिताः। तासामूर्ध्वस्थानगतां मुद्रा देव्यो महत्तराः॥१०॥
मुद्राविरचनायुक्तैर्हस्तैः कमलकांतिभिः। दाडिमीपुष्पसङ्काशाः पीतांबरमनोहराः॥११॥
चतुर्भुजा भुजद्वन्द्वधृतचर्मकृपाणका;। मदरक्तविलोलाक्ष्यस्तासां नामानि मच्छृणु॥१२॥
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा। सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा तथा सर्ववशङ्करी॥१३॥
सर्वोन्मादनमुद्रा च यष्टिः सर्वमहाङ्कुशा। सर्वखेचरिका मुद्रा सर्वबीजा तथापरा॥१४॥
सर्वयोनिश्च नवमी तथा सर्वत्रिखंडिका। सिद्धिब्राह्म्यादिमुद्रास्ता एताः प्रकटशक्तयः॥१५॥

भंडासुरस्य संहारं कर्तुं रक्तरथे स्थिताः।
या गुप्ताख्याः पूर्वमुक्तास्तासां नामानि मच्छृणु॥१६॥
कामाकर्षणिका चैव बुद्ध्याकर्षणिका कला।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षणिका कला॥१७॥
स्पर्शाकर्षणिका नित्या रूपाकर्षणिका कला।
रसाकर्षणिका नित्या गन्धकर्षणिका कला॥१८॥
चित्ताकर्षणिका नित्य धैर्याकर्षणिका कला।
स्मृत्या कर्षणिका नित्या नामाकर्षणिका कला॥१९॥

अथवा कुछ लोग अन्य प्रकार से उनका ध्यान करते हैं, वे सभी देवियां ब्रह्मा आदि के समान आकार वाली हैं और ब्रह्मा आदि के समान अस्त्रशस्त्रों को धारण करती हैं। जैसे ब्राह्मी ब्रह्मा के आकार की तथा उनके समान वस्त्र धारण करती हैं। उसी तरह माहेश्वरी महेश्वर के आकार वाली हैं तथा महेश्वर के समान वस्त्रों को धारण करती हैं।।९।। यही नहीं वे सब देवियां ब्रह्मा आदि के परम चिह्नों को भी धारण करती हुई बतायी गयी हैं। उनसे ऊँचे स्थान पर जाने पर महान् से महान् मुद्रा देवियां हैं।।१०।। वे देवियां कमल की कान्ति वाले मुद्रा बनाने में लगे हुए हाथों से अनार के पुष्प के समान पीले वस्त्रों से मन को हर लेने वाली हैं।।११।।

वे देवियां चार भुजाओं वाली हैं तथा दोनों भुजाओं में चर्म और कृपाण धारण किये हुए हैं तथा मद से लाल-लाल आँखों वाली हैं। अब उन मुद्रा देवियों के नामों को सुनिये।।१२।। उनके नाम हैं—१. सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा, २. सर्वविद्राविणीमुद्रा, ३. सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा अर्थात् सबका आकर्षण करने वाली मुद्रा, ४. सर्ववशंकरीमुद्रा, ५. सर्वोन्मादनमुद्रा, ६. सर्वमहांकुशामुद्रा, ७. सर्वखेचरिकामुद्रा, ८. सर्वबीजामुद्रा, ९. सर्वयोनिमुद्रा तथा १०. सर्वत्रि खण्डिका। वे सब सिद्धि और ब्राह्मी आदि मुद्रा हैं और ये प्रकट शक्तियां हैं।।१३-१५।। ये सब मुद्रायें भण्डासुर दैत्य का संहार करने के लिये रक्तरथ पर स्थित हैं। जो गुप्त नाम वाली हैं, उनके नामों को सुनिये।।१६।। उनके नाम हैं—१. कामाकर्षणिका नित्या, २. बुद्ध्याकर्षणिका कला, ३. अहंकाराकर्षिणी नित्या, ४. शब्दाकर्षणिका कला, ५. स्पर्शाकर्षणिका नित्या, ६. रूपाकर्षणिका कला, ७. रसाकर्षणिका नित्या, ८. गन्धाकर्षणिका कला, ९. चित्ताकर्षिणिका नित्या, १०. धैर्याकर्षिणिका कला, ११. स्मृत्याकर्षणिका नित्या, १२.

बीजाकर्षणिका नित्या चात्मकर्षणिका कला।
अमृताकर्षणी नित्या शरीराकर्षिणी कला॥२०॥
एताः षोडश शीतांशुकलारूपाश्च शक्तयः।
अष्टमं पर्व सम्प्राप्ता गुप्ता नाम्ना प्रकीर्तिताः॥२१॥
विद्रुमद्रुमसङ्काशा मन्दस्मितमनोहरा;। चतुर्भुजास्त्रिनेत्राश्च चन्द्रार्कमुकुटोज्ज्वलाः॥२२॥
चापबाणौ चर्मखड्गौ दधाना दिव्यकान्तयः। भण्डासुरवधार्थाय प्रवृत्ताः कुम्भसम्भव॥२३॥
सायंतनज्वलद्दीपप्रख्यचक्ररथस्य तु। सप्तमे पर्वणि कृतावासा गुप्ततराभिधाः॥२४॥
अनङ्गमदनानङ्गमदनातुरया सह। अनङ्गलेखा चानङ्गवेगानङ्गांकुशापि च॥२५॥
अनङ्गमालिंग्यपरा एते देव्यो जयात्विषः। इक्षुचापं पुष्पशरान्पुष्पकन्दुकमुत्पलम्॥२६॥
बिभ्रत्योऽदभ्रविक्रांतिशालिन्यो ललिताज्ञया।
भण्डासुरमभिक्रुद्धाः प्रज्वलंत्य इव स्थिता;॥२७॥
अथ चक्ररथेंद्रस्य षष्ठं पर्व समाश्रिताः। सर्वसंक्षोभिणीमुख्याः सम्प्रदायाख्यया युताः॥२८॥
वेणीकृतक चस्तोमाः सिंदूरतिलकोज्ज्वलाः।
अतितीव्रस्वभावाश्च कालानलसमत्विषः॥२९॥
वह्निबाणं वह्निचापं वह्निरूपमसिं तथा। वह्निचक्राख्यफलकं दधाना दीप्तविग्रहाः॥३०॥

नामाकर्षणिका कला, १३. बीजाकर्षणिका नित्या, १४. आत्मकर्षणिकाकला, १५. अमृताकर्षिणीनित्या, १६. शरीराकर्षिणीकला।।१७-२०।। ये सोलह कलायें चन्द्रमा की कलारूप शक्तियां हैं। आठवें पर्व की शक्तियां गुप्त नाम से कही गयी हैं।।२१।। वे शक्तियां मूँगे के वृक्ष के समान लाल वर्ण वाली और मन्द मुस्कान से मन को हर लेने वाली हैं। उनकी चार भुजायें और तीन नेत्र हैं तथा सूर्य और चन्द्रमा के समान चमकने वाले उज्ज्वल मुकुट को धारण करती हैं।।२२।। वे सब हाथ में धनुष बाण तथा चर्म और तलवार लिये हुए है तथा दिव्य कान्ति वाली हैं तथा हे अगस्त्य जी! वे सभी भण्डासुर दैत्य के वध के लिये प्रवृत्त हो चुकी हैं।।२३।। सायंकालीन जलते हुए दीपवाले साफ दिखाई देने वाले चक्ररथ के सातवें पर्व (भाग) में आवास करने वाली गुप्ततर नाम की शक्तियां हैं।।२४।।

वे हैं—१. अनङ्गमदना, २. अनङ्गमदनातुरा, ३. अनङ्गलेखा, ४. अनङ्गवेगा, ५. अनङ्गकुशा, ६. अनङ्गमालिङ्गय परा, ये देवियां जप के प्रकाश से युक्त हैं और वे इक्षु, धनुष, पुष्प का बाण, पुष्प की गेंद, कमल, धारण करती हुई, प्रचुर एवं विशेष प्रकार कान्ति कर देने वाली देवियां ललिता देवी की आज्ञा से अत्यन्त क्रोधित होकर भण्डासुर दैत्य को जलाती हुई के समान स्थित थी।।२५-२७।। इसके बाद चक्ररथेन्द्र के छठे भाग में सम्प्रदायनाम से युक्त सर्वसंक्षोभिणी आदि मुख्य शक्तियां समाश्रित हैं।।२८।। जिनके शीर्षकेश वेणीवद्ध थे तथा मस्तक पर सिन्दूर का उज्ज्वल तिलक लगा हुआ था तथा वे अत्यन्त तीव्र स्वभाव वाली और कालाग्नि के समान तेज वाली थीं।।२९।। वे अग्निबाण, अग्नि धनुष, अग्निरूप तलवार तथा अग्निचक्र नामक फलक वाले दीप्त

असुरेन्द्रं प्रति क्रुद्धाः कामभस्मसमुद्भवाः। आज्ञाशक्तय एवैता ललितताया महौजसः॥३१॥
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा। सर्वाकर्षणिका शक्तिः सर्वाह्लादिनिका तथा॥३२॥
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनशक्तिका। सर्वजृंभणशक्तिश्च सर्वोन्मादनशक्तिका॥३३॥
सर्वार्थसाधिका शक्तिः सर्वसम्पत्तिपूरणी। सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वंद्वक्षयङ्करी॥३४॥
एवं तु सम्प्रदायानां नामानि कथितानि वै। अथ पञ्चमपर्वस्थाः कुलोत्तीर्णा इति स्मृताः॥३५॥
ताश्च स्फटिकसङ्काशाः परशुं पाशमेव च। गदां घण्टां मणिं चैव दधाना दीप्तविग्रहाः॥३६॥
देवद्विषमति क्रुद्धा भ्रुकुटीकुटिलाननाः। एतासामपि नामानि समाकर्णय कुम्भज॥३७॥
सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसम्पत्प्रदा तथा। सर्व प्रियङ्करी देवी सर्वमङ्गलकारिणी॥३८॥
सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी॥३९॥
सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्ननिवारिणी। सर्वांगसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी॥४०॥
दशैताः कथिता देव्यो दयया पूरिताशयाः। चक्रे तुरीयपर्वस्था मुक्ताहारसमत्विषः॥४१॥
निगर्भयोगिनीनाम्ना प्रथिता दश कीर्तिताः। सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा तथा॥४२॥
सर्वज्ञानमयी देवो सर्वव्याधिविनाशिनी। सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा॥४३॥
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी। दशमी देवता ज्ञेया सर्वेप्सितफलप्रदा॥४४॥
एताश्चतुर्भुजा ज्ञेया वज्रं शक्तिं च तोमरम्। चक्रं चैवाभिबिभ्राणा भण्डासुरवधोद्यताः॥४५॥

शरीर को धारण करने वाली हैं।।३०।। वे सभी शक्तियां दैत्यराज भण्डासुर के प्रति अत्यन्त क्रोधित थीं तथा कामदेव के भस्म होने से उत्पन्न हुई ललिता देवी की महा पराक्रमी आज्ञा शक्तियां ही हैं। ये आज्ञा शक्तियां हैं—१. सर्वसंक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षणिका, ४. सर्वाह्लादिनिका, ५. सर्वसम्मोहिनीशक्ति, ६. सर्वस्तम्भनशक्तिका, ७. सर्वजृम्भणशक्ति, ८. सर्वोन्मादनशक्तिका, ९. सर्वार्थसाधिकाशक्ति, १०. सर्वसम्पत्तिपूरणीशक्ति, ११. सर्वमन्त्रमयीशक्ति, १२. सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्ति।। इस प्रकार ये उपर्युक्त सम्प्रदायों के नाम कहे गये हैं।।३१-३४½।। इसके बाद पञ्चम पर्व में स्थित शक्तियाँ कुलोत्तीर्णा कही गयी हैं। वे शक्तियाँ संगमरमर के समान थीं और परशु, पाश, गदा, घण्टा और मणि धारण करने वाली तथा कान्तियुक्त शरीर वाली थीं।।३४½-३६।। वे देवों से द्वेष करने वाले दैत्यों के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध और कुटिल भ्रुकुटु रखने वाली थीं। अतः हे अगस्त्य जी अब उनके नाम भी सुनिये।।३७।।

१. सर्वसिद्धिप्रदा देवी, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरी देवी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकामप्रदा देवी, ६. सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्ननिवारिणी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी देवी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी, इस प्रकार ये दश देवियां दया से युक्त एवम् आशा पूर्ण करने वाली कही गयी हैं।।३८-४०½।। अब चक्र के चौथे पर्व (भाग) में मोतियों के हार के समान कान्तिवाली देवियां हैं, जो निगर्भयोगिनी नाम से संख्या में दश कही गयी हैं। वे हैं—१. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वैश्वर्यप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधिविनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरा, ८. सर्वानन्दमयी देवी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी तथा १०.

अथ चक्ररथेन्द्रस्य तृतीयं पर्वसंश्रिताः। रहस्ययोगिनीनाम्ना प्रख्याता वागधीश्वरा;॥४६॥
रक्ताशोकप्रसूनाभाबाणकार्मुकपाणयः। कवचच्छन्नसर्वांग्यो वीणापुस्तकशोभिताः॥४७॥
वशिनी चैव कामेशी भोगिनी विमला तथा।
अरुणा च जविन्याख्या सर्वेशी कौलिनी तथा॥४८॥
अष्टावेताः स्मृता देव्यो दैत्यसंहारहेतवः। अथ चक्ररथेन्द्रस्य द्वितीयं पर्व संश्रिताः॥४९॥
चापबाणौ पानपात्रं मातुलुंगं कृपाणिकाम्। तिस्रस्त्रिपीठनिलया अष्टबाहुसमन्विताः॥५०॥
पलकं नागपाशं च घंटां चैव महाध्वनिम्। बिभ्राणा मदिरामत्ता अतिगुप्तरहस्यकाः॥५१॥
कामेशी चैव वज्रेशी भगमालिन्यथापरा।
तिस्र एताः स्मृता देव्यो भण्डे कोपसमन्विताः॥५२॥
ललितासममाहात्म्या ललितासमतेजसः। एतास्तु नित्यं श्रीदेव्या अन्तरङ्गाः प्रकीर्तिताः॥५३॥
अथानन्दमहापीठे रथमध्यमपर्वणि। परितो रचितावासाः प्रोक्ताः पञ्चदशाक्षराः॥५४॥
तिथिनित्याः कालरूपा विश्वं व्याप्यैव संस्थिताः।
भण्डासुरादिदैत्येषु प्रक्षुब्धभ्रुकुटीतटाः॥५५॥
देवीसमनिजाकारा देवीसमनिजायुधाः। जगतामुपकाराय वर्तमाना युगेयुगे॥५६॥

दशमीदेवी सवेप्सितफलप्रदा हैं। ये सभी देवियां चार भुजाओं वाली जाननी चाहिये तथा वज्र, शक्ति, तोमर और चक्र धारण करके भण्डासुरसैत्य को मारने को उद्यत हैं।।४०½-४५।। अब श्रीचक्रराज के तृतीय पर्व में स्थित देवियां रहस्ययोगिनी नाम से प्रसिद्ध हैं तथा वे सब वाणी की अधीश्वर देवियां हैं।।४६।। वे लाल अशोक के लाल पुष्प के समान आभा वाली और हाथ में बाण और धनुष धारण किये हुए हैं तथा उनका सारा शरीर कवच से ढका हुआ है तथा हाथ में वीणा और पुस्तक सुशोभित है।।४७।। उनके नाम हैं—१. वशिनी, २. कामेशी, ३. भोगिनी, ४. विमला, ५. अरुणा, ६. जविनी, ७. सर्वेशी और ८. कौलिनी। इस प्रकार ये आठ देवियां दैत्यों का संहार करने वाली कही गयी हैं।।४८-४८½।। इसके बाद चक्ररथेन्द्र के दूसरे पर्व में रहने वाली देवियां धनुष बाण पानपात्र मातुलुंग (विजौरा नीबू) कृपाणिका तेंतीस पीठ के उनके निलय (घर) थे तथा वे सब आठ भुजाओं से युक्त थीं।।५०।। पलक, नाग, पाश, घण्टा की महाध्वनि का धारण करने वाली मदिरा से मत्त अत्यन्त गुप्त रहस्य वाली देवियां हैं।।५१।।

कामेशी और वज्रेशी तथा भगमालिनी, ये तीन देवियां भण्डासुर दैत्य पर क्रोध किये हुये थीं।।५२।। ये तीनों देवियां ललिता देवी के सामन माहात्म्ययुक्त थी तथा ललिता के समान तेज वाली थीं। ये सब नित्या और श्री ललितापरमेश्वरी की अन्तरङ्ग कही गयी हैं।।५३।। इसके बाद श्रीचक्र रूप रथ के मध्यम पर्व (भाग) में आनन्द महापीठ है तथा उस आनन्द महापीठ में चारों ओर आवास बने हुए हैं, जो पन्द्रह अक्षर वाले कहे गये हैं।।५४।। ये पन्द्रह अक्षर पन्द्रह तिथियां हैं, जो समय रूप हैं अर्थात् समय बताने वाली हैं तथा विश्व को अपने में व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समय विश्व इन तिथियों में ही व्याप्त हैं। भण्डासुर आदि दैत्यों के प्रति विशेष क्षुब्ध होकर क्रोध से भौंहें टेढ़ी किये हुए हैं।।५५।। श्री ललिता देवी के समान ही इनके अपने आकार हैं और श्रीललिता देवी के ही

तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज।
कामेशी भगमाला च नित्यक्लिन्ना तथैव च॥५७॥
भेरुंडा वह्निवासिन्यो महावज्रेश्वरी तथा। दूती च त्वरिता देवी नवमी कुलसुन्दरी॥५८॥
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमंगला।
ज्वालामालिनिकाचित्रे दश पंच च कीर्तिताः॥५९॥
एताभिः संहिता देवी सदा सेवैकबुद्धिभिः। दुष्टं भंडासुरं जेतुं निर्ययौ परमेश्वरी॥६०॥
मंत्रिनाथा महाचक्रे गीतिं चक्रे रथोत्तमे। सप्तपर्वाणि चोक्तानि तत्र देव्याश्च ताः शृणु॥६१॥
गेयचक्ररथे पर्वमध्यपीठनिकेतना। संगीतयोगिनी प्रोक्ता श्रीदेव्या अतिवल्लभा॥६२॥
तदेव प्रथमं पर्व मंत्रिण्यास्तु निवासभूः। अथ द्वितीयपर्वस्था गेयचक्रे रथोत्तमे॥६३॥
रतिः प्रीतिर्मनोजा च वीणाकार्मुकपाणयः। तमालश्यामलाकारा दानवोन्मूलनक्षमाः॥६४॥
तृतीयपर्वसंरूढा मनोभूबाणदेवता। द्राविणी शोषिणी चैव बंधिनी मोहिनी तथा॥६५॥
उन्मादिनीति पंचैता दीप्तकार्मुकपाणयः। तत्र पर्वण्यधस्तात्तु वर्तमाना महौजसः॥६६॥
कामराजश्च कंदर्पो मन्मथो मकरध्वजः। मनोभवः पंचमः स्यादेते त्रैलोक्यमोहनाः॥६७॥
कस्तूरितिलकोल्लासिभालामुक्ताविराजिताः। कवचच्छन्नसर्वांगाः पलाशप्रसवत्विषः॥६८॥

समान उनके आयुध हैं। संसार के उपकार के लिये वे युग युग में वर्तमान रहती हैं।।५६।। हयग्रीव ने कहा कि अगस्त्य जी! अब उनके नाम मुझसे आप सुनिये। वे हैं—१. कामेशी, २. भगमाला, ३. नित्यक्लिन्ना, ४. भेरुण्डा, ५. वह्निवासिनी, ६. महावज्रेश्वरी, ७. दूती, ८. त्वरिता देवी, ९. नवमी कुलसुन्दरी, १०. नित्या, ११. नीलपताका, १२. विजया, १३. सर्वमङ्गला, १४. ज्वाला, १५. मालनिका ये पन्द्रह देवियां कही गयी हैं।।५७-५९।। इन एक बुद्धि वाली देवियों के सहित वही एक परमेश्वरी ललितादेवी दुष्ट भण्डासुर को जीतने के लिये निकल पड़ी।।६०।। उस रथोत्तम महाचक्र में मन्त्रिनाथा देवी ने गीत गाया। इस प्रकार सात पर्वों का वर्णन किया गया है, अब वहाँ रहने वाले उन देवताओं को सुनियो।।६१।। गेय चक्ररथ में पर्व के मध्य पीठनिकेतन है (पीठ निकेतन का अर्थ है—घर और उसमें बैठने का स्थान अर्थात् सिंहासन) श्री ललिता परमेश्वरी देवी की जो अत्यन्त प्रिय संगीतयोगिनी कही गयी हैं, वही प्रथम पर्व उसकी निवास भूमि है, जो कि श्री ललिता देवी की मन्त्रिणी है।।६२-६३½।। इसके बाद रथोत्तम गेयचक्र में द्वितीय पर्व में स्थित रति, प्रीति और मनोजा वीणा और धनुष हाथ में लिये हुए स्थित हैं और वे तीनों देवियां तमाल वृक्ष के समान श्यामल आकार की हैं तथा दानवों का नाश करने में समर्थ हैं।।६३½-६४।। तृतीय पर्व में बैठे हुए, मन में पैदा होने वाले अर्थात् कामदेव के बाण देवता हैं तथा द्राविणी, शोषिणी, बन्धिनी, मोहिनी और उन्मादिनी ये पाँच देवियां चमकता हुआ धनुष हाथ में लिये हुए हैं। वहाँ पर्व के नीचे महापराक्रमी-कामराज, कन्दर्प, मन्मथ, मकरध्वज और मनोभव ये पाँच तीनों लोकों को मोहित करने वाले काम देवता हैं।।६५-६७।। इन पाँचों के मस्तक पर कस्तूरी का तिलक लगा हुआ है, जो बहुत अधिक उल्लास पैदा कर रहा है और कण्ठों में मुक्ता सुशोभित है। ये सभी देव कवच से ढकी हुए और पलाशपत्र के समान

पंचकामा इमे प्रोक्ता भंडासुरवधार्थिनः। जेयचक्ररथेंद्रस्य चतुर्थं पर्व संश्रिताः॥६९॥
ब्रह्मीमुख्यास्तु पूर्वोक्ताश्चंडिका त्वष्टमी परा। तत्र पर्वण्यधस्ताच्च लक्ष्मीश्चैव सरस्वती॥७०॥
रतिः प्रीतिः कीर्तिशांती पुष्टिस्तुष्टिश्च शक्तयः।
एताश्च क्रोधरक्ताक्ष्यो दैत्यं हंतुं महाबलम्॥७१॥
कुंतचक्रधराः प्रोक्ताः कुमार्यः कुंभसंभव। पंचमं पर्व संप्राप्ता वामाद्याः षोडशापराः॥७२॥
गीतिं चक्रू रथेंद्रस्य तासां नामानि मच्छृणु।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शांतिः श्रद्धा सरस्वती॥७३॥
श्रीभूशक्तिश्च लक्ष्मीश्च सृष्टिश्चैव तु मोहिनी।
तथा प्रमाथिनी चाश्वसिनी वीचिस्तथैव च॥७४॥
विद्युन्मालिन्यथ सुरानंदाथो नागबुद्धिका। एतास्तु कुरविंदाभा जगत्क्षोभणलंपटाः॥७५॥
महासरसमन्नाहमादधानाः पदेपदे। वज्रकंकटसंछन्ना अट्टहासोज्ज्वलाः परे।
वज्रदंडौ शतघ्नीं च संबिभ्राणा भुशुंडिकाः॥७६॥
अथ गीतिरथेन्द्रस्य षष्ठं पर्व समाश्रिताः। असितांगप्रभृतयो भैरवाः शस्त्रभीषणा॥७७॥
त्रिशिखं पानपात्रं च बिभ्राणा नीलवर्चसः। असितांगो रुरुश्चंडः क्रोध उन्मत्तभैरवः॥७८॥
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः। अथ गीतिरथेंद्रस्य सप्तमं पर्व संश्रिताः॥७९॥

कान्तिवाले हैं। भण्डासुर का वध करने की इच्छा रखने वाली ये देव पञ्चकाम कहे जाते हैं अर्थात् ये पाँचों काम देवता हैं।।६८-६८½।। जेयचक्ररथेन्द्र के चौथे पर्व (भाग) में ब्राह्मीमुखी स्थित हैं। जो पूर्व में चण्डिका कही गयी हैं, वही अष्टमी परा हैं। उस पर्व के नीचे १. लक्ष्मी, २. सरस्वती, ३. रति, ४. प्रीति, ५. कीर्ति, ६. शान्ति, ७. पुष्टि और ८. तुष्टि शक्तियां स्थित हैं और ये सभी महाबलवान् दैत्य को मारने के लिये क्रोध से लाल-लाल आँखें किये हुई हैं। भगवान् हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी ये सब कुमारियां भाले और चक्र धारण करने वाली कही गयी हैं।।६८½-७१½।।

पाँचवे पर्व में वामा आदि सोलह अपरा देवियां सम्यक् रूप से प्राप्त हैं, जिन्होंने रथराज को गीति बनाया, उनके नामों को सुनिये, उनके नाम हैं—१. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. शान्ति, ५. श्रद्धा, ६. सरस्वती, ७. श्रीभूशक्ति, ८. लक्ष्मी, ९. सृष्टि, १०. मोहिनी, ११. प्रमाथिनी, १२. अश्विसिनी, १३. वीचि, १४. विद्यन्मालिनी, १५. सुरानन्दा और १६. नागबुद्धिका। ये सभी लालमणिके समान आभा वाली हैं और संसार में क्षोभ (हाहाकार) मचाने में लम्पट हैं। जो महान् सरोवर के समान पद पद पर जाल (फंदा) बनाये हुई हैं तथा सभी वज्रकवच पहने हुए हैं और अट्टहास कर रही हैं। वे अपने हाथों में वज्र और दण्ड और सौ को मारने वाली बन्दूक तथा घूम-घूम कर मारने वाली बन्दूक लिये हुए हैं।।७१½-७६।। इसके बाद गीतिरथराज के छठे पर्व में असिताङ्ग आदि भीषणशस्त्रधारी भैरव समाश्रित हैं। जो त्रिशिख (त्रिशूल) पानपात्र और नीलवस्त्र धारण किये हुए हैं, इनके नाम हैं—१. असिताङ्ग, २. रुरु, ३. चण्ड, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. कपाली, ७. भीषण और ८. संहार, इस

मातंगी सिद्धलक्ष्मीश्च महामातंगिकापि च। महती सिद्धलक्ष्मीश्च शोणा बाणधनुर्धराः॥८०॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्गणपः क्षेत्रपस्तथा। दुर्गांबा बटुकश्चैव सर्वे ते शस्त्रपाणयः॥८१॥
तत्रैव पर्वणोऽधस्ताल्लक्ष्मीश्चैव सरस्वती। शंखः पद्मो निधिश्चैव ते सर्वे शस्त्रपाणयः॥८२॥
लोकद्विषं प्रति क्रुद्धा भंडं चंडपराक्रमम्। शक्रादयश्च विष्वंता दश दिक्चक्रनायकाः॥८३॥
शक्तिरूपास्तत्र पर्वण्यधस्तात्कृतसंश्रयाः। वज्रं शक्तिं कालदंडमसिं पाशं ध्वजं तथा॥८४॥
गदां त्रिशूलं दर्भास्त्रं वज्रं च दधतस्त्वमी। सेवंते मंत्रिनाथां तां नित्यं भक्तिसमन्विताः॥८५॥
भंडासुरान्दुर्दुरूढान्निहंतुं विश्वकंटकान्। मंत्रिनाथाश्रयद्वारा ललिताज्ञापनोत्सुकाः॥८६॥
गीतिचक्ररथोपांते दिक्पालाः संश्रयं ददुः। सर्वेषां चैव देवानां मंत्रिणी द्वारतः कृता॥८७॥
विज्ञापना महादेव्याः कार्यसिद्धिं प्रयच्छति। राक्षी विज्ञापना चेति प्रधानद्वारतः कृता॥८८॥

यथा खलु फलप्राप्तिः सेवकानां हि जायते।
अन्यथा कथमेतेषां सामर्थ्यं ज्वलितौजसः॥८९॥

अपधृष्यप्रभावायाः श्रीदेव्या उपसर्पणे। सा हि संगीतविद्येति श्रीदेव्या अतिवल्लभा॥९०॥

नातिलंघंति च क्वापि तदुक्तं कार्यसिद्धिषु।
श्रीदेव्याः शक्तिसाम्राज्ये सर्वकर्माणि मंत्रिणी॥९१॥

प्रकार ये आठ भैरव हैं।।७७-७८½।। इसके बाद गीति रथराज के सातवें पर्व में मातंगी, सिद्धलक्ष्मी और महामातङ्गिका सम्यक् प्रकार से स्थित है। वे महती सिद्धलक्ष्मी हैं। लालवर्ण की है तथा बाण और धनुष धारण की हुई हैं।।७८½-८०।। उसी पर्व के नीचे गणपाल और क्षेत्रपाल स्थित हैं तथा दुर्गाम्बा और बटुक है तथा ये सभी हाथों में शस्त्र लिये हुये हैं।।८१।। उसी पर्व के नीचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं। शंख, पद्म और निधि हैं, वे सभी हाथों में शस्त्र धारण किये हुए हैं।।८२।। वे सभी संसार से द्वेष करने वाला, भयंकर पराक्रमी भण्डासुर के प्रति क्रोधित हैं। इसके अतिरिक्त इन्द्र आदि देवता विष्णु तक दश दिशाओं के अधिपति शक्तिरूप से उस पर्व के नीचे अपना निवास बनाये हुए हैं तथा सभी वज्र, शक्ति, कालदण्ड, तलवार, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, दर्भास्त्र, वज्र को धारण किये नित्य भक्ति से युक्त होकर मन्त्रिनाथा की सेवा कर रहे हैं। वे सब अत्यन्त दुरूढ विश्व के लिय कांटा बने हुए भण्डासुर को मारने के लिये मन्त्रिनाथ द्वारा ललिता देवी की घोषणा सुनने के लिये उत्सुक थे।।८३-८६।। गीतिचक्ररथ के उपान्त में दिक्पाल आवास दे रहे हैं। सब देवताओं के द्वारा बनायी गयी मन्त्रिणी विज्ञापना महादेवी ललिता परमेश्वरी की कार्यसिद्धि प्रदान करती हैं। राक्षी और विज्ञापना प्रधानद्वार पर स्थित की गयीं।।८७-८८।। जिस प्रकार फल की प्राप्ति सेवकों की होती है अर्थात् सेवकों के बल पर ही सफलता मिलती है। सेवकों के विना सफलता मिल ही नहीं सकती। प्रदीप्त पराक्रम वाले की सामर्थ्य सेवक ही है।।८९।।

जिनका प्रभाव कभी नष्ट नहीं हो सकता ऐसी श्री ललिता देवी के पास जाने पर वह जो श्री ललिता देवी की अत्यन्त प्रिय संगीत विद्या है, वह उन देवी को कहे गये कार्य का किसी भी कार्य की सिद्ध में उल्लंघन नहीं करती थी। उन श्रीदेवी के शक्ति साम्राज्य में मन्त्रिणी विज्ञापना सर्वकामों को जो नहीं करने को होते थे। उनको कर

अकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं कर्त्तुं चैव प्रगल्भते। तस्मात्सर्वेऽपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जयकांक्षिणः।
तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते॥९२॥

इति श्रीललितादेव्याश्चक्रराजरथोत्तमे। पर्वस्थितानां देवीनां नामानि कथितान्यलम्॥९३॥

भंडासुरस्य संहारे तस्या दिव्ययुधान्यपि। प्रोक्तानि गेयचक्रस्य पर्वदेव्याश्च कीर्तिताः॥९४॥

इमानि सर्वदेवीनां नामान्याकर्णयंति ये। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते स्युर्विजयिनो नराः॥९५॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने श्रीचक्रराजरथज्ञेयचक्ररथ-पर्वस्थदेवतानामप्रकाशनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

देती थी तथा जो करने को होते थे, उनको बहुत अच्छी तरह कुशलता पूर्वक करती थीं। अर्थात् जिस काम को करने के लिए नहीं कहा गया है तथा उसको करना है, उसे कर देती थी तथा करने को कहे गये कार्य को तो बहुत अच्छी तरह करती थी। उसी कारण से सभी दिक्पाल श्री ललिता देवी की जय की आकांक्षा रखते थे और उस प्रधानभूत देवी श्रीललिता परमेश्वरी की सेवा में ही लगे रहते थे।।९०-९२।। इस प्रकार श्री ललिता परमेश्वरी के श्री चक्रराज नाम उत्तम रथ में पर्वों में स्थित देवियों के समस्त नामों को कहा गया है।।९३।। भण्डासुर के संग्राम में उस देवी के दिव्य आयुधों को भी बता दिया गया है तथा गेय चक्र की पर्व देवियों की भो बता दिया गया है।।९४।। इन सब देवियों के नामों को जो सुनते हैं, वे मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर विजयी होते हैं।।९५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १९वाँ अध्याय श्रीचक्रराजरथ तथा ज्ञेयचक्रपर्वस्थ देवतानामों का प्रकाशन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

किरिचक्ररथदेवताप्रकाशनं नाम

विंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

किरिचक्ररथेन्द्रस्य पंचपर्वसमाश्रिताः। देवताश्च शृणु प्राज्ञ नाम यच्छृण्वतां जयः॥१॥
प्रथमं पर्वबिंद्वाख्यं संप्राप्ता दंडनायिका। सा तत्र जगदुद्दंडकण्टकव्रातघस्मरी॥२॥
नानाविधाभिर्ज्वालाभिर्निर्तयंती जयश्रियम्॥३॥
उद्दण्डपोत्र निर्घातनिर्भिन्नोद्धतदानवाः। दंष्ट्राबालमृगांकांशुविभावनविभावरी॥४॥
प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहनीलवपुर्ल्लता। किरिचक्ररथेंद्रस्य सालंकारायते सदा।
पोत्रिणी पुत्रिताशेषविश्वावर्तकदंबिका॥५॥
तस्यैव रथनाभस्य द्वितीयं पर्व संश्रिताः। जृंभिनी मोहिनी चैव स्तंभिनी तिस्त्र एव हि।
उत्फुल्लदाडिमीप्रख्यं सर्वदानवमर्दनाः॥६॥
मुसलं च हलं हालापात्रं मणिगणार्पितम्। ज्वलन्माणिक्यवलयैर्बिभ्राणाः पाणिपल्लवैः॥७॥
अतितीक्ष्णकरालाक्ष्यो ज्वालाभिर्दैत्यसैनिकान्। दहंत्य इव निःशंकं सेवंते सूकराननाम्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२०

किरिचक्ररथ में देवियों के नामों का वर्णन

हयग्रीव ने कहा कि हे प्राज्ञ अगस्त्य जी! अब किरिचक्ररथराज के पंच पर्व में आश्रित सुनने वालों को जय प्रदान करने वाली देवियों के नाम सुनिये।।१।। प्रथम पर्व बिन्दु नामक है, जिसको दण्डनायिका ने प्राप्त कर लिया है। वहाँ पर वह संसारके उद्दण्ड कण्टकसमूह को नष्ट करने वाली है।।२।। वह अनेकों प्रकार की ज्वालाओं से विजय श्री के लिये नृत्य करती हुई स्थित हैं। जो वज्र के प्रहार से उद्वत दानवों को नष्ट करने वाली और बालचन्द्रमा की किरणों से सुन्दर रात्रि के समान दाँतों वाली हैं तथा जिसका शरीर वर्षाकालीन मेघों के घेरे के समान नीलवर्ण का है। वह किरिचक्ररथ राज की सदा शोभा बढ़ाती है। वह वज्र धारण करने वाले पुत्रिता शेष विश्व के आवर्त समूह वाली है।।३-५।।

उसी रथ की नाभ के द्वितीय भाग में जृम्भिनी, मोहिनी और स्तम्भिनी तीन देवियां स्थित हैं। जो खिले हुए अनार के समान चमकने वाली हैं तथा सब दानवों का मर्दन करने वाली हैं। वे देवियां चमकते माणिक्य जटित कंगल पहने हुये हाथों में मूसल हल, हालापात्र (मदिरा का प्याला) और मणियों को धारण किये हुए हैं।।६-७।। उन देवियों की अत्यन्त तीक्ष्ण और कराल आँखें हैं, जो अपनी ज्वालाओं से दैत्य सैनिकों को जलाती हुई के समान निःशंक

किरिचक्ररथेंद्रस्य तृतीयं पर्व संश्रिताः। अंधिन्याद्याः पञ्च देव्यो देवीयंत्रकृतास्पदाः॥९॥
कठोरेणाट्टहासेन भिंदंत्यो भुवनत्रयम्। ज्वाला इव तु कल्पाग्नेरंगनावेषमाश्रिताः॥१०॥
भंडासुरस्य सर्वेषां सैन्यानां रुधिरप्लुतिम्।
लिलिक्षमाणा जिह्वाभिर्लेलिहानाभिरुज्ज्वलाः॥११॥
सेवंते सततं दंडनाथामुद्दण्डविक्रमाम्। किरिचक्ररथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्व संश्रिताः॥१२॥
ब्रह्माद्याः पञ्चमीवर्ज्या अष्टमीवर्जिता अपि।
षडेव देव्यः षट्चक्रज्वलज्ज्वालाकलेवराः॥१३॥
महता विक्रमौघेण पिबंत्य इव दानवान्। आज्ञया दंडनाथायास्तं प्रदेशमुपासते॥१४॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्तात्त्वरिताः स्थानमाश्रिताः।
यक्षिणी शंखिनी चैव लाकिनी हाकिनी तथा॥१५॥
शाकिनी डाकिनी चैव तासामैक्यस्वरूपिणी। हाकिनी सप्तमीत्येताश्चंडदोर्दंडविक्रमाः॥१६॥
पिबंत्य इव भूतानि पिबंत्य इव मेदिनीम्।
त्वचं रक्तं तथा मांसे मेदोऽस्थि च विरोधिनाम्॥१७॥
मज्जानमथ शुक्रं च पिबन्त्यो विकटाननाः। निष्ठुरैः सिंहनदैश्च पूरयंत्यो दिशो दश॥१८॥
धातुनाथा इति प्रोक्ता अणिमाद्यष्टासिद्धिदाः। मोहने मारणे चैव स्तंभने ताडने तथा॥१९॥

होकर सूकरानना (वाराही) देवी की सेवा करती है।।८।। किरिचक्ररथराज के तीसरे पर्व पर अंधिनी आदि पाँच देवियां स्थित हैं, जो देवीयन्त्र के बने हुए स्थान वाली हैं।।९।। वे कठोर अट्टहास से तीनों लोकों का भेदन करती हुई प्रलयकाल की अग्नि की ज्वाला के समान शरीर का वेष बनाकर स्थित हैं।।१०।। वे भण्डासुर के समस्त सैनिकों के रुधिर को पीने की इच्छा करती हुई अपनी जीभ को लपलपाती हुई चमक रही हैं। जो सब निरन्तर दण्डनाथा देवी के उद्दण्ड पराक्रम की सेवा करती हैं।।११-११½।। किरिचक्ररथराज के चौथे पर्व में ब्रह्म आदि पञ्चमी को छोड़कर और अष्टमी को भी छोड़कर छः ही देवियाँ, षट्चक्र को जलती हुई ज्वाला के समान शरीर वाली हैं।।११½-१३।। वे अपने महान् पराक्रमों से दानवों का रुधिर पीती हुई दण्डनाथा देवी की आज्ञा से उस स्थान में रहती हैं।।१४।। उस पर्व के नीचे त्वरिता देवी का स्थान बनाया है। यक्षिणी, शंखिनी, लाकिनी, हाकिनी, शाकिनी और डाकिनी उन देवियों की एकता के स्वरूप वाली हैं अर्थात् सब त्वरिता देवी के ही रूप वाली हैं। हाकिनी सातवीं देवी हैं, ये सब भयंकर भुजाओं वाली पराक्रमयुक्त देवियां हैं।।१५-१६।।

ये सब देवियां ऐसी लगती हैं, मानों कि प्राणियों तथा पृथ्वी जल अग्नि वायु एवं आकाश समस्त भूततत्त्वों को पी रही हैं अथवा मानो कि पृथ्वी को ही पी रही हैं तथा ये मानों कि शत्रुओं की चमड़ी, रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डियों, मज्जा और शुक्र को ही पी जा रही हैं। ये भयंकर मुखवाली देवियां निष्ठुर सिंहनादों से दशों दिशाओं को व्याप्त कर रही हैं।।१७-१८।। वे देवियां धातुनाथा कही गयी हैं तथा वे अणिमा आदि सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं। वे दुष्ट दैत्यों का मोहन करने, उनका मारण करने, उनको जहाँ के तहाँ रोकने, उनका ताडन करने तथा

भक्षणे दुष्टदैत्यानामामूलं च निकृन्तने। पंडिताः खंडिताशेषविषदो भक्तिशालिषु॥२०॥
धातुनाथा इति प्रोक्ताः सर्वधातुषु संस्थिताः। सप्तापि वारिधीनूर्मिमालासंचुंबितांबरान्॥२१॥
क्षणार्धेनैव निष्पातुं निष्पन्नबहुसाहसाः। शकटाकारदन्ताश्च भयंकरविलोचनाः॥२२॥
स्वस्वामिनीद्रोहकृतां स्वकीयसमयद्रुहाम्। वैदिकद्रोहणादेव द्रोहिणां वीरवैरिणाम्॥२३॥
यज्ञद्रोहकृतां दुष्टदैत्यानां भक्षणे समाः। नित्यमेव च सेवन्तो पोत्रिणीं दंडनायिकाम्॥२४॥
तस्यैव पर्वणः पार्श्वे द्वितीये दिव्यमंदिरे। क्रोधिनी स्तंभिनी ख्याते वर्तते देवते उभे॥२५॥
चामरे वीजयन्त्यौ च लोलकंकणदोर्लते। देवद्विषां चमू रक्तहालापानमहोद्धते॥२६॥
सदा विघूर्णमानाक्ष्यौ सदा प्रहसिताननेे। अथ तस्य रथेंद्रस्य किरिचक्राश्रितस्य च॥२७॥
पार्श्वद्वयकृतावासमायुधद्वंद्वमुत्तमम्। हलं च मुसलं चैव देवतारूपमास्थितम्॥२८॥
स्वकीयमुकुटस्थाने स्वकीयायुधविग्रहम्। आविभ्राणं जगद्वेषिधस्मरं विबुधैः स्मृतम्॥२९॥
एतदायुधयुग्मेन ललिता दंडनायिका। खण्डयिष्यति संग्रामं विषंगं नामदानहम्॥३०॥
तस्यैव पर्वणो दण्डनाथाया अग्रसीमनि। वर्त्तमानो महाभीमः सिंहो नादैर्ध्वनन्नमः॥३१॥
दंष्ट्राकटकटात्कार बधिरीकृतदिङ्मुखः। चंडोच्चंड इति ख्यातश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः॥३२॥

दैत्यों का भक्षण करने में कुशल हैं। यहाँ तक कि दैत्यों का समूल विनाश करने में पण्डित (कुशल) हैं तथा भक्ति करने वाले लोगों की समस्त विपत्तियों को खण्डित करने वाली हैं।।२०।। इसीलिये ये देवियां धातुनाथा कही गयी हैं; क्योंकि ये सब धातुओं में स्थित हैं। प्राणियों के रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन सातों धातुओं में ये स्थित हैं; इसीलिये इनको धातुनाथा कहा गया है। ये सब सातों समुद्रों की लहरों की मालाओं से आकाश को चूमने वाली हैं और आधे क्षण में ही नीचे गिराने को पूर्ण और बहुत अधिक साहस रखने वाली हैं। वे सब शकट (गाड़ी) के समान आकार वाले दाँतों वाली और भयंकर आँखों वाली हैं।।२१-२२।। वे अपनी स्वामिनी से द्रोह करने वाले, अपने समय से द्रोह करने वाले, वैदिक नियमों से द्रोह करने वाले तथा वीरशत्रुओं और यज्ञ से द्रोह करने वाले दुष्ट दैत्यों का भक्षण करने में समर्थ नित्य ही वज्रधारण करने वाली दण्डनायिका की सेवा करती हैं।।२३-२४।।

उसी पर्व के पास में दूसरे दिव्य मन्दिर में क्रोधिनी और ख्यातिनी दो देवियां हैं।।२५।। जो हिलते हुये कंगन वाली भुजाओं से चामर ढुलाती हुई, देवता से द्वेष करने वाले दैत्यों के रक्तरूपी मद्य का पान कर महा उद्धत स्वभाव वाली हैं तथा जो सदा अपनी आँखों को इधर उधर घुमाती हुई तथा हँसती हुई अपने आसन पर विराजमान रहती हैं।।२६-२६½।। इसके बाद उस किरिचक्र पर आश्रित रथराज के दोनों पाश्व में (अगल-बगल में) रहने वाले दो उत्तम आयुध हल और मूसल देवता रूप में स्थित हैं।।२६½-२८।। अपने मुकुट के स्थान पर, संसार के शत्रुओं के दावानल अपने ही आयुध रूप शरीर को धारण करने वाला धस्मर आयुध देवताओं द्वारा स्मरण किया गया है।।२९।। इन दोनों आयुधों हल और मुसल से दण्डनायिका ललिता संग्राम में विषंग नामक दानव को खण्ड-खण्ड कर देगी।।३०।। उसी पर्व की आगे वाली सीमा में दण्डनाथा देवी का महाभीम सिंह वर्तमान हैं, जो अपनी दहाड़ से आकाश को व्याप्त कर रहा है, जो अपने दाँतों की कटकटाहट ध्वनि से दिशाओं को बहरा बना दे रहा

शूलखड्गप्रेतपाशान्दधानो दीप्तविग्रहः। सदा संसेवते देवीं पश्यन्नेव हि पोत्रिणीम्॥३३॥
किरिचक्ररथेंद्रस्य षष्ठं पर्वसमाश्रिताः। वार्त्ताल्याद्या अष्ट देव्यो दिक्ष्वष्टासूपविश्रुताः॥३४॥
अष्टपर्वतनिष्पातघोरनिर्घातनिःस्वनाः। अष्टनागस्फुरद्भूषा अनष्टबलतेजसः॥३५॥
प्रकृष्टदोषप्रकांडोष्महुतदानवकोटयः। सेवन्ते ललितां देव्यो दंडनाथामहर्निशम्॥३६॥
तासामाख्याश्च विख्याताः समाकर्णय कुंभज।
वार्ताली चैव वाराही सा वाराहमुखी परा॥३७॥
अंधिनी रोधिनी चैव जृंभिणी चैव मोहिनी। स्तंभिनीति रिपुक्षोभस्तंभनोच्चाटनक्षमाः॥३८॥
तासा च पर्वणो वामभागे सततसंस्थितिः। दंडाथोपवाह्यस्तु कासरो धूसराकृतिः॥३९॥
अर्धक्रोशायतः शृङ्गद्वितये क्रोशविग्रहः। खड्वन्निष्ठुरैर्लोमजातैः संवृतविग्रहः॥४०॥
कालदंडवदुच्चंडबालकांडभयंकरः। नीलांजनाचलप्रख्यो विकटोन्नतरुष्टभूः॥४१॥
महानीलागिरिश्रेष्ठगरिष्ठस्कंधमंडलः। प्रभूतोष्मलनिश्वासप्रसराकंपितांबुधिः॥४२॥
घर्घरध्वनिना कालमहिषं विहसन्निव। वर्त्तते खुरविक्षिप्तपुष्कलावर्तवारिदः॥४३॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताच्चित्रस्थानकृतालयाः। इन्द्रादयोऽनेकभेदा दिशामष्टकदेवताः॥४४॥

है। चार हाथ और तीन नेत्रों वाला अत्यन्त प्रचण्ड चण्डनाम का प्रेत, शूल, खड्ग, और प्रेतपाश को धारण करने वाला, सदा वज्र धारण करने वाली वाराही देवी को देखता हुआ, उनकी सेवा करता है।।३१-३३।। किरिचक्ररथ राज के छठे भाग में वार्ताली आदि आठ देवियां हैं, जो आठों दिशाओं में व्याप्त हैं तथा जो आठ पर्वतों के गिरने से घोर टकराने की ध्वनि वाली, फुत्कार मारते हुए आठ भयंकर नागों की वेश-भूषा वाली जिनका बल और तेज नष्ट नहीं हुआ है, ऐसी बहुत लम्बी भुजाओं की प्रचण्ड अग्नि में करोड़ों दानवों को आहूत करने वाली आठ देवियां दण्डनाथा ललिता देवी की रात-दिन सेवा करती हैं।।३४-३६।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी उन आठ विख्यात देवियों के नामों को सुनिये वे हैं—१. वार्ताली, २. वाराही, ३. वाराहमुखी, ४. अंधिनी, ५. रोधिनी, ६. जृम्भिणी, ७. मोहिनी, और ८. स्तमभिनी। ये सभी शत्रुओं में क्षोभ (हाहाकार) और उनका स्तम्भन तथा उच्चाटन करने में समर्थ हैं।।३७-३८।। पर्व के वामभाग में उन देवियों की नित्य स्थिति रहती है। दण्डनाथा के पास में बाहरी ओर धूसर (धुंधली) आकृति का एक भेंसा है।।३९।। उस भेंसे के सींग आधेकोश तक लम्बे हैं और उसका शरीर एक कोश लम्बा है। उसके शरीर के बाल लोहे के समान कठोर हैं।।४०।। वह कालदण्ड के समान है तथा उच्चण्डबाल जिसके अंग अंग पर हैं। जिसकी नीलाञ्जन पर्वत के समान विकट और उठी हुई क्रुद्ध भौंहें हैं।।४१।। महान् नीलगिरि के समान श्रेष्ठ और विशाल उसके कंधे हैं। बहुत अधिक शरीर की ऊष्मा से जो उसकी श्वास निकल रही है, वह फैलकर समुद्र को भी कम्पित कर रही है।।४२।। वह भेंसा अपने गले की घर्घर ध्वनि से यमराज के भेंसे को भी हँसी उड़ता हुआ सा दिखायी दे रहा है। वह जब अपने खुरों से जमीन खोदता है, तब वह पुष्कल और आवर्तक मेघों जैसा भयंकर लगता है।।४३।। उसी पर्व के नीचे से चित्रस्थान कृत (अनेकों प्रकार के चित्रों से युक्त) घर हैं, जिनमें इन्द्र आदि अनेक

ललितायां कार्यसिद्धिं विज्ञापयितुमागताः। इन्द्रश्चाप्सरसश्चैव स चतुष्षष्टिकोटयः॥४५॥
सिद्ध अग्निश्च साध्याश्च विश्वेदेवास्तथापरे। विश्वकर्मा मयश्चैव मातरश्च बलोन्नताः॥४६॥
रुद्राश्च परिचाराश्च रुद्रा वैव पिशाचकाः। क्रंदंति रक्षसां नाथा राक्षसा बहवस्तथा॥४७॥
मित्राश्च तत्र गंधर्वाः सदा गानविशारदाः। विश्वावसुप्रभृतयो विख्यातास्तत्पुरोगमाः॥४८॥
तथा भूतगणाश्चान्ये वरुणो वासवः परे। विद्याधराः किन्नराश्च मारुतेश्वर एव च॥४९॥
तथा चित्ररथश्चैव रथकारककारकाः । तुंबुरुर्नारदो यक्षः सोमो यक्षेश्वरस्तथा॥५०॥
देवैश्च भगवांस्तत्र गोविंदः कमलापतिः। ईशानश्च जगच्चक्रभक्षकः शूल भीषणः॥५१॥
ब्रह्मा चैवाश्विनीपुत्रो वैद्यविद्याविशारदौ। धन्वंतरिश्च भगवानथान्ये गणनायकाः॥५२॥
कटकाण्डगलद्दान संतर्पितमधुव्रताः। अनंतो वासुकिस्तक्षः कर्कोटः पद्म एव च॥५३॥
महापद्मः शंखपालो गुलिकः सुबलस्तथा। एते नागेश्वराश्चैव नागकोटिभिरावृताः॥५४॥
एवंप्रकारा बहवो देवतास्तत्र जाग्रति। पूर्वादिदिशमारभ्य परितः कृतमंदिराः॥५५॥
तत्रैव देवताश्चक्रे चक्राकार मरुद्धिष्यः। आश्रित्य किल वर्तंते तदधिष्ठातृदेवताः॥५६॥
जृंभिणी स्तंभिनी चैव मोहिनी तिस्त्र एव च।
तस्यैव पर्वणः प्रांते किरिचक्रस्य भास्वतः॥५७॥
कपालं च गदां बिभ्रदूर्ध्वकेशो महावपुः। पातालतलजंबालबहुलाकारककालिमा॥५८॥

भेद वाले आठ दिशाओं के देवता हैं। जो सब ललिता देवी के कार्य की सिद्धि के बताने के लिये आये हैं।।४४-४४½।। वह इन्द्र और अप्सरायें, चौसठ करोड़ सिद्धगण।।४४½-४५।। तथा अग्नि देव साध्यगण विश्वेदेव, विश्वकर्मा, मयदानव, बलवती मातायें भी हैं।।४६।। रुद्रगण, परिचारकगण, रुद्रगण, पिशाच राक्षसों स्वामी तथा बहुत से राक्षस क्रन्दन कर रहे हैं।।४७।। तथा मित्रगण, वहाँ गान विद्या में विशारद गन्धर्व, विश्वावसु आदि विख्यात पुरोगम (पुरोहित) भी आये हुए हैं।।४८।। तथा भूतगण, वरुण, दूसरे इन्द्र, विद्याधर, किन्नर, मारुतेश्वर भी है, आये हुए हैं।।४९।। तथा चित्ररथ, रथकारक, तुम्बरु, नारदमुनि, यक्ष, सोम, यक्षेश्वर।।५०।। तथा देवताओं के साथ भगवान् गोविन्द कमलापति विष्णु, ईशान संसार चक्र के भक्षक भीषण शूल वाले शिव।।५१।। ब्रह्मा, वैद्य विशारद अश्विनी कुमार भगवान् धन्वन्तरि तथा अन्य गणनायक।।५२।।

हाथी के गण्डस्थल से बहने वाले मधु का पान करने वाले भौंरे, अनन्त नाग वासुकि, तक्षक, कर्कोट, पद्म नामक नाग, महापद्म, शंखपाल, गुलिक तथा सुबल ये सब नागों के स्वामी जो अनेकों नागों से घिरे हुए थे, इस प्रकार के बहुत से देवता, वहाँ पर जागते रहते हैं, जो पूर्व दिशा से आरम्भ करके चारों ओर अपने घर बनाये हुए हैं।।५३-५५।। वहीं पर मरुत् देवताओं ने दिशाओं को चक्राकार कर दिया है। उन चक्रों का आश्रय लेकर वहाँ की स्वामिनी तीन देवियां जृम्भिणी, स्तम्भिनी और मोहिनी वहाँ पर वर्तमान हैं।।५६-५६½।। चमकते हुए किरिचक्र से उसी पर्व के प्रान्त भाग में कपाल (नरमुण्डों) और गदा को धारण करने वाले, ऊपर के केशवाले, विशाल शरीर वाले, पाताल तल कीचड़ के बहुल आकार की कालिमा जैसे तथा अपने अट्टहास रूपी महाव्रज से

अट्टहासमहावज्रदीर्णब्रह्माण्डमंडलः। भिंदन्डमरुकध्वानै रोदसीकंदरोदरम्॥५९॥
फूत्कारीत्रिपुरायुक्तं फणिपाशं करे वहन्। क्षेत्रपालः सदा भाति सेवमानः किटीश्वरीम्॥६०॥
तस्यैव च समीपस्थस्तस्या वाहनकेसरी। यमारुह्य प्रववृते भंडासुरवधैषिणी॥६१॥
प्रागुक्तमेव देवेशीवाहसिंहस्य लक्षणम्। तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्दंडनाथासमत्विषः॥६२॥
दंडिनीसदृशाशेषभूषणायुधमंडिताः। शम्याः क्रोडाननाश्चंद्ररेखोत्तंसितकुंतलाः॥६३॥
हलं च मुसलं हस्ते घूर्णयंत्यो मुहुर्मुहुः। ललिताद्रोहिणां श्यामाद्रोहिणां स्वामिनीद्रुहाम्॥६४॥
रक्तस्रोतोभिरुत्कूलैः पूरयंत्यः कपालकम्। निजभक्तद्रोहकृता मंत्रमालाविभूषणाः॥६५॥
स्वगोष्ठीसमयाक्षेपकारिणां मुंडमंडलैः। अखंडरक्तविच्छर्दैर्बिभ्रत्यो वक्षसि स्रजः॥६६॥
सहस्रं देवताः प्रोक्ताः सेवमानाः किटीश्वरीम्॥६७॥
तासां नामानि सर्वासां दंडिन्या; कुंभसंभव। सहस्रनामाध्याये तु वक्ष्यंते नाधुना पुनः॥६८॥
अथ तासां देवतानां कोलास्यानां समीपतः।
वाहनं कृष्णसारंगो दंडिन्याः समये स्थितः॥६९॥
क्रोशार्धार्द्धायतः श्रृंगे तदर्धार्धायत्रो मुखे। क्रोशप्रमाणपादश्च सदा चोद्धतवालधिः॥७०॥
उदरे धवलच्छायो हुंकारेण महीयसा। हसन्मारुतवाहस्य हरिणस्य पराक्रमम्॥७१॥

ब्रह्माण्डमल को विदीर्ण कर देने वाले, जोर से बजाते हुए डमरू की ध्वनियों से आकाश और पृथ्वी को कन्दरा (गुफा) और उदर बनाने वाले, तीनों लोकों में फूत्कार करने वाले, नागपाश को हाथ में लिये हुए क्षेत्रपाल, उन किटीश्वरी देवी की सेवा करते हुए सदैव शोभित होते हैं।।५८½-६०।। उसी के पास उन ललिता देवी का वाहन सिंह स्थित है, जिस पर चढ़कर भण्डासुर के वध की इच्छा रखने वाली महादेवी अपने वधरूप कार्य में प्रवृत्त होती हैं।।६१।। उन देवेशी के वाहन सिंह का लक्षण तो पहले ही कह दिया गया है।।६१½।।

उसी पर्व के नीचे से दण्डनाथा के समान कान्तिवाली दण्डिनी के समान समस्त भूषण और आयुधों से सजी हुई शम्यायें, क्रोडानना, चन्द्ररेखा, ऊपर को उठे हुए केशों वाली देवियां, हाथों में हल, मुसल लेकर बार-बार इधर-उधर घूर-घूर कर देखती हुईं, ललिता देवी के द्रोहियों, श्यामा देवी के द्रोहियों और स्वामिनी के वैरियों के खींचे हुए रक्त स्रोतों से अपने कपालों को भरती हुई तथा अपने भक्तों से द्रोह करने वालों के द्वारा मन्त्रमाला विभूषण वाली अपनी गोष्ठी के समय का आक्षेप करने वालों अर्थात् अपनी सभा समाज की परम्पराओं की जो बुराई करते थे, उनके अखण्ड रक्त का विशेष छेदन कर वक्षस्थल पर मालायें धारण करने वाली देवियां, उन किटीश्वरी की सेवा करती हुई कही गयी हैं।।६१½-६७।। हे अगस्त्य मुनि! दण्डिनी की उन सब देवियों के नाम सहस्रनामाध्याय में बताये जायेंगे, अब यहाँ नहीं।।६८।। इसके बाद उन कौल सम्प्रदाय वाली देवियों के समीप से दण्डिनी देवी का कृष्ण सारंग नामक वाहन पास में स्थित है।।६९।। उसके सींग आधे कोश लम्बे हैं तथा उस आधे से आधे अर्थात् चौथाई कोश लम्बा उसका मुख है, एक कोश लम्बे उसके पैर हैं तथा उसका बालों को धारण करने वाला शिर सदा उठा हुआ रहता है।।७०।। उसके उदर पर श्वेत रंग की छाया है। उसकी अत्यन्त तीव्र हुंकार से हँसते हुए मारुत को वहन करने वाले हरिण का पराक्रम प्रकट होता है।।७१।।

तस्यैव पर्वणो देशे वर्त्तते वाहनोत्तमम्। किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्थितस्तत्रैव पर्वणि॥७२॥
वर्तते मदिरासिंधुर्देवतारूपमास्थिता। माणिक्यगिरिवच्छोणं हस्ते पिशितपिंडकम्॥७३॥
दधाना घूर्णमानाक्षी हेमांभोजस्त्रगावृता। मदशक्त्या समाश्लिष्टा धृतरक्तसरोजया॥७४॥
यदा यदा भंडदैत्यः संग्रामे संप्रवर्तते। युद्धस्वेद मनुप्राप्ताः शक्तयः स्युः पिपासिताः॥७५॥
तदातदा सुरासिंधुरात्मानं बहुधा क्षिपन्। रणे खेदं देवतानामंजसापाकरिष्यति॥७६॥
तदप्यद्भुतमे वर्षे भविष्यति न संशयः। तदा श्रोष्यसि संग्रामे कथ्यमानं मया मुदा॥७७॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्तादष्टदिक्ष्वध एव हि। उपर्यपि कृतावासा हेतुकाद्या दश स्मृताः॥७८॥
महांतो भैरवश्रेष्ठाः ख्याता विपुलविक्रमाः। उद्दीप्तायुत तेजोभिर्द्दिवा दीपितभानवः॥७९॥
कल्पांतकाले दंडिन्या आज्ञया विश्वघस्मराः। अत्युदग्रप्रकृतयो रददष्टौष्ठसंपुटाः॥८०॥
त्रिशूलाग्रविनिर्भिन्नमहावारिदमंडलाः। हेतुकस्त्रिपुरारिश्च तृतीयश्चाग्निभैरवः॥८१॥
यमजिह्वैकपादौ च तथा कालकरालकौ। भीमरूपो हाटकेशस्तथैवाचलनामवान्॥८२॥
एते दशैव विख्याता दशकोटिभटान्विताः। तस्यैव किरिचक्रस्य वर्तंते पर्वसीमनि॥८३॥

उसी पर्व स्थान में उत्तम वाहन है, जो किरिचक्ररथराज के पर्वं में वहीं स्थित है।।७२।। वहाँ उस पर्व में अनेक शक्तियां हैं—जो मदिरा के समुद्र देवता के रूप में स्थित हैं। वे हाथ में माणिक्य पर्वत के समान रक्तवर्ण के मांसपिण्ड को धारण की हुईं हैं तथा इधर-उधर को आँखें घुमाती हुई स्वर्णकमल की माला पहने हुई हैं तथा लाल कमल धारण किये हुए मद की शक्ति से पूरी तरह ओत-प्रोत हैं।।७३-७४।। जब जब भण्डासुर संग्राम में प्रवृत्त होता है, युद्ध में निकलने वाले पसीने से लथपथ वे शक्तियाँ प्यासी हो जाती हैं।।७५।। और फिर तब तब अपने सुरा के समुद्र को फेंकती हुई शीघ्र ही युद्ध में देवताओं की थकान को दूर कर देंगी। अर्थात् सब देवों को सुरा पिलाकर उनकी युद्ध थकान को दूर कर देंगी।।७६।। वह भी अद्भुत कार्य उस युद्ध में होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। अर्थात् वह उस वर्ष (युद्ध) में अद्भुत कार्य होगा। तब मेरे द्वारा कहे गये आख्यान को आप सानन्द सुनोगे। अर्थात् यहाँ पर हयग्रीव ने कहा कि यह सब उस समय सुनाया जायेगा, जबकि भण्डासुर से युद्ध होगा, जो वर्ष एक अद्भुत वर्ष होगा अर्थात् वह युद्ध एक अद्भुत होगा।।७७।।

उसी पर्व के नीचे आठ दिशाओं में नीचे भी और ऊपर भी आवास करने वाले अत्यन्त श्रेष्ठ और अपार पराक्रम वाले हेतुक आदि महान् और प्रसिद्ध दश भैरव हैं।।७८।। वे दश सहस्त्रा तेज वाले प्रकाश से प्रकाशित हैं अर्थात् व साक्षात् दिन में प्रकाशित होने वाले सूर्य हैं।।७९।। प्रलयकाल में वे दण्डिनाथा देवी की आज्ञा से विश्व को निगलने वाले हैं। वे सब अत्यन्त उग्र स्वभाव वाले तथा दाँतों से ओठ काट कर बन्द मुखवाले अर्थात् वे क्रोध से दांतों से ओष्ठ काटने वाले तथा मुँह को बन्द रखने वाले हैं।।८०।। वे अपने त्रिशूल के अग्रभाग से मेघमण्डल का भी भेदन करने वाले हैं। वे हैं—१-हेतुक, २-त्रिपुरारि, ३-अग्निभैरव, ४-यमजिह्व, ५-एक पाद, ६-काल, ७-कराल, ८-भीमरूप, ९-हाटकेश और १०-अचल नाम वाले हैं।।८१-८२।। ये दश ही भैरव विख्यात भैरव हैं तथा ये सब करोड़ों अपने सैनिकों से युक्त हैं। उसी किरिचक्ररथराज के पर्व की सीमा में विद्यमान हैं।।८३।।

एवं हि दंडनाथायाः किरिचक्रस्य देवताः। जृंभिण्याद्यचलेंद्रांताः प्रोक्तास्त्रैलोक्यपावनाः॥८४॥
तत्र त्यैर्देवातवृंहैर्बहवस्तत्र संगरे। दानवा मारयिष्यंते पास्यंते रक्तवृष्टयः॥८५॥
इत्थं बहुविधत्राणं पर्वस्थैर्देवतागणैः। किरिचक्रं दंडनेत्र्या रथरत्नं चचाल ह॥८६॥
चक्रराजरथो यत्र तत्र गेयरथोत्तमः। यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमः॥८७॥
एतद्रथ त्रयं तत्र त्रैलोक्यमिव जंगमम्। शक्तिसेनासहस्त्रस्यांतश्चचार तदा शुभम्॥८८॥
मेरुमंदरविंध्यानां समवाय इवाभवत्। महाघोषः प्रववृते शक्तानां सैन्यमंडले।
चचाल वसुधा सर्वा तच्चक्ररवदारिता॥८९॥
ललिता चक्रराजाख्या रथनाथस्य कीर्तिताः। षट्सारथय उद्दण्डपाशग्रहणकोविदाः॥९०॥
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमम्। इति देवी प्रथमतस्तथा त्रिपुरभैरवी॥९१॥
संहारभैरवश्चान्यो रक्तयोगिनिवल्लभः। सारसः पंचमश्चैव चामुंडा च तथा परा॥९२॥
एतासु देवतास्तत्र रथसारथयः स्मृताः। गेयचक्ररथेन्द्रस्य सारथिस्तु हसंतिका॥९३॥
किरिचक्ररथेंद्रस्य स्तंभिनी सारथिः स्मृता। दशयोजनमुन्नम्रो ललितारथपुंगवः॥९४॥
सप्तयोजनमुच्छ्रायो गीतचक्ररथोत्तमः। षड्योजनसमुन्नम्रो किरिचक्ररथो मुने॥९५॥
महामुक्तातपत्रं तु दशयोजनविस्तृतम्। वर्तते ललितेशान्या रथ एव न चान्यतः॥९६॥

इस प्रकार दण्डनाथा देवी के किरिचक्र की देवियां जृम्भिणी आदि देवियां तथा अचल भैरव के अन्त तक जो कहे गये हैं, वे सब त्रैलोक्यपावन कहे गये हैं।।८४।। उन वहाँ पर उपस्थित देवीसमूहों द्वारा (शक्तियों द्वारा) बहुत से दानव मारे जायेंगे और उनके बरसते हुए रक्त पिये जायेंगे।।८५।। इस प्रकार पर्वों (भागों) में स्थित देवियों (शक्तियों) द्वारा अनेकों प्रकार से रक्षित दण्डनेत्री (दण्डनाथा) देवी का किरिचक्र नामक रथरत्न चलने लगा।।८६।। जहाँ पर चक्रराज रथ चल रहा था, वहाँ उत्तम गेयरथ भी चल रहा था तथा जहाँ गेयरथ चल रहा था, वहाँ पर उत्तम किरिचक्ररथ भी चल रहा था।।८७।। इस प्रकार जहाँ ये तीन रथ थे, वहाँ पर तीनों लोक ही चेतन रूप में उपस्थित थे, मानों वहाँ तीनों लोग साक्षात् सशरीर उपस्थित हो गये हों, ऐसा लगता था। तब हजारों की संख्या में शक्ति सेना ने शुभ अभियान किया।।८८।। जिस समय यह शुभ अभियान हुआ, उस समय सुमेरु पर्वत, मन्दर पर्वत और विन्ध्य पर्वत सब दूसरे से मिले हुए से हो गये। ऐसा लगता था कि पृथ्वी पर सर्वत्र पर्वत ही पर्वत हैं। जिस समय शक्तियों के सैन्यमण्डल में युद्ध का महाघोष हुआ, उस समय समस्त पृथ्वी उस चक्र से चलाने की भाँति चलने लगी।।८९।। रथनाथ चक्रराज की स्वामिनी ललिता देवी कही गयी हैं। उन उन रथों के छः सारथि कहे गये हैं, जो अत्यन्त उद्दण्ड और पाशग्रहण करने में विशारद कहे गये हैं।।९०।। जहाँ पर गेय रथ हैं, वहीं पर उत्तम किरिचक्ररथ है। इस प्रकार प्रथमतः ललिता देवी तथा त्रिपुरभैरवी दूसरे स्थान पर हैं।।९१।। संहारभैरव तीसरे तथा रक्त योगिनि वल्लभ चतुर्थ हैं, सारस पाँचवी देवी हैं तथा चामुण्डा अन्य हैं।।९२।। इनमें वहाँ जो रथ की सारथि देवियां स्मरण की गयी हैं, वे हैं—गेयरथचक्र की सारथि तो हंसतिका देवता है। किरिचक्ररथराज की सारथि स्तम्भिनी स्मरण की गयी हैं।।९२-९३½।। श्री ललिता परमेश्वरी के श्रेष्ठ रथ ऊपर से नीचे तक दशयोजन विस्तार वाला है तथा गीतचक्र नामक उत्तम रथ ऊपर से नीचे तक सात हजार योजन विस्तार वाला है। इसी प्रकार किरिचक्र रथ का ऊपर से नीचे तक का विस्तार छः योजन है।।९३½-९५।। उन देवी का महामुक्ता छत्र तो दशयोजन विस्तृत

तदेव शक्तिसाम्राज्यसूचकं परिकीर्तितम्। सामान्यमातपत्रं तु रथद्वंद्वेपि वर्तते॥९७॥
अथ सा ललितेशानी सर्वशक्तिमहेश्वरी। महासाम्राज्यपदवीमारूढा परमेश्वरी॥९८॥
चचाल भंडदैत्यस्य क्षयसिद्ध्यभिकांक्षिणी। शब्दायंते दिशः सर्वाः कंपते च वसुंधरा॥९९॥
क्षुभ्यंति सर्वभूतानि ललितेशाविनिर्गमे। देवदुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः॥१००॥
विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाः सुरगायकाः। तुम्बुरुर्नारदश्चैव साक्षादेव सरस्वती॥१०१॥
जयमंगलपद्यानि पठंतः पटुगीतिभिः। हर्षसंफुल्लवदनाः स्फुरत्पुलकभूषणाः।
मुहुर्जयजयेत्येवं स्तुवाना ललितेश्वरीम्॥१०२॥
हर्षेणाढ्या मदोन्मत्ताः प्रनृत्यंतः पदेपदे।
सप्तर्षयो वशिष्ठाद्या ऋग्यजुःसामरूपिभिः॥१०३॥
अथर्वरूपैर्मंत्रैश्च वर्धयंतो जयश्रियम्। हविषेव महावह्निशिखामत्यंतपाविनीम्॥१०४॥
आशीर्वादेन महता वर्धयमासुरुत्तमाः। तैः स्तूयमाना ललिता राजमाना रथोत्तमे॥१०५॥
भंडासुरं विनिर्जेतुमुद्दण्डैः सह सैनिकैः॥१०६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने किरिचक्ररथदेवता-प्रकाशनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

है तथा वह छत्र केवल ललिता परमेश्वरी के रथ पर ही है अन्य के रथ पर नहीं है।।९६।। वह छत्र ही शक्ति के साम्राज्य का सूचक कहा गया है। सामान्य छत्र तो दोनों रथों पर भी विद्यमान हैं।।९७।। इस प्रकार वे श्री ललिता परमेशानी सब शक्तियों की परम स्वामिनी हैं। वे ललिता परमेश्वरी ही महासाम्राज्य की पदवी पर आरूढ़ हैं।।९८।। वे परमेश्वरी भण्डासुर के नाश की सफलता की इच्छा रखती हुई युद्ध के लिए निकल पड़ीं। उस समय सब दिशायें शब्दायमान हो रही थीं और पृथ्वी कांपने लगी थी।।९९।। ललितेशानी के युद्ध हेतु निकलने पर सब प्राणी क्षुब्ध हो गये अर्थात् सर्वत्र हाहाकार मच गया। देवताओं ने दुन्दुभियां बजाना प्रारम्भ कर दिया। फूलों की वर्षा होने लगी।।१००।। विश्वावसु आदि गन्धर्व जो देवताओं के गायक थे, उन्होंने तथा तुम्बरु नारद तथा साक्षात् ही सरस्वती देवी ने पटुगीतियों द्वारा पद्यों को पढ़ते हुए हर्ष से प्रफुल्लित मुखों से अपने सुन्दर आभूषणों को चमकाते हुए आपकी जय हो, इस प्रकार गान किया। इस प्रकार ललितेश्वरी की स्तुति करते हुए सभी मदमत्त होकर कदम-कदम पर नाचते हुए गाने लगे।।१०१-१०२½।। वशिष्ठ आदि सप्तर्षियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद रूपी तथा अथर्ववेदरूपी मन्त्रों से युक्त हवि से महा अग्नि को बढ़ाते हुए के समान ललिता देवीकी जयश्री को बढ़ाते हुए महान् आशीर्वाद द्वारा उनके साहस को और अधिक बढ़ा दिया। उन सबके द्वारा स्तुति की जाती हुई राजमाता ललितादेवी उत्तम रथ पर सवार होकर उद्दण्ड सैनिकों के साथ भण्ड दैत्य को जीतने केलिए चल पड़ीं।।१०२½-१०६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २०वाँ अध्याय किरिचक्ररथ में देवियों के नामों का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

भंडासुराहंकारो नाम

एकविंशोऽध्यायः

आकर्ण्य ललितादेव्या यात्रानिर्गमनिस्वनम्। महांतं क्षोभमायाता भंडासुरपुरालयाः॥१॥
यत्र चास्ति दुराशस्य भंडदैत्यस्य दुर्धियः। महेन्द्रपवरतोपांते महार्णवतटे पुरम्॥२॥
तत्तु शून्यक नाम्नैव विख्यातं भुवनत्रये। विषंगाग्रजदैत्यस्य सदावासः किलाभवत्॥३॥
तस्मिन्नेव पुरे तस्य शतयोजनविस्तरे। वित्रेसुरसुराः सर्वे श्रीदेव्यागमसंभ्रमात्॥४॥
शतयोजनविस्तीर्णं तत्सर्वं पुरमासुरम्। धैमैरिवावृतमभूदुत्पातजनितैर्मुहुः॥५॥
अकाल एव निर्भिन्ना भित्तयो दैत्यपत्तने। घूर्णमाना पतंति स्म महोल्का गगनस्थलात्॥६॥
उत्पातानां प्राथमिको भूकंपः पर्यवर्तत। महीजज्वाल सकला तत्र शून्यकपत्तने॥७॥
अकाल एव हृत्कंपं भेजुर्दैत्यपुरौकसः। ध्वजाग्रवर्तिनः कंकगृध्राश्चैव बकाः खगाः॥८॥
आदित्यमंडले दृष्ट्वादृष्ट्वा चक्रंदुरुच्चकैः। क्रव्यादा बहवस्तत्र लोचनैर्नावलोकिताः॥९॥
मुहुराकाशवाणीभिः परुषाभिर्बभाषिरे। सर्वतो दिक्षु दृस्यंते केतवस्तु मलीमसाः॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२१

भण्डासुर अहंकार

पूर्व अध्याय में ललिता देवी ने भण्डासुर दैत्य पर विजय प्राप्त करने हेतु युद्ध की घोषणा कर दी और युद्ध करने हेतु जब उन्होंने ससैन्य कूंच कर दिया, तब ललिता देवी द्वारा युद्ध यात्रा हेतु निकलने की सूचना मिलने पर भण्डासुर के समस्त नगरों के घरों में महान् क्षोभ पैदा हो गया।।१।। जहाँ कि दुर्बुद्धि एवं दुष्ट भण्डासुर का नगर था। वह नगर महेन्द्र पर्वत के पास महासमुद्र के तट पर था।।२।। वह नगर शून्यक नाम से तीनों लोकों में विख्यात था। विषंग के अग्रज दैत्य भण्डासुर का वहाँ सदैव आवास होता था।।३।। उसके सौ योजन विस्तार वाले उसी नगर में सभी असुर श्री ललितादेवी के आने के भय से भयभीत हो गये।।४।। सौ योजन विस्तीर्ण वह असुरों का समस्त नगर उत्पात से पैदा हुए धुँए के द्वारा पूरी तरह आवृत हो गया।५।। असमय ही उस दैत्य के नगर में मकानों की दीवारें फट गयीं। आकाश तल भूमण्डल को हिला देने वाले महान् उल्कापात होने लगे।।६।। उत्पातों में सबसे पहले भूकम्प हुआ, फिर वहाँ उस भण्डदैत्य के शून्यक नगर में पृथ्वी जलने लगी।।७।। असमय में ही उस दैत्य के नगर में हृदय को कंपाने वाला दृश्य हो गया। ध्वजा के आगे उड़ते हुए बगुले गृध्र आदि पक्षी उड़ते हुए देखे गये, जो आकाश मण्डल में देख-देखकर चिल्ला रहे थे।।८-८½।। वहाँ पर बहुत-सा कच्चा मांस खाने वाले सियार बाघ आदि को आँखों से देखा गया और फिर आकाशवाणियों से भी कठोर आवाजें बोली जाने

धूम्रायमानाः प्रक्षोभजनका दैत्यरक्षसाम्। दैत्यस्त्रीणां च विभ्रष्टा अकाले भूषणस्रजः॥११॥
हाहेति दूरं क्रंदंत्यः पर्यश्रु समरोदिषुः। दपणानां वर्मणां च ध्वजानां खड्गसंपदाम्॥१२॥
मणीनामंबराणां च मालिन्यमभवन्मुहुः। सौधेषु चन्द्रशालासु केलिवेश्मसु सर्वतः॥१३॥
अट्टालकेषु गोष्ठेषु विपणेषु सभासु च। चतुष्किकास्वलिंदेषु प्रग्रीवेषु वलेषु च॥१४॥
सर्वतोभद्रवासेषु नन्द्यावर्तेषु वेश्मसु। विच्छंदकेषु संक्षुब्धेष्ववरोधनपालिषु।
स्वस्तिकेषु च सर्वेषु गर्भांगारपुटेषु च॥१५॥
गोपुरेषु कपाटेषु वलभीनां च सीमसु। वातायनेषु कक्ष्यासु धिष्ण्येषु च खलेषु च॥१६॥
सर्वत्र दैत्य नगरवासिभिर्जनमंडलैः अश्रूयन्त महाघोषाः परुषा भूतभाषिताः॥१७॥
शिथिली सवतो जाता घोरपर्णा भयानका। करटैः कटुकालापैरवलोकि दिवाकरः।
आराविषु करोटीनां कोटयश्चापतन्भुवि॥१८॥
अपतन्वेदिमध्येषु बिंदवः शोणितांभसाम्। केशौधकाश्च निष्पेतुः सर्वतो धूमधूसराः॥१९॥
भौमांतरिक्षदिव्यानामुत्पातानामिति व्रजम्। अवलोक्य भृशं त्रस्ताः सर्वे नगरवासिनः।
निवेदयामासुरमी भंडाय प्रथितौजसे॥२०॥
स च भंडः प्रचंडोत्थैस्तैरुत्पातकदंबकैः। असंजातधृतिभ्रंशो मंत्र स्थानमुपागमत्॥२१॥
मेरोरिव वपुर्भेदं बहुरत्नविचित्रतम्। अध्यासामास दैत्येंद्रः सिंहासनमनुत्तमम्॥२२॥

लगीं।।८½-९½।। चारों ओर सभी दिशाओं में उस दैत्य की ध्वजायें धुयें से धुँधली दिखायी दे रही थीं जो दैत्य राक्षसों में विशेष क्षोभ पैदा कर रही थीं।।९½-१०½।। असमय में ही विना किसी कारण के दैत्यों की स्त्रियों की आभूषण मालायें टूटकर गिरने लगीं तथा हाहा करके आँसू बहाकर रोने लगी कि हाय ये क्या हो रह है?।।१०½-११½।। दर्पणों, कवचों, ध्वजों, खड्गों, मणियों और वस्त्रों में मलिनता हो गयी अर्थात् ये सब अचानक मैले हो गये, जो एक अपशकुन है।।११½-१२½।। महलों, चन्द्रशालाओं, क्रीडाग्रहों, अट्टालिकाओं, सभाओं, दुकानों चौकियों (चबूतरों) घर के दरवाजे के सामने के चबूतरों, घर के चारों ओर बांस की बाढ़ों, सैन्यालयों सर्व ओर अभ्रद वासस्थानों नदियों की लहरों, घरों, अनेकों कक्षों एवं खण्डों वाले विशाल भवनों, अन्तःपुर के कक्षों में, स्वस्तिक भवनों, गर्भागार कक्षों, गोपुरों, छप्परों की सीमाओं, झरोखों, कक्ष्यों, हवनकुण्डों और खलिहानों में सर्वत्र दैत्य नगर में रहने वाले लोग पहले से बोली जाने वाली कठोर भयंकर महाध्वनि सुन रहे थे।।१२½-१७।।

घोर पंखों वाले भयानक राक्षस सर्वत्र शिथिल हो गये। कौओं और कटु सर्पों से घिरे सूर्य दिखाई देने लगे। करोड़ों खोपड़ियाँ पृथ्वी पर गिरने लगीं।।१८।। वेदियों के मध्य में लाल जल की बूँदें गिरने लगीं। धूमधूसरति केश समूह चारों ओर गिरने लगे।।१९।। पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग में उत्पात फैल गया, जिस उत्पात को देखकर सब नगर निवासी बहुत अधिक भयभीत हो गये और फिर उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी भण्डासुर से निवेदन किया।।२०।। और वह भण्डासुर प्रचण्ड उत्पातों के साथ उठता हुआ विना धैर्य त्यागे ही मन्त्रस्थान पर पहुँच गया। अर्थात् अपने मन्त्रियों के पास पहुँचा।।२१।। सुमेरु पर्वत के समान शरीर वाला वह दैत्यराज भण्डासुर बहुत से

स्फुरन्मुकुटलग्नानां रत्नानां किरणैर्घनैः। दीपयन्नखिलाशान्तानद्युतद्दानवेश्वरः।।२३।।
एकयोजनविस्तारे महत्यास्थानमंडपे। तुंगसिंहासनस्थं तं सिषेवाते तदानुजौ।।२४।।
विशुक्रश्च विषंगश्च महाबलपराक्रमौ। त्रैलोक्यकंटकीभूतभुजदंडभयंकरौ।।२५।।
अग्रजस्य सदैवाज्ञामविलंघ्य मुहुर्मुहुः। त्रैलोक्यविजये लब्धं वर्धयंतौ महद्यशः।।२६।।
नतेन शिरसा तस्य मृद्नंतौ पादपीठिकाम्। कृतांजलिप्रणामौ च समुपाविशतां भुवि।।२७।।
अथास्थाने स्थिते तस्मिन्नमरद्वेषिणां वरे। सर्वे सामंतदैत्येन्द्रास्तं द्रष्टुं समुपागताः।।२८।।
तेषामे कैकसैन्यानां गणना न हि विद्यते। स्वस्वं नाम समुच्चार्य प्रणेमुर्भंडकेश्वरम्।।२९।।
स च तानसुरान्सर्वानतिधीरकनीनकैः। संभावयन्समालोकैः कियंतं चित्क्षणं स्थितः।।३०।।
अवोचत विशुक्रस्तमग्रजं दानवेश्वरम्। मथ्यमानमहासिंधुसमानार्गलनिस्वनः।।३१।।
देवत्वदीयदोर्दंडविध्वस्तबलविक्रमाः। पापिनः पामराचारा दुरात्मानः सुराधमाः।।३२।।
शरण्यमन्यतः क्वापि नाप्नुवंतो विषादिनः।
ज्वलज्ज्वालाकुले वह्नौ पतित्वा नाशमागताः।।३३।।
तस्माद्देवात्समुत्पन्ना काचित्स्त्री बलगर्विता। स्वयमेव किलास्त्राक्षुस्तां देवा वासवादयः।।३४।।

रत्नों से जड़कर बनाये गये अत्यन्त उत्तम सिंहासन पर बैठा।।२२।। उस समय जबकि वह सिंहासन पर बैठा उस उमय उसके मुकुट में लगे हुए रत्नों की घनी किरणों से वह दानवेश्वर पूरी तरह अशान्त और कान्तिहीन चमक रहा था।।२३।। एक योजन विस्तार वाले महान् आस्थान मण्डप पर ऊँचे सिंहासन पर बैठे हुए उसके दोनों छोटे भाई विशुक्र और विषंग सेवा कर रहे थे, जो दोनों ही महापराक्रमी थे तथा अपने भयंकर भुजदण्डों से समस्त त्रिलोकी के लिये काँटा बने हुए थे।।२४-२५।। उन दोनों भाइयों ने सदैव अपने बड़े भाई भण्डासुर की आज्ञा का उल्लंघन न करके तीनों बार बार लोकों की विजय में अपने महान् यश को बढ़ाया था।।२६।। वे दोनों भाई उस भण्डासुर की पाद पीठिका पर नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर भूमि पर बैठ गये।।२७।।

इसके बाद उस देवताओं के शत्रु भण्डासुर के राज सिंहासन पर बैठ जाने पर सब सामन्त दैत्यराज उसे देखने के लिये भण्डासुर के पास आये।।२८।। उनमें से एक एक सैनिक जिनकी गिनती नहीं है, अपने अपने नाम का उच्चारण कर सब भण्डकेश्वर को प्रणाम कर रहे थे।।२९।। वह भण्डासुर उन असुरों को अत्यन्त धीर सैनिकों द्वारा अच्छी तरह देखकर उनका स्वागत कराता हुआ, थोड़ी देर बैठा रहा। कथन का आशय है कि इतनी संख्या में सैनिकादि आकर प्रणाम कर रहे थे कि सबका स्वागत करना सम्भव नहीं था, इसलिये अपने धीर सैनिकों द्वारा वह सबका स्वागत कर रहा था। वे धीर सैनिक अच्छी तरह देखदेख कर सबको बैठा रहे थे।।३०।। फिर वह भण्डासुर का छोटा भाई विशुक्र अपने बड़े भाई भण्डासुर से बोला कि हे देव! महासमुद्र का मन्थन करने वाले नगरद्वार की अर्गला के तुम्हारी भुजाओं द्वारा विध्वस्त बल पराक्रम वाले पापी, नींच आचरण करने वाले, दुष्टात्मा, अधम देवतागण अन्य किसी से शरण न प्राप्त करते हुए दुःखी होकर जलती हुई ज्वाला से व्याकुल अग्नि में गिरकर नष्ट हो गये।।३१-३३।। उस देव विष्णु से उत्पन्न कोई स्त्री बल से गर्वित स्वयं ही उसके साथ इन्द्रादि देवता

तैः पुनः प्रबलोत्साहैः प्रोत्साहितपराक्रमाः। बहुस्त्रीपरिवाराश्च विविधायुधमंडिताः॥३५॥
अस्माञ्जेतुं किलायांति हा कष्टं विधिवैशसम्। अबलानां समूहश्चेद्बलिनोऽस्मान्विजेष्यते॥३६॥
तर्हि पल्लवभंगेन पाषाणस्य विदारणम्। ऊह्यमानमिदं हंतुं परिहासाय कल्प्यते॥३७॥
विडंबना न किमसौ लज्जाकरमिदं न किम्। अस्मत्सैनकनासीरभटेभ्योऽपि भवेद्भयम्॥३८॥
कातरत्वं समापन्नाः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः। ब्रह्मादयश्च निर्विण्णविग्रहा मद्बलायुधैः॥३९॥

विष्णोश्च का कथैवास्ते वित्रस्तः स महेश्वरः।
अन्येषामिह का वार्ता दिक्पालास्ते पलायिताः॥४०॥

अस्माकमिषुभिस्तीक्ष्णैरदृश्यैरंगपातिभिः। सर्वत्र विद्धवर्माणो दुर्मदा विबुधाः कृताः॥४१॥
तादृशानामपि महापराक्रमभुजोष्मणाम्। अस्माकं विजयायाद्य स्त्री काचिदभिधावति॥४२॥

यद्यपि स्त्री तथाप्येषा नावमान्या कदाचन।
अल्पोऽपि रिपुरात्मज्ञैर्नावमान्यो जिगीषुभिः॥४३॥

तस्मात्तदुत्सारणार्थं प्रेषणीयास्तु किङ्कराः। सकचग्रहमाकृष्य सानेतव्या मदोद्धता॥४४॥
देव त्वदीय शुद्धांतर्वर्तिनीनां मृगीदृशाम्। चिरेण चेटिकाभावं सा दुष्टा संश्रयिष्यति॥४५॥
एकैकस्माद्भटादस्मात्सैन्येषु परिपंथिनः। शङ्कते खलु वित्रस्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥४६॥
अन्यद्देवस्य चित्तं तु प्रमाणमिति दानव। निवेद्य भण्डदैत्यस्य क्रोधं तस्य व्यवीवृधत्॥४७॥

हैं।।३४।। पुनः उन्हीं प्रवल उत्साहों के साथ प्रोत्साहित पराक्रम वाले देवगण बहुत स्त्री परिवार तथा अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर हम लोगों को जीतने को आ रहे हैं। अरे ये बहुत दुःख की बात है कि स्त्रियों का समूह हमवीरों को जीत लेगा।।३५-३६।। तथा यदि जीत लेगा तो यह पत्ते से पत्थर को तोड़ने के समान होगा तथा आते हुए इनको मारना ही परिहास के लिये होगा अर्थात् इन स्त्रियों को मारना भी एक हँसी ही होगी कि वीर पुरुषों ने स्त्रियों को मारा।।३७।। क्या यह विडम्बना नहीं है? क्या यह लज्जाकर नहीं है? कि हम सैनिकों के आगे रहने वाले योद्धाओं के लिये भय होवे।।३८।। क्योंकि हम सबके सामने इन्द्र आदि देवता लोग कायरता को प्राप्त हो गये और बल और आयुध से ब्रह्मा आदि भय एवं शोक से खिन्न शरीर वाले हो गये।।३९।। विष्णु का क्या कहना? वह तो कुछ नहीं, यहाँ तक कि महेश्वर विशेष त्रस्त हो गये। दूसरों की क्या बात? वे दिक्पाल भी भाग गये।।४०।। हमारे अदृश्य तीक्ष्ण बाणों के शरीरों पर गिरने से विद्ध शरीर वाले देवता लोग मदविहीन हो गये।।४१।। वैसे महान् पराक्रम का भोग करने वाले हम पर विजय पाने के लिये आज कोई स्त्री आ रही है।।४२।।

यद्यपि वह स्त्री है, तथापि उसे कभी कम नहीं समझना चाहिये। आत्मज्ञानी पुरुषों को अल्प (बहुत कम शक्ति वाले) शत्रु को भी कम नहीं मानना चाहिये।।४३।। इसलिये उसको पकड़ने के लिये नौकरों को भेजना चाहिये, जो उस घमण्डी स्त्री के बालों को पकड़ कर यहाँ लायें।।४४।। विशुक्र ने भण्डासुर से कहा कि हे महाराज! वह दुष्टा स्त्री आपके महल में रहने वाली मृगनयनियों की दासी बनकर बहुत समय तक रहेगी।।४५।। हमारी सेना में एक से बढ़कर एक शत्रु का संहार करने वाला योद्धा है, जिनसे निश्चय ही विशेषतः सकल चराचर जगत् शङ्कित रहता है।।४६।। यहाँ अन्य प्रमाण की क्या आवश्यकता देवों का भयभीत चित्त ही प्रमाण है। इस प्राकारउसके

विषङ्गस्तु महासत्त्वो विचारज्ञो विचक्षणः। इदमाह महादैत्यमग्रजन्मानमुद्धतम्॥४८॥
देव त्वमेव जानासि सर्वं कार्यमरिन्दम। न तु ते क्वापि वक्तव्यं नीतिवर्त्मनि वर्तते॥४९॥
सर्वं विचार्य कर्तव्यं विचारः परमा गतिः। अविचारेण चेत्कर्म समूलमवकृन्तति॥५०॥
परस्य कटके चाराः प्रेषणीयाः प्रयत्नतः। तेषां बलाबलं ज्ञेयं जयसंसिद्धिमिच्छता॥५१॥
चारचक्षुर्दृढप्रज्ञः सदाशंकितमानसः। अशंकिताकारवांश्च गुप्तमन्त्रः स्वमंत्रिषु॥५२॥
षडुपायान्प्रयुञ्जानः सर्वत्राभ्यर्हिते पदे। विजयं लभते राजा जाल्मो मक्षु विनश्यति॥५३॥

अविमृश्यैव यः कश्चिदारम्भः स विनाशकृत्।
विमृश्य तु कृतं कर्म विशेषाज्जयदायकम्॥५४॥
तिर्यगित्यपि नारीति क्षुद्रा चेत्यपि राजभिः।
नावज्ञा वैरिणां कार्या शक्तेः सर्वत्र सम्भवः॥५५॥

स्तंभोत्पन्नेन केनापि नरतिर्यग्वपुर्भृता। भूतेन सर्वभूतानां हिरण्यकशिपुर्हतः॥५६॥
पुरा हि चंडिका नाम नारी मायाविजृंभिणी। निशुम्भशुंभौ महिषं व्यापादितवती रणे॥५७॥

छोटे भाई विशङ्ग ने दैत्यराज भण्ड के क्रोध को बढ़ा दिया।।४७।। तथा यह महापराक्रमी, विचारज्ञ एवं कुशल विषङ्ग ने अपने ज्येष्ठ भ्राता भण्डासुर से कहा।।४८।। हे शत्रु का दमन करने वाले महाराज! तुम ही इस सब कार्य को जानते हो। आपको नीति मार्ग के बारे में कुछ भी नहीं बोलना चाहिये।।४९।। सब कुछ विचार कर करना चाहिये; क्योंकि विचार ही परमा गति है। विचार से ही मनुष्य को परम सफलता मिलती है। विना विचारे जो कार्य किया जाता है, वह समूल विनाश कर देता है।।५०।। अतः हे महाराज! शत्रु की सेना में पहले गुप्तचरों को प्रयत्नपूर्वक भेजना चाहिये। तब शत्रुओं में बल है अथवा नहीं है, जानकर जय या सन्धि करनी चाहिये।।५१।।

गुप्तचर रखने वाला, दृढ़बुद्धि वाला, सदा अशङ्कित मन वाला, अशंकित आकार वाला, गुप्त मन्त्र वाला (अर्थात् अपनी योजना को गुप्त रखने वाला) तथा अपने मन्त्रियों पर विश्वास करने वाला[१] इन छः उपायों को प्रयोग करने वाला राजा सब जगह योग्य पद पर विजय प्राप्त करता है। क्रूर अविवेकी राजा शीघ्र विनष्ट हो जाता है।।५२-५३।। विना विचार कर जो कोई किसी कार्य को प्रारम्भ क़रता है, वह कार्य विनाश करने वाला होता है तथा विचार कर जो कर्म किया जाता है, वह कार्य विशेष रूप से जय प्रदान करने वाला होता है।।५४।। नारी तिर्यक् अर्थात् नारी और टेढ़ा-मेड़ा आदमी ये सब क्षुद्र होते हैं। फिर भी राजाओं को अपने शत्रु की अवज्ञा (लापरवाही) नहीं करनी चाहिये; क्योंकि शक्ति तो सर्वत्र सम्भव है।।५५।। क्योंकि खम्भे से उत्पन्न किसी टेढ़े-मेढ़े शरीर वाले व्यक्ति ने सब प्राणियों का राजा हिरण्यकशिपु मार दिया गया।।५६।। प्राचीन काल में विशेष माया फैलाने वाली चण्डिका नाम की नारी थी, उसने रणक्षेत्र में शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुर को मार दिया था।।५७।।

१. सदाशंकितमानसः अशंकिताकावान् का अर्थ यह भी हो सकता है कि सदा शंकित मन रहते हुए भी अपने को निःशंक आकार वाला दिखाये तथा गुप्तमन्त्रः स्वमंत्रिषु का अर्थ है कि अपने मन्त्र (योजना) को गुप्त रखते हुए अपने मन्त्रियों पर विश्वास रखे। अर्थात् मन की बात मन्त्रियों को भी न बताये। इस प्रकार यहाँ विरोधाभास की झलक है तथा उच्चकोटि की राजनीति की प्रस्तुति है।

तत्प्रसंगेन बहवस्तया दैत्या विनाशिताः।
अतो वदामि नावज्ञा स्त्रीमात्रे क्रियतां क्वचित्॥५८॥
शक्तिरेव हि सर्वत्र कारणं विजयश्रियः। शक्तेराधारतां प्राप्तैः स्त्रीपुलिंगैर्न नो भयम्॥५९॥
शक्तिस्तु सर्वतो भाति संसारस्य स्वभावतः। तर्हि तस्या दुराशायाः प्रवृत्तिर्ज्ञायतां त्वया॥६०॥
केयं कस्मात्समुत्पन्ना किमाचारा किमाश्रया।
किंबला किंसहाया वा देव तत्प्रविचार्यताम्॥६१॥
इत्युक्तः स विषंगेण को विचारो महौजसाम्।
अस्मद्बले महासत्त्वा अक्षौहिण्यधिपाः शतम्॥६२॥
पातुं क्षमास्ते जलधीनं दग्धुं त्रिविष्टपम्। अरे पापसमाचार किं वृथा शङ्कसे स्त्रियः॥६३॥
तत्सर्वं हि मया पूर्वं चारद्वारावलोकितम्। अग्रे समुदिता काचिल्ललितानामधारिणी॥६४॥
यथार्थनामवत्येषा पुष्पवत्पेशलाकृतिः। न सत्त्वं न च वीर्यं वा न संग्रामेषु वा गतिः॥६५॥
सा चाविचारनिवहा किंतु मायापरायणा। तत्सत्त्वेनाविद्यमानं स्त्रीकदम्बकमात्मनः॥६६॥
उत्पादितवती किं ते न चैवं तु विचेष्टते। अथ वा भवदुक्तेन न्यायेनास्तु महद्बलम्॥६७॥
त्रैलोक्योल्लंघिमहिमा भण्डः केन विजीयते॥६८॥
इदानीमपि मद्बाहुबलसंमर्दमूर्च्छिताः। श्वसितुं चापि पटवो न कदाचन नाकिनः॥६९॥

उसके प्रसंग से उस चण्डिका ने अनेकों असुरों का नाश कर दिया था। इसलिये मैं कहता हूँ कि नारी मात्र के विषय में कहीं लापरवाही नहीं करनी चाहिये।।५८।। शक्ति ही सर्व विजयश्री का कारण होती है। शक्ति के आधारता को प्राप्त स्त्री और पुल्लिङ्गों से हमें कोई भय नहीं।।५९।। शक्ति तो संसारके स्वभाव से सब जगह प्रतीत हो जाती है; इसलिए उसमें शक्ति न होने की प्रवृत्ति तुम्हें जाननी चाहिये।।६०।। यह कौंन है? किससे उत्पन्न है? क्या उसका आचार, विचार है? तथा क्या उसका आधार है? क्या उसका बल? कौंन उसके सहायक हैं? हे देव! यह सब आपको अच्छी प्रकार विचार करना चाहिये।।६१।।

इस प्रकार जब विषंग ने कहा तब भण्डासुर ने कहा कि महापराक्रमी लोगों को क्या विचार करना है। हमारी सेना में महापराक्रमी अक्षौहिणी सेना रखने वाले सैकड़ों राजा समुद्रों को पीने में समर्थ हैं तथा स्वर्ग को जलाने के लिये पर्याप्त हैं। अरे पाप का आचरण करने वाले क्यों स्त्री से डरते हो।।६२-६३।। वह सब मैंने पहले ही गुप्तचरों द्वारा पता कर लिया है कि आगे आगे कोई ललिता नाम की स्त्री दिखाई दे रही है। सो वह यथा नाम तथा गुणवाली है; क्योंकि ललिता का अर्थ होता है—कोमल। अतः वह कोमल शरीर वाली है। उसमें न वीरता है, न पराक्रम है अथवा न ही संग्राम का कोई ज्ञान है।।६४-६५।। वह विना विचारों वाली है; परन्तु माया परायण है अर्थात् युद्ध कला का विशेष ज्ञान नहीं है; परन्तु माया करने वाली है। उसमें पराक्रम तो नहीं ही होगा; क्योंकि स्त्रियों में पराक्रम नहीं होता।।६६।। उसे किसने उत्पन्न किया है, यह तो अभी पता नहीं चला है अथवा तुम्हारे कथनानुसार न्याय से तो उसमें बहुत बल है।।६७।। परन्तु जिसकी महिमा तीनों लोकों में किसी के भी द्वारा लंघनीय नहीं है, वह भण्ड किसके द्वारा जीता जा सकता है।।६८।। क्या वह नहीं जानती है कि इस समय मेरे बाहुबल सम्मर्दन

केचित्पातालगर्भेषु केचिदम्बुधिवारिषु। केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुञ्जेषु भूभृताम्॥७०॥
विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतश्रियः। भ्रष्टाधिकाराः पशवश्छन्नवेषाश्चरंति ते॥७१॥
एतादृशं न जानाति मम बाहुपराक्रमम्। अबला न चिरोत्पन्ना तेनैषा दर्पमश्नुते॥७२॥
न जानंति स्त्रियो मूढा वृथा कल्पितसाहसाः। विनाशमनुधावंति कार्याकार्यविमोहिताः॥७३॥
अथ वा तां पुरस्कृत्य यद्यागच्छंति नाकिनः।
यथा महोरगाः सिद्धाः साध्या वा युद्धदुर्मदाः॥७४॥
ब्रह्मा वा पद्मनाभो वा रुद्रो वापि सुराधिपः। अन्ये वा हरितां नाथास्तान्संपेष्टुमहं पटुः॥७५॥
अथ वा मम सेनासु सेनान्यो रणदुर्मदाः। पक्वकर्करिकापेषमवपेक्ष्यंति वैरिणः॥७६॥
कुटिलाक्षः कुरंडश्च करंकः कालवाशितः। वज्रदंतो वज्रमुखो वज्रलोमा बलाहकः॥७७॥
सूचीमुखः फलमुखो विकटो विकटाननः। करालाक्षः कर्कटको मदनो दीर्घजिह्वकः॥७८॥
हुंबको हलमुल्लुंचः कर्कशः कल्किवाहनः। पुल्कसः पुंड्रकेतुश्च चंडबाहुश्च कुक्कुरः॥७९॥
जंबुकाक्षो जृंभणश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकंटकः। चतुर्गुप्तश्चतुर्बाहुश्चकाराक्षश्चतुःशिराः॥८०॥
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महामायामहाहनुः। मखशत्रुर्मखास्कंदी सिंहघोषः शिरालकः॥८१॥
अंधकः सिंधुनेत्रश्च कूपकः कूपलोचनः। गुहाक्षो गंडगल्लश्च चंडधर्मो यमांतकः॥८२॥

से मूर्च्छित स्वर्गवासी देवता लोग कभी कहीं श्वास भी ले सकते हैं।।६९।। मेरे भय से उन राजाओं में से कुछ पाताल में चले गये हैं, कुछ समुद्र के जलों में छिपे हुए हैं, कुछ दिशाओं के कोणों में बसे हुए हैं तथा कुछ वन के कुञ्जों में छिपे हुए हैं। इस प्रकार अपनी पत्नियों और पुत्रों को छोड़कर विशेषत्रस्त राज्याधिकारविहीन वे फटे कपड़े पहने पशुओं की भाँति विचरण कर रहे हैं।।७०-७१।। वह स्त्री मेरे उस बाहु पराक्रम को नहीं जानती है। अतः वह स्त्री बहुत पहले उत्पन्न नहीं हुई है, अभी-अभी पैदा हुई है; इसलिये वह घमण्ड कर रही है।।७२।। वह मूर्ख स्त्री नहीं जानती है, इसलिये व्यर्थ कल्पित साहस दिखा रही है; क्योंकि क्या करना चाहिये क्या नहीं करना चाहिये, इसको न जानने वाले मूर्ख लोग अपने विनाश के लिये दौड़ते हैं।।७३।। अथवा उसको आगे करके यदि देवता लोग युद्ध में उतरते हैं, जिनमें कि सिद्धगण साध्यगण महासर्प, जो युद्ध में कुशल हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु अथवा रुद्र भी देवताओं के अधिपति तथा अपने देवताओं के स्वामी युद्ध में आते हैं, तो मैं उनको अच्छी तरह कुचलने में कुशल हूँ।।७४-७५।। अथवा मेरी सेना में किसी से भी न हारने वाले सेनानी है, जो जो शत्रुओं को पके बेर की तरह मसल देंगे।।७६।।

वे हैं—१. कुटिलाक्ष, २. कुरण्ड, ३. करङ्क, ४. कालवाशित, ५. वज्रदन्त, ६. वज्रमुख, ७. वज्रलोमा, ८. वलाहका, ९. सूचीमुख, १०. फलमुख, ११. विकट, १२. विकटानन, १३. करालाक्ष, १४. कर्कटक, १५. मदन, १६. दीर्घजिह्वक, १७. हुम्बक, १८. हलमुलुंच्च, १९. कर्कश, २०. कल्किवाहन, २१. पुल्कस, २२. पुण्ड्रकेतु, २३. चण्डबाहु, २४. कुक्कुर, २५. जम्बुकाक्ष, २६. जृम्भण, २७. तीक्ष्णशृङ्ग, २८. त्रिकंटक, २९. चन्द्रगुप्त, ३०. चतुर्बाहु, ३१. चकाराक्ष, ३२. चतुःशिरा, ३३. वज्रघोष, ३४. ऊर्ध्वकेश, ३५. महामाया, ३६. महाहनु, ३७. मखशत्रु, ३८. मखास्कन्दी, ३९. सिंहघोष, ४०. शिरालक, ४१. अन्धक, ४२.

लड्डुनः पट्टसेनश्च पूरजित्पूर्वमारकः। स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः॥८३॥
अतिमायो बृहन्माय उपमाय उलूकजित्। पुरुषेणो विषेणश्च कुंतिषेणः परूषकः॥८४॥
मलकश्च कशूरश्च मंगलो द्रघणस्तथा। कोल्लाटः कुजिलाश्वश्च दासेरो बभ्रुवाहनः॥८५॥
दृष्टहासो दृष्टकेतुः परिक्षेप्तापकंचुकः। महामहो महादंष्ट्रो दुर्गतिः स्वर्गमेजयः॥८६॥
षट्केतुः षड्वसुश्चैव षड्दंतः षट्प्रियस्तथा। दुःशटो दुर्विनीतश्च छिन्नकर्णश्च मूषकः॥८७॥
अट्टहासी महाशी च महीशीर्षो मदोत्कटः।
कुम्भोत्कचः कुम्भनासः कुम्भग्रीवो घटोदरः॥८८॥
अश्वमेढ्रो महांडश्च कुम्भांडः पूतिनासिकः। पूतिदन्तः पूतिचक्षुः पूत्यास्यः पूतिमेहनः॥८९॥
इत्येवमादयः शूरा हिरण्यकशिपोः समाः। हिरण्याक्ष समाश्चैव मम पुत्रा महाबलाः॥९०॥
एकैकस्य सुतास्तेषु जाताः शूराः परःशतम्। सेनान्यो मे मदोद्घृत्ता मम पुत्रैरनु द्रुताः॥९१॥
नाशयिष्यन्ति समरे प्रोद्धतानमराधमान्। ये केचित्कुपिता युद्धे सहस्त्राक्षौहिणी वराः।
भस्मशेषा भवेयुस्ते हा हन्त किमुताबला॥९२॥
मायाविलासाः सर्वेऽपि तस्याः समरसीमनि। महामायाविनोदाश्च कुप्युस्ते स्मसाद्बलम्॥९३॥
तद्वृथा शंकया खिन्नं मा ते भवतु मानसम्। इत्युक्त्वा भंडदैत्येंद्रः समुत्थाय नृपासनात्॥९४॥

सिन्धुनेत्र, ४३. कूपक, ४४. कूपलोचन, ४५. गुहाक्ष, ४६. गंडगल्ल, ४७. चण्डधर्म, ४८. यमान्तक, ४९. लड्डुन, ५०. पट्टसेन, ५१. पूरजित्, ५२. पूर्वमारक, ५३. स्वर्गशत्रु, ५४. स्वर्गबल, ५५. दुर्गाख्य, ५६. स्वर्गकंटक, ५७. अतिमाप, ५८. बृहन्माय, ५९. उपमाय, ६०. उलूकजित्, ६१. पुरुषेण, ६२. विषेण, ६३. कुंतिषेण, ६४. परूषक, ६५. मलक, ६६. कशूर, ६७. मंगल, ६८. द्रघण, ६९. कोल्लाट, ७०. कुजिल, ७१. दासेर, ७२. बभ्रुवाहन, ७३. दृष्टहास, ७४. दृष्टकेतु, ७५. परिक्षेप्त, ७६. अपकंचुक, ७७. महामहा, ७८. महादंष्ट्र, ७९. दुर्गति, ८०. स्वर्गमेजय, ८१. षट्केतु, ८२. षड्वसु, ८३. षड्दन्त, ८४. षड्प्रिय, ८५. दुःशठ, ८६. दुर्विनीत, ८७. छिन्नकर्ण, ८८. मूषक, ८९. अट्टहासी, ९०. महाशी, ९१. महाशीर्ष, ९२. मदोत्कट, ९३. कुम्भोत्कच, ९४. कुम्भनास, ९५. कुम्भग्रीव, ९६. घटोदरः, ९७. अश्वमेढ्र, ९८. महादण्ड, ९९. कुम्भाण्ड, १००. पूतिनासिक, १०१. पूतिदन्त, १०२. पतिचक्षु, १०३. पूत्यास्य और १०४. पूति मेहन।।७७-८९।।

भण्ड ने कहा कि इस प्रकार ये १०४ उपर्युक्त शूरवीर हिरण्यकशिपु के समान है। हिरण्याक्ष के समान मेरे पुत्र बलवान् हैं।।९०।। उनमें से एक-एक पुत्र सैकड़ों शूरों में शूर है। मेरे सेनानी भी महान् ऊँचे हैं, वे भी मेरे पुत्रों का अनुसरण करने वाले हैं अर्थात् वे भी मेरे पुत्रों के ही समान हैं। वे सब युद्ध में बड़े-बड़े वीर देवताओं का नाश कर देंगे। जो कोई युद्ध में क्रोधित सहस्त्र श्रेष्ठ अक्षौहिणी सेनायें हैं, वे सब भस्म हो जायेंगी फिर निर्बल देवताओं की तो बात ही क्या है?।।९१-९२।। उस ललिता के समरसीमा में वे सभी देवता मायाविलासी हैं। महामाया से विनोद करने वाले यदि ये क्रोध करें तो इनका बल भस्म हो जायेगा।।९३।। इसलिये हे मेरे भाइयो एवं वीर असुरो! तुम्हारी शंका व्यर्थ है। अतः तुम अपने मन को खिन्न मत करो।।९३½।। इस प्रकार कहकर वह

उवाच निजसेनान्यं कुटिलाक्षं महाबलम्। उत्तिष्ठ रे बलं सर्वं संनाहय समंततः॥९५॥
शून्यकस्य समंताच्च द्वारेषु बलमर्पय। दुर्गाणि संगृहाण त्वं कुरुक्षेपणिकाशतम्॥९६॥
दुष्टाभिचाराः कर्तव्या मंत्रिभिश्च पुरोहितैः। सज्जीकुरु त्वं शस्त्राणि युद्धमेतदुपस्थितम्॥९७॥
सेनापतिषु यं केचिदग्रे प्रस्थापयाधुना। अनेकबलसंघातसहितं घोरदर्शनम्॥९८॥
तेन संग्रामसमये सान्निपत्य विनिर्जितम्। केशेष्वाकृष्य तां मूढां देवसत्त्वे न दर्पिताम्॥९९॥
इत्याभाष्य चमूनाथं सहस्त्रत्रितयाधिपम्। कुटिलाक्षं महासत्त्वं स्वयं चान्तःपुरं ययौ॥१००॥

अथापत्त्याः श्रीदेव्या यात्रानिःसाणनिःस्वनाः।
अश्रूयंत च दैत्येन्द्रैरतिकर्णज्वरावहाः॥१०१॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडासुराहंकारो नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

भण्ड दैत्यराज अपने सिंहासन से उठा और अपने महाबली सेनापति कुटिलाक्ष से बोला। अरे उठो और समस्त सेना को बुलाकर शून्यक के साथ द्वार पर समस्त बल को लगा दो तथा दुर्गों को ग्रहण करो और तुम सौ जालियां वनाओं।।९३½-९७।। सेनापतियों में जो कोई हैं, उन्हें अब अनेक घोर दिखायी देने वाले अनेक सैन्य समूह के साथ आगे भेजो।।९८।। उस सेना के द्वारा विशेषरूप से जीती गयी देवताओं के पराक्रम से घमण्ड में भरी हुई, उस स्त्री को केश पकड़कर खींच कर यहाँ लाओ।।९९।। इस प्रकार तीन हजार सेनाओं के सेनापति महापराक्रमी कुटिलाक्ष से कहकर वह भण्डासुर स्वयं अन्तःपुर में चला गया।।१००।। इसके बाद आतीहुई, उन ललिता देवी की युद्ध यात्रा की भयंकर ध्वनि को दैत्यराजाओं ने सुना जो ध्वनि अनेक कानों को ज्वर पैदा करने वाली थीं।।१०१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २१वाँ अध्याय भण्डासुर अहंकार का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगला-सरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्छित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

दुर्मदकुरुण्डवधोनाम

द्वाविंशोऽध्यायः

अथ श्रीललितासेनानिस्साणप्रतिनिस्वनः। उच्चचालासुरेन्द्राणां योद्धतो दुन्दुभिध्वनिः॥१॥
तेनमर्दितदिक्केन क्षुभ्यद्गर्भपयोधिना। बधिरीकृतलोकेन चकम्पे जगतां त्रयी॥२॥
मर्दयन्ककुभां वृन्दं भिन्दन्भूधरकन्दराः। पुप्रोथे गगनाभोगे दैत्यनिःसाणनिस्वनः॥३॥
महानरहरिक्रुद्धहुंकारोद्धतिमद्ध्वनिः। विरसं विररासोच्चैर्विबुधद्वेषिझल्लरी॥४॥
ततः किलकिलारावमुखरा दैत्यकोटयः। समनह्यन्त संक्रुद्धाः प्रति तां परमेश्वरीम्॥५॥
कश्चिद्रत्नविचित्रेण वर्मणाच्छन्नविग्रहः। चकाशे जंगम इव प्रोत्तुंगो रोहणाचलः॥६॥
कालरात्रिमिवोदग्रां शस्त्रकारेण गोपिताम्। अधुनीत भटः कश्चिदतिधौतां कृपाणिकाम्॥७॥
उल्लासयन्कराग्रेण कुंतपल्लवमेकतः। आरूढतुरगो वीथ्यां चारिभेदं चकार ह॥८॥
केचिदारुरुहुर्योधा मातंगांस्तुंगवर्ष्मणः। उत्पात वातसंपातप्रेरितानिव पर्वतान्॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–२२

दुर्मदकुरुण्ड वध वर्णन

इसके बाद श्री ललिता देवी की सेना की अतितीव्रध्वनि की प्रतिध्वनि युद्ध करने को बढ़े हुए असुरेन्द्रों की दुन्दुभि की ध्वनि तीव्रता से होने लगी।।१।। असुरराज की उस सेना की दुन्दुभि ध्वनि ने सब दिशाओं को मर्दित कर दिया और समुद्र के अन्दर भी खलबली मचा दी थी तथा समस्त संसार को बहरा कर दिया तथा उस ध्वनि से तीनों लोक कांपने लगे।।२।। उस दैत्य सेना की असीम युद्ध की विगुल ध्वनि दिशाओं का मर्दन करती हुई और पर्वत कन्दराओं का भेदन करती हुई समस्त आकाश के विस्तार में श्री ललिता देवी के युद्ध ध्वनि का मुकाबला करने लगी।।३।। वह ध्वनि क्रोधित हुए महान् नरसिंह के समान थी तथा हिरण्यकशिपु का वध करते समय अत्यन्त क्रोधित नरसिंह के हुंकार से उठी हुई ध्वनि के समान वह ध्वनि अत्यन्त नीरस और देवताओं से द्वेष करने वाली झांझ मजीरों वाली ध्वनि थी।।४।। उसके बाद क्रोधित करोड़ों मुखर दैत्यों के मुख से किल किल की ध्वनि उन ललिता परमेश्वरी के प्रति धमकी दे रही थी।।५।। उस सेना में कोई रत्नविचित्र से अपने ढके हुये शरीर वाला था, जिससे ऐसा लगता था कि मानो कि लंका का रोहणपर्वत ही चलने वाले व्यक्ति के समान उठकर चल पड़ा हो। कोई कोई योद्धा कालरात्रि के समान अत्यन्त श्वेत चमकती हुई, उग्र कृपाण को धारण किये हुए था, जो कि शस्त्रकार ने बहुत अच्छी तरह बनायी थी।।६-७।। उस समय कुछ योद्धा अपने हाथ के अग्रभाग से सैनिकों को उल्लासित करते हुए एक हाथ में माला लेकर घोड़े पर चढ़कर पंक्ति में चलने का भेद कर रहे थे। अर्थात्

पट्टिशैर्मुद्गरैश्चैव भिदुरैर्भिंडिपालकैः। द्रुहणैश्च भुशुण्डीभिः कुठारैर्मुसलैरपि॥१०॥
गदाभिश्च शतघ्नीभिस्त्रिशिखैर्वशिखैरपि। अर्धचक्रैर्महाचक्रैर्वक्रांगैरुरगाननैः॥११॥
फणिशीर्षप्रभेदैश्च धनुर्भिः शांर्गधन्विभिः। दंडैः क्षेपणिकाशस्त्रैर्वज्रबाणैर्दृषद्वरैः॥१२॥
यवमध्यैर्मुष्टिमध्यैर्वलललैः खंडलैरपि। कटारैः कोणध्यैश्च फणिदन्तैः परःशतैः॥१३॥
पाशायुधैः पाशतुण्डैः काकतुण्डैः सहस्त्रशः। एवमादिभिरत्युग्रैरायुधैर्जीवहारिभिः॥१४॥
परिकल्पितहस्ताग्रा वार्मेता दैत्य कोटयः। अश्वारोहा गजारोहा गर्दभारोहिणः परे॥१५॥
उष्ट्रारोहा वृकारोहा शुनकारोहिणः परे। काकादिरोहिणो गृध्रारोहाः कंकादिरोहिणः॥१६॥
व्याघ्रादिरोहिणश्चान्ये परे सिंहादिरोहिणः। शरभारोहिणश्चान्ये भेरुण्डारोहिणः परे॥१७॥
सूकररोहिणो व्यालारूढाः प्रेतादिरोहिणः। एवं नानाविधैर्वाहवाहिनो ललितां प्रति॥१८॥
प्रचेलुः प्रबलक्रोधसंमूर्च्छितनिजाशयाः। कुटिलं सैन्यभर्त्तारं दुर्मदं नाम दानवम्।
दशाक्षौहिणिकायुक्तं प्राहिणोल्ललितां प्रति॥१९॥
दिधक्षुभिरिवाशेषं विश्वं सह बलोत्कटैः। भटैर्युक्तः स सेनानी ललिताभिमुखे ययौ॥२०॥
भिंदन्पटहसंरावैश्चतुर्दश जगन्ति सः। अट्टहासान्वितन्वानो दुर्मदस्तन्मुखो ययौ॥२१॥
अथ भंडासुराज्ञप्तः कुटिलाक्षो महाबलः। शून्यकस्य पुरद्वारे प्राचीने समकल्पयत्।

पंक्तियां बनाकर चलने के लिये व्यवस्था कर रहे थे।।८।। कुछ योद्धागण उत्पात मचाने वाली वायु जिस प्रकार पर्वतों पर चढ़कर उनको हिला देती है, उसीप्रकार हाथियों और घोड़ों पर चढ़ गये।।९।। वे सभी असुर सैनिक मुद्गार, बर्छी, दो टुकड़े करने वाला शस्त्र, वज्र द्रुहण, बन्दूक, कुठार, मूसल, गदा, शतघ्नी (सौ को मारने वाला शस्त्र) तीन शिखाओं वाला फरसा तथा अनेकों शिखाओं वाला अस्त्र, अर्धचक्र, महाचक्र, वक्रांग, उरुगानन, (सर्पमुख जैसा अस्त्र) फणिशीर्ष नामक अस्त्र, अनेकों प्रकार के धनुषों शार्ङ्गधनुषों, दण्डों, फेंकने वाले शस्त्रों, वज्रवाणों, पत्थरों, यवमध्य अस्त्रों, मुट्ठी से फेंकने वाले अस्त्रों वलल खण्डल, कटार, कोणमध्य, फणिदन्त आदि सैकड़ों अस्त्रों तथा पाश अस्त्रों यथा पाशतुण्ड-काकतुण्ड आदि हजारों प्रकार के अत्यन्त उग्र तथा प्राणहरण करने वाले अस्त्रशस्त्रों से युक्त सेना थी।।१०-१४।।

उनकी संख्या को हाथ से नहीं गिना जा सकता था। करोड़ों की संख्या में दैत्य सेना थी। उस सेना में अश्वारोही, गजारोही, गर्दभारोही, उष्ट्रारोही, वृकारोही (भेड़िया पर चढ़े हुए) शुनकारोही (कुत्ते पर चढ़े हुए) (कौआ आदि पर चढ़े हुए), गृध्रारोही (गृध्र की सवारी करने वाले), बगुल पर चढ़े हुये, सिंह पर चढ़े हुए, ऊँट पर चढ़े हुए, कुत्तों पर सवार, सिंह पर सवार, शरभ पर सवार, मेरुण्ड पर सवार, सूअर पर सवार, सर्प पर सवार, प्रेतादि पर सवार सेनायें थीं। इस प्रकार अनेकों वाहनों पर सवार सैनिक श्री ललिता देवी की ओर चल पड़े, जो सैनिक जीत की आशा रखते हुए प्रचण्ड क्रोध से सम्मूर्च्छित हो गये थे तथा अपने कुटिल सेनापति दुर्मद नामक दानव को दश अक्षौहिणी सेना के साथ श्री ललिता की ओर आगे बढ़ा दिया।।१५-१९।। मानो कि उसने अपने बल से समस्त विश्व को धारण कर लिया है, उसके समान अपने अत्यन्त उत्कट सेना और योद्धाओं के साथ वह सेनापति दुर्मद श्री ललिता देवी के सामने गया।।२०।। तब अपने युद्धीय नगाड़े की ध्वनि से चौदह लोकों का भेद करता

रक्षणार्थं दशाक्षौहिण्युपेतं तालजंघकम्॥२२॥
अवाचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम्। नाम्ना तालभुजं दैत्यं रक्षणार्थमकल्पयत्॥२३॥
प्रतीचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम्। तालग्रीवं नाम दैत्यं रक्षार्थं समकल्पयत्॥२४॥
उत्तरे तु पुरद्वारे तालकेतुं महाबलम्। आदिदेश स रक्षार्थं दशाक्षौहिणिकायुतम्॥२५॥
पुरस्य सालवलये कपिशीर्षकवेश्मसु। मण्डलाकारतो वस्तुं दक्षाक्षौहिणिमादिशत्॥२६॥
एवं पञ्चाशता कृत्वाक्षौहिण्या पुररक्षणम्। शून्यकस्य पुरस्यैव तद्वृत्तं स्वामिनेऽवदत्॥२७॥

कुटिलाक्ष उवाच

देव त्वदाज्ञया दत्तं सैन्यं नगररक्षणे। दुर्मदः प्रेषितः पूर्वं दुष्टां तां ललितां प्रति॥२८॥
अस्मत्किंकरमात्रेण सुनिराशा हि सावला। तथापि राज्ञामाचारः कर्त्तव्यं पुररक्षणम्॥२९॥
इत्युक्त्वा बंडदैत्येंद्रं कुबिलाक्षोऽतिगर्वितः। स्वसैन्यं सज्जयामास सेनापतिभिरन्वितः॥३०॥
दूतस्तु प्रेषितः पूर्वं कुटिलाक्षेण दानवः। स ध्वनन्ध्वजिनीयुक्तो ललितासैन्य मावृणोत्॥३१॥
कृत्वा किलकिलारावं भटास्तत्र सहस्रशः। दोधूयमानैरसिभिर्निपेतुः शक्तिसैनिकैः॥३२॥
ताश्च शक्तय उद्दंडाः स्फुरिताट्टहसस्वनाः। देदीप्यमानशस्त्राभाः समयुध्यंत दानवैः॥३३॥
शक्तीनां दानवानां च संशोभितजगत्रयः। समवर्तत संग्रामो धूलिग्राममततांम्बरः॥३४॥

हुआ, अट्टहासयुक्त शरीर वाला वह दुर्मद असुरराज श्री ललिता दवी के सम्मुख उपस्थित हो गया।।२१।। इधर वह दुर्मद असुर देवी के सामने गया, उधर भण्डासुर की आज्ञा प्राप्त कर महाबली कुटिलाक्ष ने शून्यक के प्राचीन पुरद्वार पर रक्षार्थ दश अक्षौहिणी सेना केसाथ तालजंघ को तैनात कर दिया।।२२।। नवीनपुर द्वार पर दश अक्षौहिणी सेना के साथ तालभुज नामक दैत्य को रक्षा के लिये तैनात कर दिया था।।२३।। पश्चिमपुर द्वार पर दश अक्षौहिणी सेना के साथ तालग्रीव नामक दैत्य को रक्षा के लिये प्रतिनियुक्त कर दिया था।।२४।। उत्तर नगर द्वार पर तालकेतु नामक महाबलवान् दैत्य को दश अक्षौहिणी सेना के साथ रक्षा करने के लिये आदेश दिया था।।२५।। नगर के चहार दीवार पर चारों ओर ऊँचे-ऊँचे महलों पर दश अक्षौहिणी सेना को मण्डलाकाररूप में रहने का आदेश दिया था।।२६।। इस प्रकार अक्षौहिणी सेना के पचास भाग करके नगर की रक्षा में लगाया था। तब शून्यक के नगर का वह वृत्तान्त कुटिलाक्ष ने अपने स्वामी भण्डासुर को बताया।।२७।।

कुटिलाक्ष ने कहा कि हे देव! मैंने अपनी आज्ञा से समस्त सेना को नगर की रक्षा में लगा दिया है तथा दुर्मद को पहले ही ललिता की ओर भेज दिया है।।२८।। हम किंकर मात्र से ही वह स्त्री अच्छी प्रकार से निराश हो गयी तथापि नगर की रक्षा करना राजाओं का आचार है।।२९।। इस प्रकार भण्डासुरराज से कहकर अत्यन्त गर्वित इस कुटिलाक्ष ने सेनापति के साथ सेना को सजाया।।३०।। पहले उस कुटिलाक्ष दानवने उन ललिता देवी के पास दूत भेजा। वह ध्वनि करता हुआ ध्वजायुक्त ललिता सेना में पहुँचा।।३१।। तब वहाँ किलकिल की ध्वनि करते हजारों योद्धाओं को शक्ति सैनिकों ने चमकती हुई तलवारों से उसे भूमि पर गिरा दिया।।३२।। ललिता देवी की उद्दण्ड शक्तियों ने अट्टहास करते हुए चमकते शस्त्रों से दानवों के साथ युद्ध किया।।३३।। शक्तियों और दानवों का वह संग्राम तीनों लोकों में सम्यक् प्रकार से शोभित हो गया था तथा उस संग्राम में उठी हुई धूलि से सारा

रथवंशेषु मूर्च्छंत्यः करिकंठैः प्रपञ्चिताः। अश्वनिःश्वासविक्षिप्ता धूलयः खं प्रपेदिरे।।३५।।
तमापतन्तमालोक्य दशाक्षौहिणीकावृतम्। संपत्सरस्वती क्रोधादिभिदुद्राव संगरे।।३६।।
सम्पत्करीसमानाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः।
अश्वाश्च दंतिनो मत्ता व्यमर्दन्दानवीं चमूम्।।३७।।
अन्योन्यतुमुले युद्धे जाते किलिकिलारवे। धूलीषु धूयमानासु ताड्यमानासु भेरिषु।।३८।।
इतस्ततः प्रववृधे रक्तसिन्धुर्महीयसी। शक्तिभिः पात्यमानानां दानवानां सहस्रशः।।३९।।
ध्वजानि लुठितान्यासन्विलूनानि शिलीमुखैः।
विस्रस्ततत्तच्चिह्नानि समं छत्रकदम्बकैः।।४०।।
रक्तारुणायां युद्धोर्व्यां पतितैश्छत्रमण्डलैः। आलंभि तुलना संध्यारक्ताभ्रहिमरोचिषा।।४१।।
ज्वालाकपालः कल्पाग्निरिव चारुपयोनिधौ।
दैत्यसैन्यानि निवहाः शक्तीनां पर्यवारयन्।।४२।।
शक्तिच्छन्दोज्ज्वलच्छस्त्रधारानिष्कृत्तकन्धराः। दानवानां रणतले निपेतुर्मुंडराशयः।।४३।।
दष्टौष्ठैर्भ्रुकुटीक्रूरैः क्रोसंरक्तलोचनैः। मुण्डैरखण्डमभवत्संग्रामधरणीतलम्।।४४।।
एवं प्रवृत्ते समये जगच्चक्रभयङ्करे। शक्तयो भृशसंक्रुद्धा दैत्यसेनाममर्दयन्।।४५।।
इतस्ततः शक्तिशस्त्रैस्ताडिता मूर्च्छिता इति। विनेशुर्दानवास्तत्र संपद्देवीबलाहताः।।४६।।

आकाशमण्डल धूल धूसरित हो गया।।३४।। रथों के संघातों में उठायी गयी हाथियों के कण्ठों से प्रपंचित और घोड़ों की श्वास से उठायी गयी धूलि आकाश में छा गयी।।३५।। उस दश अक्षौहिणी सेना से युक्त असुर को आता हुआ देखकर सम्पत्सरस्वती देवी क्रोध से समर में उपस्थित हो गयीं।।३६।। उन सम्पत्करी देवी के समान शक्तियों से समधिष्ठित अश्वों और हाथियों ने मत्त होकर दानवी सेना का मर्दन कर दिया।।३७।। जब वहाँ एक दूसरे में भीषण हाहाकार वाला युद्ध प्रारम्भ हो गया और चारों तरफ किलकिल की ध्वनि होने लगी, तब धूलियों के उठने पर और रणभेरियों के बजने पर शक्तियों द्वारा इधर-उधर मारकर गिराये गये हजारों दानवों के शरीरों से महीयसी रक्त की नदी बहने और बढ़ने लगी।।३८-३९।। बाणों द्वारा ध्वजायें जमीन पर गिरा दी गयी और फाड़ दी गयीं तथा छत्रसमूहों के साथ उनके चिह्न भी मिटा दिये गये।।४०।।

रक्त से लाल हुई युद्धभूमि पर छत्रमण्डलों के गिरने से सन्ध्या के समय हिमालय की कान्ति जो लाल हो जाती है, उस तरह की भूमि लाल हो गयी थी।।४१।। प्रलयकाल की अग्नि के समान सुन्दर समुद्र में देवी का ज्वाला कपाल (जलता हुआ कपाल) सैत्य सेनाओं के समूहों को रोक रहा था।।४२।। शक्ति ने इच्छा से ही उज्ज्वल शस्त्र की तीक्ष्ण धार से असुरों के कन्धे काट दिये गये और युद्धभूमि में दानवों के मुण्डों के ढेर गिरा दिये गये।।४३।। इस प्रकार काटे गये ओष्ठ भ्रकुटी क्रूर और लाल-लाल नेत्रों वाले मुण्डों (शिरों) से संग्राम पृथ्वी तल अखण्ड हो गया था। अर्थात् पूरा पट गया था।।४४।। इस प्रकार के समय के प्रवृत्त हो जाने पर उस भयंकर संसार चक्र में अत्यन्त क्रोधित शक्तियों ने दैत्य सेना का मर्दन कर दिया।।४५।। इधर-उधर शस्त्रों से ताडित और मूर्च्छित हुए संपत्करी देवी के बल से आहत दानव वहाँ विनष्ट हो गये।।४६।।

अथ भग्नं समाश्वास्य निजं बलमरिन्दमः। उष्ट्रमारुह्य सहसा दुर्मदोऽभ्यद्रवच्चमूम्॥४७॥
दीर्घग्रीवः समनुन्नद्धः पृष्ठे निष्ठुरतोदनः। अधिष्ठितो दुर्मदेन वाहनोष्ट्रश्चचाल ह॥४८॥
तमुष्ट्रवाहनं दुष्टमन्वीयुः क्रुद्धचेतसः। दानवानश्वसत्सर्वान्भीताञ्छक्तियुयुत्सया॥४९॥
अवाकिरद्दिशो भल्लैरुल्लसत्फलशालिभिः संपत्करीचमूचक्रं वनं वार्भिरिवांबुदः॥५०॥
तेन दुःसहसत्त्वेन ताडिता बहुभिः शरैः। स्तंभितेवाभवत्सेना संपत्कर्याः क्षणं रणे॥५१॥
अथ क्रोधारुणंचक्षुर्दधाना संपदंबिका। रणकोलाहलगजमारूढायुध्यतामुना॥५२॥
आलोलकंकणक्वाणरमणीयतरः करः। तस्याश्चाकृष्य कोदं डमौर्वीमाकर्णमाहवे॥५३॥
लघुहस्ततयापश्यन्नाकृष्टन्न च मोक्षणम्। ददृशे धनुषश्चक्रं केवलं शरधारणे॥५४॥
आश्वर्कांबरसंपर्कस्फुटप्रतिफलत्फलाः। शराः सम्पत्करीचापच्युताः समदहन्नरीन्॥५५॥
दुर्मदस्याथ तस्याश्च समभूद्युद्धमुद्धतम्। अभूदन्योन्यसंघट्टाद्विस्फुलिंगशिलीमुखैः॥५६॥
प्रथमं प्रसृतैर्बाणैः सम्पद्देवीसुरद्विषोः। अन्धकारः समभवत्तिरस्कुर्वन्नहस्करम्॥५७॥
तदंतरे च बाणानामतिसंघट्टयोनयः। विष्फुलिंगा विदधिरे दधिरे भ्रमचातुरीम्॥५८॥
तयाधिरूढः संश्रोण्या रणकोलाहलः करी। पराक्रमं बहुविधं दर्शयामास संगरे॥५९॥

इसके बाद शत्रुओं का दमन करने वाले दुर्मद को जब यह विश्वास हो गया कि उसका समस्त सैन्यबल भग्न कर दिया गया है, तब वह ऊँट पर सवार होकर अचानक सेना में भाग गया।।४७।। फिर दीर्घग्रीव तैयार होकर पीठ पर कठोर अंकुश बाँधे हुए ऊँट पर सवार होकर चल दिया, जिसे कि दुर्मद ने ही अधिष्ठित किया था।।४८।। उस ऊँट के वाहन का क्रुद्ध चेतस ने सब दानवों को नष्ट कर अनुसरण किया। चमकते हुए फाल वाले भालों से सारी दिशायें भर दी गयीं। संपत्करी देवी ने सेना चक्र को उस तरह ढक दिया जिस तरह बादल जलों से वन को ढक देते हैं।।५०।। उस असहनीय बल वाले दुर्मद ने अनेकों बाणों से ताडित संपत्करी देवी की सेना क्षण में रणस्थल में स्तम्भित सी हो गयी। जब संपत्करी की सेना स्तम्भित सी हो गयी, तब सम्पत्करी अम्बिका ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करके युद्ध में कोलाहल पैदा कर देने वाले हाथी पर सवार होकर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।।५१-५२।। तब उनका कंगन बजता हुआ, जो अत्यन्त सुन्दर हाथ था, उस हाथ से कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर युद्ध में इस प्रकार बाण को चलाया कि हाथ की सफाई के कारण न तो धनुष खींचते हुए दिखाई दिया और न बाण छोड़ते हुये दिखाई दिया, केवल बाण को धनुष पर धारण करने पर ही दिखाई दिया।।५३-५४।। शीघ्र सूर्य और आकाश के सम्पर्क से साफ-साफ फलीभूत होने वाले संपत्करी देवी के धनुष से गिराये गये बाणों ने शत्रुओं को सम्यक् रूप से जला डाला (भस्ममात्) कर दिया।।५५।। इसके बाद दुर्मद का और उन संपत्करी देवी का भयंकर युद्ध होने लगा। उस समय एक-दूसरे के बाणों के टकराने से आग की चिन्गारियां छूट रही थीं।।५६।। पहले ही पहले जब संपत्करी देवी और देवों के शत्रु दुर्मद का युद्ध प्रारम्भ हुआ, तो उन दोनों के द्वारा छोड़े गये बाणों से सूर्य को पूरी तरह तिरस्कृत करता हुआ अन्धकार छा गया।।५७।। उसी बीच में बाणों के अत्यन्त टकराने से उनकी संघटन योनि से अर्थात् बाणों के टकराने के केन्द्र बिन्दु से बिजली के समान चिन्गारियां निकलने लगीं, तब देवी ने भ्रम चातुरी हथिनी को धारण किया।।५८।। उस पर वे देवी चढ़ गयीं,

करेण कतिचिद्दैत्यान्पादघातेन कांश्चन। उदग्रदंतमुसलघातैरन्यांश्च दानवान्॥६०॥
बालकांडहतैरन्यान्फेत्कारैरपरान्रिपून्। गात्रव्यामर्द्दनैरन्यान्नखघातैस्तथापरान्॥६१॥
पृथुमानाभिघातेन कांश्चिद्दैत्यान्व्यमर्दयत्। चतुरं चरितं चक्रे संपद्देवीमतंगजः॥६२॥
सुदुर्मदः क्रुधा रक्तो दृढेनैकेन पत्रिणा। संपत्करीमुकुटगं मणिमेकमपाहरत्॥६३॥
अथ क्रोधारुणदृशा तया मुक्तैः शिलीमुखैः। विक्षतो वक्षसि क्षिप्रं दुर्मदो जीवितं जहौ॥६४॥
ततः किलकिला रावं कृत्वा शक्तिचमूवरैः। तत्सैनिकवरास्त्वन्ये निहता दानवोत्तमाः॥६५॥

हतावशिष्टा दैत्यास्तु शक्तिबाणैः खिलीकृताः।
पलायिता रणक्षोण्याः शून्यकं पुरमाश्रयन्॥६६॥
तद्वृत्तांतमथाकर्ण्य संक्रुद्धो दानवेश्वरः॥६७॥

प्रचंडेन प्रभावेण दीप्यमान इवात्मनि। स पस्पर्श नियुद्धाय खड्गमुग्रविलोचनः।
कुटिलाक्षं निकटगं बभाषे पृतनापतिम्॥६८॥

कथं सा दुष्टवनिता दुर्मदं बलशालिनम्। निपातितवती युद्धे कष्ट एव विधेः क्रमः॥६९॥
न सुरेषु न यक्षेषु नोरगेंद्रेषु यद्बलम्। अभूत्प्रतिहतं सोऽपि दुर्मदोऽबलया हतः॥७०॥
तां दुष्टवनितां जेतुमाक्रष्टुं च कचं हठात्। सेनापतिं कुरंडाख्यं प्रेषयाहवदुर्मदम्॥७१॥

तब रण में कोलाहल करने वाली उस संश्रोणी नामक हथिनी ने युद्ध में अनेकों प्रकार का पराक्रम दिखाया।।५९।। तब उस हथिनी से कुछ दैत्यों को सूँड़ से कुछ को पैर के आघात से कुछ दानवों आगे वाले दाँतों से, कुछ मुसल के आघातों से मार डाला।।६०।। किसी का बाल पकड़ घसीट कर मार डाला, अन्य शत्रुओं का घोर चीत्कार (चीख) से बेहोश कर दिया, दूसरे शत्रुओं के शरीरों को मसल डाला तथा दूसरों को नाखूनों के आघातों से मार दिया।।६१।। कुछ दैत्यों को उस हथिनी ने अपने विशाल शरीर के आघात से ही मार डाला। इस प्रकार संपत्करी देवी के उस हाथीने चतुर चरित किया।।६२।। तथा सुदुर्मद ने क्रोध से लाल होकर एक दृढ़ बाणसे संपत्करी देवी के मुकुट में लगे हुए एक मणि का अपहरण कर लिया।।६३।। इसके बाद क्रोध से लाल लाल आँखें करके उन देवी ने अपने अनेकों बाणों का उसके वक्षःस्थल पर प्रहार किया और शीघ्र ही उस दैत्य ने अपने प्राणों को त्याग दिया।।६४।। उसके बाद श्रेष्ठशक्ति सेना ने किलकिल की ध्वनि करके उसके श्रेष्ठ सैनिक तथा उत्तम दानवों को मार गिराया।।६५।। मरने से बचे हुए दैत्य तो शक्ति के बाणों से तितर-बितर किये गये रणभूमि छोड़कर भाग गये और फिर शून्यक के पास नगर में पहुँचे।।६६।। जब उन दैत्यों ने सारा वृत्तान्त उस शून्यक दैत्यराज को सुनाया तो वह दानवेश्वर अत्यन्त क्रोधित हो गया।।६७।।

तब प्रचण्ड प्रभाव से अपनी आत्मा में जलते हुये के समान उग्रनेत्र वाले उसने युद्ध के लिये उग्र खड्ग को स्पर्श किया और फिर सेनापति कुटिलाक्ष के निकट जाकर उससे बोला।।६८।। कि कैसे उस दुष्टा स्त्री ने बलशाली दुर्मद को युद्ध में मारकर गिरा दिया, अब विधि का क्रम कष्ट में ही है।।६९।। उस दुर्मद में इतना बल था कि उसके बल का मुकाबला करने की शक्ति न देवताओं में थी, न यक्षों में थी और न नागराजों में थी, उस दुर्मद को भी एक अबला ने मार डाला।।७०।। इसलिये अब उस दुष्ट स्त्री को जीतने को और जबरदस्ती उसके

इति संप्रेषितस्तेन कुटिलाक्षो महाबलम्। कुरंडं चंडदोर्दंडमाजुहाव प्रभो पुरः॥७२॥
स कुरंडः समागत्य प्रणामं स्वामिनेऽदिशत्।
उवाच कुटिलाक्षस्तं गच्छ सज्जय सैनिकान्॥७३॥
मायायां चतुरोऽसि त्वं चित्रयुद्धविशारद। कूटयुद्धे च निपुणस्तां स्त्रियं परिमर्दय॥७४॥
इति स्वामिपुरस्तेन कुटिलाक्षेण देशितः। निर्जगाम पुरात्तूर्णं कुरंडश्चंडविक्रमः॥७५॥
विंशत्यक्षौहिणीभिश्च समंतात्परिवारितः। मर्दयन्स महीगोलं हस्तिवाजिपदातिभिः।
दुर्मदास्याग्रजश्चंडः कुरंडः समरं ययौ॥७६॥
धूलीभिस्तुमुलीकुर्वन्दिगंतं धीरमानसः। शोकरोषग्रहग्रस्तो जवनाश्वगतो ययौ॥७७॥
शार्ङ्गं धनुः समादाय घोरटंकारमुत्स्वनम्। ववर्ष शरधाराभिः संपत्कर्या महाचमूम्॥७८॥
पापे मदनुजं हत्वा दुर्मदं युद्धदुर्मदम्। वृथा वहसि विक्रांतिलवलेशं महामदम्॥७९॥
इदानीं चैव भवतीमेतेर्नाराचमंडलैः। अंतकस्य पुरीमत्र प्रापयिष्यामि पश्यमाम्॥८०॥
अतिहृद्यमतिस्वादु त्वद्वपुर्बिलनिर्गतम्। अपूर्वमंगनारक्तं पिबन्तु रणपूतनाः॥८१॥
ममानुजवधोत्थस्य प्रत्यवायस्य तत्फलम्। अधुना भोक्ष्यसे दुष्टे पश्य मे भुजयोर्बलम्॥८२॥
इति संतर्जयन्संपत्करीं करिवरस्थिताम्। सैन्यं प्रोत्साहयामास शक्तिसेनाविमर्दने॥८३॥

केशों को पकड़कर लाने के लिये कुरण्ड नामक दुर्मद योद्धा को भेजिये।।७१।। इस प्रकार जब शून्यक ने कुटिलाक्ष से कहा, तब कुटिलाक्ष ने प्रचण्ड भुजाओं वाले महाबलवान् कुरण्ड को स्वामी के सामने आहूत किया।।७२।। उस कुरण्ड ने आकर स्वामी भण्ड को प्रणाम किया, तब कुटिलाक्ष ने कुरण्ड से कहा कि तुम जाओ और सैनिकों को युद्ध के लिये तैयार करो।।७३।। तुम माया में चतुर हो और चित्रयुद्ध में कुशल हो तथा कूटयुद्ध में भी निपुण हो। अतः जाओ उस स्त्री को पूरी तरह मर्दन कर दो (मसल डालो)।।७४।। इस प्रकार स्वामी भण्डासुर के समक्ष कुटिलाक्ष ने उसे आदेश दिया और आदेश प्राप्त कर वह प्रचण्ड पराक्रमी कुरण्ड नगर से युद्ध के लिये निकल पड़ा।।७५।। बीस अक्षौहिणी सेना द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ हाथी घोड़े और पैदल सैनिकों द्वारा भूगोल का मर्दन करता हुआ दुर्मद का बड़ा भाई भयंकर कुरण्ड युद्ध के लिए चल पड़ा।।७६।।

धूलियों से समस्त दिशाओं का धुन्धला बनाता हुआ वह धीर चित्त वाला शोक और रोष रूपी ग्रह से ग्रस्त होकर तीव्रगति से चलने वाले घोड़े से युद्धभूमि में गया।।७७।। फिर वह कुरण्ड नामक दैत्य शार्ङ्ग धनुष को लेकर प्रत्यञ्चा की घोर टंकार करता हुआ संपत्करी देवी की महा सेना पर बाणों की वर्षा करने लगा।।७८।। और फिर वह संपत्करी देवी से बोला कि अरे पापिनि! युद्ध में किसी से न हारने वाले मेरे छोटे भाई दुर्मद को मारकर विक्रान्ति के थोड़े से महामद को व्यर्थ वहन करती हो।।७९।। इस समय मैं यहाँ अपने लोहे के बाणों से आपको यमराज की पुरी में पहुँचाऊँगा अतः मुझे देखो।।८०।। अब तुम्हारे अत्यन्त हृदय प्रिय अत्यन्त स्वादिष्ट तुम्हारे शरीर के बिल से निकले अपूर्व नारीरक्त को रणपूतना पीयेंगी।।८१।। हे दुष्टे! अपने छोटे भाई के उठे हुए विरोध (वैर) के उस फल को अब मैं भोग करूँगा। अर्थात् अब मैं अपने भाई की मृत्यु का बदला लूँगा। हे दुष्टे! अब तुम मेरी भुजाओं का वल देखो।।८२।। इस प्रकार श्रेष्ठ हाथी पर स्थित उन संपत्करी देवी को उत्तेजित करते हुए उस दैत्य

अथ तां पृतनां चंडी कुरंडस्य महौजसः। विमर्दयितुमुद्युक्ता स्वसैन्यं प्रोदसीसहत्॥८४॥
अपूर्वाहवसंजातकौतुकाथ जगाद ताम्। अश्वारूढा समागत्य सस्नेहार्द्रमिदं वचः॥८५॥
सखि संपत्करि प्रीत्या मम वाणी निशम्यताम्। अस्य युद्धमिदं देहि मम कर्तुं गुणोत्तरम्॥८६॥
क्षणं सहस्व समरे मयैवैषं नियोत्स्यते। याचितासि सखित्वेन नात्र संशयमाचर॥८७॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा संपद्देव्या शुचिस्मिता।
निवर्तयामास चमूं कुरुंडाभिमुखोत्थिताम्॥८८॥
अथ बालार्कवर्णाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः।
तरंगा इव सैन्याब्धेस्तुरंगा वातरंहसः॥८९॥

खरैः खुरपुटैः क्षोणीमुल्लिखंतो मुहुर्मुहुः। पेतुरेकप्रवाहेण कुरंडस्य चमूमुखे॥९०॥
वल्गाविभागकृत्येषु संवर्तनविवर्तने। गतिभेदेषु चारेषु पंचधा खुरपातने॥९१॥
प्रोत्साहने च संज्ञाभिः करपादाग्रयोनिभिः। चतुराभिस्तुरंगस्य हृदयज्ञाभिराहवे॥९२॥
अश्वारूढांबिकासैन्यशक्तिभिः सह दानवाः। प्रोत्साहिताः कुरंडेन समयुध्यंत दुर्मदाः॥९३॥
एवं प्रवृत्ते समरे शक्तीनां च सुरद्विषाम्। अपराजितनामानं हयमारुह्य वेगिनम्।
अभ्यद्रवद्दुराचारमश्वारूढाः कुरंडकम्॥९४॥

ने शक्ति सेना का विशेष मर्दन करने के लिए अपनी सेना को प्रोत्साहित किया।।८३।। इसके बाद उस महापराक्रमी कुरण्ड की सेना को कुचलकर नष्ट करने के लिए चण्डी सम्पत्करी देवी ने तैयार सेना को प्रोत्साहित किया।।८४।। इसी बीच में युद्ध में एक अपूर्व कौतुका देवी उत्पन्न हो गयीं, जो अश्व पर आरूढ कौतुका देवी वहाँ आकर संपत्करी देवी से स्नेहसिक्त यह वचन बोलीं।।८५।। सखि! संपत्करि! प्रेमपूर्वक मेरी बात सुनो। वह यह कि कुछ अच्छे गुण (चमत्कार) दिखाने के लिये इस युद्ध को मुझे दे दो।।८६।। क्षण भर के लिये तुम सहन करो (ठहरो) युद्ध में मेरे साथ यह कुरण्ड युद्ध करेगा। हे सखि! संपत्करि! मैं यह तुमसे सखीभाव से माँग रही हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।८७।। इस प्रकार उसके वचन को सुनकर मन्द मुस्कराहट के साथ संपत्करी देवी ने कुरण्ड के सामने खड़ी हुई अपनी सेना को लौटा लिया।।८८।। इसके बाद प्रातःकालीन बालसूर्य की आत्मा वाली शक्तियों द्वारा समधिष्ठित सैन्य सागर में तरंगों के समान वायु की तरह तेज दौड़ने वाले घोड़े पैदा हो गये, जो अपने कठोर खुरों से पृथ्वी को बार-बार खोद दे रहे थे। वे एक प्रवाह के साथ कुरण्डा सुर की सेना के सामने आ गये।।८९-९०।।

वे सब घोड़े लगाम खींचने के प्रकारों से चलने वाले लगाम को खींचने और ढीला करने में लगाम खींचने छोड़ने के अनेक प्रकार के संकेतों को पहचान कर गति का प्रकार बदलने वाले थे तथा गतिभेद में पाँच प्रकार खुरों की ध्वनि करते थे।।९१।। जो घोड़े अपने सवार के संकेत को हाथ और पैर के अग्रभाग से ही समझ लेते थे। ऐसे हृदय की बात जानने वाले घोड़ों पर सवार अम्बिका की सैन्य शक्तियों के साथ कुरण्डासुर द्वारा प्रोत्साहित दुर्मद दानवों ने युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।।९२-९३।। इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर असुरों की शक्तियों ने न पराजित होने वाले, तेज दौड़ने वाले, अश्व पर सवार होकर दुराचारी कुरण्ड पर आक्रमण कर दिया।।९४।।

प्रचलद्वेणिसुभगा शरच्चन्द्रकलोज्ज्वला। संध्यानुरक्तशीतांशुमंडलीसुंदरानना॥९५॥
स्मयमानेव समरे गृहीतमणिकार्मुका। अवाकिरच्छरासारैः कुरंडं तुरगानना॥९६॥
तुरगारूढयोत्क्षिप्ताः समाक्रामन्दिगंतरान्।
दिशो दश व्यानशिरे रुक्मपुङ्खाः शिलीमुखाः॥९७॥
दुर्मदस्याग्रजः क्रुद्धः कुरंडश्चंडविक्रमः। विशिखैः शार्ङ्गनिष्ठ्यूतैरश्वारूढामवाकिरत्॥९८॥
चंडैः खुरपुटैः सैन्यं खण्डयन्नतिवेगतः। अश्वारूढातुरंगोऽपि[1] मर्दयामास दानवान्॥९९॥
तस्य हेषारवाद्दूरमुत्पातांबुधिनिःस्वनः। अमूर्च्छयन्ननेकानि तस्यानीतानि वैरिणः॥१००॥
इतस्ततः प्रचलितैर्दैत्यचक्रे हयासना। निजं पाशायुधं दिव्यं मुमोच ज्वलिताकृति॥१०१॥
तस्मात्पाशात्कोटिशोऽन्ये पाशा भुजगभीषणाः।
समस्तमपि तत्सैन्यं बद्धाबद्धा व्यमूर्च्छयन्॥१०२॥
अथ सैनिकबंधेन क्रुद्धः स च कुरंडकः। शरणैकेन चिच्छेद तस्या मणिधनुर्गुणम्॥१०३॥
छिन्नमौर्विं धनुस्त्यक्त्वा भृशं क्रुद्धा हयासना। अंकुशं पातयामास तस्य वक्षसि दुर्मतेः॥१०४॥

तब सुन्दर केशपाश वाली, शरत्कालीन चन्द्रकला के समान उज्ज्वल, सन्ध्या से अनुरक्त चन्द्रमण्डल के समान सुन्दर मुखवाली, आश्चर्य के समान, कौतुका देवी ने युद्ध में मणिजटित धनुष धारण करने वाली अश्वमुखी कौतुकी देवी ने युद्ध में कुरण्ड पर बाणों की घनघोर वर्षा की।।९५-९६।। अश्व पर आरूढ़ उन देवी ने फेंके हुए बाणों से समस्त दिशाओं को उनके अन्त तक समाक्रान्त कर दिया और स्वर्ण पुंख वाले बाणों से दशों दिशायें व्याप्त हो गयीं।।९७।। यह देखकर प्रचण्ड पराक्रमी दुर्मद के बड़े भाई कुरण्ड ने अपने धनुष पर बाणों को रखकर अश्वारूढ़ देवी पर बाणों की बौछार कर दी।।९८।।

तब अपने प्रचण्ड खुरों से सेना को अत्यन्त वेग से खण्ड-खण्ड करते हुए अश्वारोढ़ अश्व ने भी दानवों को कुचल डाला।।९९।। उस अश्व की हिनहिनाहट ध्वनि से दूर समुद्र में भी खलबली मचला देने वाले घोर शब्द ने उस कुरण्ड के अनेकों लाये हुए वैरियों को मूर्च्छित कर दिया।।१००।। जब दैत्य सेना इधर उधर भागने लगी, तब अश्वारूढ़ आग की तरह जलती हुई आकृति वाली उन देवी ने अपने दिव्यं पाश नाम आयुध को छोड़ दिया।।१०१।। उस पाश से अन्य करोड़ों भयंकर सर्पों के पाश पैदा हो गये, उन नागपाशों ने सैकड़ों सैनिकों को बाँध लिया, जो नहीं बँधे वे मूर्च्छित हो गये।।१०२।। इसके बाद जब सैनिक बाँध लिये गये, तब वह कुरण्डकासुर अत्यन्त क्रोधित हो गया और फिर उसने एक ही बाण से उन कौतुका देवी के मणि धनुष की प्रत्यञ्चा को काट दिया।।१०३।। जब उन देवी के धनुष की प्रत्यञ्चा कट गयी, तब उन्होंने धनुष को छोड़ दिया और फिर हयासना देवी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं और क्रुद्ध होकर उन देवी ने उस दुष्टबुद्धि के वक्षःस्थल पर अंकुश का प्रहार किया।।१०४।।

---

१. अश्वारूढातुरङ्गोऽपि—का अर्थ यहाँ यह हो सकता है कि जिस पर देवी सवार थीं उसके बाद भी उस अश्व ने दानवों को मसल डाला तथा अश्वारूढ़ + अतुरङ्गोऽपि का अर्थ होगा कि जो अश्व पर आरूढ़ होती थी, उन देवी ने तुरंग अश्व के न रहने पर अतुरङ्गोऽपि विना घोड़े के दानवों को मसल डाला।

तेनांकुशेन ज्वलता पीतजीवितशोणितः। कुरंडो न्यपतद्भूमौ वज्र रुग्ण इव द्रुमः॥१०५॥
तदंकुशविनिष्ठ्यूताः पूतनाः काश्चिदुद्भटाः। तत्सैन्यं पाशनिष्यंदं भक्षयित्वा क्षयं गताः॥१०६॥
इत्थं कुरुंडे निहते विंशत्यक्षौहिणीपतौ। हतावशिष्टास्ते दैत्याः प्रपलायंत वै द्रुतम्॥१०७॥
कुरंडं सानुजं युद्धे शक्तिसैन्यैर्निपातितम्। श्रुत्वा शून्यकनाथोऽपि निशश्वास भुजंगवत्॥१०८॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने दुर्मदकुरंडवधो नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

करकादि पञ्चसेनापतिवधोनाम

त्रयोविंशोऽध्यायः

अथाश्वारूढया क्षिप्ते कुरंडे भंडदानवः। कुटिलाक्षमिदं प्रोचे पुनरेव युयुत्सया॥१॥
स्वप्नेऽपि यन्न संभाव्यं यन्न श्रुतमितः पुरा। यच्च नो शंकितं चित्ते तदेतत्कष्टमागतम्॥२॥
कुरंडदुर्मदौ सत्त्वशालिनौ भ्रातरौ हि तौ। दुष्टदास्याः प्रभावोऽयं मायाविन्या महत्तरः॥३॥

उस जलते अंकुश द्वारा उस कुरण्ड का जीवन और रक्त पी लिया गया। तब वह कुरण्ड वज्र से काटे गये पेड़ की भाँति भूमि पर गिर गया।।१०५।। उस अंकुश द्वारा मारे गये कुछ उद्भट राक्षस पाश के निष्यन्द को खाकर नष्ट हो गये।।१०६।। इस प्रकार बीस अक्षौहिणी सेना के सेनापति कुरण्डासुर के मरने पर मरने से बचे हुए सैनिक शीघ्र ही भाग गये।।१०७।। अपने छोटे भाई दुर्मद सहित कुरण्ड को भी शक्ति सेना ने मार गिराया, इस वृत्तान्त को सुनकर शून्यक नाथ ने सर्प की भाँति गहरी साँस ली।।१०८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २२वाँ अध्याय दुर्मदकुरुण्ड वध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२३

करंकादि पाँच सेनापतिवध वर्णन

पूर्व अध्याय में संपत्करी देवी की कौतुका नामक शक्ति ने जब कुरण्डासुर को मार गिया, तब दैत्यराज भण्ड ने पुनः युद्ध करने की इच्छा से कुटिलाक्ष से कहा।।१।। कि स्वप्न में भी जो सम्भव नहीं था तथा इससे पहले कभी ऐसा सोचा ही था और जिसकी मन में कभी शंका ही नहीं थी, अचानक वह यह कष्ट आ गया है।।२।। वे कुरण्ड और दुर्मद दोनों भाई बहुत पराक्रमी थे, यह उस मायाविनी दुष्ट दासी का प्रभाव है।।३।।

इतः परं करंकादीन्यपंचसेनाधिनायकान्। शतमक्षौहिणीनां च प्रस्थापय रणांगणे॥४॥
ते युद्धदुर्मदाः शूराः संग्रामेषु तनुत्यजः। सर्वथैव विजेष्यंते दुर्विदग्धविलासिनीम्॥५॥
इति भंडवचः श्रुत्वा भृशं च त्वरयान्वितः। कुटिलाक्षः करंकादीनाजुहाव चमूपतीन्॥६॥
ते स्वामिनं नमस्कृत्य कुटिलाक्षेण देशिताः।
अग्नौ प्रविष्णव इव क्रोधांधा निर्ययुः पुरात्॥७॥
तेषां प्रयाणनिःसाणरणितं भृशदुःसहम्। आकर्ण्य दिग्गजास्तूर्णं शीर्णकर्णा जुघूर्णिरे॥८॥
शतमक्षौहिणीनां च प्राचलत्केतुमालकम्। उत्तरंगतुरंगादि बभौ मत्तमतंगजम्॥९॥
ह्रेषमाणहयाकीर्णं क्रंदद्भटकुलोद्भवम्। बृंहमाणगजं गर्जद्रथचक्रं चचाल तत्॥१०॥
चक्रनेमिहतक्षोणीरेणुक्षपितरोचिषा। बभूवे तुहिनासारच्छन्नेनेव विवस्वता॥११॥
धूलीमयमिवाशेषमभवद्विश्वमंडलम्। क्वचिच्छब्दमयं चैव निःसाणकठिनस्वनैः॥१२॥
उद्धूतैर्धूलिकाजालैराक्रांता दैत्यसैनिकाः। उयत्तयातः सेनायाः संख्यापि परिभाविता॥१३॥
ध्वजा बहुविधाकारा मीनव्यालादिचित्रिताः।
प्रचेलुर्धूलिकाजाले मत्स्या इव महोदधौ॥१४॥
तानापतत आलोक्य ललितासैनिकं प्रति। वित्रेसुरमराः सर्वे शक्तीनां भङ्गशङ्कया॥१५॥
त करङ्कमुखाः पञ्च सेनापतय उद्धताः। सर्पिणीं नाम समरे मायां चक्रुर्महीयसीम्॥१६॥

भण्डासुर ने कटिलाक्ष से कहा कि इसके बाद करंक आदि पाँच सेनापतियों को सौ अक्षौहिणी सेना को लेकर युद्ध क्षेत्र में प्रयाण कराओ।।४।। वे युद्धों में किसी से भी न हारने वाले शूरवीर योद्धा कठिनाई से जीती जाने वाली विलासिनी उस ललिता को सब प्रकार से जीत लेंगे।।५।। इस प्रकार भण्डासुर के वचन को सुनकर बहुत शीघ्रता से कुटिलाक्ष ने करंक आदि सेनापतियों को बुलाया।।६।। सेनापतियों ने आकर पहले स्वामी दैत्यराज भण्ड को नमस्कार किया और नमस्कार करके अग्नि प्रवेश करने के समान क्रोधान्ध होकर नगर से युद्ध के लिये निकल पड़े।।७।। युद्ध क्षेत्र में उनका प्रयाण अत्यन्त कठोर युद्ध वाला तथा अत्यन्त दुःसह था। उन सेनापतियों के प्रयाण को सुनकर दिग्गज (दिशाओं के हाथी) शीघ्र ही कानों को गिराकर घूरने लगे।।८।। सौ अक्षौहिणी सेनाओं की ध्वजायें चलने लगी, तब ऊँचे-ऊँचे अश्व तथा मदमत्त हाथी सुशोभित हुए।।९।। हिनहिनाते हुए घोड़ों से आकीर्ण योद्धाओं की चिल्लाने की ध्वनि से युक्त बढ़ते हुए हाथियों की गर्जना से युक्त वह रथचक्र चलने लगा।।१०।। तब रथ के पहिये की नेमि से खोदी गयी भूमि की धूलि की छाया हुई। आभाश से ऐसा लगता था मानो कि सूर्य को कुहरा ने ढक दिया हो।।११।। इस प्रकार समस्त विश्वसमूह धूलीमय के समान हो गया था। निःसाण (अनुपम) कठिन ध्वनियों से कहीं शब्द सुनायी नहीं देता था।।१२।। धूलि समूह के उठने से दैत्य सैनिक आक्रान्त हो गये। इतनी सेना आयी कि उसकी गिनती भी नहीं की जा सकती।।१३।। उस सेना में अनेकों प्रकार के आकार की ध्वजायें थी, किसी पर मछली तो किसी पर सर्प आदि चित्रित थे। वे सब सेनाऐं धूलियों में उसी प्रकार चल रही थी जैसे कि समुद्र में मछलियां चलती हैं।।१४।। उन सैनिकों को श्री ललिता देवी की सेना की ओर आता हुआ देखकर देवताओं को यह भय हो गया कि कहीं शक्तियों की शक्ति भंग न हो जाये।।१५।। वे करङ्कादि पाँच

तैः समुत्पतिता दुष्टा सर्पिणी रणशांबरी। धूम्रवर्णा च धूम्रोष्ठी धूम्रवर्णपयोधरा॥१७॥
महोदधिरिवात्यंतं गंभीरकुहरोदरी। पुरश्चचाल शक्तीनां त्रासयंती मनो रणे॥१८॥
कद्रूरिवापरा दुष्टा बहुसर्पविभूषणा। सर्पाणामुद्भवस्थानं मायामयशरीरिणाम्॥१९॥
सेनापतीनां नासीरे वेल्लयंतीमहीतले। वेल्लितं बहुधा चक्रे घोरारावविराविणी॥२०॥
तथैव मायया पूर्वं तेऽसुरेन्द्रा व्यजीजयन्। करंकाद्या दुरात्मानः पञ्चपञ्चत्त्वकामुकाः॥२१॥
अथ प्रववृते युद्धं शक्तीनाममरद्रुहाम्। अन्योन्यवीरभाषाभिः प्रोत्साहित घनक्रुधाम्॥२२॥
अत्यंतसंकुलतया न विज्ञातपरस्पराः। शक्तयो दानवश्चैव प्रजहुः शस्त्रपाणयः॥२३॥
अन्योन्यशस्त्र संघट्टसमुत्थितहुताशने। प्रवृत्तविशिखस्त्रोतःप्रच्छन्नहरिदंतरे॥२४॥
बहुरक्तनदीपूरह्रियमाणमतंगजे। मांसकर्दमनिर्मग्ननिष्पंदरथमंडले॥२५॥
विकीर्णकेशशैवालविलसद्रक्तनिर्झरे। अतिनिष्ठुरविध्वंसि सिंहनादभयंकरे॥२६॥
रजोऽन्धकारतुमुले राक्षसीतृप्तिदायिनि। शस्त्रीशरणिविच्छिन्नदैत्यकंठोत्थितासृजि॥२७॥
प्रवृत्ते घोरसंग्रामे शक्तीनां च सुरद्विषाम्। अथ स्वबलमादाय पंचभिः प्रेरिता सती।

प्रमुख सेनापति बहुत ही अच्छे उद्धत सेनापति थे, उन्होंने समर में सर्पिणी नाम महती माया पैदा कर दी।।१६।। उन सेनापतियों द्वारा उड़ायी गयी दुष्टा सर्पिणी युद्ध में जादू पैदा करने वाली जादूगरनी थी, वह धुँआ के वर्ण की थी, उसके ओष्ठ भी धूम्रवर्ण के थे और धूम्रवर्ण के ही उसके स्तन थे।।१७।। महासागर की भाँति उसकी अत्यन्त गहरी नाभि थी। वह रण में शक्तियों के सामने शक्तियों के मन को डराती हुई चलने लगी।।१८।। वह दुष्टा सर्पों की आदि जननी कद्रू के समान बहुत से सर्पों से सजी हुई मायामय शरीर वाले सर्पों के उत्पत्ति स्थान थी अर्थात् अनेकों सर्पों को पैदा कर देती थी।।१९।। सेनापतियों के आगे पृथ्वीतल पर लोटती हुई अनेकों बार अनेक प्रकार के घोर शब्द करती थी।।२०।। उसी प्रकार पूर्वकाल में माया ने उन करंक आदि पाँच पाँच तत्त्वों के कामुक असुरेन्द्रों को पैदा किया था।।२१।। इसके बाद युद्ध के प्रवृत्त हो जाने पर शक्तियों और देवशत्रु असुरों के बीच अपनी अपनी सेनाओं को वीरतापूर्ण भाषाओं द्वारा युद्ध के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा था।।२२।।

वे सब शक्ति और असुर इतने अधिक थे कि संकुल हो जाने के कारण परस्पर एक दूसरे को जान भी नहीं रहे थे। सब शक्ति सेना और दानव सेना दोनों ही अपने अपने हाथों में शस्त्र लिये हुए थे।।२३।। तब वहाँ एक-दूसरे के शस्त्रों के आघात से घनी रगण के कारण आग उठने लगी थी। युद्ध होने पर बाणों की वर्षा ऐसे हो रही थी मानों की झरने झर रहे हों तथा उन बाणों की वर्षा से सभी दिशायें ढक दी गयी थीं।।२४।। चारों ओर इतना रक्त बह रहा था कि रक्त की नदी बन गयी थी तथा वह रक्त की नदी इतनी गहरी हो गयी कि हाथी भी शरमाने लगे थे। मांस की कीचड़ में रथ डूब गये थे; इसलिये उनकी गति नहीं हो रही थी।।२५।। जैसे कि किसी नदी में शिवार होता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थल में रक्त का झरना बन गया था, जिसमें मरने वाले असुरों तथा शक्तियों के बाल रक्त के स्रोत में शिवार बने हुए थे। वहाँ अत्यन्त निष्ठुर विध्वंस उपस्थित हो गया तथा भयंकर सिंहनाद हो रहा था तथा धूलि के कारण भीषण अन्धकार छा गया था। शस्त्रधारी के शरण से विच्छिन्न हुये दैत्यों के कण्ठ से रुधिर निकल रहा था।।२६-२७।। इस उपर्युक्त प्रकार के असुरों और शक्तियों का घोर संग्राम प्रवृत्त होने पर

सर्पिणी बहुधा सर्पान्विससर्ज शरीरतः॥२८॥
तक्षककर्कोटकसमा वासुकिप्रमुखत्विषः। नानाविधवपुर्वर्णा नानादृष्टिभयंकराः॥२९॥
नानाविधविषज्वालानिर्दग्धभुवनत्रयाः। दारदं वत्सनाभं च कालकूटमथापरम्॥३०॥
सौराष्ट्रं च विषं घोरं ब्रह्मपुत्रमथापरम्। प्रतिपन्नं शौक्लिकेयम्यान्यपि विषाणि च॥३१॥
व्यालैः स्वकीयवदनैविलोलरसनाद्वयैः। विकिरंतः शक्तिसैन्ये विसस्रुः सर्पिणीतनोः॥३२॥
धूम्रवर्णा द्विवदना सर्पा अतिभयंकराः। सर्पिण्या नयनद्वंद्वा दुत्थिताः क्रोधदीपिताः॥३३॥
पीतवर्णास्त्रिफणका दंष्ट्राभिर्विकटाननाः। सर्पिण्याः कर्णकुहरादुत्थिताः सर्पकोटयः॥३४॥
अग्रे पुच्छे च वदनं धारयंतः फणान्वितम्।
आस्यादा नीलवपुषः सर्पिण्याः फणिनोऽभवन्॥३५॥
अन्यैश्च बलवर्णाश्च चतुर्वक्राश्चतुष्पदाः। नासिकाविवरात्तस्या उद्‌गता उग्ररोचिषः॥३६॥
लंबमानमहाचर्मावृत्तस्थूलपयोधरात्। नाभिकुंडाच्च बहवो रक्तवर्णा भयानकाः॥३७॥
हलाहलं वहंतश्च प्रोत्थिताः पन्नगाधिपाः। विदशंतः शक्तिसेनां दहंतो विषवह्निभिः॥३८॥
बध्नंतो भोगपाशैश्च निघ्नंतः फणमंडलैः। अत्यन्तमाकुलां चक्रुर्ललितेशीचमूममी॥३९॥
खंड्यमाना अपि मुहुः शक्तीनां शस्त्रकोटिभिः॥४०॥

अपने बल को लेकर पाँच सेनापतियों से प्रेरित होती हुई, उस सर्पिणी ने अपने शरीर से अनेकों प्रंकार के सर्पों को उत्पन्न कर दिया।।२८।। वे हैं—तक्षक और कर्कोटक जो वासुकि प्रमुख की कान्ति वाले थे। वे सब सर्प अनेकों प्रकार के शरीर और वर्णो वाले थे तथा अनेकों प्रकार की भयंकर दृष्टि वाले थे।।२९।। वे सर्प अनेकों प्रकार के विषों की ज्वाला से तीनों लोकों को जलाने वाले थे।।२९½।। उन सर्पो में जो भीषण सद्यः प्राणनाशक विष थे, उनका नाम है—दारद, वत्सनाभ तथा उससे भी भीषण कालकूट, सौराष्ट्र और ब्रह्मपुत्र दूसरे प्रकार का विष है तथा शौक्लिकेय विष एवं अन्य प्रकार के विषों को सर्प अपनी लपलपाती दो जिह्वाओं से शक्ति सेनाओं पर गिराने वाले सर्प उस सर्पिणी के शरीर से पैदा हो गये।।२९½-३२।। सर्पिणी के दोनों नेत्रों से धूम्रवर्ण वाले, दो मुख वाले अत्यन्त भयंकर क्रोध से दीपित सर्प निकल रहे थे।।३३।। उस सर्पिणी के कर्ण कुहरों से पीले वर्ण वाले तीन फण वाले और बड़े-बड़े दाँतों से विकटमुख वाले करोड़ों सर्प निकल रहे थे।।३४।। वे सर्प आगे और पीछे दोनों तरफ फण से युक्त मुख धारण करते थे। इस प्रकार उस सर्पिणी के मुख से खाने वाले नीले शरीर केअनेकों फणधारी सांप हो गये।।३५।। अन्य बल और वर्ण दोनों में ही भयंकर तथा चार मुख वाले और चार पैरों वाले एवं उग्रकान्ति वाले सर्प उस सर्पिणी के नासिका छिद्रों से उत्पन्न हो गये।।३६।।

उस सर्पिणी के लम्बे तथा लटकते हुए महाचर्म वाले गोल एवं मोटे स्तनों से तथा नाभिकुण्ड से लाल रंग के बहुत से भयावह हलाहल (विष) को धारण करने वाले सर्पराज उठ खड़े हुए, जो शक्ति सेना को डस रहे थे और अपने विष की आग से जला रहे थे।।३७-३८।। वे सर्पगण अपने भोगपाशों से शक्ति सेना को बाँध रहे थे तथा अपने फणों से काटकर मार रहे थे। इस प्रकार इन सर्पों ने श्री ललितेश्वरी की सेना को अत्यन्त आकुल कर दिया।।३९।। वैसे तो शक्तियों के करोड़ों शस्त्रों द्वारा वे सब खण्डित भी किये जा रहे थे। शक्तियां अपने शस्त्रों

उपर्युपरि वर्धंते सपिण्डप्रविसर्पिणः। नश्यंति बहवः सर्पा जायंते चापरे पुनः॥४१॥
एकस्य नाशसमये बहवोऽन्ये समुत्थिताः। मूलभूता यतो दुष्टा सर्पिणी न विनश्यति॥४२॥
अतस्तत्कृतसर्पाणां नाशे सर्पांतरोद्भवः। ततश्च शक्तिसैन्यानां शरीराणि विषानलैः॥४३॥
दह्यमानानि दुःखेन विप्लुतान्यभवन्रणे। किंकर्तव्यविमूढेषु शक्तिचक्रेषु भोगिभिः॥४४॥
पराक्रमं बहुविधं चक्रुस्ते पंच दानवाः। करीन्द्री गर्दभशतैर्युक्तं स्यंदनमास्थितः॥४५॥
चक्रेण तीक्ष्णधारेण शक्तिसे नाममर्दयत्। वज्रदंताभिधश्चान्यो भंडदैत्यचमूपतिः॥४६॥
वज्रबाणाभिघातेन होष्ट्रतो हि रणं व्यधात्। अथ वज्रमुखैश्च चक्रिवंतं महत्तरम्॥४७॥
आरुह्य कुंतधाराभिः शक्तिचक्रममर्दयत्। वज्रदंताभिधानोऽन्यश्चमूनामधिपो बली॥४८॥
गृध्रयुग्म रथारूढः प्रजहार शिलीमुखैः। तैः सेनापतिभिर्दुष्टैः प्रोत्साहितमथाहवे॥४९॥
शतमक्षौहिणीनां च निपपातैकहेलया। सर्पिणी च दुराचारा बहुमायापरिग्रहाः॥५०॥
क्षणेक्षणे कोटिसंख्यान्विससर्ज फणाधरान्। तथा विकलितं सैन्यमवलोक्य रुषाकुला॥५१॥
नकुली गरुडारूढा सा पपात रणाजिरे। प्रतप्तकनकप्रख्या ललितातालुसम्भवा॥५२॥
समस्तवाङ्मयाकारा दंतैर्वज्रमयैर्युता। सर्पिण्यभिमुखं तत्र विससर्ज निजं बलम्॥५३॥

से उन्हें काट रही थी; परन्तु ऊपर ऊपर पिण्ड के पिण्ड सर्प बढ़ रहे थे। इस प्रकार बहुत से सर्प नष्ट हो जाते थे और फिर पुनः पैदा हो जाते थे।।४०-४१।। एक के नष्ट होने के समय में ही बहुत से अन्य उठ खड़े होते थे; परन्तु मूलभूत जो कि पैदा करने वाली दुष्टा सर्पिणी थी, वही नष्ट नहीं हो रही थी।।४२।। अतः उसके द्वारा पैदा किये गये सर्पों के नाश होने पर दूसरे सर्पों की उत्पत्ति हो जाती थी।।४२-४२½।। उसके बाद शक्ति सेना के सैनिकों के शरीर सर्पों के विष की अग्नि जला दिये गये थे, अतः युद्धस्थल में शक्ति सेना दुःख से पूरी तरह विलुप्त होने लगी।।४२½-४३½।। इस प्रकार उन सर्पों द्वारा शक्ति की सेना किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी थी। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें और क्या न करें? ऐसी स्थिति में उन पाँचों दानवों ने अनेकों प्रकार के पराक्रम किये।।४३½-४४½।। करीन्द्री, सौ गदहों से युक्त रथ पर बैठकर तीक्ष्ण धार वाले चक्र से शक्ति सेना मारने लगी।।४४½-४५½।। वज्रदन्त नाम का भण्डासुर का अन्य सेनापति ऊँट से ही वज्रबाण के अभिघात से ही रण में कोलाहल मचाये हुए था।।४५½-४६½।। इस प्रकार वज्रमुख जो महान् चक्र को धारण किये हुए था, उसने भालों की तेज धाराओं से शक्तियों के शक्तिचक्र पर चढ़कर शक्तिचक्र का मर्दन कर दिया।।४६½-४७½।।

वज्रदन्त नाम का एक अन्य असुर सेना का बलवान् सेनापति था, वह दो गृध्रों के रथ पर चढ़कर बाणों की वर्षा कर रहा था।।४७½-४८½।। इस प्रकार उन दुष्ट सेनापतियों द्वारा प्रोत्साहित सौ अक्षौहिणी सेना युद्ध में एक साथ ही टूट पड़ी थी।।४८½-४९½।। दुष्टा सर्पिणी बहुत सी माया करने वाली थी, वह क्षण क्षण में करोड़ों की संख्या में फणधारी सर्पों को पैदा कर रही थी।।४९½-५०½।। उसी प्रकार जब शक्ति सेना को अत्यन्त व्याकुल हो गयी, तब उस सेना को व्याकुल देखकर नकुली देवी गरुड़ पर सवार होकर रणक्षेत्र में कूद पड़ी।।५०½-५१½।। वह नकुली देवी आग में तपे हुए सोने के समान थी तथा उसे श्री ललिता देवी ने उत्पन्न किया था। वह समस्त वाङ्मय के आकार वाली वज्र के समान कठोर दाँतों वाली थी। वहाँ सर्पिणी के सम्मुख उस नकुली देवी ने अपना बल उत्पन्न

तयाधिष्ठिततुंगांसः पक्षविक्षिप्तभूधरः। गरुडः प्राचलद्युद्धे सुमेरुरिव जंगमः॥५४॥
सर्पिणीमायया जान्तसर्पान्दृष्ट्वा भयानकान्।
क्रोधरक्तेक्षणं व्यात्तं नकुली विदधे मुखम्॥५५॥
अथ श्रीनकुलीदेव्या द्वात्रिंशद्दंतकोटयः। द्वात्रिंशत्कोटयो जाता नकुलाः कनकप्रभाः॥५६॥
इतस्ततः खण्डयन्तः सर्पिणी सर्पमण्डलम्। निजदंष्ट्राविमदन नाशयन्तश्च तद्विषम्॥५७॥
उत्कर्णाः क्रोध सम्पर्काद्धूनिताशेषलोमकाः।
उत्फुल्ला नकुला व्यात्तवदना व्यदशन्नहीन्॥५८॥
एकैकमायासर्पस्य बभ्रुरेकैक उद्गतः। तीक्ष्णदंतनिपातेन खण्डयामास विग्रहम्॥५९॥
भोगिभोगसृतै रक्तैः सृक्किणी शोणतां गते। लिहंतो नकुला जिह्वापल्लवैः पुप्लुवुर्मृधे॥६०॥
नकुलैर्दश्यमानानामत्यन्तचटुलं वपुः। मुहुः कुण्डलितैर्भोगैः पन्नगानां व्यचेष्टत॥६१॥
नकुलावलिदष्टानां नष्टासूनां फणाभृताम्। फणाभरसमुत्कीर्णा मणयो व्यरुचन्रणे॥६२॥
नकुलाघातसंशीर्णफणाचक्रैर्विनिर्गतैः। फणयस्तन्महाद्रोहवह्निज्वाला इवाबभुः॥६३॥
एवंप्रकारतो बभ्रुमण्डलैरवखण्डिते। मायामये सर्पजाले सर्पिणी कोपमादधे॥६४॥
तया सह महद्युद्धं कृत्वा सा नकुलेश्वरी। गारुडास्त्रमतिक्रूरं समाधत्त शिलीमुखे॥६५॥

कर दिया।।५१½-५३।। वह देवी गरुड़ पर सवार थी, वह गरुड़ ऊँचे कन्धों वाला तथा पर्वत के समान पंखों वाला था। ऐसा वह गुरुड़ युद्ध में ऐसा लग रहा था कि मानों सुमेरु पर्वत ही चलने वाला होकर आ गया हो।।५४।। जब उस नकुली देवी ने सर्पिणी की माया से पैदा होने वाले भयानक सर्पों को देखा तो उन्हें देखकर नकुली ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करके अपने मुख को खोला।।५५।। इसके बाद उस नकुली देवी के मुख से बत्तीस करोड़ दाँतों वाले सोने की आभा के समान बत्तीस करोड़ नेवले पैदा हो गये।।५६।। वे सब नेवले सर्पिणी के सर्पों को इधर-उध अपने दाँतों से काटकर फेंकने लगे और सर्पों के विष को नष्ट करने लगे। अब घोर रणक्षेत्र में विष को नष्ट करने वाले स्वर्णवर्ण के नेवले घूम रहे थे।।५७।। वे सब नेवले ऊपर को कान उठाये हुए तथा क्रोध के सम्पर्क से समस्त शरीर लोमों को उठाये हुए उत्फुल्ल होकर मुख खोलकर सर्पों को डसने लगे।।५८।।

सर्पिणी की माया से एक सर्प निकलता था तो उसी समय एक नेवला निकल रहा था। जो अपने तेज दाँत से सर्प के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर दे रहा था।।५९।। तब सर्पों के निकलते रुधिर से नेवले के ओष्ठ और मुँह सब खून से रंग गये थे। उन सर्पों का खून पीते हुए नेवले बार-बार अपने ओठों को जीभ लपलपा कर चाट रहे थे।।६०।। नेवलों द्वारा डसे गये सर्पों के अत्यन्त काँपते हुए शरीर बार-बार कुण्डली मार रहे थे।।६१।। नेवलों द्वारा जिन फणधारी नागों को काट दिया गया था और फिर वे प्राणहीन हो गये थे, तब उनकी मणियां रण में इधर उधर बिखरी पड़ी थीं।।६२।। नेवलों के आघात से जिन सर्पों के फन काट दिये गये थे, वे अपने चक्र से निकले हुए फन उसके प्रति महान् वैर की आग उगल रहे थे।।६३।। इस प्रकार से नेवलों द्वारा मायामय सर्पों के खण्ड-खण्ड कर देने पर सर्पिणी ने अत्यन्त क्रोध को धारण कर लिया।।६४।। तब फिर उस सर्पिणी के साथ नकुलेश्वरी देवी ने महान् युद्ध किया और फिर अत्यन्त क्रूर गारुड अस्त्र को अपने बाण के मुख पर लगाया और

तद्गारुडास्त्रमुद्दामज्वालादीपितदिङ्मुखम्। प्रविश्य सर्पिणीदेहं सर्पमायां व्यशोषयत्॥६६॥
मायाशक्तेर्विनाशेन सर्पिणी विलयं गता। क्रोधं च तद्विनाशेन प्राप्ताः पञ्च चमूवराः॥६७॥
यद्बलेन सुरान्सर्वान्सेनान्यस्तेऽमेनिरे। सा सर्पिणी कथाशेषं नीता नकुलवीर्यतः॥६८॥
अतः स्वबलनाशेन भृशं क्रुद्धाश्चमूचराः। एकोद्यमेन शस्त्रौघैर्नकुलीं तामवाकिरन्॥६९॥
एकैव सा तार्क्ष्यरथा पञ्चभिः पृतनेश्वरी। लघुहस्ततया युद्धं चक्रे वै शस्त्रवर्षिणी॥७०॥
पट्टिशैर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सहस्रशः। वज्रसारमयैर्दंतैर्व्यदशन्मर्म सीमसु॥७१॥
ततो हाहारुतं घोरं कुर्वाणा दैत्यकिङ्कराः। उदग्रदंशनकुलैर्नकुलैराकुलीकृताः॥७२॥
उत्पत्य गगनात्केचिद्घोरचीत्कारकारिणः। दंशंतस्तद्द्विषां सैन्यं सकुलाः प्रज्वलक्रुधः॥७३॥

कर्णेषु दष्ट्वा नासायामन्ये दष्टाः शिरस्तटे।
पृष्ठतो व्यदशन्केचिदागत्य व्याकृतक्रियाः॥७४॥

विकलाश्छिन्नवर्माणो भयविस्रस्तशस्त्रिकाः। नकुलैरभिभूतास्ते न्यपतन्नमरद्रुहः॥७५॥

केचित्प्रविश्यनकुला व्यात्तान्यास्यानि वैरिणाम्।
भोगिभोगानिवाकृष्य व्यदशन्रसनातलम्॥७६॥
अन्ये कर्णेषु नकुलाः प्राविशन्देववैरिणाम्।
सूक्ष्मरूपा विशंतिस्म नानारन्ध्राणि बभ्रवः॥७७॥

उस गारुडास्त्र का प्रयोग कर दिया, तब उस गारुणास्त्र से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती हुई अत्यन्त तीव्र ज्वाला निकली, जिसने सर्पिणी के शरीर में घुसकर उसकी सर्पमाया को पूरी तरह सोख लिया।।६५-६६।। जब मायाशक्ति का विनाश हो गया, तब सर्पिणी विलीन हो गयी। उसके विनाश होने से पाँचों सेनापति अत्यन्त क्रोधित हो गये।।६७।। जिस सर्पिणी के बल से सब देवताओं की सेना को नीचा दिखाया जा रहा था, वह सर्पिणी नेवलों के पराक्रम से कथा शेष मात्र रह गयी अर्थात् उसका काम तमाम हो गया।।६८।। इसलिये अपने बल के नाश होने के कारण भण्डासुर के श्रेष्ठ सेनापति अत्यन्त क्रोधित हो गये। तब उन्होंने एक उद्यम रूप में नकुली देवी अनेकों शस्त्रों की बौछार कर दी।।६९।। उस अकेली सेना की स्वामिनी नकुलेश्वरी तार्क्ष्य रथा ने पाँचों के साथ लघु हस्ततया (हल्के हाथों से) शस्त्र वर्षा करते हुए युद्ध किया।।७०।। हजारों पट्टिश मूसल और भिन्दिपालों तथा वज्रसार (हीरा) के समान कठोर दाँतों से मर्मस्थलों पर प्रहार किया।।७१।।

उसके बाद दैत्य किङ्किर हाहाकार करते हुए तेज दाँतों वाले नेवलों द्वारा व्याकुल कर दिये गये।।७२।। कुछ नेवले उड़कर आकाश से घोर चीत्कार की ध्वनि करते हुए क्रोध से जलते हुए क्रोध स जलते हुए दैत्य सेना को दाँतों से काट रहे थे।।७३।। कुछ नेवले दैत्यों के कानों में काटते थे, तो कुछ उनकी नाक को काटने लगते थे, तो दूसरे नेवले शिर पर कट रहे थे। कुछ पीठ पर काटते थे, तो इस प्रकार वे नेवले शत्रुओं में व्याकृत क्रिया कर रहे थे अर्थात् सब शत्रुओं की आकृति ही बिगाड़ दे रहे थे।।७४।। इस प्रकार जब नेवलों ने उन सब दैत्य सैनिकों के शरीर काट काट कर विकल कर दिये तब कटे हुए शरीर वाले देवशत्रु दैत्य सैनिक भयभीत होकर नेवलों से अभिभूत हो पृथ्वी पर गिर पड़े।।७५।। कुछ नेवले वैरियों के फैलाये हुए मुखों में घुसकर फणधारी सर्पों को रसातल से खींच कर खा रहे थे।।७६।। दूसरे नेवले देव शत्रुओं के कानों में घुस गये तथा कुछ नेवले बहुत सूक्ष्म

इति तैरभिभूतानि नकुलैरवलोकयन्। निजसैन्यानि दीनानि करङ्कः कोपमास्थितः॥७८॥
अन्येऽपि च चमूनाथा लघुहस्ता महाबलाः॥७९॥
प्रतिबभ्रु शरस्तोमान्ववृषुर्वारिदा इव। दैत्यसैन्यपतिप्रौढकोदडोत्थाः शिलीमुखाः।
बभ्रूणां दंतकोटीषु कठोरघट्टनं व्यधुः॥८०॥
चमूपतिशरव्यूहैराहतेभ्यः परःशतैः। बभ्रूणां वज्रदंतेभ्यो निश्चक्राम हुताशनः।
पञ्चापि ते चमूनाथविसृष्टैरेकहेलया॥८१॥
स्फुरत्फलैः शरकुलैर्बभ्रुसेनां व्यमर्दयत्। इतस्ततश्चमूनाथविक्षिप्तशरकोटिभिः।
विशीर्णगात्रा नकुला नकुलीं पर्यवारयन्॥८२॥
अथ सा नकुली वाणी वाङ्मयस्यैकनायिका। नकुलानां परावृत्त्या महांतं रोषमाश्रिता॥८३॥
अक्षीणनकुलं नाम महास्त्रं सर्वतोमुखम्। वह्निज्वालापरीताग्रं संदधे शार्ङ्गधन्वनि॥८४॥
तदस्त्रतो विनिष्ठ्यूता नकुलाः कोटिसंख्यकाः।
वज्राङ्गा वज्रलोमानो वज्रदंष्ट्रा महाजवाः॥८५॥
वज्रसाराश्च निबिडा वज्रजाल भंयकराः। वज्राकारैर्नखैस्तूर्णं दारयंतो महीतलम्॥८६॥
वज्ररत्नप्रकाशेन लोचनेनापि शोभिताः। वज्रसंपातसदृशा नासाचीत्कारकारिणः॥८७॥
मर्दयंति सुरारातिसैन्यं दशनकोटिभिः। पराक्रमं बहुविधं तेनिरे ते निरेनसः॥८८॥
एवं नकुलकोटीभिर्वज्रघोरैर्महाबलैः। विनष्टा; प्रत्यवयवं विनेशुर्दानवाधमाः॥८९॥

रूप धारण करके शरीर के अनेकों छिद्रों में घुस रहे थे।।७७।। इस प्रकार उन नेवलों से अपनी सेना को अभिभूत देखते हुए अपनी सेना की दीन दशा पर करङ्क को अत्यन्त क्रोधित हुआ।।७८।। अन्य भी सेनापति अपने हाथों को हल्का कर शक्ति सेना पर बादल वर्षा की भाँति बाण वर्षा करने लगे।।७९।। दैत्य सेनापति ने प्रौढ़ धनुष को उठाया और बाणों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया तथा जब वे बाण नेवलों के दन्त कोटियों से टकराने लगे तो कठोर घर्षण पैदा करने लगे।।८०।। सेनापति के हजारों बाणों के द्वारा नेवलों के आहत वज्रदन्तों से आग निकलने लगी थी।।८१।। इसके वे पाँचों सेनापति एक साथ ही नेवलों पर बाणों की वर्षा करने लगे और फिर फड़कते हुए फरवाले बाणों से नेवलों की सेना को नष्ट कर दिया (कुचल डाला)।।८२।। इस प्रकार सेनापति द्वारा इधर-उधर छोड़े गये करोड़ों बाणों से घायल शरीरों वाले नेवले नकुली देवी के पास पहुँचे।।८३।।

इसके बाद वाङ्मय की एक नायिका वाणी नकुली नकुलों से घिरी हुई होकर महान् क्रोधित हुई।।८४।। और अक्षीण नकुल नामक सब ओर मार करने वाले महास्त्र को जिसके कि अग्रभाग पर आग जल रही थी, को अपने शार्ङ्ग धनुष पर रखकर सन्धान कर दिया।।८५।। तब उस अस्त्र से वज्र के शरीर वाले, वज्र के समान लोमवाले, वज्र के समान दाँतों वाले बहुत तेज गति वाले, वज्रसार सघन वज्रजाल के समान भयंकर करोड़ों नेवले निकल पड़े। जो नेवले वज्र के समान नाखूनों से शीघ्र पृथ्वी तल को ही विदीर्ण करने लगे।।८६।। वे नेवले हीरा रत्न के प्रकाश वाली आँखों से सुशोभित थे। उन चीत्कार करने वाले नेवलों की चीत्कार वज्र के समान थी।।८७।। वे नेवले असुर सैनिकों को अपने करोड़ों दाँतों से काटकर मार रहे थे। इस प्रकार उन सब नेवलों ने बहुत ही पराक्रम किया।।८८।। इस प्रकार वज्र के समान घोर महाबलवान् करोड़ों नेवलों ने दुष्ट दानवों के समूह के समूह नष्ट कर

एवं वज्रमयैर्बभ्रुमंडलैः खंडिते बले॥९०॥
शताक्षौहिणिके संख्ये ते स्वमात्रावशेषिताः। अतित्रासेन रोषेण गृहीताश्च चमूवराः।
संग्राममधिकं तेनुः समाकृष्टशरासनाः॥९१॥
तैः समं बहुधा युद्धं तन्वाना नकुलेश्वरी। पट्टिशेन करंकस्य चिच्छेद कठिनं शिरः॥९२॥
काकवाशितमुख्यानां चतुर्णामपि त्रैरिणाम्।
उत्पत्योत्पत्य ताक्ष्यैंण व्यलुनादसिना शिरः॥९३॥
तादृशं लाघवं दृष्ट्वा नकुल्या श्यामलांबिका॥९४॥
बहु मेने महासत्त्वां दुष्टासुरविनाशिनीम्। निजांगदेवतत्त्वं च तस्यै श्यामांबिका ददौ॥९५॥
लोकोत्तरे गुणे दृष्टे कस्य न प्रीतिसंभवः। हतशिष्टा भीतभीता नकुलीशरणं गताः॥९६॥
सापि तान्वीक्ष्य कृपया मा भैष्टेति विहस्य च। भवद्राज्ञे रणोदंतमशेषं च निबोधत॥९७॥
तयैवं प्रेषिताः शीघ्रं तदालोक्य रणक्षितिम्। मुदितास्ते पुनर्भीत्या शून्यकायां पलायिताः॥९८॥
तदुदंतं ततः श्रुत्वा भंडश्चंडो रुषाभवत्॥९९॥

इति ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने करंकादिपंचसेनापतिवधो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

डाले।।८९।। इस प्रकार वज्रमय नेवलों द्वारा समस्त सेना के खण्डित हो जाने पर सौ अक्षौहिणी सेना में जब वे पाँच सेनापति मात्र ही बच गये, तब अत्यन्त त्रास और क्रोध के साथ वे सब सेनापति अपने अपने धनुष खींचकर घोर युद्ध करने लगे।।९०-९१।। उनके साथ नकुलेश्वरी देवी ने बहुत प्रकार से युद्ध किया और फिर युद्ध करती हुई नकुलेश्वरी ने पट्टिश (अंकुश) से करंक का कठिन शिर काट दिया।।९२।। कौओं की तरह काँव-काँव करने वाले उन शेष चारों के नकुलेश्वरी देवी ने तेज तलवार से शिर काट दिये।।९३।। जब श्यामल अम्बिका ने यह देखा कि कितनी आसानी से नकुली देवी ने उनके शिर काट लिये तो उन दुष्ट असुरों का विनाश करने वाली महापराक्रमी नकुली देवी को श्यामल अम्बिका ने बहुत माना और उसको श्यामल अम्बिका ने अपने शरीर का देवतत्त्व प्रदान कर दिया।।९४-९५।। लोकोत्तर गुण के देखने पर किस व्यक्ति को प्रेम नहीं होता है, जो मरने से बच गये थे, सब असुर नकुलेश्वरी की शरण में चले गये।।९६।। उस देवी ने भी उनको देखकर और हँसकर कहा कि कृपया डरो मत और कहा कि आपके राज्य में अन्य कोई रणकुशल योद्धा शेष है, उसे जाकर बताओ।।९७।। तब उस नकुलेश्वरी द्वारा भेजे गये असुर सैनिकों ने उसे देखकर और रणभूमि को देखकर कुछ प्रसन्न होते हुए और फिर कुछ भय से डरते शून्यक के पास भगाकर पहुँचे।।९८।। उसके बाद उन हतावशेष सैनिकों से सब वृत्तान्त जानकर वह भण्डासुर अत्यन्त क्रोधित हुआ।।९९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २३वाँ अध्याय करंकादि पाँच सेनापतिवध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

बलाहकादि सप्तसेनापतिवधो नाम

चतुर्विंशोऽध्यायः

हतेषु तेषु रोषांधो निश्वसञ्छून्यकेश्वरः।कुजलाशमिति प्रोचे युयुत्साव्याकुलाशयः॥१॥
भद्र सेनापतेऽस्माकमभद्रं समुपागतम्। करंकाद्याश्चमूनाथाः कंदलद्भुजविक्रमाः॥२॥
सर्पिणीमायया सर्वगीर्वाणमदभंजनाः। पापीयस्या तया गूढमायया विनिपातिताः॥३॥
बलाहकप्रभृतयः सप्त ये सैनिकाधिपाः। तानुदग्रभुजासत्त्वान्प्राहिणु प्रधनं प्रति॥४॥
त्रिशतं चाक्षौहिणीनां प्रस्थापय सहैव तैः। ते मर्दयित्वा ललितासैन्यं मायापरायणाः॥५॥
अये विजयमाहार्य संप्राप्स्यंति ममांतिकम्। कीकसागर्भसंजातास्ते प्रचंडपराक्रमाः॥६॥
बलाहकमुखाः सप्त भ्रातरो जयिनः सदा। तेषामवश्यं विजयो भविष्यति रणांगणे॥७॥
इति भंडासुरेणोक्तः कुटिलाक्षः समाह्वयत्। बलाहकमुखान्सप्त सेनानाथान्मदोत्कटान्॥८॥
बलाहकः प्रथमतस्तस्मात्सूचीमुखोऽपरः। अन्यः फालमुखश्चैव विकर्णो विकटाननः॥९॥
करालायुः करटकः सप्तैते वीर्यशालिनः। भंडासुरं नमस्कृत्य युद्धकौतूहलोल्वणाः॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२४

बलाहकआदि सात सेनापति वध वर्णन

जब करंक आदि पाँच सेनापतियों के नकुलेश्वरी ने युद्ध क्षेत्र में मार गिराया तब हतावशेष सैनिकों से इस वृत्तान्त को सुनकर युद्ध की इच्छा वाले व्याकुल आशय वाले क्रोधान्ध शून्यकेश्वर ने कुञ्जलाश से कहा कि भद्र सेनापति! अब हमारा अभद्र हो गया है करंक आदि जो सेनापति थे, अपनी भुजाओं का पराक्रम दिखा कर लड़ते हुये सर्पिणी की माया द्वारा जो युद्ध कर रहे थे, उनकी समस्त वाणी और बाण का मद भंग हो गया। वे सभी उस पापिनी नकुलेश्वरी की गूढ़ माया से मारकर गिरा दिये गये।।१-३।। अब बलाहक आदि जो सात सेनापति हैं, उन विशाल भुजाओं वाले सेनापतियों को महाराज भण्ड के पास भेजो।।४।। तथा तीन सौ अक्षौहिणी सेना को उनके साथ कूच कराओ। वे माया परायण सेनापति ललिता की सेना का मर्दन करके विजय प्राप्त कर मेरे पास उसको लेकर आयेंगे। वे प्रचण्ड पराक्रमी कीकसा के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।।५-६।।

वे बलाहकमुख सात भाई सदा ही जयी रहे हैं। समराङ्गण में उनकी विजय अवश्य होगी।।७।। इस प्रकार शून्यक ने कुटिलाक्ष से कहा और कुटिलाक्ष ने भण्डासुर से कहा, तब भण्डासुर ने कुटिलाक्ष को आदेश दिया। तब भण्डासुर के कहने पर कुटिलाक्ष मन्त्री ने बलाहप्रमुख सात मदोत्कट सेनापतियों को बुलाया।।८।। उनमें बलाहक प्रथम था और सूचीमुख दूसरा था, उसके बाद तीसरा फालमुख था, उसके बाद विकर्ण और विकटानन था।।९।। उसकेबाद करालायु और करटक ये सातों कीकसा के पुत्र युद्धमें कौतूहल पैदा करने वाले पराक्रमी सेनापति भण्डासुर

कीकसासूनवः सर्वे भ्रातरोऽन्योन्यमावृताः। अन्योन्यसुसहायाश्च निर्जग्मुर्नगरांतरात्॥११॥
त्रिशताक्षौहिणीसेनासेनान्योऽन्वगमंस्तदा। उल्लिखंति केतुजालैरंबरे घनमंडलम्॥१२॥
घोरसंग्रामिणीपादा घातैर्मर्दितभूतला। पिबंति धूलिकाजालैरशेषानपि सागरान्॥१३॥
भेरीनिःसाणतंपोट्टपणवानकनिस्वनैः। नभोगुणमयं विश्वमादधानाः पदेपदे॥१४॥
त्रिशताक्षौहिणीसेनां तां गृहीत्वा मदोद्धताः। प्रवेष्टुमिव विश्वस्मिन्कैकसेयाः प्रतस्थिरे॥१५॥
धृतरोषारुणाः सूर्यमंडलोद्दीप्तकंकटाः। उद्दीप्तशस्त्रभरणाश्चेलुर्दीप्तोर्ध्वकेशिनः॥१६॥
सप्त लोकान्प्रमथितुं प्रेषिताः पूर्वमुद्धताः। भंडासुरेण महता जगद्विजयकारिणा॥१७॥
सप्तलोकविमर्देन तेन दृष्ट्वा महाबलाः। प्रेषिता ललितासैन्यं जेतुकामेन दुर्धिया॥१८॥
ते पतंतो रणतलमुच्चलच्छत्रपाणयः। शक्तिसेनामभिमुखं सक्रोधमभिदुद्रुवुः॥१९॥
मुहुः किलकिलारावैर्घोषयंतो दिशो दश। देव्यास्तु सैनिकं यत्र तत्र ते जग्मुरुद्धताः॥२०॥
सैन्यं च ललितादेव्याः सन्नद्धं शस्त्रभीषणम्। अभ्यमित्रीणमभवद्बद्धभ्रुकुटिनिष्ठुरम्॥२१॥
पाशिन्यो मुसलिन्यश्च चक्रिण्यश्चापरा मुने। मुद्गरिण्यः पट्टिशिन्यः कोदंडिन्यस्तथापराः॥२२॥

को नमस्कार करके, सब भाई एक-दूसरे से आवृत्त होकर, एक-दूसरे के अच्छे सहायक रहते हुये उस नगर से निकल पड़े।।१०-११।। उन सातों सेनापतियों के पीछे तीन सौ अक्षौहिणी सेना भी चलने लगी। उस समय ध्वजा समूहों से आकाश में घनमण्डल सा छा गया। ऐसा लगता था कि आकाश में घनघोर घटायें उठ रही हों।।१२।। घोर संग्राम करने वाली सेना के पैरों के आघात से मर्दित पृथ्वी अपनी धूलियों से समस्त सागरों को पी रही थी।।१३।। युद्धभेरी की घोर ध्वनि तंपो टप्पल वानक[1] ध्वनियों से आकाश के गुण वाला शब्द विश्व के पद पद पर होने लगा। अर्थात् समस्त विश्व में वह आकाशगत ध्वनि गूँज गयी।।१४।।

उस तीन सौ अक्षौहिणी सेना को लेकर मदोद्धत कीकसा पुत्र विश्व में प्रविष्ट होने की भाँति युद्ध में उपस्थित हुए।।१५।। वे क्रोध के कारण लाल सूर्यमण्डल के समान चमक रहे थे। इस चमकते हुए शस्त्रों को धारण कर ऊपर को केश किये हुए चलने लगे।।१६।। पूर्वकाल में ये सातों वीर भण्डासुर द्वारा सातों लोकों को जीतने के लिये भेजे गये थे और भण्डासुर ने इन सातों सेनापतियों द्वारा संसार पर विजय प्राप्त की थी; क्योंकि वे सातों वीर सातों लोकों का मर्दन करने वाले थे, इसीलिये उस दुर्बुद्धि भण्डासुर ने ललिता देवी की सेना को जीतने की इच्छा से इस महाबलियों को युद्ध क्षेत्र में भेजा।।१७-१८।। उस समय वे सातों सेनापति रणक्षेत्र में रणतल को उछालते हुए हाथों में शस्त्र धारण कर शक्ति सेना के सामने क्रोधसहित शक्ति सेना पर आक्रमण करने लगे।।१९।। वे बार-बार किल किल की ध्वनियों से सभी दिशाओं में घोषणा करते हुए वहाँ पहुँचे, जहाँ कि ललिता देवी के सैनिक थे।।२०।। फिर ललिता देवी भी युद्ध के लिये तैयार हो चुकी थीं। भीषण शस्त्रधारी सेना के साथ भ्रकुटि टेढ़ी कर करके निष्ठुरता पूर्वक युद्ध होने लगा।।२१।। ललिता देवी की सेना भी ऐसी वैसी नहीं थी, उनमें कुछ शक्तियां पाश धारण किये हुए थीं, कुछ मुसल वाली थीं, कुछ चक्र लिये हुए थीं तो अन्य शक्तियां मुद्‌गर पट्टिश, धनुष धारण किये हुये थीं।

---

१. एक प्रकार के बाजे की भयंकर ध्वनि जो युद्धकाल में वजाया जाता रहा होगा, जिसकी ध्वनि से शत्रु सेना में भय की स्थिति पैदा होती होगी।

अनेकाः शक्त्यस्तीव्रा ललितासैन्यसंगताः। पिबंत्य इव दैत्याब्धिं सन्निपेतुः सहस्रशः॥२३॥
आयातायात हे दुष्टाः पापिन्यो वनिताधमाः। मायापरिग्रहैर्दूरं मोहयंत्यो जडाशयान्॥२४॥
नेष्यामो भवतीरद्य प्रेतनाथनिकेतनम्। श्वसद्भुजगसंकाशैर्बाणैरत्यंतभीषणैः।
इति शक्तीर्भर्त्सयंतो दानवाश्चक्रुरावहम्॥२५॥
काचिाच्चच्छेद दैत्येंद्रं कंठे पट्टिशपातनात्। तद्गलोद्गलितो रक्तपूर ऊर्ध्वमुखोऽभवत्॥२६॥
तत्र लग्ना बहुतरा गृध्रा मंडलतां गताः। तैरेव प्रेतनाथस्य च्छत्रच्छविरुदंचिता॥२७॥
काचिच्छक्तिः सुरारातिं मुक्तशक्त्यायुधं रणे। लूनतच्छक्तिनैकेन बाणेन व्यलुनीत च॥२८॥
एका तु गजमारूढा कस्यचिद्दैत्यदुर्मतेः। उरःस्थले स्वकरिणा वप्रघातमशिक्षयत्॥२९॥
काचित्प्रतिभटारूढं दंतिनं कुंभसीमनि। खड्गेन सहसा हत्वा गजस्य स्वप्रियं व्यधात्॥३०॥
करमुक्तेन चक्रेण कस्यचिद्देववैरिणः। धनुर्दंडं द्विधा कृत्वा स्वभ्रुवोः प्रतिमां तनोत्॥३१॥
शक्तिरन्या शरैः शातैः शातयित्वा विरोधिनः।
कृपाणपद्मा रोमाल्यां स्वकीयायां मुदं व्यधात्॥३२॥
काचिन्मुद्गरपातेन चूर्णयित्वा विरोधिनः। रथचक्रनितंबस्य स्वस्य तेनातनोन्मुदम्॥३३॥
रथकूबरमुग्रेण कस्यचिद्दानवप्रभोः। खड्गेन छिंदती स्वस्य प्रियमुर्व्यास्ततान ह॥३४॥

इस प्रकार अनेकों तीव्र शक्तियां ललिता देवी की सेना के साथ थीं। वे हजारों शक्तियां दैत्य रूपी सागर को पीती हुई के समान युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ी थीं।।२३।। अब युद्ध शुरू हो गया तो बलाहकादि सेनापतियों ने ललिता देवी से कहा कि आओ, आओ अरी दुष्टा! पापिनियो! अधम स्त्रियो! तुम अपनी मायाओं से जडाशयों को मूर्खों को मोहित कर लेती हो।।२४।। हम आज तुम्हें सर्प के समान फुफकार मारते हुए अत्यन्त भीषण बाणों से अपने स्वामी भण्डासुर के पास ले जायेंगे। इस प्रकार शक्तियों को धमकियां देते हुए दानवों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया।।२५।।

उसके बाद किसी शक्ति ने दैत्यराज के गले पर बर्छी मारकर काट दिया, उसके गले से निकलने वाले खून से उसका मुख भर गया और ऊपर को हो गया।।२६।। जैसे ही वह गिरा तो वहाँ लगे हुए अनेकों गृध्र मण्डल बनाकर आ गये, उन गृध्रों के द्वारा प्रेतनाथ की छत्र के छवि बिल्कुल बिगड़ गयी अर्थात् वह छत्र की शोभा रोने और चिल्लाने में बदल गयी।।२७।। कोई शक्ति असुर सेना को रण में मुक्तशक्ति अस्त्र से लड़ रही थी, जिस आयुध को शक्ति ने एक बाण से काट दिया।।२८।। एक शक्ति हाथी पर चढ़कर किसी दुर्बुद्धि दैत्य की छाती पर अपने हाथी के द्वारा वप्राघात कर रही थी अर्थात् जैसे हाथी अपने आगे वाले बड़े दाँतों से पहाड़ को उखाड़ने की क्रिया करते हैं, उसी क्रिया द्वारा कुछ दैत्यों को शक्ति के हाथियों ने उठा उठा कर फेंक दिया और कुचल दिया।।२९।। कोई कोई योद्धा हाथी पर बैठकर तलवार से सहसा शत्रु को मारकर हाथी का अपना प्रिय कर रहा था।।३०।। किसी किसी शक्ति ने हाथ से चलाये गये चक्र द्वारा किसी देवशत्रु के धनुष के दण्ड के दो टुकड़े करके अपनी भौंहों को टेढ़ीकर साहस दिखाया।।३१।। अपनी भौंहों की आकृति को बढ़ाया अर्थात् क्रोध किया। अन्य शक्ति ने तीव्र बाणों से विरोधी को मारकर अपनी रोमावली को आनन्द प्रदान किया।।३२।। किसी शक्ति ने मुद्गर मारकर विरोधी को चूर्ण करके अपने रथ के पहिये के नितम्ब (कूल्हे) से कुचल कर अपना आनन्द प्राप्त किया।।३३।। किसी ने उग्र खड्ग से दानवराज के रथ कूबर को काटते हुए अपना प्रिय कार्य पृथ्वी पर फैलाया।।३४।।

अभ्यंतरं शक्तिसेना दैत्यानां प्रविवेश ह। प्रविवेश च दैत्यानां सेना शक्तिबलांतरम्॥३५॥
नीरक्षीरवदत्यंताश्लेषं शक्तिसुरद्विषाम्। संकुलाकारतां प्राप्तो युद्धकालेऽभवत्तदा॥३६॥
शक्तीनां खड्गपातेन लूनशुण्डारदद्वयाः। दैत्यानां करिणो मत्ता महाक्रोडा इवाभवन्॥३७॥
एवं प्रवृत्ते समरे वीराणां च भयंकरे। अशक्ये स्मर्तुमप्यंतं कातरत्ववतां नृणाम्।
भीषणानां भीषणे च शस्त्रव्यापारदुर्गमे॥३८॥
बलाहको महागृध्रं वज्रतीक्ष्णमुखादिकम्। कालदंडोपमं जंघाकांडे चंडपराक्रमम्॥३९॥
संहारगुप्तनामानं पूर्वमग्रे समुत्थितम्। धूमवद्धूसराकारं पक्षक्षेपभयंकरम्॥४०॥
आरुह्य विविधं युद्धं कृतवान्युद्धदुर्मदः। पक्षौ वितत्य क्रोशार्धं स स्थितो भीमनिःस्वनैः।
अंगारकुंडवच्चञ्चुं विदार्याभक्षयेच्चमूम्॥४१॥
संहारगुप्तं स महागृध्रः क्रूरविलोचनः। बलाहकमुवाहोच्चैराकृष्टधनुषं रणे॥४२॥
बलाहको वपुर्धुन्वन्गृध्रपृष्ठकृतस्थितिः। सपक्ष कूटशैलस्थो बलाहक इवाभवत्॥४३॥
सूचीमुखश्च दैत्येन्द्रः सूचीनिष्ठुरपक्षतिम्। काकवाहनामारुह्य कठिनं समरं व्यधात्॥४४॥
मत्तः पर्वतशृङ्गाभश्चंचूदण्डं समुद्वहन्। कालदण्डप्रमाणेन जंघाकाण्डेन भीषणः॥४५॥

शक्ति सेना दैत्यों के बीच में प्रवेश कर गयी थी और दैत्यों की सेना शक्ति सेना के बीच में प्रवेश कर गयी थी।।३५।। जैसे पानी और दूध एक दूसरे में अत्यन्त विलीन होकर एक हो जाते हैं, उसी तरह शक्तियों और दैत्यों की सेना आपस में मिल गयी थी। अतः युद्ध के समय दोनों सेनायें संकुलाकारता को प्राप्त हो गयीं।।३६।। शक्तियों के खड्गपात से दैत्यों के हाथी कटी हुई सूँड़ वाले, दोनों दाँतरहित मत्त महागेंडा के समान हो गये।।३७।। इस प्रकार वीरों का भयंकर समर होने पर वह समर ऐसा था कि मनुष्यों की दुनियां में कभी याद भी अन्त ही होगा। शस्त्रों के प्रयोग के विषय में वह युद्ध भीषण युद्धों में भी भीषण युद्ध था तथा मानव इतिहास में अन्तिम रूप से याद करने को होगा।।३८।। वे सात असुर सेनापति थे, उनमें पहला बलाहक था, वह बलाहक युद्ध में किसी से भी हारने वाला नहीं था तथा वह महागृद्ध पर सवार होकर युद्ध कर रहा था। वह जिस महागृध्र पर सवार था, वह महागृध्र वज्र के समान तीक्ष्ण मुख आदि वाला था तथा कालदण्ड के समान था। उसकी जंघायें अत्यन्त ही पराक्रम युक्त थीं।।३९।। उस महागृध्र का नाम संहारगुप्त था, वह पहले ही आगे उपस्थित हो जाता था, उसके पंख धुँयें के समान धूसर आकार के थे तथा जब वह अपने पंख फैलाता था तो बहुत ही भयंकर लगता था।।४०।।

उसके दोनों पंख आधे कोश तक फैलते थे तथा भयंकर ध्वनियां करते थे, उसकी चोंच अंगारकुण्ड के समान थी, जो सैनिकों को फाड़कर खा रही थी।।४१।। वह संहारगुप्त नाम का महागृध्र बहुत क्रूर आँखों वाला था। युद्धस्थल में धनुष खींचे हुए बलाहक को वह बहुत ऊँचाई तक ले जाता था।।४२।। ऐसे उस महागिद्ध की पीठ पर बलाहक अपने शरीर को धारण किये हुए था, तो वह ऐसा लग रहा था कि अपने पक्षों (चोटियों) वाले शैलकूट पर्वत पर बादल छा रहा हो। यहाँ पर गिद्ध को शैलकूट पर्वत और बलाहक को बादल माना गया है।४३।। दूसरा सेनापति सूचीमुख सुई के समान कठोर पंख वाले काकवाहन पर चढ़कर कठिन समर करने लगा।।४४।। वह सूचीमुख जिस काक पर सवार था, वह काक मदमत्त था और पर्वत की चोटी के समान आभा वाले चञ्चु (चोंच) दण्ड को धारण

पुष्कलावर्तकसमा जंबालसदृशद्युतिः। क्रोशमात्रायतौ पक्षावुभावपि समुद्वहन्॥४६॥
सूचीमुखादिष्ठितोऽसौ करटः कटुवासितः। मर्दयञ्चञ्चुघातेन शक्तीनां मण्डलं महत्॥४७॥
अथो फलमुखः फालं गृहीत्वा निजमायुधम्। कंकमारुह्य समरे चकाशे गिरिसन्निभम्॥४८॥
विकर्णाख्यश्च दैत्येन्द्रश्चमूभर्ता महाबलः। भेरुण्डपतनारूढः प्रचण्डयुद्धमातनोत्॥४९॥
विकटाननमामानं विलसत्पट्टिशायुधम्। उवाह समरे चण्डः कुक्कुटोऽतिभयङ्करः॥५०॥
गर्जन्कण्ठस्थरोमाणि हर्षयञ्ज्वलदीक्षणः। पश्यन्पुरः शक्तिसैन्यं चचाल चरणायुधः॥५१॥
करालाक्षश्च भूभर्ता षष्ठोऽत्यन्तगरिष्ठदः। वज्रनिष्ठुरघोषश्च प्राचलत्प्रेतवाहनः॥५२॥
श्मशानमन्त्रशूरेण तेन संसाधितः पुरा। प्रेतो भूतसमाविष्टस्तमुवाह रणाजिरे॥५३॥
अवाङ्मुखो दीर्घबाहुः प्रसारितपदद्वयः। प्रेतो वाहनतां प्राप्तः करालाक्षमथावहत्॥५४॥
अन्यः करटको नाम दैत्यसेनाशिखामणिः। मर्दयामास शक्तीनां सैन्यं वेतालवाहनः॥५५॥
योजनायतमूर्तिः सन्वेतालः क्रूरलोचनः। श्मशानभूमौ वेतालो मंत्रेणानेन साधितः॥५६॥
मर्दयामास पृतनां शक्तीनां तेन देशितः। तस्य वेतालवर्यस्य वर्तमानोंससीमनि।

किये हुए था अर्थात् उस कौआ की चोंच पर्वत की चोटी के समान चमक रही थीं। वह कालदण्ड के बराबर भयंकर जंघाकाण्ड वाला था अर्थात् उसकी जंघायें कालदण्ड की जंघाओं के समान भयंकर थी।।४५।। पुष्कल और आवर्तक नाम के जो प्रलयकालीन मेघ हैं, उन मेघों के समान था तथा कादो (कीचड़) सिवार के समान उसकी कान्ति थी। उसके पंख कोशभर लम्बे थे।।४६।। सुई के समान पैनी तेज धार वाली उसका मुख (चोंच) था तथा हाथी के गण्डस्थल के समान उसका गण्डस्थल था और उसमें बहुत तेज दुर्गन्ध थी। ऐसा वह काक अपनी तेज चोंच से शक्तियों के महान् समूह का मर्दन (विनाश) कर रहा था।।४७।। इसके बाद तीसरा सेनापति जिसका नाम फलमुख था, वह अपने आयुध फाल (हलका फारा) लेकर कंक (बगुला) पर चढ़कर युद्धक्षेत्र में पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था।।४८।। चौथा महाबल सेनापति विकर्ण नाम का दैत्यराज था, जो सियार (गीदड़) की पीठ पर चढ़ा हुआ प्रचण्ड युद्ध कर रहा था।।४९।। पाँचवां सेनापति विकटानन नाम का था, जो बर्छी लेकर युद्धक्षेत्र में विलास कर रहा था, वह युद्ध में अत्यन्त भयंकर मुर्गे पर सवार था।।५०।। वह मुर्गे अपने गले पर स्थित रोमों को उठाकर गर्जता हुआ अपनी जलती हुई आँखों से हर्षित होता हुआ सामने शक्ति सेना को देखता हुआ चल रहा था।।५१।।

छठा सेनापति करालाक्ष नामक राजा था, जो अत्यन्त विशाल और वज्र के समान निष्ठुर वाणी बोलने वाला था और वह प्रेतवाहन पर बैठकर चल रहा था।।५२।। उस प्रेत को करालाक्ष ने श्मशान मन्त्र द्वारा पूर्वकाल में सिद्ध किया था। अतः उसमें प्रेत और भूत समाविष्ट हो गया था। रणक्षेत्र में उसको करालाक्ष ने वाहन बनाया।।५३।। वह प्रेत जो करालाक्ष का वाहन था, वह वाणी और मुखरहित था; परन्तु विशाल भुजाओं वाला और फैले हुए दोनों पैरों वाला था। ऐसा वह प्रेत करालाक्ष की वाहनता को प्राप्त हुआ, जो करालाक्ष को वहन कर रहा था (ढो रहा था)।।५४।। छठा सेनापति करकट नाम का था, जो दैत्य सेना का शिखामणि था। वह वेताल वाहन शक्तियों की सेना का मर्दन कर रहा था।।५५।। करकट का वाहन वह वेताल नाम पिशाच एक योजन लम्बी आकृति वाला था तथा क्रूर नेत्र वाला था, श्मशान भूमि में वह वेताल इस मन्त्र से सिद्ध किया गया था।।५६।। अतः मन्त्र से साधित वह वेताल शक्तियों की सेना का मर्दन कर रहा था। उस श्रेष्ठ वेताल के कंधों पर तब अनेकों प्रकार के दानव शक्तियों के साथ

बहुधायुध्यत तदा शक्तिभिः सह दानवः॥५७॥
एवमेते खलात्मानः सप्त सप्तार्णवोपमाः। शक्तीनां सैनिकं तत्र व्याकुलीचक्रुरुद्धताः॥५८॥
ते सप्त पूर्वं तपसा सवितारमतोषयन्। तेन दत्तो वरस्तेषां तपस्तुष्टेन भास्वता॥५९॥
कैकसेया महाभागा भगवतां तपसाधुन। परितुष्टोऽस्मि भद्रं वो भवंतो वृणतां वरम्॥६०॥
इत्युक्ते दिननाथेन कैकसेयास्तपः कृशाः। प्रार्थयामासुरत्यर्थं दुर्दान्तं वरमीदृशम्॥६१॥
रणेषु सन्निघातव्यमस्माकं नेत्रकुक्षिषु। भवता घोरतेजोभिर्दहता प्रतिरोधिनः॥६२॥
त्वया यदा सन्निहितं तपनास्माकमक्षिषु। तदाक्षिविषयः सर्वो निश्चेष्टो भवतात्प्रभो॥६३॥
त्वत्सान्निध्यसमिद्धेन नेत्रेणास्माकमीक्षिताः।
स्तब्धशस्त्रा भविष्यंति प्रतिरोधकसैनिकाः॥६४॥
ततः स्तब्धेषु शस्त्रेषु वीक्षणादेव नः प्रभो। निश्चेष्टा रिपवोऽस्माभिर्हंतव्याः सुकरत्वतः॥६५॥
इति पूर्वं वरः प्राप्तः कैकसेयौर्दिवाकरात्। वरदानेन ते तत्र युद्धे चेरुर्मदोद्धताः॥६६॥
अथ सूर्यसमाविष्टनेत्रैस्तेस्तु निरीक्षिताः।
शक्तयः स्तब्धशस्त्रौघा विफलोत्साहतां गताः॥६७॥
कीकसातनयैस्तैस्तु सप्तभिः सत्त्वशालिभिः।
विष्टंभितास्त्रशस्त्राणां शक्तीनां नोद्यमोऽभवत्॥६८॥
उद्यमे क्रियमाणेऽपि शस्त्रस्तम्भेन भूयसा। अभिभूताः सनिश्वासं शक्तयो जोषमासत॥६९॥

युद्ध कर रहे थे।।५७।। इस पकार ये दुष्ट सेनापति सातों ही सात समुद्रों के समान थे। अतः वहाँ उस युद्ध में उन उद्दण्ड सातों ने शक्तियों के सैनिकों को व्याकुल कर दिया।।५८।।

उन सातों ने पूर्वकाल में अपनी तपस्या से सूर्य को प्रसन्न कर लिया था, तब भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उनको वर दियाथा।।५९।। भगवान् सूर्य देव ने उनसे कहा था कि हे कीकसी के पुत्रो! महाभागो! आप लोगों के तप साधना से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अतः आप लोग वर माँगो।।६०।। सूर्यदेव के ऐसा कहने पर उन कीकसी के सातों पुत्रों ने इस प्रकार के अत्यन्त दुर्दान्त वर को माँगा।।६१।। कि हमारी आँखों की पुतलियों के सामने जिसका शरीर आ जाये वह आपके घोर तेज द्वारा जला दिया जाना चाहिये। अर्थात् युद्ध में जो वैरी हम लोगों की आँखों के सामने आये, वह भस्म हो जाये।।६२।। जब तुम हमारी आँखों में सन्निहित रहो, तब हे प्रभो! जो भी हमारी आँखों के सामने आये वे सब चेतनाहीन हो जायें।।६३।। और हे सूर्यदेव! तुम हमारे पास सदा रहो तथा तुम्हारे सान्निध्य से मिले हुए नेत्र से हमारे देखने वाले सभी शत्रु सेना के सैनिक स्तब्ध शस्त्र हो जायें अर्थात् जिन शत्रुओं को देख लें, उनके सभी शस्त्र न चल सकें, वे स्तब्ध हो जायें।।६४।। उसके बाद हे सूर्यदेव जब उन शत्रुओं के शस्त्र स्तब्ध हो जायें, वे चल ही न सकें तब हमको देखते ही शत्रु सब हमारे द्वारा आसानी से मारे जा सकें।।६५।। इस प्रकार कीकसी के सातों पुत्रों ने सूर्यदेव से उपर्युक्त वर प्राप्त कर लिया था। इसलिये वे सब युद्ध में मदोद्धत होकर विचरण कर रहे थे।।६७।। कीकसा के उन पराक्रमी सात पुत्रों द्वारा शक्तियों के अस्त्र शस्त्रों को विशेष रूप से स्तम्भित कर दिया था, जिससे शक्तियाँ कुछ नहीं कर पा रही थीं, उनका कोई उद्यम नहीं चल रहा था।।६८।। शक्तियों के उद्यम करने

अथ ते वासरं प्राप्य नानाप्रहरणोद्यताः। व्यमर्दयञ्छक्तिसैन्यं दैत्याः स्वस्वामिदेशिताः॥७०॥
शक्तयस्तास्तु सैन्येन निर्व्यापारा निरायुधाः। अक्षुभ्यंत शरैस्तेषां वज्रकङ्कटभेदिभिः॥७१॥
शक्तयो दैत्यशस्त्रौघैर्विद्धगात्राः सृतासृजः। सुपल्लवा रणे रेजुः कङ्कोलललतिका इव॥७२॥
हाहाकारं वितन्वत्यः प्रपन्ना ललितेश्वरीम्।
चुक्रुशुः शक्तयः सर्वास्तैः स्तंभितनिजायुधाः॥७३॥
अथ देव्याज्ञया दंडनाथा प्रत्यङ्गरक्षिणी। तिरस्करणिका देवी समुत्तस्थौ रणाजिरे॥७४॥
तमोलिप्ताह्वयं नाम विमानं सर्वतोमुखम्। महामाया समारुह्य शक्तीनामभयं व्यधात्॥७५॥
तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी। श्यामच्छाये तमोलिप्ते श्यामयुक्ततुरङ्गमे॥७६॥
वास्ती मोहनाभिख्यं धनुरादाय सस्वनम्। सिंहनादं विनद्येषूनवर्षत्सर्पसन्निभान्॥७७॥
कृष्णरूपभुजङ्गाभानधोमुसलसंनिभान्। मोहनास्त्रविनिष्ठ्यूतान्बाणान्दैत्या न सेहिरे॥७८॥
इतिस्ततो मर्द्यमाना महामायाशिलीमुखैः। प्रकोपं परमं प्राप्ता बलाहकमुखाः खलाः॥७९॥
अथो तिरस्करण्यंबा दंडनाथानिदेशतः। अन्धाभिधं महास्त्रं सा मुमोच द्विषतां गणे॥८०॥
बलाहकाद्यास्ते सप्त दिननाथवरोद्धताः। अन्धास्त्रेण निजं नेत्रं दधिरे च्छादितं यथा॥८१॥

पर भी बार-बार शस्त्र-स्तम्भ हो जाने के कारण हारकर शक्तियां गहरी साँस लेकर चुप हो गयी थीं।।६९।। इसके बाद जब शक्तियों के अस्त्र-शस्त्र स्तम्भित हो गये, वे नहीं कुछ कर पा रहे थे, तब अवसर प्राप्त कर अनेकों प्रकार के प्रहार करने को तैयार दैत्यों ने अपने अपने स्वामियों के आदेश से शक्ति सेना का मर्दन कर दिया।।७०।। वे शक्तियां अपनी सैन्यशक्ति से कर्तव्यहीन अस्त्रहीन हो गयीं थीं, वे अब उन दैत्यों के सामने कुछ भी नहीं कर पा रही थीं। उन दैत्यों के वज्र के समान कवचों का भेदन करने वाले बाणों द्वारा शक्तियाँ क्षुब्ध हो गयी थीं।।७१।। दैत्यों के शस्त्रों से सब शक्तियाँ घायल होकर खून से लथपथ हो गयी थीं तथा सब शक्तियां कङ्कोल की लता के समान लाल रंग की हो गयी थीं।।७२।। हाहाकार करती हुई सब शक्तियाँ ललितेश्वरी के पास गयीं। उन दैत्यों द्वारा जिनके आयुध (अस्त्रशस्त्र) स्तम्भित कर दिये गये थे, वे सब शक्तियां ललितेश्वरी के पास जाकर आक्रोश करने लगीं।।७३।। इसके बाद ललिता देवी की आज्ञा से ललिता देवी की प्रत्यंगरक्षिणी दण्डनाथा और तिरस्करणिका ये दोनों देवियां रणक्षेत्र में उठ खड़ी हुईं।।७४।। तब तमोलिप्ताह्व नामक सब ओर मुख वाले विमान पर महामाया ने आरूढ होकर शक्तियों को भयहीन किया।।७५।।

तमालवृक्ष के समान श्यामल आकारवाली श्यामवर्ण की कंचुकी को धारण करने वाली वासन्ती देवी मोहन नामक धनुष को लेकर श्याम छाया वाले अन्धकार से लिपे हुए के समान काले रंग के घोड़े पर सर्प की फुफकार के समान सिंहनाद कर रही थीं।।७६-७७।। वे दण्डनाथा देवी काले सर्प की आभा वाले नीचे को मुखवाली गदा के समान, मोहनास्त्र से छोड़े गये बाणों को दैत्यों पर छोड़ रही थी।।७८।। जब दण्डनाथा देवी ने इधर-उधर बाणों को चलाकर दैत्यों को मारना प्रारम्भ कर दिया, तब बलाहक प्रमुख दुष्ट दैत्यों को बहुत क्रोध हुआ।।७९।। इसके बाद तिरस्करणी अम्बा ने दण्डनाथा देवी के निर्देश से अन्ध नामक महाअस्त्र को शत्रुओं के समूह पर छोड़ दिया।।८०।। अतः बलाहक आदि जो सात सेनापति थे, जो कि सूर्यदेव के वरदान के कारण मदोन्मत्त थे, उनकी आँखों को उस अन्धास्त्र ने आच्छादित कर दिया अर्थात् उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। अतः जब आँखों

तिरस्करणिकादेव्या महामोहनधन्वनः। उद्गतेनांधबाणेन चक्षुस्तेषां व्यधीयत॥८२॥
अन्धीकृताश्च ते सप्त न तु प्रैक्षन्त किञ्चन। तद्वीक्षणस्य विरहाच्छस्त्रस्तम्भः क्षयं गतः॥८३॥
पुनः ससिंहनादं ताः प्रोद्यतायुधपाणयः। चक्रुः समरसन्नाहं दैत्यानां प्रजिघांसया॥८४॥
तिरस्करणिकां देवीमग्रे कृत्वा महाबलाम्। सदुपायप्रसङ्गेन भृशं तुष्टा रणं व्यधुः॥८५॥
साधुसाधु महाभागे तिरस्करणिकांबिके। स्थाने कृततिरस्कारा द्विषामेषां दुरात्मनाम्॥८६॥
त्वं हि दुर्जननेत्राणां तिरस्कारमहौषधी। त्वया बद्धदृशानेन दैत्यचक्रेण भूयते॥८७॥
देवकार्यमिदं देवि त्वया सम्यगनुष्ठितम्। अस्मादृशामजय्येषु यदेषु व्यसनं कृतम्॥८८॥
तत्त्वयैव दुराचारानेतान्सप्त महासुरान्। निहताँल्ललिता श्रुत्वा सन्तोषं परमाप्स्यति॥८९॥
एवं त्वया विरचिते दंडिनीप्रीतिमाप्स्यति। मंत्रिण्यपि महाभागा यास्यत्येव परां मुदम्॥९०॥
तस्मात्त्वमेव सप्तैतान्निगृहाण रणाजिरे। एषां सैन्यं तु निखिलं नाशयाम उदायुधाः॥९१॥
इत्युक्त्वा प्रेरिता ताभिः शक्तिभिर्युद्धकौतुकान्। तमोलिप्तेन यानेन बलाहकबलं ययौ॥९२॥
तामायांतीं समावेक्ष्य ते सप्ताथ सुराधमाः। पुनरेव च सावित्रं वरं सस्मरुरंजसा॥९३॥
प्रविष्टमपि सावित्रं नासकं तन्निरोधने। तिरस्कृतं तु नेत्रस्थं तिरस्करणितेजसा॥९४॥

के सामने अँधेरा छा गया, तब जो भी उनके सामने आयेगा उसकी आकृति उनकी आँखों के सामने आयेगी ही नहीं तथा जब आयेगी नहीं तो फिर सामने वाले शत्रु के शस्त्रास्त्र भी स्तम्भित नहीं होंगे, अतः सूर्यदेव के वर का प्रभाव भी नहीं रहेगा। इसलिये तिरस्करणी देवी का यह उपाय सफल रहा।।८१।। इस प्रकार तिरस्करणी देवी ने महामोहन नामक धनुष पर छोड़े गये अंधबाण से उन सातों सेनापतियों की आँखों को अंधा कर दिया।।८२।। जब वे सब अन्धे हो गये, तब उनको कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा था, जब उनको कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था, तब उनका शस्त्र स्तम्भ वरदान भी विफल हो गया।।८३।। फिर सिंहनाद करते हुये उन शक्ति देवियों ने अपने हाथों से अस्त्र धारण करते हुए दैत्यों को मारने की इच्छा से घोर युद्ध किया।।८४।। तब शक्तियाँ महाबला तिरस्करणी देवी को आगे करके अच्छे उपाय से युद्ध में शक्तियां अत्यन्त सन्तुष्ट होकर युद्ध करने लगीं।।८५।। तब शक्तियों ने कहा कि हे तिरस्करणिकाम्बिके! महाभागे! तुम्हें धन्यवाद है, जो कि तुमने इन दुष्ट दैत्यों का इस स्थान पर तिरस्कार किया है।।८६।। हे अम्बे! तुम इन दुष्ट दैत्यों के नेत्रों को अन्धा बनाने वाली महाऔषधि हो। तुम्हारे द्वारा बाँधे गये नेत्रों से ये सभी दुष्ट अन्धे होकर चक्कर काट रहे हैं।।८७।।

हे देवि! तुमने ही देवों का यह सही कार्य किया है कि हम जैसे जो नहीं जीतने वाले थे, उनको जिताया है।।८८।। सो तुम्हारे द्वारा इन दुराचारी महासुर सात सेनापतियों को मारकर ललिता देवी परम सन्तोष प्राप्त करेंगी।।८९।। इस प्रकार तुम्होर इस बनायी गयी योजना से दण्डिनी देवी भी प्रसन्न होंगी। महाभाग मन्त्रीगण भी परम मोद को प्राप्त करेंगे।।९०।। इसलिए तुम ही इस रणक्षेत्र में इन सातों सेनापतियों का रणक्षेत्र में संहार करो। इसकी समस्त सेना को तो हम सब शस्त्रधारी शक्तियाँ नाश कर ही देंगे।।९१।। इस प्रकार कहकर उन शक्तियों द्वारा युद्ध कौतुक को प्रेरित वह तिरस्करणिका देवी अन्धकार से लिप्तयान से बलाहक की सेना की ओर गयीं।।९२।। उनको आया हुआ देखकर वे अधम सातों सेनापति पुनः ही सूर्य को अपने सात वरों की याद दिलाने लगे।।९३।। तब सूर्य उस अन्धकार में प्रविष्ट होकर भी उस अन्धकार को रोक नहीं सके; क्योंकि तिरष्करणी देवी के तेज से नेत्रस्थ

वरदानास्त्ररोषांधं महाबलपराक्रमम्। अस्त्रेण च रुषा चांधं बलाहकमहासुरम्।
आकृष्य केशेष्वसिना चकर्तांतर्धिदेवता॥९५॥
तस्य वाहनगृध्रस्य लुनाना पत्रिणा शिरः। सूचीमुखस्याभिमुखं तिरस्करणिका व्रजत्॥९६॥
तस्य पट्टिशपातेन विलूय कठिनं शिरः। अन्येषामपि पञ्चानां पञ्चत्वमकरोच्छनैः॥९७॥
तैः सप्तदैत्यमुण्डैश्च ग्रथितान्योन्यकेशकैः। हारदाम गले कृत्वा ननादांतर्धिदेवता॥९८॥
समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तयः क्रोधमूर्च्छिताः। हत्वा तद्रक्तसलिलैर्बह्वीः प्रावाहयन्नदीः॥९९॥
तत्राश्चर्यमभूद्भूरि माहामायांबिकाकृतम्। बलाहकादिसेनान्यां दृष्टिरोधनवैभवात्॥१००॥
हतशिष्टाः कतिपया बहुवित्राससङ्कुलाः। शरणं जग्मुरत्यार्त्ताः क्रंदंतं शून्यकेश्वरम्॥१०१॥
दंडिनीं च महामायां प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः। प्रसादमपरं चक्षुस्तस्या आदाय पिप्रियुः॥१०२॥
साधुसाध्विति तत्रस्थाः शक्तयः कम्पमौलयः।
तिरस्करणिकां देवीमश्लाघंत पदेपदे॥१०३॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने बलाहकादिसप्तसेनापतिवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

तेज तो तिरस्कृत हो चुका था, अतः वह सूर्य के प्रकाश को देख ही कैसे पाता।।९४।। अतः जो उन महासुरों को सूर्य के वरदान से दिया गया अस्त्र था, वह विफल हो गया। अतः उसके वरदान रूपी अस्त्र को अन्धास्त्र ने विफल कर दिया, तब महाबल पराक्रम वाले अन्धे हुए उस महासुर को तिरस्करिणी देवी ने खींचकर और तलवार से उसके शिर को काट दिया।।९५।। तथा उसका जो भीषण वाहन गृध्र था, उनका शिर बाण से बाट दिया। उसके वाद सूचीमुख के सामने तिरस्करणिका देवी आयीं।।९६।। सूचीमुख दानवेन्द्र के शिर को उन्होंने तेज धारवाली बर्छी से काट दिया, उसके बाद अन्यों पाँचों के शिर काट कर शीघ्र ही उनको भी पञ्चतत्त्व को प्राप्त करा दिया।।९७।। उसके बाद उन सातों दैत्यों के मुण्डों को काटकर उन्हीं केशों में एक-दूसरे को बाँधकर सातों मुण्डों की माला को गले में पहनकर अन्तर्धि देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं।।९८।। इस प्रकार उन सातों सेनापतियों की समस्त सेना को मारकर क्रोध से मूर्च्छित शक्तियों ने उन दैत्यों के शरीर से बहने वाले रक्त से बहुत बड़ी नदी बहा दी।।९९।। इस प्रकार वहाँ महामाया द्वारा बलाहकादि सेनापतियों की दृष्टि का अवरोध करने वाले वैभव से महान् आश्चर्य पैदा कर दिया।।१००।। कुछ जो दैत्य सैनिक मरने से बचे हुए थे, वे बहुत अधिक भयभीत तथा व्याकुल होकर करुण क्रन्दन करते हुए दानवराज शून्यक की शरण में पहुँचे।।१०१।। वे सब सैनिक उन दण्डनाथा महामाया की बारबार प्रशंसा कर रहे थे। अन्य दैत्य उनके नेत्र का प्रसाद प्राप्त कर प्रसन्न हुए थे। उसके बाद वहाँ शक्ति सेना में सब शक्तियों ने अपने शिरों को झुकाते हुए तिरस्करणिका देवी को बार-बार साधुवाद देते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।।१०३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २४वाँ अध्याय बलाहकआदि सात सेनापति वध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

विषंग पलायनं नाम

पञ्चविंशोध्यायः

ततः श्रुत्वा वधं तेषां तपोबलवतामपि। न्यश्वसत्कृष्णसर्पेन्द्र इव भंडो महासुरः॥१॥
कांते मंत्रयामास स आहूय महोदरौ। भण्डः प्रचंडशौंडीर्यः कांक्षमाणो रणे जयम्॥२॥
युवराजोऽपि सक्रोधो विषंगेण यवीयसा। भंडासुरं नमस्कृत्य मंत्रस्थानमुपागमत्॥३॥
अत्याप्तैर्मंत्रिभिर्युक्तः कुटिलाक्षपुरःसरैः। ललिताविजये मंत्रं चकार क्वथिताशयः॥४॥

भंड उवाच

अहो बत कुलभ्रंशः समायातः सुरद्विषाम्। उपेक्षामधुना कर्तुं प्रवृत्तो बलवान्विधिः॥५॥
मद्भृत्यनाममात्रेण विद्रवंति दिवौकसः। तादृशानामिहास्माकमागतोऽयं विपर्यतः॥६॥
करोति बलिनं क्लीबं धनिनं धनवर्जितम्। दीर्घायुषमनायुष्कं दुर्धाता भवितव्यता॥७॥
क्व सत्त्वमन्मद्बाहूनां केयं दुर्ल्ललिता वधूः। अकांड एव विधिना कृतोऽयं निष्ठुरो विधिः॥८॥
सर्पिणीमाययोदग्रास्तया दुर्घटशौर्यया। अधिसंग्रामभूचक्रे सेनान्यो विनिपातिताः॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–२५

विषंगपलायन वर्णन

जब बलाहकादि सेनापतियों का तिरस्करिका देवी ने वध कर दिया और इस सूचना को हतावशिष्ट सैनिकों ने शून्यक को सुनाया, तब शून्यक द्वारा उन तपोबल वाले सेनापतियों का वध सुनकर भण्डासुर काले सर्प की भाँति श्वास लेने लगा।।१।। उसके बाद युद्ध में जीत की इच्छा रखने वाले प्रचण्ड घमण्डी उस दैत्य ने अपने विशाल उदर वाले दोनों भाइयों को बुलाकर उनसे विचार विमर्श किया।।२।। युवराज भी क्रोधयुक्त होकर अपने छोटे भाई बिषंग के साथ आया और उसने भण्डासुर को नमस्कार करके जहाँ पर मन्त्री लोग थे, वहाँ पहुँचा।।३। वहाँ पर अनेकों मन्त्री लोग आये हुए थे, अतः कुटिलाक्ष आदि मन्त्रियों के सामने ललिता देवी को जीतने के विषय में गम्भीर आशय वाले उस भण्डासुर ने तथ्यपरक विचार-विमर्श किया।।४।।

भण्डासुर बोला कि अहो! दुःख है कि अब देवों के शत्रु असुरों के कुल का नाश आ चुका है। आज हम सबकी उपेक्षा करने के लिये बलवान् विधि भी प्रवृत्त हो चुका है।।५।। मेरे भृत्यों (सेवकों) के नाम लेने मात्र से सूर्य भी डर जाते थे, वैसे हम लोगों का आज यह विपरीत समय आ गया है।।६।। बुरा समय लाने वाली भवितव्यता (हौनी) बलवान् को नुपंसक (कायर), धनी को निर्धन, दीर्घायु वाले को कम आयु वाला बना देती है।।७।। कहाँ हमारी भुजाओं का पराक्रम और कहाँ यह दुष्ट ललिता बहू (स्त्री)।। असमय में ही विधि ने यह निष्ठुर विधि उपस्थित कर दी है।।८।। उस अवर्णनीय पराक्रम वाली सर्पिणी की माया से उत्पन्न हुए उदग्र सेनानी भी समरचक्र में मारकर गिरा दिये गये।।९।।

एवमुद्दामदर्पाढ्या वनिता कापि मायिनी। यदि संप्रहरत्यस्मान्धिग्बलं नो भुजार्जितम्॥१०॥
इमं प्रसंगं वक्तुं च जिह्वा जिह्वेति मामकी। वनिता किमु मत्सैन्यं मर्दयिष्यति दुर्मदा॥११॥
तदत्र मूलच्छेदाय तस्या यत्नो विधीयताम्। मया चारमुखाज्ज्ञाता तस्या वृत्तिर्महाबला॥१२॥
सर्वेषामपि सैन्यानां पश्चादेवावतिष्ठते। अग्रतश्चलितं सैन्यं हयहस्तिरथादिकम्॥१३॥
अस्मिन्नेव ह्यवसरे पार्ष्णिग्राहो विधीयताम्। पार्ष्णिग्राहमिमं कर्तुं विषंगश्चतुरो भवेत्॥१४॥
तेन प्रौढमदोन्मत्ता बहुसंग्रामदुर्मदाः। दश पंच च सेनान्यः सह यांतु युयुत्सया॥१५॥
पृष्ठतः परिवारास्तु न तथा संति ते पुनः। अल्पैस्तु रक्षिता वै स्यात्तेनैवासौ सुनिग्रहा॥१६॥
अतस्त्वं बहुसन्नाहमाविधाय मदोत्कटः। विषंग गुप्तरूपेण पार्ष्णिग्राहं समाचर॥१७॥
अल्पीयसी त्वया सार्द्धं सेना गच्छतु विक्रमात्।
सज्जाश्चलंतु सेनान्यो दिक्पालविजयोद्धताः॥१८॥
अक्षौहिण्यश्च सेनानां दश पंच चलंतु ते। त्वं गुप्तवेषस्तां दुष्टां सन्निपत्य दृढं जहि॥१९॥
सैव निःशेषशक्तीनां मूलभूता महीयसी। तस्याः समूलनाशेन शक्तिवृन्दं विनश्यति॥२०॥
कंदच्छेदे सरोजिन्या दलजालमिवांभसि। सर्वेषामेव पश्चाद्यो रथश्चलति भासुरः॥२१॥
दशयोजनसंपन्ननिजदेहसमुच्छ्रयः। महामुक्तातपत्रेण सर्वोद्ध परिशोभितः॥२२॥
वहन्मुहुर्वीज्यमानं चामराणां चतुष्टयम्। उत्तंगकेतुसंघातलिखितांबुदमंडलः॥२३॥

इस प्रकार बहुत अधिक घमण्ड से युक्त कोई मायावी स्त्री यदि हम लोगों पर सम्यक् प्रहार करती है, तो फिर हमारी भुजाओं द्वारा अर्जित बल को धिक्कार है।।१०।। इस प्रसङ्ग को बताने में मेरी जीभ भी लड़खड़ाती है कि क्या कोई दुर्मदा स्त्री मेरी सेना का मर्दन कर सकेगी?।।११।। तो अब यहाँ उसका समूल नाश करने के लिये आप लोग प्रयत्न कीजिये। मैंने अपने गुप्तचरों के मुख से यह जानकारी प्राप्त की है कि उसकी वृत्ति (उसका व्यवहार) अर्थात् सुरक्षा बहुत ही बलवान् है, वह सब सेनाओं के बाद ही स्थित रहती है। उसके आगे घोड़े, हाथी और रथ आदि की सेना चलती है।।१२-१३।। इसी अवसर पर पीछे से आक्रमण होना चाहिये। इस पीछे से किये जाने वाले आक्रमण में विषंग चतुर है।।१४।। उसके साथ युद्ध करने में पूर्ण कुशल मदोन्मत्त बहुत से संग्रामों में न हारने वाले दश पाँच सेनानी युद्ध करने की इच्छा से जायें।।१५।। पीछे से आक्रमण करने वाले सैनिक रहें, तब थोड़े से सैनिकों से रक्षा की जा सकती है।।१६।। इसलिये तुम यह विषंग को सूचना दे दो कि हम सब बहुत हैं।।१७।। तुम्हारे साथ इधर उधर घूमती हुई थोड़ी सी सेना जाये और सब दिक्पालोंपर भी विजय पाने वाले उद्धत सेनानी तैयार होकर चलें।।१८।। और फिर वे दश या पाँच अक्षौहिणी सेनाएं भी चलें। भण्ड ने विषंग से कहा कि तुम गुप्तवेष में उस दुष्टा को गिराकर दृढ़तापूर्वक पकड़ लेना।।१९।।

इस प्रकार वह सब शक्तियों को पैदा करने वाली मूलभूत महीयसी ललिता देवी जब नष्ट हो जायेंगी तो उसके समूल नाश होने से समस्त शक्ति समूह उसी प्रकार नष्ट हो जायेगा, जिस प्रकार जल में कमलिनी की कन्द (जड़) को काट देने पर उसके समस्त पत्तों सहित कमलिनी नष्ट हो जाती है।।२०-२०½।। अब भण्डासुर उन ललिता देवी को पहचान के लक्षण बताता है कि सबके पीछे जो चमकता हुआ रथ चलता है, वह पूरे दशयोजन तक फैला हुआ तथा ऊँचा है। वहाँ उनके ऊपर महामुक्ता जटित छत्र से सुशोभित वह ललिता देवी होंगी। उनके ऊपर चार चँवर दुलाये

तस्मिन्रथे समायाति सा दृष्टा हरिणेक्षणा। निभृतं संनिपत्य त्वं चिह्नेनानेन लक्षिताम्॥२४॥
तां विजित्य दुराचारां केशेष्वाकृष्य मर्दय। पुरतश्चलिते सैन्ये सत्त्वशालिनि सा वधूः॥२५॥
स्त्रीमात्ररक्षा भवतो वशमेष्यति सत्त्वरम्। भवत्सहायभूतायां सेनेन्द्राणामिहाभिधा॥२६॥
शृणु यैर्भवतो युद्धे साह्यकार्यमतंद्रितैः। आद्या मदनको नाम दीर्घजिह्वो द्वितीयकः॥२७॥
हुबको हुलुमुलुश्च कक्लसः कक्लिवाहन;। थुक्लसः पुंड्रकेतुश्च चंडबाहुश्च कुक्कुरः॥२८॥
जंबुकाक्षो चंभनश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकंटकः। चंद्रगुप्तश्च पंचैते दश चोक्ताश्चमूवराः॥२९॥
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः प्रत्येकं भवता सह। आगमिष्यंति सेनान्यो दमनाद्या महाबलाः॥३०॥
परस्य कटकं नैव यथा जानाति ते गतिम्। तथा गुप्तसमाचारः पार्ष्णिग्राहं समाचर॥३१॥
अस्मिन्कार्ये सुमहतां प्रौढिमानं समुद्वहन्। निषंग त्वं हि लभसे जयसिद्धिमनुत्तमाम्॥३२॥
इति मंत्रितमंत्रोऽयं दुर्मंत्री भंडदानवः। विषंगं प्रेषयामास रक्षितं सैन्यपालकैः॥३३॥
अथ श्रीललितादेव्याः पार्ष्णिग्राहकृतोद्यमे। युवराजानुजे दैत्ये सूर्योऽस्तगिरिमाययौ॥३४॥
प्रथमे युद्धदिवसे व्यतीते लोकभीषणे। अंधकारः समभवत्तम्य बाह्य चिकीर्षया॥३५॥
महिषस्कंधधूम्राभं वनक्रोडवपुर्द्युति। नीलकंठनिभच्छायं निबिडं पप्रथे तम;॥३६॥
कुंजेषु पिंडितमिव प्रधावदिव संधिषु। उज्जिहानमिव क्षोणीविवरेभ्यः सहस्रशः॥३७॥

जा रहे होंगे। उस रथ पर आकाश से टकराने वाली ऊँची-ऊँची ध्वजायें फहरा रही होंगी, जिससे ऐसा लगता होगा मानों कि बादल घिर आये हों। उस रथ पर बैठी हुई, वह मृगलोचना दिखायी देगी। अतः अच्छी तरह देखकर तुम इस बताये चिह्न द्वारा उसको पहचान लेना।।२०½-२४।। फिर उस दुराचारिणी को जीतकर उसके केशों को खींचकर उसका मर्दन करना। आगे सत्त्वशालिनी सेना के चलने पर वह स्त्री तुमसे कहेगी कि मैं स्त्री हूँ, स्त्री की तुम्हें रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार वह शीघ्र तुम्हारे वश में हो जायेगी। यहाँ से तुम्हारी सहायता के लिये जो सेना जायेगी, उस तुमको सहायता देने वाली सेना के बारे में सुनो। उनमें पहला सेनापति मदनक होगा और दूसरा दीर्घजिह्व होगा, उसके बाद ३. हुबक, ४. हुगमुल, ५. कक्लस, ६. कल्किवाहन, ७. थुल्कस, ८. पुण्ड्रकेतु, ९. चण्डबाहु, १०. कुक्कुर, ११. जम्बुद्वाक्ष, १२. जम्भन, १३. तीक्ष्णशृङ्ग, १४. त्रिकण्टक, १५. चन्द्रगुप्त, इस प्रकार ये पन्द्रह श्रेष्ठ सेनापति होंगे ये सब एक अक्षौहिणी सेना से युक्त महाबलवान् दमन आदि सेनापति तुम्हारे साथ आयेंगे।।२५-३०।। दूसरी सेना को तुम्हारी गति नहीं जाननी चाहिये, वह जो गुप्त समाचार है, वह पीछे से ग्रहण किया हुआ है, उसके अनुसार तुम पीछे से चलो।।३१।। इस कार्य में अत्यन्त महान् प्रौढ़ और योग्य सेनापति निषंग को मैं तुम्हारे साथ करता हूँ, जो जीत की सफलता प्राप्त करने वाला है।।३२।।

इस प्रकार पूरी तरह मन्त्रियों से मन्त्रणा किये गये भण्डासुर ने सैन्यपालकों से रक्षित विषंग को भेज दिया।।३३।। इसके बाद ललिता देवी के रथ को पीछे से ग्रहण करने के लिये युवराज के अनुज उस दैत्य विषंग के आने तक सूर्य अस्ताचल पर चले गये अर्थात् रात हो गयी।।३४।। प्रथम लोकभीषणयुद्ध के बीत जाने पर चारों ओर बाहर करने की इच्छा में घोर अन्धकार छा गया।।३५।। तब भैंसे के कन्धे के समान धूम्र की आभावाला समस्त वनांचल के शरीर की कांति वाला तथा नीलकंठ भगवान् शंकर के कण्ठ की शोभा वाला, घना अन्धकार चारों तरफ छा गया।।३६।। वह अन्धकार कुञ्जों में गोला बनाने के समान था। दिन रात की सन्धियों में दौड़ते हुए के समान

निर्गच्छदिव शैलानां भूरि कंदरमंदिरात्। क्वचिद्दीपप्रभाजाले कृतकातरचेष्टितम्॥३८॥
दत्तावलंबनमिव स्त्रीणां कर्णोत्पलत्विषि। एकीभूतमिव प्रौढदिङ्नागमिव कज्जले।
आबद्ध मैत्रकमिव स्फुरच्छाद्वलमंडले॥३९॥
कृतप्रियाश्लेषमिव स्फुरंतीष्वसियष्टिषु। गुप्तप्रविष्टमिव च श्यामासु वनपंक्तिषु॥४०॥
क्रमेण बहुलीभूतं प्रससार महत्तमः। त्रियामावामनयना नीलकंचुकरोचिषा॥४१॥
तिमिरेणावृतं विश्वं न किंचित्प्रत्यपद्यत। असुराणां प्रदुष्टानां रात्रिरेव बलावहा॥४२॥
तेषां मायाविलासोऽयं तस्यामेव हि वर्धते। अथ प्रचलितं सैन्यं विषंगेण महौजसा॥४३॥
धौतखड्गलताच्छायावर्धिष्णु तिमिरच्छटम्।
दमनाद्याश्च सेनान्यः श्मामकंकटधारिणः॥४४॥
श्यामोष्णीषधराः श्यामवर्णसर्वपरिच्छदाः। एकत्वमिव संप्राप्तास्तिमिरेणातिभूयसा॥४५॥
विषंगमनुसंचेलुः कृताग्रजनमस्कृतिम्। कूटेन युद्धकृत्येन विजिगीषुर्महेश्वरीम्॥४६॥
मेघडंबरकं नाम दधे वक्षसि कंकटम्। यथा तस्य निशायुद्धानुरूपो वेषसंग्रहः॥४७॥
तथा कृतवती सेना श्यामलं कंचुकादिकम्। न च दुंदुभिनिस्वानो न च मर्द्दलगर्जितम्॥४८॥

हजारों पृथ्वी के विवरों की गुफाओं से ऊपर उठते हुए के समान अन्धकार छाने लगा।।३७।। उस समय ऐसा लगता था कि कि मानो अन्धकार पर्वतों की गुफाओं से निकल रहा है। कहीं कहीं दीपक की रोशनी में कुछ व्याकुल चेष्टा वाला अंधेरे में कुछ सहायता देते हुए के समान स्त्रियों के कान के आभूषण की चमक में स्त्रियों के कर्णोत्पल की कान्ति में सहारा देते हुए के समान था। कालेपन में एक हुये दिशाओं के हाथियों के समान, काला चमकते हुए घास के मैदान से मित्रता कर लेने के समान; क्योंकि अन्धकार से सर्वत्र मैदान ही मैदान दिखाई दे रहा था। अतः उसने सबसे मानों मित्रता कर ली है, ऐसा अंधकार था।।३८-३९।। उस अन्धकार में प्रिया से आलिंगन करने की भांति तलवारें चमक रही थीं और वहाँ ऐसा लगता था, मानों श्यामवर्ण की वनपंक्तियों में गुप्त प्रवेश किया जा रहा है।।४०।। इस क्रम से बहुत अधिक बढ़ता हुआ महान् अन्धकार चारों तरफ छा गया। वह रात्रि ऐसी लग रही थी, मानों कि अर्धरात्रिरूपी स्त्री ने नीले रंग की साड़ी पहन ली हो।।४१।। ऐसी उस रात्रि के अन्धकार से युक्त विश्व में कुछ भी नहीं दिखाई देता था। वह रात्रि असुरों और बहुत बड़े दुष्टों का बल बढ़ाने वाली ही है।।४२।।

उस रात्रि में उन दुष्ट असुरों का ही माया विलास बढ़ता है।।४२-४२½।। इस प्रकार उस अंधेरे में उस महापराक्रमी विषंग की चलती हुई और सफेद रंग की तलवार की चमक में बढ़ती हुई सेना अन्धकार का छेदन करती चली जा रही थी।।४२½-४३।। तथा उसके जो दमन आदि सेनापति थे, वे काले रंग के कवच को धारण किये हुए, रात्रि के श्याम वर्ण से आवृत होकर चले जा रहे थे।।४४।। उस समय वे रात्रि के घोर अन्धकार से एकता प्राप्त करते हुए के समान थे अर्थात् रात्रि के अन्धकार के समान वे भी काले थे। अतः उनका और रात्रि के अन्धकार का रंग एक हो गया था।।४५।। विषंग नामक दैत्य अपने अग्रज भण्डासुर को नमस्कार कर (छलकपट के युद्ध द्वारा माहेश्वरी ललिता को जीतने की इच्छा से चल पड़ा।।४६।। उस विषंग ने मेघ डंबरक नामक कवच को वक्षःस्थल पर धारण कर लिया था। अतः जैसा रात्रि का अन्धकार था, वैसा ही काले रंग का उसका कवच था। उसका समस्त वेष संग्रह रात्रि के युद्ध के ही अनुरूप था तथा जैसी रात्रि युद्ध के अनुरूप उस विषंग की वेषभूषा थी, वैसी ही वेशभूषा

पणवानकभेरीणां न च घोषविजृंभणम्। गुप्ताचाराः प्रचलितास्तिमिरेण समावृताः॥४९॥
परैरदृश्यगतयो विष्कोशीकृतरिष्टयः। पश्चिमाभिमुखं यांति ललितायाः पताकिनीम्॥५०॥
आवृतोत्तरमार्गेण पूर्वभागमशिश्रियन्। निश्वासमपि सस्वानमकुर्वंतः पदेपदे॥५१॥
सावधानाः प्रचलिताः पार्ष्णिग्राहाय दानवाः।
भूयः पुरस्य दिग्भागं गत्वा मंदपराक्रमाः॥५२॥
ललितासैन्यमेव स्वान्सूचयंतः प्रपृच्छतः। आगत्य निभृतं पृष्ठे कवचच्छन्नविग्रहाः॥५३॥
चक्रराजरथं तुंगं मेरुमंदरसंनिभम्। अपश्यन्नतिदीप्ताभिः शक्तिभिः परिवारितम्॥५४॥
तत्र मुक्तातपत्रस्य वर्त्तमानामधःस्थले। सहस्त्रादित्यसंकाशां पश्चिमाभिमुखीं स्थिताम्॥५५॥
कामेश्वर्यादिनित्याभिः स्वसमानसमृद्धिभिः। नर्मालापविनोदेन सेव्यमानां रथोत्तमे॥५६॥
तां तथाभूतवृत्तांताम तादृशरणोद्यमाम्। पुरोगतं महत्सैन्यं वीक्षमाणं सकौतुकम्॥५७॥
मन्वानश्च हि तामेव विषंगः सुदुराशयः। पृष्ठवंशे रथेंद्रस्य घट्टयामास सैनिकैः॥५८॥
तत्राणिमादिशक्तीनां परिवारवरूथिनी। महाकलकलं चक्रुरणिमाद्याः परःशतम्॥५९॥
पट्टिशैर्द्रुघणैश्चैव भिंदिपालैर्भुशुण्डिभिः। कठोरवज्रनिर्घातनिष्ठुरैः शक्तिमंडलैः॥६०॥
मर्दयंतो महासत्त्वाः समरं बहुमेनिरे। आकस्मिकरणोत्साहविपर्याविष्टविग्रहम्॥६१॥

उसकी सेना की थी। सेना ने भी उसी तरह काले रंग की कंचुकी आदि को धारण कर लिया था।।४७-४७½।। न उस समय दुन्दुभिः की ध्वनि की जा रही थी और न ढोल ही बजाया जा रहा था। न पणवानक की ध्वनि की जा रही थी और न रणभेरी द्वारा युद्ध की घोषणा की जा रही थी। अन्धकार से आवृत सेना गुप्त रूप से जा रही थी।।४७½-४९।। वे सब दैत्य दूसरों से अदृश्य होकर तलवार को छिपाये हुए चल रहे थे तथा ललितेश्वरी की पताका के पश्चिम (पीछे) की ओर जा रहे थे।।५०।। सेना से घिरे हुए उत्तर मार्ग से पूर्वभाग का सहारा लेते हुए श्वास की भी आवाज न करते हुए धीरे धीरे पैर रखते हुए सावधान होकर चलते हुए सब दानव ललिता देवी के पीछे के भाग को ग्रहण करने के लिए जा रहे थे।।५१-५१½।।

पुनः पुर के दिग्भाग की ओर जाकर मन्द पराक्रम ललिता की सेना को ही अपने को सूचित करते हुए पूँछते हुये कवच से ढके हुए सब छिपकर आगे आये। फिर आकर उन्होंने सुमेरु पर्वत के समान ऊँचे चक्ररथराज को देखा जो कि अत्यन्त दीप्त शक्तियों से घिरा हुआ था, ढका हुआ था।।५१½-५४।। वहाँ मोती जटित छत्र के नीचे हजार सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशवाली पश्चिमाभिमुखी (पश्चिम की ओर मुख किये हुए) देवी स्थित थी।।५५।। वे पश्चिमाभिमुखी देवी अपने समान समृद्धिवाली कामेश्वरी आदि नित्या देवियों के साथ धीरे-धीरे मनोरंजन पूर्ण बातें कर रही थीं तथा वे कामेश्वरी आदि देवियाँ उत्तम रथ पर उनकी सेवा कर रही थीं।।५६।। इस प्रकार वहाँ जो पश्चिमा देवी थीं, उनको देखकर तथा उनके आगे बहुत बड़ी सेना को देखकर उस दुष्ट आशय विषंग ने उन्हें ही ललितेश्वरी समझ लिया और पीछे से सैनिकों द्वारा उन पर आक्रमण करवा दिया।।५७-५८।। वहाँ पर उनकी अणिमा आदि शक्तियां जो कवच धारण किये हुए उनके चारों ओर बैठी हुई थीं। तब अणिमा आदि शक्तियों ने महाकलकल की सैकड़ों ध्वनियां कर दीं।।५९।। उसके बाद बर्छियों, द्रुघणों, भिन्दिपालों, बन्दूकों और कठोर वज्राघातों से निष्ठुर शक्ति समूहों द्वारा महायोद्धा समर करने लगे। अर्थात् असुरों और शक्तियों से युद्ध होने लगा।।६०-६०½।। परन्तु

अकांडक्षुभितं चासीद्रथस्थं शक्तिमंडलम्। विपाटैः पाटयामासुरदृश्यैरंधकारिणः॥६२॥
ततश्चक्ररथेंद्रस्य नवमे पर्वणि स्थिताः। अदृश्यमानशस्त्राणामदृश्यनिजवर्मणाम्॥६३॥
तिमिरच्छन्नरूपाणां दानवानां शिलीमुखैः। इतस्ततो बहु क्लिष्टं छन्नवर्मितमर्मवत्॥६४॥
शक्तीनां मंडलं तेने क्रंदनं ललितां प्रति। पूर्वानुक्रम तस्तत्र संप्राप्तं सुमहद्भयम्॥६५॥
कर्णाकर्णिकयाकर्ण्य ललिता कोपमादधे। एतस्मिन्नंतरे भंडश्चंडदुर्मंत्रिपंडितः॥६६॥

दशाऽक्षौहिहिणिकायुक्तं कुटिलाक्षं महौजसम्।
ललितासैन्यनाशाय युद्धाय प्रजिघाय सः॥६७॥

यथा पश्चात्कलकलं श्रुत्वाग्रे वर्तिनी चमूः। नागच्छति तथा चक्रे कुटिलाक्षो महारणम्॥६८॥
एवं चोभयतो युद्धं पश्चादग्रे तथाऽभवत्। अत्यंततुमुलं चासीच्छक्तीनां सैनिके महत्॥६९॥
नक्तसत्त्वाश्च दैत्येंद्रास्तिमिरेण समावृताः। इतस्ततः शिथिलतां कंटके निन्युरुद्धताः॥७०॥
निषंगेण दुराशेन धमनाद्यैश्चमूवरैः। चमूभिश्च प्रणहिता न्यपतञ्छत्रुकोटयः॥७१॥
ताभिर्दैत्यास्त्रमालाभिश्चक्रराजरथो वृतः। बकावलीनिबिडतः शैलराज इवाबभौ॥७२॥
आक्रांतपर्वणाधस्ताद्विषंगेण दुरात्मना। मुक्त एकः शरो देव्यास्तालवृंतमचूर्णयत्॥७३॥
अथ तेनाव्याहितेन संभ्रान्ते शक्तिमंडले। कामेश्वरीमुखा नित्या महांतं क्रोधमाययुः॥७४॥

आकस्मिक आक्रमण हुआ था, इसलिये सेना में युद्ध के विपरीत भाव था, उनमें युद्ध का उतना साहस नहीं था, अतः असमय में आक्रमण होने के कारण रथस्थ शक्तिसमूह बहुत क्षुभित हो गया और अन्धकार में आने वाले दैत्यों ने न दिखाई देने वाले पत्थर के खण्डों से रथ को तोड़-फोड़ दिया।।६०½-६२।। उसके बाद चक्ररथ राज के नवें पर्व में शक्तियां स्थित हो गयी। तब जिनके शस्त्र नहीं दिखाई दे रहे थे और न शरीर दिखाई दे रहे थे, उन अन्धकार से ढके हुए रूप वाले दानवों के बाणों से इधर उधर भागते हुए अपने शरीर को बचाते हुए शक्तियों के समूह का क्रन्दन (हाहाकार) करते हुए श्री ललिता देवी के पास तक पहुँचा।।६३-६४½।। पूर्वानुक्रम से वहाँ बहुत ही महान् भय उत्पन्न हो गया था और इस भयंकर करुण क्रन्दन को कानों कान सुनकर ललिता देवी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं।।६४½-६५½।। इसी बीच में भण्ड और चण्ड दुर्मन्त्रि पण्डित ने दश अक्षौहिणी सेनायुक्त महापराक्रमी कुटिलाक्ष को ललिता देवी की सेना के नाश के लिये युद्ध हेतु भेज दिया था।।६५½-६७।। जैसे ही पीछे कलकल सुनकर वे आगे सेना तैय्यार नहीं होने पायी कि वैसे ही कुटिलाक्ष ने महारण प्रारम्भ कर दिया।।६८।।

इस प्रकार आगे और पीछे दोनों तरफ वैसा भयंकर युद्ध होने लगा। उस समय शक्तियों की सेना में अत्यन्त कोलाहल हाहाकार मच गया था।।६९।। रात्रि होने के कारण सब दैत्यराज अन्धकार से समावृत (घिरे हुए) थे। शक्ति सेना में इधर-उधर शिथिलता थी, ऐसी दशा में दुराश तरकश तथा अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले धमनादि शस्त्रों से युक्त उद्दण्ड असुरों ने अवसर का लाभ उठाया। सेनाओं द्वारा जमा किये गये करोड़ों शत्रु गिर रहे थे।।७०-७१।। उन दैत्यों के अस्त्र मालाओं के द्वारा चक्रराजरथ को घेर लिया गया था। उस समय वह रथ बगुलों द्वारा घिरे हुए पर्वतराज की तरह अशोभित हो रहा था।।७२।। चक्ररथराज के पर्व के नीचे दुरात्मा विषंग ने उस रथ को आक्रान्त कर लिया, उस दुरात्मा विषंग ने एक बाण छोड़ा, जिससे कि देवी के एक तालवृन्त को चूर्ण-चूर्ण कर दिया।।७३।। इसके बाद तालवृन्त के चूर-चूर हो जाने से शक्ति समूह के अत्यन्त भयभीत हो जाने पर कामेश्वरी प्रमुख नित्या देवी अत्यन्त

ईषद्भृकुटिसंसक्तं श्रीदेव्या वदनांबुजम्। अवलोक्य भृशाद्विग्ना नित्या दधुरतिश्रमम्॥७५॥

नित्या कालस्वरूपिण्यः प्रत्येकं तिथिविग्रहाः।
क्रोधमुद्वीक्ष्य सम्राज्ञ्या युद्धाय दधुरुद्यमम्॥७६॥

प्रणिपत्य च तां देवीं महाराज्ञीं महोदयाम्। ऊचुर्वाचमकांडोत्थां युद्धकौतुकगद्गदाम्॥७७॥

तिथिनित्या उचुः

देवदेवी महाराज्ञी तवाग्रे प्रेक्षितां चमूम्। दंडिनीमंत्रनाथादिमहाशक्त्यभिपालितम्॥७८॥

धर्षितुं कातरा दुष्टा मायाच्छद्मपरायणाः। पार्ष्णिग्राहेण युद्धेन बाधंते रथपुंगवम्॥७९॥

तस्मात्तिमिरसंछन्नमूर्तीनां विबुधद्रुहाम्। शमयामो वयं दर्पं क्षणमात्रं विलोकय॥८०॥

या वह्निवासिनी नित्या या ज्वालामालिनी परा।
ताभ्यां प्रदीपिते युद्धे द्रष्टुं शक्ताः सुरद्विषः॥८१॥

प्रशमय्य महादर्पं पार्ष्णिग्राहप्रवर्तिनाम्। सहसैवागमिष्यामः सेवितुं श्रीपदांबुजम्।
राज्ञां देहि महाराज्ञि मर्दनार्थं दुरात्मनाम्॥८२॥
इत्युक्ते सति नित्याभिस्तथास्त्विति जगाद सा।
अथ कामेश्वरी नित्या प्रणम्य ललितेश्वरीम्।
तया संप्रेषिता ताभिः कुण्डलीकृतकार्मुका॥८३॥

क्रोधित हो गयीं।।७४।। श्री देवी के मुख कमल पर कुछ भ्रकुटी वक्र हो गयी अर्थात् श्री ललिता देवी की भौंहें क्रोध से कुछ टेढ़ी हो गयीं। उनको क्रोधित देखकर नित्या देवी अत्यन्त उद्विग्न (व्याकुल) हो गयी और फिर उन्होंने अत्यन्त श्रम (अत्यन्त थकान) को धारण किया।।७५।। तिथि रूपी शरीर वाली कालस्वरूपिणी नित्या देवियों ने क्रोध दिखाकर सम्राज्ञी श्री ललिता देवी के द्वारा आदेश प्राप्त कर युद्ध करने का उद्यम धारण किया।।७६।। और फिर उन देवी महा महाराज्ञी महोदया श्री ललिता देवी को उन नित्याओं ने प्रणाम किया और वे जो देवी असमय रात में अचानक उठी थीं और अचानक रात्रि में युद्ध का कौतुक देखकर आश्चर्य चकित थीं, उनसे इस प्रकार वचन कहा।।७७।।

तिथि नित्यायें बोलीं—हे देवों की देवी महाराज्ञी! आपके आगे ही दण्डिनाथा, मन्त्रिनाथा आदि महाशक्तियों से परिपालित सेना को माया और छलकपट करने में कुशल दुष्ट एवं कायर असुरों ने कुचल दिया तथा युद्ध के नियमों के विरुद्ध रात में पीछे से सोती हुई सेना पर आक्रमण करके छलकपट पूर्ण युद्ध द्वारा वे दुष्ट असुर हमारे रथ को बाधा पहुँचा रहे हैं।।७८-७९।। अतः हे महाराज्ञी अब देखिये, हम अन्धकार से ढके शरीर वाले असुरों के घमण्ड को क्षणमात्र में शान्त करती हैं।।८०।। जो वह्निवासिनी नित्या देवी हैं और जो दूसरी ज्वालामालिनी हैं, उन दोनों के साथ युद्ध करने में देखते हैं, कैसे असुर समर्थ होते हैं?।।८१।। अब हम उन पीठ पर वार करने वाले दुष्ट असुरों के महा घमण्ड को पूरी तरह शान्त कर शीघ्र श्री देवी के चरण कमलों की सेवा में उपस्थित होवेंगी। अतः हे महाराज्ञि! उन दुष्टों का नाश करने के लिये हमें आज्ञा दीजिये।।८२।। नित्याओं द्वारा ऐसा कहने पर महाराज्ञी श्री ललिता देवी ने कहा कि ठीक है, तुम जाओ, अपनी शक्ति दिखाओ। इसके बाद कामेश्वरी नित्या देवी ने ललितेश्वरी को प्रणाम किया, फिर उन ललितेश्वरी द्वारा वे युद्धक्षेत्र में भेज दी गयीं। उसके बाद उन सबने धनुषों

सा हंतुं तान्दुराचारान्कूटयुद्धकृतक्षणान्। बालारुणमिव क्रोधारुणं वक्रं वितन्वती॥८४॥
रे रे तिष्ठत पापिष्ठा मायानिष्ठाश्छिनद्मि वः। अन्धकारमनुप्राप्य कूटयुद्धपरायणाः॥८५॥
इति तान्भर्त्सयंती सा तूणीरोत्खातसायकात्। पर्वावरोहणं चक्रे क्रोधेन प्रस्खलद्गतिः॥८६॥
सज्जकार्मुकहस्ताश्च भगमालापुरःसराः। अन्याश्च चलिता नित्याः कृतपर्वावरोहणाः॥८७॥
ज्वालामालिनि नित्या च या नित्या वह्निवासिनी।
सज्जे युद्धे स्वतेजोभिः समदीपयतां रणे॥८८॥
अथ ते दुष्टदनुजाः प्रदीप्ते युद्धमंडले। प्रकाशवपुषस्तत्र महांतं क्रोधमाययुः॥८९॥
कामेश्वर्यादिका नित्यास्ताः पञ्चदश सायुधाः। ससिंहनादास्तान्दैत्यानमृद्नन्नेव हेलया॥९०॥
महाकलकलस्तत्र समभूद्युद्धसीमनि। मंदरक्षोभितांभोधिवेल्लत्कल्लोलमंडलः॥९१॥
ताश्च नित्यावलत्क्वाणकंकणैर्युधि पाणिभिः। आकृष्य प्राणकोदंडास्तेनिरे युद्धमुद्धतम्॥९२॥
यामत्रितयपर्यंतमेवं युद्धमवर्त्तत। नित्यानां निशितैर्बाणैरक्षौहिण्यश्च संहृताः॥९३॥
जघान दमनं दुष्टं कामेशी प्रथमं शरैः। दीर्घजिह्वं चमूनाथं भगमाला व्यदारत्॥९४॥
नित्यक्लिन्ना च भेरुंडा हुम्बेकं हुलुमल्लकम्।
कक्लसं वह्निवासा च निजघान शरैः शतैः॥९५॥

को धारण कर लिया।।८३।। तब उस समय छलकपटपूर्ण क्रूर युद्ध करने वाले उन दुराचारियों को मारने के लिये क्रोध से प्रातःकालीन सूर्य के समान लाल मुख की हुई, उन कामेश्वरी नित्या देवी ने उन दैत्यों से कहा कि अरे अन्धकार का सहारा लेकर कूटयुद्ध करने वाले मायावी नींच पापियो! ठहरो, अब मैं तुम्हारा छेदन करती हूँ।।८४-८५।। इस प्रकार उन दैत्यों की घोर निन्दा करती है, तरकश में बाण रखकर क्रोध से लड़खड़ाती हुई, उन देवी ने भगमाला को पहनकर हाथ में धनुष लेकर रथ के पर्व में आरोहण किया तथा अन्य नित्या देवियाँ रथ के पर्व में चढ़ गयीं।।८६-८७।। तथा साथ ही उस रथ पर्व में ज्वालामालिनी नित्या और वह्निवासिनी नित्या भी सवार हो गयीं। वे सजे हुए उस युद्धस्थल में अपने तेजों से सन्दीपित हो रही थीं।।८८।।

इसके बाद वे ज्वालामालिनी और वह्निवासिनी अपने अपने तेज से उदीप्त होने लगीं, तो चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया, तब उस प्रदीप्त युद्धस्थल में वे सब दुष्ट दानव सशरीर दिखायी देने लगे और जब वे दिखाई देने लगे, तब अत्यन्त क्रोधित हो गये।।८९।। तब कामेश्वरी आदि उन पन्द्रह नित्याओं ने अस्त्र शस्त्र सहित सिंहनाद करते हुए उन दैत्यों को थोड़ी देर में ही मसल दिया।।९०।। तब युद्ध क्षेत्र में उसी तरह महा कलकल अर्थात् हाहाकार होने लगा जिस तरह समुद्र मन्थन के समय देवों और दानवों ने मन्दराचल द्वारा समुद्र के जल को विलोडित कर क्षोभित किया था।।९१।। जिनके हाथ में बँधे हुए कंगन खनखना रहे थे, उन हाथों से युद्ध में प्राणदण्डों को खींचकर उन्होंने उत्तम युद्ध किया।।९२।। इस प्रकार नित्याओं के तेजधार वाले बाणों से अक्षौहिणी सेनाओं के साथ तीन पहर तक युद्ध हुआ।।९३।। पहले कामेश्वरी देवी ने बाणों से दमन नामक दुष्ट दानवराज को मार डाला और दीर्घजिह्व सेनापति को भगमाला देवी ने फाड़ दिया।।९४।। नित्य क्लिन्ना और भेरुण्डा ने हुम्बेक और हुलुमल्लक को तथा वह्निवासा ने सैकड़ों बाणों से कक्लश को मार गिराया।।९५।।

महावज्रेश्वरी बाणैरभिनत्केकिवाहनम्। पुक्लसं शिवदूती च प्राहिणोद्यमसादनम्॥९६॥
पुंड्रकेतुं भुजोद्दंडं त्वरिता समदारयत्। कुलसुन्दरिका नित्या चंडबाहुं च कुक्कुरम्॥९७॥
अथ नीलपताका च विजया च जयोद्धते।
जंबुकाक्षं जृंभणं च व्यतन्वातां रणे बलिम्।
सर्वमंगलिका नित्या तीक्ष्णशृंगमखंडयत्।
ज्वालामालिनिका नित्या जघानोग्रं त्रिकर्णकम्॥९८॥
चंद्रगुप्तं च दुःशीलं चित्रं चित्रा व्यदारत्। सेनानाथेषु सर्वेषु निहतेषु दुरात्मसु॥९९॥
विषंगः परमः क्रुद्धश्चचाल पुरतो बली। अथ यामावशेषायां यामिन्यां घटिकाद्वयम्॥१००॥
नित्याभिः सह संग्रामं विधाय स दुराशयः।
अशक्यत्वं समुद्दिश्य चक्राम प्रपलायितुम्॥१०१॥
कामेश्वरीकराकृष्टचापोत्थैर्निशितैः शरैः। भिन्नवर्मा दृढतरं विषंगो विह्वलाशयः।
हतावशिष्टैर्योधैश्च सार्धमेव पलायितः॥१०२॥
ताभिर्न निहतो दुष्टो यस्माद्वध्यः स दानवः। दंडनाथाशरेणैव कालदंडसमत्विषा॥१०३॥
तस्मिन्पलायिते दुष्टे विषंगे भंडसोऽदरे। सा विभाता च रजनी प्रसन्नश्चाभवन्दिशः॥१०४॥
पलायितं रणे वीरमनुसर्त्तुमनौचिती। इति ताः समरान्नित्यास्तस्मिन्काले व्यरंसिषुः॥१०५॥
दैत्यशस्त्रव्रणस्यंदिशोणितप्लुतविग्रहाः। नित्याः श्रीललितां देवीं प्रमिपेतुजयोद्धताः॥१०६॥

महावज्रेश्वरी देवी ने बाणों से केकिवाहन को और शिवदूती ने पुल्कस को यमलोक पहुँचा दिया।।९६।। त्वरिता देवी ने पुंड्रकेतु और भुजदण्ड को पूरी तरह से विदीर्ण कर दिया और कुलसुन्दरिका नित्या ने चण्डबाहु और कुक्कुट को विदीर्ण कर दिया।।९७।। इसके बाद जीत के लिये उद्यत होने पर नील पताका और विजया ने जंबुकाक्ष और जृम्भण को मारकर पसार दिया, लम्बा लम्बा कर दिया। वहीं पर सर्वमंगलिका नित्या ने तीक्ष्णशृंग नामक दानव के टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा ज्वालामालनिका नित्या ने उग्र त्रिकर्णक को मार डाला।।९८।। चित्रादेवी ने चन्द्रगुप्त और दुराचारी चित्रदानव को बीच से फाड़ दिया। इस प्रकार सब दुरात्मा सेनापतियों के मर जाने पर बहुत अधिक क्रोधित होकर बली विषंग युद्ध के लिये चल पड़ा।।९९-९९½।।। इसके बाद जब एक पहर रात्रि शेष रह गयी थी, तब दो घड़ी रात्रि रहने पर नित्या देवियों के साथ दुष्ट आशय रखने वाला विषंग, जब उन्हें हराने में असमर्थ हो गया, तब अपनी अशक्यता समझकर युद्धक्षेत्र से भाग निकला।।९९½-१०१।।

उधर कामेश्वरी देवी के हाथ से खींचे धनुष पर रखे गये तीक्ष्ण बाणों से टूटे फूटे घायल शरीर वाला विषंग बहुत व्याकुल होकर मरने से बचे हुए सैनिकों के साथ ही भाग गया।।१०२।। उन देवियों द्वारा वह दुष्ट न मारा जा सका, जिससे वह दण्डनाथा देवी के कालदण्ड की कान्ति के समान बाण से ही मारा जाने योग्य था।।१०३।। भण्डासुर के सहोदर भ्राता उस दुष्ट विषंग के भाग जाने पर वह रात्रि अत्यधिक सुशोभित हो गयी और दिशायें प्रसन्न हो गयीं।।१०४।। उस वीर विषंग को भागा हुआ देखकर उसकी पीछा करने को अनुचित मानने वाली नित्या देवियों ने उस समय पर युद्ध से विश्राम किया।।१०५।। दैत्य के शस्त्रों से हुए घावों से रक्त बहने वाले शरीर वाली वे नित्य देवियां जीत से उद्धत (कूदती हुई) श्री ललिता देवी के पास पहुँची।।१०६।।

इत्थं रात्रौ महद्युद्धं तत्र जातं भयंकरम्। नित्यानां रूपजालं च शस्त्रक्षतमलोकयत्॥१०७॥
श्रुत्वोदंतं महाराज्ञी कृपापांगेन सैक्षत। तदालोकनमात्रेण व्रणो निर्व्रणतामगात्॥१०८॥
नित्यानां विक्रमैश्चापि ललिता प्रीतिमासदत्॥१०९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने विषंगपलायनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

—✻✻❀✻✻—

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने प्रथमयुद्धदिवसः

भंडपुत्रवधो नाम

षड्विंशतितमोऽध्यायः

दशाक्षौहिणिकायुक्तः कुटिलाक्षोऽपि वीर्यवान्।
दंडनाथाशरैस्तीक्ष्णै रणे भग्नःपलायितः।
दशाक्षौहिणिकं सैन्यं तया रात्रौ विनाशितम्॥१॥
इमं वृत्तांतमाःकर्ण्य भण्डः क्षोभमथाययौ। रात्रौ कपटसंग्रामं दुष्टानां निर्जरद्रुहाम्।
मंत्रिणी दण्डनाथा च श्रुत्वा निर्वेदमापतुः॥२॥

इस प्रकार वहाँ रात्रि में महान् भयंकर युद्ध हुआ था, अतः ललितादेवी ने नित्या देवियों के रूपों को शस्त्र से घायल देखा।।१०७।। समस्त वृत्तान्त को सुनकर उन महाराज्ञी श्री ललिता देवी ने कृपा करने वाली आँख से उन नित्याओं को देखा, अतः उस देखने मात्र से ही उनके घाव समाप्त हो गये।।१०८।। तब वहाँ नित्या देवियों के पराक्रमों से ललिता देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं।।१०९।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २५वाँ अध्याय विषंगपलायन वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान प्रथमयुद्ध दिवस

अध्याय–२६

भण्डपुत्र वध

दश अक्षौहिणी सेना से युक्त पराक्रमी कुटिलाक्ष भी दण्डनाथा देवी के तीक्ष्ण बाणों से भग्न होकर भाग गया। दश अक्षौहिणी सेना का उसने रात्रि में विनाश करवा दिया।।१।। इस वृत्तान्त का सुनकर दैत्यराज भण्ड को अत्यन्त दुःख हुआ। उधर रात्रि में दुष्ट असुरों के कपट संग्राम के बारे में सुनकर ललितेश्वरी देवी की मन्त्रिणी दण्डनाथा भी शोक से प्राप्त हो गयी।।२।।

अहो वत महत्कष्टं दैत्यैर्देव्याः समागतम्। उत्तानबुद्धिभिर्दूरमस्माभिश्चलितं पुरः॥३॥
महाचक्ररथेंद्रस्य न जातं रक्षणं बलैः। एतं त्ववसरं प्राप्य रात्रौ दुष्टैः पराकृतम्॥४॥
को वृत्तांतोऽभवत्तत्र स्वामिन्या किं रणः कृतः। अन्या वा शक्तयस्तत्र चक्रुर्युद्धं महासुरैः॥५॥
विम्रष्टव्यमिदं कार्यं प्रवृत्तिस्तत्र कीदृशी। महादेव्याश्च हृदये कः प्रसंगः प्रवर्तते॥६॥
इति शंकाकुलास्तत्र दण्डनाथापुरोगमाः। मंत्रिणीं पुरतः कृत्वा प्रचेलुर्ललितां प्रति॥७॥
शक्तिचक्रचमूनाथाः सर्वास्ताः पूजिता द्रुतम्। व्यतीतायां विभावर्यां रथेंद्र पर्यवारयन्॥८॥
अवरुह्य स्वयानाभ्यां मंत्रिणीदण्डनायिके। अधस्तात्सैन्यमावेश्य तदारुरुहतु रथम्॥९॥
क्रमेण नव पर्वाणि व्यतीत्य त्वरित क्रमैः। तत्तत्सर्वगतैः शक्तिचक्रैः सम्यङ् निवेदितैः॥१०॥
अजभजेतां महाराज्ञीं मंत्रिणीदण्डनायिके। ते व्यजिज्ञपतां देव्या अष्टांगस्पृष्टभूतले॥११॥
महाप्रमादः समभूदितिः न श्रुतमंबिके। कूटयुद्धप्रकारेण दैत्यैरपकृतं खलैः॥१२॥
स दुरात्मा दुराचारः प्रकाशसमरात्रसन्। कुहकव्यवहारेण जयसिद्धिं तु कांक्षति॥१३॥
दैवान्नः स्वामिनीगात्रे दुष्टानाममरद्रुहाम्। शरादिकपरामर्शो न जातस्तेन जीवति॥१४॥

वे कहने लगी कि अरे यह तो महान् कष्ट है कि दैत्यों ने देवियों को हरा दिया तथा हमारी ऊँची ऊँची बुद्धियों से बनाकर चलते हुये महाचक्ररथराज की भी सैनिकों द्वारा रक्षा नहीं हुई। इसी अवसर का लाभ उठाकर रात्रि में दुष्ट असुरों ने हमें पराजित कर दिया।।३-४।। तथा वहाँ पर क्या क्या घटना घटित हुई! स्वामिनी ललिता महोदया ने क्या युद्ध किया? अथवा अन्य शक्तियों ने वहाँ महा असुरों के साथ कैसे युद्ध किया?।।५।। इस कार्य पर विचार-विमर्श किया जाना चाहिये, वहाँ अब कैसी प्रवृत्ति है? वहाँ पर अब क्या किया जाय? इस विषय में विचार होना चाहिये तथा महादेवी श्री ललिता महोदया के हृदय में कौंन प्रसंग चल रहा है? वे क्या चाहती हैं?।।६।।

इस प्रकार की शंकाएं करती हुई, वहाँ पर सभी शक्तियाँ दण्डनाथा के सामने जाने के लिये उपस्थित हुईं, फिर मन्त्रिणी दण्डनाथा को आगे करके श्री ललिता देवी के पास चलने लगीं।।७।। उसके बाद मन्त्रिणी दण्डनाथा के साथ सभी शक्तियाँ जब श्री ललितेश्वरी के सामने पहुँची, तो वे शक्ति चक्र के साथ सभी सेनापतियों ने उनका आदर सत्कार किया और शीघ्र ही रात्रि के बीत जाने पर उस रथराज को हटा दिया।।८।। उसके बाद मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों अपने अपने यानों से उतरकर नीचे खड़ी सेना में प्रवेश करके तब रथ पर दोनों सवार हुयीं।।९।। तब उन शक्तियों के साथ रथ के नौ पर्वों तक जो कुछ घटना हुई कि शक्तियों को रात में असुरों ने कूटयुद्ध से रथ को तोड़-फोड़ दिया, शक्तियों को तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया तथा फिर शक्तियों ने जो किया, वह सारा वृत्तान्त क्रमशः मन्त्रिणी और दण्डनाथा ने महाराज्ञीं ललितेश्वरी को बता दिया तथा उन दोनों ने यह भी बता दिया कि रथराजचक्र के आठ अंग भूतल का स्पर्श कर रहे हैं अर्थात् उस रथ के आठ पर्वों को तोड़कर भूमि पर डाल दिया है।।१०-११।। तथा उन्होंने कहा कि यह हम लोगों से महान् आलस्य हो गया है, हम नहीं जानते थे कि शत्रु इतनी कायरता के साथ रात में आक्रमण करेगा। अतः हे अम्बिके! कूटयुद्ध के प्रकारों से दुष्ट दैत्यों ने हमारा घोर अपकार किया है।।१२।। वह दुरात्मा दुराचारी भण्डासुर दिन के प्रकाश में होने वाले समर से डरता हुआ ऐन्द्रजालिक (छलकपटपूर्ण) व्यवहार से जीत की सफलता प्राप्त करना चाहता है।।१३।। दैवयोग से स्वामिनी के शरीर पर देवताओं के शत्रुओं के बाणों का असर नहीं होता है, उसी कारण आप जीवित हैं।।१४।।

एकावलंबनं कृत्वा महाराज्ञि भवत्पदम्। वयं सर्वा हि जीवामः साधयामः समीहितम्॥१५॥
अतोऽस्माभिः प्रकर्तव्यं श्रीमत्यंगस्य रक्षणम्। मायाविनश्च दैत्येंद्रास्तत्र मंत्रो विधीयताम्॥१६॥
आपत्कालेषु जेतव्या भंडाद्या दानवाधमाः। कूटयुद्धं न कुर्वंति न विशंति चमूमिमाम्॥१७॥
तथा महेंद्रसैलस्य कार्यं दक्षिणदेशतः। शिविरं बहुविस्तारं योजनानां शतावधि॥१८॥
वह्निप्राकारवलयं रक्षणार्थं विधीयताम्। अस्मत्सेनानिवेशस्य द्विषां दर्पशमाय च॥१९॥
शतयोजनमात्रस्तु मध्यदेशः प्रकल्प्यताम्। वह्निप्राकारचक्रस्य द्वारं दक्षिणतो भवेत्॥२०॥
यतो दक्षिणदेशस्थं शून्यकं विद्विषां पुरम्। द्वारे च बहवः कल्प्याः परिवारा उदायुधाः॥२१॥
निर्गच्छतां प्रविशतां जनानामुपरोधकाः। अनालस्या अनिद्राश्च विधेयाः सततोद्यताः॥२२॥
एवं च सति दुष्टानां कूटयुद्धं चिकीर्षितम्। अवेलासु च संध्यासु मध्यरात्रिषु च द्विषाम्।
अशक्यमेव भवति प्रौढमाक्रमणं हठात्॥२३॥
नो चेद्दुराशया दैत्या बहुमायापरिग्रहाः। पश्यतोहर[1]वत्सर्वं विलुठंति महद्बलम्॥२४॥
मंत्रिण्या दंडनाथाया इति श्रुत्वा वचस्तदा। शुचिदन्तरुचा मुक्ता वहंती ललिताब्रवीत्॥२५॥

हे महाराज्ञि! आपके चरणों का अवलम्बन कर हम सब जीवित रहते हैं और अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं को सिद्ध करते हैं।।१५।। इसलिये हमें श्रीमती ललितेश्वरी के अंग की रक्षा करनी चाहिये और इस समय सब दैत्यराज वहाँ अपने शिविरों में मन्त्रणा कर रहे हैं। इसलिये यह उचित समय है; क्योंकि आपत्तिकाल में भण्डासुर आदि दैत्यों को जीतना चाहिये। इस समय वे कूट युद्ध नहीं कर रहे हैं और न हमारी इस सेना में प्रवेश कर रहे हैं।।१६-१७।। जैसे वे युद्धनीति पर विचार कर रहे, वैसे ही हमें भी महेन्द्र पर्वत के दक्षिण की ओर सौ योजन बहुत विस्तार वाला शिविर बनाना चाहिये।।१८।। रक्षा के लिये उस शिविर का परकोटा (चारों ओर की दीवार) आग से जलता हुआ होना चाहिये अर्थात् जिसके चारों ओर परकोटे की दीवारें आग से जलती हुई बनी रहें, ताकि शत्रु का आक्रमण न हो सके। तथा हमारी सेना के निवेश (रहने) को तथा शत्रुओं के घमण्ड को शान्त करने के लिये सौ योजन मात्र विस्तृत मध्यदेश बनाओ, जिस मध्यदेश के दक्षिण की ओर अग्नि के परकोटे का द्वार होना चाहिये।।१९-२०।। क्योंकि दक्षिण की ओर शत्रु भण्डासुर के मन्त्री शून्यक का नगर है तथा उसके द्वार पर बहुत से अस्त्र-शस्त्रों से युक्त सैनिक घिरे हुए होने चाहिये।।२१।।

उन द्वारों से निकलने वाले और प्रवेश करने वाले लोगों की जाँच करने वाले द्वारों पर तैनात किये जावें जो आने-जाने वालों की तलाशी लें कि कोई शत्रुघात करने के लिये तो नहीं आ रहा है तथा वे पहरेदार (जाँच करने वाले) आलस्यहीन, निद्राहीन तथा लगातार युद्ध करने आदि परिस्थितियों के लिये उद्यत व्यक्ति होने चाहिये।।२२।। ऐसा होने पर असमयों में प्रातः और सायंकाल जबकि युद्ध नहीं होना चाहिये। उन समयों में तथा अर्धरात्रि में होने वाला शत्रुओं के भीषण आक्रमण अशक्य होगा। अर्थात् शत्रुगण आक्रमण नहीं कर सकेंगे।।२३।। अब बताइये बहुत से मायावी शरीर धारण कर दुष्ट आशा रखने वाले दैत्यगण उसी प्रकार हमारी महासेना को हमारे देखते हुए लूट लेते हैं। जिस प्रकार स्वर्णकार देखते हुए सामने सोना लूट लेता है।।२४।। तब मन्त्रिणी और दण्डनाथा के इस वचन को सुनकर दन्तकान्ति से पवित्र मुस्कान छोड़ती हुई श्री ललिता देवी बोली।।२५।।

१. पश्यतोहर = स्वर्णकार।

भवतीनामयं मंत्रश्चारुबुद्ध्या विचारितः। अयं कुशलधीमार्गो नीतिरेषा सनातनी॥२६॥
स्वचक्रस्य पुरो रक्षां विधाय दृढसाधनैः। परचक्राक्रमः कार्यो जिगीषद्भिर्महाजनैः॥२७॥
इत्युक्त्वा मंत्रिणीदंडनाथे सा ललितेश्वरी। ज्वालामालिनिकां नित्यामाहूयेदमुवाच ह॥२८॥
वत्से त्वं वह्निरूपासि ज्वालामालामयाकृतिः।
त्वया विधीयतां रक्षा बलस्यास्य महीयसः॥२९॥
शतयोजनविस्तारं परिवृत्य महीतलम्। त्रिंशद्योज्जनमुन्नद्धं ज्वालाकारत्वमाव्रज॥३०॥
द्वारयोजनमात्रं तु मुक्त्वान्यत्र ज्वलत्तनुः। वह्निज्वालात्वमापन्ना संरक्ष सकलं बलम्॥३१॥
ज्वालामालिनिकां नित्यामित्युक्त्वा ललितेश्वरी। महेन्द्रोत्तरभूभागं चलितुं चक्र उद्यमम्॥३२॥
सा च नित्यानित्यमयी ज्वलज्ज्वालामयाकृतिः।
चतुर्दशीतिथिमयी तथेति प्रणनाम ताम्॥३३॥
तयैव पूर्वनिर्दिष्टं महेन्द्रोत्तरभूतलम्। कुण्डलीकृत्य जज्वाल शालरूपेण सा पुनः॥३४॥
नभोवलयजंबालज्वालामालामयाकृतिः। बभासे दंडनाथाया मंत्रिनाथचमूरपि॥३५॥
अन्या सामपि शक्तीनां महतीनां महद्बलम्। विशंकटोदरं सालं प्रविवेश गतक्लमा॥३६॥
राजचक्ररथेन्द्रं तु मध्ये संस्थाप्य दंडिनी। वामपक्षे रतं स्वीयं दक्षिणे श्यामलारथम्॥३७॥
पश्चाद्भागे सम्पदेशीं पुरस्ताच्च हयासनाम्। एवं संवेश्य परितश्चक्रराजरथस्य च॥३८॥

आपका यह मन्त्र सुन्दर बुद्धि से विचार किया हुआ है। यह कुशल बुद्धि का मार्ग है तथा यह सनातनी नीति है।।२६।। वह है कि युद्ध को जीतने की इच्छा रखने वाले महापुरुषों को सबसे पहले दृढ़साधनों द्वारा अपने नगरचक्र की रक्षा करनी चाहिये। उसके बाद दूसरे के पुरचक्र पर आक्रमण करना चाहिये।।२७।। इस प्रकार मन्त्रिणी और दण्डनाथा से कहकर उन श्री ललितेश्वरी ने ज्वालामालनिका नित्या को बुलाकर यह कहा।।२८।। कि हे पुत्रि! तुम अग्नि रूप हो, अग्नि मालाओं की तुम्हारी आकृति है, अतः तुम इस बलवान् और सैन्यदल की रक्षा करो।।२९।। तुम सौ योजन विस्तार तक इस भूतल को घेर कर तीन सौ योजन ऊँचे जलती हुई अग्नि का आकार बनाओ।।३०।। शिविर के द्वार पर योजनमात्र छोड़कर अन्यत्र अपना जलता हुआ शरीर रखते हुए अग्नि की ज्वाला को प्राप्त करते हुए समस्त सेना की रक्षा करो।।३१।। ज्वालामालनिका से इस प्रकार कहकर ललितेश्वरी देवी ने महेन्द्र पर्वत के उत्तर भाग की ओर चलने का उद्यम किया।।३२।। तब उन नित्य और अनित्यमयी जलती हुई ज्वाला की आकृति वाली, चौदह तिथियों वाली, देवी ने उन ललितेश्वरी को प्रणाम किया।।३३।।

उसके द्वारा ही पूर्वनिर्देश के अनुसार महेन्द्रपर्वत का उत्तर भूतल को चारों ओर से घेरकर वह पुनः शालरूप से जलने लगी।।३४।। आकाशवलय में गारे के समान वह ज्वालामालामयाकृति वाली दण्डिनाथा और मन्त्रिनाथा की सेना सुशोभित हुई।।३५।। अन्य महीयशी शक्तियों की भी महासेना ने बहुत ही मजबूत बने हुए घर में निश्चिन्त होकर प्रवेश किया।।३६।। राजचक्ररथेन्द्र को मध्यभाग में स्थापित करके रथ के वामपक्ष में अपना रथ स्थापित करके दक्षिण में श्यामला देवी का रथ स्थापित किया।।३७।। उसके पीछे वाले भाग में सम्पत् देवी को तथा आगे वाले भाग में हयासना को स्थापित कर दिया। इस प्रकार राजचक्र रथेन्द्र के चारों ओर सुरक्षा व्यवस्था करके दण्डिनी देवी

द्वारे निवेशयामास विंशत्यक्षौहिणीयुताम्। ज्वलद्दंडायुधोदग्रां स्तम्भिनीं नाम देवताम्॥३९॥
या देवी दंडनाथाया विघ्नदेवीति विश्रुता। एवं सुरक्षितं कृत्वा शिबिरं योत्रिणी तथा।
पूषण्युदितभूयिष्ठे पुनर्युद्धमुपाश्रयत्॥४०॥
कृत्वा विलोकिलारावं ततः शक्तिमहाचमूः। अग्निप्राकारकद्वारान्निर्जगाम महारवा॥४१॥
इत्थं सुरक्षितं श्रुत्वा ललिताशिबिरोदरम्। भूयः संज्वरमापन्नः प्रचण्डो भण्डदानवः॥४२॥
मंत्रयित्वा पुनस्तत्र कुटिलाक्षपुरोगमैः। विषंगेण विशुक्रेणासममात्मसुतैरपि॥४३॥
एकौघस्य प्रसारेण युद्धं कर्तुं महाबलः। चतुर्बाहुमुखान्पुत्रांश्चतुर्जधिसन्निभान्॥४४॥
चतुरान्युद्धकृत्येषु समाहूय स दानवः। प्रेषयामास युद्धाय भण्डश्चण्डक्रुधा ज्वलन्॥४५॥
त्रिंशत्संख्याश्च तत्पुत्रा महाकाया महाबलाः।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समाकर्णय कुम्भज॥४६॥
चतुर्बाहुश्चकोराक्षस्तृतीयस्तु चतुःशिराः। वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महाकायो महाहनुः॥४७॥
मखशत्रुर्मखस्कन्दी सिंहघोषः सिरालकः। लड्डुनः पट्टसेनश्च पुराजित्पूर्वमारकः॥४८॥
स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः। अतिमायो बृहन्माय उपमायश्च वीर्यवान्॥४९॥
इत्येते दुर्मदाः पुत्रा भण्डदैत्यस्य दुर्धियः। पितुः सदृशदोर्वीर्याः पितुः सदृशविग्रहाः॥५०॥

ने शिविर के द्वार पर बीस अक्षौहिणी सेना के साथ जलते हुए दण्डायुध वाली अत्यन्त उग्र स्वभाववाली, स्तम्भिनी नाम की देवी को तैनात कर दिया (स्थापित कर दिया)। ।३८-३९।। जो देवी दण्डनाथा की विघ्न करने वाली देवी विशेष रूप से सुनी गयी हैं। इस प्रकार शिविर को सुरक्षित करके युद्ध करने वाली दण्डनाथा ने आकाश में बादलों के छाये जाने के समान पुनः युद्ध का आश्रय लिया।।४०।। उसके किलकिल की ध्वनि करके शक्ति महासेना अग्नि प्राकारक द्वार से महाशब्द करती हुई निकल पड़ी।।४१।। इस प्रकार जब भण्डासुर दैत्य ने सुना कि ललिता देवी के शिविर का द्वार अत्यन्त सुरक्षित हो गया है, तब यह सुनकर दैत्यराज भण्डासुर को भयंकर ज्वर चढ़ गया।।४२।।

तब उस भण्डासुर ने पुनः अपने कुटिलाक्ष आदि मन्त्रियों तथा विषंग एवं विशुक्र आदि अपने पुत्रों के साथ मन्त्रणा की।।४३।। मन्त्रिणा करके एक साथ मिलकर आक्रमण करने के लिये समुद्र के समान चतुर्बाहु आदि युद्ध में चतुर पुत्रों को बुलाकर क्रोध से जलते हुए प्रचण्ड भण्डासुर ने युद्ध के लिये भेज दिया।।४४-४५।। उसके विशालकाय महाबली तीस पुत्र थे। अतः हे अगस्त्य जी मैं उनके नाम बता रहा हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनिये।।४६।। वे हैं—१. चतुर्बाहु, २. चकोराक्ष, ३. चतुःशिरः, ४. वज्रघोष, ५. ऊर्ध्वकेश, ६. महाकाय, ७. महाहनु, ८. मखशत्रु, ९. मखस्कन्दी, १०. सिंहघोष, ११. सिरालक, १२. लड्डुन, १३. पट्टसेन, १४. पुराजित्, १५. पूर्वमारुक, १६. स्वर्गशत्रु, १७. स्वर्गबल, १८. दुर्गाख्य, १९. स्वर्गकण्टक, २०. अतिमाय, २१. बृहन्माय, २२. उपमाय, २३. वीर्यवान् इस प्रकार ये भण्डासुर दैत्य के दुर्मद और दुष्टबुद्धि पुत्र थे।[१] ये सभी पिता के समान भुजबल वाले पिता के समान पराक्रमी और पिता के समान शरीर वाले थे।।५०।।

---

१. संख्या तीस होनी चाहिये; परन्तु २३ ही हो रही है। अतः या तो यहाँ एक श्लोक पाण्डुलिपि में छूट रहा है अथवा पूर्व में सात असुर योद्धा मारे गये, वे भी इसी के पुत्र होंगे।

आगत्य भण्डचरणावभ्यवंदत भक्तितः।
तानुद्वीक्ष्य प्रसन्नाभ्यां लोचनाभ्यां स दानवः।
सगौरवमिदं वाक्यं बभषि कुलघातकः॥५१॥
भो भो मदीयास्तनया भवतां कः समो भुवि। भवतामेय सत्येन जितं विश्वं मया पुरा॥५२॥
शक्रस्याग्नेर्यमस्यापि निर्ऋतेः पाशिनस्तथा। कचेषु कर्षणं कोपात्कृतं युष्माभिराहवे॥५३॥
अस्त्राण्यपि च शस्त्राणि जानीथ निखिलान्यपि।
जाग्रत्स्वेव हि युष्मासु कुलभ्रंशोऽयमागतः॥५४॥
मायाविनी दुर्ललिता काचित्स्त्री युद्धदुर्मदा।
बहुभिः स्वसमानाभिः स्त्रीभिर्युक्ता हिनस्ति नः॥५५॥
तदेनां समरेऽवश्यमात्मवश्यां विधास्यथ। जीवग्राहं च सा ग्राह्या भवद्भिर्ज्वलदायुधैः॥५६॥
अप्रमेयप्रकोपांधान्युष्मानेकां स्त्रियं प्रति। सम्प्रेषणमनौचित्यं तथाप्येप विधेः क्रमः॥५७॥
इममेकं सहध्वं च शौर्यकीर्तिविपर्ययम्। इत्युक्त्वा भण्डदैत्येन्द्रस्तान्प्रहैषीद्रणं प्रति।
द्विशतं चाक्षौहिणीनां तत्सहायतयाऽहिनोत्॥५८॥
द्विशत्यक्षौहिणीसेना मुख्यस्य तिलकायिता। बद्धभ्रुकुटयः शस्त्रपाणयो निर्ययुर्गृहात्॥५९॥
निर्गमे भण्डपुत्राणां भूः प्रकम्पमलम्बत। उत्पाता विविधा जाता वित्रस्तं चाभवज्जगत्॥६०॥
तान्कुमारान्महासत्त्वांल्लाजवर्षैरवाकिरन्। वीथीषु यानैश्चलितान्पौरवृद्धपुरंध्रयः॥६१॥

उन सबने भक्तिपूर्वक पिता के पास आकर पिता के चरणों को स्पर्श कर अभिवादन किया। तब उस कुलघातक दानव ने उन अपने पुत्रों को प्रसन्न नेत्रों से देखकर गौरव सहित यह वाक्य कहा।।५१।। अरे अरे मेरे पुत्रो! तुम्हारे समान इस पृथ्वी पर कौंन है? आपके ही होने से मैंने पूर्वकाल में समस्त विश्व को जीत लिया था।।५२।। तुम लोगों ने ही युद्ध में क्रोध से इन्द्र, अग्नि, यम, मृत्यु की देवी निर्ऋति तथा वरुण के केशों का कर्षण किया था।।५३।। आप लोग समस्त अस्त्र-शस्त्रों को चलाना जानते ही हैं, फिर आप लोगों के जागरूक रहने पर भी यहाँ कुल का नाश उपस्थित हो गया।।५४।। मायाविनी ललिता नाम की कोई युद्ध में न हारने वाली स्त्री है, जो अपने ही समान बहुत स्त्रियों के साथ हम असुरों को मार रही है।।५५।। तो इसको तुम अवश्य ही अपने वश में कर सकते हो तथा अपने जलते हुए अस्त्र-शस्त्रों से उसके प्राण ग्रहण कर सकते हो।।५६।। अप्रमेय क्रोध से क्रोधान्य आप सबको एक स्त्री से युद्ध करने भेजना अनुचित है, फिर भी यह विधि का विधान है।।५७।। अपनी शूरता कीर्ति के विपरीत इस एक को सहन करो।।५७½।।

इस प्रकार कहकर उस दैत्यराज भण्ड ने अपने पुत्रों को युद्ध के लिये भेज दिया तथा दो सौ अक्षौहिणी सेना उनके साथ भेज दी।।५८।। दो सौ अक्षौहिणी सेना के मुख्य अर्थात् सेनापति युद्ध का तिलक लगा कर अपनी भ्रकुटियां खेंचकर हाथों में शस्त्र धारण कर घर से निकल पड़े।।५९।। भण्डपुत्रों के निकल पड़ने पर पृथ्वी निराधार होकर काँपने लगी। अनेकों प्रकार के उत्पात होने लगे और सारा संसार विशेष भयभीत हो गया।।६०।। वे महाक्रमी पुत्र जब चल रहे थे, तब सड़कों पर महलों से ऊपर से पुरनारियां उनके ऊपर खीलों की वर्षा कर रही थीं।।६१।।

बंदिनो मागधाश्चैव कुमाराणां स्तुतिं व्यधुः। मङ्गलारार्तिकं चक्रुर्द्वारिद्वारे पुराङ्गनाः॥६२॥
भिद्यमानेव वसुधा कृष्यमाणमिवांबरम्। आसीत्तेषां विनिर्याणे घूर्णमान इवार्णवः॥६३॥
द्विशत्यक्षौहिणीसेनां गृहीत्वा भण्डसूनवः। क्रोधोद्यद्भ्रुकुटीक्रूरवदना निर्ययुः पुरात्॥६४॥
शक्तिसैन्यानि वर्णानि भक्षयामः क्षणाद्रणे।
तेषामायुधचक्राणि चूर्णयामः शितैः शरैः॥६५॥
अग्निप्राकारवलयं शमयामश्च रंहसा। दुर्विदग्धां तां ललितां बन्दीकुर्मश्च सत्वरम्॥६६॥
इत्यन्योन्यं प्रवल्गन्तो वीरभाषणघोषणैः। आसेदुरग्निप्राकारसमीपं भण्डसूनवः॥६७॥
यौवनेन मदेनान्धा भूयसा रुद्धदृष्टयः। भ्रुकुटीकुटिलाश्चक्रुः सिंहनादं महत्तरम्॥६८॥
विदीर्णमिव तेनासीद्ब्रह्मांडं चंडिमस्पृशा। उत्पातवारिदोत्सृष्टघोरनिर्घातरंहसा॥६९॥
एतस्याननुभूतस्य महाशब्दस्य डम्बरः। क्षोभयामास शक्तीनां श्रवांसि च मनांसि च॥७०॥
आगत्य ते कलकलं चक्रुः सार्धं स्वसैनिकैः। विविधायुधसम्पातमूर्च्छद्वैमानिकच्छटम्॥७१॥
चतुर्बाहुमुखान्भूत्वा भण्डदैत्यकुमारकान्। आगतान्युद्धकृत्याय बाला कौतूहलं दधे॥७२॥
कुमारी ललितादेव्यास्तस्या निकटवासिनी।
समस्तशक्तिचक्राणां पूज्या विक्रमशालिनी॥७३॥
ललितासदृशाकारा कुमारी कोपमादधे। या सदा नववर्षेव सर्वविद्यामहाखनिः॥७४॥

मागध वन्दियों द्वारा कुमारों की स्तुति की जारही थी और पुराङ्गनाओं (नगरवधुओं) द्वारा द्वार-द्वार पर मांगलिक आरतियां उतारी जारही थीं।।६२।। उस समय मानो कि पृथ्वी ही फटने वाली है अथवा आकाश ही खिंचने वाला है, ऐसा समझता हुआ समुद्र ऊपर को देख रहा था।।६३।। दो सौ अक्षौहिणी सेना लेकर भण्डासुर के पुत्र क्रोध से भौंहे तानते हुए नगर से निकल गये।।६४।। उस समय वे कहते जा रहे थे कि हम लोग युद्ध क्षेत्र में क्षण भर में शक्ति सेना का भक्षण कर लेंगे और अपने बाणों से उनके अस्त्र-शस्त्रों को क्षण भर चूर्ण चूर्ण कर देंगे।।६५।। तथा उनका जो उनके नगर के चारों ओर अग्नि का परकोटा बना हुआ है, उसे भी क्षण भर में ठण्डा कर देंगे और शीघ्र ही उस कठिनाई से विदग्ध होने वाली ललिता को बन्दी बना लेंगे। इस प्रकार आपस में जोशपूर्ण भाषण करते हुए सब भण्डपुत्र अग्नि प्राकार (आग की चहारदीवार) के पास आ गये।।६६-६७।। यौवन और बहुत अधिक मद से अन्धे हुए वे क्रोध से अपनी भौंहें टेढ़ीकर बहुत तीव्र सिंहनाद करने लगे।।६८।। उस घोर नाद के तीव्र स्पर्श द्वारा ब्रह्माण्ड विदीर्ण सा हो गया था, जैसे कि प्रलयकालीन मेघ में परस्पर टकराव से घोर शब्द होता है।।६९।। वह ऐसा महाशब्द था कि ऐसा शब्दाभास पहले कभी अनुभव नहीं किया गया था। वह सादृश्यहीन महाशब्द था अतः उस घोर महाशब्द ने शक्तियों के कान और मन दोनों का क्षुब्ध कर दिये।।७०।। उन सबने अपने सैनिकों के साथ आकर कल कल करना प्रारम्भ कर दिया। उनके अनेकों प्रकार के अस्त्र शस्त्रों के सम्पात विमान की छटा फीकी पड़ गयी थी।।७१।। तब चतुर्बाहु आदि प्रमुख भण्डासुर के पुत्रों को युद्ध कृत्य के लिये आते हुए देखकर कुमारी बाला को युद्ध करने की उत्कण्ठा होने लगी।।७२।। वह कुमारी बाला उन महाराज्ञी ललिता देवी के पास रहने वाली थी और वह पराक्रमशालिनी कुमारी समस्त शक्ति चक्रों की पूजनीय देवी थी।।७३।। श्री ललिता देवी

बालारुणतनुःश्रोणीशोणवर्णवपुर्लता। महाराज्ञी पादपीठे नित्यमाहितसंनिधिः॥७५॥
तस्या बहिश्चराः प्राणाः या चतुर्थं विलोचनम्।
तानागतान्भण्डसुतान्संहरिष्यामि सत्वरम्॥७६॥
इति निश्चित्य बालांबा महाराज्ञ्यै व्यजिज्ञपत्। मातर्भंडमहादैत्यसूनवो योद्धुमागताः॥७७॥
तैः समं योद्धुमिच्छामि कुमारित्वात्सकौतुका। स्फुरन्ताविव मे बाहू युद्धकण्डूययानया॥७८॥
क्रीडा ममैषा हन्तव्या न भवत्या निवारणैः। अहं हि बालिका नित्यं क्रीडनेष्वनुरागिणी॥७९॥
क्षणं रणक्रीडया च प्रीतिं यास्यामि चेतसा। इति विज्ञापिता देवी प्रत्युवाच कुमारिकाम्॥८०॥
वत्से त्वमतिमृद्वंगी नववर्षा नवक्रमा। नवीनयुद्धशिक्षा च कुमारी त्वं ममैमिका॥८१॥
त्वां विना क्षणमात्रं मे न निश्वासः प्रवर्तते। ममोच्छ्वसितमेवासि न त्वं याहि महाहवम्॥८२॥
दंडिनी मंत्रिणी चैव शक्तयोऽन्याश्च कोटिशः।
संत्येव समरे कर्तुं वत्से त्वं किं प्रमाद्यसि॥८३॥
इति श्रीललितादेव्या निरुद्धापि कुमारिका। कौमारकौतुकाविष्टा पुनर्युद्धमयाचत॥८४॥
सुदृढं निश्चयं दृष्ट्वा तस्याः श्रीललितांबिका।
अनुज्ञां कृतवत्येव गाढमाश्लिष्य बाहुभिः॥८५॥

के समान आकार वाली उस कुमारी बाला ने क्रोध को धारण कर लिया। जो सदा नववर्ष के समान सब विद्याओं की खान थी।।७४।। उस कुमारी का शरीर बाल सूर्य के समान लाल था तथा उसके नितम्ब रक्त के वर्ण के थे। इस प्रकार उसकी शरीरलता बहुत सुन्दर थी। वह कुमारी ललिता देवी के पास ही उनकी रक्षा में नियुक्त थी। वह कुमारी ललिता देवी के बाहर घूमने वाले प्राण थी तथा जो उन देवी की चौथी आँख थी अर्थात् वह उनकी गुप्तचर थी।।७५-७५½।। उन आये हुए भण्डासुर के पुत्रों का मैं शीघ्र संहार करूँगी ऐसा निश्चय करके बालाम्बा ने महाराज्ञी ललितेश्वरी को विज्ञापित किया।।७५½-७६½।। कि हे मातः! दैत्यराज भण्ड के पुत्र महादैत्य युद्ध के लिये आये हुए हैं, मैं उनके साथ युद्ध करना चाहती हूँ। कुमारी होने के कारण मुझे युद्ध करने की अत्यन्त उत्सुकता हो रही है। इस समय मेरी भुजायें युद्ध करने के लिये फड़क रही हैं। उनमें युद्ध करने के लिये खुजली हो रही है।।७६½-७८।। युद्ध करना मेरी क्रीडा है, आपके रोकने से नहीं रुक सकती, मैं बालिका हूँ, अतः नित्य क्रीडा से अनुराग करने वाली; क्योंकि बच्चों को खेलना तो सबसे प्रिय कार्य है।।७९।। क्षण भर रण क्रीडा से मेरा मन प्रसन्न हो जायेगा। इस प्रकार उस बाला ने महाराज्ञी ललिता देवी को कहा, तब ललितेश्वरी ने उस कुमारी से कहा।।८०।।

हे पुत्री! तुम अभी कोमल शरीर वाली हो, नौ वर्ष की हो तथा नवीन क्रम भी तुम्हारा है तथा अभी तुम्हें नई-नई युद्ध की शिक्षा दी गयी है अर्थात् अभी तुम्हारी युद्ध की शिक्षा शुरू की गयी है। अतः अभी तुम युद्ध में प्रवीण भी नहीं हो तथा हे पुत्री तुम मेरी अकेली हो, तुम्हारे विना मेरी श्वास क्षण भर भी नहीं चल सकेगी, तुम मेरी श्वास हो, तुम मेरा प्राण हो; इसलिये तुम उस महायुद्ध में मत जाओ।।८१-८२।। युद्ध में जाने के लिए दण्डिनी, मन्त्रिणी आदि करोड़ों शक्तियां हैं, जो युद्ध क्षेत्र में युद्ध करने को पर्याप्त है। अतः पुत्रि! तुम क्यों व्यर्थ प्रमाद कर रही हो।।८३।। इस प्रकार श्री ललिता देवी के द्वारा रोकी गयी कुमारी अपनी कुमारी आयु के कौतुकवश पुनः युद्ध करने की याचना करनेलगी।।८४।। तब उस कुमारी के अत्यन्त दृढ़ निश्चय को देखकर श्री ललिता देवी ने उसको

स्वकीयकवचादेकमाच्छिद्य कवचं ददौ। स्वायुधेभ्यश्चायुधानि वितीर्य विससर्जताम्॥८६॥
कर्णीरथं महाराज्ञ्या चापदण्डात्समुद्धतम्। हंसयुग्यशतैर्युक्तमारुरोह कुमारिका॥८७॥
तस्यां रणे प्रवृत्तायां सर्वपर्वस्थदेवताः। बद्धांजलिपुटा नेमुः प्रधृतासिपरंपराः॥८८॥
ताभिः प्रणम्यमाना सा चक्रराजरथोत्तमात्। अवरुह्य तले सैन्यं वर्तमानमगाहत॥८९॥
तामायांतीमथो दृष्ट्वा कुमारीं कोपपाटलाम्। मंत्रिणीदंडनाथे च सभये वाचमूचतुः॥९०॥
किं भर्तृदारिके युद्धे व्यवसायः कृतस्त्वया। अकांडे किं महाराज्ञा प्रेषितासि रणं प्रति॥९१॥
तदेतदुचितं नैव वर्तमानेऽपि सैनिके। त्वं मूर्तं जीवितमसि श्रेदेव्या बालिके यतः॥९२॥
निवर्तस्व रणोत्साहात्प्रणामस्ते विधीयते। इति ताभ्यां प्रार्थितापि प्राचलदृढनिश्चया॥९३॥
अत्यन्तं विस्मयाविष्टे मंत्रिणीदंडनायिके। सहैव तस्या रक्षार्थं चेलतुः पार्श्वयोर्द्वयोः॥९४॥
अथाग्निवरणद्वारा ताभ्यामनुगता सती। प्रभूतसेनायुक्ताभ्यां निर्जगाम कुमारिका॥९५॥
सनाथशक्तिसेनानां सर्वासामनुगृह्णती। प्रणामांजलिजालानि कर्णीरथकृतासना॥९६॥
भंडस्य तनयान्दुष्टानभ्यद्रवदरिंदमा। तस्याः प्रादेशिकं सैन्यं कुमार्या न हि विद्यते॥९७॥
सर्वं हि ललितासैन्यं तत्सैन्यं समजायत। ततः प्रववृते युद्धमत्युद्धतपराक्रमम्॥९८॥

अपनी बाहों में आलिंगन कर युद्ध की अनुमति दे दी।।८५।। तथा अपने कवच में से एक कवच उस कुमारिका को दे दिया तथा अपने आयुधों में से आयुधों को मँगाकर उसे प्रदान कर दिया।।८६।। महाराज्ञी ललिता देवी ने उसे धनुष दण्ड से सन्नद्ध कर्णीरथ को प्रदान कर दिया, तब सैकड़ों हंसों के जोड़ों से युक्त रथ पर कुमारिका सवार हो गयीं।।८७।। उस कुमारिका देवी के रण में प्रवृत्त हो जाने पर अर्थात् जब वे कुमारिका रणस्थल में चलने लगीं, तब सभी पर्वों में स्थित देवता हाथ जोड़कर नमन करने लगे, जो कि परम्परा है, उसके अनुसार सबने नमन किया।।८८।। उन देवताओं द्वारा प्रणाम की जाती हुई कुमारिका देवी रथ से उतर कर सैन्यदल में उपस्थित हो गयी।।८९।। इसके बाद उन क्रोध से लाल लाल कुमारिका को आया हुआ देखकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों देवियाँ भयसहित इस प्रकार वचन बोलीं कि क्या राजकुमारी तुमने युद्ध में कभी कोई कार्य किया है, तुमने तो कभी युद्ध नहीं किया, असमय में ही महाराज्ञी ने तुम्हें इस युद्ध में भेज दिया है।।९०-९१।। अतः सेनिके! बालिके! यहाँ यह युद्ध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है; क्योंकि हे बाले! तुम श्री ललिता देवी का जीवन हो।।९२।। इसलिये तुम रण के प्रति उत्साह से लौट जाओ, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। इसके बाद भी उन दोनों देवियों के प्रार्थना करने पर भी वह दृढनिश्चया कुमारी नहीं मानी।।९३।। यह देखकर मन्त्रिनाथा और दण्डनाथा दोनों देवियां आश्चर्य चकित हो गयीं और फिर उसकी रक्षा के लिये उसके साथ ही चल पड़ीं।।९४।। इसके बाद अग्निवरण द्वार वाली उन दोनों मन्त्रनाथा और दण्डनाथा द्वारा अनुगत वह कुमारी बहुत अधिक सेना से युक्त युद्ध के लिये निकल पड़ी।।९५।। वह कुमारी शक्ति सेनाओं के सब सेनापति के साथ अनुग्रह करती हुई हाथ जोड़कर प्रणाम करती हुई कर्णीरथ पर सवार हुई और फिर उसने दैत्यराज भण्ड के पुत्रों पर आक्रमण कर दिया।।९६-९६½।। उस कुमारी की प्रादेशिक सेना नहीं थी, सब ललिता देवी की सेना ही उसकी सेना थी; क्योंकि अभी वह तो सेनापति नहीं थी, अतः उसकी सेना होने का मतलब ही नहीं, वह तो श्री ललिता देवी की पुत्री थी, अतः उनकी सेना ही उसकी सेना थी।।९६½-

ववर्ष शरजालानि दैत्येंद्रेषु कुमारिका। भण्डासुरकुमारारैस्तैर्महाराज्ञीकुमारिका।
यद्युद्धमतनोत्तत्तु स्पृहणीयं सुरासुरैः॥९९॥
अत्यंतविस्मिता दैत्यकुमारा नववर्षिणीम्।
कर्णीरथस्थामालोक्य किरंती शरमंडलम्॥१००॥
क्षणेक्षणे बालिकया क्रियमाणं महारणम्।
व्यजिज्ञपन्महाराज्यैः भ्रमंत्यः परिचारिकाः॥१०१॥
मंत्रिणीदंडनाथे च न तां विजहतू रणे। प्रेक्षकत्व मनुप्राप्ते तृष्णीमेव बभूवतुः॥१०२॥
सर्वेषां दैत्यपुत्राणामेकरूपा कुमारिका। प्रत्येकभिन्ना ददृशे विंबमालेव भास्वतः॥१०३॥
सायकैरग्निचूडालैस्तेषां मर्माणि भिंदती। रक्तोत्पलमिव क्रोधसंरक्तं बिभ्रती मुखम्॥१०४॥
आश्चर्यं ब्रुवतो व्योम्नि पश्यतं त्रिदिवौकसाम्। साधुवादैर्बहुविधैर्मंत्रिणीदंडनाथयोः॥१०५॥
अर्च्यमाना रणं चक्रे लघुहस्ता कुमारिका। द्वितीयं युद्धदिवसं समस्तमपि सा रणे॥१०६॥
प्रकाशयामास बलं ललितादुहिता निजम्। अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण तान्सर्वानपि भिंदती॥१०७॥
नारायणास्त्रमोक्षेण महराज्ञीकुमारिका। द्विशत्यंक्षौहिणीसैन्यं भस्मसादकरोत्क्षणात्॥१०८॥
अक्षौहिणीनां क्षयतः क्षणात्कोपमुागताः। आकृष्टगुरुधन्वानस्तेऽपतन्नेकहेलया॥१०९॥

९७½।। उसके बाद अत्यन्त उद्धत पराक्रम वाला युद्ध होने लगा। तब वहाँ कुमारिका ने उन दैत्यपुत्रों पर बाणों की वर्षा कर दी। भण्डासुर के कुमारों और महाराज्ञी ललितेश्वरी की कुमारी का यह जो युद्ध हुआ वह सुर और असुरों का एक अत्यन्त प्रशंसनीय युद्ध था।।९९।। वहाँ कर्णीरथ पर स्थित ९ वर्ष की कुमारी को बाणों की वर्षा करते हुए देखकर दैत्यकुमार आश्चर्यचकित हो गये।।१००।। वह कुमारी जो आश्चर्यजनक युद्ध कर रही थी, उसकी क्षण-क्षण की सूचना परिचायिकाओं द्वारा महाराज्ञी ललितेश्वरी को दी जा रही थी।।१०१।। जो मन्त्रिणी और दण्डनाथा उसे युद्ध के लिये नहीं भेज रही थीं, वे युद्ध की सूचना प्रेक्षक द्वारा प्राप्त कर आश्चर्यचकित होकर स्तब्ध हो गयीं।।१०२।। सब दैत्य पुत्रों में कुमारिका एक रूप वाली थी तथा बिम्बमाला के समान चमकती हुई, वह प्रत्येक को भिन्न दिखाई देती थी।।१०३।।

आग के गोले के समान बाणों से उन दैत्यपुत्रों को मर्मस्थलों का भेदन करती हुई तथा लाल कमल के समान क्रोध संरक्त मुख को धारण करती हुई, वह कुमारी युद्ध कर रही थी।।१०४।। इस आश्चर्य को आकाश में देवता लोग देखकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा को बहुत प्रकारों से साधुवाद दे रहे थे कि वाह आपने ऐसी बहादुर कुमारिका को युद्ध क्षेत्र में भेजा, जो ९ वर्ष की कन्या इतना पौरुष दिखा रही है।।१०५।। इस प्रकार लघुकरकमला वह कुमारी साधुवाद प्राप्त मन्त्रिणी और दण्डनाथा देवियों द्वारा पूजा की जाती हुई युद्ध कर रही थीं। इस प्रकार उस कुमारिका ने युद्धस्थल समस्त दूसरा दिन भी बिता दिया।।१०६।। अस्त्र पर अस्त्र प्रहार करते हुए उन सब दैत्यों को मारती हुई, उस श्री ललिता पुत्री ने युद्ध में अपने बलको प्रकाशित कर दिया।।१०७।। और फिर महाराज्ञी श्रीललिता की पुत्री कुमारिका ने नारायण अस्त्र को छोड़कर क्षण भर में भण्डासुर पुत्रों की दो सौ अक्षौहिणी सेना को भस्म कर दिया।।१०८।। अक्षौहिणी सेना के नष्ट होते ही क्रोधित हुए उन दैत्य कुमारों ने क्षण भर एक साथ ही अपने अपने विशाल धनुषों के साथ प्रहार करते हुए कुमारी पर आक्रमण कर दिया।।१०९।।

ततः कलकले जाते शक्तीनां च दिवौकसाम्।
युगपत्त्रिंशतो बाणानसृजत्सा कुमारिका॥११०॥
हस्तलाघवमाश्रित्य मुक्तैश्चंद्रार्धकसायकैः। त्रिंशता त्रिंशतो भंडपुत्राणामाहतं शिरः॥१११॥
इति भंडस्य पुत्रेषु प्राप्तेषु यमसादनम्। अत्यंतविस्मयाविष्टा ववृषुः पुष्पमभ्रगाः॥११२॥
सा च पुत्री महाराज्ञ्याः विध्वस्तासुरसैनिका। मंत्रिणीदंडनाथाभ्यामालिंग्यत भृशं मुदा॥११३॥
तस्याः पराक्रमोन्मेषैर्नृत्यंत्योजयदायिभिः। शक्तयस्तुमुलं चक्रुः साधुवादैर्जगत्त्रयम्॥११४॥
सर्वाश्च शक्तिसेनान्यो दण्डनाथापुरःसरा। तदाश्चर्यं महाराज्ञ्यै निवेदयितुमुद्गताः॥११५॥
ताभिर्निवेद्यमानानि सा देवी ललितांबिका। पुत्रीभुजावदानानि श्रुत्वा प्रीतिं समाययौ॥११६॥
समस्तमपि तच्चक्रं शक्तीनां तत्पराक्रमैः। अदृष्टपूर्वैर्देवेषु विस्मयस्य वशं गतम्॥११७॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडपुत्रवधो नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

उसके बाद चारों ओर हाहाकार मच गया और हाहाकार हो जाने पर देवताओं में बेचैनी फैल गयी, उन्हें यह शंका हो गयी कि कहीं ये सब कुमारी को मार न डालें, तब उन कुमारिका ने एक साथ तीस बाणों को उन दैत्यपुत्रों पर छोड़ दिया।।११०।। तब छोटे से हाथ का सहारा प्राप्त कर चलने वाले उन अर्धचन्द्रमा के समान तीस बाणों ने तीस दैत्य कुमारों के शिरों को काट दिया।।१११।। इस प्रकार दैत्यराज भण्ड के पुत्रों के यमलोक चले जाने पर अत्यन्त आश्चर्यचकित देवताओं ने आकाश से पुष्प वर्षा कर दी।।११२।। उसके बाद असुर सैनिकों का विध्वंस करने वाली महाराज्ञी ललिता पुत्री उस कुमारिका को परमानन्द के साथ मन्त्रिणी और दण्डनाथा ने आलिंगन किया।।११३।। उस कुमारी के जय प्रदान करने वाले पराक्रम पूर्ण उन्मेषों (पलक मारने वाली आँखों) से नृत्य करती हुई शक्तियों ने साधुवादों से तीनों लोकों में तुमुल ध्वनि पैदा कर दी। अर्थात् तीनों लोकों में उनको साधुवाद प्राप्त होने लगा।।११४।। उसके बाद सभी शक्ति सेनायें दण्डनाथा देवी को आगे करके उस आश्चर्य को महाराज्ञी ललिता देवी को बताने के लिए चल पड़ी।।११५।। उन सब शक्तियों द्वारा बतायी गयी उन देवी ललिताम्बिका ने अपनी पुत्री के भुजाओं के अवदानों (प्रशस्त सफलता) को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त किया।।११६।। शक्तियों के उस पराक्रमों से वह समस्त चक्र देवों ने पहले कभी ऐसा नहीं देखा था, इसलिये उनको आश्चर्य चकित कर गया।।११७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २६वाँ अध्याय भण्डपुत्र वध का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

गणनाथपराक्रमो नाम

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

अथ नष्टेषु पुत्रेषु शोकानलपरिप्लुतः। विललाप स दैत्येंद्रो मत्वा जातं कुलक्षयम्॥१॥
हा पुत्रा हा गुणोदारा हा मदेकपरायणाः। हा मन्नेत्रसुधापरा हा मत्कुलविवर्धनाः॥२॥
हा समस्तसुरश्रेष्ठमदभंजनतत्पराः। हा समस्तसुरस्त्रीणामंतर्मोहनमन्मथाः॥३॥
दिशत प्रीतिवाचं मे ममांके वल्गताधुना। किमिदानीमिमं तातमवमुच्य सुखं गताः॥४॥

युष्मान्विना न शोभंते मम राज्यानि पुत्रकाः।
रिक्तानि मम गेहानि रिक्ता राजसभापि मे॥५॥

कथमेवं विनिःशेषं हता यूयं दुराशयाः। अप्रधृष्यभुजासत्त्वान्भवतो मत्कुलांकुरान्।
कथमेकपदे दुष्टा वनिता संगरेऽवधीत्॥६॥

मम नष्टानि सौख्यानि मम नष्टाः कुलस्त्रियः।
इतः परं कुले क्षीणे साहसानि सुखानि च॥७॥

भवतः सुकृतैर्लब्ध्वा मम पूर्वजनुःकृतैः। नाशोऽयं भवतामद्य जातो नष्टस्ततोऽस्म्यहम्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२७

गणनाथपराक्रम वर्णन

इसके बाद अपने पुत्रों को नष्ट हो जाने पर वह दैत्यराज भण्ड शोकाग्नि से युक्त होकर अपने कुल का समूल नाश मानकर विलाप करने लगा।।१।। वह विलाप करते हुए कह रहा था कि हाय मेरे उदार गुणों वाले, मेरी आज्ञा को मानने वाले, मेरी ही सेवा में रहने वाले, हाय मेरे नेत्रों को अमृत से भरने वाले, हाय मेरे कुल को बढ़ाने वाले, हाय समस्त श्रेष्ठ देवों के घमण्ड को चूर करने वाले, हाय समस्त देवाङ्गनाओं के अन्तर्हृदय एवं मन को वश में करने वाले, कामदेव मेरे पुत्रो! मेरी गोद में कूदकूद कर बातें करो कि क्यों इस समय इस अपने पिता को छोड़कर सुखपूर्वक चले गये।।२-४।। हे पुत्रो! तुम्हारे विना अब यह मेरा राज्य शोभित नहीं हो रहा है। आज मेरा घर खाली हो गया और मेरी राज्यसभा भी खाली हो गयी।।५।।

इस प्रकार कैसे एक साथ सभी के सभी दुराशय तुम सब मारे गये, जिनके भुजबल को कोई भी नहीं परास्त कर सकता था, उन मेरे कुल के अंकुर! तुम सबको युद्ध में एक दुष्ट स्त्री ने कैसे मार दिया?।।६।। अब तो मेरे समस्त सुख नष्ट हो गये तथा मेरी कुल की स्त्रियां भी पतिविहीन होकर नष्ट हो गयीं। यहाँ से आगे नष्ट कुल में साहस और सुख कहाँ है।।७।। आपके पुण्यकर्मों से तथा अपने पूर्वजन्म के कर्मों से हमने सव कुछ पाया, अब आपका नाश हो गया, तो फिर मैं भी नष्ट हो गया हूँ।।८।।

हा हतोऽस्मि विपन्नोऽस्मि मंदभाग्योऽस्मि पुत्रकाः।
इति शोकात्स पर्यस्यन्प्रलयन्मुक्तमूर्धजः।
मूर्च्छया लुप्तहृदयो निष्पपात नृपासनात्॥९॥
विशुक्रश्च विषंगश्च कुटिलाक्षश्च संसदि। भंडमाश्वासयामासुर्दैवस्य कुटिलक्रमैः॥१०॥

विशुक्र उवाच

देव किं प्राकृत इव प्राप्तः शोकस्य वश्यताम्। लपसि त्वं प्रति सुतान्प्राप्तमृत्यून्महाहवे॥११॥
धर्मवान्विहितः पंथा वीरणामेष शाश्वतः। अशोच्यमाहवे मृत्युं प्राप्नुवंति यदर्हितम्॥१२॥
एतदेव विनाशाय शल्यवद्बाधते मनः। यत्स्त्री समागत्य हठान्नि हंति सुभटान्रणे॥१३॥
इत्युक्ते तेन दैत्येन पुत्रशोको व्यमुच्यत। भंडेन चंडकालाग्निसदृशः क्रोध आदधे॥१४॥
स क्रोशात्क्षिप्रमुद्धृत्य खड्गमुग्रं यमोपमम्। विस्फारिताक्षियुगलो भृशं जज्वाल तेजसा॥१५॥
इदानीमेव तां दुष्टां खड्गेनानेन खंडशः। शकलीकृत्य समरे श्रमं प्राप्स्यामि बंधुभिः॥१६॥
इति रोषस्खलद्वर्णः श्वसन्निव भुजगमः। खड्गं विधुन्वन्नुत्थाय प्रचचालातिमत्तवत्॥१७॥
तं निरुध्य चं संभ्राताः सर्वे दानवपुंगवाः। वाचमूचुरतिक्रोधाज्ज्वलंतो ललितां प्रति॥१८॥
न तदर्थे त्वया कार्यः स्वामिन्संभ्रम ईदृशः। अस्माभिः स्वबलैर्युक्तै रणोत्साहो विधीयते॥१९॥

हाय पुत्रो! मैं मरा हुआ हूँ, मैं विशेष दुःखी हूँ, मैं मन्दभाग्य हूँ। इस प्रकार अत्यन्त शोकाकुल वह दैत्यराज भण्ड अपने केश बखेर कर विलाप करता हुआ मूर्च्छित होकर राजसिंहासन से नीचे गिर गया।।९।। तब विशुक्र, विषंग और कुटिलाक्ष ने संसद में भण्डासुर को समझाया कि हे राजन्! यह तो हम सबके भाग्य की कुटिल चाल है, अब हम लोगों के बुरे दिन आ गये हैं।।१०।।

विशुक्र ने कहा कि हे राजन्! प्रकृति से प्राप्त के समान शोक को वश में कीजिये। महायुद्ध में मृत्यु को प्राप्त पुत्रों से आप क्या विलाप कर रहे हैं? धर्मवालों ने वीरों का यही शास्वत मार्ग बताया है। वीर लोग युद्ध में सम्मानित और अशोचनीय मृत्यु प्राप्त करते हैं, उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये; अपितु गर्व करना चाहिये कि हमारे पुत्रों ने युद्ध में लड़ते हुए स्वर्ग को प्राप्त किया।।११-१२।। अतः हे राजन् यहाँ शोक नहीं करना, वरन् यह सोचना है कि इस विनाश के लिये हमारा मन बाण के समान बाधित हो रहा है कि एक स्त्री बलपूर्वक हमारे अत्यन्त बलशाली योद्धाओं को रण में मार रही है।।१३।। इस प्रकार उन मन्त्रियों के कहने पर भण्डासुर ने पुत्रशोक को छोड़ दिया और फिर उन दैत्यराज भण्ड ने क्रोध से प्रलयकाल की अग्नि के समान क्रोध को धारण कर लिया।।१४।। तब वह भण्डासुर क्रोधपूर्वक शीघ्र उठकर यमराज के समान खड्ग को हाथ में लेकर अपनी दोनों आँखों को फाड़कर अत्यधिक तेज से जलने लगे।।१५।। और कहने लगे कि इसी समय ही मैं उस दुष्टा को इस खड्ग से खण्ड-खण्ड करके युद्ध में बन्धुओं का बदला लूँगा।।१६।। इस प्रकार क्रोध से स्खलत् वर्ण वाला सर्प की भाँति साँस लेता हुआ वह भण्ड तलवार को चमकाते हुए उठाकर पागल की तरह चल पड़ा।।१७।। तब सभी सम्भ्रान्त दानव श्रेष्ठों ने ललिता देवी के प्रति अत्यन्त क्रोध से जलते हुए उस भण्डासुर को रोककर यह वचन कहा।।१८।। कि हे राजन्! उसके लिये आपको अभी ऐसा कुछ नहीं करना है, अभी तो हम सबका अपनी सेनाओं के साथ साहस दिखाया जाना

भवदाज्ञालवं प्राप्य समस्तभुवनं हठात्।
विमर्द्दयितुमीशाः स्मः किमु तां मुग्धभामिनीम्॥२०॥
किं चूषयामः सप्ताब्धीन्क्षोदयामोऽथ वा गिरीन्। अधरोत्तरमेवैतत्त्रैलोक्यं करवाम वा॥२१॥
छिनदाम सुरान्सर्वान्भिनदाम तदालयान्। पिनषाम हरित्पालानाज्ञां देहि महामते॥२२॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य महाहंकारगर्वितम्। उवाच वचनं क्रुद्धः प्रतिघारुणलोचनः॥२३॥
विशुक्र भवता गत्वा मायांतर्हितवर्ष्मणा। जयविघ्नं महायंत्रं कर्त्तव्यं कटके द्विषाम्॥२४॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा विशुक्रो रोपरूपितः। मायातिरोहितवपुर्जगाम ललिताबलम्॥२५॥
तस्मिन्प्रयातुमुद्युक्ते सूर्योऽस्तं समुपागतः। पर्यस्तकिरणस्तोमपाटलीकृतदिङ्मुखः॥२६॥
अनुरागवती संध्या प्रयांतं भानुमालिनम्। अनुवव्राज पातालकुंजे रंतुमिवोत्सुका॥२७॥
वेगात्प्रपततो भानोर्देहसंगात्समुत्थिताः। चरमाब्धेरिव पयःकणास्तारा विरेजिरे॥२८॥
अथाससाद बहुलं तमः कज्जलमेचकम्। सार्थं कर्त्तुमिवोद्युक्तं सवर्णस्यासिदुर्धिया॥२९॥
मायारथं समारूढो गूढशार्वरसंवृतः। अदृश्यवपुरापेदे ललिताकटकं खलः॥३०॥
तत्र गत्वा ज्वलज्ज्वालं वह्निप्राकारमंडलम्। शतयोजनविस्तारमालोकयत दुर्मतिः॥३१॥
परितो विभ्रमञ्शालमवकाशमवाप्नुवन्। दक्षिणं द्वारमासाद्य निदध्यौ क्षणमुद्धतः॥३२॥

है।।१९।। आपकी आज्ञा के लेशमात्र को प्राप्तकर अभी हम समस्त त्रिलोकी का मर्दन करने में समर्थ हैं। उस भोली भाली स्त्री के बारे में क्या सोचना।।२०।। आप कहें तो क्या हम सात समुद्रों को पी जायें अथवा पर्वतों को काट डालें। क्या त्रिलोकी को धरारहित कर डाले? क्या सब देवों को काट डालें? क्या उनके घरों को फोड़ डालें अथवा क्या दिशाओं का पालक दिक्पालों को पीस डाले? अतः हे महामते! हमें आज्ञा दीजिये, हम कुछ भी कर दिखा सकते हैं।।२१-२२।। अहंकार गर्वित इस वचन को सुनकर क्रोधित और प्रतिशोध की भावना से लाल लाल आँखों वाला वह भण्डासुर विशुक्र से बोला कि विशुक्र तुम माया से अपने शरीर को छिपाते हुए जाकर शत्रुओं की सेना में उनकी जीत में विघ्न डालने वाले महायन्त्र का प्रयोग करना।।२३-२४।। इस प्रकार भण्डासुर के वचन को सुनकर क्रोध से रूषित विशुक्र माया से अत्यन्त ढके हुए शरीर से ललिता देवी की सेना में पहुँचा।।२५।। जैसे कि वह जाने को तैयार हुआ कि तब तक सूर्यास्त भी समुपस्थित हो गया। चारों ओर सूर्य की किरणें छिप गयीं और समस्त दिग्मण्डल लाल हो गया।।२६।। प्रेम करने वाली सन्ध्या जाने वाले अपने प्रेमी सूर्य के साथ पाताल की झाड़ियों में रमण करने की बलवती इच्छा रखती हुई, उनके पीछे पीछे चली गयी।।२७।।

जैसे ही सूर्य वेगपूर्वक गिरे तो दिन में तारागण रूपी स्त्रियाँ उनके शरीर से लिपटी हुई थीं, वे चरम समुद्र में जल कण के समान आकाश में सुशोभित होने लगी।।२८।। इसके बाद काजल समूह के समान बहुत घना अन्धकार छा गया, वह ऐसा लगता था, मानों कि वह अंधकार उस दुर्बुद्धि विशुक्र दानव का साथ देने के लिये उसके ही वर्ण के रूप में आ गया हो।।२९।। वह दुष्ट दानव विशुक्र मायारथ पर सवार होकर गूढ रात्रि से ढका हुआ अदृश्य शरीर होकर ललिता देवी की सेना में आ गया।।३०।। वहाँ जाकर उस दुर्बुद्धि ने जलती हुई ज्वाला वाले सौ योजन विस्तार वाले वह्निप्राकारमण्डल (आग की चहारदीवार) को देखा।।३१।। चारों ओर घूमते हुए कहीं भी

तत्रापश्यन्महासत्त्वास्सावधाना धृतायुधाः। आरूढयानाः संनद्धवर्माणो द्वारदेशतः॥३३॥
स्तंभिनीप्रमुखाः शक्तीर्विंशत्यक्षौहिणीयुताः। सर्वदा द्वाररक्षार्थं निर्दिष्टा दंडनाथया॥३४॥
विलोक्य विस्मयाविष्टो विचार्य च चिरं तदा।
शालस्य बहिरेवासौ स्थित्वा यंत्र समातनोत्॥३५॥
गव्यूतिमात्रकायामे तत्समानप्रविस्तरे। शिलापट्टे सुमहति प्रालिखद्यंत्रमुत्तमम्॥३६॥
अष्टदिक्ष्वष्टशूलेन संहाराक्षरमौलिना। अष्टभिर्दैवतैश्चैव युक्तं यंत्रं समालिखत्॥३७॥
अलसा कृपणा दीना नितंद्राच प्रमीलिका।
क्लीबा च निरहंकारा चेत्यष्टो देवताः स्मृताः॥३८॥
देवताष्टकमेतच्च शूलाष्टकपुटोपरि। नियोज्य लिखितं यंत्रं मायावी सममंत्रयत्॥३९॥
पूजां विधाय मंत्रस्य बलिभिश्छागलादिभिः। तद्यन्त्रं चारिकटके प्राक्षिपत्समरेऽसुरः॥४०॥
प्राकारस्य बहिर्भागे वर्तिना तेन दुर्धिया। क्षिप्तमुल्लंघ्य च रणे पपात कटकांतरे॥४१॥
तद्यंत्रस्य विकारेण कटकस्थास्तु शक्तयः। विमुक्तशस्त्रसंन्यासमास्थिता दीनमानसाः॥४२॥
किं हतैरसुरैः कार्यं शस्त्राशस्त्रिक्रमैरलम्। जयसिद्धफलं किं वा प्राणिहिंसा च पापदा॥४३॥
अमराणां कृते कोऽयं किमस्माकं भविष्यति।
वृथा कलकलं कृत्वा न फलं युद्धकर्मणा॥४४॥

घुसने के लिये जब उसे स्थान नहीं मिला तो वह उद्धत विशुक्र दक्षिण द्वार को प्राप्त कर अन्दर घुस गया।।३२।। वहाँ पर उसने आयुध धारण किये अपने अपने यान पर चढ़ी हुई, शरीर पर कवच पहने हुए महापराक्रमवाली शक्तियों को द्वार पर खड़े हुए देखा।।३३।। क्योंकि दण्डनाथा देवी ने सर्वदा द्वार की रक्षा के लिये बीस अक्षौहिणी सेना से युक्त स्तम्भिनी प्रमुख शक्तियों को पहले ही तैनात कर दिया था।।३४।। यह देख करके विशुक्र को आश्चर्य हुआ और फिर उसने बहुत देर तक विचार करके चहारदीवार के बाहर ही स्थित होकर यन्त्र को चला दिया।।३५।। गव्यूति (चार कोश) आयाम (क्षेत्रफल) में उसके समान ही विस्तार वाले अत्यन्त महान् शिलापट्ट पर उस उत्तम यन्त्र को लिख दिया।।३६।। आठ दिशाओं में संहार करने वाले मूल अक्षरों वाले आठ शूल से तथा आठ देवताओं से युक्त यन्त्र को अच्छी तरह लिख दिया।।३७।। अलसा, कृपणा, दीना, नितन्द्रा, प्रभीलिका, क्लीबा और निरहंकारा ये आठ देवता कही गयी हैं।।३८।। और ये आठ देवता आठ शूलों के फाल (धार) के ऊपर नियोजित करके यन्त्र लिखकर मायावी ने सम्यक् प्रकार से अभिमन्त्रित कर दिया।।३९।। और फिर मन्त्र की पूजा करके बकरे आदि की बलियां देकर उस यन्त्र को उस असुर ने युद्ध में पहरा देने वाली सेना पर छोड़ दिया।।४०।।

उस आग की चहारदीवार के बाहरी भाग में उपस्थित दुर्बुद्धि ने युद्धस्थल में ऊँचा फेंककर शक्ति सेना के ठीक बीच में गिरा दिया।।४१।। उस यन्त्र के विकार से शक्ति सेना में स्थित जो शक्तियां थीं वे शस्त्र को छोड़कर दीन मन होकर बैठ गयीं।।४२।। अब वे शक्तियां कहने लगीं कि अब असुरों को मारने वाले शस्त्र-अस्त्रों को चलाने से क्या लाभ है? यह सब बन्द करो। जीत करके क्या फल मिलेगा; क्योंकि प्राणियों की हिंसा पाप देने वाली है।।४३।। देवताओं के लिये युद्ध करने से हमारा क्या लाभ होगा? व्यर्थ कलकल करके युद्ध करने से कोई फल

का स्वामिनी महाराज्ञी का वा सौ दण्डनायिका।
का वा सा मंत्रिणी श्यामा भृत्यत्वं नोऽथ कीदृशम्।।४५।।
इह सर्वाभिरस्माभिर्भृत्यभूताभिरेकिका। वनिता स्वामिनीकृत्ये किं फलं मोक्ष्यते परम्।।४६।।
परेषां मर्मभिदुरैरायुधैर्न प्रयोजनम्। युद्धं शाम्यतु चास्माकं देहशस्त्रक्षतिप्रदम्।।४७।।
युद्धे च मरणं भावि वृथा स्युर्जीवितानि नः। युद्धे मृत्युर्भवेदेव इति तत्र प्रमैवैका।।४८।।
उत्साहेन फलं नास्ति निद्रैवैका सुखावहा। आलस्यसदृशं नास्ति चित्तविश्रांतिदायकम्।।४९।।
एतादृशीश्च नो ज्ञात्वा सा राज्ञी किं करिष्यति।
तस्या राज्ञीत्वमपि नः समवायेन कल्पितम्।।५०।।
एवं चोपेक्षितास्माभिः सा विनष्टबला भवेत्।
नष्ट सत्त्वा च सा राज्ञी कान्नः शिक्षां करिष्यति।।५१।।
एवमेव रणरंभं विमुच्य विधुतायुधाः। शक्तयो निद्रया द्वारे घूर्णमाना इवाभवन्।।५२।।
सर्वत्र मांद्यं कार्येषु महदालस्यमागतम्। शिथिलं चाभवत्सर्वं शक्तीनां कटकं महत्।।५३।।
जयविघ्नं महायंत्रमितिकृत्वा स दानवः।।५४।।
निर्विद्य तत्प्रभावेण कटकं प्रमिमंथिषुः। द्वितीययुद्धदिवसस्यार्धरात्रे गते सति।।५५।।
निस्सृत्य नगराद्भूयस्त्रिंदक्षौहिणीवृतः। आजगाम पुनर्दैत्यो विशुक्रः कटकं द्विषाम्।।५६।।

नहीं प्राप्त होगा।।४४।। वे स्वामिनी महाराज्ञी ललिता कौंन हैं? अथवा वह दण्डनायिका कौंन होती है अथवा वह मन्त्रिणी श्याम कौंन होती है? वे हमारा क्या कर लेंगीं? अरे हमारा तो मृत्युत्व है? हमें क्या मिलेगा (कोई हो भूप हमें क्या हानी, चेरी से क्या हो जाय रानी)।।४५।। यहाँ तो हम सभी सेविका हैं, एक स्वामिनी के लिये हम मरें तो हमको क्या फल मिलेगा?।।४६।। दूसरों के शरीरों को विदीर्ण कर देने वाले शस्त्रास्त्रों से अब हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। अब हमारा यह शरीर और शस्त्र का नाश करने वाला युद्ध शान्त होवे।।४७।। जब युद्ध में मरना ही है, तब हमारा जीना ही व्यर्थ है तथा युद्ध में तो मृत्यु होगी ही। अतः इसमें प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है?।।४८।। अब उत्साह दिखाने से कोई फल नहीं मिलना है। अब तो एक नींद ही सुख देने वाली है। आलस्य के समान चित्त को विश्राम देने वाली अन्य कोई वस्तु नहीं है।।४९।। तब किसी ने कहा होगा कि ऐसा देखकर महाराज्ञी नाराज होंगी, इस पर शक्तियां कहती हैं कि हमको ऐसी अवस्था में देखकर महाराज्ञी क्या कर लेंगी? उनका महाराज्ञी होना तो हम सबके संगठन पर ही निर्भर है, हम सबने ही तो उनको महाराज्ञी बनाया है।।५०।।

इस प्रकार जब हम उस महाराज्ञी की उपेक्षा कर देगीं, तो वे नष्ट शक्ति हो जायेंगी तथा जब नष्ट सेना, नष्ट शक्ति वाली हो जायेंगी, तो फिर वे महाराज्ञी हम सबको क्या शिक्षा देंगी? वे क्या हमारे ऊपर शासन करेंगी?।।५१।। इस प्रकार अपने आयुधों को छोड़कर युद्ध आरम्भ करना छोड़कर शक्तियां द्वार पर निद्रा से झींकती हुई के समान हो गयीं।।५२।। और सर्वत्र कार्यों में मन्दता आ गयी और महान् आलस्य आ गया और इस प्रकार शक्तियों का समस्त सैन्यदल शिथिल हो गया।।५३।। जब विघ्न नामक इस महायन्त्र का प्रयोग करके उस दानव ने उस यन्त्र के प्रभाव से शक्ति सेना का प्रमथन कर दिया।।५४।। अब द्वितीय युद्ध दिवस की आधी रात बीत जाने पर तीस अक्षौहिणी सेना से घिरा हुआ वह दैत्य विशुक्र नगर से निकल कर शत्रुओं की सेना में आ गया।।५५-५६।।

अश्रूयंत ततस्तस्य रणनिःसाणनिस्वनाः।
तथापि ता निरुद्योगाः शक्तयः कटकेऽभवन्।।५७।।
तदा महानुभावत्वाद्विकारैर्विघ्नयंत्रजैः। अस्पृष्टे मंत्रिणीदंडनाथे चिंतामवापतुः।।५८।।
अहो बत महत्कष्टमिदमापतितं भयम्। कस्य वाथ विकारेण सैनिका निर्गतोद्यमाः।।५९।।
निरस्तायुधसंरंभा निद्रातंद्राविघूर्णिताः। न मानयंति वाक्यानि नार्चयंति महेश्वरीम्।
औदासीन्यं वितन्वंति शक्तयो निस्पृहा इमाः।।६०।।
इति ते मंत्रिणीदंडनाथे चिंतापरायणे। चक्रस्यंदनमारूढे महाराज्ञीं समूचतुः।।६१।।

मंत्रिण्युवाच

देवि कस्य विकारोऽयं शक्तयो विगतोद्यमाः।
न श्रृण्वंति महाराज्ञि तवाज्ञां विश्वपालिताम्।।६२।।
अन्योन्यं च विरक्तास्ताः पराच्यः सर्वकर्मसु। निद्रातन्द्रामुकुलिता दुर्वाक्यानि वितन्वते।।६३।।
का दंडनी मंत्रिणी का महाराज्ञीति का पुनः। युद्धं च कीदृशमिति क्षेपं भूमि वितन्वते।।६४।।
अस्मिन्नेवांतरे शत्रुरागच्छति महाबलः। उद्दंडभेरीनिस्वानैर्विभिदन्निव रोदसी।।६५।।
अत्र यत्प्राप्तरूपं तन्महाराज्ञि प्रपद्यताम्। इत्युक्त्वा सह दंडिन्या मंत्रिणी प्रणतिं व्यधात्।।६६।।
ततः सा ललिता देवी कामेश्वरमुखं प्रति। दत्तदृष्टिः समहसदतिरक्तरदावलिः।।६७।।

उसके बाद उस विशुक्र की सेना की युद्ध हेतु कूंच करने की घोर रणभेरी की घोर ध्वनि हुई और उस ध्वनि को शक्ति सेना ने सुना, फिर भी वे शक्तियां सेना में निरुद्योग हो गयी। उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।।५७।। जयविघ्न यन्त्र में विकार को प्राप्त हुई सेना को समझकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा को घोर चिन्ता हुई।।५८।। वे कहने लगी कि अरे यह तो असमय में महाकष्ट और भय आ उपस्थित हुआ। किसके विकार से हमारे सैनिक निरुद्योग हो गये हैं।।५९।। उन्होंने अपने अपने आयुध छोड़ दिये हैं तथा निद्रा और आलस्य से ओंघ रहे हैं, वे आदेश के वाक्यों को नहीं मान रहे। माहेश्वरी की पूजा नहीं कर रहे हैं। इस समय शक्तियां निस्पृह और उदासीन हो गयी हैं।।६०।। इस प्रकार मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों चिन्तायुक्त होकर चक्ररथ पर आरूढ होकर महाराज्ञी श्री ललिता के पास पहुँची और उनसे जाकर सब कह दिया।।६१।।

मन्त्रिणी देवी ने श्री ललितेश्वरी से कहा कि हे देवि! यह किसका विकार है कि सब शक्ति उद्यम विहीन हो गयी हैं। हे महाराज्ञी! इस समय वे विश्व को पालन करने वाली आपकी आज्ञा का भी पालन नहीं कर रही हैं।।६२।। इस समय वे एक दूसरे से अलग होकर सब कार्यों में दूसरे की अर्चना कर रही हैं तथा नींद और आलस्य से मुकुलित होकर बुरे बुरे वाक्य बोल रही हैं।।६३।। कि कौंन दण्डिनी है? कौंन मन्त्रिणी? और कौंन महाराज्ञी श्री ललिता? तथा वे हमारा क्या कर लेंगी? तथा कैसा युद्ध? किसके लिये? वे ऐसा कह रही थीं कि इसी बीच में महासेना लेकर शत्रु आ गया और वह उद्दण्ड समान रणभेरी की आकाश और पृथ्वी का भेदन करने के समय ध्वनि कर रहा है।।६४-६५।। हे महाराज्ञि! यहाँ पर जो हमने सेना का रूप पाया, सो हमने बता दिया। इस प्रकार कह कर मन्त्रिणी ने दण्डनाथा के साथ महाराज्ञी को प्रणाम किया।।६६।। उसके बाद कामेश्वर के मुख की ओर दृष्टि डालती हुई लाल अधरों से युक्त दन्तपंक्ति के साथ हँसने लगीं।।६७।।

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुंजराकृतिमान्मुखे। कटक्रोडगलद्दानः कश्चिदेव व्यजृंभत॥६८॥
जपापटलपाटल्यो बालचन्द्रवपुर्धरः। बीजपूरगदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम्॥६९॥
अब्जपाशोत्पलव्रीहिमंजरीवरदांकुशान्। रत्नकुंभं च दशभिः स्वकैर्हस्तैः समुद्वहन्॥७०॥
तुंदिलश्चन्द्रचूडालो मंद्रबृंहितनिस्वनः। सिद्धिलक्ष्मीसमाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम्॥७१॥
तया कृताशीः स महान्गणनाथो गजाननः। जयविघ्नमहायंत्रं भेत्तुं वेगाद्विनिर्ययौ॥७२॥
अंतरेव हि शालस्य भ्रमद्दन्तावलाननः। निभृतं कुत्रचिल्लग्नं जयविघ्नं व्यलोकयत्॥७३॥
स देवो घोरानिर्घातैर्दुःसहैर्दंतपातनैः। क्षणाच्चूर्णीकरोति स्म जयविघ्नमहाशिलाम्॥७४॥
तत्र स्थिताभिर्दुष्टाभिर्देवताभिः सहैव सः। परागशेषतां नीत्वा तद्यंत्रं प्रक्षिपद्दिवि॥७५॥
ततः किलकिलारावं कृत्वाऽऽलस्यविवर्जिताः।
उद्यताः समरं कर्तुं शक्तयः शस्त्रपाणयः॥७६॥
स दंतिवदनः कंठकलिताकुण्ठनिस्वनः। जययंत्रं हि तत्सृष्टं तथा रात्रौ व्याशयत्॥७७॥
इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भंडः स क्षोभमाययौ। ससर्ज य बहूनात्मरूपान्दंतावलाननान्॥७८॥
ते कटक्रोडविगलन्मदसौरभचञ्चलैः। चञ्चरीककुलैरग्रे गीयमानमहोदयाः॥७९॥
स्फुरद्दाडिमकिंजल्कविक्षेपकररोचिषः। सदा रत्नाकरानेकहेलया पातुमुद्यताः॥८०॥

तब उनके मुस्कराहट की कान्तिसमूह वाला मुख में से जंभाई लेते समय हाथी के आकृति वाला कोई देव निकला, जिसके गण्डस्थल मध्य भाग से मद बह रहा था, जो जपा के पुष्प के समान लाल वर्ण वाला तथा बालचन्द्रमा के समान शरीर को धारण करने वाला था तथा वह दश हाथों वाला था तथा अपने दशों हाथों में बीजपूर (बिजौरा नीबू) गदा, इक्षु (ऊख), धनुष, शूल, सुदर्शन, कमल, पाश, नीलकमल, जौ की मंजरी, अंकुश और रत्नकुम्भ धारण किये हुए था।।६८-७०।। वह देव बड़े पेटवाला था तथा चोटी में चन्द्रमा धारण किये हुए था तथा उसकी आवाज हुंकार बहुत गम्भीर और बढ़ी हुई थी। वह सफलता रूपी लक्ष्मी उसका आलिंगन किये हुए थी इस प्रकार के गुणों से युक्त उस हाथी के मुख वाले देव ने महेश्वरी ललिता देवी को प्रणाम किया।।७१।।

तब उन ललितेश्वरी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त कर वे गणों के स्वामी (गणनाथ) गजानन जयविघ्ननामक महायन्त्र को काटने के लिये वेगपूर्वक चल पड़े।।७२।। उस शिविर के अन्दर घूमते हुए एकदन्त वाले गजानन ने कहीं पर लगे हुए जयविघ्न नामक यन्त्र को देखा।।७३।। तो उन देव ने घोर असहनीय चिंघाड़ से और दन्तपात से जयविघ्न नामक महाशिला को क्षण भर में चूर-चूर कर दिया।।७४।। वहीं पर स्थित दुष्ट देवताओं के साथ ही उन्होंने उस महाशिला यन्त्र की धूल बनाकर उसे आकाश में फेंक दिया।।७५।। उसके किल किल की ध्वनि करती हुई शक्तियां आलस्य को छोड़कर हाथों में शस्त्र धारण कर युद्ध करने को तैयार हो गयीं।।७६।। तब उस हाथी के वदन वाले देव (गणेश) जी ने कण्ठ के निकले हुए कुण्ठ शब्द से जिस जययन्त्र को बनाया था, उसको विनष्ट कर दिया।७७।। इस वृत्तान्त को सुनकर भण्डासुर अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुआ और फिर गजानन ने बहुत से अपने रूप वाले हाथियों को उत्पन्न कर दिया।।७८।। वे सब हाथी भी उसी प्रकार के थे, उनके भी गण्डस्थल की बीच में मद बह रहा था, जिसकी सुगन्ध से चञ्चल भौंरे गीत गा रहे थे।।७९।। उनके शरीर से खिले हुए अनार के जल को फेंकने वाली किरणें निकल रही थीं। वे सब हाथी समुद्रों को एक घूँट में ही पीने को तैयार थे।।८०।।

आमोदप्रमुखा ऋद्धिमुख्यशक्तिनिषेविताः। आमोदश्च प्रमोदश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा॥८१॥
अरिघ्नो विघ्नकर्त्ता च षडेते विघ्ननायकाः। ते सप्तकोटिसंख्यानां हेरंबाणामधीश्वराः॥८२॥
ते पुरश्चलितास्तस्य महागणपते रणे। अग्निप्राकारवलयाद्विनिर्गत्य गजाननाः॥८३॥
क्रोधहुंकारतुमुलाः प्रत्यपद्यंत दानवान्। पुनः प्रचंडफूत्कारबधिरीकृतविष्टपाः॥८४॥
पपात दैत्यसैन्येषु गणचक्रचमूगणः। अच्छिदन्निशितैर्बाणैर्गणनाथः स दानवान्॥८५॥
गणनाथेन तस्याभूद्विशुक्रस्य महौजसः। युद्धमुद्धतहुंकारभिन्नकार्मुकनिःस्वनम्॥८६॥
भ्रुकुटी कुटिले चक्रे दष्टोष्ठमतिपाटलम्। विशुक्रो युधि बिभ्राणः समयुध्यत तेन सः॥८७॥
शस्त्राघट्टननिस्वानैर्हुंकारैश्च सुरद्विषाम्। दैत्यसप्तिखुरक्रीडत्कुद्दालीकूटनिस्वनैः॥८८॥
फेत्कारैश्च गजेंद्राणां भयेनाक्रंदनैरपि। हेषया च हयश्रेण्या रथचक्रस्वनैरपि॥८९॥
धनुषां गुणनिस्स्वानेश्चक्रचीत्करणैरपि॥९०॥
शरसात्कारघोषैश्च वीरभाषाकदंबकैः। अट्टहासैर्महेंद्राणां सिंहनादैश्चभूरिशः॥९१॥
क्षुभ्यद्दिगंतरं तत्र ववृधे युद्धमुद्धतम्। त्रिंशदक्षौहिणी सेना विशुक्रस्य दुरात्मनः॥९२॥
प्रत्येकं योधयामासुर्गणाथा महारथाः। दन्तैर्मर्म विभिंदतो वेष्टंयतश्च शुंडया॥९३॥
क्रोधयंतः कर्णतालैः पुष्कलावर्त्तकोपमैः। नासाश्वासैश्च परुषैर्विक्षिपंतः पताकिनीम्॥९४॥

वे सब आमोद प्रमुख ऋद्धि नामक मुख्य शक्ति से निषेवित थे। उनके नाम हैं—आमोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, अरिघ्न, विघ्नकर्ता। इस प्रकार ये छः विघ्ननायक हैं। वे सात करोड़ संख्या वाली हेरम्बाओं के अधीश्वर हैं।।८१-८२।। वे सभी गजानन महागणपति के साथ युद्ध में गणपति से आगे चलते हैं। अतः वे सभी गजानन आग की चहारदीवारी से निकलकर क्रोध से हुंकार वाली घोर ध्वनि कोलाहल मचाते हुए दानवों पर टूट पड़े। पुनः प्रचण्ड फूत्कार ध्वनि से दिशाओं को वधिर (वहरा) बनाते हुये गणचक्र का सैन्यसमूह दैत्य के सैन्यसमूह पर टूट पड़ा। उन गणनाथ ने अपने तीक्ष्ण वाणों से दानवों के शरीरों को छलनी कर दिया।।८३-८५।। गणनाथ के साथ उस महाक्रमी विशुक्र का उद्धत हुंकार भिन्न धनुष की ध्वनि वाला युद्ध हुआ।।८६।। टेढ़ी भौंहे किये हुये चक्र पर कटे हुए लाल ओष्ठ को धारण करता हुआ वह विशुक्र युद्ध में गणनाथ के साथ लड़ रहा था।।८७।।

शस्त्रों के आपस में टकराने से, असुरों की हुंकारों से, दैत्यों के घोड़ों के खुर में लगे नालों की आवाजों से, गजराजों (हाथियों) के फेत्कारों से, भय से चिल्लाते हुए असुरादियों की आवाजों से, घोड़ों की हिनहिनाहटों से, रथों की चरचर ध्वनियों से, धनुष की प्रत्यञ्चाओं की टंकारों से, चक्र की चीत्कारों से, बाणों के घोषों से, वीरों की भाषा बोलने वाले समूहों के अट्टहासों और महेन्द्रों के सिंहनादों से दिग् दिगन्तरों (दिशाओं) को क्षुब्ध करते हुए विशुक्र की तीस अक्षौहिणी सेना ने वहाँ भीषण युद्ध को बढ़ा दिया।।८८-९२।। उन गणनाथ महारथियों ने प्रत्येक असुर के साथ युद्ध किया, उस युद्ध में गजरूप महारथियों ने कुछ के शरीरों को दाँतों से फाड़ दिया, कुछ को अपनी सूँड़ से लपेट कर मार दिया, कुछ को क्रोध करते हुए प्रलय कालीन पुष्कर और आवर्तक मेघों के समान कर्णतालों (कानों के प्रहारों) द्वारा मार गिराया, अपनी सूड़ों के कठोर श्वासों से ध्वजाओं को फाड़ते हुए, पर्वतों को उखाड़ने की क्रिया (वप्रक्रिया) के समान असुरों की छातियों को फाड़ते हुए, कुछ को अपने मोटे मोटे पैरों के आघातों से मोटे पेट वाले

उरोभिर्मर्दयंतश्च शैलवप्रसमप्रभैः। पिपंतश्च पदाघातैः पीनैर्घ्नंतस्तथोदरैः॥९५॥
विभिंदतश्च शूलेन कृत्तंतश्चक्रपातनैः। शंखस्वनेन महता त्रासयंतो वरूथिनीम्॥९६॥
गणनाथमुखोद्भूता गजवक्त्राः सहस्रशः धूलीशेषं समस्तं तत्सैन्यं चक्रुर्महोद्यताः॥९७॥
अथ क्रोधसमाविष्टो निजसैन्यपुरोगमः। प्रेषयामास देवस्य गजासुरमसौ पुनः॥९८॥
प्रचंडसिंहनादेन गजदैत्येन दुर्धिया। सप्ताक्षौहिणीयुक्तेन युयुधे स गणेश्वरः॥९९॥
हीयमानं समालोक्य गजासुरभुजाबलम्। वर्धमानं च तद्वीर्यं विशुक्रः प्रपलायितः॥१००॥
स एक एव वीरेंद्रः प्रचलन्नासुवाहनः। सप्ताक्षौहिणीकायुक्तं गजासुरममर्दयत्॥१०१॥
गजासुरे च निहते विशुक्रे प्रपलायिते। ललितांतिकमापेदे महागणपतिर्मृधात्॥१०२॥

कालरात्रिश्च दैत्यानां सा रात्रिर्विरतिं गता।
ललिता चाति मुदिता बभूवास्य पराक्रमैः॥१०३॥

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः। सर्वदैवतपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम्॥१०४॥

इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने गणनाथपराक्रमो नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

असुरों को पीसते हुए तथा शूल से भेदन करते हुए चक्रों से काटते हुए एवं शंख की महान् ध्वनि से सेना को डराते हुए, गणनाथ महारथियों ने प्रत्येक असुर के साथ युद्ध किया।।९३-९६।। उस समय उन गणनाथ के मुख से हजारों हाथी के मुख वाले देव निकल रहे थे, उन महोद्यत गजाननों ने असुरों की समस्त सेना को धूल में मिला दिया।।९७।। इसके बाद क्रोध से समाविष्ट विशुक्र सेनापति ने पुनः उन गणनाथ के सामने गजासुर को भेजा।।९८।। तब गणेश्वर ने सात अक्षौहिणी सेना से युक्त उस दुर्बुद्धि गजदैत्य के साथ युद्ध किया।।९९।। गजासुर के भुज बल को कम होता हुआ देखकर और गणेश्वर की वीरता को बढ़ता हुआ देखकर विशुक्र सेनापति भाग गया।।१००।। वहाँ अकेले वीरों में इन्द्र गणेश्वर ने चूहे पर सवार होकर सात अक्षौहिणी सेना से युक्त गजासुर को मार डाला।।१०१।। गजासुर के मर जाने पर और विशुक्र के भाग जाने पर महागण पति महाराज्ञी ललिता के पास पहुँच गये।।१०२।। और दैत्यों की वह कालरात्रि थी, जो विना रति (प्रेम) के बीत गयी अर्थात् दुःख में बीत गयी और ललिता देवी अपने उस गणेश्वर के पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुईं।।१०३।। और तब ललिता महाराज्ञी ने प्रसन्न होते हुए उन गणेश्वर को सब देवताओं की पूजा से पहले पूजा किये जाने का उत्तम वरदान दिया। इसीलिये सब देवों की पूजा से पहले गणेश की पूजा आज भी की जाती है।।१०४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २७वाँ अध्याय गणनाथपराक्रम वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

विशुक्र विषंगवधोनाम

अष्टाविंशोऽध्यायः

रणे भग्नं महादैत्यं भण्डदैत्यः सहोदरम्। सेनानां कदमं श्रुत्वा सन्तप्तो बहुचिन्तया॥१॥
उभावपि समेतौ तौ युक्तौ सर्वैश्च सैनिकैः। प्रेषयामास युद्धाय भण्डदैत्यः सहोदरौ॥२॥
तावुभौ परमक्रुद्धौ भण्डदैत्येन देशितौ। विषंगश्च विशुक्रश्च महोद्यमवापतुः॥३॥
कनिष्ठसहितं तत्र युवराजं महाबलम्। विशुक्रमनुवव्राज सेनत्रैलोक्यकम्पिनी॥४॥
अक्षौहिणीचतुःशत्या सेनानामवृतश्च सः। युवराजः प्रववृधे प्रतापेन महीयसा॥५॥
उलूकजित्प्रभृतयो भागिनेया दशोद्धताः। भण्डस्य च भगिन्यां तु धूमिन्यां जातयोनयः॥६॥
कृतास्त्रशिक्षा भण्डेन मातुलेन महीयसा। विक्रमेण बलन्तस्ते सेनानाथाः प्रतस्थिरे॥७॥
प्रौद्गतैश्चापनिर्घोषैर्घोषयंतो दिशो दश। द्वयोर्मातुलयोः प्रीतिं भागिनेया वितेनिरे॥८॥
आरूढयानाः प्रत्येकगाढाहंकारशालिनः। आकृष्टगुरुधन्वानो विशुक्रमुवव्रजुः॥९॥
यौवराज्यप्रभाचिह्नच्छत्रचामरशोभितः। आरूढवारणः प्राप विशुक्रो युद्धमेदिनीम्॥१०॥
ततः कलकलारावकारिण्या सेनया वृतः। विशुक्रः पटु दध्वान सिंहनादं भयंकरम्॥११॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२८

विशुक्र विषंगवध वर्णन

जब दैत्यराज भण्ड ने युद्ध में अपने सहोदर भाई विशुक्र को भग्न होना सुना तथा उसकी सेना का विनाश सुना, तो सुनकर वह चिन्ता से बहुत दुःखी हो गया।।१।। उसके बाद भण्डासुर अपने दोनों भाइयों विशुक्र और विषंग को सब सैनिकों के साथ युद्ध के लिये भेजा।।२।। दैत्यराज भण्ड का आदेश प्राप्त कर वे दोनों भाई विषंग और विशुक्र बहुत अधिक क्रोधित होकर महान् उद्यम को प्राप्त हुए।।३।। वहाँ विषंग ने तीनों लोकों को कंपा देने वाली सेना और अपने छोटे भाई महाबली युवराज विशुक्र का अनुसरण किया।।४।। जब चार सौ अक्षौहिणी सेना से घिरा हुआ वह युवराज महान् प्रताप के साथ आगे बढ़ने लगा।।५।। उसके साथ उलूकजित् आदि दश बहुत उद्दंड लड़ाकू भानजे थे। वे सब भण्डराज की भगिनी धूमिनी की योनि से उत्पन्न हुए थे।।६।।

महान् मामा भण्ड ने ही उन सबको अस्त्र शिक्षा प्रदान की थी। पराक्रम और बल में वे सब सम्पन्न थे इसलिए वे दशों सेनापति बनाये गये थे।।७।। वे सब अपने धनुषों की टंकार ध्वनियों से दशों दिशाओं को ध्वनित करते हुए चल रहे थे तथा विशुक्र और विषंग दोनों मामाओं के प्रेम को दश भागिनेय प्राप्त कर रहे थे।।८।। इस प्रकार वे प्रत्येक गाढ़ अहंकार वाले अपने अपने यानों पर चढ़कर धनुषों को खींचे युवराज विशुक्र के पीछे चल रहे थे।।९।। यौवराज्य की प्रभा के चिह्न क्षत्र और चामर से शोभित हाथी पर सवार विशुक्र ने युद्धभूमि को प्राप्त किया।।१०।। उसके बाद कलकल की ध्वनि करने वाली सेना से घिरे हुए विशुक्र ने रणभेरी का भयंकर सिंहनाद

तत्क्षोभात्क्षुभितस्वान्ताः शक्तयः संभ्रमोद्धताः।
अग्निप्राकारवलयान्निर्जग्मुर्बद्धपङ्क्तयः॥१२॥
तडिन्मयमिवाकाशं कुर्वंत्यः स्वस्वरोचिषा। रक्ताम्बुजावृतमिव व्योमचक्रं रणोन्मुखाः॥१३॥
अथ भण्डकनीयांसावागतौ युद्धदुर्मदौ। निशम्य युगपद्योद्धुं मंत्रिणीदण्डनायके॥१४॥
किरिचक्रं ज्ञेयचक्रमारूढे रथशेखरम्। धृतातपत्रवलये चामराभ्यां च वीजिते॥१५॥
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिर्गीयमानमहोदये। निर्जग्मतू रणं कर्तुमुभाभ्यां ललिताज्ञया॥१६॥
श्रीचक्ररथराजस्य रक्षणार्थं निवेशिते। शताक्षौहिणिकां सेनां वर्जयित्वास्त्रभीषणम्॥१७॥
अन्यत्सर्वं चमूजालं निर्जगाम रणोन्मुखी। पुरतः प्राचलद्दण्डनाथा रथनिषेदुषी॥१८॥
एकयैव कराङ्गुल्या घूर्णयन्ती हलायुधम्। मुसलं चान्यहस्तेन भ्रामयन्ती मुहुर्मुहुः॥१९॥
तरलेन्दुकलाचूडास्फुरत्पोत्रमुखाम्बुजा। पुरः प्रहर्त्री समरे सर्वदा विक्रमोद्धता।
अस्या अनुप्रचलिता गेयचक्ररथस्थिता॥२०॥
धनुषो ध्वनिनां विश्वं पूरयन्ती महोद्धता। वेणीकृतकचन्यस्तविलसच्चन्द्रपल्लवा॥२१॥
स्फुरत्रितयनेत्रेण स्दिूरतिलकत्विषा। पाणिना पद्मरम्येण मणिकंकणचारुणा॥२२॥
तूणीरमुखतः कृष्टं भ्रामयन्ती शिलीमुखम्। जय वर्धस्ववर्धस्वेत्यतिहर्षसमाकुले॥२३॥

किया।।११।। उस सिंहनाद को सुनकर उसके भय से भयभीत हृदय वाली शक्तियां संभ्रमित हो गयीं और फिर पंक्तिबद्ध होकर अग्नि प्राकारवलय (सेना के चारों ओर की बाउण्ड्री) से बाहर आने लगी।।१२।। वे शक्तियां अपनी अपनी कान्ति से आकाश में बिजली सी चमकाती हुई, लाल कमल से घिरे हुए आकाश चक्र के समान युद्ध के लिये उन्मुख हुईं।।१३।। इसके बाद दैत्यराज भण्ड के छोटे भाई 'युद्ध' दुर्मद युद्धक्षेत्र में आ गये। यह सुनकर दोनों के साथ युद्ध करने के लिये मन्त्रिणी और दण्डनायिका दोनों शक्तियां युद्ध क्षेत्र में आ गयीं।।१४।। वे दोनों देवियां किरिचक्ररथ तथा ज्ञेयचक्ररथ पर आरूढ थीं, उनके ऊपर छत्र सुशोभित था और दोनों परअलग अलग चंवर ढुलाये जा रहे थे।।१५।। उस समय अप्सरायें नृत्य करते हुए गीत गा रही तीं। उस शुभ वेला में श्री ललितेश्वरी की आज्ञा से वे दोनों देवियाँ रण करने को निकल पड़ीं।।१६।। तब श्रीचक्ररथराज की रक्षा के लिये सौ अक्षौहिणी सेना को और भीषण अस्त्र को छोड़कर अन्य सब सेना समूह को लेकर रण के लिये उन्मुख दण्डनाथा युद्ध के लिए निकल पड़ी। आगे-आगे रथ पर बैठी हुई दण्डनाथा चल रही थीं। वे एक ही हाथ की अंगुलि से हलायुध को घुमाती हुई तथा दूसरे हाथ से मूसल को बार बार घुमाती हुई चल रही थीं।।१७-१९।।

उन देवी के शिर के जूड़ा में तरल चन्द्रमा चमक रहे थे। ऐसी वह वाराही कमलमुखी समर में सदा आगे प्रहार करने वाली पराक्रम में सर्वोच्च थीं। इस देवी के पीछे गेयचक्र पर स्थित धनुष की ध्वनि से विश्व को पूर्ण करती हुई महोद्धता दण्डनाथा चल रही थी। जिनकी वेणी (शिर के जूड़े) में स्थित विलास करती हुई चन्द्र किरणें चमक रही थीं।।२०-२१।। उनके तीन नेत्रों के साथ भाल पर सिन्दूर के तिलक की कान्ति चमक रही थी। उनके कमल के समान रम्य हाथ में मणिजटित कंगन की सुन्दरता थी। वे अपने तरकश से खींचे हुए बाण को घुमाती हुई जय जयकार के नारों तथा आगे बढ़ो, आगे बढ़ों इस प्रकार के नारों का घोष करती हुई, अत्यन्त हर्षपूर्वक चल रही थीं।।२२-२३।।

नृत्यद्भिर्दिव्यमुनिभिर्वर्द्धिताशीर्वचोऽमृतैः। गेयचक्ररतेन्द्रस्य चक्रनेमिविघट्टनैः॥२४॥
दारयन्ती क्षितितलं दैत्यानां हृदयैः सह। लोकातिशायिता विश्वमनोमोहनकारिणा।
गीतिबन्धेनामरीभिर्बह्वीभिर्गीतवैभवा ॥२५॥
अक्षौहिणीसहस्राणामष्टकं समरोद्धतम्। कर्षती कल्पविश्लेषनिर्मर्यादाब्धिसंनिभम्॥२६॥
तस्याः शक्तिचमूचक्रे काश्चित्कनकरोचिषः।
काश्चिद्दाडिमसंकाशाः काश्चिज्जीमूतरोचिषः॥२७॥
अन्याः सिंदूररुचयः पराः पाटलपाटलाः।
काचाद्रिकाम्बराः काश्चित्पराः श्यामलकोमलाः॥२८॥
अन्यास्तु हीरकप्रख्याः परा गारुत्मतोपमाः।
विरुद्धैः पञ्चभिर्बाणैर्मिश्रितैः शतकोटिभिः॥२९॥
व्यञ्जयंत्यो देहरुचं कतिचिद्विविधायुधाः। असंख्याः शक्तयश्चेलुर्दंडिन्यास्सैनिके तथा॥३०॥
तथैव सैन्यसन्नाहो मंत्रिण्याः कुम्भसम्भव। यथा भूषणवेषादि यथा प्रभावलक्षणम्॥३१॥
यथा सद्गुणशालित्वं यथा चाश्रितलक्षणम्। यथा दैत्यौघसंहारो यथा सर्वैश्च पूजिता॥३२॥

इस प्रकार नांचते हुए दिव्य मुनियों द्वारा अभिवर्द्धित आशीर्वाद रूपी वचनामृतों से तथा गेयचक्ररथराज के पहिये की धुरी से घिसने की ध्वनियों से दैत्यों के हृदयों के साथ भूतल को विदीर्ण करती हुई, लोक की अतिशता वाले विश्व के मनों को मोहित करने वाली, बहुत सी देवाङ्गनाओं गीत बन्धों (कविताओं) से गाये गये वैभवशाली अर्थात् जिनके वैभव को कवितायें बनाकर देवाङ्गनायें गा रही थीं ऐसी वे देवी आठ हजार अक्षौहिणी समर करने में अत्यन्त प्रवीण सेनाओं को ले जाती हुई, प्रलयकाल में अपनी मर्यादा खोये हुए समुद्र की भाँति वे देवी युद्ध क्षेत्र में चली जा रही थीं।।२४-२६।। उस दण्डनाथा देवी की सेना चक्र में कोई शक्ति स्वर्ण की कान्ति वाली थी, कोई अनार की कान्ति के समान लाल वर्ण की थी, कोई मेघ की कान्तिवाली थी।।२७।।

दूसरी शक्तियां सिन्दूर की कान्ति की थीं, दूसरी गुलाब पुष्प के समान वर्ण एवं सुगन्ध वाली थीं, कुछ वज्र अथवा सूर्य के वस्त्र वाली थीं, दूसरी शक्तियां श्यामल और कोमल थीं।।२८।। दूसरी शक्ति हीरे की कान्ति वाली थी तथा कुछ गेरू के समान वर्णवाली थीं। कितनी ही शक्तियां सैकड़ो करोड़ कामदेव के पाँच वाणों से मिश्रित अपने शरीर की कान्ति को प्रकट करती हुई अनेकों प्रकार के अस्त्रों को लेकर चल रही थीं। इस प्रकार असंख्य शक्तियां दण्डनाथा के सैनिकों के रूप में चल रही थीं।।३०।।

हयग्रीव ने कहा कि इस प्रकार हे अगस्त्य जी उस दण्डनाथा का समस्त शरीर उसी प्रकार का था, जिस प्रकार का उन ललिता देवी का था। जैसा कि भूषण वेष आदि ललितेश्वरी की सेना के थे, वैसे ही दण्डनाथा की सेना के थे। जैसा प्रभाव तथा लक्षण श्री ललितेश्वरी के थे, वैसे ही दण्डनाथा देवी के थे। जैसे गुणवाली श्री ललिता देवी थीं, वैसी ही दण्डनाथा थी। जैसे आश्रित लक्षण श्री ललिता के थे, वैसे ही दण्डनाथा के थे। चन्द्रं जैसा दैत्य समूह संहारगुण तथा सबों के द्वारा पूजित होना श्री ललिता का था वैसा ही दण्डनाथा अर्थात् जितने दैत्यों का संहार श्री ललिता कर सकती थी, उतनी ही दण्डनाथ भी कर सकने में समर्थ हैं। जिस प्रकार सभी देवता श्री ललिता को पूजते थे, उसी प्रकार दण्डनाथा भी सब देवों में पूज्य थीं।।३१-३२।।

यथा शक्तिर्महाराज्ञ्या दंडिन्याश्च तथाखिलम्।
विशेषस्तु परं तस्याः साचिव्ये तत्करे स्थितम्।
महाराज्ञीवितीर्णं तदाज्ञामुद्रांगुलीयकम्।।३३।।
इत्थं प्रचलिते सैन्ये मंत्रिणीदंडनाथयोः तद्भारभंगुरा भूमिर्दोलालीलामलंबत।।३४।।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्। उद्धूतधूलिजंबालीभूतसप्तार्णवीजलम्।।३५।।
हयस्थैर्हयसादिन्यो रथस्थै रथसंस्थिताः।
आधोरणैर्हस्तिपकाः खड्गैः पद्गाश्च सङ्गता;।।३६।।
दंडनाथाविषंगेण समयुध्यंत सङ्गरे। विशुक्रेण समं श्यामा विकृष्टमणिकार्मुका।।३७।।
अश्वारूढा चकारोच्चैः सहोलूकजिता रणम्। सम्पदीशा च जग्राह पुरुषेण युयुत्सया।।३८।।
विषेण नकुली देवी समाह्वास्त युयुत्सया। कुंतिषेणेन समरं महामाया तदाकरोत्।।३९।।
मलदेन समं चक्रे युद्धमुन्मत्तभैरवी। लघुश्यामा चकारोच्चैः कुशूरेण समं रणम्।।४०।।
स्वप्नेशी मंगलाख्येन दैत्येन्द्रेण रणं व्यधात्। वाग्वादिनी तु जघटे द्रुघणेन समं रणे।।४१।।
कोलाटेन च दुष्टेन चणडकाल्यकरोद्रणम्। अक्षौहिणीभिर्दैत्यानां शताक्षौहिणिकास्तथा।
महांतं समरं चक्रुरन्योन्यं क्रोधमूर्छिताः।।४२।।
प्रवर्तमाने समरे विशुक्रो दुष्टदानवः। वर्धमानां शक्तिचमूं हीयमानां निजां चमूम्।।४३।।

इस प्रकार जैसी शक्ति श्री ललितेश्वरी की थी, वैसी ही दण्डनाथा की थी। विशेषरूप से तो उन दण्डनाथा देवी के हाथ में मन्त्रित्व स्थित था अर्थात् श्री ललितेश्वरी देवी की प्रधान मन्त्रिणी थीं। महाराज्ञी से पार हुए किसी भी नियम पर दण्डनाथा देवी की आज्ञा की मुहर लगती थी।।३३।। इस प्रकार मन्थिनाथा और दण्डनाथा की सेना के चलने पर उनके भार से भंगुर भूमि झूला झूलने के समान हिलने लगी।।३४।। उसके बाद युद्ध प्रवृत्त होने पर रोमांच खड़े कर देने वाला कोलाहल होने लगा। युद्ध क्षेत्र में उठी हुई धूलि ने सात समुद्रों के जल को गारा बना दिया। अर्थात् इतनी धूलि उड़ी की सात समन्दर गारा बन गया।३५।। अश्वारोहियों के साथ अश्वारोही रथारोहिओं के साथ रथारोही तथा गजारोहियों के साथ गजारोही और पैदल चलने वाले पैदलों के साथ तलवारों से युद्ध करने लगे।।३६।। दण्डनाथा देवी विषंग के साथ रणक्षेत्र में युद्ध करने लगी तथा विशुक्र के साथ श्यामा देवी मणिकार्मुक (मणिधनुष) को खींचकर युद्ध करने लगीं।।३७।। उलूकजिता अश्वारूढा उच्च के साथ रण करने लगी। सम्पदीशा देवी युद्ध करने की इच्छा रखने वाले पुरुष के साथ युद्ध करने लगी।।३८।।

विष नामक असुर के साथ नकुली देवी युद्ध करने की इच्छा से लड़ने लगी और तब कुन्तिषेण के साथ महामाया ने युद्ध किया।।३९।। उन्मत्त भैरवी ने मलद नामक असुर के साथ युद्ध किया। लघुश्याम देवी ने कुशूर के साथ बहुत ऊँचा युद्ध किया।।४०।। स्वप्नेशी देवी ने मंगल नाम दैत्यराज के साथ युद्ध किया और वाग्वादिनी देवी द्रुघण दैत्य के साथ रणक्षेत्र में भिड़ गयीं।।४१।। दुष्ट कोलाट के साथ चण्डकाली देवी ने दैत्यों की अनेकों अक्षौहिणी सेनाओं के साथ क्रोध मूर्च्छित सौ अक्षौहिणी शक्ति सेनाओं ने परस्पर एक दूसरे से महान् समर किया।।४२।। उस होने वाले युद्ध में शक्ति सेना को बढ़ता हुआ और अपनी सेना को कम होता हुआ (नष्ट होता हुआ) देखकर दुष्ट दानव विशुक्र ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपने विशाल धनुष को खींचा और समस्त शक्ति सेना

अवलोक्य रुषाविष्टः स कृष्टगुरुकार्मुकः। शक्तिसैन्ये समस्तेऽपि तृषास्त्रं प्रमुमोच ह॥४४॥
तेन दावानलज्वालादीप्तेन मथितं बलम्। तृतीये युद्धदिवसे याममात्रं गते रवौ।
विशुक्रमुक्ततर्षास्त्रव्याकुलाः शक्तयोऽभवन्॥४५॥
क्षोभयन्निन्द्रियग्रामं तालुमूलं विशोषयन्। रूक्षयन्कर्णकुहरमंगदौर्बल्यमाहवन्॥४६॥
पातयन्पृथिवीपृष्ठे देहं विस्त्रंसितायुधम्। आविर्बभूव शक्तीनामतितीव्रस्तृषाज्वरः॥४७॥
युद्धेष्वनुद्यमकृता सर्वोत्साहविरोधिना।
तर्षेण तेन क्वथितं शक्तिसैन्यं विलोक्य सा।
मंत्रिणी सह पोत्रिण्या भृशं चिंतामवाप ह॥४८॥
उवाच तां दंडनाथामत्याहितविसंकिनीम्। रथस्थिता रथगता तत्प्रतीकारकर्मणे।
सखि पोत्रिणी दुष्टस्य तर्षास्त्रमिदमागतम्॥४९॥
शिथिलीकुरुते सैन्यमस्माकं हा विधेः क्रमः। विशुष्कतालुमूलानां विभ्रष्टायुधतेजसाम्।
शक्तीनां मंडलेनात्र समरे समुपेक्षितम्॥५०॥
न कापि कुरुते युद्धं न धारयति चायुधम्। विशुष्कतालुमूलत्वा द्वक्तुमप्यालि न क्षमाः॥५१॥
ईदृशीन्नो गतिं श्रुत्वा किं वक्ष्यति महेश्वरी। कृता चापकृतिर्दैत्यैरुपायः प्रविचिंत्यताम्॥५२॥
सर्वत्र व्यष्टसाहस्त्राक्षौहिण्यामत्र पोत्रिणि। एकापि शक्तिर्नैवास्ति या तर्षेण न पीडिता॥५३॥
अत्रैवावसरे दृष्ट्वा मुक्तशस्त्रां पताकिनीम्। रंध्रप्रहारिणो हंत बाणैर्निघ्नंति दानवाः॥५४॥

पर तृषास्त्र बाण का प्रहार कर दिया।।४३-४४।। उस बाण से दावाग्नि की ज्वाला से दीप्त होने से सेना को मथ डाला। तब तीसरे युद्ध दिवस पर रात्रिमात्र में सूर्य के चले जाने पर विशुक्र द्वारा छोड़े गये तृषास्त्र के कारण शक्तियां प्यास से व्याकुल हो गयीं।।४५।। उनकी इन्द्रियां शिथिल होने लगीं। प्यास से उनके तालु (हलक) सूखने लगे। कर्णकुहर रूखे होने लगे, जिससे सुनना कठिन हाने लगा तथा इस प्रकार उनका अंग अंग दुर्बलता को प्राप्त करने लगा।।४६।। अपने अपने अस्त्रों को छोड़कर वे पृथ्वी पर शरीर को गिराने लगीं, इसका कारण था कि शक्तियों को अत्यन्त तीव्र प्यास सताने लगी थी।।४७।। तब युद्धों में अनुद्यम (निष्क्रिय) करने वाली, सब उत्साह का विरोध करने वाली, उस प्यास से व्याकुल शक्ति सैन्य को देखकर वह मन्त्रिणी वाराही देवी के साथ अत्यधिक चिन्ता को प्राप्त हो गयी अर्थात् अत्यधिक चिन्तित हो गयी।।४८।। रथस्थ रथगत मन्त्रिणी प्रतीकार कर्म के लिये अत्यन्त विपत्तिग्रस्त और विशेष डरी हुई दण्डनाथा से बोली कि सखि वाराहि! दुष्ट दानव का यह तृषास्त्र आ गया है।।४९।। और कहने लगी कि हाय विधि (भाग्य) की गति हमारी सेना को शिथिल बना रही है। प्यास के तालुमूलों के सूख जाने के कारण शक्तियों ने अपने अपने आयुधों को छोड़ दिया है और व्याकुल शक्तिसमूह ने यहाँ युद्ध में उपेक्षा कर दी है।।५०।। इस समय न तो कोई युद्ध कर रही हैं और न ही अस्त्र-शस्त्रों को धारण कर रही हैं।।५१।। ऐसी हमारी गति सुनकर महेश्वरी क्या कहेंगी? उधर दैत्यों ने अपने अपने धनुषों को धारण कर लिया, अतः कोई उपाय सोचिये।।५२।। मन्दिराणी ने कहा कि हे वाराहि! सर्वत्र दश हजार अक्षौहिणी में एक भी शक्ति नहीं है, जो प्यास से पीड़ित न हो।।५३।। यही अवसर देखकर रन्द्र (छेद) देखकर प्रहार करने वाले दानव शस्त्रहीन सेना को बाणों

अत्रोपायस्त्वया कार्यो मया च समरोद्यमे। त्वदीयरथपर्वस्थो योऽस्ति शीतमहार्णवः॥५५॥
तमादिश समस्तानां शक्तीनां तर्षनुत्तये। नाल्पैः पानीयपानाद्यैरेतासां तर्षसंक्षयः॥५६॥
स एव मदिरासिंधुः शक्त्यौघं तर्पयिष्यति। तमादिश महात्मानं सरोत्साहकारिणम्।
सर्वतर्षप्रशमनं महाबलविवर्धनम्॥५७॥
इत्युक्ते दंडनाथा सा सदुपायेन हर्षिता। आजुहाव सुधासिंधुमाज्ञां चक्रेश्वरी रणे॥५८॥
स मादलसरक्ताक्षो हेमाभः स्त्रग्विभूषितः॥५९॥
प्रणम्य दंडनाथां ता तदाज्ञापरिपालकः॥६०॥
आत्मानं बहुधा कृत्वा तरुणादित्यपाटलम्।
क्वचित्तापिच्छवच्छ्यामं क्वचिच्च धवलद्युतिम्॥६१॥
कोटिशो मधुराधारा करिहस्तसमाकृतीः। ववर्ष सिंधुराजोऽयं वायुना बहुलीकृतः॥६२॥
पुष्कलावर्तकाद्यैस्तु कल्पक्षयबलाहकैः।
निषिच्यमानो मध्येऽब्धिः शक्तिसैन्ये पपात ह॥६३॥
यद्गन्धाघ्राणमात्रेण मृत उत्तिष्ठते स्फुटम्। दुर्बलः प्रबलश्च स्यात्तद्ववर्ष सुरांबुधिः॥६४॥
परार्द्धसंख्यातीतास्ता मधुधारापरंपराः। प्रपिबन्त्यः पिपासार्तैर्मुखैः शक्तय उत्थिताः॥६५॥
यथा सा मदिरासिंधुवृष्टिर्दैत्येषु नो पतेत्। तथा सैन्यस्य परितो महाप्राकारमंडलम्॥६६॥

से मार रहे हैं।।५४।। यहाँ पर अब तुम्हारे और मेरे द्वारा इस समरोद्योग में उपाय किया जाना चाहिये। तुम्हारे रथ में एक भाग ऐसा है, जो शीत का महासमुद्र है।।५५।। उस अपने पर्वस्थ शीतमहार्णव को आदेश दो, ताकि वे समस्त शक्तियों की प्यास को दूर करें, थोड़े से पीने योग्य पानी आदियों से इनकी प्यास नष्ट नहीं की जा सकती।।५६।। वह मदिरा का समुद्र ही उन शक्तियों को तृप्त करेगा।। उस युद्धक्षेत्र में उत्साह पैदा करने वाले सब प्रकार की प्यास को शान्त करने वाले तथा महाबल बढ़ाने वाले महात्मा को आदेश दीजिये।।५७।। ऐसा कहने पर वह दण्डनाथा अच्छे उपाय को सुनकर प्रसन्न हो गयी और चक्रेश्वरी ने रण में सुधासिन्धु को आज्ञा भेज दी।।५८।। तब वह मद के आलस लाल आँखों वाला, स्वर्ण का आभा वाला और माला से विभूषित उनकी आज्ञा का पालन करने वाला सुधा सिन्धु (मदिरा का समुद्र) दण्डनाथा देवी के पास आया और उन्हें प्रणाम किया।।५९-६०।। उसके बाद उस सुधासिन्धु (मदिरा के सागर) ने अपने को बहुत प्रकार का करके कहीं तरुण आदित्य के समान पाटल (गुलाब) के वर्ण का करके, कहीं तमाल के वृक्ष के समान श्यामवर्ण करके, कहीं श्वेतकान्ति का वर्ण करके हाथी की सूँड़ के समान आकृति वाली करोड़ों मधुर धारायें करके, वायु से बहुकृत सुधा (मदिरा) की वर्षा की।।६१-६२।। उस समय उस सुधासिन्धु ने प्रलयकालीन पुष्कर और आवर्तक आदि मेघों द्वारा सिंचन करते हुए समुद्र को सेना के मध्य गिरा दिया।।६३।।

जिसकी गन्ध सूंघने मात्र से मरा हुआ उठ खड़ा होता है, दुर्बल प्रबल हो जाता है। उस सुरा के समुद्र की वर्षा हुई।।६४।। वे मधु की धारायें शंख की संख्या भी पार कर चुकी थी, अतः असंख्य धारायें युद्धभूमि में गिरीं और अपने प्यासे मुखों से पीती हुई शक्तियां उठ खड़ी हुईं।।६५।। जिस प्रकार से वह मदिरा के समुद्र की वर्षा दैत्यों

लघुहस्ततया मुक्तैः शरजातैः सहस्रशः। चकार विस्मयकरी कदंबवनवासिनी॥६७॥
कर्मणा तेन सर्वेऽपि विस्मिता मरुतोऽभवन्।
अथ ताः शक्तयो भूरि पिबंति स्म रणांतरे॥६८॥
विविधा मदिराधारा बलोत्साहविवर्धिनीः।
यस्या यस्या मनःप्रीती रुचिः स्वादो यथायथा॥६९॥
तृतीये युद्धदिवसे प्रहरद्वितयावधि। संततं मद्यधाराभिः प्रववर्ष सुरांबुधिः॥७०॥
गौडी पैष्टी च माध्वी च वरा कादंबरी तथा।
हैताली लांगलेया च तालजातास्तथा सुराः॥७१॥
कल्पवृक्षोद्भवा दिव्या नानादेशसमुद्भवाः। सुस्वादुसौरभाद्याश्च शुभगंधसुखप्रदाः॥७२॥
बकुलप्रसवामोदा ध्वनंत्यो बुद्बुदोज्ज्वलाः।
कटुकाश्च कषायाश्च मधुरास्तिक्ततास्पृशः॥७३॥
बहुवर्णसमाविष्टाश्छेदिनीः पिच्छलास्तथा।
ईषदम्लाश्च कट्वम्ला मधुराम्लास्तथा पराः॥७४॥
शस्त्रक्षतरुगाहंत्री चास्थिसंधानदायिनी। रणभ्रमहरा शीता लघ्व्यस्तद्वत्कवोष्ठकाः॥७५॥
संतापहारिणीश्चैव वारुणीस्ता जयप्रदाः। नानाविधाः सुराधारा ववर्ष मदिरार्णवः॥७६॥

पर न हो, वैसा उस कदम्बवासिनी विस्मय पैदा करने वाली, उन मदिरा देवी ने हल्के हाथों से छोड़े गये हजारों बाणों से सेना के चारों ओर प्राकार मण्डल (चहारदीवार) बना दिया था; क्योंकि यदि वह वर्षा सर्वत्र होती तो उसका लाभ दैत्य सेना को भी प्राप्त हो जाता।।६६-६७।। इस प्रकार उस विस्मय पैदा करने वाली कदम्बवासिनी देवी के उस कर्म से मरुद्गण आश्चर्यचकित हो गये। इसके बाद वे शक्तियां युद्धस्थल में बार बार पी रही थीं।।६८।। अनेकों प्रकार की मदिरा की धारायें वहाँ बह रही थीं, जो बल और उत्साह को बढ़ाने वाली थीं। जिस जिस शक्ति को जैसे जैसा स्वाद मन को अच्छा लगता था, वैसा वैसा स्वाद मिल रहा था।।६९।।

तीसरे युद्ध दिवस में दूसरे पहर तक सुरासमुद्र ने निरन्तर मद्य की धाराओं द्वारा वर्षा की।।७०।। तब वहाँ अनेकों प्रकार की सुरायें बरस रहीं थीं, वे हैं—गौडी (गुड़ से बनी हुई), पैष्टी (अनाज को सड़ाकर बनायी गयी), माध्वी (मधु से बनी हुई), कादम्बरी (कदम्ब के फल से बनायी गयी), ताली, लांगलेया, तालजाता (ताड़ी) तथा शराब, कल्पवृक्ष से उत्पन्न दिव्यमदिरा तथा अनेक देशों में उत्पन्न होने वाली, स्वादु और सुगन्ध वाली, शुभगन्ध से सुख प्रदान करने वाली मदिरायें थीं तथा वकुल वृक्ष से पैदा होने वाली मदिरायें थी, जो उज्ज्वल उज्ज्वल बुदबुदे दे रही थीं। जिनका स्वादु किसी को कटु (कड़ुआ) किसी का कषैला, किसी का मीठा (मधुर) तथा किसी का तीखा चरपरा मिर्च जैसा था।।७१-७३।। वे मदिरायें बहुत से रंगों से युक्त थीं, उनमें रूखड़ चिपचिपी, कुछ खट्टी, कुछ कटु और खट्टी, कुछ मीठी खट्टी थीं।।७४।। वे मदिरा शस्त्र से होने वाले घाव को नष्ट करने वाली और टूटी हड्डियों को जोड़ने वाली थीं। वे मदिरा युद्ध में होने वाले भय अथवा भ्रम को दूर करने वाली थीं (यह स्वाभाविक है कि मदिरा पीने के बाद मनुष्य में उत्साह पैदा हो जाता है तथा भय नष्ट हो जाता है) वे मदिरायें ठण्डी और कम गर्म (गुनगुनी) थीं।।७५।। वे मदिरायें दुःख और चिन्ताओं को दूर कर देने वाली और जय प्रदान करने वाली थीं। इस प्रकार अनेकों

अविच्छिन्नं याममात्रमकैका तत्र योगिनी। ऐरावतकर प्रख्यां सुराधारां मुदा पपौ।।७७।।
उत्तानं वदनं कृत्वा विलोलरसनाश्चलम्। शक्तयः प्रपपुः सीधु मुदा मीलितलोचनाः।।७८।।
इत्थं बहुविदं माध्वीधारापातैः सुधांबुधिः। आगतस्तर्पयित्वा तु दिव्यरूपं समास्थितः।।७९।।
पुनर्गत्वा दंडनाथां प्रणम्य स सुरांबुधिः। स्निग्धगंभीरघोषेण वाक्यं चेदमुवाच ताम्।।८०।।
देवि पश्य महाराज्ञि दंडमंडलनायिके। मया संतर्पिता मुग्धरूपा शक्तिवरूथिनी।।८१।।
काश्चिन्नृत्यंति गायंत्यो कलक्वणितमेखलाः। नृत्यंतीनां पुरः काश्चित्करतालं वितन्वते।।८२।।
काश्चिद्धसंति व्यावल्गद्वल्गुवक्षोजमंडलाः। पतंत्यन्योन्यमङ्गेषु काश्चिदानंदमंथराः।।८३।।
काश्चिद्वल्गंति च श्रोणिविगलन्मेखलांबराः। काश्चिदुत्थाय संनद्धा घूर्णयंति निरायुधाः।।८४।।

इत्थं निर्दिश्यमानास्ताः शक्ती मैरेय सिंधुना।
अवलोक्य भृशं तुष्टा दंडिनी तमुवाच ह।।८५।।

परितुष्टास्मि मद्याब्धे त्वया साह्यमनुष्ठितम्। देवकार्यमिदं किं च निर्विघ्नितमिदं कृतम्।।८६।।
अतः परं मत्प्रसादाद्द्वापरे याज्ञिकैर्मखे। सोमपानवदत्यंतमुपयोज्यो भविष्यसि।।८७।।
मंत्रेण पूतं त्वां यागे पास्यंत्यखिलदेवताः। यागेषु मंत्रपूतेन पीतेन भवता जनाः।।८८।।

सुरा की धाराओं की मदिरा के सागर ने शक्ति सेनाओं के मध्य वर्षा कर दी।।७६।। तब वहाँ लगातार एक पहर तक एक एक योगिनी ने ऐरावत प्रख्य सुरा धारा का आनन्द के साथ पान किया।[१] तथा ऐरावत हाथी की सूँड़ से साफ कर फेंकी गयी सुराधारा का आनन्द से पान किया।।७७।। इस प्रकार प्रत्येक योगिनी ने पान कर लिया, तब मुख को फाड़कर अपनी जीभ को लपलपाते हुए शक्तियों ने गुड़ या राव से बनी हुई सीधु नामक सुरा को आँख मींच कर पी लिया।।७८।। इस प्रकार आये हुए सुधा समुद्र ने अनेकों प्रकार की महुआ की मदिरा की धाराओं को गिराकर समस्त शक्ति सेना को तृप्त करके अपने दिव्यरूप को धारण कर लिया।।७९।। पुनः दिव्यरूप धारण किये हुए सुरासागर ने दण्डनाथा देवी को प्रणाम करके उन देवी से स्नेहसिक्त गम्भीर घोष के साथ इस वाक्य को कहा।।८०।। हे महाराज्ञि! हे देवि! हे दण्डमण्डल नायिके! देखो मैंने मुग्ध करने वाली, शक्ति को बढ़ाने वाली सुरा से सबको अच्छी प्रकार से तृप्त कर दिया है।।८१।। इसीलिये कुछ शक्तियां नाच रही हैं, कुछ अपनी कर्धनी को बजाती हुई गा रही हैं, नाचती हुई शक्तियों के सामने कुछ शक्तियां हाथ से ताली बजा रही हैं।।८२।। कुछ हँस रही हैं, कुछ एक-दूसरे को पकड़कर स्तनों को आपस में रगड़ रही हैं। कुछ शक्तियां आनन्द विभोर होकर एक दूसरे के शरीर पर गिर रही हैं। कुछ कमर से हटी हुई कर्धनी और वस्त्र वाली शक्तियाँ इधर उधर कूद रही हैं। कुछ तो अस्त्र विहीन हैं, वे उठकर तैयार होने के लिये आयुधों को घूर रही हैं।।८३-८४।। इस प्रकार सुरा समुद्र ने दण्डनाथा को बता दिया कि अब मदिरा सिन्धु से सभी शक्तियां सन्तुष्ट कर दी गयी हैं, तब उस सुरा समुद्र से पूर्ण सन्तुष्टा दण्डनाथा ने सुरा समुद्र से कहा।।८५।। कि हे मद्य के सागर! मैं अब पूर्ण सन्तुष्ट हूँ तथा मैं तुम्हारी अभारी हूँ कि तुमने मेरी सहायता की और इस देवताओं के इस कार्य को विघ्नरहित कर दिया।।८६।। इसलिये इसके बाद द्वापर युग में मेरे प्रसाद से यज्ञ में यज्ञ करने वालों के द्वारा सोमपान के समान तुम अत्यन्त उपयोगी (लाभदायक) होओगी।।८७।। द्वापर

१. यहाँ पर ऐरावत प्रख्या का अर्थ है—भोज्य पदार्थ से बनी हुई प्रख्या=स्वच्छ मदिरा)

सिद्धिमृद्धिं बलं स्वर्गमपवर्गञ्च बिभ्रतु। महेश्वरी महादेवो बलदेवश्च भार्गवः।
दत्तात्रेयो विधिर्विष्णुस्त्वां पास्यन्ति महाजनाः॥८९॥
यागे समर्चितस्त्वं तु सर्वसिद्धिं प्रदास्यसि॥९०॥
इत्थं वरप्रदानेन तोषयित्वा सुरांबुधिम्॥९१॥
मंत्रिणीं त्वरयामास पुनर्युद्धाय दंडिनी। पुनः प्रववृते युद्धं शक्तीनां दानवैः सह॥९२॥
मुदाट्टहासनिर्भिन्नदिगष्टकधरा धरम्। प्रत्यग्रमदिरामत्ताः पाटलीकृतलोचनाः।
शक्तयो दैत्यचक्रेषु न्यपतन्नेकहेलया॥९३॥
द्वयेन द्वयमारेजे शक्तीनां समदश्रियाम्। मदरागेण चक्षूंषि दैत्यरक्तेन शस्त्रिका॥९४॥
तथा बभूव तुमुलं युद्धं शक्तिसुरद्विषाम्। यथा मृत्युरवित्रस्तः प्रजाः संहरते स्वयम्॥९५॥
संस्खलत्पदविन्यासा मदेनारक्तदृष्टयः। स्खलदक्षरसंदर्भवीरभाषा रणोद्धताः॥९६॥
कदंबगोलकाकारा दृष्टसर्वांगदृष्टयः। युवराजस्य सैन्यानि शक्तयः समनाशयन्॥९७॥
अक्षौहिणीशतं तत्र दंडिनी सा व्यदारयत्। अक्षौहिणीसार्द्धशतं नाशयामास मंत्रिणी॥९८॥
अश्वारूढाप्रभृतयो मदारुणविलोचनाः। अक्षौहिणीसार्धशतं निन्युरंतकमंदिरम्॥९९॥
अंकुशेनातितीक्ष्णेन तुरगा रोहिणी रणे। उलूकजितमुन्मथ्य परलोकातिथिं व्यधात्॥१००॥

युग में मन्त्र द्वारा पवित्र की गयी तुमको यज्ञ में समस्त देवता पीयेंगे तथा यज्ञों में मन्त्र द्वारा पवित्र की गयी तुमको यज्ञ में समस्त देवता पीयेंगे तथा यज्ञों में मन्त्र द्वारा पवित्र तुमको पीने से लोग ऋद्धि, सिद्धि, बल, स्वर्ग और मोक्ष धारण करें, यह मेरा वरदान है। महेश्वरी (दुर्गा) महादेव, बलदेव, परशुराम, दत्तात्रेय, ब्रह्मा, विष्णु आदि महापुरुष तुम्हारा पान करेंगे तथा यज्ञ में अच्छी प्रकार से पूजा की गयी तुम सब प्रकार की सिद्धि (सफलता) प्रदान करोगी।।८८-९०।। इस प्रकार वर प्रदान द्वारा सुराम्बुधि को प्रसन्न करके दण्डिनी देवी ने मन्त्रिणी को पुनः युद्ध के लिये शीघ्रता करने को कहा।।९१।। अतः शक्तियों का दानवों के साथ पुनः आनन्द के साथ अट्टहास से आठों दिशाओं को शब्दायमान करने वाला युद्ध होने लगा।।९२।।

तब मदिरा के मद में मत्त लाल-लाल आँखों वाली शक्तियों दैत्यों की सेनाओं पर एक साथ टूट पड़ीं।।९३।। इस प्रकार मद की शोभा से युक्त शक्तियां के दोनों के द्वारा दोनों लाल हो गये अर्थात् मद के राग से उनकी आँखें लाल हो गयीं और दैत्यों के रक्त से उनके शस्त्र लाल हो गये।।९४।। वैसा शक्ति और असुरों का कोलाहल हाहाकार पूर्ण हुआ, जैसे कि मृत्यु से नहीं डरती हुई प्रजा स्वयं मृत्यु को प्राप्त होती है।।९५।। उस समय मदिरा के मद से लाल लाल आँखों वाली शक्तियां लड़खड़ाती हुई तथा आँखें घुमाती हुई वीर रस के अक्षरों वाली भाषा बोलती हुई, उच्चकोटि का युद्ध कर रही थीं।।९६।। कदम्ब के गोलक के समान जिनका सारा शरीर और आँखें दिखाई दे रही थीं, उन शक्तियों ने युवराज विशुक्र की सेनाओं को पूरी तरह नष्ट कर दिया।।९७।। सौ अक्षौहिणी सेना को दण्डनाथा देवी ने विदीर्ण कर दिया तथा पचास अक्षौहिणी सेना को मन्त्रिणी देवी ने नष्ट कर दिया।।९८।। अश्वारूढ शक्तियां जो मद से लाल लाल नेत्रों वाली थीं, उन्होंने पचास अक्षौहिणी सेना को यमलोक पहुँचा दिया।।९९।। युद्धस्थल में अश्व पर सवार रोहिणी ने अत्यन्त तीक्ष्ण अंकुश से उलूकजित् नामक असुर को मारकर परलोक का अतिथि बना दिया।।१००।।

सम्पत्करीप्रभृतयः शक्तिदंडाधिनायिकाः। परुषेण मुखान्यन्यान्यवरुद्धा व्यदारयन्॥१०१॥
अस्तं गते सवितरि ध्वस्तसर्वबलं ततः।
विशुक्रं योधयामास श्यामला कोपशालिनी॥१०२॥
अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण भीषणेन दिवौकसाम्। महता रणकृत्येन योधयामास मंत्रिणी॥१०३॥
आयुधानि सुतीक्ष्णानि विशुक्रस्य महौजसः।
क्रमशः खंडयंती सा केतनं रथसारथिम्॥१०४॥
धनुर्गुणं धनुर्दंडं खंडयंती शिलीमुखैः। अस्त्रेण ब्रह्मशिरसा ज्वलत्पावकरोचिषा॥१०५॥
विशुक्रं मर्दयामास सोऽपतच्चूर्णविग्रहः। विषंगं च महादैत्यं दंडनाथा मदोद्धता॥१०६॥
योधयामास चंडेन मुसलेन विनिघ्नती। सचापि दुष्टो दनुजः कालदण्डनिभां गदाम्।
उद्यम्य बाहुना युद्धं चकाराशेषभीषणम्॥१०७॥
अन्योन्यमंगं मृद्नंतौ गदायुद्धप्रवर्तिनौ। चण्डाट्टहासमुखरौ परिभ्रमणकारिणौ॥१०८॥
कुर्वाणौ विविधांश्चारान्घूर्णंतौ तूर्णवेष्टिनौ। अन्योन्यदंडहननैर्मोहयंतौ मुहुर्मुहुः॥१०९॥
अन्योन्यप्रहृतौ रंध्रमीक्षमाणौ महोद्धतौ। महामुसलदंडाग्रघट्टनक्षोभितांबरौ।
अयुध्येतां दुराधर्षौ दंडिनीदैत्यशेखरौ॥११०॥
अथार्द्धरात्रिसमयपर्यंतं कृतसंगरा। संक्रुद्धा हन्तुमारेभे विषंगं दण्डनायिका॥१११॥
तं मूर्धनि निमग्नेन हलेनाकृष्य वैरिणम्। कठोरं ताडनं चक्रे मुसलेनाथ पोत्रिणी॥११२॥

सम्पत्करी आदि शक्ति दण्डाधिनायिकाओं ने कठोर अस्त्र से अन्य प्रमुख दानवों को विदीर्ण कर दिया।।१०१।। जब सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे थे, उस समय तक दानवों की समस्त सेना ध्वस्त हो गयी अर्थात् कुछ मर गये, कुछ भाग गये, उसके बाद क्रुद्ध श्यामला देवी विशुक्र के साथ युद्ध करने लगीं।।१०२।। उस समय उन श्यामला मन्त्रिणी ने भीषण स्वर्गीय अस्त्र शस्त्र छोड़ने के द्वारा महान् युद्ध कर्म के द्वारा युद्ध किया।।१०३।।

उस समय वे देवी अपने बाणों से महापराक्रमी विशुक्र के तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रों को काटती हुई तथा रथ के सारथी और ध्वजा एवं उसके धनुष की डोरी एवं धनुर्दण्ड को खण्ड खण्ड कर रही थीं, उसके बाद जब उसके समस्त आयुधों को नष्ट कर दिया, तब जलती हुई आग के समान कान्तिवाले ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र से विशुक्र को मार डाला और फिर चूर्ण शरीर होकर वह भूमि पर गिर गया।।१०४-१०५½।। प्रचण्ड मूसल का प्रहार करती हुई महोद्धता दण्डनाथा देवी ने विषंग के साथ युद्ध किया। उस दुष्ट दानव ने भी कालदण्ड के समान गदा को उठाकर भुजा से जैसा भीषण युद्ध कभी नहीं हुआ होगा, वैसा भीषण युद्ध किया।।१०५½-१०७।। उस समय गदायुद्ध में लगे वे दोनों योद्धा एक दूसरे के अंगों का मर्दन करते हुए प्रचण्ड अट्टहास करते हुए घूम रहे थे।।१०८।। वे दोनों उस युद्ध में एक-दूसरे का छेद (कमी) देखकर प्रहार कर रहे थे। अर्थात् निगाह चूकना देखकर प्रहार करते थे। उन दोनों महामुसलदण्ड के अग्रभागों के टकराने के शब्द से आकाश क्षोभित हो रहा था, इस प्रकार दण्डिनी और विषंग दोनों ही कठिनाई से हारने वाले योद्धा युद्ध कर रहे थे।।१०९-११०।। इस प्रकार आधीरात तक घोर युद्ध होता रहा, तब दण्डनायिका विषंग को मारने के लिये अत्यन्त क्रोधित हो गयीं।।१११।। तब उस वाराही दण्डनाथा देवी

ततो मुसलघातेन त्यक्तप्राणो महासुरः। चूर्णितेन शतांगेन समं भूतलमाश्रयत्॥११३॥
इति कृत्वा महत्कर्म मंत्रिणीदण्डनायिके। तत्रैव तं निशा शेषं निन्यतुः शिबिरं प्रति॥११४॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने विशुक्रविषंगवधो नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

।।समाप्तं तृतीयदिवसयुद्धम् ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

भण्डासुरवधोनाम

नवविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अश्वानन महाप्राज्ञ वर्णितं मंत्रिणीबलम्। विषंगस्य वधो युद्धे वर्णितो दण्डनाथया॥१॥
श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि रणचक्रे पराक्रमम्। सोदरस्यापदं दृष्ट्वा भण्डः किमकरोच्छुचा॥२॥
कथं तस्य रणोत्साह कैः समं समयुध्यत। सहायाः केऽभवंस्तस्य हतभ्रातृतनूभुवः॥३॥

ने उस शत्रु को हल से खींचकर उसके शिर मूसल से कठोर प्रहार किया।।११२।। उसके मूसलधात से उस महादानव प्राण त्याग दिये। उसके अंग के सौ टुकड़े हो गये और फिर वह भूतल पर गिर गया।।११३।। इस प्रकार यह महान् कर्म करके मन्त्रिणी और दण्डनायिका दोनों देवियाँ शिविर की ओर चली गयी।११४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २८वाँ अध्याय विशुक्र विषंगवध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

।।तीसरा युद्ध दिवस समाप्त हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–२९

भण्डासुर वध वर्णन

अगस्त्य मुनि हयग्रीव से बोले! हे महाप्राज्ञ! हयग्रीव जी! आपने मन्त्रिणी देवी के बल का वर्णन किया है तथा युद्ध में दण्डनाथा द्वारा विषंग का वध वर्णन कर दिया।।१।। हे हयग्रीव! अब मैं रणचक्र में श्री ललितेश्वरी देवी का पराक्रम सुनना चाहता हूँ। अपने भाई की मृत्यु देखकर भण्डासुर ने क्रोध से क्या किया? उसका रण में क्या उत्साह रहा? किन किन के साथ उसने युद्ध किया तथा जिसके भाई और पुत्र सब मर गये उस भण्डासुर के सहायक कौंन हुए?।।२-३।।

हयग्रीव उवाच

इदं शृणु महाप्राज्ञ सर्वपापनिकृंतनम्। ललिताचरितं पुण्यमणिमादिगुणप्रदम्॥४॥
वैषुवायनकालेषु पुण्येषु समयेषु च। सिद्धिदं सर्वपापघ्नं कीर्तिदं पञ्चपर्वसु॥५॥
तदा हतौ रणे तत्र श्रुत्वा निजसहोदरौ। शोकेन महताविष्टो भण्डः प्रविललाप सः॥६॥
विकीर्णकेशो धरणौ मूर्छितः पतितस्तदा। न लेभे किंचिदाश्वासं भ्रातृव्यसनकर्शितः॥७॥

पुनः पुनः प्रविलपन्कुटिलाक्षेण भूरिशः।
आश्वास्यमानः शोकेन युक्तः कोपमवाप सः॥८॥

फालं वहन्नतिक्रूरं भ्रमद्भ्रुकुटिभीषणम्। अंगारपाटलाक्षश्च निःश्वसन्कृष्णसर्पवत्॥९॥

उवाच कुटिलाक्षं द्राक्समस्तपृतनापतिम्।
क्षिप्रं मुहुर्मुहुः स्पृष्ट्वा धुन्वानः करवालिकाम्॥१०॥
क्रोधहुंकारमातन्वन्गार्जन्नुत्पातमेघवत् ॥११॥

ययैव दृष्टया मायाबलाद्युद्धे विनाशिताः। भ्रातरो मम पुत्राश्च सेनानाथाः सहस्रशः॥१२॥

तस्याः स्त्रियाः प्रमत्तायाः कण्ठोत्थैः शोणितद्रवैः।
भ्रातृपुत्रमहाशोकवह्निं निर्वापयाम्यहम्॥१३॥

गच्छ रे कुटिलाक्ष त्वं सज्जीकुरु पताकिनीम्। इत्युक्त्वा कठिनं वर्म वज्रपातसहं महत्॥१४॥
दधानो भुजमध्येन बध्नन्पृष्ठ तथेषुधी। उद्दाममौर्विनिःश्वासकठोरं भ्रामयन्धनुः॥१५॥

हयग्रीव बोले कि हे महाप्राज्ञ आगस्त्य जी अब सब पापों को नष्ट करने वाले अणिमा आदि गुणों को प्रदान करने वाले बुरे समयों में और पुण्य समयों में सिद्धि प्रदान करने वाले, पापों का नष्ट करने वाले, पाँच पर्वों में कीर्ति प्रदान करने वाले ललितेश्वरी देवी के इस पुण्य चरित को सुनिये।।४-५।। वह है कि जब रण में अपने दोनों भाइयों विशुक्र और विषंग का वध सुना, तब उनका वध सुनकर दैत्यराज भण्ड महान् शोक से युक्त होकर बहुत अधिक विलाप करने लगा।।६।। और तब वह अपने केशों को बिखेर कर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और अपने भाइयों की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी, वह कुछ श्वास भी न ले सका।।७।। पुनः पुनः उठ उठ कर बहुत अधिक विलाप करता हुआ अनेकों बार अपने मन्त्री कुटिलाक्ष द्वारा समझाया जाता हुआ, वह क्रोधित हो गया।।८।।

अपने समस्त परिवार के विनाश से क्रोधित फाल को वहन करता हुआ अंगार के समान लाल आँखें कर काले नाग की भाँति श्वास लेता हुआ शीघ्र बार-बार तलवार और धनुषों को छूकर, क्रोध से हुंकार भरता हुआ एवं प्रलयकालीन मेघ की तरह गरजता हुआ वह दैत्य राज भण्ड क्रोध से भौंहे घुमाने वाले अतिक्रूर सेनापति कुटिलाक्ष से बोला।।९-११।। जिस दुष्ट स्त्री ने युद्ध में माया बल से मेरे भाइयों और पुत्रों का विनाश कर दिया तथा हजारों सेनापतियों को उस प्रमत्त स्त्री के कण्ठ से निकले हुए रक्त से भ्राताओं और पुत्रों की महाशोकाग्नि को मैं शान्त करूँगा।।१२-१३।। इसलिये अरे कुटिलाक्ष तुम जाओ और सेना को तैयार करो। इस प्रकार कहकर वज्रपात को भी सहन करने वाले कठिन कवच को भुजाओं के मध्य छाती पर धारण करता हुआ तथा पीठ पर तरकश बाँधता हुआ तथा कठोर प्रत्यञ्चा वाले कठोर धनुष को धारण करता हुआ प्रलयकालीन अग्नि के समान क्रोधित होकर अपने

कालाग्निरिव संक्रुद्धो निर्जगाम निजात्पुरात्। तालजंघादिकैः सार्द्धं पूर्वद्वारे निवेशिते॥१६॥
चतुर्भिर्धृतशस्त्रौघैर्धृतवर्मभिरुद्धतैः। पञ्चत्रिंशच्चमूनाथैः कुटिलाक्षपुरःसरैः॥१७॥
सर्वसेनापतींद्रेण कुटिलाक्षेण स क्रुधा। मिलितेन च भण्डेन चत्वारिंशच्चमूवराः॥१८॥
दीप्तायुधा दीप्तकेशा निर्जग्मुर्दीप्तकंकटाः।
द्विसहस्त्राक्षौहिणीनां पञ्चाशीतिः पराधिका॥१९॥
तदेनमन्वगादेकहेलया मथितुं द्विषः। भण्डासुरे विनिर्याते सर्वसैनिकसंकुले॥२०॥
शून्यके नगरे तत्र स्त्रीमात्रमवशेषितम्। आभिलो नाम दैत्येंद्रो रथवर्यो महारथः।
सहस्त्रयुग्यसिंहाढ्यमारुरोह रणोद्धतः॥२१॥
तत्वरे विज्वलज्ज्वालाकालाग्निरिंव दीप्तिमान्।
घातको नाम वै खड्गश्चंद्रहाससमाकृतिः॥२२॥
इतस्ततश्चलंतीनां सेनानां धूलिरुत्थिता। वोढुं तासां भरं भूमिरक्षमेव दिवं ययौ॥२३॥
केचिद्भूमेरपर्याप्ताः प्रचेलुर्व्योमवर्त्मना। केषांचित्स्कंधमारूढाः केचिच्चेलुर्महारथाः॥२४॥
न दिक्षु न च भूचक्रे न व्योमनि च ते ममुः। दुःखदुखेन ते चेलुरन्योन्याश्लेषपीडिताः॥२५॥
अत्यंत सेनासंमर्दाद्रथचक्रैर्विचूर्णिताः। केचित्पादेन नागानां मर्दिता न्यपतन्भुवि॥२६॥

नगर से निकल पड़ा।।१४-१५½।। उस समय उसके साथ पूर्वद्वार पर नियुक्त तालजंघादिक थे तथा चार शस्त्रों को धारण करने वाले कवचों से युक्त पैंतीस सेनापति थे, जनके आगे प्रधान सेनापति कुरिलाक्ष थे।।१५½-१७।। इस प्रकार सब सेनापतियों कुटिलाक्ष और भण्डासुर का मिलाकर कुछ चालीस मुख्य श्रेष्ठ सेनापति थे।।१८।। दो सौ पिचासी अक्षौहिणी सेना चमकते हुए आयुधों, चमकते हुए केशों और चमकते हुए कवचों के साथ दैत्यराज भण्ड के साथ निकल पड़ी। यह सेना शत्रु को नष्ट करने के लिए एक बार ही पूरी शक्ति से आक्रमण करने वाली थी।।१९-१९½।। समस्त सेना के साथ भण्डासुर जब नगर से निकल गया, तब उस शूने नगर में केवल स्त्रियां ही रह गयीं थीं।।१९½-२०½।। तब वहाँ आमिल नामक दैत्यराज जो महारथी और युद्ध में उच्च श्रेणी की कुशलता रखता था, वह हजार सिंह जुड़े हुए रथ पर चढ़ गया।।२१।। उसके हाथ में विशेष जलती ज्वाला वाली प्रलयाग्नि के समान चमकती घातक नाम की चन्द्रहास के समान आकृति वाली तलवार थी।।२२।। इधर चलती हुई सेनाओं की उठी हुई धूलि, सेना के भार को सहने के लिए आकाश में चली गयीं। भाव यह कि उस सेना का इतना अधिक भार था कि अगर धूलि उठकर स्वर्ग को न जाती तो भूमि भी सेना के भार को सहन न कर पाती। धूलि का स्वर्ग को जाने से यह भी ध्वनित होता है कि इतनी अधिक धूलि उठी कि उसने पृथ्वी पर भार इतना कम कर दिया कि वह पृथ्वी सेना के भारको आसानी से सह सके। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार का भी प्रयोग है।।२३।। सेना में कुछ लोगों को तो भूमि ही कम पड़ गयी, इसलिये वे आकाशमार्ग से चले। यहाँ तक कि चलने में भूमि कम पड़ जाने के कारण कुछ सैनिकों के कंधों पर चढ़कर कुछ महारथी चले।।२४।। यहाँ तक न दिशाओं में जगह रही, न भूचक्र में जगह रही और न आकाश में ही जगह रह गयी, तब कुछ सैनिक दुःख दुःख के साथ एक-दूसरे से सटते हुए चले।।२५।। वहाँ कुछ लोग चलती हुई सेना के पैरों कुचल गये, कुछ रथ के पहिये के नीचे चूर्ण बन गये और कुछ हाथियों के

इत्थं प्रचलिता तेन समं सर्वैश्च सैनिकैः। वज्रानिष्पेषसदृशो मेघनादो व्यधीयत॥२७॥
तेनातीव कठोरेण सिंहनादेन भूयसा। भण्डदैत्यमुखोत्थेन विदीर्णमबवज्जगत्॥२८॥
सागराः शोषमापन्नाश्चंद्रार्कौ प्रपलायितौ। उडूनि न्यपतन्व्योम्नो भूमिर्दोलायिताभवत्॥२९॥
दिङ्नागाश्चाभवंस्त्रस्ता मूर्च्छिताश्च दिवौकसः।
शक्तीनां कटकं चासीदकाण्डत्रासविह्वलम्॥३०॥
प्राणान्संधारयामासुः कथंचिन्मध्य आहवे। शक्तयो भयविभ्रष्टान्यायुधानि पुनर्दधुः॥३१॥
वह्निप्राकारवलयं प्रशांतं पुनरुत्थितम्। दैत्येंद्रसिंहनादेन चमूनाथधनुःस्वनैः॥३२॥
क्रंदनैश्चापि योद्धृणामभूच्छब्दमयं जगत्। तेन नादेन महता भंडदैत्यविनिर्गमम्।
निश्चित्य ललिता देवी स्वयं योद्धुं प्रचक्रमे॥३३॥
अशक्यमन्यशक्तीनामाकलय्य महाहवम्। भण्डदैत्येन दुष्टेन स्वयमुद्योगमास्थिता॥३४॥
चक्रारजरथस्तस्याः प्रचचाल महोदयः। चतुर्वेदमहाचक्रपुरुषार्थमहाभयः॥३५॥
आनन्दध्वजसंयुक्तो नवभिः पर्वभिर्युतः। नवपर्वस्थदेवीभिराकृष्टगुरुधन्विभिः॥३६॥
परार्धाधिकसंख्यातपरिवारसमृद्धिभिः। पर्वस्थानेषु सर्वेषु पालितः सर्वतो दिशम्॥३७॥
दशयोजनमुन्नद्धश्चतुर्योजन विस्तृतः। महाराज्ञीचक्रराजो रथेंद्रः प्रचलन्बभौ॥३८॥
तस्मिन्प्रचलिते जुष्टे श्यामया दंडनाथया। गेयचक्रं तु बालाग्रे किरिचक्रं तु पृष्ठतः॥३९॥

पैरों के मसले हुए होकर भूमि पर गिर गये।।२६।। इस प्रकार समस्त सैनिकों के साथ चलते हुये उस दैत्यराज भण्ड ने वज्रपात होने के समान मेघनाद किया।।२७।। इस प्रकार वह बार-बार घोर सिंहनाद कर रहा था, अतः उस दैत्यराज भण्ड के मुख से उठे हुए घोर सिंहनाद से समस्त संसार विदीर्ण हो गया।।२८।। सागर सूखने लगे, चन्द्र और सूर्य भागने लगे तारागण (नक्षत्र) आकाश से नीचे गिरने लगे तथा पृथ्वी झूले की भाँति झूलने लगी।।२९।। दिशाओं के हाथी (दिग्गज) भयभीत हो गये, देवता लोग मूर्च्छित हो गये तथा असमय में उत्पन्न भय से व्याकुल शक्तियों की सेना हो गयी।।३०।। शक्तियां किसी भी प्रकार युद्ध के मध्य प्राण धारण कर रही थीं तथा वे भय से भ्रमित होकर आयुधों को पुनः धारण कर रही थीं। सेनापतियों के धनुष की टंकारों की ध्वनियों से तथा उस दैत्यराज भण्ड के नाद से, शक्ति सेना शिविर के चारों ओर आग का प्राकार (परकोटा) प्रशान्त होकर पुनः धधक उठा।।३१-३२।।

योद्धाओं के चिल्लाने से सारा संसार शब्दमय हो गया और भण्डासुर के उस नाद से श्री ललिता देवी ने समझ लिया कि अब भण्डासुर युद्ध क्षेत्र में आ गया, अतः वे भी स्वयं युद्ध करने चली आयीं।।३३।। अन्य शक्तियों की युद्ध में उसके साथ असमर्थता समझकर वे ललितादेवी भण्ड दैत्य के साथ युद्ध करने को स्वयं ही तैयार हो गयीं।।३४।। तब उन देवी का महोन्नत चक्रराजरथ चल दिया, जो रथ चार वेदों के महाचक्र पुरुषार्थ का महाभय रूप है।।३५।। तथा वह रथ आनन्द ध्वजा से संयुक्त था तथा नौ पर्वों से युक्त था। उस रथ के नवा पर्व (भाग) पर विशाल धनुषों को खींचे देवियां स्थित थीं। उन देवियों की संख्या परार्ध से अधिक थी, जो परिवार से समृद्ध थी।।३६-३६½।। सब पर्व स्थानों में सब दिशाओं में रक्षित पालित दशयोजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत महाराज्ञी का चक्रराजरथ चलता हुआ सुशोभित हुआ।।३६½-३८।। महाराज्ञी ललितेश्वरी के उस रथ के चलने पर श्यामला देवी दण्डनाथा का गेयचक्र तो बाला के आगे और किरिचक्र उसके पीछे था।।३९।।

अन्यासामपि शक्तीनां वाहनानि परार्द्धशः। नृसिंहोष्ट्रनरव्यालमृगपक्षिहयास्तथा॥४०॥
गजभेरुण्डशरभ व्याघ्रवातमृगास्तथा। एतादृशश्च तिर्यंचोऽप्यन्ये वाहनतां गताः॥४१॥
मुहुरुच्चावचाः शक्तीर्भंडासुरवधोद्यताः। योजनायामविस्तारमपि तद्द्वारमंडलम्।
वह्निप्राकारचक्रस्य न पर्याप्तं चमूपतेः॥४२॥
ज्वालामालिनिका नित्या द्वारस्यात्यंतविस्तृतिम्।
वितताान समस्तानां सैन्यानां निर्गमैषिणी॥४३॥
अथं सा जगतां माता महाराज्ञी महोदया। निर्जगामाग्निपुरतो वरद्वारात्प्रतापिनी॥४४॥
देवदुंदुभयो नेदुः पतिताः पुष्पवृष्टयः। महामुक्तातपत्रं तद्दिवि दीप्तमदृश्यत॥४५॥
निमित्तानि प्रसन्नानि शंसकानि जयश्रियाः। अभवँल्ललितासैन्ये उत्पातास्तु द्विषां बले॥४६॥
ततः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि। प्रसर्पद्विशिखैः स्तोमबद्धान्धतमसच्छटम्॥४७॥
हन्यमानगजस्तोमसृतशोणितबिंदुभिः। ह्रीयमाणशिरश्छन्नदैत्यश्वेततातपत्रकम्॥४८॥
न दिशो न नभो नागा न भूमिर्न च किंचन। दृश्यते केवलं दृष्टं रजोमात्रं च मूर्च्छितम्॥४९॥
नृत्यत्कबंधनिवहाविर्भूततटपादपम्। दैत्यकेशसहस्त्रैस्तु शैवालांकुरकोमला॥५०॥
श्वेतातपत्रयवलयश्वेतपंकजभासुरा। चक्रकृत्तकरिग्रामपादकूर्मपरंपरा॥५१॥

अन्य शक्तियों के वाहनों की संख्या परार्द्ध (एकशंख) थी। नृसिंह, ऊँट नर, व्याल, मृग, पक्षि, घोड़ा, हाथी, भेरुण्ड (शृङ्गाल) शरभ, व्याघ्र तथा वातमृग ऐसे ही अन्य पक्षी भी उनके वाहन थे।।४१।। बार-बार ऊँची नींची शक्तियां भण्डासुर के वध के लिये उद्यत थीं। इसलिये शक्ति सेना के शिविर के जो द्वार थे, उनका क्षेत्रफल विस्तार तथा सुरक्षा की विशेष योजना की जा रही थी। सेनापति के लिये शिविर के चारों ओर बना हुआ अग्नि का प्राकार सुरक्षा के लिये पर्याप्त नहीं था।।४२।। अतः ज्वालामालनिका नित्या ने शिविर के द्वारों पर अत्यन्त विस्तृत सुरक्षा व्यवस्था कर दी थी। समस्त सैनिकों के निकलने की इच्छा का विस्तार कर दिया गया था। अर्थात् द्वारों पर ऐसी व्यवस्था कर दी गयी थी कि सेना आसानी से निकल सके।।४३।। इसके बाद वे संसार की माता महाराज्ञी महोदया श्री ललितेश्वरी पराक्रमशालिनी देवी अग्निपुर के वर द्वार से बाहर निकलीं।।४४।।

अतः उन महाराज्ञी के युद्धार्थ बाहर निकलने पर देवता लोग ढोल नगाड़े बजाने और फूलों की वर्षा करने लगे। महामोतियों का छत्र आकाश चमकता हुआ दिखाई देने लगा।।४५।। ललिता देवी की सेना में जयलक्ष्मी प्राप्त कराने वाले शुभ शकुन होने लगे तथा शत्रुओं की सेना में उत्पात रूप अपशकुन हो रहे थे।।४६।। उसके बाद दोनों दलों में युद्ध होने लगा। अतः उस समय अनेक बाणों के चलने से चारों ओर घोर अन्धकार छा गया।।४७।। बाणों से मारे गये हाथियों के बहुत अधिक बहते हुए खून की बूँदों को देखकर लज्जित हुए दैंत्य अपने श्वेतछत्र से शिरको टेके हुए थे।।४८।। उस समय न दिशायें दिखाई दे रही थीं, न आकाश दिखाई दे रहा था, न पर्वत, न भूमि कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। दिखायी दे रहा था तो केवल घोर अन्धकार।।४९।। उस समय में सिर कटे शरीर अर्थात् नाँचते ऐसे लग रहे थे मानों कि खून की नदी के किनारे वृक्ष खड़े हुए हैं तथा वहाँ मरे हुए दैत्यों के केश खून की नदी में शिवार के कोमल अंकुर की भाँति लग रहे थे।।५०।। दैत्यों के जो श्वेत छत्र थे, वे खून की नदी में श्वेत कमल की भाँति चमक रहे थे तथा शक्ति सेना के चक्रों से काटे गये हाथी नदी में कछुओं की परम्परा को सिद्ध कर

शक्तिध्वस्तमहादैत्यगलगंडशिलोच्चया। विलूनकांडैः पतितैः सफेना बल चामरैः॥५२॥
तीक्ष्णासिवल्लरीजालैर्निबिडीकृततीरभूः। दैत्यवीरेक्षणश्रेणिमुक्तिसंपुटभासुरा॥५३॥
दैत्यवाहनसंघातन क्रमीनशातुकाल। प्रावहच्छोणितनदी सेनयोर्युध्यमानयोः॥५४॥
इत्थं प्रववृते युद्धं मृत्योश्च त्रासदायकम्। चतुर्थयुद्धदिवसे प्रातरारभ्यभीषणम्।
प्रहरद्वयपर्यंतं सेनयोरुभयोरपि॥५५॥
ततः श्रीललितादेव्या भंडस्याथाभवद्रणः। अस्त्रप्रत्यस्त्रसंक्षोभैस्तुमुलीकृतदिक्तटः॥५६॥
धनुर्ज्यातलटंकारहुंकारैरतिभीषणः। तूणीरवदनात्कृष्टधनुर्वरविनिःसृतैः।
विमुक्तैर्विशिखैर्भीमैराहवे प्राणहारिभिः॥५७॥
हस्तलाघववेगेन न प्राज्ञायत किंचन। महाराज्ञीकरांभोजव्यापारं शरमोक्षणे।
श्रृणु सर्वं प्रवक्ष्यामि कुम्भसंभव सङ्गरे॥५८॥
संधाने त्वेकधा तस्य दशधा चापनिर्गमे। शतधा गगने दैत्यसैन्यप्राप्तौ सहस्त्रधा।
दैत्यांगसंगे संप्राप्ताः कोटिसंख्याः शिलीमुखाः॥५९॥

रहे थे; क्योंकि हाथी और कच्छप (कछुओं) का रंग एक समान ही होता है, अतः उस खून की नदी में कटकर पड़े हुए हाथी कछुओं की भाँति दिखायी दे रहे थे।।५१।। जैसे कि नदी में बाढ़ आती है, तो वह पहाड़ों को तोड़ती है तथा शिलाओं के गिरने से, जो उसमें फेन, बुदबुदे झाग उठता है, अतः वहाँ ठीक उसी प्रकार उस खून की बाढ़ वाली नदी में दैत्यों के गले और गण्डस्थलों के गिरने से तथा कटकर गिरे हुए शरीर के टुकड़ों से सेनापतियों पर ढुलने वाले चँवरों के टूट-फूट कर गिरने से ऐसा लगता था कि मानों वह फेनयुक्त खून की नदी हो; क्योंकि चँवरों का रंग सफेद होता है तथा फेन भी सफेद ही होता है। अतः बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव भी है।।५२।। तेज तलवारों रूपी लताओं के समूहों से खून की नदी के किनारों पर पक्षियों के घोंसले बने हुए के समान लग रहे थे, जो दैत्य वीरों के मुक्ति के क्षण को प्रकाशित कररहे थे।।५३।। उस समय में जो दैत्यों के वाहन टूट गये थे, वे उस खून की नदी में व्याकुल नाके (मगर) और मछलियों की भाँति प्रतीत हो रहे थे। ऐसी उस दोनों सेनाओं के युद्ध में खूनकी नदी बहने लगी।।५४।। इस प्रकार का भयावह युद्ध दोनों सेनाओं के बीच हो रहा था। वह युद्ध चौथे दिवस में भी प्रातःकाल दो पहर तक युद्ध चल ही रहा था।।५५।। तब दूसरे पहर श्री ललिता देवी और भण्डासुर का युद्ध प्रारम्भ हो गया, तब वहाँ दोनों ओर के अस्त्र-शस्त्रों के टकराने से धनुष की प्रत्यञ्चाओं के तलों की टंकार और हुंकार ध्वनियों से तरकश के मुख से खींचकर श्रेष्ठ धनुष पर रखकर छोड़े गये प्राणहरण करने वाले तीक्ष्ण बाणों से समस्त दिशायें भयंकर कोलाहल और हाहाकार की आवाजों से गूँज उठीं।।५६।। उस समय महाराज्ञी ललिता देवी के करकमल व्यापार से जो बाण छोड़े जा रहे थे, वे इतने हल्के हाथ से चलाये जा रहे थे कि पता ही नहीं चलता था कि कब धनुष पर रखा, कब चलाया? अर्थात् उस समय कुछ भी पता नहीं चल रहा था।।५७।।

अब हयग्रीव अगस्त्य मुनि से बोले कि हे अगस्त्य! अब सुनो, उस युद्ध में जो हुआ, वह सब मैं तुम्हें बताता हूँ कि वे देवी धनुष पर एक बाण रखती थी कि उस धनुष से दश बाण निकलते थे और फिर आकाश में सौ हो जाते थे तथा वे बाण जब सेना में पहुँचते थे तो तब एक हजार बाण हो जाते थे तथा जब शत्रु सेना के अंगों पर प्रहार करते थे, तब एक करोड़ हो जाते थे। इस प्रकार एक छोड़े गये बाण के एक करोड़ बाण बन जाते थे।।५८-५९।।

परांधकारं सृजती भिंदती रोदसी शरैः। मर्माभिनत्प्रचंडस्य महाराज्ञी महेषुभिः॥६०॥
वहत्कोपारुणं नेत्रं ततो भंडः स दानवः। ववर्ष शरजालेन महता ललतेश्वरीम्॥६१॥
अंधतामिस्त्रकं नाम महास्त्रं प्रमुमोच सः। महातरणिबाणेन तन्नुनोद महेश्वरी॥६२॥
पाखंडास्त्रं महावीरो भंडः प्रमुमुचे रणे। गायत्र्यस्त्रं तस्य नुत्यै ससर्ज जगदंबिका॥६३॥
अंधास्त्रमसृजद्भंडः शक्तिदृष्टिविनाशनम्। चाक्षुष्मतमहास्त्रेण शमयायास तत्प्रसूः॥६४॥
शक्तिनाशाभिधं भंडो मुमोचास्त्रं महारणे। विश्वावसोरथास्त्रेण तस्य दर्पमपाकरोत्॥६५॥
अन्तकास्त्रं ससर्जोच्चैः संक्रुद्धो भंडदानवः। महामृत्युंजयास्त्रेण नाशयामास तद्बलम्॥६६॥
सर्वास्त्रस्मृतिनाशाख्यमस्त्रं भंडो व्यमुंचत। धारणास्त्रेण चक्रेशी तद्बलं समनाशयत्॥६७॥
भयास्त्रमसृद्भंडः शक्तीनां भीतिदायकम्। अभयंकरमैंद्रास्त्रं मुमुचे जगदंबिका॥६८॥
महारोगास्त्रमसृजच्छक्तिसेनासु दानवः। राजयक्ष्मादयो रोगास्ततोऽभूवन्सहस्त्रशः॥६९॥
तन्निवारणसिद्ध्यर्थं ललिता परमेश्वरी। नामत्रयमहामंत्रमहास्त्रं सा मुमोच ह॥७०॥
अच्युतश्चाप्यनंतश्च गोविंदस्तु शरोत्थिताः। हुंकारमात्रतो दग्ध्वा रोगांस्ताननयन्मुदम्॥७१॥
नत्वा च तां महेशानीं तद्भक्तव्याधिमर्दनम्।
विधातुं त्रिषु लोकेषु नियुक्ताः स्वपदं ययुः॥७२॥

उस समय महाराज्ञी ललिता देवी बाणों से असीमित अन्धकार पैदा कर रही थीं, आकाश और पृथ्वी का भेदन कर रही थीं तथा महान् बाणों से प्रचण्ड दैत्य के मर्मस्थल का भेदन कर रही थीं।।६०।। यह सब देखकर क्रोध से लाल-लाल आँखे कर उस दानव ने ललितेश्वरी पर महान् बाणों को बरसाना प्रारम्भ कर दिया।।६१।। भण्डासुर ने उन पर अन्धतामिस्त्र नामक महास्त्र को छोड़ दिया। उसको महेश्वरी ने महातरणिबाण से बाट किया।।६२।। फिर उसके बाद उस दैत्य ने महेश्वरीपर पाखण्डास्त्र का प्रहार कर दिया, उसको काटने के लिये जगदम्बिका ने गायत्र्यस्त्र को छोड़ दिया।।६३।। उसके बाद भण्डासुर ललिता देवी की दृष्टि (देखने की शक्ति) को नष्ट करने के लिये अन्धास्त्र को उत्पन्न कर चला दिया, उसकी उत्पत्ति को देवी ने चाक्षुष्मत महा अस्त्र से शान्त कर दिया।।६४।। फिर भण्डासुर ने शक्तिनास नामक अस्त्र को उस महारण में छोड़ दिया, उसके दर्प को देवी ने विश्वावसु अस्त्र से दूर कर दिया।।६५।। फिर क्रोधित भण्डासुर ने सबसे उच्चस्तरीय, सबका अन्त करने वाले, अन्तकास्त्र को चला दिया तो महाराज्ञी ललितेश्वरी ने उस अन्तकास्त्र के बल को महामृत्युञ्जय अस्त्र से नष्ट कर दिया।।६६।। भण्डासुर ने फिर सर्वास्त्रस्मृतिनाश नामक अस्त्र को छोड़ा, अतः उसके बल को देवी ने धारणास्त्र से नष्ट कर दिया।।६७।। फिर भण्डासुर ने शक्तियों को भयभीत करने वाले भयास्त्र का प्रहार कर दिया, उसको काटने के लिये जगदम्बिका ने अभय कर देने वाले ऐन्द्रास्त्र को चला दिया।।६८।। तब दानव ने शक्ति सेनाओं पर महारोग नामक अस्त्र को उत्पन्न कर चला दिया, जिससे शक्ति सेना में हजारों को राजयक्ष्मा आदि रोग हो गये।।६९।। उनके निवारण के लिए ललिता परमेश्वरी देवी ने नामत्रय महामन्त्र नामक महान् अस्त्र को छोड़ दिया।।७०।। अच्युत, अनन्त और गोविन्द इन तीनों नामों वाले मन्त्र से अभिमन्त्रित मंत्र से निकले हुए बाण ने हुंकार मात्र से सब रोगों को नष्ट कर दिया। तब वे छोड़े गये बाण महेश्वरी ललिता देवी को नमस्कार करके समस्त रोगों का नाश करने के लिये तीनों लोकों में नियुक्त होकर अपने पद को प्राप्त हुये। अर्थात् वे तीन नामों से अभिमंत्रित बाण तीनों लोकों में रोग निवारक मन्त्र के रूप में स्थापित

आयुर्नाशनमस्त्रं तु मुक्तवान्भंडदानवः। कालसंकर्षणीरूपमस्त्रं राज्ञी व्यमुंचत॥७३॥
महासुरास्त्रमुद्दामं व्यसृजद्भंडदानवः। ततः सहस्रशो जाता महाकाया महाबलाः॥७४॥
मधुश्च कैटभश्चैव महिषासुर एव च। धूम्रलोचनदैत्यश्च चंडमुण्डादयोऽसुराः॥७५॥
चिक्षुभश्चामरश्चैव रक्तबीजोऽसुरस्तथा। शुम्भश्चैव निशुम्भश्च कालकेया महाबलाः॥७६॥
धूम्राभिधानाश्च परे तस्मादस्त्रात्समुत्थिताः। ते सर्वे दानवश्रेष्ठाः कठोरैः शस्त्रमंडलैः॥७॥
शक्तिसेनां मर्दयंतो नर्दन्तश्च भयंकरम्। हाहेति क्रन्दमानाश्च शक्तयो दैत्यमर्दिताः॥७८॥
ललितां शरणं प्राप्ताः पाहि पाहीति सत्वरम्। अथ देवी भृशं क्रुद्धा रुषाट्टहासमातनोत्॥७९॥
ततः समुत्थिता काचिद्दुर्गा नाम यशस्विनी। समस्तदेवतेजोभिर्निर्मिता विश्वरूपिणी॥८०॥
शूलं च शूलिना दत्तं चक्रं चक्रिसमर्पितम्। शंखं वरुणदत्तश्च शक्तिं दत्तां हविर्भुजा॥८१॥
चापमक्षयतूणीरौ मरुद्दत्तौ महामृधे। वज्रिदत्तं च कुलिशं चपकं धनदार्पितम्॥८२॥
कालदंडं महादंडं पाशं पाशधरार्पितम्। ब्रह्मदत्तां कुण्डिकां च घंटामैरावतार्पिताम्॥८३॥
मृत्युदत्तौ खड्गखेटौ हारं जलधिनार्पितम्। विश्वकर्मप्रदत्तानि भूषणानि च बिभ्रती॥८४॥
अङ्गैः सहस्रकिरणश्रेणिभासुररश्मिभिः। आयुधानि समस्तानि दीपयंति महोदयैः॥८५॥
अन्यदत्तैरथान्यैश्च शोभमाना परिच्छदैः। सिंहवाहनमारुह्य युद्धं नारायणी व्यधात्॥८६॥

हो गये।।७१-७२।। उसके बाद भण्डासुर ने आयुर्नाशन अस्त्र को छोड़ दिया। तब उसके काट के लिये महाराज्ञी ने कालकर्षणी रूप अस्त्र को छोड़ दिया।।७३।। फिर उस दानव ने महासुर नामक भीषण अस्त्र को चला दिया, उस अस्त्र के चलते ही विशाल शरीर वाले महाबली राक्षस पैदा हो गये।।७४।। उनमें मधु कैटभ और महिषासुर भी थे। धूम्रलोचन दैत्य चण्डमुण्ड आदि असुर भी थे।।७५।। चिक्षुभ, अमर, रक्तबीज असुर तथा शुम्भ निशुम्भ तथा महाबली कालकेय थे।।७६।। धूम्रासुर जैसे दैत्य उस अस्त्र से उठ खड़े हुए, वे सभी श्रेष्ठ दानव कठोर शस्त्र समूहों से युक्त थे।।७७।। वे सब शक्ति सेना का मर्दन कर रहे थे और भयंकर गर्जना कर रहे थे। तब उन दैत्यों द्वारा मर्दित शक्तियां चिल्लाने लगी शक्ति सेना में हाहाकार मच गया।।७८।। वे सब शक्तियाँ ललिता देवी की शरण में पहुँची और हमें बचाओ, हमें बचाओ यह चिल्लाने लगीं। इसके बाद श्री ललितेश्वरी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं और क्रोध से उन्होंनें भारी अट्टहास किया।।७९।। उसके बाद उनके अट्टहास से समस्त देवताओं के तेज से निर्मित कोई दुर्गा नाम यशस्विनी देवी उठ खड़ी हुईं।।८०।। जिसको कि शूलधारी भगवान् शंकर ने शूल प्रदान किया था, विष्णु ने चक्र प्रदान किया था, वरुण ने शंख और अग्नि देवता ने शक्ति प्रदान की थी।।८१।।

उनको धनुष और कभी महायुद्ध में बाणों से रहित न होने वाला तरकश मरुत् देव ने प्रदान किया था, उनको इन्द्र द्वारा दिया हुआ कुलिश (वज्र) था और कुबेर द्वारा दिया गया मदिरा का प्याला था।।८२।। यमराज ने उन्हें कालदण्ड नामक महादण्ड दिया था और वरुण देवता ने पाश दिया था। ब्रह्मा द्वारा दी गयी कुण्डिका थी तथा ऐरावत का दिया हुआ घण्टा था।।८३।। मृत्यु के देवता ने उन्हें खड्ग और खेट दिये थे और समुद्र ने हार प्रदान किया था तथा विश्वकर्मा के दिये गये आभूषणों को वे धारण कर रही थीं।।८४।। सूर्य की रश्मियों से चमकने वाले अगों के महान् उदय से समस्त आयुध चमक रहे थे।।८५।। इसके बाद अन्य देवों द्वारा अन्य अन्य वस्त्र प्रदान किये गये वस्त्रों से सुशोभित सिंह वाहन पर आरूढ़ नारायणी युद्ध करने लगी।।८६।।

तदा ते महिषप्रख्या दानवा विनिपातिताः। चंडिकासप्तशत्यां तु यथा कर्म पुराकरोत्॥८७॥
तथैव समरं चक्रे महिषादिमदापहम्। तत्कृत्वा दुष्करं कर्म ललितां प्रणनाम सा॥८८॥
मूकास्त्रमसृजद्दुष्टः शक्तिसेनासु दानवः। महावाग्वादिनी नाम ससर्जास्त्रं जगत्प्रसूः॥८९॥
विद्यारूपस्य वेदस्य तस्करानसुराधमान्। ससर्ज तत्र समरे दुर्मदो भण्डदानवः॥९०॥
दक्षहस्ताङ्गुष्ठनखान्महाराज्ञ्या तिरस्कृतः। अर्णवास्त्रं महावीरो भण्डदैत्यो रणेऽसृजत्॥९१॥
तत्रोद्दामपयःपूरे शक्तिसैन्यं ममज्ज च। अथ श्रीललितादक्षहस्ततर्जनिकानखात्।
आदिकूर्मः समुत्पन्नो योजनायतविस्तरः॥९२॥
धृतास्तेन महाभोगखर्परेण प्रथीयसा। शक्तयो हर्षमापन्नाः सागरास्त्रभयं जहुः॥९३॥
तत्सामुद्रं च भगवान्सकलं सलिलं पपौ। हैरण्याक्षं महास्त्रं तु विजहौ दुष्टदानवः॥९४॥
तस्मात्सहस्त्रशो जाता हिरण्याक्षा गदायुधाः। तैर्हन्यमाने शक्तीनां सैन्ये संत्रासविह्वले।
इतस्ततः प्रचलिते शिथिले रणकर्मणि॥९५॥
अथ श्रीललितादक्षहस्तमध्याङ्गुलीनखात्। महावराहः समभूच्छ्वेतः कैलाससंनिभः॥९६॥
तेन वज्रसमानेन पोत्रिणाभिविदारिताः। कोटिशस्ते हिरण्यास्ता मर्द्यमानाः क्षयं गताः॥९७॥
अथ भण्डस्त्वतिक्रोधाद्भ्रुकुटीं विततान ह।
तस्य भ्रुकुटितो जाता हिरण्याः कोटिसंख्यकाः॥९८॥

तब उन नारायणी देवी ने महिषासुर आदि प्रमुख दानवों को मार कर गिरा दिया। चण्डिका ने सप्तशती में जो कार्य किया था, वही कार्य करके दिखा दिया।।८७।। तथा उन्होंने उसी प्रकार से युद्ध भी किया और महिषासुर के मद को नष्ट कर दिया, उस अत्यन्त कठिनतम कार्य को करने के बाद उन्होंने ललिता देवी को प्रणाम किया।।८८।। इसके बाद दुष्ट भण्ड दैत्य ने शक्ति सेनाओं पर मूक अस्त्र चलाया, तो श्री ललिता देवी ने महावाग् वादिनी नाम अस्त्र को उत्पन्न कर चला दिया।।८९।। पुनः दुर्मद भण्डासुर ने वहाँ युद्ध में विद्यारूपी वेद के तस्कर अधम असुरों को उत्पन्न कर दिया, उनको दाँये हाथ के अँगूठे के नाखून से महाराज्ञी ने बाहर कर दिया।।९०-९०½।। उसके बाद महावीर दैत्यराज भण्ड ने युद्ध में अर्णवास्त्र (समुद्र बनाने वाला अस्त्र) उत्पन्न कर चला दिया। उस बहुत अधिक बाढ़ पैदा करने वाले अस्त्र ने शक्ति सेना को डुबो दिया।।९०½-९१½।। इसके बाद श्री ललिता देवी ने दाँयें हाथ की तर्जनी अंगुली के नाखून से योजनायत विस्तार वाला आदिकूर्म (कच्छप) उत्पन्न कर दिया।।९१½-९२।। उस आदिकूर्म ने अपने अत्यन्त विशाल महाभोगखर्पर से उस अर्णवास्त्र को धर लिया। तब शक्तियां प्रसन्न हो गयीं; क्योंकि सागरास्त्र का भय नष्ट हो गया।।९३।।

उन भगवान् आदिकूर्म ने समस्त समुद्र के जल को पी लिया।।९३½।। फिर दुष्ट दानव हैरण्याक्ष नामक महास्त्र को प्रहार कर दिया। उस अस्त्र से गदा अस्त्र के साथ हजारों हिरण्याक्ष पैदा हो गये। उन हिरण्याक्षों द्वारा शक्तियों के मारे जाने से शक्ति सेना भय से व्याकुल हो गयी और शक्ति सेना रणकर्म में शिथिल होकर इधर उधर भागने लगी।।९३½-९५।। इसके बाद श्री ललिता ने दक्षिण हाथ की मध्य अंगुलि के नाखून से कैलास पर्वत के समान श्वेत महावाराह को उत्पन्न कर दिया।।९६।। उस वज्र के सामन दाँतों वाले महावाराह ने करोड़ों हिरण्याक्षों को फाड़कर मार डाला।।९७।। इसके बाद भण्डासुर ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपनी भौंहों का विस्तार किया, तब

ज्वलदादित्यवद्दीप्ता दीपप्रहरणाश्च ते। अमर्दयच्छक्तिसैन्यं प्रह्लादं चाप्यमर्दयन्।।९९।।
यः प्रह्लादोऽस्ति शक्तीनां परमानन्दलक्षणः।
स एव बालको भूत्वा हिरण्यपरिपीडितः॥१००॥
ललितां शरणं प्राप्तस्तेन राज्ञी कृपामगात्। अथ शक्त्या नन्दरूपं प्रह्लादं परिरक्षितुम्॥१०१॥
दक्षहस्तानामिकाग्रं धुनोति स्म महेश्वरी। तस्माद् धूतसटाजालः प्रज्वलल्लोचनत्रयः॥१०२॥
सिंहास्यः पुरुषाकारः कंठस्याधो जनार्दनः।
नखायुधः कालरुद्ररूपी गोराट्टहासवान्॥१०३॥
सहस्रसंख्यदोर्दण्डो ललिताज्ञानुपालकः। हिरण्यकशिपून्सर्वान्भंडभ्रुकुटिसंभवान्॥१०४॥
क्षणाद्विदारयामास नखैः कुलिशकर्कशैः। बलींद्रास्त्रं महाघोरं सर्वदैवतनाशनम्।
अमुंचल्ललिता देवी प्रतिभंडमहासुरम्॥१०५॥
तदस्त्रदर्पनाशाय वामनाः शतशोऽभवन्। महाराज्ञीदक्षहस्तकनिष्ठाग्रान्महौजसः॥१०६॥
क्षणेक्षणे वर्धमानाः पाशहस्ता महाबलाः। बलींद्रानस्त्रसंभूतान्बध्नंतः पाशबंधनैः॥१०७॥
दक्षहस्तकनिष्ठाग्राज्जाताः कामेशयोषितः।
महाकाया महोत्साहास्तदस्त्रं समनाशयन्॥१०८॥
हैहयास्त्रं समसृजद्भंडदैत्यो रणाजिरे। तस्मात्सहस्रशो जाताः सहस्रार्जुनकोटयः॥१०९॥

उसकी भौंहों से करोड़ों हिरण्यकशिपु दैव्य पैदा हो गये।।९८।। जलते हुए सूर्य के समान दीप का प्रहार करने वाले थे, उन्होंने समस्त शक्ति सेना का मर्दन कर दिया और प्रह्लाद का भी मर्दन कर दिया।।९९।। शक्तियों के बीच में शक्तियों के परमानन्द लक्षण भी जो प्रह्लाद था, वह भी बालक होकर हिरण्यकशिपु द्वारा पीड़ित हुआ।।१००।। तब वह प्रह्लाद ललिता देवी की शरण में गया और इसके बाद उस नन्दरूप प्रह्लाद की रक्षा के लिये महाराज्ञी की कृपा हो गयी।।१०१।। तब देवी ने दाँये हाथ की अनामिका अंगुलि के नाखून को रगड़ा उससे श्वेत जटासमूह वाले आग के समान जलते हुए तीन नेत्र वाले नरसिंह भगवान् पैदा हो गये।।१०२।।

उनका मुख सिंह का था और शरीर का आकार पुरुष का था अर्थात् कण्ठ से ऊपर सिंह और नीचे वे पुरुष थे। नाखून ही उनके आयुध (अस्त्र-शस्त्र) थे और कालरुद्र रूप वाले वे घोर अट्टहास कर रहे थे।।१०३।। हजारों भुजदण्ड वाले वे ललितादेवी की आज्ञा का पालन करने वाले थे। उन्होंने भण्डासुर की भौंहों से पैदा हुए समस्त हिरण्यकशिपुओं को अपने वज्र के समान कठोर नाखूनों से क्षणभर में फाड़कर फेंक दिया।।१०४-१०४½।। उसके बाद भण्ड ने बलीन्द्र नामक सब देवताओं का नाश करने वाला अस्त्र चला दिया, जिसको काटने के लिये ललिता देवी ने वामन अस्त्र को चला दिया, जिसने बलीन्द्र अस्त्र का दर्प नष्ट हो गया; क्योंकि वे सैकड़ों वामन हो गये।।१०४½-१०५½।। महाराज्ञी ने दाँये हाथ की कनिष्ठा अंगुलि से महापराक्रमी क्षण-क्षण बढ़ने वाले पाश हाथ में लिये महाबली वामनों ने अस्त्रधारी बलीन्द्रों को पाशबन्धनों से बाँध लिया।।१०५½-१०७।। उसके बाद देवी के दक्ष हाथ की कनिष्ठा अंगुलि से पैदा होने वाली महाकाया और महोत्साहा, कामेश स्त्रियों ने उस बलीन्द्र नामक अस्त्र को अच्छी तरह नष्ट कर दिया।।१०८।। फिर भण्डदैत्य ने रणक्षेत्र में हैहयास्त्र का प्रयोग कर दिया, जिससे करोड़ों सहस्रार्जुन पैदा हो गये।।१०९।।

अथ श्रीललितावामहस्तांगुष्ठनखादितः।
प्रज्वलन्भार्गवो रामः सक्रोधः सिंहनादवान्॥११०॥
धारया दारयन्नेतान्कुठारस्य कठोरया। सहस्त्रार्जुनसंख्यातान्क्षणादेव व्यनाशयन्॥१११॥
अथ क्रुद्धो भंडदैत्यः क्रोधाद्धुंकारमातनोत्। तस्माद्धुंकारतो जातश्चंद्रहासकृपाणवान्॥११२॥
सहस्त्राऽक्षौहिणीरक्षःसेनया परिवारितः। कनिष्ठं कुंभकर्णं च मेघनादं च नंदनम्।
गृहीत्वा शक्तिसैन्यं तदतिदूरममर्दयत्॥११३॥
अथ श्रीललितावामहस्ततर्जनिकानखात्। कोदंडरामः समभूल्लक्ष्मणेन समन्वितः॥११४॥
जटामुकुटवान्वल्लीबद्धतूणीरपृष्ठभूः। नीलोत्पलदलश्यामो धनुर्विस्फारयन्मुहुः॥११५॥
नाशयामास दिव्यास्त्रैः क्षणाद्राक्षससैनिकम्। मर्दयामास पौलस्त्यं कुंभकर्णं च सोदरम्।
लक्ष्मणो मेघनादं च महावीरमनाशयत्॥११६॥
द्विविदास्त्रं महाभीममसृजद्भंडदानवः। तस्मादनेकशो जाताः कपयः पिंगलोचना;॥११७॥
क्रोधेनात्यंतताम्रास्याः प्रत्येकं हनुमत्समाः।
व्यनाशयच्छक्तिसैन्यं क्रूरक्रेंकारकारिणः॥११८॥
अथ श्रीललितावामहस्तमध्यांगुलीनखात्।
आविर्बभूव तालांकः क्रोधमध्यारुणेक्षणः॥११९॥
नीलांबरपिनद्धांगः कैलासाचलनिर्मलः। द्विविदास्त्रसमुद्भूतान्कपीन्सर्वान्व्यनाशयत्॥१२०॥

इसके बाद श्री ललिता ने बाँये हाथ के अँगूठे के नाखून से क्रोध से जलते भार्गव परशुराम को पैदा कर दिया, जो सिंहनाद कर रहे थे।।११०।। जिस परशुराम ने कुठार की कठोर धार से सहस्त्रार्जुन की संख्याओं को क्षण भर में नष्ट कर दिया।।१११।। इससे क्रोधित होकर दैत्यराज भण्ड ने जोर से हुंकार पैदा की। उस हुंकार से चन्द्रहास तलवार वाला रावण पैदा हो गया, जो हजार अक्षौहिणी सेना से घिरा हुआ था, उसके साथ उसका भाई कुम्भकर्ण और उसका पुत्र मेघनाद पैदा हो गया। उन सबने शक्ति सेना को ग्रहण कर अत्यन्त दूर-दूर तक मर्दन किया।।११२-११३।। इसके बाद श्री ललिता देवी ने बाँये हाथ की तर्जनी अंगुलि के नाखून से लक्ष्मण सहित धनुषधारी राम को पैदा कर दिया।।११४।।

तब जटा और मुकुट वाले पीठ पर तरकश कसे हुए, नीलकमल पत्र के समान श्यामवर्ण राम ने बार बार धनुष को चलाते हुए अपने दिव्य अस्त्रों से क्षण भर में राक्षस सेना को रावण को और उसके सहोदर भ्राता कुम्भकर्ण को मार डाला और फिर लक्ष्मण ने महावीर मेघनाद को नष्ट कर दिया।।११५-११६।। उसके बाद भण्डासुर महाभयंकर द्विविदास्त्र को उत्पन्न कर दिया। उस द्विविदास्त्र ने अनेकों पीली आँखों वाले वानर पैदा हो गये।।११७।। क्रोध के कारण वे अत्यन्त लाल मुख वाले थे तथा सब हनुमान् के समान थे। उन क्रूर केंकार करने वाले वानरों ने शक्ति सेना का विनाश करना प्रारम्भ कर दिया।।११८।। इसके बाद श्री ललिता देवी के वामहस्त की अंगुलि के नाखून से क्रोध से लाल लाल आँखों वाला तालांक प्रकट हो गया। वह नील वस्त्र से युक्त अंग वाला, कैलास पर्वत के समान निर्मल वदन वाला था, उसने द्विविद अस्त्र से उत्पन्न हुए सब वानरों का विनाश कर दिया।।११९-१२०।।

राजासुरं नाम महत्ससर्जास्त्रं महाबलः। तस्मादस्त्रात्समुद्भूता बहवो नृपदानवाः॥१२१॥
शिशुपालो दंतवक्रः शाल्वः काशीपतिस्तथा।
पौंड्रको वासुदेवश्च रुक्मी डिंभकहंसकौ॥१२२॥
शंबरश्च प्रलंबश्च तथा बाणासुरोऽपि च। कंसश्चाणूरमल्लश्च मुष्टिकोत्पलशेखरौ॥१२३॥
अरिष्टो धेनुकः केशी कालियो यमलार्जुनौ। पूतना शकटश्चैव तृणावर्तादयोऽसुराः॥१२४॥
नरकाख्यो महावीरो विष्णुरूपी मुरासुरः।
अनेके सह सेनाभिरुत्थिताः शस्त्रपाणयः॥१२५॥
तान्विनाशयितुं सर्वान्वासुदेवः सनातनः। श्रीदेवीवामहस्ताब्जानामिकानखसंभवः॥१२६॥
चतुर्व्यूहं समातेने चत्वारस्ते ततोऽभवन्। वासुदेवो द्वितीयस्तु संकर्षण इति स्मृतः॥१२७॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च ते सर्वे प्रोद्यतायुधाः तानशेषान्दुराचारान्भूमेर्भारप्रवर्तकान्॥१२८॥
नाशयामासुरुर्वीशवेषच्छन्नान्महासुरान्॥१२९॥
अथ तेषु विनष्टेषु संक्रुद्धो भंडदानवः। धर्मविप्लावकं घोरं कल्यस्त्रं सममुंचत॥१३०॥
ततः कल्यस्त्रतो जाता आंध्राः पुंड्राश्च भूमिपाः।
किराताः शबरा हूणा यवनाः पापवृत्तयः॥१३१॥
वेदविप्लावका धर्मद्रोहिणः प्राणहिंसकाः। वर्णाश्रमेषु सांकर्यकारिणो मलिनांगकाः।
ललिताशक्तिसैन्यानि भूयोभूयो व्यमर्दयन्॥१३२॥

फिर उस महाबली दैत्यराज भण्ड ने राजासुर नाम से अस्त्र को उत्पन्न कर दिया। उस अस्त्र से बहुत नृपदानव उत्पन्न हो गये।।१२१।। वे हैं—शिशुपाल, दन्तवक्र, शाल्व, काशीपति, पौण्ड्रक, वासुदेव, रुक्मी, डिंभक, हंसक, शंबर, प्रलंब तथा बाणासुर, कंश, चाणूर, मल्ल, मुष्टिक, उत्पल, शेखर, अरिष्ट, धेनुक, केशी, कालिय, यमलार्जुन, पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, आदि असुर। वे सब असुर राजासुर अस्त्र से उत्पन्न हो गये।।१२२-१२४।। इसके अलावा अनेकों नरक नामक महावीर विष्णुरूपी मुरासुर पैदा हो गये। वे सब अनेकों शस्त्र हाथों में लिये हुए सेनाओं के साथ उठ खड़े हुए।।१२५।। उन सबका विनाश करने को वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण श्री ललितादेवी के बाँयें हाथ के अनामिका अंगुलि के नाखून से उत्पन्न हो गये।।१२६।। उसके बाद चतुर्व्यूह के समान वे चार उत्पन्न हुए। वासुदेव उनमें प्रथम थे, दूसरे संकर्षण नाम से स्मरण किये गये।।१२७।। तीसरे प्रद्युम्न और चौथे अनिरुद्ध थे, वे सब अस्त्र-शस्त्र लेकर उत्पन्न हुये। उन चारों वीरों ने भूमि पर भार बने हुए तथा राजाओं के रूप में छिपे हुये दुराचारी महान् असुरों को नष्ट कर दिया।।१२८-१२९।।

इसके बाद उन सबके नष्ट हो जाने पर और अधिक क्रोधित हुए, उस दानवराज भण्ड ने धर्म में विप्लव पैदा करने वाले घोर कल्यस्त्र को छोड़ दिया।।१३०।। उसके बाद उस कल्यस्त्र से आन्ध्र, पुंड्र, किरात, शबर, हूण, यवन आदि पापी राजा लोग पैदा हो गये।।१३१।। जो सब वेद के नियमों में विप्लव पैदा करने (अर्थात् वेदों को न मानने वाले) धर्मद्रोही, प्राणहिंसक, वर्ण और आश्रमों में संकरता पैदा करने वाले और मलिन (गन्दे) शरीर वाले थे, जिन्होंने ललिता देवी की सेनाओं को पुनः पुनः मर्दन किया। अर्थात् वे शक्ति सेना का नाश करने लगे।।१३२।।

अथ श्रीललितावामहस्तपद्मस्य भास्वतः।
कनिष्ठिकानखोद्भूतः कल्किर्नाम जनार्दनः॥१३३॥
अश्वारूढः प्रदीप्त श्रीरट्टहासं चकार सः। तस्यैव ध्वनिना सर्वे वज्रनिष्पेषबंधुना॥१३४॥
किराता मूर्च्छिता नेशुः शक्त्यश्चापि हर्षिताः।
दशावतारनाथास्ते कृत्वेदं कर्म दुष्करम्॥१३५॥
ललितां तां नमस्कृत्य बद्धांजलिपुटाः स्थिताः।
प्रतिकल्पं धर्मरक्षां कर्तुं मत्स्यादिजन्मभिः।
ललितांबानियुक्तास्ते वैकुंठाय प्रतस्थिरे॥१३६॥
इत्थं समस्तेष्वेस्त्रेषु नाशितेषु दुराशयः। महामोहास्त्रमसृजच्छक्तयस्तेन मूर्छिताः॥१३७॥
शांभवास्त्रं विसृज्यांबा महामोहास्त्रमक्षिणोत्। अस्त्रप्रत्यस्त्रधाराभिरित्थं जाते महाहवे।
अस्तशैलं गभस्तीशो गंतुमारभतारुणः॥१३८॥
अथ नारायणास्त्रेण सा देवी ललितांबिका।
सर्वा अक्षौहिणीस्तस्य भस्मसादकरोद्रणे॥१३९॥
अथ पाशुपतास्त्रेण दीप्तकालानलत्विषा। चत्वारिंशच्चमूनाथान्महाराज्ञी व्यमर्दयत्॥१४०॥
अथैकशेषं तं दुष्टं निहताशेषबांधवम्। क्रोधेन प्रज्वलंतं च जगद्विप्लवकारिणम्॥१४१॥
महासुरं महासत्त्वं भंडं चंडपराक्रमम्। महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा।
गतासुमकरोन्माता ललिता परमेश्वरी॥१४२॥

इसके बाद श्री ललिता के चमकते हुए वामकर कमल की कनिष्ठिका अंगुलि से कल्कि नाम के जनार्दन पैदा हो गये।।१३३।। अश्व पर आरूढ उन्होंने अट्टहास किया, उनकी सब वज्र से पीसने के समान ध्वनि से सब किरात आदि मूर्च्छित हो गये और शक्तियाँ हर्षित हो गयीं। दश अवतारों के स्वामी वे यह दुष्कर कर्म कर ललिता देवी को नमस्कार करके ललिता देवी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। जो प्रत्येक कल्प में धर्म की रक्षा करने के लिये ललिता देवी द्वारा मत्स्यादि अवतारों के रूप में सदैव नियुक्त किये जाते थे, वे ललिता देवी की आज्ञा से वैकुण्ठ चले गये।।१३४-१३६।। इस प्रकार समस्त शस्त्रों के नष्ट हो जाने पर उस दुष्ट दैत्य ने महामोहास्त्र को उत्पन्न कर दिया, उससे सभी शक्तियां मूर्च्छित हो गयीं।।१३७।।

तब शाम्भव अस्त्र को उत्पन्न करके अम्बा ने महामोहास्त्र को नष्ट कर डाला। अस्त्र-शस्त्र की धाराओं से इस प्रकार हो रहे युद्ध में भगवान् सूर्य देव अस्ताचल की ओर चले गये और अरुण का प्रकाश होना प्रारम्भ हो गया।।१३८।। इसके बाद सायंकाल में उनदेवी ललिताम्बिका ने युद्ध क्षेत्र में नारायणास्त्र से उस दैत्य की समस्त अक्षौहिणी सेना को भस्मसात् कर दिया।।१३९।। इसके बाद दीप्तकालाग्नि के समान पाशुपत अस्त्र से महाराज्ञी ने भण्डासुर चालीस सेनापतियों को मार गिराया।।१४०।। इसके बाद जिसके सब भाई बन्धु मर चुके थे, जो केवल अकेला ही बच गया था, उस क्रोध से जलते हुए संसार में विप्लव (उत्पात) पैदा करने वाले प्रचण्ड पराक्रमी महासत्त्व महासुर भण्ड को सहस्र सूर्य के समान कान्ति वाले महाकामेश्वर अस्त्र से ललिता परमेश्वरी माता ने प्राणविहीन कर

तदस्त्रज्वालयाक्रान्तं शून्यकं तस्य पट्टनम्।
सस्त्रीकं च सबालं च सगोष्ठं धनधान्यकम्॥१४३॥
निर्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत। भंडस्य संक्षयेणासीत्त्रैलोक्यं हर्षनर्तितम्॥१४४॥
इत्थं विधाय सुरकार्यमनिंद्यशीला श्रीचक्रराजरथमंडलमंडनश्रीः।
कामेश्वरी त्रिजगतां जननी बभासे विद्योतमानविभवा विजयश्रियाढ्या॥१४५॥
सैन्यं समस्तमपि सङ्गरकर्मखिन्नं भंडासुरप्रबलबाणकृशानुतप्तम्।
अस्तं गते सवितरि प्रथितप्रभावा श्रीदेवता शिबिरमात्मन आनिनाय॥१४६॥
यो भंडदानववधं ललितांबयेमं क्लृप्तं सकृत्पठति तस्य तपोधनेन्द्र।
नाशं प्रयांति कदनानि धृताष्टसिद्धेर्भुक्तिश्च मुक्तिरपि वर्तत एव हस्ते॥१४७॥
इमं पवित्रं ललितापराक्रमं समस्तपापघ्नमशेषसिद्धिदम्।
पठंति पुण्येषु दिनेषु ये नरा भजंति ते भाग्यसमृद्धिमुत्तमाम्॥१४८॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडासुरवधो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

॥समाप्तं च युद्धखंडम्॥

दिया॥१४१-१४२॥ उस शस्त्र की ज्वाला से आक्रान्त भण्डासुर के मन्त्री असुर शून्यक को, उसके नगर को स्त्रियों सहित, बालकों सहित, उनकी गोशालाओं को तथा उनके धनधान्य सहसा जला हुआ पाया गया, अतः अब वहाँ केवल स्थलमात्र शेष रह गया। तब दैत्यराज भण्ड के सपरिवार ससेन पूरी तरह नष्ट हो जाने पर तीनों लोक हर्ष से नाचने लगे॥१४३-१४४॥ इस प्रकार देवताओं के कार्य को करके अनिन्दनीय चरित्रवाली श्रीचक्रराजरथ मण्डल को सजाने वाली लक्ष्मी तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली कामेश्वरी विजयश्री से युक्त विशेष रूप से प्रकट होने वाले मान सम्मान से सुशोभित हुई॥१४५॥ उसके बाद भण्डासुर के प्रबल बाणों से दुर्बल और अत्यन्त सताये गये तथा युद्ध करने से थके हुए समस्त सैन्य समूह को सूर्य के अस्ताचल की ओर चले जाने पर अर्थात् दिन के छिपने पर श्री देवता ललितेश्वरी अपने शिविर में लेकर आ गयीं॥१४६॥ अब हयग्रीव अगस्त्य मुनि को इस पवित्र कथा श्रवण का महत्त्व एवं लाभ बताते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य श्री ललिता अम्बा के द्वारा इस दैत्यराज भण्ड के वध को एक बार पढ़ता है, हे तपोधनेन्द्र अगस्त्य जी! उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा अष्टसिद्धियों का भोग और मुक्ति भी उसके हाथ में विद्यमान रहती है॥१४७॥ ललिता देवी के समस्त पापों को नष्ट करने वाले तथा सब कार्यों में सफलता देने वाले इस पवित्र ललिता देवी के पराक्रम को जो मनुष्य पढ़ते हैं तथा पुण्य दिनों में (विशेष पर्वों में) इनका भजन करते हैं, वे मनुष्य उत्तम भाग्य समृद्धि को प्राप्त करते हैं॥१४८॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २९वाँ अध्याय भण्डासुर वध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

॥युद्ध खण्ड समाप्त॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

मदनपुनर्भवो नाम

त्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अश्वानन महाप्राज्ञ श्रुतमाख्यानमुत्तमम्। विक्रमो ललितादेव्या विशिष्टो वर्णितस्त्वया॥१॥
चरितैरनघैर्देव्याः सुप्रीतोऽस्मि हयानन। श्रुता सा महती शक्तिर्मंत्रिणीदंडनाथयोः॥२॥
पश्चात्किमरोत्तत्र युद्धानंतरमंबिका। चतुर्थदिनशर्वर्यां विभातायां हयानन॥३॥

हयग्रीव उवाच

शृणु कुम्भज तत्प्राज्ञ यत्तया जगदंबया। पश्चादाचरितं कर्म निहते भंडदानवे॥४॥
शक्तीनामखिलं सैन्यं दैत्याधुधशतार्दितम्। मुहुराह्लादयामास लोचनैरमृताप्लुतैः॥५॥
ललितापरमेशान्याः कटाक्षामृतधारया। जहुर्युद्धपरिश्रांतिं शक्तयः प्रीतिमानसाः॥६॥
अस्मिन्नवसरे देवा भंडमर्दनतोषिताः। सर्वेऽपि सेवितुं प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः॥७॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्यास्त्रिदशास्तथा। आदित्या वसवो रुद्रा मरुतः साध्यदेवताः॥८॥
सिद्धाः किंपुरुषा यक्षा निर्ऋत्याद्या निशाचराः। प्रह्लादाद्या महादैत्याः सर्वेऽप्यंडनिवासिनः॥९॥
आगत्य तुष्टुवुः प्रीत्या सिंहासनमहेश्वरीम्॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३०

मदनपुनर्भव वर्णन

हयग्रीव अगस्त्य संवाद में भण्डासुरवधप्रसंग समाप्त होने के बाद अगस्त्य मुनि ने भगवान् हयग्रीव से कहा कि हे हयानन! महाप्राज्ञ! मैंने आप द्वारा वर्णित उत्तम आख्यान को सुना, जिसमें आपने ललिता देवी के पराक्रम का वर्णन किया है।।१।। हे हयानन! मैं श्रीललितेश्वरी देवी के पापरहित चरितों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैंने मन्त्रिणी और दण्डनाथा देवियों की महती शक्ति को सुना।।२।। अतः अब हे हयानन! यह बताइये कि युद्ध के बाद चतुर्थ दिवस की रंगीन रात्रि में अम्बिका ललितेश्वरी ने क्या किया?।।३।।

हयग्रीव ने कहा—हे प्राज्ञ! (अगस्त्य जी) सुनिये कि उस जगदम्बाने दैत्यराज भण्ड के मरने पर बाद में जो आचरण किया।।४।। उसमें सबसे पहले उन्होंने दैत्यों के अस्त्र-शस्त्र से पीड़ित शक्ति सेना को अपने अमृतयुक्त नेत्रों से बार बार आह्लादित किया।।५।। ललितापरमेश्वरी के कटाक्ष की अमृत धारा से प्रसन्नचित्त वाली शक्ति सेना के युद्ध की थकान को दूर कराया।।६।। इस अवसर पर भण्डासुर के मरने से प्रसन्न हुए ब्रह्मा विष्णु आदि देवता तथा आदित्य (सूर्य), वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, साध्य देवता, सिद्धगण, किंपुरुष, यक्षगण, निर्ऋति आदि प्रह्लाद आदि महादैत्य सभी ब्रह्माण्डवासी ने आकर सिंहासीन महेश्वरी को प्रेमपूर्वक प्रसन्न किया।।७-१०।।

ब्रह्माद्या ऊचुः

नमोनमस्ते जगदेकनाथे नमोनमः श्रीत्रिपुराभिधाने।
नमोनमो भंडमहासुरघ्ने नमोऽस्तु कामेश्वरि वामकेशि॥११॥
चिंतामणे चिंतितदानदक्षेऽचिन्त्ये चिराकारतरंगमाले।
चित्राम्बरे चित्रजगत्प्रसूते चित्राख्यनित्ये सुखदे नमस्ते॥१२॥
मोक्षप्रदे मुग्धशशांकचूडेमुग्धस्मिते मोहनभेददक्षे।
मुद्रेश्वरीचर्चितराजतन्त्रे मुद्राप्रिये देवि नमोनमस्ते॥१३॥
क्रूरांतकध्वंसिनि कोमलांगे कोपेषु कालीं तनुमादधाने।
क्रोडानने पालितसैन्यचक्रे क्रोडीकृताशेषभये नमस्ते॥१४॥
षडंगदेवीपरिवारकृष्णे षडंगयुक्तश्रुतिवाक्यमृग्ये।
षट्चक्रसंस्थे च षडूर्मियुक्ते षड्भावरूपे ललिते नमस्ते॥१५॥
कामे शिवे मुख्यसमस्तनित्ये कांतासनांते कमलायताक्षि।
कामप्रदे कामिनि कामशंभोः काम्ये कलानामधिपे नमस्ते॥१६॥
दिव्यौषधाद्ये नगरौघरूपे दिव्ये दिनाधीशसहस्त्रकांते।
देदीप्यमाने दयया सनाथे देवाधिदेवप्रमदे नमस्ते॥१७॥

ब्रह्मा आदि ने कहा—कि हे संसार की एक मात्र स्वामिनी तुम को नमस्कार है। त्रिपुराभिधाना देवी तुम्हें नमस्कार है। हे भण्ड नामक महासुर को मारने वाली देवी तुम्हें नमस्कार है। हे कामेश्वरि! वामकेशि! तुम्हें नमस्कार है।।११।। हे चिन्तामणि! हे चिन्तित लोगों को दान देने में देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे अचिन्त्ये! चिराकारतरंगमाले! हे चित्रवस्त्र वाली! हे इस जगत्रूपी चित्र को बनाने वाली, हे विचित्र नामक नित्य देवि! हे सुख देने वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१२।। हे मोक्ष प्रदान करने वाली, मुग्ध चन्द्रमा से युक्त शीश वाली, हे मुग्ध मुस्कान वाली, मोहनभेददक्षे! हे मुद्रा की स्वामिनी के रूप में राजतन्त्र व्यवस्था करने वाली, हे मुद्राप्रिये देवि तुम्हें नमस्कार है।।१३।। हे क्रूर आतंक को नष्ट करने वाली, हे कोमल अंग वाली, हे क्रोध में काली का शरीर धारण करने वाली, हे वराहमुखि! हे सैन्यचक्र को पालन करने वाली, भयहीन कर गले लगाने वाली देवी तुम्हें नमस्कार है।।१४।।

हे छः अंगों, दो जंघाएं, दो भुजाएं और दो आँखों से पूरी तरह पुष्ट देवि! हे वेदों के अंगों शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष के वाक्यों द्वारा खोजने योग्य देवि! हे शरीर के छः रहस्यमय चक्रों में स्थित देवि! तुम्हें नमस्कार है। (छः चक्र हैं—मूलाधार, अधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) हे छः ऊर्मियुक्त! हे छः भावरूप ललिता देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१५।। हे इच्छा स्वरूपिणि! हे कल्याण करने वाली! हे मुख्य समस्त नित्ये! हे कान्तासन्ताने! हे कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाली! हे शरीर काम पैदा करने वाली! हे कामिनि! हे कामशम्भो! हे कामना करने योग्य! हे कलाओं की स्वामिनि देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१६।। हे दिव्य औषधि आदि स्वरूप वाली देवि अर्थात् सभी औषधियाँ उस प्रकृति की रूप हैं। हे नगरसमूहे रूपे! हे दिव्ये! दिन के स्वामी सूर्य में सहस्र कान्ति वाली! अर्थात् सूर्य की कान्ति उन्हीं देवी प्रकृति (ललिता) का ही रूप है। हे देदीप्यमान देवि! हे दया

सदाणिमाद्यष्टकसेवनीये सदाशिवात्मोज्ज्वलमञ्चवासे।
सभ्ये सदेकालयपादपूज्ये सवित्रि लोकस्य नमोनमस्ते॥१८॥
ब्राह्मीमुखैर्मातृगणैर्निषेव्ये ब्रह्मप्रिये ब्रह्मणबंधभेत्रि।
ब्रह्मामृतस्त्रोतसि राजहंसि ब्रह्मेश्वरि श्रीललिते नमस्ते॥१९॥
संक्षोभिणीमुख्यसमस्तमुद्रासंसेविते संसरणप्रहंत्रि।
संसारलीलाकृतिसारसाक्षि सदा नमस्ते ललितेऽधिनाथे।
नित्ये कलाषोडशकेन नामाकर्षिण्यधीशि प्रमथेन सेव्ये॥२०॥
नित्ये निरांतकदयाप्रपंचे नीलालकश्रेणि नमोनमस्ते।
अनंगपुष्पादिभिरुन्नदाभिरनंगदेवीभिरजस्त्रसेव्ये ।
अभव्यहंत्र्यक्षरराशिरूपे हतारिवर्गे ललिते नमस्ते॥२१॥
संक्षोभिणीमुख्यचतुर्दशार्चिर्मालावृतोदारमहाप्रदीप्ते।
आत्मानमाबिभ्रति विभ्रमाढ्ये शुभ्राश्रये शुभ्रपदे नमस्ते॥२२॥
सशर्वसिद्धादिकशक्तिवन्द्ये सर्वज्ञविज्ञातपदारविंदे।
सर्वाधिके सर्वगते समस्तसिद्धिप्रदे श्रीललिते नमस्ते॥२३॥
सर्वज्ञजातप्रथमाभिरन्यदेवी भिरप्याश्रितचक्रभूमे।
सर्वामराकांक्षितपूरयित्रि सर्वस्य लोकस्य सवित्रि पाहि॥२४॥

से युक्त रहने वाली देवि! हे देवों के प्रकृष्ट मदवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१७।। हे सदैव अणिमा आदि आठ सिद्धियों से सेवनीये! सदैव शिव के साथ उज्ज्वल मंच पर वास करने वाली देवि! हे सत् रूप एक घर में निवास करने वाली तुम्हरो पाद पूजनीय हैं। हे संसार की सवितृ अर्थात् संसार को उत्पन्न करने वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१८।। हे ब्राह्मी आदि मुख्य मातृगणों से सेवनीय देवि! हे ब्रह्मप्रिये, हे ब्राह्मणों के बन्धनों को तोड़ने वाली (अर्थात् सामाजिक भेदभाव दूर करने वाली), हे ब्रह्मामृत विखेरने वाली, राजहंस पर सवार होने वाली ब्रह्मेश्वरि ललिते देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१९।। हे संक्षोभिणी आदि मुख्य समस्त मुद्राओं से सेवित! हे संसरण प्रहन्त्रि! ललिते! हे अधिनाथे! हे संसार को नष्ट करने वाली! हे संसार में होने वाली लीलाओं, संसार के आकार और सार को देखने वाली देवि! तुम्हें सदा नमस्कार है। हे नामाकर्षिणी आदि सोलह कलाओं से युक्त देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२०।। हे आतंकरहित दयाप्रपंच वाली, नील आकाशरूप देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे कामदेव के पाँच पुष्प बाणों से उन्नत कामदेव की रति द्वारा निरन्तर सेवनीय देवि! हे अभव्यहन्त्र्यक्षरराशिरूपे देवि! हतशत्रुवर्गे ललिते देवि तुम्हें नमस्कार है।।२१।। हे संक्षोभिणी आदि चौदह अर्चिमालाओं (श्रीचक्र के चौदह कोणों) से आवृत उदार एवं महाप्रकाशमान देवि! हे आत्मा को धारण करने वाली, हे विशेष भ्रम रूप देवि! हे शुभ्र आशय वाली, हे शुभ्र पद वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२२।। हे शर्व आदि सिद्धियों वाली वन्दनीय शक्ति देवि! हे सर्वज्ञविज्ञातपदारविन्दे! हे सर्वाधिके! हे सबमें रहने वाली देवि! हे समस्त सफलताओं को प्रदान करने वाली श्री ललितेश्वरि देवी तुम्हें नमस्कार है। सर्वज्ञजात प्रथमा आदि अन्य देवियों से श्रीचक्र भूमि वाली देवि! सब देवों की चाही हुई इच्छाओं की पूर्ति करने वाली, सब

वंदे वशिन्यादिकवाग्विभूते वर्द्धिष्णुचक्रद्युतिवाहवाहे।
बलाहकश्यामकचे वचोऽब्धे वरप्रदे सुंदरि पाहि विश्वम्॥२५॥
बाणादिदिव्यायुधसार्वभौमे भंडासुरानीकवनांतदावे।
अत्युग्रतेजोज्ज्वलितांबुराशे प्रसेव्यमाने परितो नमस्ते॥२६॥
कामेशि वज्रेशि भगेश्यरूपे कन्ये कले कालविलोपदक्षे।
कथाविशेषीकृतदैत्यसैन्ये कामेशयांते कमले नमस्ते॥२७॥
बिंदुस्थिते बिन्दुकलैकरूपे बिंद्वात्मिके बृंहितचित्प्रकाशे।
बृहत्कुचां भोजविलोलहारे बृहत्प्रभावे ललिते नमस्ते॥२८॥
कामेश्वरोत्संगसदानिवासे कालात्मिके देवि कृतानुकंपे।
कल्पावसानोत्थित कालिरूपे कामप्रदे कल्पलते नमस्ते॥२९॥
सवारुणे सांद्रसुधांशुशीते सारंगशावाक्षि सरोजवक्रे।
सारस्य सारस्य सदैकभूमे समस्तविद्येश्वरि संनतिस्ते॥३०॥
तव प्रभावेण चिदग्निजायां श्रीशंभुनाथप्रकटीकृतायाः।
भंडासुराद्याः समरे प्रचंडा हता जगत्कंटकतां प्रयाताः॥३१॥
नव्यानि सर्वाणि वपूंषि कृत्वा हि सांद्रकारुण्यसुधाप्लवैर्न्नः।
त्वया समस्तं भुवनं सहर्षं सुजीवितं सुंदरि सभ्यलभ्ये॥३२॥

संसार की उत्पादिका देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरी रक्षा करो।।२३-२४।। ब्रह्मा आदि देवों ने कहा कि हे वशिनी आदि वाग्विभूतियों वाली वर्द्धिष्णु चक्र की कान्ति को वहन करने वाली, बादल (मेघ) के समान काले केशवाली, वाणी की सागररूप! वर प्रदान करने वाली, सुन्दरि! विश्व की रक्षा करो।।२५।। हे बाण आदि दिव्य अस्त्रशस्त्रों! सार्वभूमि देवि! हे भण्डासुर की सेनारूपी वन के लिये दावाग्नि रूपवाली देवि! हे अत्यन्त उग्रतेज से जलते हुए वडवाग्नि रूप देवि! हे पूर्णरूप से सभी ओर से सेव्यमान देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२६।। हे कामेशि! वज्रेशि! ऐश्वर्यरूपे, हे कन्ये!, हे कले! हे कालविलोपदक्षे! अर्थात् हे बुरे समय को नष्ट करने में कुशल देवि! हे दैत्य सैन्य में विशेष कथा रूपिणि! (दैत्य की सेना की कहानी खत्म करने वाली), हे कामेशयान्ते! कमले! तुम्हें नमस्कार है।।२७।। हे श्रीचक्र के बिन्दु में स्थित, बिन्दुकला की एकरूपे! हे बिन्दु की आत्मा रूपे ललिते! बढ़े हुए चित् प्रकाश वाली, बड़े बड़े स्तनों पर भोजविलोलहार वाली! बृहत्प्रभाव वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२८।। हे कामेश्वर भगवान् शंकर के साथ सदा निवास करने वाली, कालात्मा रूप देवि! सब पर कृपा करने वाली देवि! हे कल्प के अन्त में (प्रलयकाल में) काली के रूप में उठने वाली देवि! काम (इच्छा) पूर्ण करने वाली, काम भाव पैदा करने वाली कल्पलता देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२९।। हे सवारुणे! सान्द्र चन्द्रमा के शीतवाली, मृगशावक के समान नेत्रों वाली, कमल के समान मुख वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।३०।। हे देवि! तुम्हारे प्रभाव से चित् रूप अग्निजा में श्री शम्भुनाथ से प्रकट किये गये संसार में लोगों के लिये कण्टक बने हुए भण्डासुर आदि प्रचण्ड राक्षसों को मार दिया गया।।३१।। नये नये सब शरीरों को बनाकर, विपुल करुणता रूपी अमृत बाढ़ से तुम्हारे द्वारा यह समस्त

श्रीशंभुनाथस्य महाशयस्य द्वितीयतेजःप्रसरात्मके यः।
स्थाण्वाश्रमे क्लृप्तया विरक्तः सतीवियोगेन विरस्तभोगः॥३३॥
तेनाद्रिवंशे धृतजन्मलाभां कन्यामुमां योजयितुं प्रवृत्ताः।
एवं स्मरं प्रेरितवंत एव तस्यांतिकं घोर तपःस्थितस्य॥३४॥
तेनाथ वैराग्यतपोविघातक्रोधेन लालाटकृशानुदग्धः।
भस्मावशेषो मदनस्ततोऽभूत्ततो हि भंडासुर एष जातः॥३५॥
ततो वधस्तस्य दुराशयस्य कृतो भवत्या रणदुर्मदस्य।
अथास्मदर्थे त्वतनुस्सजातस्त्वं कामसंजीवनमाशुकुर्याः॥३६॥
इयं रतिर्भर्तृवियोगखिन्ना वैधव्यमत्यंतमभव्यमाप।
पुनस्त्वदुत्पादितकामसंगाद्भविष्यति श्रीललिते सनाथा॥३७॥
तया तु दृष्टेन मनोभवेन संमोहितः पूर्ववदिंदुमौलिः।
चिरं कृतात्यंतमहासपर्यां तां पार्वतीं द्राक्परिणेष्यतीशः॥३८॥
तयोश्च संगाद्भविता कुमारः समस्तगीर्वाणचमूविनेता।
तेनैव वीरेण रणे निरस्य स तारको नाम सुरारिराजः॥३९॥

संसार सहर्ष और अच्छी प्रकार जीवित है। हे सुन्दरि! तुम सभ्यों द्वारा लभ्य हो, असभ्यों द्वारा नहीं।।३२।। जो देवी एक बार भगवान् शिव के दूसरे तेज के प्रकाश का प्रसार करने के समय जबकि उन्होंने दक्ष के यज्ञ को विध्वंस किया था, उस समय जो सती के रूप में थी, जिन्होंने यज्ञ में शरीर त्याग करने के बाद हिमालय के घर में जन्म लिया था, जो फिर पुनः शिव को प्राप्त करने के लिये भगवान् शिव के आश्रम में विरक्त रहकर हिमालय की पुत्री उमा के रूप में पुनः शंकर जी से युक्त होने के लिये प्रयासरत हुई, उनकी सहायता के लिये उन्हें शंकर जी से मिलाने के लिये कामदेव आया और उसने शंकर जी को पार्वती से मिलने के लिये प्रेरित किया। अतः उन घोर तपस्या करने वाले भगवान् शंकर ने वैराग्य युक्त तप में पैदा होने वाले विघ्न के क्रोध से अपने मस्तक में स्थित तृतीय नेत्र को खोलकर कामदेव को जला दिया। तब वह जो कामदेव भस्म हो गया, तो उसकी अवशिष्ट भस्म से यह भण्ड नामक असुर पैदा हो गया।।३३-३५।। उसके बाद उस युद्ध में किसी से भी न हारने वाले उस दुष्ट भण्डासुर का वध आपने कर दिया।।३५।।

अतः यह जो कामदेव का भस्म (राख) था, उससे भण्डासुर पैदा हुआ, जिसका हे देवि! तुमने संहार कर दिया, अतः अब यह जो कामदेव शरीररहित हो गया है, उस कामदेव को शीघ्र जीवित कर देना चाहिये, ऐसा ब्रह्मा आदि देवों ने कहा।।३६।। और यह कहा कि यह कामदेव की पत्नी रति पतिवियोग से दुःखी होकर बहुत समय से वैधव्य को प्राप्त हो गयी है, अतः हे श्री ललिते देवि! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न किये काम देव के संग से यह वेचारी सनाथा हो जायेगी।।३७।। उस कामदेव के देखने से पूर्वकाल के समान भगवान् शिव सम्मोहित हो गये थे, वे भगवान् शिव चिरकाल पर्यन्त अत्यन्त और महान् पूजा और सेवा करने वाली पार्वती को शीघ्र पत्नी रूप में स्वीकार कर लेंगे।।३८।। और फिर उन पार्वती और शंकर के संयोग से समस्त देवताओं की सेना का नायक कुमार कार्तिकेय का जन्म हो जायेगा। उसी वीर के द्वारा युद्ध में क्षेत्र वह तारक नामक देवताओं का शत्रुराजा निरस्त होगा (मारा

यो भंडदैत्यस्य दुराशयस्य मित्रं स लोकत्रयधूमकेतुः।
श्रीकंठपुत्रेण रणे हतश्चेत्प्राणप्रतिष्ठैव तदा भवेन्नः॥४०॥
तस्मात्त्वमंबत्रिपुरे जनानां मानापहं मन्मथवीरवर्यम्।
उत्पाद्यरत्या विधवात्वदुःखमपाकुरु व्याकुलकुंतलायाः॥४१॥
एषा त्वनाथा भवतीं प्रपन्ना भर्तृप्रणाशेन कृशांगयष्टिः।
नमस्करोति त्रिपुराभिधाने तदत्र कारुण्यकलां विधेहि॥४२॥

हयग्रीव उवाच

इति स्तुत्वा महेशानी ब्रह्माद्या विबुधोत्तमाः। तां रतिं दर्शयमासुर्मलिनां शोककर्शिताम्॥४३॥
सा पर्यश्रुमुखी कीर्णकुन्तला धूलिधूसरा। ननाम जगदंबां वै वैधव्यत्यक्तभूषणा॥४४॥
अथ तद्दर्शनोत्पन्नकारुण्या परमेश्वरी। ततः कटाक्षादुत्पन्नः स्मयमानमुखांबुजः॥४५॥
पूर्वदेहाधिकरुचिर्मन्मथो मदमेदुरः। द्विभुजः सर्वभूषाढ्यः पुष्पेषुः पुष्पकार्मुकः॥४६॥
आनंदयन्कटाक्षेण पूर्वजन्मप्रियां रतिम्। अथ सापि रतिर्देवी महत्यानंदसागरे।
मज्जनन्ती निजभर्तारमवलोक्य मुदं गता॥४७॥

जायेगा)।।३९।। जो दुष्ट दैत्यराज भण्ड का मित्र है और वह तीनों लोकों के लिए धूमकेतु[१] बना हुआ है। अतः हे देवि! भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकिय द्वारा युद्ध में वह मार दिया जाये, अतः उस कामदेव की प्राणप्रतिष्ठा ही होनी चाहिये। तभी हमलोगों का कल्याण होगा। इसीलिये हे अम्बे! हे मां ललितेश्वरी तीनों लोकों में स्त्री-पुरुषों के आपस में होने वाले मान को दूर करने वाले श्रेष्ठ वीर कामदेव को पुनः जीवित करके उनकी पत्नी रति के वैधव्य के दुःख को दूर करो, जो विचारी चिरकाल से व्याकुल है।।४०-४१।। अतः हे देवि! यह अनाथा (पतिविहीन) रति तुम्हारी शरण में आयी है। अपने पति के नष्ट हो जाने से यह अत्यन्त दुर्बल शरीर वाली हो गयी है। अतः हे त्रिलोकस्वामिनि! यह रति तुमको नमन कर रही है। अतः यहाँ इस पर कृपा करो।।४२।।

हयग्रीव ने कहा कि इस प्रकार ब्रह्मा आदि उत्तम देवों ने महेश्वरी ललिता देवी की स्तुति करके पति की मृत्यु के दारुण दुःख से पीड़ित अत्यन्त मलिन कामभार्या रति को दिखाया।।४३।। तब आँसुओं से भींगे हुए मुखवाली, बिखरे हुए केशवाली और धूलिधूसरित एव विधवा होने के कारण भूषणविहीन उस रति ने जगदम्बा महेश्वरी को नमन किया।।४४।। तब इसके बाद उस रति को देखने से उन परमेश्वरी के मन में करुणा उत्पन्न हो गयी, उसके बाद उनके उस कारुण्य कटाक्ष से कमलमुख कामदेव उत्पन्न हो गये।।४५।। जो उत्पन्न हुए कामदेव पूर्वशरीर से अधिक कान्तियुक्त शरीरवाले तथा मद से भरे हुए थे। उनकी दो भुजायें थीं, उनका शरीर वस्त्राभूषणों से सजा हुआ था और पुष्प वाण और पुष्प धनुष लिये हुए थे।।४६।। वे अपने कटाक्ष (तिरछी नजर) से पूर्व जन्म की प्रिया रति को आनन्दित कर रहे थे, इससे उनकी पत्नी रति देवी भी महान् आनन्द के सागर में डूब गयी थी। वे अपने पति को देखकर अत्यन्त मुदित हो गयीं।।४७।।

---

१. जब कोई ग्रह अपने आकर्षण सेरहित होकर गिरता है, तो वह आग का गोला बनकर जिस ग्रह पर गिरता है, तो विनाश ही विनाश करता है, उसे धूमकेतु कहा जाता है। इसे ही उल्कापात कहते हैं।

आनंदितांतरात्मानौ भक्तिनिर्भरमानसौ। ज्ञात्वाथ तौ महाराज्ञी मन्दस्मितमुखांबुजा॥
व्रीडाननां रतिं प्रेक्ष्य श्यामलामिदमब्रवीत्॥४८॥
श्यामले स्नापयित्वैनां वस्त्रकांच्यादिभूषणैः। अलंकृत्य यथापूर्वं शीघ्रमानीयतामिह॥४९॥
तदाज्ञां शिरसा धृत्वा श्यामा सर्वं तथाकरोत्। ब्रह्मर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैर्वैवाहिकविधानतः॥५०॥
कारयामास दंपत्योः पाणिग्रहणमंगलम्। अप्सरोभिश्च सर्वाभिर्नृत्यगीतादिसंयुतम्॥५१॥
एतदृष्ट्वा महेन्द्राद्या ऋषयश्च तपोधनाः। साधुसाध्विति शंसंतस्तुष्टुवुर्ललितांबिकाम्॥५२॥
पुष्पवृष्टिं विमुंचंतः सर्वे सन्तुष्टमानसाः। बभूवुस्तौ महाभक्त्या प्रणम्य ललितेश्वरीम्॥५३॥
तत्पार्श्वे तु समागत्य बद्धांजलिपुटौ स्थितौ। अथ कंदर्पवीरोऽपि नमस्कृत्य महेश्वरीम्।
व्यज्ञापयदिदं वाक्यं भक्तिनिर्भरमानसः॥५४॥
यद्दग्धमीशनेत्रेण वपुर्मे ललितांबिके। तत्त्वदीयकटाक्षस्य प्रसादात्पुनरागतम्॥५५॥
तव पुत्रोऽस्मि दासोऽस्मि क्वापि कृत्ये नियुंक्ष्व माम्।
इत्युक्ता परमेशानी तमाह मकरध्वजम्॥५६॥

श्रीदेव्युवाच

वत्सागच्छ मनोजन्मन्न भयं तव विद्यते। मत्प्रसादाज्जगत्सर्वं मोहयाव्याहताशुग॥५७॥

इसके बाद जब महाराज्ञी श्री ललितेश्वरी ने यह जान लिया कि मेरी भक्ति पर निर्भर मन वाली इस रति तथा कामदेव की आत्मायें अत्यन्त आनन्दित हो गयी हैं, तब मन्द मुस्कानयुक्त कमलमुखी उन महाराज्ञी ने लज्जा से झुके हुए मस्तक वाली उस रति को देखकर श्यामला देवी से इस प्रकार कहा।।४८।। कि अरी श्यामले! तुम इस रति को ले जाओ और इन्हें स्नान कराके तथा वस्त्राभूषण काञ्ची आदि आभूषणों से पूर्व के समान सजाकर शीघ्र यहाँ लेकर आओ।।४९।। तब उन महाराज्ञी की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्यामा देवी ने वैसा ही किया और फिर ब्रह्मा आदि देवों और वशिष्ठ आदि ऋषियों द्वारा वैवाहिक विधि-विधान से दोनों का पाणिग्रहण करवा दिया। उस वैवाहिक कार्यक्रम में सब अप्सराओं ने नृत्य एवं गीत आदि मांगलिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये।।५०-५१।। यह देखकर महेन्द्र आदि देवतागण और तपस्वी ऋषिगण साधु साधु कहकर ललिता देवी को प्रसन्न करने लगे।।५२।। तथा सभी देवगण फूलों की वर्षा करते हुए अत्यन्त प्रसन्न हुए। उधर रति और कामदेव दोनों महती भक्ति से ललितेश्वरी को प्रणाम करके उनके पास में आकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। इसके बाद वीर कामदेव ने भी महाराज्ञी को प्रणाम करके भक्ति पर मन को निर्भर करके महेश्वरी को यह बताया कि।।५३-५४।। कि हे महादेवि! ललिताम्बिके! जो मेरा शरीर भगवान् शिव के नेत्र से जल गया था, वह तुम्हारी कृपा से पुनः आ गया है।।५५।। अतः हे मातः! मैं आपका पुत्र हूँ, तुम्हारा सेवक हूँ, अतः कृपया मुझे किसी कार्य में नियुक्त कीजिये। ऐसा जब कामदेव ने कहा, तब परमेश्वरी ललिता देवी ने उस कामदेव से कहा।।५६।।

श्री देवी बोलीं—कि हे पुत्र कामदेव आओ, अब तुमको कोई भय नहीं है। अब तुम मेरी कृपासे समस्त संसार को विना किसी बाधा (रुकावट) के मोहित करो और तुम आशुग (शीघ्र गमन करने वाले) हो जाओ! अर्थात् तुम्हारे प्रभाव से नरनारी तुरन्त एक दूसरे को देखते ही मोहित हो जायें।।५७।।

तद्बाणपातनाज्जातधैर्यविप्लव ईश्वरः। पर्वतस्य सुतां गौरीं परिणेष्यति सत्वरम्।।५८।।
सहस्त्रकोटयः कामा मत्प्रसादात्त्वदुद्भवाः। सर्वेषां देहमाविश्य दास्यंति रतिमुत्तमाम्।।५९।।
मत्प्रसादेन वैराग्यात्संक्रुद्धोऽपि स ईश्वरः। देहदाहं विधातुं ते न समर्थो भविष्यति।।६०।।
अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां प्राणिनां भवमोहनः। स्वभार्याविरहाशंकी देहस्यार्धं प्रदास्यति।
प्रयातोऽसौ कातरात्मा त्वद्बाणाहतमानसः।।६१।।
अद्य प्रभृति कंदर्प मत्प्रसादमहीयसः। त्वन्निंदां ये करिष्यंति त्वयि वा विमुखाशयाः।
अवश्यं क्लीबतैव स्यात्तेषां जन्मनिजन्मनि।।६२।।
ये पापिष्ठा दुरात्मानो मद्भक्तद्रोहिणश्च हि। तानगम्यासु नारीषु पातयित्वा विनाशय।।६३।।
येषां मदीय पूजासु मद्भक्तेष्वादृतं मनः। तेषां कामसुखं सर्वं संपादय समीप्सितम्।।६४।।
इति श्रीललितादेव्या कृताज्ञावचनं स्मरः। तथेति शिरसा बिभ्रत्सांजलिर्निर्ययौ ततः।।६५।।
तस्यानंगस्य सर्वेभ्यो रोमकूपेभ्य उत्थिताः। बहवः शोभनाकारा मदना विश्वमोहनाः।।६६।।
तैर्विमोह्य समस्तं च जगच्चक्रं मनोभवः। पुनः स्थाण्वाश्रमं प्राप चंद्रमौलेर्जिगीषया।।६७।।
वसंतेन च मित्रेण सेनान्या शीतरोचिषा। रागेण पीठमर्देन मंदानिलरयेण च।।६८।।

उसके बाण के गिराने से भगवान् शंकर का धैर्य टूट जायेगा और फिर वे पर्वत पुत्री पार्वती को शीघ्र पत्नीत्व प्रदान करेंगे।।५८।। तथा मेरे प्रसाद से हजारों करोड़ कामदेव (कामभाव) पैदा होंगे जो सबके शरीरों में प्रवेश करके उत्तम रति (सम्भोगेच्छा) उत्पन्न करेंगे।।५९।। मेरे प्रसाद से वैराग्य से संक्रुद्ध वे ईश्वर शिव भी तुम्हारे शरीर को जलाने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।।६०।। अतः हे कामदेव! तुम अदृश्य शरीर होकर समस्त वह कातरात्मा तुम्हारे बाण से आहत चित्त वाले शंकर प्राणियों के मन को मोहने वाले अपनी चिरकालीन विरह पीड़ित पत्नी को अपना आधा शरीर प्रदान करेगा। भाव यह है कि वे शंकर जिन्होंने कभी वैराग्यवश तुम्हें भस्म कर दिया था, वे ही अब तुम्हारे प्रभाव से अपनी पत्नी पार्वती के अपनी अर्धाङ्गिनी बनाकर आधा अधिकार प्रदान करेंगे। अतः आज से स्त्री पुरुष परस्पर इतने आकर्षण में बंध जायेंगे कि दोनों एक-दूसरे को आधा शरीर मान लेंगे। आज से हे कामदेव! मेरे प्रसाद से महान् यशस्वी तुम्हारी जो निन्दा करेगा अथवा जो तुम्हारे प्रति विमुख आशय वाला होगा (अर्थात् कामशास्त्र की चर्चा करने पर कान पकड़कर तोबा करेगा उसकी अवश्य जन्म-जन्मान्तरों में नपुंसकता होगी।।६१-६२।। तथा जो पापी दुष्टात्मा और मेरे भक्त तुमसे द्रोह करने वाले हैं, उनको अगम्य (सम्भोग न करने योग्य) नारियों में गिराकर नष्ट कर देना।।६३।। तथा जिनका मन मेरी पूजाओं में मेरे भक्तों में लगा हुआ है, उनकी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करना तथा उन्हें पूर्ण कामसुख प्रदान करना।।६४।।

इस प्रकार श्री ललिता देवी की आज्ञा को शिरोधार्य करने का वचन देकर कामदेव "मातः ऐसा ही होगा" कहकर नतमस्तक हो, हाथ जोड़कर वहाँ से निकल गया।।६५।। तब वह कामदेव जीवित तो हुआ था; परन्तु अंगरहित ही था। अतः अनंग कहा गया 'तब उस अनंग कामदेव के सब रोम कूपोंसे (रोम छिद्रों) से सुन्दर आकार वाले बहुत से विश्व को मोहित करने वाले कामदेव निकल गये। उसके समस्त संचारचक्र को विमोहित वाले कामदेव पुनः भगवान् शंकर को जीतने की इच्छा से भगवान् शंकर के आश्रम में पहुँचे।।६६-६७।। तब शीतकान्तिवाले सेनापति मित्र वसन्त को मन्द वेग वाले वायु सहचर को साथ लेकर तथा नरकोयल के कण्ठ की प्रिय वाणी से युक्त

पुंस्कोकिलगलत्स्वानकाहलीभिश्च संयुतः। श्रृंगारवीरसंपन्नोरत्यालिंगितविग्रहः॥६९॥
जैत्रं शरासनं धुन्वन्प्रवीराणां पुरोगमः। मदनारेरभिमुखं प्राप्य निर्भय आस्थितः॥७०॥
तपोनिष्ठं चंद्रचूडं ताडयामास सायकैः। अथ कंदर्पबाणौघैस्ताडितश्चंद्रशेखरः।
दूरीचकार वैराग्यं तपस्तत्त्याज दुष्करम्॥७१॥
नियमानखिलांस्त्यक्त्वा त्यक्तधैर्यः शिवः कृतः।
तामेव पार्वतीं ध्यात्वा भूयोभूयः स्मरातुरः॥७२॥
निशश्वास वहञ्शर्वः पांडुरं गण्डमंडलम्। बाष्पायमाणो विरही संतप्तो धैर्यविप्लवात्।
भूयोभूयो गिरिसुतां पूर्वदृष्टामनुस्मरन्॥७३॥
अनंगबाणदहनैस्तप्यमानस्य शूलिनः। न चंद्ररेखा नो गंगा देहतापच्छिदेऽभवत्॥७४॥
नंदिभृंगिमहाकालप्रमुखैर्गणमंडलैः। आहृते पुष्पशयने विलुलोठ मुहुर्मुहुः॥७५॥
नंदिनो हस्तमालंब्य पुष्पतल्पान्तरात्पुनः। पुष्पतल्पान्तरं गत्वा व्यचेष्टत मुहुर्मुहुः॥७६॥
न पुष्पशयनेनेन्दुखण्डनिर्गलितामृते। न हिमानीपयसि वा निवृत्तस्तद्वपुर्ज्वरः॥७७॥
स तनोरतनुज्वालां शमयिष्यन्मुहुर्मुहुः। शिलीभूतान्हिमपयःपट्टानध्यवसच्छिवः।
भूयः शैलसुतारूपं चित्रपट्टे नखैर्लिखत्॥७८॥

होकर श्रृंगार और वीररस से सम्पन्न रति के आलिंगन से युक्त शरीर वाले कामदेव तपरत भगवान् शिव के सामने उपस्थित हो गये। अर्थात् समस्त कामभावनोत्पादक साधनों के साथ वे कामदेव भगवान् शंकर के सामने पुनः स्थित हुए। बसन्त-ऋतु मन्दवायु और कोयल की मधुर बोली साथ ही रति से आलिंगित स्वयं कामदेव तब भला भगवान् शंकर का धैर्य कैसे स्थिर रहता।।६८-६९।। अतः ऐसे मादक वातावरण में भगवान् शंकर परकाम के बाण का प्रहार करते हुए कामशत्रु भगवान् शिव के सामने निर्भय होकर खड़े हो गये।।७०।। और फिर तप में लीन भगवान् शिव पर उन्होंने अपने बाणों का प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया, उसके बाद कामदेव के बाणों से ताडित चन्द्रशेखर ने वैराग्य को दूर कर दिया और दुष्कर तप को त्याग दिया।।७१।। तब समस्त नियमों को त्यागकर शिव ने अपने धैर्य को भी त्याग दिया। अब तो वे उन्हीं पार्वती का ध्यान करके बार बार कामभाव से व्याकुल होने लगे।।७२।। अब तो शिव कामपीड़ित होकर बहुत गहरी श्वासें लेने लगे, उनका कण्ठ पीला पड़ गया। अब तो वे पूर्व में देखी गयी पार्वती का स्मरण करते हुए गहरी श्वासें लेने लगे और विरह से संतप्त उनका अब धैर्य भी टूट गया।।७३।।

अब कामदेव के बाण से सन्तप्त उन भगवान् शिव के सन्ताप को न शिरस्थित चन्द्रमा की शीतलता शान्त कर सकीं और न शिर स्थित गङ्गा ही शान्त कर सकीं।।७४।। और नन्दी, भृङ्गी और महाकाल भैरव आदि प्रमुख गणों द्वारा लाये गये फूलों की शय्या से उठकर चलते थे और फिर पुष्प शय्या पर बार-बार लोटने लगे।।७५।। नन्दी का सहारा लेकर शय्या से उठकर चलते थे और पुष्प शय्या पर जाकर बार बार लोटते हुए बहुत अधिक कामचेष्टा कर रहे थे।।७६।। अब न तो फूलों की तेज पर न, चन्द्रमा से निकल हुए अमृत में अथवा न हिमालय के ठंडे जल में, उनके शरीर का ज्वर शान्त हो सका। वे अपने शरीर की कामाग्नि को शान्त करना चाहते हुए बार बार बर्फ जल से ढकी हुई पत्थर की शिलाओं पर जाकर बैठते थे और वहाँ पर पर्वत पुत्री के चित्र को नाखूनों से

तदालोकनतोऽदूरमनंगार्तिमर्धयत्। तामालिख्य ह्रिया नम्रां वीक्षमाणां कटाक्षतः॥७९॥
तच्चित्रपट्टमंगेषु रोमहर्षेषु चाक्षिपत्। चिन्तासंगेन महता महत्या रतिसंपदा।
भूयसा स्मरतापेन विव्यथे विषमेक्षणः॥८०॥
तामेव सर्वतः पश्यंस्तस्यामेव मनो दिशन्। तयैव संल्लपन्सार्धमुन्मादेनोपपन्नया॥८१॥
तन्मात्रभूतहृदयस्तच्चित्तस्तत्परायणः। तत्कथासुधया नीतसमस्तरजनीदिनः॥८२॥
तच्छीलवर्णनरतस्तद्रूपालोकनोत्सुकः। तच्चारुभोगसंकल्पमालाकरसुमालिकः।
तन्मयत्वमनुप्राप्तस्ततापातितरां शिवः॥८३॥
इमां मनोभव रुजमचिकित्स्यां स धूर्जटिः। अवलोक्य विवाहाय भृशमुद्यमवानभूत्॥८४॥
इत्थं विमोह्य तं देवं कंदर्पो ललिताज्ञया। अथ तां पर्वतसुतामाशुगैरभ्यतापयत्॥८५॥
प्रभूतविरहज्वालामलिनैः श्वसितानलैः। शुष्यमाणाधरदलो भृशं पांडुकपोलभूः॥८६॥
नाहारे वा न शयने न स्वापे धृतिमिच्छति। सखीसहस्त्रैः सिषिचे नित्यं शीतोपचारकैः॥८७॥
पुनःपुनस्तप्यमाना पुनरेव च विह्वला। न जगाम रुजाशांतिं मन्मथाग्नेर्महीयसः॥८८॥
न निद्रां पार्वती भेजे विरहेणोपतापिता। स्वतनोस्तापनेनासौ पितुः खेदमवर्धयत्॥८९॥

लिखते थे।।७७-७८।। उनको देखता हुआ थोड़ी दूर पर ही स्थित कामदेव उनकी कामवेदना को और अधिक बढ़ा रहा था। उधर शंकर जी पार्वती का चित्र बनाकर फिर लज्जा से इधर उधर तिरछी निगाह से देखते थे।।७९।। उस चित्रपट्ट को अपने हर्ष से रोमांचित अंगों से लगाते थे और फिर बहुत अधिक चिन्ता से और महती रति संपदा से युक्त विरह ताप से वे भगवान् शंकर व्यथित होने लगते थे अर्थात् चित्रपट्ट को संभोग की इच्छा से अपने अंगों से लगाते थे; परन्तु जब इतने से सन्तुष्टि नहीं होती थी, तो फिर साक्षात् मैथुन हेतु अत्यन्त व्यथित होने लगते थे।।८०।। तब तो उनमें इतना कामोन्माद पैदा हो गया कि सब ओर पार्वती को ही देखते हुए, उनमें ही मन लगाते हुए, उनके साथ ही बात करते हुए रहते थे।।८१।। उनके समस्त दिन और रात केवल पार्वती को हृदय में रखकर उनमें मन लगाकर तथा उनके विषय में कथामतृ पान कर व्यतीत होते थे।।८२।।

अब भगवान् शिव उन पार्वती के ही शील वर्णन में रत और उनके ही रूप को देखने के उत्सुक हो उनके ही सुन्दर भोग संकल्प मालाकर को पहनने के लिए उत्सुक रहते थे। इसके बाद कामदेव से अत्यन्त तापित भगवान् शिव पार्वती के ध्यान में तन्मय हो गये थे।।८३।। तब भगवान् शंकर इस कामरोग की चिकित्सा विवाह को ही समझकर विवाह के लिये उद्यम करने लगे।।८४।। इस प्रकार ललिता देवी की आज्ञा से भगवान् शिव को पूरी तरह मोहित करके कामदेव ने शीघ्र ही पर्वतपुत्री पार्वती को भी काम भाव से सन्तप्त कर दिया।।८५।। कामदेव द्वारा सन्तप्त करते ही विरहाग्निसे मलिन श्वास वायुओं से उनके अधर सूखने लगे तथा कपोल पीले पड़ गये, अब तो वे न कुछ खा रही थीं, न सो रही थीं तथा न सोने में ही धैर्य धारण कर पा रही थीं। नित्य हजारों सखियां उनके सन्ताप को शीतल करने के लिये शीतोपचार करने वाली औषधियों को लगा रही थीं।।८६।। परन्तु वे पार्वती बार-बार सन्तप्त हो रही थीं, उनका विरह ज्वर उत्तर ही नहीं रहा था, वे विह्वल थीं, अतः उनको उस विरह रोग से शान्ति प्राप्त नहीं हुई।।८८।। विरह संतप्त पार्वती अब तो नींद भी नहीं ले पा रहीं थीं, उनकी नींद बिल्कुल समाप्त हो गयी थी। इस प्रकार अपने शरीर के सन्ताप से उन्होंने अपने पिता के दुःख को बढ़ा दिया।।८९।।

अप्रतीकारपुरुषं विरहं दुहितुः शिवे। अवलोक्य स शैलेन्द्रो महादुःखमवाप्तवान्॥९०॥
भद्रे त्वं तपसा देवं तोषयित्वा महेश्वरम्। भर्तारं तं समृच्छेति पित्रा सम्प्रेरिताथ सा॥९१॥
हिमवच्छैलशिखरे गौरीशिखरनामनि। चकार पतिलाभाय पार्वती दुष्करं तपः॥९२॥
शिशिरेषु जलावासा ग्रीष्मे दहनमध्यगा। अर्के निविष्टदृष्टिश्च सुघोरं तप आस्थिता॥९३॥
तेनैव तपसा तुष्टः सान्निध्यं दत्तवाञ्छिवः। अङ्गीचकार तां भार्यां वैवाहिकविधानतः॥९४॥
अथाद्रिपतिना दत्तां तनयां नलिनेक्षणाम्। सप्तर्षिद्वारतः पूर्वं प्रार्थितामुदवोढ सः॥९५॥
तया च रममाणोऽसौ बहुकालं महेश्वरः। ओषधीप्रस्थनगरे श्वशुरस्य गृहेऽवसत्॥९६॥
पुनः कैलासमागत्य समस्तैः प्रमथैः सह। पार्वतीमानिनायाद्रिनाथस्य प्रीतिमावहत्॥९७॥
रममाणस्तया सार्धं कैलासे मन्दरे तथा। विन्ध्याद्रौ हेमशैले च मलये पारियात्रके॥९८॥
नानाविधेषु स्थानेषु रतिं प्राप महेश्वरः। अथ तस्यां ससर्जोग्रं वीर्यं सा सोढुमक्षमा॥९९॥

भुव्यत्यजत्सापि वह्नौ कृत्तिकासु स चाक्षिपत्।
ताश्च गङ्गाजलेऽमुञ्चन्सा चैव शरकानने॥१००॥

तत्रोद्भूतो महावीरो महासेनः षडाननः। गङ्गायाश्चांतिकं नीतो धूर्जटिर्वृद्धिमागमत्॥१०१॥
स वर्धमानो दिवसेदिवसे तीव्रविक्रमः। शिक्षितो निजतातेन सर्वा विद्या अवाप्तवान्॥१०२॥

अपनी पुत्री पार्वती का शिव के प्रति प्रीतिपूर्ण पुरुष विरह को देखकर पर्वतराज हिमालय को अत्यन्त दुःख हुआ।।९०।। तब उनके पिता हिमालय ने उनसे कहा कि हे पुत्रि! तुम तपस्या से देवाधिदेव शंकर को प्रसन्न करके उनको अपना पति बनाओ। इसके बाद पिता द्वारा प्रेरित उन पार्वती ने हिमालय पर्वत के गौरी नामक शिखिर पर पति को प्राप्त करने के लिए दुष्कर तप किया।।९१-९२।। वहाँ शीत ऋतु में अत्यन्त शीतल जल में रहते, हुए ग्रीष्म ऋतु में अग्नियों के बीच में बैठे हुए, ऊपर सूर्य की ओर दृष्टि रखते हुए, अत्यन्त घोर तप में स्थित हो गयीं।।९३।। पार्वती के उसी तप से प्रसन्न होकर भगवान् शिव उनके पास आये और फिर उन्होंने वैवाहिक विधि विधान से अपनी पत्नी स्वीकार किया।।९४।। इसके बाद पर्वतराज हिमालय ने अपनी कमलनयना पुत्री को शिव के लिये प्रदान कर दिया, तब सप्तर्षियों के द्वारा शिव ने पूर्व प्रार्थित पार्वती के साथ विवाह कर लिया।।९५।।

उन पार्वती के साथ रमण करते हुए वे महेश्वर बहुत समय तक औषधीप्रस्थ नगर में स्थित अपने श्वसुर के घर में रहे।।९६।। फिर समस्त गणों के साथ कैलास पर्वत पर आकर पार्वती को लेकर पर्वतराज हिमालय की प्रीति का वहन किया।।९७।। वहाँ महेश्वर ने उनके साथ कैलास मन्दिर में, विन्ध्य पर्वत पर, हेमशैल पर, मलयपर्वत पर, पारियात्र पर्वत पर तथा अनेकों प्रकार के स्थानों पर रमण करते हुए सम्भोग सुख को प्राप्त किया।।९८-९८½।। इसके बाद उन्होंने उन पार्वती की योनि में वीर्य को गिरा दिया; परन्तु उस उग्रवीर्य को पार्वती सहन नहीं कर सकीं।।९९।। तब पार्वती ने पृथ्वी पर गिरा दिया, पृथ्वी ने अग्नि पर गिरा दिया और फिर अग्नि ने कृत्तिकाओं पर गिरा दिया और कृत्तिकाओं ने गङ्गा के जल में छोड़ दिया तथा कृत्तिकाओं ने शरकण्डों के जंगल में गिरा दिया।।१००।। तब शरकण्डों के वन में महावीर महासेन षडानन (छः मुखों वाले) कार्तिकेय उत्पन्न हो गये, फिर वहाँ से गङ्गा के पास लाये गये वे धूर्जटि (शिवपुत्र) वृद्धि प्राप्त करने लगे।।१०१।। वह तीव्र पराक्रमी कार्तिकेय

अथ तातकृतानुज्ञः सुरसैन्यपतिर्भवन्। तारकं मारयामास समस्तैः सह दानवैः॥१०३॥
ततस्तारकदैत्येंद्रवधसन्तोषशालिना। शक्रेण दत्तां स गुहो देवसेनामुपानयत्॥१०४॥
सा शक्रतनया देवसेना नाम यशस्विनी। आसाद्य रमणं स्कन्दमानन्दं भृशमादधौ॥१०५॥
इत्थं संमोहिताशेषविश्वचक्रो मनोभवः। देवकार्यं सुसम्पाद्य जगाम श्रीपुरं पुनः॥१०६॥
यत्र श्रीनगरे पुण्ये ललिता परमेश्वरी। वर्तते जगतामृद्धयै तत्र तां सेवितुं ययौ॥१०७॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मदनपुनर्भवो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

सप्तकक्ष्यामतंग कन्या प्रादुर्भावोनाम

एकत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

किमिदं श्रीपुरं नाम केन रूपेण वर्तते। केन वा निर्मितं पूर्वं तत्सर्वं मे निवेदय॥१॥
कियत्प्रमाणं किं वर्णं कथयस्व मम प्रभो। त्वमेव सर्वसन्देहपङ्कशोषणभास्करः॥२॥

दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए अपने पिता शंकर द्वारा शिक्षित होकर सब विद्यायें प्राप्त कर लिये।।१०२।। इसके बाद अपने पिता भगवान् शंकर की अनुमति प्राप्त करके वे देवों की सेना के सेनापति हो गये और फिर उन्होंने समस्त दानवों के साथ तारकासुर को भी मार दिया।।१०३।। उसके बाद तारकासुर के वध से सन्तुष्ट इन्द्र द्वारा दी गयी, देवसेना के साथ कार्तिकेय ने विवाह कर लिया।।१०४।। वह इन्द्र की पुत्री देवसेना नाम की यशस्विनी सुराङ्गना थी, उसको प्राप्त कर उसके साथ रमण करके स्कन्द (कार्तिकेय) ने अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया।।१०५।। इस प्रकार समस्त विश्वचक्र को सम्मोहित करके कामदेव देवकार्य को अच्छी तरह सम्पन्न करके पुनः श्रीपुर को चले गये।।१०६।। जिस पुण्य श्री नगर में महाराज्ञी श्री ललिता परमेश्वरी लोकों की समृद्धि के लिये विद्यमान हैं, वहाँ उनकी सेवा करने के लिये कामदेव चले गये।।१०७।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३०वाँ अध्याय मदनपुनर्भव वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३१

सप्तकक्ष्या मतंगकन्या उत्पत्ति वर्णन

अगस्त्य बोले कि हे हयानन! यह श्रीपुर नाम क्या है? यह किस रूप से वर्तमान है तथा इसके पूर्वकाल में किसने बनाया था? यह सब मुझे बताइये।।१।। तथा हे प्रभो! हयानन! उस नगर का कितना प्रमाण है? तथा

हयग्रीव उवाच

यथा चक्ररथं प्राप्य पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम्। महायागानलोत्पन्ना ललिता परमेश्वरी॥३॥
कृत्वा वैवाहिकीं लीलां ब्रह्माद्यैः प्रार्थिता पुनः। व्यजेष्ट भण्डनामानमसुरं लोककण्टकम्॥४॥
तदा देवाः महेन्द्राद्याः सन्तोषं बहु भेजिरे। अथ कामेश्वरस्यापि ललितायाश्च शोभनम्।
नित्योपभोगसर्वार्थे मंदिरं कर्तुमुत्सुकाः॥५॥
कुमारा ललितादेव्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वर्धकिं विश्वकर्माणं सुराणां शिल्पकोविदम्॥६॥
असुराणां शिल्पनं च मयं मायाविचक्षणम्। आहूय कृतसत्कारानूचिरे ललिताज्ञया॥७॥

अधिकारिपुरुषा ऊचुः

भो विश्वकर्मञ्छिल्पज्ञ भोभो मय महोदय। भवन्तौ सर्वशास्त्रज्ञौ घटनामार्गकोविदौ॥८॥
संकल्पमात्रेण महाशिल्पकल्पविशारदौ। युवाभ्यां ललितादेव्या नित्यज्ञानमहोदधेः॥९॥
षोडशीक्षेत्रमध्येषु तत्क्षेत्रसमसंख्यया। कर्तव्या श्रीनगर्यो हि नानारत्नैरलङ्कृताः॥१०॥
यत्र षोडशधा भिन्ना ललिता परमेश्वरी। विश्वत्राणाय सततं निवासं रचयिष्यति॥११॥
अस्माकं हि प्रियमिदं मरुतामपि च प्रियम्। सर्वलोकप्रियं चैतत्तन्नाम्नैव विरच्यताम्॥१२॥
इति कारणदेवानां वचनं सुनिशम्य तौ। विश्वकर्ममयौ नत्वा व्यभाषेतां तथास्त्विति॥१३॥
पुनर्नत्वा पृष्टवन्तौ तौ तान्कारण पूरुषान्। केषु क्षेत्रेषु कर्तव्याः श्रीनगर्यो महोदयाः॥१४॥

क्या वर्ण है? वह सब मुझसे कहो; क्योंकि आप ही समस्त सन्देहरूपी पंक (कीचड़) को सोखने वाले सूर्य हैं।।२।।

हयग्रीव बोले कि हे अगस्त्य जी! जैसा कि पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त चक्ररथ को प्राप्त करके महायाग से अग्नि उत्पन्न करने वाली उन ललिता परमेश्वरी ने ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर वैवाहिकी लीला करके पुनः भण्डासुर नाम के लोककण्टक असुर पर विजय प्राप्त की।।४।। तब सब देवताओं ने बहुत अधिक सन्तोष प्राप्त किया।।४½।। इसके बाद कामेश्वर का भी और ललिता देवी का सुन्दर और नित्य उपभोग आदि सब उद्देश्यों के लिये मन्दिर बनवाने को उत्सुक ललिता देवी के पुत्र कुमार कार्तिकेय तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने ललिता देवी के मन्दिर बनवाने की अनुमति प्राप्त की और फिर अनुमति प्राप्त कर उनकी आज्ञा से उन्होंने देवताओं के शिल्पकर्मी (भवननिर्माण अभियन्ता विश्वकर्मा) तथा असुरों के शिल्पी मय महोदय को बुलाकर उनका सत्कार करके कहा।।५-७।।

अधिकारी पुरुषों ने कहा कि—हे विश्वकर्मा शिल्पज्ञ! तथा मयमहोदय! आप दोनों तो सब शास्त्रों को जानने वाले हैं। घटना मार्ग को भी जानने वाले हैं।।८।। आप दोनों तो संकल्प मात्र से महाशिल्पकला में विशारद हैं। आप लोगों द्वारा नित्यज्ञान की महासागर ललिता परमेश्वरी सोलह क्षेत्रों के मध्य में उस उस के क्षेत्रफल की संख्या के अनुसार अनेकों अलंकारों से अलंकृत श्रीनगर बना देना चाहिये।।९-१०।। जिस नगर में सोलह प्रकार की भिन्न ललिता परमेश्वरी (सोलह रूपों वाली परन्तु एक) विश्व की रक्षा के लिये निरन्तर निवास करेंगी।।११।। यह श्रीनगर यदि बन जायेगा तो इससे हमारी भलाई होगी तथा देवों का भी प्रिय होगा, तब सब लोकों का कल्याण हो, इस नाम से बनाइये।।१२।। इस प्रकार संसार के कारण रूप देवों के वचन को अच्छी प्रकार सुनकर वे दोनों विश्वकर्मा और मय नमस्कार करके "वैसा ही होगा" इस प्रकार बोले।।१३।। पुनः नमस्कार कर उन दोनों ने उन कारण पुरुषों से पूँछा कि महोदयो! किन क्षेत्रों में श्रीनगर बनाना है।।१४।।

ब्रह्माद्याः परिपृष्टास्ते प्रोचुस्तौ शिल्पिनौ पुनः।
क्षेत्राणां प्रविभागं तु कल्पयन्तौ यथाचितम्॥१५॥

कारणपुरुषा ऊचुः

प्रथमं मेरुपृष्ठे तु निषधे च महीधरे। हेमकूटे हिमगिरौ पञ्चमे गन्धमादने॥१६॥
नीले मेषे च शृङ्गारे महेन्द्रे च महागिरौ। क्षेत्राणि हि नवैतानि भौमानि विदितान्यथ॥१७॥
औदकानि तु सप्तैव प्रोक्तान्यखिलसिन्धुषु।
लवणोऽब्धीक्षुसाराब्धिः सुराब्धिर्घृतसागरः॥१८॥
दधिसिन्धुः क्षीरसिन्धुर्जलसिन्धुश्च सप्तमः।
पूर्वोक्ता नव शैलेन्द्राः पश्चात्सप्त च सिन्धवः॥१९॥
आहृत्य षोडश क्षेत्राण्यंबाश्रीपुरक्लृप्तये। येषु दिव्यानि वेश्मानि ललिताया महौजसः।
सृजतं दिव्यघटनापण्डितौ शिल्पिनौ युवाम्॥२०॥
येषु क्षेत्रेषु क्लृप्तानि घ्नन्त्या देव्या महासुरान्।
नामानि नित्यानाम्नैव प्रथितानि न संशयः॥२१॥
सा हि नित्यास्वरूपेण कालव्याप्तिकरी परा। सर्वं कलयते देवी कलनांकतया जगत्॥२२॥
नित्यानां च महाराज्ञी नित्या यत्र न तद्भिदा। अतस्तदीयनाम्ना तु सनामा प्रथिता पुरा॥२३॥
कामेश्वरीपुरी चैव भगमालापुरी तथा। नित्यक्लिन्नापुरीत्यादिनामानि प्रथितान्यलम्॥२४॥

जिन ब्रह्मा आदि से उन दोनों ने पूँछा तो ब्रह्मा आदि फिर उन दोनों से बोले कि क्षेत्रों का प्रविभाग तो यथोचित कल्पित कर लिया गया है।।१५।।

तब कारण पुरुषों ने कहा कि पहला मेरुपर्वत पर, और फिर निषध पर्वत पर उसके बाद हेमकूट पर फिर हिमगिरि पर पाँचवे गन्धमादन पर्वत पर, नील पर्वत पर, मेघ पर्त पर, शृङ्गार पर्वत, महेन्द्र पर्वत पर और महागिरि पर ये नौ भूमिक्षेत्र विदित ही हैं।।१६-१७।। जल वाले प्रदेश तो सात ही हैं, जो सब समस्त समुद्रों में हैं। वे सागर हैं—लवण सागर, इक्षुसागर, सुरा सागर, घृत सागर, दधि सागर, क्षीर सागर और सातवां जलसागर पूर्वोक्त ९ पर्वत हुए और बाद में सात समुद्र हुए।।१८-१९।।

अतः ललितेश्वरी अम्बा के श्रीपुर की रचना के लिए सोलह क्षेत्रों को लेकर निर्माण कीजिए, जिनमें महापराक्रमशालिनी ललिता दिव्य घरों की रचना करते हुए दिव्य घटनाओं को चित्रित करने में कुशल आप दोनों शिल्पी जिन-जिन क्षेत्रों में महासुरों को मारने वाली देवी ने कार्यस्थल बनाये, वे सब स्थान नित्या नाम से ही प्रसिद्ध हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२०-२१।। वह कालव्याप्तिकरी देवी सबसे परे है तथा नित्या स्वरूप से सब एक-एक की गिनती रखती हुई एक-एक के विषय में सोचती हुई सब संसार को धारण करती है, उसके विषय में, उसे चलाने के लिए सोचती है, उसके विषय में चिन्तित रहती है।।२२।। वह महाराज्ञी नित्यों की नित्या है। वह नित्य पदार्थों से भिन्न नहीं है। अतः वह पुरी उसके नाम से तो पूर्वकाल में नाम सहित प्रसिद्ध हुई थी।।२३।। वे नाम हैं—कामेश्वरी पुरी, भगमाला पुरी और नित्यक्लिन्ना पुरी इत्यादि प्रसिद्ध हुए थे।।२४।।

अतो नामानि वर्णेन योग्ये पुण्यतमे दिने। महाशिल्पप्रकारेण पुरीं रचयतां शुभाम्॥२५॥
इति कारणकृत्येंद्रैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः। प्रोक्तौ तौ श्रीपुरीस्थेषु तेषु क्षेत्रेषु चक्रतुः॥२६॥
अथ श्रीपुरविस्तारं पुराधिष्ठातृदेवताः। कथयाम्यहमाधार्य लोपामुद्रापते शृणु॥२७॥
यो मेरुरखिलाधारस्तुंगश्चानंतयोजनः। चतुर्दशजगच्चक्रसंप्रोतनिजविग्रहः॥२८॥
तस्य चत्वारि शृंगाणि शक्रनैर्ऋतवायुषु। मध्यस्थलेषु जातानि प्रोच्छ्रायस्तेषु कथ्यते॥२९॥
पूर्वोक्तशृङ्गत्रितयं शतयोजनमुन्नतम्। शतयोजनविस्तारं तेषु लोकास्त्रयो मताः॥३०॥
ब्रह्मलोको विष्णुलोकः शिवलोकस्तथैव च। एतेषां गृहविन्यासान्वक्ष्याम्यवसरांतरे॥३१॥
मध्ये स्थितस्य शृङ्गस्य विस्तारं चोच्छ्रयं शृणु। चतुःशतं योजनानामुच्छ्रितं विस्तृतं तथा॥३२॥
तत्रैव शृंगे महति शिल्पिभ्यां श्रीपुरं कृतम्। चतुःशतं योजनानां विस्तृतं कुम्भसंभव॥३३॥
तत्रायं प्रविभागस्ते प्रविविच्य प्रदर्श्यते। प्राकारः प्रथमः प्रोक्तः कालायसविनिर्मितः॥३४॥
षट्दशाधिकसाहस्त्रयोजनायतवेष्टनः। चतुर्दिक्षु द्वार्युतश्च चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥३५॥

अतः वर्ण के द्वारा योग्य पुण्यतम दिन में महाशिल्प के प्रकार से उस शुभ पुरी की रचना कर दीजिए।।२५।। इस प्रकार कारण कृत्येन्द्र (निर्माणाधिकारी) ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने उन दोनों विश्वकर्मा और मय से कहा, तब उन दोनों ने उन क्षेत्रों में उन-उन पुरों को बना दिया।।२६।।

इसके बाद हयानन ने अगस्त्य जी से कहा कि अब मैं श्रीपुर का विस्तार और पुरों की अधिष्ठात्री देवियों का अच्छी प्रकार विचार कर कह रहा हूँ। हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य जी सुनिये।।२७।। जो मेरु पर्वत है, वह उसका आधार है, जो कि अनन्त योजन ऊँचा है तथा चौदह जगच्चक्रों से अपने शरीर को अच्छी तरह से ढँके हुए है।।२८।। उस श्रीपुर के चार सींग हैं, जो शक्र[1], नैर्ऋत[2], वायु[3] और दिशाओं में है और एक मध्य स्थानों में हुआ है, उनमें जो ऊँचाई है, वह कही जाती है।।२९।।

पूर्वोक्त शृंग तीन सौ योजन ऊँचा है, उनमें सौ योजन विस्तार वाले तीनों लोक माने गये हैं।।३०।। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और उसी प्रकार का शिवलोक है, इनके घर के क्षेत्रफल को मैं दूसरे अवसर पर बताऊँगा।।३१।। अब मध्य में स्थित शृंग के विस्तार को और उस ऊँचाई को सुनिये। वह चार सौ योजन ऊँचा और उतना ही विस्तृत है।।३२।। वहीं महान् शृङ्ग पर शिल्पियों ने श्रीपुर को बनाया है। अतः हे अगस्त्य जी! वह श्रीपुर चार सौ योजन विस्तृत है।।३३।। उसमें यह जो प्रकृष्ट विभाग हैं, उनको प्रकृष्ट रूप से विशेषतः बता कर दिखाया जा रहा है।।३३½।। इसमें प्राकार (परकोटा/चारों तरफ का घेरा/ अथवा चहारदीवारी कहिए) अतः प्राकार प्रथम है। जो श्रीपुर का परकोटा है, जो लोहे से विशेष रूप से निर्मित किया गया है, जो सोलह हजार योजन श्रीपुर को चारों ओर से घेरे हुए है। अर्थात् श्रीपुर की चहारदीवारी की लम्बाई वृत्ताकार रूप से सोलह हजार योजन है।।३३½-३४½।। चारों दिशाओं में द्वार पर चार योजन ऊँचा द्वार है, जो शाल वृक्ष की मूल के समान वृत्ताकार है और वह दश हजार योजन

---

१. नैर्ऋत—दक्षिण और पश्चिम के बीच की दिशा।

२. वायु—पश्चिम और उत्तर के बीच की दिशा।

३. *शक्र—उत्तर दिशा।*

शालमूलपरीणाहो योजनायुतमब्धिप। शालाग्रस्य तु गव्यूतेर्नद्धवातायनं पृथक्॥३६॥
शालद्वारस्य चौन्नत्यमेकयोजनमाश्रितम्। द्वारेद्वारे कपाटे द्वे गव्यूत्यर्धप्रविस्तरे॥३७॥
एकयोजनमुन्नद्धे कालायस विनिर्मिते। उभयोरर्गला चेत्थमर्धक्रोशसमायता॥३८॥
एवं चतुर्षु द्वारेषु सदृशं परिकीर्तितम्। गोपुरस्य तु संस्थानं कथये कुंभसंभव॥३९॥
पूर्वोक्तस्य तु शालस्य मूले योजनसंमिते। पार्श्वद्वये योजने द्वे द्वे समादाय निर्मिते॥४०॥
विस्तारमपि तावंतं संप्राप्तं द्वारगर्भितम्। पार्श्वद्वयं योजने द्वे मध्ये शालस्य योजनम्॥४१॥
मेलयित्वा पञ्च मुने योजनानि प्रमाणतः। पार्श्वद्वयेन सार्धेन क्रोशयुग्मेन संयुतम्॥४२॥
मेलयित्वा पंचसंख्यायोजनान्यायतस्तथा। एवं प्राकारतस्तत्र गोपुरं रचितं मुने॥४३॥
तस्माद्गोपुरमूलस्य वेष्टो विंशतियोजनः। उपर्युपरि वेष्टस्य ह्रास एव प्रकीर्त्यते॥४४॥
गोपुरस्योन्नतिः प्रोक्ता पञ्चविंशतियोजना। योजनेयोजने द्वारं सकपाटं मनोहरम्॥४५॥

भूमिकाश्चापि तावन्त्यो यथोध्वरं ह्राससंयुताः।
गोपुराग्रस्य निस्तारो योजनं हि समाश्रियः॥४६॥
आयामोऽपि च तावान्वै तत्र त्रिमुकुटं स्मृतम्।
मुकुटस्य तु विस्तारः क्रोशमानो घटोद्भव॥४७॥

क्रोशद्वयं समुन्नद्धं ह्रासं गोपुरवन्मुने। मुकुटस्यांतरे क्षोणी क्रोशार्धेन च संमिता॥४८॥

लम्बा है।।३४½-३५½।। शाल के आगे का एक अलग वातायन है, जो दो कोश लम्बा है और शालद्वार की ऊँचाई एक योजन आश्रित है।।३५½-३६½।। द्वार-द्वार पर दो कपाट हैं, जो आधे गव्यूति (एक कोश) विस्तार वाले हैं तथा एक योजन ऊँचे हैं और वे लोहे के बने हुए हैं। दोनों कपाटों में आधे कोश लम्बी अर्गला है।।३६½-३८।। इस प्रकार चारों द्वारों पर समान रूप से बनाये गये गोपुर के संस्थान हैं, जिनको हे अगस्त्यजी! मैं बताता हूँ।।३९।। पूर्वोक्त शाल के मूल में योजन सम्मित दोनों पार्श्व में दो योजन पर दो शाल लाकर बनाये गये हैं।।४०।। उनका भी विस्तार द्वार के अन्दर उतना ही है, दोनों पार्श्व दो योजन है, जो दो शाल के मध्य की दूरी है।।४१।। कुल मिलाकर पाँच योजन प्रमाण होता है। दोनों पार्श्व के साथ दो कोश होता है।।४२।। सब मिलाकर पाँच योजन लम्बाई होती है। इस प्रकार की चहारदीवारी वाला गोपुर बनाया गया है।।४३।।

उससे गोपुर मूल का घेरा (उसकी बाड़) बीस योजन है, ऊपर-ऊपर उस बाड़ का ह्रास ही कहा जाता है। जैसे ऊपर को मन्दिर अथवा पहाड़ कम होता जाता है, वही उसका रूप है। इससे यहाँ पर प्रकृति निर्मित मेरुपर्वत का वर्णन प्रतीत हो रहा है।।४४।। गोपुर की ऊँचाई पच्चीस योजन कही गयी है। योजन-योजन पर कपाट युक्त मनोहर द्वार हैं।।४५।। और उतनी भूमि की लम्बाई भी उतनी ही थी, जो ऊपर को कम होती गयी। गोपुर के आगे का निस्तार एक योजन समाश्रित है। यहाँ स्पष्ट है कि मेरुपर्वत की ऊँचाई ऊपर को कम होती गयी, हो सकता है कि सबसे ऊँची की चोटी का विस्तार एक योजन (४ कोश) १० कि.मी. हो।।४६।। तथा उसका आयाम (लम्बाई) भी उतनी ही है, वहाँ पर त्रिमुकुट सुना गया है। हे अगस्त्य जी! उस मुकुट का तो विस्तार कोश भर का है।।४७।। हे मुने! गोपुर के समान कोश भर ऊँचा ह्रास है, मुकुट के बीच में आधे कोश सम्मित एक पहाड़ है।।४८।।

मुकुटं पश्चिमे प्राच्यां दक्षिणे द्वारगोपुरे।दक्षोत्तरस्तु मुकुटाः पश्चिमद्वारगोपुरे।।४९।।
दक्षिणद्वारवत्प्रोक्ता उत्तरद्वाःकिरीटिकाः। पश्चिमद्वारवत्पूर्वद्वारे मुकुटकल्पना।।५०।।
कालायसाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। अंतरे कांस्यशालस्य पूर्ववद्गोपुरोऽन्वितः।।५१।।
शालमूलप्रमाणं च पूर्ववत्परिकीर्तितम्। कांस्यशालोऽपि पूर्वादिदिक्षु द्वारसमन्वितः।।५२।।
द्वारेद्वारे गोपुराणि पर्वलक्षणभांजे च। कालायसस्य कांस्यस्य योंऽतर्देशः समंततः।।५३।।
नानावृक्षमहोद्यानं तत्प्रोक्तं कुंभसंभव। उद्भिज्जाद्यं यावदस्ति तत्सर्वं तत्र वर्तते।।५४।।
परंसहस्रास्तरवः सदापुष्पाः सदाफलाः। सदापल्लवशोभाढ्याः सदा सौरभसंकुलाः।।५५।।

चूताः कंकोलका लोध्रा बकुलाः कर्णिकारका;।
शिशपाश्च शिरीषाश्च देवदारुनमेरवः।।५६।।
पुन्नागा नागभद्राश्च मुचुकुंदाश्च कट्फला;।
एलालवंगास्तक्कोलास्तथा कर्पूरशाखिनः।।५७।।
पीलवः काकतुंड्यश्च शालकाश्चासनास्तथा।
कांचनाराश्च लकुचाः पनसा हिंगुलास्तथा।।५८।।

पाटलाश्च फलिन्यश्च जटिल्यो जघनेफलाः। गणिकाश्च कुरंडाश्च बंधुजीवाश्चदाडिमाः।।५९।।

अश्वकर्णा हस्तिकर्णाश्चांपेयाः कनकद्रुमाः।
यूथिकास्तालपर्ण्यश्च तुलस्यश्च सदाफलाः।।६०।।

तालास्तमालहिंतालखर्जूराः शरबर्बुराः। इक्षवः क्षीरिणश्चैव श्लेष्मांतकविभीतकाः।।६१।।

हरीतक्यस्त्ववाक्पुष्प्यो घोण्टाल्यः स्वर्गपुष्पिकाः।
भल्लातकाश्च खदिराः शाखोटाश्चंदनद्रुमाः।।६२।।

मुकुट पश्चिम और पूर्व में दक्षिण द्वार गोपुर में स्थित है। दक्षिण और उत्तर से मुकुट पश्चिम द्वार गोपुर में है।।४९।। दक्षिण द्वार के समान उत्तर द्वार के मुकुट हैं। पश्चिम द्वार के पूर्व द्वार पर भी मुकुट की कल्पना है।।५०।। लोहे की शाल के बीच में मारुत योजन पर और कांसे की शाल के बीच में पूर्व के समान गोपुर स्थित है।।५१।। शालमूल का प्रमाण पूर्ववत् बताया गया है। कांस्यशाल भी पूर्वादि दिशाओं में द्वार से युक्त है।।५२।। प्रत्येक द्वार पर गोपुर हैं और पर्व के लक्षण। लोहे के शाल और कांस्यशाल के अन्तर्देश चारों और फैला हुआ है। वह अनेकों प्रकार के वृक्षों का महा उद्यान कहा जाता है। भूमि को फोड़कर पैदा होने वाले जितने भी प्रकार के वृक्ष होते हैं, वे सब वहाँ उस महा उद्यान में वर्तमान हैं।।५३-५४।। सदा पुष्प वाले और सदा फल वाले तथा सदा पत्तों की शोभा से युक्त एवं सदा सुगन्ध से भरे हुए हजारों से भी अधिक वृक्ष वहाँ पर विद्यमान हैं।।५५।। जैसे कि आम, अशोक, लोध्र, बकुल, (मौलसिरी), अमलतास, शीशम, शिरीष, देवदारु, नमेरु, पुन्नाग, गूलर, मुचुकुन्द, कटफल, एला (एलायची), लौंग, तक्कोल, कर्पूरशाखी, पीलु, काकतुण्डी, शालक, असन, कचनार, लकुच, पनस, हींग, पाटल (गुलाब), फलिनी, जटिली, जधने फल, गणिका, कटसरैया, बन्धुजीव, अनार, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, चांपेय, कनकद्रुम (धतूरा), जूही, तालपर्णी, तुलसी, सदाफला, ताल, माल, हिन्ताल, खजूर, शरबर्बर, ईख, किरनी, लहसोड़ा, विभीतक, हरड़, अवाक्पुष्पी, घाण्टाली, स्वर्गपुष्पी, भल्लातक, खदिर, शाखोट (शखुआ) चन्दन,

कालागुरुद्रुमाः कालस्कंधाश्विंचा वटास्तथा। उदुंबरार्जुनाश्वत्थाः शमीवृक्षा ध्रुवुद्रुमाः॥६३॥
रुचकाः कुटजाः सप्तपर्णाश्च कृतमालकाः।
कपित्थास्तिंतिणी चैवेत्येवमाद्याः सहस्रशः॥६४॥
नानाऋतुसमाविष्टा देव्याः शृङ्गारहेतवः। नानावृक्षमहोत्सेधा वर्तंते वरशाखिनः॥६५॥
कांस्यशालस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः। चतुरस्त्रस्ताम्रशालः सिंधुयोजनमुन्नतः॥६६॥
अनयोरंतरक्षोणी प्रोक्ता कल्पकवाटिका। कर्पूरगन्धिभिश्चारुरत्नबीजसमन्वितैः॥६७॥
कांचनत्वक्सुरुचिरैः फलैस्तैः फलिता द्रुमाः।
पीतांबराणि दिव्यानि प्रवालान्येव शाखिषु॥६८॥
अमृतं स्यान्मधुरसः पुष्पाणि च विभूषणम्। ईदृशा बहवस्तत्र कल्पृक्षाः प्रकीर्तिताः॥६९॥
एषा कक्षा द्वितीया स्यान्कल्पवापीति नामतः।
ताम्रशालस्यांतराले नागशालः प्रकीर्तितः॥७०॥
अनयोरुभयोस्तिर्यग्देशः स्यात्सप्तयोजनः। तत्र संतानवाटी स्यान्कल्पवापीसमाकृतिः॥७१॥
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता हरिचन्दनवाटिका। कल्पवाटीसमाकारा फलपुष्पसमाकुला॥७२॥
एषु सर्वेषु शालेषु पूर्ववद्द्वारकल्पनम्। पूर्ववद्गोपुराणां च मुकुटानां च कल्पनम्॥७३॥
गोपुरद्वारक्लृप्तं च द्वारे द्वारे च संमितिः। आरकूटस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः॥७४॥
पञ्चलोहमयः शालः पूर्वशालसमाकृतिः। तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता मन्दारद्रुमवाटिका॥७५॥
पञ्चलोहस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः। रौप्यशालस्तु संप्रोक्तः पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतः॥७६॥

कालागरु, तम्बाकू, बरगद, उदुम्बुर, अर्जुन, पीपल, शमी वृक्ष, ध्रुवा वृक्ष, रुचक, कुटकी, सप्तपर्ण (छितवन), कृतमालक, कपित्थ, तिंतिणी आदि हजारों प्रकार के वृक्ष थे।।५६-६४।। वहाँ श्रीललितेश्वरी के शृंगार के लिये अनेकों ऋतुओं से समाविष्ट श्रेष्ठ शाखाओं वाले अनेकों प्रकार के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे।।६५।। कांस्यशाल के अन्तराल में सात योजन दूर से चौकोर (वर्गाकार) ताम्रशाल (तांबे का भवन) है, जो समुद्र से एक योजन ऊँचा है।।६६।। इन दोनों के बीच में एक भूमि है, जिसे कल्पक वाटिका कहा गया है। जो भूमि कर्पूर की गन्ध वाले सुन्दर रत्नों से युक्त सुनहरी छाल वाले सुन्दर और रुचिर फलों से फलित है। उन वृक्षों की शाखाओं पर पीले-पीले रंग के दिव्य कोमल किसलय और अंकुर निकल रहे हैं।।६७-६८।। उन वृक्षों का मधुरस अमृत है और उनके पुष्प आभूषण हैं। ऐसे वहाँ बहुत से वृक्ष बताये गये हैं। इस प्रकार कल्पवापी इस नाम से यह द्वितीय कक्ष है।।६९-६९½।। अब ताम्रशाल के अन्तराल (मध्य) में नागशाल कहा गया है। इन दोनों में तिरछा स्थान सात योजन विस्तृत है, वहाँ पर कल्पवापी के समान आकृति वाली सन्तान वापी है।।६९½-७१।। उन दोनों कल्पवापी और सन्तान वापी के मध्य में हरिचन्दन वाटिका है, जो कल्पवापी के समान आकार वाली फल और फूलों से अच्छी प्रकार भरी हुई है।।७२।। इन सभी शालों में पूर्व के समान द्वार बने हुए हैं तथा पूर्व के समान ही गोपुरों और मुकुटों को बनाया गया है।।७३।। नगरद्वार के सटे हुए द्वार-द्वार पर सम्मिति बनायी गयी है।।७३½।। पीतल शाल (पीतल भवन) के बीच में सात योजन दूर से पाँच लोहमय भवन हैं, जो पूर्व भवनों के बीच में मन्दार वृक्षों की वाटिका है।।७३½-७५।। अब पाँच लोहमय

तयोर्मध्यमही प्रोक्ता पारिजातद्रुवाटिका। दिव्यामोदसुसंपूर्णा फलपुष्पभरोज्ज्वला॥७७॥
रौप्यशालस्यांतराले सप्तयोजनविस्तरः। हेमशालः प्रकथितः पूर्ववद्वारशोभितः॥७८॥
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता कदम्बतरुवाटिका। तत्र दिव्या नीपवृक्षा योजनद्वयमुन्नताः॥७९॥
सदैव मदिरासंपदा मेदुरप्रसवोज्ज्वलाः। येभ्यः कादंबरी नाम योगिनी भोगदायिनी॥८०॥
विशिष्टा मदिरोद्याना मंत्रिण्याः सततं प्रिया।
ते नीपवृक्षाः सुच्छायाः पत्रलाः पल्लवाकुलाः।
आमोदलोलभृंगालीझंकारैः पूरितोदराः॥८१॥
तत्रैव मंत्रिणीनाथाया मंदिरं सुमनोहरम्। कदंबवनवाट्यास्तु विदिक्षु ज्वलनादितः॥८२॥
चत्वारि मंदिराण्युच्चैः कल्पितान्यादिशिल्पिना।
एकैकस्य तु गेहस्य विस्तारः पञ्चयोजनः॥८३॥
पञ्चयोजनमायामः सप्तावरणतः स्थितिः। एवमन्यविदिक्षु स्युस्सर्वत्र प्रियकद्रुमाः।
निवासनगरी सेयं श्यामायाः परिकीर्तिता॥८४॥
सेनार्थं नगरी त्वन्या महापद्माटवीस्थले। यदत्रैव गृहं तस्या बहुयोजनदूरतः॥८५॥
श्रीदेव्या नित्यसेवा तु मंत्रिण्या न घटिष्यते। अतश्चिंतामणिगृहोपांतेऽपि भवनं कृतम्।
तस्याः श्रीमंत्रनाथायाः सुरत्वष्ट्रा मयेन च॥८६॥
श्रीपुरे मंत्रिणी देव्या मंदिरस्य गुणान्बहून्। वर्णयिष्यति को नाम यो द्विजिह्वासहस्त्रवान्॥८७॥

भवनों के अन्तराल में सात योजन दूर से पूर्व लक्षमों से युक्त चाँदी का भवन बताया गया है।।७६।। उन दोनों पंचलोह भवन और चाँदी के भवन के बीच में कल्पवृक्षों की वाटिका है, जो दिव्य आनन्द से सुसम्पूर्ण तथा फल और पुष्पों से भरी हुयी एवं उज्ज्वल है।।७७।। चाँदी के भवन के अन्तराल पर सात योजन विस्तार वाला स्वर्ण भवन कहा गया है, पूर्वद्वारों के समान जिसके द्वार सुशोभित हैं।।७८।। उन दोनों चाँदी और सोने के भवनों के बीच में कुछ भूमि कही गयी है, जिसे कदम्ब वृक्षों की वाटिका कहा गया है। वहाँ पर दो योजन ऊँचे कदम्ब के वृक्ष हैं।।७९।। जो सदैव उज्ज्वल मदिरा टपकाते रहते हैं। जिन वृक्षों से कादम्बरी नाम की भोग प्रदान करने वाली योगिनी पैदा हुई है।।८०।। वहाँ पर विशिष्ट मदिरा के उद्यान हैं, जो मन्त्रिणी देवी को सदैव प्रिय हैं।।८०½।।

वे कदम्ब के वृक्ष सुन्दर छाया वाले पत्तों और कोमल किसलयों से लदे हुए हैं, जो वृक्ष आनन्द से युक्त चञ्चल भौंरों की झंकारों से भरे हुए हैं।।८१।। वहीं पर मन्त्रिणी नाथा देवी का सुन्दर और मन को हर लेने वाला मन्दिर है, जो कदम्ब वन की वाटी से सभी दिशाओं में घिरा हुआ है।।८२।। वहाँ पर चार मन्दिर आदिकालीन शिल्पियों ने बनाये हैं। जिनके एक-एक घर का विस्तार पाँच योजन है।।८३।। तथा ज़िनकी पाँच योजन लम्बाई है। सात आवरण से स्थिति है। इस प्रकार अन्य विशेष दिशाओं में सर्वत्र प्रियक के वृक्ष हैं। यह श्यामा देवी की निवास नगरी कही गयी है।।८४।। यह नगरी सेना के लिये है। अन्य नगरी महापद्मवन के स्थल पर है कि यहीं पर बहुत योजन दूर से उन श्रीदेवी का घर है।।८५।। श्रीदेवी की नित्य सेवा मन्त्रिणी द्वारा नहीं हो सकेगी, इसलिए चिन्तामणि गृह के पास में ही उन श्रीमन्त्रनाथा देवी का घर विश्वकर्मा और मय दानव ने बना दिया है।।८६।। श्रीपुर में मन्त्रिणी

कादंबरीमदाताम्रनयनाः कलवीणया। गायंत्यस्तत्र खेलंति मान्यमातंगकन्यकाः॥८८॥

अगस्त्य उवाच

मातङ्गो नाम कः प्रोक्तस्य कन्याः कथं च ताः।
सेवंते मंत्रिणीनाथां सदा मधुमदालसाः॥८९॥

हयग्रीव उवाच

मतंगो नाम तपसामेकराशिस्तपोधनः। महाप्रभावसंपन्नो जगत्सर्जनलंपटः।।९०।।
तपःशक्त्यात्तधिया च सर्वत्राज्ञाप्रवर्त्तकः। तस्य पुत्रस्तु मातंगो मुद्रिणीं मंत्रिनायिकाम्॥९१॥
घोरैस्तपोभिरत्यर्थं पूरयामास धीरधीः। मतंगमुनिपुत्रेण सुचिरं समुपासिता॥९२॥
मंत्रिणी कृतसान्निध्या वृणीष्व वरमित्यशात्।
सोऽपि सर्वमुनिश्रेष्ठो मातंगस्तपसां निधिः।
उवाच तां पुरो दत्तसान्निध्यां श्यामलांबिकाम्॥९३॥

मातंगमहामुनिरुवाच

देवीत्वत्स्मृतिमात्रेण सर्वाश्च मम सिद्धयः।
जाता एवाणिमाद्यास्ताः सर्वाश्चान्या विभूतयः॥९४॥
प्रापणीयन्न मे किंचिदस्त्यंब भुवनत्रये। सर्वतः प्राप्तकालस्य भवत्याश्चरितस्मृतेः॥९५॥
अथापि तव सांनिध्यमिदं नो निष्फलं भवेत्। एवं परं प्रार्थयेऽहं तं वरं पूरयांबिके॥९६॥

देवी के मन्दिर (घर) के बहुत गुणों को कौंन वर्णन कर सकेगा, जो दो हजार जिह्वाओं वाला होगा, अर्थात् न कोई दो हजार जिह्वाओं वाला होगा, न उनके बहुत गुणों वाले भवनों का वर्णन कर सकेगा, अतः वर्णन अवर्णनीय है।।८७।। मदिरा के मद से लाल-लाल आँखों वाली, कलवीणा से गाती हुई, मान्य मातंग कन्याएँ वहाँ खेलती हैं।।८८।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे हयानन! ये मातंग नाम कौंन कहा गया है और उसकी वे कन्याएँ कौंन हैं, जो कि सदा मदिरा के मद में मस्त होकर मन्त्रिणी नाथा देवी की सेवा करती हैं।।८९।।

हयग्रीव ने कहा कि एक तपस्याओं के एक राशि तपस्वी महाप्रभाव सम्पन्न, संसार को उत्पन्न करने में सहायक, तपस्या की शक्ति से प्राप्त बुद्धि वाले, सर्वत्र आज्ञा को प्रवृत्त करने वाले मतंग नाम के एक तपस्वी थे। उनका पुत्र मातंग है, जिस धीर बुद्धि वाले ने मुद्रिणी मन्त्रिनाथा देवी को घोर तपस्याओं से प्रसन्न कर अपना उद्देश्य पूरा कर लिया।।९०-९१½।। मतंग मुनि के पुत्र द्वारा बहुत समय तक उपासना करने से मन्त्रिनाथा देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं, तो उन्होंने उससे कहा कि वर माँगो। वह भी सब मुनियों में श्रेष्ठ और तपस्याओं के साक्षात् भण्डार थे। अतः उन मातंग मुनि ने श्यामला देवी के सामने स्थित होकर कहा।।९१½-९३।।

मातंग मुनि ने कहा कि देवी! तुम्हारे स्मरण मात्र से मुझे अणिमा आदि समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं तथा अन्य सभी विभूतियाँ भी प्राप्त हो गयीं।।९४।।

अब हे अम्बे! अब तीनों लोकों में मेरे प्राप्त करने योग्य कोई भी वस्तु नहीं है। सब ओर सब कुछ सब काल में आपके चरित्र स्मरण से मिल ही जाता है। इसके बाद भी तुम्हारा यह जो सान्निध्य है, वह निष्फल न होवे, इसलिए

पूर्वं हिमवता सार्धं सौहार्दं परिहासवान्।
क्रीडामत्तेन चावाच्यैस्तत्र तेन प्रगल्भितम्॥९७॥
अहं गौरीगुरुरिति श्लाघामात्मनि तेनिवान्।
यद्वाक्यं मम नैवाभूद्यतस्तत्राधिको गुणः॥९८॥
उभयोर्गुणसाम्ये तु मित्रयोरधिके गुणे। एकस्य कारणाज्जाते तत्रान्यस्य स्पृहा भवेत्॥९९॥
गौरीगुरुत्वश्लाघार्थं प्राप्तकामोऽप्यहं तपः।
कृतवान्मंत्रिणीनाथे तत्त्वं मत्तनया भव॥१००॥
यतो मन्नामविख्याता भविष्यसि न संशयः। इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा मातंगस्य महामुनेः।
तथास्त्विति तिरोधत्त स च प्रीतोऽभवन्मुनिः॥१०१॥
मातंगस्य महर्षेस्तु तस्य स्वप्ने तदा मुदा।
तापिच्छमञ्जरीमेकां ददौ कर्णावतंसतः॥१०२॥
तत्स्वप्नस्य प्रभावेण मातंगस्य सधर्मिणी।
नाम्ना सिद्धिमती गर्भे लघुश्यामामधारयत्॥१०३॥
तत एव समुत्पन्ना मातंगी तेन कीर्तिताः।
लघुश्यामेति सा प्रोक्ता श्यामा यन्मूलकंदभूः॥१०४॥

ऐसा परं वर मैं माँगता हूँ, उसको हे अम्बिके! पूरा करो।।९६।। पूर्वकाल में हिमालय के साथ मैंने क्रीड़ा करते हुए उन भगवान् शंकर ने कहा था और मेरी बहुत प्रशंसा की थी, वह वाक्य मेरे लिए अधिक गुण वाला नहीं हुआ।।९७-९८।। दोनों गुणों के समान होने पर मित्र होने में अधिक गुण है; क्योंकि एक के कारण से उत्पन्न होने पर अन्य की इच्छा होती है। अर्थात् जैसे किसी कारण रूप कार्य से जब सफलता मिल जाती है, तो फिर व्यक्ति किसी अन्य कार्य की सफलता के लिए किसी अन्य कारण को कार्य बनाने की इच्छा करता है। जैसे कि मैंने तपस्या की, उससे सिद्धियाँ मिलीं, फिर उसके बाद अन्य वैभव को प्राप्त करने के लिए फिर तप किया, वह भी मिला, इस प्रकार इच्छायें अनन्त हैं, बढ़ती ही जाती हैं।।९९।।

अतः गौरी गुरुत्व की प्रशंसा के लिए प्राप्त कामना वाले, मैंने तप किया है। अर्थात् मैं सदैव गौरी के महान् होने की प्रशंसा का गान करता रहूँ, इसी उद्देश्य से मैंने तप किया है, इसलिए हे मन्त्रिणीनाथा देवी! आप मेरी पुत्री हो जाओ।।१००।।

जिससे तुम मेरे नाम से विख्यात हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१००½।। इस प्रकार मातंग महामुनि के वचन को सुनकर 'तथास्तु' (वैसा ही होगा) ऐसा कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और वह मुनि प्रसन्न हो गये।।१०१।। तब उन मातंग महर्षि के स्वप्न में उन प्रसन्न देवी ने अपने कर्णाभूषण से निकाल कर एक तापिच्छ मञ्जरी (तमाल वृक्ष के फूल की मंजरी) को दिया।।१०२।। उस स्वप्न के प्रभाव से मातंग मुनि की पत्नी, नाम से सिद्धिमती ने गर्भ में लघुश्यामा को धारण किया।।१०३।। उसके बाद ही उत्पन्न वे लघु श्यामा देवी मातंगी कही गयीं, वही लघु श्यामा भी कही गयी, जिनकी मूल कन्द की भूमि श्यामा देवी हैं।।१०४।।

मातंगकन्यका हृद्याः कोटीनामपि कोटिशः। लघुश्यामा महाश्यामामातंगी वृंदसंयुताः।
अङ्गशक्तित्वमापन्नाः सेवन्ते प्रियकप्रियाम्॥१०५॥
इति मातंगकन्यानामुत्पत्तिः कुंभसंभवः।
कथिताः सप्तकक्षाश्च शाला लोहादिनिर्मिताः॥१०६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने हयग्रीवागस्त्यसंवादे सप्तकक्ष्या मतंगकन्याप्रादुर्भावो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षा पालक देवताप्रकाशनं नाम

द्वात्रिंशोऽध्यायः

लोहादिसप्तशालानां रक्षका एव संति वै। तन्नामकीर्तय प्राज्ञ येन मे संशयच्छिदा॥१॥

हयग्रीव उवाच

नानावृक्षमहोद्याने वर्तते कुंभसंभव। महाकालः सर्वलोकभक्षकः श्यामविग्रहः॥२॥
श्यामकंचुकधारी च मदारुणविलोचनः। ब्रह्माण्डचषके पूर्णं पिबन्विश्वरसायनम्॥३॥

मातंग कन्याएँ करोड़ों-करोड़ों में हृद्य हैं अर्थात् वे करोड़ों लोगों के लिये प्रिय हैं। जो लघुश्यामा, महाश्यामा आदि मातंगी समूह से युक्त हैं। वे सब अंगशक्तित्व को प्राप्त कर प्रियक प्रिया देवी की सेवा करती हैं।।१०५।। इस प्रकार हे अगस्त्य जी मैंने मातंग कन्याओं की उत्पत्ति कही और लोहा आदि से निर्मित सात कक्षों की शालाओं का वर्णन किया है।।१०६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३१वाँ अध्याय सप्तकक्ष्या मतंगकन्या उत्पत्ति वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३२

श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षापालक देवता प्रकाशन वर्णन

अगस्त्य मुनि बोले— कि हे भगवान् हयग्रीव! आपने जो लोहादि सप्तशालाओं का वर्णन किया, अतः लोहादि सप्तशालाओं के रक्षक तो होंगी, इसलिए हे प्राज्ञ! आप उनके नाम बताइए, जिससे मेरा सन्देह दूर हो सके।।१।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्यजी! अनेकों वृक्षों से युक्त महोद्यान में सब लोकों के भक्षक श्याम शरीर वाले महाकाल वर्तमान हैं।।२।। वे महाकाल श्यामकंचुक धारण करने वाले और मद से लाल-लाल नेत्रों वाले हैं तथा

महाकालीं घनश्यामामनंगार्द्रामपाङ्गयन्। सिंहासने समासीनः कल्पांते कलनात्मके॥४॥
ललिताध्यानसंपन्नो ललितापूजनोत्सुकः। वितन्वँल्ललिताभक्तेः स्वायुषो दीर्घ दीर्घताम्।
कालमृत्युप्रमुख्यैश्च किंकरैरपि सेवितः॥५॥
महाकालीमहाकालौ ललिताज्ञाप्रवर्त्तकौ। विश्वं कलयतः कृत्स्नं प्रथमेऽध्वनि वासिनौ॥६॥
कालचक्रं मतङ्गस्य तस्यैवासनतां गताम्। चतुरावरणोपेतं मध्ये बिन्दुमनोहरम्॥७॥
त्रिकोणं पञ्चकोणं च षोडशच्छदपंकजम्। अष्टारपंकजं चैवं महाकालस्तु मध्यगः॥८॥
त्रिकोणे तु महाकाल्या महासंध्या महानिशा।
एतास्तिस्त्रो महादेव्यो महाकालस्य शक्तयः॥९॥
तत्रैव पञ्चकोणाग्रे प्रत्यूषश्च पितृप्रसूः। प्राह्णापराह्णमध्याह्नाः पञ्च कालस्य शक्तयः॥१०॥
अथ षोडशपत्राब्जे स्थिता शक्तीर्मुने शृणु।
दिनमिश्रा तमिस्त्रा च ज्योत्स्नी चैव तु पक्षिणी॥११॥

वे सकल ब्रह्माण्ड रूपी शराब़ के प्याले में विश्व रसायन पीते हुए घन के समान श्याम वर्ण वाली अंगहीन आद्रा (कामवेग से आर्द्र महाकाली पर दृष्टि डालते हुए, उनको घूरते हुए तथा सृष्टि का अन्त कब होगा, कल्पान्त अभी कितना शेष है, यह कालगणना करते हुए सिंहासन पर समासीन हैं। उस समय वे महाकाल महाराज्ञी ललितेश्वरी के ध्यान में संलग्न हैं तथा ललिता देवी की पूजा में उत्सुक हैं तथा ललितादेवी की भक्ति में ही अपनी आयु का लम्बे से लम्बा समय बिता रहे हैं और वे स्वयं कालमृत्यु के प्रमुख सेवकों द्वारा सेवित हैं। अर्थात् जो मनुष्यों के प्राणों को लेकर आते हैं, उन कालकिंकरों (यमदूतों) द्वारा उन महाकाल की सेवा की जा रही है।।३-५।। महाकाली और महाकाल ललिता देवी की आज्ञा को लागू (क्रियान्वित) करने वाले हैं तथा दोनों ही समस्त विश्व की गणना करते हुए कि कितना समय हुआ तथा कितना समय अभी सृष्टि में शेष है तथा किसका कब समय पूरा हो रहा है, यह सब हिसाब-किताब रखते हुए प्रथम मार्ग में निवास करने वाले हैं।।६।। उसी मतङ्ग का कालचक्र आसनता को प्राप्त हुआ है। उसके मध्य में चार आवरणों से युक्त मनोहर बिन्दु है।।७।। त्रिकोण, पंचकोण, षोडशदलकमल और अष्टदलकमल हैं, इस प्रकार महाकाल तो सबके मध्य में हैं।।८।। त्रिकोण में महाकाली, महासन्ध्या और महानिशा तीनों ही महादेवियाँ महाकाल की शक्तियाँ हैं।।९।। वहीं पञ्चकोण अग्रभाग में प्रत्यूष, पितृप्रसू, प्राह्ण, अपराह्ण और मध्याह्ण ये पाँच की शक्तियाँ हैं[1]।।१०।। हयानन कहते हैं कि अब हे मुने! षोडशदलकमल में जो शक्तियाँ स्थित हैं, उनको सुनिये। वे हैं दिनमिश्रा, तमिस्त्रा, ज्योत्स्नी, पक्षिणी, प्रदोषा, निशीथा, प्रहरा, पूर्णिमा, राका, अनुमति, अमावस्यिका,

विशेष—ललिता देवी, ललितेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, दुर्गा, चण्डी, काली, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी आदि ये प्रकृति के ही नाम हैं। कालचक्र समय का चक्र है। त्रिकोण रात्रि के तीन भाग हुए—१. महाकाली, महासन्ध्या, ३. महानिशा।

१. पञ्चकोण—दिन के पाँच के प्रतीक हैं—१. प्रत्यूष = भोरप्रभात, . प्रतिप्रसू = प्रभात के बाद का समय, ३. प्राह्ण = दोपहर से पहले का समय, ४. मध्याह्न = दोपहर, ५. अपराह्ण = दोपहर के बाद का समय। इस प्रकार ये पाँच दिनकाल रूपी प्रकृति की शक्तियाँ हैं। दिनमिश्रा तमिस्त्रा आदि वर्ष भर की सोलह प्रकार की तिथियों के नाम हैं तथा सोलह कमलवासिनी शक्तियाँ समय की नापतौल बताने वाली है, जो कला काष्ठा आदि हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण ये समय के सूचक ज्योतिष के पाँच अंग ही हैं। इस प्रकार ये सब प्रकृति के ही प्रतीक हैं।

प्रदोषा च निशीथा च प्रहरा पूर्णिमापि च। राका चानुमतिश्चैव तथैवामावस्यिका पुनः॥१२॥
सिनीवाली कुहूर्भद्रा उपरागा च षोडशी।
एता षोडशमात्रस्थाः शक्तयः षोडश स्मृताः॥१३॥
कला काष्ठा निमेषाश्च क्षणाश्चैव लवास्त्रुटिः। मुहूर्ताः कुतपाहोरा शुक्लपक्षस्तथैव च॥१४॥
कृष्णपक्षायनाश्चैव विषुवा च त्रयोदशी। संवत्सरा च परवत्सरेडावत्सरापि च॥१५॥
एताः षोडश पत्राब्जवासिन्यः शक्तयः स्मृताः। इद्वत्सरा ततश्चेन्दुवत्सरावत्सरेऽपि च॥१६॥
तिथिर्वारांश्च नक्षत्रं योगाश्च करणानि च। एतास्तु शक्तयो नागपत्रांभोरुहसंस्थिताः॥१७॥
कलिः कल्पा च कलना काली चेति चतुष्टयम्।
द्वारपालकतां प्राप्तं कालचक्रस्य भास्वतः॥१८॥
एता महाकालदेव्यो मदप्रहसिताननाः। मदिरापूर्णचषकमशेषं चारुणप्रभम्।
दधानाः श्यामलाकाराः सर्वाः कालस्य योषितः॥१९॥
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः। निषेवन्ते महाकालं कालचक्रासनस्थितम्॥२०॥
अथ कल्पकवट्यास्तु रक्षकः कुम्भसंभव। वसन्तर्तुर्महातेजा ललिताप्रियकिङ्करः॥२१॥
पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पमाध्वीमदारुणः। पुष्पायुधः पुष्पभूषः पुष्पच्छत्रेण शोभितः॥२२॥
मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे देव्यौ तस्य दीव्यतः। प्रसूनमदिरामत्ते प्रसून शरलालसे॥२३॥

सिनीवाली, कूहू, भद्रा, उपरागा और षोडशी। ये सोलहों शक्तियाँ सोलह मात्राओं में स्थित हैं। इस प्रकार शक्तियाँ सोलह ही स्मरण की गयी हैं।।११-१३।। अब सोलह कमलदल वासिनी शक्तियों के नाम सुनिये, वे हैं—कला, काष्ठा, निमेषा, क्षणा, लवा, त्रुटि, मुहूर्ता, कुतपा, होरा, शुक्लपक्षा, कृष्णपक्षायना, विषुवा, त्रयोदशी, संवत्सरा, परिवत्सरा और इडावत्सरा। ये सोलह शक्तियाँ षोडश कमल दल में वास करने वाली शक्तियाँ स्मरण की गयी हैं। उसके बाद इद्वत्सरा, इन्दुवत्सरा और अवत्सरा भी हैं।।१४-१६।। तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण, ये पाँच शक्तियाँ जो ज्योतिष के पाँच अंग कहे गये हैं, जो काल गणना की प्रतीक हैं। ये शक्ति नागपत्रकमल पर स्थित है।।१७।। कलि, कल्पा, कलना और काली ये चार चमकते हुए कालचक्र की द्वारपालकता को प्राप्त हुई है, अर्थात् उपर्युक्त ये चारों कालचक्र की द्वारपाल हैं।।१८।। ये सभी महाकाल देवियाँ मदिरा से भरे हुए प्याले को धारण किये हुए हैं और मद से प्रहसित मुख वाली हैं, अर्थात् मदिरा के मद में हँस रही हैं। सभी श्यामल आकार वाली हैं और सभी काल की पत्नियाँ हैं।।१९।। तथा ये चारों परमेशानी ललिता देवी के पूजन, ध्यान, जप और स्तुति में लगी रहती हैं और कालचक्रासन पर स्थित महाकाल की सेवा करती रहती हैं।।२०।।

हयानन कहते हैं कि इसके बाद हे अगस्त्य मुने! कल्पकवटी के रक्षक तो महातेज वाले वसन्त ऋतु हैं, जो ललितेश्वरी के प्रिय किंकर (सेवक) हैं।।२१।। वे महा तेजस्वी वसन्त पुष्पों के सिंहासन पर बैठे हुए पुष्पमाध्वी (पुष्पों की मदिरा) के मद से लाल वर्ण के हैं, वे पुष्पों के आयुध (धनुष) को धारण किये हुए, पुष्पों से सजे हुए पुष्पों के आभूषण पहने हुए हैं और पुष्पछत्र से शोभित हैं।।२२।। उन देदीप्यमान वसन्त की मधुश्री (चैत्रमास) और माधवश्री (वैशाख मास) दो देवियाँ हैं, वे उनकी पत्नियाँ हैं, जो प्रसून की मदिरा से मत्त हैं और मदिरामत्त हो, वसन्त के पुष्पबाण की लालसा वाली हैं।।२३।। सन्तान वाटिका के रक्षक तीक्ष्णलोचन ग्रीष्म ऋतु हैं। वे नित्य ललिता देवी के सेवक

स्तानवाटिकापालो ग्रीष्मर्तुस्तीक्ष्णलोचनः। ललिताकिङ्करो नित्यं तस्यास्त्वाज्ञाप्रवर्तकः॥२४॥
शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च तस्य भार्ये उभे स्मृते। हरिचंदनवाटी तु मुने वर्षर्तुना स्थिता॥२५॥
स वर्षर्तुर्महातेजा विद्युत्पिङ्गललोचनः। वज्राट्टहासमुखरो मत्तजीमूतवाहनः॥२६॥
जीमूतकवचच्छन्नो मणिकार्मुकधारकः। ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणः॥२७॥
वर्तते विन्ध्यमथन त्रैलोक्याह्लाददायकः। नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्वारस्वमालिनी॥२८॥
अम्बा दुला निरलिश्चाभ्रयन्ती मेघयंत्रिका। वर्षयन्ती चिबुणिका वारिधारा च शक्तयः॥२९॥
वर्षंत्यो द्वादश प्रोक्ता मदारुणविलोचनाः। ताभिः समं स वर्षर्तुः शक्तिभिः परमेश्वरीम्॥३०॥
सदैव संजपन्नास्ते निजोत्थैः पुष्पमंडलैः। ललिताभक्तदेशांस्तु भूषयन्स्वस्य सम्पदा॥३१॥
तद्वैरिणां तु वसुधामनावृष्ट्या निपीडयन्। वर्तते सततं देवीकिङ्करौ जलदागमः॥३२॥
मंदारवाटिकायां तु सदा शरदृतुर्वसन्। तां कक्षां रक्षति श्रीमाँल्लोकचित्तप्रसादनः॥३३॥
इषश्रीश्च तथोर्जश्रीस्तस्यर्तोः प्राणनायिके। ताभ्यां संजह्लतुस्तोयं निजोत्थैः पुष्पपमंडलैः।

हैं और उनकी आज्ञा को मानने वाले और लागू करने वाले हैं।।२४।। शुक्रश्री (ज्येष्ठ मास) और शुचिश्री (आषाढ़ मास) ये उनकी दो पत्नियाँ स्मरण की गयी हैं।।२४½।। हरिचन्दन वाटी तो हे अगस्त्य मुने! वर्षा ऋतु द्वारा रक्षित है, वह महातेजस्वी वर्षर्तु विद्युत रूपी (पिङ्गल) (कुछ पीले और भूरे) रंग की आँखों वाली है। अर्थात् उस वर्षा ऋतु की आँखें बिजलियाँ हैं, जो पिङ्गल वर्ण की हैं। वह वर्षर्तु वज्र अट्टहास युक्त मुख वाली है और मत्त मेघ उसका वाहन है, अर्थात् वह मत्त मेघ पर सवार होकर बिजली रूपी आँखें चमकाती हुई वज्र के समान घोर अट्टहास करती है।।२६।। वे वर्षर्तु मेघ (बादल) कवच से ढँके हुए मणिरूपी धनुष को धारण करने वाले हैं तथा ललितादेवी के पूजन, ध्यान, जप और स्तुति में अनुरक्त रहने वाले हैं।।२७।।

वे विन्ध्यमथन में वर्तमान हैं और तीनों लोकों को आह्लाद प्रदान करने वाले हैं, अर्थात् वर्षा करके सबको आनन्द प्रदान करते हैं। नभश्री और नभस्याश्री (भाद्रपदमास) स्वरस्वास्यमालिनी, अम्बा, दुला, निरलि ये मेघों में रहने वाले मेघयन्त्रिकाएँ हैं। लगातार बरसती हुई जल की धाराएँ उन वर्षर्तु की शक्तियाँ हैं।।२८-२९।। मद से लाल नेत्रों वाली बरसती हुई वे शक्तियाँ बारह कही गयी हैं। उन शक्तियों के साथ वह वर्षर्तु अपने द्वारा उठाये गये (पैदा किये गये) पुष्प समूहों से सदैव ललिता परमेश्वरी का जप करते हुए ललिता देवी के भक्त देशों को अपनी वर्षा रूपी सम्पदा से युक्त रखते हैं।।३०-३१।। तथा जो उन ललितादेवी के शत्रु देश (स्थान) हैं, उनकी भूमि को अनावृष्टि से पीड़ित करते हुए वे जलदागम (मेघ) रूप वर्षर्तु ललिता देवी की सेवा करते रहते हैं[१]।।३२।। मन्दारवाटिका में तो सदैव संसार के चित्त को प्रसन्न करने वाले श्री शरदृतु रहते हैं।।३३।।

१. यहाँ पर एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है। वह यह कि ललिता देवी प्रकृति (Nature) है तथा जहाँ पर वृक्षों से आवृत भूमि होती है, वहाँ पर प्रकृति की कृपा होती है तथा प्रकृति की कृपा प्रकृति की भक्ति से होती है तथा प्रकृति वृक्षों को तो स्वतः पैदा कर देती है; परन्तु उसकी रक्षा करना मनुष्यों का कार्य है, अतः जहाँ वृक्षों की रक्षा होती है, वहीं परप्रकृति माँ ललिता की भक्ति है तथा जहाँ पर मनुष्य वृक्षों का विनाश करते हैं, वे इनके शत्रु देश हैं, अतः ये बादल वहीं पर वर्षा करते हैं, जहाँ के लोग वृक्षों की रक्षा करते हैं, जहाँ नहीं करते अपितु विनाश करते हैं, वहाँ पर प्रकृति माँ ललिता मेघों को वर्षा करने से रोक देती हैं। स्वाभाविक है कि जहाँ वृक्ष नहीं होंगे, वहाँ वर्षा नहीं होती। आज वर्षा का न होना तथा अधिक होना माँ ललितेश्वरी (प्रकृति देवी) की रुष्टता का हेतु है।

अभ्यर्चयति साम्राज्ञीं श्रीकामेश्वरयोषितम्॥३४॥
हेमन्तर्तुर्महातेजा हिमशीतलविग्रहः। सदा प्रसन्नवदनो ललिताप्रियकिङ्करः॥३५॥
निजोत्थैः पुष्पसंभारैरर्चयन्परमेश्वरीन्। पारिजातस्य वार्टीं तु रक्षति ज्वलनार्दनः॥३६॥
सहःश्रीश्च सहस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिते शुभे। कदम्बवनवाट्यास्तु रक्षकः शिशिराकृतिः॥३७॥
शिशिरर्तुर्मुनिश्रेष्ठ वर्तते कुम्भसम्भव। सा कक्ष्या तेन सर्वत्र शिशिरीकृतभूतला॥३८॥
तद्वासिनी ततः श्यामा देवता शिशिराकृतिः। तपःश्रीश्च तपस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिदुत्तमे।
ताभ्यां सहार्चयत्यंबां ललितां विश्वपावनीम्॥३९॥

अगस्त्य उवाच

गन्धर्ववदन श्रीमन्नानावृक्षादिसप्तकैः। प्रथमोद्यानपालस्तु महाकालो मया श्रितः॥४०॥
चतुरावरणं चक्रं त्वया तस्य प्रकीर्तितम्। षण्णामृतूनामन्येषां कल्पकोद्यानवाटिषु।
पालकत्वं श्रुतं त्वत्तश्चक्रदेव्यस्तु न श्रुताः॥४१॥
अत एव वसन्तादिचक्रावरणदेवताः। क्रमेण ब्रूहि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतो महान्॥४२॥

हयग्रीव उवाच

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ तत्तच्चक्रस्थदेवताः॥४३॥

इषश्री और ऊर्जश्री ये दो उस ऋतु की प्राणनायिकाये हैं, उनके द्वारा वे अपने द्वारा उठाये गये पुष्पसमूहों से जल लेकर वे साम्राज्ञी श्रीकामेश्वर पत्नी (ललिता देवी) की पूजा करती हैं[१]।।३४।।

उसके बाद हिम (बर्फ) से शीतल शरीर वाले, सदा प्रसन्न मुख वाले, आग को नष्ट करने वाले ललिता देवी के प्रिय किंकर महा तेजस्वी हेमन्त ऋतु अपने द्वारा उठाये गये पुष्पसमूहों से परमेश्वरी ललिता देवी की पूजा करते हुए पारिजात वाटिका की रक्षा करते हैं।।३५-३६।। सहःश्री (अगहन मास) और सहस्यश्री (पौषमास) ये दो उनकी शुभ पत्नियाँ हैं।।३६½।। अब हयग्रीव अगस्त्य मुनि से कहते हैं कि हे मुनिश्रेष्ठ! कदम्बवन वाटिका के रक्षक शिशिर (तुषार) की आकृति वाले शिशिरर्तु हैं। उन्होंने समस्त कक्ष्या को तुषार पाला से युक्त भूमि वाला बना दिया है।।३६½-३८।। उसके बाद वहाँ रहने वाली शिशिर की आकृति वाली श्यामा देवी हैं। उन शिशिरर्तु की तपःश्री (माघ) और तपस्यश्री (फागुन) दो उत्तम पत्नियाँ हैं। उन पत्नियों के साथ वे शिशिरर्तु विश्व को पवित्र करने वाली अम्बा ललितेश्वरी की पूजा करते हैं।।३९।।

अगस्त्य मुनि बोले कि हे श्रीमन् हयग्रीव! अनेकों प्रकार के वृक्षों से युक्त प्रथम उद्यान पालक महाकाल तो मैंने सुने हैं तथा चार आवरणों वाला उनका चक्र भी आपने बताया है और अन्य छः ऋतुओं, कल्पकोद्यान वाटिकाओं में पालक होने का विवरण तो हमने आपसे सुना है; परन्तु चक्र देवी का नहीं सुना।।४०-४१।। इसलिए वसन्त आदि चक्र के आवरण देवताओं को क्रम से हमें बताइए, क्योंकि भगवन् आप सर्वज्ञ और महान् हैं।।४२।।

हयग्रीव ने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप उन उन चक्रों में स्थित देवताओं को सुनिये।।४३।।

---

१. इष = अश्विनमास और ऊर्ज = कार्तिकमास अतः यहाँ शरद्रतु के प्राणनायक मास हैं—क्वार और कार्तिक जो इच्छाओं और शक्ति के स्रोत के प्रतीक हैं। ये दो मास उन प्रकृति ललिता देवी की पूजा करते हैं।

कालचक्रं पुरा प्रोक्तं वासन्तं चक्रमुच्यते। त्रिकोणं पञ्चकोणं च नागच्छदसरोरुहम्।
षोडशारं सरोजं च दशारद्वितयं पुनः॥४४॥
चतुरस्त्रं च विज्ञेयं सप्तावरणसंयुतम्। तन्मध्ये बिन्दुचक्रस्थो वसन्तर्तुर्महाद्युतिः॥४५॥
तदेकद्वयसंलग्ने मधुश्रीमाधवश्रियौ। उभाभ्यां निजहस्ताभ्यामुभयोस्तनमेककम्॥४६॥
निपीडयन्स्वहस्तस्य युगलेन ससौरभम्। सपुष्पमदिराचूर्णचषकं पिशितं वहन्॥४७॥
एवमेव तु सर्वर्तुध्यानं विंध्यनिषूदन। वर्षर्तोस्तु पुनर्ध्याने शक्तिद्वितयमादिमम्।
अङ्कस्थितं तु विज्ञेयं शक्तयोऽन्याः समीपगाः॥४८॥
अथ वासन्तचक्रस्थदेवीः शृणु वदाम्यम्। मधुशुक्लप्रथमिका मधुशुक्लद्वितीयिका॥४९॥
मधुशुक्लतृतीया च मधुशुक्लचतुर्थिका। मधुशुक्ला पञ्चमी च मधुशुक्ला च षष्ठिका॥५०॥
मधुशुक्ला सप्तमी च मधुशुक्लाष्टमी पुनः।
नवमी मधुशुक्ला च दशमी मधुशुक्लिका॥५१॥
मधुशुक्लैकादशी च द्वादशी मधुशुक्लतः। मधुशुक्रयोदश्यां मधुशुक्ला चतुर्दशी॥५२॥
मधुशुक्ला पौर्णमासी प्रथमा मधुकृष्णिका।
मधुकृष्णा द्वितीया च तृतीया मधुकृष्णिका॥५३॥
चतुर्थी मधुकृष्णा च मधुकृष्णा च पञ्चमी।
षष्ठी तु मधुकृष्णा स्यात्सप्तमी मधुकृष्णतः॥५४॥
मधुकृष्णाष्टमी चैव नवमीमधुकृष्णतः। दशमी मधुकृष्णा च विन्ध्यदर्पनिषूदन॥५५॥
मधुकृष्णैकादशी तु द्वादशी मधुकृष्णतः। मधुकृष्णत्रयोदश्या मधुकृष्णचतुर्दशी॥५६॥
मध्वमा चेति विज्ञेयास्त्रिंशदेतास्तु शक्तयः। एवमेव प्रकारेण माधवाख्यो परिस्थिताः॥५७॥

कालचक्र तो पहले ही बता दिया गया है, उसे ही वासन्त चक्र कहा जाता है। वही ऋतुओं का चक्र है। त्रिकोण, पञ्चकोण और नागपत्र कमल (नाग दल कमल) षोडशदल कमल और दो दशकोण (दशार) पुनः हैं।।४४।। सात आवरण से संयुत को चतुरस्त्र जानना चाहिए। उसके मध्य में बिन्दुचक्र में स्थित महाद्युति वाली वसन्तर्तु है।।४५।। वहाँ एक-दूसरे से संलग्न मधुश्री (चैत्रमास) और माधव श्री (वैसाख मास) हैं, जो दोनों अपने हाथों से एक दूसरे के स्तनों को एक के एक को पकड़े हुए हैं तथा अपने हाथ युगल से एक दूसरे को पीड़ित करते हुए सुगन्धयुक्त पुष्पयुक्त मदिरा से भरे प्याले और मांस को लिये हुए हैं। इस प्रकार ही तो सब ऋतु ध्यान मग्न हैं। वर्षा ऋतु के पुनर्ध्यान में शक्ति द्वितय आदिम को गोद में स्थित समझना चाहिए तथा अन्य शक्तियाँ उनके समीप रहने वाली हैं।।४६-४८।।

इसके बाद वासन्त चक्र में स्थित देवियों को सुनो, मैं बताता हूँ। वहाँ वासन्त चक्र में देवियाँ हैं—१. मधुशुक्ल प्रथमिका (मधुशुक्ला प्रतिपदा), २. मधुशुक्लाद्वितीयिका (मधुशुक्ला द्वितीया), ३. मधुशुक्ला तृतीया, ४. मधुशुक्ला चतुर्थी, ५. मधुशुक्ला पञ्चमी, ६. मधुशुक्ला षष्ठिका, ७. मधुशुक्ला सप्तमी, ८. मधुशुक्ला अष्टमी, ९. मधुशुक्ला नवमी, ०. मधुशुक्ला दशमी, ११. मधुशुक्लकैकादशी, १२. मधुशुक्ला द्वादशी, १३. मधुशुक्ला त्रयोदशी, १४.

शुक्लप्रतिपदाद्यास्तु शक्त्यस्त्रिंशदन्यकाः।
मिलित्वा षष्टिसंख्यास्तु ख्याता वासन्तशक्तयः॥५८॥
स्वैःस्वैर्मंत्रैस्तत्र चक्रे पूजनीया विधानतः। वासन्तचक्रराजस्य सप्तावरणभूमयः॥५९॥
षष्टिः स्युर्देवतास्तासु षष्टिभूमिषु संस्थिताः।
विभज्य चार्चनीयाः स्युस्तत्तन्मंत्रैस्तु साधकैः॥६०॥
तथा वासन्तचक्रं स्यात्तथैवान्येषु च त्रिषु। देवतास्तु परं भिन्नाः शुक्रशुच्यादिभेदतः॥६१॥
शक्तयः षष्टिसंख्याता ग्रीष्मचक्रे महोदयाः। एवं वर्षादिके चक्रे भेदान्नभनभस्यजान्॥६२॥

मधुशुक्ला चतुर्दशी, १५. मधुशुक्ला पौर्णमासी[१]। उधर १. प्रथमा मधुकृष्णिका (मधुकृष्णा प्रथमा), २. मधुकृष्णा द्वितीया, ३. मधुकृष्णा तृतीया, ४. मधुकृष्णा चतुर्थी, ५. मधुकृष्णा पञ्चमी, ६. मधुकृष्णा षष्ठी, ७. मधुकृष्णा सप्तमी, ८. मधुकृष्णा अष्टमी, ९. मधुकृष्णा नवमी, १०. मधुकृष्णा दशमी, ११. मधुकृष्णैकादशी, १२. मधुकृष्णा द्वादशी, १३. मधुकृष्णा त्रयोदशी, १४. मधुकृष्णा चतुर्दशी, १५. मध्वमा (मधुकृष्ण अमावस्या)[२]।

इस प्रकार ये तीस मधुशक्तियाँ जाननी चाहिएँ। इसी प्रकार से माधव नाम की शक्तियों की परिस्थिति है। अर्थात् जितनी मधुश्री शक्तियाँ हैं, उतनी ही माधव श्री शक्तियाँ भी हैं।।४९-५७।। शुक्ल प्रतिपदा आदि ये ३० शक्तियां हैं, अर्थात् १५ मधुश्री शुक्ल तथा १५ मधुश्रीकृष्ण = ३० हुईं। इसी प्रकार १५ माधवश्री शुक्ला तथा १५ माधवश्री कृष्णा = ३० तथा दोनों मधुश्री और माधवश्री मिलाकर वासन्त शक्तियों की संख्या ६० (साठ) होती है।।५८।। अतः वहाँ वासन्त चक्र में उनके अपने-अपने मन्त्रों द्वारा विधानपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए।।५८½।। वासन्त चक्रराज में सात आवरण भूमियाँ हैं। उनमें ६० देवियाँ ६० भूमियों में अच्छी प्रकार से स्थित हैं। अतः विभाग करके अलग उनकी अलग-अलग मन्त्रों द्वारा साधकों को पूजा करनी चाहिए।।५८½-६०।। उसी प्रकार वासन्त चक्र है, उसी प्रकार अन्य तीन चक्रों में सब देवियाँ और उनकी संख्या ६० ही है। शुक्र और शुचि आदि भेद से देवियाँ बहुत भिन्न हैं।।६१।। अर्थात् उनमें मधु माधवी के स्थान पर शुक्र[३] शुचि हैं। इस प्रकार शुक्र शुक्ल प्रतिपदा से शुक्र शुक्ल पूर्णिमा तक १५ हुईं तथा शुक्र कृष्ण प्रतिपदा (प्रथमा) से शुक्र कृष्णा अमावस्या १५ ये हुईं तथा शुक्र की

---

१. ये सब चैत्रमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियाँ हैं।

२. ये सब चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियाँ हैं।

इस प्रकार चैत्र मास के शुक्लपक्ष से लेकर ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष तक अर्थात् आधे चैत्र से लेकर आधे जेठ तक वसन्तु हुआ, उसके बाद आधे जेठ से आधे सावन तक ग्रीष्म, फिर आधे सावन से आधे क्वार तक वर्षा ऋतु, आधे क्वार से आधे अगहन तक शरद् ऋतु, फिर आधे अगहन से आधे माघ तक शिशिर, उसके बाद आधे माघ से आधे चैत्र तक वसन्त ऋतु हुई। यह समय चक्र है।

अत: आधे चैत्र से आधे वैशाख तक तिथियाँ मधुशुक्ला हैं तथा फिर वैशाख में अमावस्या तक १५ तिथियाँ मधुकृष्णा है। उसके बाद वैसाखशुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक १५ तिथियां माधवशुक्ला हैं तथा उसके ज्येष्ठ मास में प्रतिपद से लेकर अमावस्या तक कृष्णापक्ष की सब तिथियां माधव तिथियां हैं। अत: ३० शक्तियां मधुमास की हुईं और तीस माधव मास की। इस प्रकार ६० शक्तियां वसन्त ऋतु की हैं, इस प्रकार ये सब वासन्तशक्तियां हैं।

३. शुक्र का समय ज्येष्ठ शुक्ल्पक्ष प्रतिपदा से पूर्णिमा १५ तिथियाँ फिर आषाढ़ प्रतिपदा से अमावस्या तक १५ तिथियां शुक्र की हुई, फिर आषाढ़ शुक्लपक्ष प्रतिपद से पूर्णिमा तक १५ तथा सावन प्रतिपद से सावन अमावस्या तक १५ तिथि हुई इस शुक्रशुचि की तिथियाँ ६० हुई, जो ग्रीष्म ऋतु चक्र की ६० शक्तियाँ।

षष्टिषष्टिसु शक्तीनां चक्रेचक्रे प्रतिष्ठिताः। ग्रन्थविस्तारभीत्या तु तत्संख्यानाद्विरम्यते॥६३॥
आर्तव्याः शक्त्यस्त्वेता ललिताभक्त सौख्यदाः।
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः ॥६४॥
कल्पादिवाटिकाचक्रे सञ्चरंत्यो मदालसाः। स्वस्वपुष्पोत्थमधुभिस्तर्पयंत्यो महेश्वरीम्॥६५॥
मिलित्वा चैव संख्याताः षष्ट्युत्तरशतत्रयम्। एवं सप्तसु शालेषु पालिकाश्चक्रदेवताः॥६६॥
नामकीर्तनपूर्वं तु प्रोक्तस्तुभ्यं पपृच्छते। अन्येषामपि शालानामुपादानं तु पूरकम्।
विस्तारं तत्र शक्तिं च कथयाम्यवधारय॥६७॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसम्वादे ललितोपाख्याने श्रीनगरत्रिपुरासप्तकक्षापालक-देवताप्रकाशनकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

कुल ३० हुईं। इसी प्रकार शुचि शुक्ला प्रथमा (प्रतिपदा) से शुचि शुक्ला पूर्णिमा तक १५ फिर शुचि कृष्णा प्रतिपदा से शुचि कृष्णा अमावस्या तक १५ ये हुईं। दोनों मिलाकर ३० की संख्या हुई। फिर शुक्र और शुचि देवियों ३० + ३० = ६०, ये सभी ६० शक्तियाँ ग्रीष्मर्तु चक्र में स्थित हैं।।६०-६१½।। इसी प्रकार वर्षर्तु के वर्षा चक्र में देवियों की संख्या ६० है। उनमें नभ और नभस्य के आधार पर भेद हैं। अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक १५ नभ देवियाँ हुईं और फिर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक १५ नभ देवियाँ। कुल मिलाकर ३० हुईं। उसी प्रकार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक १५ नभस्य देवियाँ और फिर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक १५ नभस्य की देवियाँ कुल मिलाकर ३० हुईं। फिर ग्रीष्म चक्र की कुल देवियाँ ३० नभ + ३० नभस्य = ६० हुईं।।६२।। इस प्रकार साठ-साठ शक्तियाँ प्रत्येक ऋतुचक्र में प्रतिष्ठित हैं। ग्रन्थ विस्तार के भय से उनकी संख्या बताने में विराम किया जाता है।।६३।। फिर भी संक्षेप में हम यहाँ बताते हैं—वसन्त और ग्रीष्म और वर्षा चक्र की देवियाँ बता दी गयी हैं। शरद ऋतु की इषश्री और ऊर्जाश्री दो प्रकार की शक्तियाँ हैं, फिर इषश्री की १५ शुक्ल पक्ष की तथा १५ कृष्ण पक्ष की कुल ३० हुईं। उसी प्रकार ऊर्जश्री की भी १५ शुक्लपक्षीय तथा १५ कृष्णपक्षीय कुल ३० हुईं। इस प्रकार शरदृतु की कुल ६० शक्तियाँ हुईं। इसी प्रकार हेमन्त में पहले सहश्री और सहस्यश्री दो शक्तियाँ फिर शुक्ल और कृष्ण पक्ष मिलाकर ३० सह और शुक्ल और कृष्ण पक्ष मिलाकर ३० सहस्य, कुल मिलाकर ६० हेमन्तचक्र की शक्तियाँ हुईं। इसी प्रकार शिशिरर्तु चक्र की भी तपःश्री और तपस्यश्री भेद से ३० तपःश्री और ३० तपस्यश्री, कुल मिलाकर ६० हुईं। इस प्रकार ये सब चक्रों की शक्ति देवियाँ हैं। इन सब शक्तियों को ललिता देवी के भक्तों को सुख देने वाली समझना चाहिए, अर्थात् ये सभी शक्तियाँ ललिता देवी (प्रकृति) के सेवकों को सुख प्रदान करती हैं। स्वाभाविक हो जो प्रकृति की सेवा करेगा, प्रकृति उसे सुख प्रदान करेगी। जो पेड़ लगायेगा, वह फल और छाया दोनों प्राप्त करेगा तथा ये सभी शक्तियाँ ललिता देवी (प्रकृति) ध्यान, जप, पूजन और स्तुति में लगी रहती हैं।।६४।। कल्पवाटिका चक्र में मदालसा देवियाँ अपने-अपने पुष्पों से उठाये गये मधुओं से महेश्वरी ललिता देवी को तृप्त करती हुई विचरण करती रहती हैं।।६५।। सबकी संख्या मिलाकर तीन सौ साठ हो जाती है। इस प्रकार सातों शालों में स्थित उनकी रक्षा करने वाली देवियों को मैंने तुम्हारे पूँछने पर बता दिया है। आगे अन्य शालाओं का उपादन, पूरक और वहाँ विस्तार और शक्ति को मैं बताता हूँ, आप सुनिये।।६६-६७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३२वाँ अध्याय श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षापालक देवता प्रकाशन वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तरकथनं नाम

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

कथितं सप्तशालानां लक्षणं शिल्पिभिः कृतम्।
अथ रत्नमयाः शालाः प्रकीर्त्यंतेऽवधारय॥१॥
सुवर्णमयसालस्य पुष्परागमयस्य च। सप्तयोजनमात्रं स्यान्मध्येन्तरमुदात्दृतम्॥२॥
तत्र सिद्धाः सिद्धनार्यः खेलंति मदविह्वलाः। रसै रसायनैश्चापि खड्गैः पादांजनैरपि॥३॥
ललितायां भक्तियुक्तास्तर्पयन्तो महाजनान्। वसंति विविधास्तत्र पिबंति मदिरारसान्॥४॥
पुष्परागादिशालानां पूर्ववद्वारक्लृप्तयः। पुष्परागादिशालेषु कवाटार्गलगोपुरम्।
पुष्परागादिजं ज्ञेयमुच्चेन्द्वादित्यभास्वरम्॥५॥
हेमप्राकारचक्रस्य पुष्परागमयस्य च। अन्तरे या स्थली सापि पुष्परागमयी स्मृता॥६॥
वक्ष्यमाणमहाशालाकक्षासु निखिलास्वपि। तद्वर्णाः पक्षिणस्तत्र तद्वर्णानि सरांसि च॥७॥
तद्वर्णसलिला नद्यस्तद्वर्णाश्च मणिद्रुमाः। सिद्धजातिषु ये देवीमुपास्य विविधैः क्रमैः।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३३

पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तर कथन

हयग्रीव बोले कि अगस्त्यजी शिल्पकारों द्वारा बनायी गयी सप्तशालाओं के लक्षण कहे गये। इसके बाद अब रत्नमय शालाओं का वर्णन किया जा रहा है, आप सुनिये।।१।। सुवर्णमय शाल और पुष्परागमय शाल के मध्य में सात योजन मात्र का अन्तर उदाहृत होना चाहिए।।२।। वहाँ पर मद से विह्वल सिद्ध पुरुष और सिद्ध स्त्रियाँ रसों और रसायनों से भी और तलवारों और पादांजनों से भी खेलते हैं।।३।। ललितादेवी की भक्ति से युक्त विविध सिद्ध पुरुष और सिद्ध स्त्रियाँ महान् पुरुषों को तृप्त करती हुई, वहाँ मदिरा के रसों को पीते हैं।।४।। पुष्पराग आदि शालों के पूर्व द्वारों के समान पुष्पराग आदि शालों में किवाड़, अर्गला और मुख्य दरवाजे सजे हुए हैं। पुष्पराग (पुखराज) से उत्पन्न उच्च चन्द्रमा और सूर्य की चमक जाननी चाहिए। अर्थात् वहाँ पुखराज से निकलने वाली किरणें उच्च कोटि के चन्द्रमा और सूर्य की किरणों के समान हैं।।५।।

हेम प्राकार चक्र अर्थात् सोने की चहारदीवारी वाले चक्र और पुखराज रत्नमय चक्र के बीच में जो स्थली (भूमि) है, वह भी सब पुखराजमयी ही स्मरण की गयी है।।६।। कही गयी सब महाशाला के कक्षों में पुखराज के वर्ण के ही पक्षी हैं और पुखराज के वर्ण के ही सब सरोवर (तालाब) हैं।।७।। तथा उसी वर्ण की नदियों के जल हैं और

त्यक्तवन्तो वपुः पूर्वं ते सिद्धास्तत्र सांगनाः॥८॥
ललितामंत्रजप्तारो ललिताक्रमतत्पराः। ते सर्वे ललितादेव्या नामकीर्तनकारिणः॥९॥
पुष्परागमहाशालांतरे मारुतयोजने। पद्मरागमयः शालश्चतुरस्रः समंततः॥१०॥
स्थली च पद्मरागाढ्या गोपुराद्यं च तन्मयम्। तत्र चारणदेशस्थाः पूर्वदेहविनाशतः।
सिद्धिं प्राप्ता महाराज्ञीचरणाम्भोजसेवकाः॥११॥
चारणीनां स्त्रियश्चापि चार्वंग्यो मदलालसाः। गायंति ललितादेव्या गीतिबन्धान्मुहुर्मुहुः॥१२॥
तत्रैव कल्पवृक्षाणां मध्यस्थवेदिकास्थिताः। भर्तृभिः सहचारिण्यः पिबन्ति मधुरं मधु॥१३॥
पद्मरागमहाशालान्तरे मरुतयोजने। गोमेदकमहाशालः पूर्वशालासमाकृतिः।
अतितुङ्गो हीरशालस्तयोर्मध्ये च हीरभूः॥१४॥
तत्र देवीं समभ्यर्च्य पूर्वजन्मनि कुम्भज। वसन्त्यप्सरसां वृन्दैः साकं गन्धर्वपुङ्गवाः॥१५॥
महाराज्ञीगुणगणान्गायन्तो वल्लकी स्वनैः। कामभोगैकरसिकाः कामसन्निभविग्रहाः।
सुकुमारप्रकृतयः श्रीदेवीभक्तिशालिनः॥१६॥
गोमेदकस्य शालस्तु पूर्वशालसमाकृतिः। तदंतरे योगिनीनां भैरवाणां च कोटयः।
कालसङ्कर्षणीमंबां सेवन्ते तत्र भक्तितः॥१७॥

उसी वर्ण के मणियों के वृक्ष हैं। सिद्ध जातियों में अनेकों क्रमों से देवी की उपासना कर ज़िन्होंने पूर्वकाल में शरीर को त्यागा है, वे सिद्ध पुरुष ही वहाँ अपनी स्त्रियों सहित हैं।।८।। वहाँ वे सब सिद्ध दम्पति ललिता देवी के मन्त्र को जपने वाले हैं और ललिता देवी के क्रम में तत्पर हैं तथा वे सब ललिता देवी का कीर्तन (गुणगान) करने वाले हैं।।९।। पुष्पराग महाशाल के बीच में मारुत योजन पर पुखराजमय शाल (भवन) चारों ओर वर्गाकार है।।१०।। उस वर्गाकाल साल की स्थली (फर्श) पद्मरागमणि से मढ़ा हुआ है तथा वह नगर द्वार मुख्य दरवाजे से युक्त है। वहाँ पर चारण देश में रहने वाले पूर्व शरीर के नष्ट होने से सिद्धि को प्राप्त कर चुके महाराज्ञी के चरणकमल के सेवक हैं, जिन्हें चारण कहा जाता है।।११।। उन चारणों की स्त्रियां भी सुन्दर अंगों वाली और मद से मत्त हैं और वे महाराज्ञी ललितेश्वरी के गीतों को गाती रहती हैं।।१२।। वहीं पर कल्पवृक्षों के मध्य में स्थित वेदिका (वेदी/चबूतरा) पर बैठकर वे पतियों के साथ मधुर मधु (मधुर मदिरा) पीती रहती हैं।।१३।।

लाल माणिक्य की बनी महाशाल के मारुत योजन अन्तर पर गोमेद पत्थर का महाशाल है, जो पूर्वशाल के समान आकृति का है। उस पद्मराग शाल और गोमेद शाल के बीच में बहुत ऊँचा एक हीरों का बना हीरशाल है।।१४।। वहाँ पर हे अगस्त्य मुने! पूर्व जन्म में देवी की सम्यक् पूजा करके श्रेष्ठ गन्धर्व अप्सराओं के समूहों के साथ निवास करते हैं।।१५।। वे महाराज्ञी ललिता देवी के गुणों को वीणा के स्वरों से गाते रहते हैं। वे सब कामभोग के ही एक रसिक हैं। अर्थात् केवल एक कामभोग रस का ही आनन्द लेने वाले हैं तथा कामदेव के समान ही सुन्दर शरीर वाले हैं। वे बहुत ही कोमल स्वभाव वाले हैं तथा श्री ललितादेवी के प्रति पूर्ण भक्ति रखने वाले हैं।।१६।। गोमेद पत्थर का बना हुआ शाल (भवन) भी पूर्वशाल (भवन) के समान आकार वाला है। उसके अन्दर योगिनियों और भैरवों की करोड़ों की संख्या कालसङ्कर्षणी माँ की वहाँ भक्तिपूर्वक सेवा करती हैं।।१७।।

गोमेदकमहाशालान्तरे मारुतयोजने। उर्वशी मेनका चैव रम्भा चालंबुषा तथा॥१८॥
मंजुघोषा सुकेशी च पूर्वचित्तिर्घृताचिका। कृतस्थला च विश्वाची पुंजिकस्थलया सह॥१९॥
तिलोत्तमेति देवानां वेश्या एतादृशोऽपराः। गंधर्वैः सह नव्यानि कल्पृक्षमधूनि च॥२०॥
पिबन्त्यो ललितादेवीं ध्यायंत्यश्च मुहुर्मुहुः। स्वसौभाग्यविवृद्ध्यर्थं गुणयंत्यश्च तन्मनुम्॥२१॥
चतुर्दशसु चोत्पन्ना स्थानेष्वप्सरसोऽखिलाः। तत्रैव देवीमर्चंत्यो वसंति मुदिताशयाः॥२२॥

अगस्त्य उवाच

चतुर्दशापि जन्मानि तासामप्सरसां विभो। कीर्तय त्वं महाप्राज्ञ सर्वविद्यामहानिधे॥२३॥

हयग्रीव उवाच

ब्राह्मणो हृदयं कामो मृत्युरुर्वी च मारुतः। तपनस्य कराश्चंद्रकरो वेदाश्च पावकः॥२४॥
सौदामिनी च पीयूषं दक्षकन्या जलं तथा। जन्मनः कारणान्येतान्यामनंति मनीषिणः॥२५॥
गीर्वाणगण्यनारीणां स्फुरत्सौभाग्यसंपदाम्।
एताः समस्ता गंधर्वैः सार्धमर्चंति चक्रिणीम्॥२६॥
किन्नराः सह नारीभिस्तथा किंपुरुषा मुने। स्त्रीभिः सह मदोन्मत्ता हीरकस्थलमाश्रिताः॥२७॥
महाराज्ञीमंत्रजापैर्विधूताशेष कल्मषाः। नृत्यंतश्चैव गायंतो वर्तंते कुंभसम्भव॥२८॥
तत्रैव हीरकक्षोण्यं वज्रा नाम नदी मुने। वज्राकैरर्निबिडिता भासमाना तटद्रुमैः॥२९॥
वज्ररत्नैकसिकता वज्रद्रवमयोदका। सदा वहति सा सिंधुः परितस्तत्र पावनी॥३०॥
ललितापरमेशान्यां भक्ता ये मानवोत्तमाः। ते तस्या उदकं पीत्वा वज्ररूपकलेवराः।

गोमेद महाभवन के अन्दर मारुत योजन पर उर्वशी, मेनका, रम्भा और अलंबुषा, मञ्जुघोषा, सुकेशी, पूर्वचित्ति, घृताचिका, कृतस्थला, विश्वाची, पुंजिकस्थला, तिलोत्तमा ये सब देवों की वेश्याएँ और ऐसी ही दूसरी वेश्याएँ गन्धर्वों के साथ कल्पवृक्ष के ताजे मधु (मद्य) को ललितादेवी का बार-बार ध्यान करती हुई पीती हैं और अपनी सौभाग्यवृद्धि के लिए उन मनु के गुणों का गान करती हैं।।१८-२१।। इस प्रकार चौदह मन्वन्तरों में उत्पन्न समस्त अप्सरायें वहीं देवी की पूजा करती हुई बहुत आनन्दपूर्वक निवास करती हैं।।२२।।

अगस्त्य मुनि बोले—कि हे भगवन् हयानन! उन अप्सराओं के चौदह जन्मों को बताइए, क्योंकि आप महान् विद्वान् हैं तथा सब विद्याओं के भण्डार हैं।

हयग्रीव बोले हे अगस्त्य जी! ब्राह्मण, हृदय, काम, मृत्यु, पृथ्वी, वायु तपन के करने वाले चन्द्रकर, वेद और अग्नि, विद्युत्, पीयूष, दक्षकन्या तथा जल, इन्हें मनीषी लोग जन्म का कारण मानते हैं।।२५।। गाती हुई गण्य नारियों का समूह अपनी-अपनी सौभाग्य सम्पदा को प्रकट करता हुआ गन्धर्वों के साथ चक्रिणी चक्र की स्वामिनी महाराज्ञी ललितेश्वरी की पूजा करता है।।२६।। तथा हे मुने! अगस्त्य जी! नारियों के साथ किन्नर और स्त्रियों के साथ किंपुरुष मद से उन्मत्त होकर हीरों से बने फर्श पर महाराज्ञी के मन्त्रों के जापों से अपने समस्त पापों का नाश कर नाचते और गाते रहते हैं।।२७-२८।। वहीं पर हे मुने! हीरे के पत्थरों वाली वज्रा नामक नदी है, जो वज्र के आकार के बने हुए तटी वृक्षों से शोभायमान है।।२९।। वह नदी हीरा के ही एक रस से युक्त और हीरे के समान स्वच्छ जल वाली वह पवित्र नदी वहाँ पर बहती है।।३०।। ललिता परमेश्वरी के प्रति जो श्रेष्ठ मानव पूर्ण भक्ति रखते हैं,

दीर्घायुषश्च नीरोगा भवंति कलशोद्भव॥३१॥
भंडासुरेण गलिते मुक्ते वज्रे शतक्रतुः। तस्यास्तीरे तपस्तेपे वज्रेशीं प्रति भक्तिमान्॥३२॥
तज्जलादुदिता देवी वज्रं दत्त्वा बलद्विषे। पुनरंतर्दधे सोऽपि कृतार्थः स्वर्गमेयिवान्॥३३॥
अथ वज्राख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। वैदूर्यशाल उत्तुंगः पूर्ववद्गोपुरान्वितः।
स्थाली च तत्र वैदूर्यनिर्मिता भास्वराकृतिः॥३४॥
पातालवासिनो येये श्रीदेव्यर्चनसाधकाः। ते सिद्धमूर्तयस्तत्र वसन्ति सुखमेदुराः॥३५॥
शेषकर्कोटकमहापद्मवासुकिशंखकाः। तक्षकः शंखचूडश्च महादन्तो महाफणः॥३६॥
इत्येवमादयस्तत्र नागा नागस्त्रियोऽपि च। बलींद्रप्रमुखानां च दैत्यानां धर्मवर्तिनाम्।
गणस्तत्र तथा नागैः सार्धं वसति सांगनाः॥३७॥
ललितामंत्रजप्तारो ललिताशास्त्रदीक्षिताः। ललितापूजका नित्यं वसन्त्यसुरभोगिनः॥३८॥
तत्र वैदूर्यकक्षायां नद्यः शिशिरपाथसः। सरांसि विमलांभांसि सारसालंकृतानि च॥३९॥
भवनानि तु दिव्यानि वैदूर्यमणिमंति च। तेषु क्रीडंति ते नागा असुराश्च सहांगनाः॥४०॥
वैदूर्याख्यमहाशालान्तरे मारुतयोजने। इन्द्रनीलमयः शालश्चक्रवाल इवापरः॥४१॥
तन्मध्यकक्षाभूमिश्च नीलरत्नमयी मुने। तत्र नद्यश्च मधुराः सरांसि शिशिराणि च।
नानाविधानि भोग्यानि वस्तूनि सरसान्यपि॥४२॥

वे ही उस नदी का जल पीकर वज्ररूप हीरे के रूप वाले शरीर युक्त हो जाते हैं तथा हे घटोद्भव अगस्त्यजी! वे सब दीर्घायु और निरोग हो जाते हैं।।३१।। भण्डासुर ने जब इन्द्र पर वज्र छोड़ा था, तब उस वज्र से गलित होने पर भक्तिमान् इन्द्र ने उस नदी के किनारे पर वज्रेशी के प्रति तप किया था।।३२।। तब उस नदी के जल से उदित देवी इन्द्र को वज्र देकर पुनः अन्तर्धान हो गयीं। वह इन्द्र भी कृतार्थ होकर स्वर्ग चले गये।।३३।। इसके बाद वज्र (हीरे) के भवन के मारुत योजन अन्तर पर वैदूर्य (नीलम) मणि से निर्मित बहुत ऊँचा भवन है, जो पूर्व शालों के समान मुख्य द्वारों से युक्त है तथा वहाँ पर उस भवन का फर्श भी नीलमणि रत्न से निर्मित है और सूर्य की आकृति का है।।३४।। जो जो पातालवासी श्री ललितादेवी की पूजा-साधना करने वाले हैं, वहाँ वे सिद्धमूर्तिगण सुख से पूर्ण हो निवास करते हैं।।३५।। शेषनाग, कर्कोटक, महापद्म, वासुकि, शंखक नाग, तक्षक, शंखचूड, महादन्त तथा महाफण नामक अनेकों प्रकार के नागगण और उनकी स्त्रियाँ भी बलीन्द्र प्रमुख धर्मवर्ति दैत्यों के समूह वहाँ नागों के साथ सपत्नीक निवास करते हैं।।३६-३७।। तथा ललिता देवी के मन्त्र का जप करने वाले ललिता शास्त्र में दीक्षित, ललिता देवी की पूजा करने वाले भोगी असुर वहाँ नित्य निवास करते हैं।।३८।। वहाँ वैदूर्य से बने भवन की कक्षा में नदियाँ शीतल जल वाली हैं और स्वच्छ जल वाले सारसों से अलंकृत सरोवर हैं।।३९।।

यही नहीं वहाँ पर वैदूर्य मणि से युक्त दिव्य भवन है। उन दिव्य भवनों में नाग और असुर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हैं।।४०।। वैदूर्य नामक महाभवन के मारुत योजन अन्तर पर इन्द्रनील मणि से निर्मित शाल (भवन) है, जो चक्रवाल के समान दूसरा ही सुन्दर भवन है।।४१।। उस शाल के मध्य में नीलरत्न मणी कक्षाभूमि है, वहाँ पर हे मुने! नदियाँ मधुर जल वाली हैं और शीतल जल वाले सरोवर हैं तथा वहाँ अनेकों प्रकार की सरस (रसयुक्त) भोग्य वस्तुएँ हैं।।४२।।

ये भूलोकगता मर्त्या ललितामंत्रसाधकाः। ते देहांते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसंति वै॥४३॥
तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुंजाना वनितासखाः। पिबंतो मधुरं मद्यं नृत्यंतो भक्तिनिर्भराः॥४४॥
सरस्सु तेषु सिंधूनां कुलेषु कलशोद्भव। लतागृहेषु रम्येषु मंदिरेषु महर्द्धिषु॥४५॥
सदा जपंतः श्रीदेवीं पठन्तश्चापि तद्गुणान्। निवसंति महाभागा नारीभिः परिवेष्टिताः॥४६॥
कर्मक्षये पुनर्यांति भूर्लोके मानुषीं तनुम्। पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चंति चक्रिणीम्।
पुनर्यांति श्रीनगरे शक्रनीलमहास्थलीम्॥४७॥
तत्स्थलस्यैव संपर्काग्रागद्वेषसमुद्भवैः। नीलैर्भावैः सदा युक्ता वर्तंते मनुजा मुने॥४८॥
ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वंद्वा नियतेन्द्रियाः। ते मुने विस्मयाविष्टाः संविशंति महेश्वरीम्॥४९॥
इन्द्रनीलाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। मुक्ताफलमयः शालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः॥५०॥
अत्यंतभास्वरा स्वच्छा तयोर्मध्ये स्थली मुने।
सर्वापि मुक्ताखचिताः शिशिरातिमनोहराः॥५१॥
ताम्रपर्णी महापर्णी सदा मुक्ताफलोदका। एवमाद्या महानद्यः प्रवहंति महास्थले॥५२॥
तासां तीरेषु सर्वेऽपि देवलोकनिवासिनः। वसंति पूर्वजनुषि श्रीदेवीमंत्रसाधकाः॥५३॥

जो भूलोक में रहने वाले प्राणी ललिता देवी के मन्त्र की साधना करते हैं, वे शरीर का अन्त हो जाने पर इन्द्रनीलमणि की कक्ष्या को प्राप्त कर वहाँ उसमें निवास करते हैं।।४३।। हे कलशोद्भव! अगस्त्य जी! वहाँ पर दिव्य वस्तुओं का भोग करते हुए, स्त्रियों के साथ मधुर मद्यपान करते हुए, भक्ति पर निर्भर हो नृत्य करते हुए, उन सरोवरों में तथा उन नदियों के किनारों पर तथा लतागृहों में, सर्व समृद्ध रम्य मन्दिरों में सदैव श्री देवी का जप करते हुए तथा उनके गुणों को पढ़ते हुए नारियों से लिपटे हुए वे महाभाग निवास करते हैं।।४४-४६।। वे पुण्यकर्मों के कारण ही इस दिव्य सुख का भोग करते हैं तथा जब उनके पुण्यकर्म नष्ट हो जाते हैं, तब पुनः भूलोक पर मनुष्य शरीर को प्राप्त करते हैं। तब वे पूर्ववासना से युक्त होकर पुनः चक्रिणी माँ ललितेश्वरी की अर्चना करते हैं, तब फिर पुनः श्री ललिता के नगर में इन्द्रनीलमणि की महास्थली पहुँचते हैं।।४७।।

तब हे अगस्त्य मुने! उस इन्द्र नीलमणि के स्थल के सम्पर्क से राग-द्वेष से उत्पन्न नील भावों से सदा युक्त होकर मनुष्य वर्तमान रहते हैं।।४८।। उनमें जो ज्ञानी निर्द्वन्द्व (किसी से वैर न रखने वाले) और नियत इन्द्रियों वाले (अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर कर्म करने वाले) प्राणी हैं, वे आश्चर्यचकित होकर श्री ललितादेवी में प्रविष्ट हो जाते हैं, समा जाते हैं, उनमें विलीन हो जाते हैं।।४९।। फिर उस इन्द्रनील नामक शाल के मारुत योजन अन्तर पर मुक्ता फल (मोतियों) से निर्मित शाल (भवन) है। जो पूर्व शालों की भाँत मुख्य द्वारों से युक्त है।।५०।। हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! उन दोनों शालों, इन्द्रनील मणि शाल और मुक्ताफलमय शाल के बीच में अत्यन्त चमकती हुई स्थली है, जो सब पूरी की पूरी मोतियों से खचित हैं और शीतल एवं अत्यन्त मनोहर है।।५१।। उस महास्थल में ताम्रपर्णी, महापर्णी आदि महा नदियाँ सदा बहती रहती हैं, जिनका जल मोती के समान स्वच्छ है।।५२।। उन नदियों के किनारों पर सभी देवलोक निवासी निवास करते हैं तथा वे ही, जिन्होंने कि अपने पूर्वजन्मों में श्री देवी के मन्त्रों की साधना की है, अतः श्रीदेवी के पूजकों को ही वहाँ वास का अवसर प्राप्त होता है।।५३।।

पूर्वाद्यष्टसु भागेषु लोकाः शक्रादिगोचराः। मुक्ताशालस्य परितः संयुज्य द्वारदेशकान्॥५४॥
मुक्ताशालस्य नीलस्य द्वारयोर्मध्यदेशतः। पूर्वभागे शक्रलोकस्तत्कोणे वह्निलोकभूः॥५५॥
याम्यभागे यमपुरं तत्र दंडधरः प्रभुः। सर्वत्र ललितामंत्रजापी तीव्रस्वभाववान्॥५६॥
आज्ञाधरो यमभटैश्चित्रगुप्तपुरोगमैः। सार्धं नियमयत्येव श्रीदेवीसमयं गुहः॥५७॥
गुहशप्तान्दुराचाल्लँलितद्वेषकारिणः। कूटभक्तिपरान्मूर्खांस्तब्धानत्यंतदर्पितान्॥५८॥
मंत्रचोरान्कुमंत्रांश्च कुविद्यानघसंश्रयान्।
नास्तिकान्पापशीलांश्च वृथैव प्राणिहिंसकान्॥५९॥
स्त्रीद्विष्टाँल्लोकविद्विष्टान्पाषंडानां हि पालिनः।
कालसूत्रे रौरवे च कुम्भीपाके च कुम्भज॥६०॥
असिपत्रवने घोरे कृमिभक्षे प्रतापने। लालाक्षेपे सूचिवेधे तथैवांगारपातने॥६१॥
एवमादिषु कष्टेषु नरकेषु घटोद्भव। पातयत्याज्ञया तस्याः श्रीदेव्याः स महौजसः॥६२॥
तस्यैव पश्चिमे भागे निर्ऋतिः खड्गधारकः। राक्षसं लोकमाश्रित्य वर्तते ललितार्चकः॥६३॥
तस्य चोत्तरभागे तु द्वारयोरंतरस्थले। वारुणं लोकमाश्रित्य वरुणे वर्तते सदा॥६४॥
वारुण्यास्वादनोन्मत्तः शुभ्रांगो झषवाहनः। सदा श्रीदेवतामंत्रजापी श्रीक्रमसाधकः॥६५॥

पूर्वादि आठ भागों में इन्द्र आदि गोचरलोक हैं, जो मोती की शाल के चारों ओर द्वारदेशों को संयुक्त कर (मिलाकर) मुक्ता शाल और इन्द्रनील के द्वारों के मध्य स्थान से पूर्व भाग में इन्द्रलोक है तथा उसके कोने में अग्नि भूमि है।।५४-५५।। उसके दक्षिण भाग में यमपुर है, वहाँ दण्ड को धारण करने वाले प्रभु यमराज सर्वत्र श्रीललिता का जाप करने वाले तथा तीव्र स्वभाव वाले हैं।।५६।। जो यमराज अपनी आज्ञा को मानने वाले यमदूतों और चित्रगुप्त आदि प्रमुखों के साथ श्रीदेवी की आज्ञा का नियमन कर रहे हैं, अतः उन्हें जो श्रीदेवी ने आज्ञा दी है कि वे जिसने जैसा कर्म किया है, तदनुसार उसको वैसा शुभ या अशुभ फल दें, पापी को दण्डित करें, पुण्यात्मा को पुरस्कृत करें, अतः वे उनके उस आदेश का पालन कर रहे हैं।।५७।। अतः वे यमराज श्रीदेवी के निर्देशानुसार शाप प्राप्तों को, दुराचरण करने वालों को, ललिता देवी (प्रकृति) से द्वेष करने वालों को, छल-कपट पूर्ण भक्ति करने वालों, मूर्खों, स्तब्धों (पाप को देख कर चुप रहने वालों) अत्यन्त घमण्डियों, बुरे मन्त्रों का उच्चारण करने वालों, कुविद्या और पाप का आश्रय लेने वालों, नास्तिकों, पापियों, वृथा ही प्राणियों की हिंसा करने वालों, स्त्रियों से द्वेष करने वालों, लोगों से विशेष द्वेष रखने वालों और पाखण्ड का पालन करने वालों को कालसूत्र, रौरव, कुम्भीपाक, असिपत्रवन, घोर, कृमिभक्षक, प्रतापन, लालाक्षेप, सूचिवेध, उसी प्रकार अंगारपाटन आदि कष्टपूर्ण नरकों में हे अगस्त्य जी! उन श्री ललिता देवी की आज्ञा से वे महा ओजस्वी यमराज गिराते हैं।।५८-६२।।

उसी के पश्चिम भाग में खड्ग धारण करने वाली निर्ऋति मृत्यु अर्थात् विनाश की देवी राक्षसलोक का आश्रय लेकर (रक्षणकार्य लेकर) ललिता देवी की पूजा करने वाली है।।६३।। और उसके उत्तरभाग में तो दोनों द्वारों के अन्तरस्थल पर वारुण लोक का आश्रय लेकर सदा वरुण देव वर्तमान रहते हैं।।६४।। वे वारुणी के आस्वादन में उन्मत्त, शुभ्र अंग वाले, मकर वाहन वाले, सदा श्रीललिता देवी के मन्त्र का जाप करने वाले और श्रीदेवी के क्रम के साधक हैं।।६५।।

श्रीदेवतादर्शनस्य द्वेषिणछ पाशबंधनैः। बद्धा नयत्यधोमार्गं भक्तानां बन्धमोचकः॥६६॥
तस्य चोत्तरकोणेषु वायुलोको महाद्युतिः। तत्र वायुशरीराश्च सदानन्दमहोदयाः॥६७॥
सिद्धा दिव्यर्षयस्चैव पवनाभ्यासिनोऽपरे। गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनो योगतत्पराः॥६८॥
एतैः सह महासत्त्वस्तत्र श्रीमारुतेश्वरः। सर्वथा भिन्नमूर्तिश्च वर्तते कुम्भसम्भव॥६९॥
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा तस्य शक्तयः। तिस्रो मारुतनाथस्य सदा मधुमदालसाः॥७०॥
ध्वजहस्तो मृगवरे वाहने महति स्थितः। ललितायजनध्यानक्रमपूजनतत्परः॥७१॥
आनन्दपूरिताङ्गीभिरन्याभिः शक्तिभिर्वृतः।
स मारुतेश्वरः श्रीमान्सदा जपति चक्रिणीम्॥७२॥
तेन सत्त्वेन कल्पान्ते त्रैलोक्यं सचराचरम्। परागमयतां नीत्वा विनोदयति तत्क्षणात्॥७३॥
तस्य सत्त्वस्य सिद्ध्यर्थं तामेव ललितेश्वरीम्। पूजयन्भावयन्नास्ते सर्वाभरणभूषितः॥७४॥
तल्लोकपूर्वभागस्थे यक्षलोके महाद्युतिः। यक्षेंद्रो वसति श्रीमांस्तद्द्वारद्वंद्वमध्यगः॥७५॥
निधिभिश्च नवाकारैर्ऋद्धिवृद्ध्यादिशक्तिभिः। सहितो ललिताभक्तान्पूरयन्धनसम्पदा॥७६॥
यक्षीभिश्च मनोज्ञाभिरनुकूलप्रवृत्तिभिः। विविधैर्मधुभेदैश्च सम्पूजयति चक्रिणीम्॥७७॥
मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्माणिकंधरः। इत्येवमादयो यक्षसेनान्यस्तत्र संति वै॥७८॥
तल्लोकपूर्वभागे तु रुद्रलोको महोदयः। अनर्घ्यरत्नखचितस्तत्र रुद्रोऽधिदेवता॥७९॥

जो श्रीललिता देवी के दर्शन से द्वेष करने वाले हैं, उनको बन्धमोचक पाशबन्धों से बाँध कर अधोमार्ग पर ले जाते हैं।।६६।। उसके उत्तरकोण पर महान् प्रकाश वाला वायुलोक है, वहाँ पर वायुरूपी शरीर वाले, सदैव आनन्द से रहने वाले महोदय सिद्धगण दिव्य ऋषिगण पवन का अभ्यास करने वाले दूसरे गोरखनाथ प्रमुख अन्य योगी योग में तत्पर रहते हैं।।६७-६८।। इन योगियों के साथ महा पराक्रमी वायु वहाँ सर्वथा अलग प्रकार का शरीर धारण करते हुए वर्तमान रहते हैं।।६९।। वहाँ उन वायुदेव की इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना तीन शक्तियाँ मधु के मद में मस्त होकर, ध्वज हाथ में लेकर श्रेष्ठ एवं महान् मृग के वाहन पर सवार होकर, श्री ललितादेवी के यज्ञ ध्यान क्रम और पूजन में तत्पर रहती हैं।।७१।। आनन्दपूरित अंगों वाली अन्य शक्तियों से घिरे हुए श्रीमान् मारुतेश्वर सदा चक्रिणी श्री ललिता देवी का जप करते हैं। उस सत्त्व के द्वारा वे मारुतेश्वर एक कल्प के अन्त में अर्थात् प्रलयकाल में समस्त जड़-चेतन त्रिलोकी को परागमय (धूलि के कण के रूप) में ले जाकर के उस क्षण में आनन्द प्राप्त करते हैं अर्थात् प्रलयकाल में समस्त चराचर जगत् को अपने में समेट कर आनन्द करते हैं।।७२-७३।।

उस सत्त्व की सिद्धि के लिये उसी ललितेश्वरी की पूजा करते हुए उन्हीं के भाव को धारण करते हुए समस्त आभरणों से भूषित होकर स्थित रहते हैं।।७४।। उस लोक के पूर्वभाग में स्थित यक्षलोक में श्रीमान् यक्षराज उस द्वार के मध्य रहकर निवास करते हैं।।७५।। तथा वे यक्षराज निधियों के साथ तथा नये-नये आकार वाली ऋद्धियों की वृद्धि आदि शक्तियों के साथ ललिता देवी के भक्तों को धन-सम्पदा से पूर्ण करते हुए तथा मन को सुन्दर लगने वाली, अनुकूल विचारधाराओं वाली, यक्षिणियों द्वारा अनेकों प्रकार के मधु के प्रकारों अर्थात् अनेकों प्रकार की मदिराओं से चक्रिणी ललिता देवी का पूजन करते हैं।।७६-७७।। मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर इत्यादि यक्ष सेनापति वहाँ रहते हैं।।७८।। उस लोक के पूर्व भाग में महोन्नत रूप रुद्रलोक है, वहाँ पर रुद्र अधिदेवता निवास

सदैव मन्युना दीप्तः सदा बद्धमहेषुधिः। स्वसमानैर्महासत्त्वैर्लोकनिर्वाहदक्षिणैः॥८०॥
अधिज्यकार्मुकैर्दक्षैः षोडशावरणस्थितैः। आवृतः सततं वक्त्रैर्जपञ्छ्रीदेवतामनुम्॥८१॥
श्रीदेवीध्यानसम्पन्नः श्रीदेवीपूजनोत्सुकः। अनेककोटिरुद्राणीगणमंडितपार्श्वभूः॥८२॥
ताश्च सर्वाः प्रदीप्तांग्यो नवयौवनगर्विताः। ललिताध्याननिरताः सदासवमदालसाः॥८३॥
ताभिश्च साकं स श्रीमान्महारुद्रस्त्रिशूलभृत्। हिरण्यबाहुप्रमुखै रुद्रैरन्यैर्निषेवितः॥८४॥
ललितादर्शनभ्रष्टानुद्धतान्गुरुधिक्कृतान्। शूलकोट्या विनिर्भिध्य नेत्रोत्थैः कटुपावकैः॥८५॥
दहंस्तेषां वधूभृत्यान्प्रजाश्चैव विनाशयन्। आज्ञाधरो महावीरो ललिताज्ञाप्रपालकः॥८६॥
रुद्रलोकेऽतिरुचिरे वर्तते कुम्भसम्भव। महारुद्रस्य तस्यर्षे परिवाराः प्रमाथिनः॥८७॥
ये रुद्रास्तानसंख्यातान्को वा वक्तुं पटुर्भवेत्।
ये रुद्रा अधिभूम्यां तु सहस्राणां सहस्रशः॥८८॥
दिवि येऽपि च वर्तते सहस्राणां सहस्रशः। येषामन्नमिषश्चैव येषां वातास्तथेषवः॥८९॥
येषां च वर्षमिषवः प्रदीप्ताः पिङ्गलेक्षणाः। अर्णवे चांतरिक्षे च वर्तमाना महौजसः॥९०॥
जटावंतो मधुष्मन्तो नीलग्रीवा विलोहिताः। ये भूतानामधिभुवो विशिखासः कपर्दिनः॥९१॥

करते हैं।।७९।। जो अनेक रत्नों से खचित रहते हुए, सदैव क्रोध से जलते हुए, सदा महान् बाण को धारण किये हुए, अपने ही समान महापराक्रमी लोकनिर्वाह करने में कुशल प्रत्यञ्चा खींचे हुए धनुषों से युक्त कुशल रुद्रगण सोलह आवरणों से घिरे हुए हैं और रुद्र देवता सभी के मुखों से श्रीललिता देवी का जप करते हुए श्रीदेवी के ध्यान में पूरी तरह संलग्न श्री देवी के पूजन को उत्सुक वे रुद्रदेवता अनेकों करोड़ रुद्राणियों के गणों को अपने पीछे लिये हुए हैं।।८०-८२।। वे सब रुद्राणियाँ प्रदीप्त अंगों वाली नवीन यौवन से गर्वित हैं और सदैव मदिरा के मद में मत्त हो श्रीललिता देवी के ध्यान में लगी हुई हैं।।८३।। उनके साथ त्रिशूलधारी श्रीमान् महारुद्र हिरण्यबाहु प्रमुख अन्य रुद्रों से सेवित हैं।।८४।। जो कि ललिता देवी के दर्शन से भ्रष्ट, उद्धत (उद्दण्ड) तथा गुरुओं के धिक्कार किये गये लोगों को शूल की कोटि (नोंक धार) पर भेदकर नेत्रों से निकले हुए तीव्र आग से जलाते हुए, उनकी बहुओं, सेवकों, सन्तानों को नष्ट कर ललिता देवी की आज्ञा को धारण करने वाले तथा उनकी आज्ञा का पालन करने वाले महावीर हैं अर्थात् वे महारुद्र के हिरण्यबाहु आदि जो प्रमुख रुद्रगण हैं, वे सब ललिता देवी अर्थात् प्रकृति के आदेश को न मानने वाले तथा भ्रष्ट एवं गुरुओं का अनादर करने वाले लोगों को त्रिशूल की धार पर रखकर तीव्र आग में जलाते हैं तथा उनके समस्त परिवार को नष्ट कर ललिता देवी की आज्ञा का पालन करते हैं।।८५-८६।।

हे अगस्त्य जी! अत्यन्त रुचिर रुद्रलोक में वे महावीर विद्यमान हैं तथा उन महारुद्र ऋषि के परिवार सभी महा कष्ट देने वाले हैं।।८७।। जो रुद्र इतने हैं कि उनकी संख्या बताने में कौंन कुशल हो सकता है, जो रुद्र उस अधिकृत भूमि पर हजारों हजार की संख्या में हैं।।८८।। स्वर्ग में जो हजारों के हजार अर्थात् लाखों हैं, जिनके अन्नरूपी बाग हैं, जिनके वायुरूपी बाण हैं।।८९।। और जिनके वर्षारूपी बाण हैं, जो मेघों में विद्युत के रूप में पीली आँखों को चमकाते रहते हैं। जो महा ओजस्वी रुद्र देवता समुद्र में (जल में), अन्तरिक्ष में वर्तमान रहते हैं।।९०।। वे जटाओं को धारण करने वाले, मधुष्मन्त (मधुर रखने वाले) नीलकण्ठ वाले और विलोहित हैं, जो प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, विशेष शिखाओं वाले और कपर्दी (कोई और जटा धारण करने वाले हैं।।९१।।

ये अन्नेषु विविध्यंति पात्रेषु पिबतो जनान्। ये पथां रथका रुद्रा ये च तीर्थनिवासिनः॥९२॥
सहस्त्रसंख्या ये चान्ये सृकावंतो निषंगिणः। ललिताज्ञाप्रणेतारो दिशो रुद्रा वितस्थिरे॥९३॥
ते सर्वे सुमहात्मानः क्षणाद्विश्वत्रयीवहाः। श्रीदेव्या ध्याननिष्णाताञ्छ्रीदेवीमंत्रजापिनः॥९४॥
श्रीदेवतायां भक्ताश्च पालयंति कृपालवः। षोडशावरणं चक्रं मुक्ताप्राकारमंडले॥९५॥
आश्रित्य रुद्रास्ते सर्वे महारुद्रं महोदयम्। हिरण्यबाहुप्रमुखा ज्वलन्मन्युमुपासते॥९६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने पुष्परागप्रकारादि-मुक्ताकारांतसप्तकक्षांतरकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

जो रुद्रगण अन्नों में विविधता पैदा करते हैं, अर्थात् अन्नों को अलग रूप में विभाजित करते हैं, इसीलिए जिस अन्न का बीज होता है, उस पर उगकर वही अन्न आता है तथा जो पात्रों में पीते हुए लोगों की विविधता करते हैं, जो राहगीरों को ले जाने वाले रुद्र हैं, वे ही तीर्थों पर निवास करने वाले हैं।।९२।। जो हजारों की संख्या में धनुष-बाण और तरकश एवं खड्ग को धारण किये हुए हैं, वे ललिता देवी की आज्ञा के प्रणेता, उनकी आज्ञा का पालन कराने वाले होकर सभी दिशाओं में फैले हुए हैं।।९३।। वे सभी कृपालु अत्यन्त महान् आत्मा रुद्रगण क्षण भर में तीनों लोकों को धारण करने वाले श्रीदेवी के ध्यान में निष्णात पुरुषों और श्रीदेवी का जप करने वालों का तथा श्रीदेवी के प्रति जो भक्त हैं, उनका पालन करते हैं।।९४-९४½।। ये सभी हिरण्यबाहु प्रमुख रुद्रगण मोतियों से निर्मित प्राकार मण्डल में स्थित षोडश आवरण वाले चक्र का आश्रय लेकर जलते हुए क्रोध वाले महारुद्र महोदय (भगवान् शिव) की उपासना करते हैं।।९६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३३वाँ अध्याय पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तर कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

दिक्पालादिशिवलोकान्तरकथनं नाम

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

षोडशावरणं चक्रं किं तद्रुद्राधिदैवतम्। तत्र स्थिताश्च रुद्रः के केन नाम्ना प्रकीर्तिताः॥१॥
केष्वावरणबिंबेषु किन्नामानो वसंति ते। यौगिकं रौढिकं नाम तेषां ब्रूहि कृपानिधे॥२॥

हयग्रीव उवाच

तत्र रुद्रालयः प्रोक्तो मुक्ताजालकनिर्मितः। पञ्चयोजनविस्तारस्तत्संख्यायामशोभितः॥३॥
षोडशावरणैर्युक्तो मध्यपीठमनोहरः। मध्यपीठे महारुद्रो ज्वलन्मन्युस्त्रिलोचनः॥४॥
सज्जकार्मुकहस्तश्च सर्वदा वर्तते मुने। त्रिकोणे कथिता रुद्रास्त्रय एव घटोद्भव॥५॥
हिरण्यबाहुः सेनानीर्दिशांपतिरथापरः॥६॥
वृक्षाश्च हरिकेशाश्च तथा पशुपतिः परः। शष्पिञ्जरस्त्विषीमांश्च पथीनां पतिरेव च॥७॥
एते षट्कोणगाः किं च बभ्रुशास्त्वष्टकोणके। विव्याध्यन्नपतिश्चैव हरिकेशोपवीतिनौ॥८॥
पुष्टानां पतिरप्यन्यो भवो हेतिस्तथैव च। दशपत्रे त्वावरणे प्रथमो जगतां पतिः॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३४

दिक्पालों द्वारा शिवलोक का अन्तर

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे हयग्रीव! यह बताइये कि रुद्रादि देवियों वाला षोडशावरण चक्र क्या है? वहाँ पर स्थित रुद्र कौंन हैं तथा वे किस नाम से पुकारे जाते हैं?।।१।। तथा किन-किन आवरण बिम्बों में वे किस नाम वाले रहते हैं? अतः हे कृपानिधे भगवान् हयग्रीव उनके यौगिक और रौद्रिक नाम बताइए।।२।।

हयग्रीव ने कहा कि वहाँ पर मोतियों के समूहों से बना हुआ रुद्रालय कहा गया है, जो रुद्रालय पाँच योजन विस्तार वाला है तथा उतनी संख्या में अशोभित है।।३।। वह रुद्रालय सोलह आवरणों से युक्त तथा मध्यपीठ से मनोहर है, उसके मध्यपीठ में जलते हुए क्रोध वाले त्रिलोचन महारुद्र आसीन हैं।।४।। हे अगस्त्य मुने! वे महारुद्र प्रत्यंचा खींचे हुए धनुष को सदा हाथ में लिये हुए वर्तमान हैं।।४½।। हे अगस्त्य जी! त्रिकोण में स्थित तीन ही रुद्र कहे गये हैं, हिरण्यबाहु सेनापति हैं, जो दिशाओं के स्वामी हैं। वृक्ष और हरिकेश तथा पशुपति दूसरे हैं। शष्पिंजर और इषीमान् पतिकों के पति ही हैं।।४½-६।। ये षट्कोण में स्थित रुद्रगण हैं तथा अष्टकोण में १. बभ्रुशा, २. विव्याधि ३. अन्नपति, ४. हरिकेश, ५. उपवीती ६. अन्य पुष्टों के पति तथा ७. भव और ८. हेति इस प्रकार ये आठ रुद्र अष्टकोण में हैं।।७-८½।। दशपत्र आवरण में प्रथम संसार स्वामी है तथा दूसरा रुद्र अतितावी क्षेत्रपति

रुद्राततताविनौ क्षेत्रपतिः सूतस्तथापरः। अहं त्वन्यो वनपती रोहितः स्थपतिस्तथा॥१०॥
वृक्षाणां पतिरप्यन्यश्चैते सज्जशरासनाः। मंत्री च वाणिजश्चैव तथा कक्षपतिः परः॥११॥
भवंतिस्तु चतुर्थः स्यात्पंचमो वारिवस्ततः। ओषधीनां पतिश्चैव षष्ठः कलशसंभव॥१२॥
उच्चैर्घोषाक्रंदयंतौ पतीनां च पतिस्तथा। कृत्स्नवीत्तश्च धावश्च सत्त्वानां पतिरेव च॥१३॥
एते द्वादश पत्रस्थाः पंचमावरणस्थिताः। सहमानश्च निर्व्याधिरव्याधीनां पतिस्तथा॥१४॥
ककुभश्च निषंगी च स्तेनानां च पतिस्तथा। निचेरुश्चेति विज्ञेयाः षष्ठावरणदेवताः॥१५॥

अधः परिचरोऽरण्य; पतिः किं च सृकाविषः।
जिघांसंतो मुष्णतां च पतयः कुंभसंभव॥१६॥

असीमंतश्च सुप्राज्ञस्तथा नक्तंचरो मुने। प्रकृतीनां पतिश्चैव उष्णीषी च गिरेश्चरः॥१७॥
कुलुंचानां पतिस्चैवेषुमन्तः कलशोद्भव। धन्वाविदश्चातन्वानप्रतिपूर्वदधानकाः॥१८॥
आयच्छतः षोडशैते षोडशारनिवासिनः। विसृजंतस्तथास्यंतो विद्यंतश्चापि सिंधुप॥१९॥
आसीनाश्च शयानाश्च यंतो जाग्रत एव च। तिष्ठंतश्चैव धावतः सभ्याश्चैव समाधिपाः॥२०॥
अश्वाश्चैवाश्वपतय अव्याधिन्यस्तथैव च। विविध्यंतो गणाध्यक्षा बृहंतो विंध्यमर्द्दन॥२१॥
गृत्सश्चाष्टादशविधा देवता अष्टमावृतौ। अथ गृत्साधिपतयो व्राता व्राताधिपास्तथा॥२२॥
गणाश्च गणपाश्चैव विश्वरूपा विरूपकाः। महांतः क्षुल्लकाश्चैव रथिनश्चारथाः परे॥२३॥
रथाश्च रथपत्त्याख्याः सेनाः सेनान्य एव च। क्षत्तारः संग्रहीतारस्तक्षाणो रथकारकाः॥२४॥

है तथा फिर मुझसे दूसरे सूत हैं। अन्य वनस्पति और रोहित स्थपति दूसरे वृक्षों के स्वामी हैं, ये सब धनुष बाण लिये हुए हैं। मन्त्री और वाणिज (व्यापारी) तथा दूसरे कक्षपति हैं। ये चतुर्थ हैं तथा पाँचवें वारिव हैं, औषधियों के प्रति छठे हैं, उच्च घोष से क्रन्दन करते हुए पतियों के पति सातवें हैं, कृत्स्नवीत और धावम् प्राणियों के स्वामी हैं। इस प्रकार ये द्वादश पत्र पर स्थित पञ्चमावरण के रुद्र हैं।।८½-१३½।। १. सहमान, २. निर्व्याधि तथा ३. व्याधियों के स्वामी, ४. ककुभ, ५. निषंगी तथा ६. स्तेनों के स्वामी और ७. निचेरु, ये षष्ठ आवरण के देवता जानने चाहिए।।१३½-१५।। १. अध (नीचे), २. परिचर ३. अरण्य ४. पति और ५. वायु में प्रवेश करने वाले और ६. मुष्णता को मारने की इच्छा वाले स्वामी गण, ७. असीमन्त, ८. सुप्राज्ञ तथा ९. रात्रि में विचरण करने वाली प्रकृतियों के स्वामी, १०. उष्णीषी और ११. गिरेश्वर कुलुंचों के स्वामी, १२. इषुमन्त, १३. धन्वाविद, १४. अतन्वान् १५. प्रतिपूर्वदधानक, १६.आयच्छत, ये सोलह षोडशपत्रदल के निवासी रुद्रगण हैं।।१६-१८½।।

ये सब विशेष रचना करते हुए तथा आते हुए तथा विधि का अन्त करने सिन्धु के पीने वाले रुद्रगण हैं। यह सब आसीन रहते हुए, सोते हुए, चलते हुए, जागते हुए और बैठते हुए, दौड़ते हुए, सभ्य हैं और समाधि धारण करने वाले हैं। अश्व और अश्वपति अव्याधिन्य; अनेकों प्रकार के गणाध्यक्ष, जो बहुत बड़े और विन्ध्य का मर्दन करने वाले हैं।।१८½-२१।। गृत्स आदि १८ देवता अष्टम आवरण में हैं। इसके बाद १. गृत्स, २. गृत्साधिपति, ३. व्रात, ४. व्राताधिपति उसके बाद ५. गण और ६. गणों के अधिपति, ७. विश्वरूप, ८. विरूप, ९. महान्त, १०. क्षुल्लक, ११. रथी, १२. अरथी, १३. रथ, १४. रथपति, १५. सेना, १६. सेनापति, १७. क्षत्तार, १८.

कुलालश्चेति रुद्रास्ते नवमावृतिदेवताः। कर्माराश्चैव पुंजिष्ठा निषादाश्चेषुकृद्गणाः॥२५॥
धन्वकारा मृगयवः श्वनयः श्वान एव च। अश्वाश्चैवाश्वपतयो भवो रुद्रो घटोद्भव॥२६॥
शर्वः पशुपतिर्नीलग्रीवश्च शितिकंठकः। कपर्दी व्युप्तकेशश्च सहस्राक्षस्तथापरः॥२७॥
शतधन्वा च गिरिशः शिषिविष्टश्च कुंभज। मीढुष्टम इति प्रोक्ता रुद्रादशमशालगाः॥२८॥
अथैकादशचक्रस्था इषुमद्ध्रस्ववामनाः। बृहंश्च वर्षीयांश्चैव वृद्धः समृद्धिना सह॥२९॥
अग्र्यः प्रथम आशुश्चाजिरोन्यः शीघ्रशिभ्यकौ।
उर्म्यावस्वन्यरुद्रौ च स्रोतस्यो दिव्य एव च॥३०॥
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च पूर्वजावरजौ तथा। मध्यमश्चावगम्यश्च जघन्यश्च घटोद्भव॥३१॥
चतुर्विंशतिराख्याता एते रुद्रा महाबलाः। अथ बुध्न्यः सोम्यरुद्रः प्रतिसर्पकयाम्यकौ॥३२॥
क्षेम्योवोचवखल्यश्च ततः श्लोक्यावसान्यकौ।
वन्यः कक्ष्यः श्रवश्चैव ततोऽन्यस्तु प्रतिश्रवः॥३३॥
आशुषेणश्चाशुरथः शूरश्च तपसां निधे। अवभिंदश्च वर्मी च वरूथी बिल्मिना सह॥३४॥
कवची च श्रुतश्चैव सेनो दुंदुभ्य एव च। आहनन्यश्च धृष्णुश्च ते च षड्विंशतिः स्मृताः।
द्वादशावरणस्थास्ते महाकाया महाबलाः॥३५॥
प्रभृशाश्चैव दूताश्च प्रहिताश्च निषंगिणः। अन्यस्त्विषुधिमानन्यस्तक्ष्णेषुंश्च तथा युधि॥३६॥
स्वायुधश्च सुधन्वा च स्तुत्यः पथ्यश्च कुंभज।
काप्यो नाट्यस्तथा सूधः सरस्यो विंध्यमर्दन॥३७॥

संग्रहीतार, १९. तक्षाण, २०. रथका रक और २१. कुलाल ये नवम आवरण के देवता हैं।।२१-२४½।। १. कर्मा, २. पुंजिष्ठ, ३. निषाद, ४. इषुकृद्गण, ५. धन्वकार, ६. मृगयव, ७. श्वनी (कुतिया), ८. श्वान, ९. अश्व, १०. अश्वपति, ११. भव, १२. रुद्र, १३. शर्व, १४. पशुपति, १५. नीलग्रीव, १६. शितिकण्ठ, १७. कपर्दी, १८. व्युप्तकेश, १९. व्युप्तकेश, २०. सहस्राक्ष, २१. शतधन्वा, २२. गिरीश, २३. शिषिविष्ट और २४. मीढुष्टम ये सब चौबीस दशम शाल में जाने वाले रुद्र देवता हैं।।२४½-२८।। इसके बाद एकादश चक्रस्थ रुद्र देवता हैं— १. इषुमत्, २. ह्रस्ववामन, ३. बृहन्, ४. वर्षीयान्, ५. वृद्ध, ६. समृद्ध, ७. अग्न्यः, ८. प्रथम, ९. आशु, १०. अजिर, ११. शीघ्र, १२. शिभ्यक, १३. उर्मि, १४. आवस्वन्, १५. रुद्र, १६. स्रोतस्य, १७. दिव्य, १८. ज्येष्ठ, १९. कनिष्ठ, २०. पूर्वज, २१. अवरज, २२. मध्यम, २३. अवगम्य और २४. जघन्य ये चौबीस रुद्रगण एकादश चक्रस्थ हैं, जो महाबलवान् हैं।।२८½-३१½।। इसके बाद हे अगस्त्य जी! १. बुध्न्य, २. सौम्यरुद्र, ३. प्रतिसर्पक, ४. याम्यक, ५. क्षेम्य, ६. वोचव, ७. खल्य, उसके बाद ८. श्लोक्य, ९. अवसान्यक, १०. वन्यः, ११. कक्ष्यः, १२. श्रव; उसके बाद दूसरे १३. प्रतिश्रव, १४. आशुषेण, १५. आशुरथ, १६. शूर, १७. अवभिन्द, १८. वर्मी, १९. वरूथी, २०. बिल्मी, २१. कवची, २२. श्रुत, २३. सेन, २४. दुन्दुभि, २५. आहन्य और २६. धृष्णु ये छब्बीस रुद्र स्मरण किये गये हैं, वे महाकाय और महाबली रुद्र द्वादश आवरण में स्थित हैं।।३१½-३५।। तथा हे अगस्त्य जी! १. प्रभृश, २. दूत, ३. प्रहित, ४. निषङ्गी, ५. अन्य तो इषुधिमान् जो युद्ध में और लकड़ी की काट-छाँट वाले हैं, ६. स्वायुध, ७. सुधन्वा, ८. स्तुत्य, ९. पथ्य, १०. काप्य, ११. नाट्य,

ततश्चान्यो नाधमानो वेशंतः कुप्य एव च। अवधवर्ष्योऽवर्ष्यश्च मेध्यो विद्युत्य एव च॥३८॥
इध्र्यातप्यौ तथा वात्यौ रेष्म्यश्चैव तथापरः। वास्तव्यो वास्तुपश्चैव सोमश्चेति महाबलाः॥३९॥
त्रयोदशावरणगाञ्छृणु रुद्रांश्च तान्मुने। रुद्रस्ताम्रारुणः शंगस्तथा पशुपतिर्मुने॥४०॥
उग्रो भीमस्तथैवाग्रेवधदूरेवधावपि। हंता चैव हनीयांश्च वृषश्च हरिकेशकः॥४१॥
तारः संभुर्मयोभूश्च शंकरश्च मयस्करः। शिवः शिवतरश्चैव तीर्थ्यः कुल्यस्तथैव च।
पार्योऽपार्यः प्रतरणस्तथा चोत्तरणो मुने॥४२॥
आतर्यश्च तथा लभ्यः षष्ठः फेन्यस्तथैव च। चतुर्दशावरणके कथिता रुद्रदेवताः॥४३॥
सिकत्यश्च प्रवाह्यश्च तथेरिण्यस्तपोनिधे। प्रपथ्यः किंशिलश्चैव क्षयणस्तदनंतरम्॥४४॥
कपर्दी च पुलस्त्यश्च गोष्ठ्यो गृह्यस्तथैव च।
तल्प्यो गेह्यस्तथा काट्यो गह्वरष्ठोरुदीपकः॥४५॥
निवेष्ट्यश्चापि पांतव्यो रथन्यः शुक्य एव च।
हरीत्यलोथा लोप्याश्च उर्घ्यसूर्म्यौ तथा मुने॥४६॥
पयेयश्च पर्णशश्च तथा वगुरमाणकः। अभिघ्ननाशिदुश्चैव प्रखिदन् किरिकास्तथा॥४७॥
देवानां हृदयश्चैव द्वात्रिंशद्रुद्रदेवताः। वर्तते सायुधाः प्राज्ञ नित्यं पञ्चादशावृतौ॥४८॥
षोडशे त्वावरणके पूर्वादिद्वारवर्तिनः। विक्षिणत्काविचिन्वत्कास्तता निर्हतनामकाः॥४९॥
आमीवक्ताश्च निष्टप्ता महारुद्रमुपासते। इति षोडशशालेषु स्थितैः रुद्रैः सहस्त्रशः॥५०॥

१२. सूध, १३. सरस्य, १४. विन्ध्यमर्दन, १५. नाधमान, १६. वेशन्त, १७. कुप्य, १८. अवधवर्ष्य, १९. अवर्ष्य, २०. मेध्य, २१. विद्युत्य, २२. इध्रय, २३. अतज्य, २४. वात्य, २५. रेष्म्य, २६. वास्तव्य, २७. वास्तुप और २८. सोम। अब हे अगस्त्य जी! तेरहवें आवरण में गमन करने वाले रुद्रों को सुनिये। १. रुद्र, २. ताम्र, ३. अरुण, ४. शंग तथा ५. पशुपति, ६. उग्र, ७. भीम, उसी प्रकार ८. अग्रेवध, ९. दूरेवध, १०. हंता, ११. हनीय, १२. वृष, १३. हरिकेशक, १४. तार, १५. शम्भु, १६. मयोभूः, १७. शंकर, १८. मयस्कर, १९. शिव, २०. शिवतर, २१. तीर्थ्य, २२. कुल्य, उसी प्रकार २३. पार्य, २४. अपार्य, २५. प्रतरण तथा २६. उत्तरण, २७. आतर्य, २८. लभ्य २८. षष्ठ और २९. फेन्य, ये ३२ चौदहवें आवरण में कहे गये रुद्र देवता हैं।।३९½-४३।। तथा हे मुने! १. सिकत्य, २. प्रवाह्य, ३. इरिण्य, ४. प्रपथ्य, ५. किंशिल, ६. क्षयण, ७. कपर्दी, ८. पुलस्त्य, ९. गोष्ठ्य, १०. गृह्य, ११. तल्प्य, १२. गेह्य, १३. काट्य, १४. गह्वर, १५. इष्ठ, १६. उदीपक, १७. निवेष्ट्य, १८. पान्तव्य, १९. रथन्य, २०. शुक्य, २१. हरीति, २२. ऊलोथा, २३. लोप्या, २४. उर्घ्य, २५. सूर्म्य, २६. पयेय, २७. पर्णश, २८. वगुरमाणक, २९. अभिघ्न, ३०. नाशिदु, ३१. प्ररिवदन्, ३२. किरिक, ये देवों के हृदय बत्तीस रुद्र देवता हैं। ये सभी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित पन्द्रहवें आवरण में स्थित हैं।।४४-४८।

सोलहवें आवरण में तो पूर्व आदि द्वारों पर रहने वाले विक्षिणत्क गण, विचिन्त्वत्क गण तथा निहर्त नामक आमीवक्ता ये चारों द्वारों पर निश्चित रूप से तप करते हुए महारुद्र की उपासना करते हैं, ये चारों अकेले नहीं सभी

सेवितस्तु महारुद्रो ललिताज्ञाप्रवर्तकः। वर्तते जगतामृद्ध्यै मुक्ताशालेशकोणके॥५१॥
शतरुद्रियसंख्याता एते रुद्रा महाबलाः। ललिताभक्तिसम्पन्नान्पालयंति दिवानिशम्।
अभक्तांल्ललितादेव्याः प्रत्यूहैर्योजयन्त्यमी॥५२॥
इत्थं शक्रादिदिक्पाला मुक्ताशालं समाश्रिताः। ललितापरमेश्वर्याः सेवामेव वितन्वते॥५३॥
अथ मुक्ताख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। शालो मारकताभिख्यश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥५४॥
पूर्ववद्गोपुरादीनां संस्थानैश्च सुशोभितः। तत्र श्रीदंडनाथाया दहनादिविदिग्गजाः॥५५॥
चत्वारो निलयाः प्रोक्ता मंत्रिणीगृहविस्तराः।
गीतिचक्ररथेन्द्रस्य याः पर्वाणि समाश्रिताः॥५६॥
भण्डासुरमहायुद्धे ता देव्यस्तत्र जाग्रति।
सर्वाः स्थल्यो मरकतश्रेणिभिः खचिताः शुभाः॥५७॥
हेमतालवनाढ्याश्च सर्ववस्तुसमाकुलाः। तत्र देव्यः समस्ताश्च दण्डनाथासमश्रियः॥५८॥
हलोद्धर्णहलाद्धर्णमुसलाः सञ्चरंत्यपि। संख्यातीतास्तालवृक्षा नवस्वर्णविचित्रिताः॥५९॥
योजनायतकाण्डाश्च दलैर्युक्ता विशङ्कटैः।
हेमत्वचोऽतिसुस्निग्धाः सच्छायाः फलभङ्गुराः॥६०॥
आमूलाग्रं लम्बमानास्ताला हालाघटाकुलाः।
वर्तन्ते दंडनाथायाः प्रीत्यर्थं शिल्पिभिः कृताः॥६१॥

गण हैं तथा उपर्युक्त उनके गणों के नाम हैं। इस प्रकार सोलह शालों में स्थित हजारों रुद्रों से सेवित महारुद्र श्रीललिता देवी की आज्ञा को क्रियान्वित कराने वाले हैं तथा वे लोकों की समृद्धि के लिए मोतियों के शाल के कोण में वर्तमान हैं।।४९-५१।। सौ रुद्रों की संख्या वाले ये महाबलवान् रुद्रगण ललिता देवी की भक्ति से सम्पन्न पुरुषों को रात-दिन पालते हैं, उनकी रक्षा करते हैं तथा जो ललिता देवी के भक्त नहीं हैं, उनको ये विघ्नों और बाधाओं से युक्त बनाते हैं।।५२।। इस प्रकार इन्द्र आदि दिक्पाल मोतियों के शाल में सम्यक् प्रकार से आश्रित रहते हुए ललिता परमेश्वरी की सेवा करते रहते हैं।।५३।। इसके बाद मुक्ता नामक शाल के मारुत योजन अन्तर पर मारकत नामक मरकत मणि की शाल है, जो चार योजन ऊँची है।।५४।। वह पूर्व के समान नगरद्वार आदि संस्थानों से सुशोभित है। वहाँ श्री दण्डनाथा के दहन आदि विशिष्ट दिग्गज हैं।।५५।। वहाँ पर चार घर कहे गये हैं, जो मन्त्रिणी के गृहविस्तर हैं, अर्थात् वे चारों मन्त्रिणी के घर हैं। जो घर गीति चक्ररथ राज के पर्वों खण्डों पर समाश्रित हैं।।५६।।

भण्डासुर के साथ जब महायुद्ध हुआ था, तब वे सब देवियाँ वहाँ जाग रही थीं। वहाँ सभी स्थलियाँ शुभ मरकत मणियों से खचाखच भरी हुई हैं तथा स्वर्णिम तालवृक्षों के वनों से युक्त सभी वस्तुओं से भरी हुई वे स्थलियाँ हैं।।५७-५७½।। वहाँ पर देवी दण्डनाथा के समान शोभा वाली समस्त देवियाँ हैं, जो हलों को और हल से घातक अस्त्र मूसल को लेकर घूम रही हैं।।५७½-५८½।। वहाँ असंख्य ताड़ के वृक्ष नवीन स्वर्ण की विचित्रता वाले हैं, जिनकी शाखाएँ एक योजन विस्तृत हैं तथा जो विशाल एवं मजबूत पत्तों से युक्त हैं, जिनकी सोने की छाल अत्यन्त सुन्दर और चिकनी है, उनकी छाया बहुत अच्छी है तथा उन पर फल लटके हुए हैं।।५८½-६०।। उन वृक्षों के मूल से ऊपर तक ताड़ी मदिरा से भरे हुए घड़े लटक रहे हैं, जो दण्डनाथा देवी की प्रसन्नता के लिए शिल्पकारों ने बनाये

तं च तालरसापूरं पीत्वापीत्वा मदा कुलाः। जृंभिण्याद्याश्चक्रदेव्यो हेतुकाद्याश्च भैरवाः॥६२॥
सप्तनिग्रहदेव्यश्च नृत्यंति मदविह्वलाः। चतुर्विदिक्षु दंडिन्या यत्रयत्र महादृशः॥६३॥
तत्र पूर्वादिदिग्भागे देवीसदृशवर्चसः। उन्मत्तभैरवी चैव स्वप्नेशी सर्वतोदिशम्॥६४॥
निवासो दंडनाथायाः केवलं त्वाभिमानिकः। तस्यास्तु सेवावासोऽन्यो महापद्माटवीस्थले।
तत्कक्षातिदवीयस्त्वात्सेवार्थं तत्र तद्गृहः॥६५॥
अथो मरकताकारे शाले तत्सप्तयोजने। प्राकारो विद्रुमाकारः प्रातरर्यमपाटलः॥६६॥
तत्र स्थलास्तु सकला विद्रुमैरेव निर्मिताः। तद्वद्विद्रुमसंकाशो ब्रह्मा नलिनविष्टरः॥६७॥
ब्रह्मलोकात्समागत्य सार्द्धं सर्वैर्मुनीश्वरैः। सदा श्रीललितादेव्याः सेवनार्थ मतंद्रितः॥६८॥
मरीच्याद्यैः प्रजासृग्भिर्वर्तते साकमब्धिप। चतुर्दशापि विद्यास्ता उपविद्याः सहस्रशः॥६९॥
चतुष्षष्टिकलाश्चैव शरीरिण्यो महत्तराः। प्राकारे विद्रुमाकारे ब्रह्मलोकसमाश्रिताः।
वर्तन्ते जगतामृद्ध्यै ललिता देवताज्ञया॥७०॥
अथ विद्रुमशालस्यान्तरे मारुतयोजने। माणिक्यमण्डपस्थाने परीतः सर्वतोदिशम्।
वर्तते विष्णुलोकस्तु ललितासेवनोत्सुकः॥७१॥
तत्र वैष्णवलोके तु विष्णुः साक्षात्सनातनः। चतुर्धा दशधा चैव तथा द्वादशधा पुनः।
विभिन्नमूर्तिः सततं वर्तते माधवः सदा॥७२॥

हैं।।६१।। उस तालरस को पी-पी कर मद से आकुल जृम्भिणी आदि चक्र देवियाँ और हेतुक आदि भैरव तथा सात निग्रह (प्रलय करने वाली) देवियाँ मदमत्त होकर नाचती हैं।।६२-६२½।। दण्डिनी की विशेष चारों दिशाओं में जहाँ-जहाँ महान् दृष्टि है, वहाँ-वहाँ पूर्व आदि दिशाओं के भाग में जहाँ कि देवी के समान शक्तिवाली शक्तियाँ हैं और उन्मत्त भैरवी स्वप्न की स्वामिनी तो सब दिशाओं में भ्रमण करती हैं।।६२½-६४।। परन्तु दण्डनाथा देवी का निवास तो केवल आभिमानिक है, वे सर्वत्र नहीं विचरण करतीं। उनका सेवा वास अन्य है, जो महापद्म वनी के स्थल पर है, अर्थात् उनकी सेवा करने का स्थान (Service place) महापद्मवनी स्थली है। वहाँ उसकी रक्षार्थ उनकी महादेवी द्वारा नियुक्ति की गयी है; परन्तु उस कक्षा से अति दूर होने के कारण सेवा के लिए वहाँ उनका वह घर है।।६५।। इसके बाद मरकत मणि के बने शाल में सात योजन पर मूंगा के आकार का अर्थात् मूंगों का बनाया हुआ प्राकार (चहारदीवार) है, जो प्रातःकालीन सूर्य के समान लाल है।।६६।।

वहाँ पर समस्त स्थल मूंगों से ही बने हुए हैं, अर्थात् वहाँ फर्श मूंगे से निर्मित हैं। उस विद्रुम स्थल के समान ही पद्मासन वाले ब्रह्मा ब्रह्मलोक से आकर सब मुनीश्वरों के साथ ललिता देवी की सेवा करने के लिए निरालस्य होकर मरीचि आदि प्रजा की सृष्टि करने वाले ऋषियों के साथ उपस्थित होते हैं।।६७-६८।। तब वहाँ वे चौदह विद्यायें और हजारों उपविद्यायें चौंसठ कलायें साक्षात् शरीर धारण करके उस मूंगे के बने प्राकार में स्थित ब्रह्मलोक में समाश्रित रहती हैं। वे ब्रह्मा उन सबके साथ संसार की समृद्धि के लिए ललिता देवी की आज्ञा से वहाँ वर्तमान रहते हैं।।६९-७०।। इसके बाद विद्रुमशाल के मारुत योजन अन्तर पर माणिक्यमण्डप के स्थान पर सब ओर दिशाओं में फैला हुआ, ललिता देवी की सेवा का उत्सुक विष्णुलोक है।।७१।। वहाँ वैष्णवलोक में तो साक्षात् सनातन विष्णु ही चार प्रकारों, दश प्रकारों तथा फिर बारह प्रकारों की अनेकों मूर्ति वाले माधव सदा वर्तमान रहते हैं।।७२।।

भण्डासुरमहायुद्धे ये श्रीदेवीनखोद्भवाः। दसावतारदेवास्तु तेऽपि माणिक्यमण्डपे॥७३॥
पूर्वकक्षांतरेभ्यस्तु तत्कक्षायां विशेषतः। उपर्याच्छादनामात्रं माणिक्यदृषदां गणैः॥७४॥
तत्र कक्षान्तरे देवः शंखचक्रगदाधरः। भिन्नो द्वादशमूर्त्या च पूर्वाद्याशासुरक्षति॥७५॥
जाम्बूनदप्रभश्चक्री पूर्वस्यां दिशि केशवः। पश्चान्नारायणः शंखी नीलजीमूतसंनिभः॥७६॥
इन्दीवरदलश्यामो मधुमान्माधवोऽवति। गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे धन्वी चन्द्रप्रभो महान्॥७७॥
उत्तरे हलधृग्विष्णुः पद्मकिञ्जल्कसंनिभः। आग्नेय्यामरविन्दाभो मुसली मधुसूदनः॥७८॥

त्रिविक्रमः खड्गपाणिर्नैर्ऋत्ये ज्वलनप्रभः।
वायव्यां वामनो वज्री तरुणादित्य दीप्तिमान्॥७९॥
ईशान्यां पुण्डरीकाभः श्रीधरः पट्टिशायुधः।
विद्युत्प्रभो हृषीकेशो ह्यवाच्यां दिशि मुद्गरी॥८०॥

पद्मनाभः शार्ङ्गपाणिः सहस्त्रार्कसमप्रभः। माणिक्यमंडपस्थानमनुलोम्येन वेष्टते॥८१॥
सर्वायुधः सर्वशक्तिः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः। इन्द्रगोपकसंकाशः पाशहस्तोऽपराजितः॥८२॥
दामोदरस्तु सर्वात्मा ललिताभक्तिनिर्भरः। माणिक्यमण्डपस्थानं विलोमेन विवेष्टते॥८३॥
इति द्वादशभिर्देहैर्भगवानम्बुजेक्षणः। माणिक्यमण्डपगतो विष्णुलोके विराजते॥८४॥

भण्डासुर के महायुद्ध में श्रीललिता देवी के नाखूनों से उत्पन्न जो दश अवतार देवता हैं, वे भी माणिक्यमण्डप में पूर्व कक्षाओं के अन्दर से उस कक्षा में विशेष रूप में माणिक्य पत्थरों के समूहों द्वारा ऊपर से ढँके हुए.मात्र रहते हैं।।७३।। वहाँ उस माणिक्य पत्थरों की छत वाले कक्ष में शंख और चक्र को धारण करने वाले देव विष्णु अपने अवतारों सम्बन्धी बारह अवतारों की मूर्ति से भिन्न पूर्वादि दिशाओं में रहकर देवी की रक्षा करते हैं।।७३-७५।। तब जाम्बूनद से उत्पन्न चक्रधारी केशव पूर्व दिशा में रक्षा करते हैं तथा पश्चिम में शंख धारण करने वाले नील मेघ के समान नारायण स्थित हैं।।७६।। नीलकमल के समान वर्ण वाले मधुमान् माधव चन्द्रप्रभा के समान महान् धनुषधारी गोविन्द दक्षिण पार्श्व में रक्षा करते हैं।।७७।। उत्तर में हल धारण करने वाले पद्मकमल फूल के समान विष्णु रक्षा करते हैं तथा आग्नेय दिशा में अरविन्द की आभा वाले मुसल धारण करने वाले मधुसूदन रक्षा करते हैं।।७८।। आग के समान आभा वाले, खड्गपाणि त्रिविक्रम नैर्ऋत्य में तथा तरुण सूर्य के समान आभा वाले एवं वज्र धारण करने वाले वामन वायव्य दिशा में रक्षा करते हैं।।७९।।

ईशान दिशा में पुण्डरीक कमल की आभा वाले, पट्टिश नामक अस्त्र को धारण करने वाले श्रीधर रक्षा करते हैं तथा मुद्गर धारण करने वाले, विद्युत् के समान कान्ति वाले, हृषीकेश अवाच्य दिशा में रक्षा करते हैं।।८०।। सहस्र सूर्य के समान कान्ति वाले शार्ङ्ग नामक धनुष दारण करने वाले पद्मनाभ माणिक्य मण्डप स्थान को सीधी ओर से घेरे हुए रहते हैं, अर्थात् अनुलोम क्रम से बायें सदा में चारों ओर घूमते रहते हैं।।८१।। सब आयुध वाले, सब कुछ जानने वाले सर्वशक्ति इन्द्रगोपन के समान कान्ति वाले पाश हाथ में लिये, अपराजित सर्वात्मा दामोदर, जो ललितादेवी की भक्ति पर निर्भर हैं तथा वे माणिक्य मण्डप स्थान को विलोम से दायीं ओर से बायीं ओर घूमते हुए घेरे रहते हैं। इस प्रकार इन बारह भेदों में भगवान् कमलनयन माणिक्य मण्डप में स्थित विष्णुलोक में विराजमान हैं।।८४।।

अथ नानारत्नशालान्तरे मारुतयोजने। सहस्रस्तम्भकं नाम मंडपं सुमनोहरम्॥८५॥
नानारत्नैस्तु खचितं नानारत्नैरलंकृतम्। नानारत्नकृतश्शालस्तुंगस्तत्राभिवर्तते॥८६॥
एका पंक्तिः सहस्रैस्तु स्तम्भस्तियक्प्रवर्तते।
तादृशाः पंक्तयोः बह्वयः स्तम्भानां तु चतुर्दिशम्॥८७॥
उपर्याच्छादनं चापि पूर्ववद्रत्नदारुभिः। शिवलोकस्तत्र महाञ्जागर्ति स्फुरितद्युतिः॥८८॥
शैवागमा मूर्तिमन्तस्तत्राष्टाविंशतिः स्मृताः। नंदिभृंगिमहाकालप्रमुखास्तत्र चोत्तमाः॥८९॥
षड्विंशत्तत्त्वदेवाश्च गजवक्त्राः सहस्रशः। शिवलोकोत्तमे तस्मिन्सहस्रस्तम्भमंडपे॥९०॥
ईशानः सर्वविद्यानामदिपश्चन्द्रशेखरः। ललिताज्ञापालकश्च ललिताज्ञाप्रवर्तकः॥९१॥
ललितामंत्रजापी च नित्यमानन्दमानसः। शैव्या दृष्ट्या स्वभक्तानां ललितामंत्रसिद्धये॥९२॥
अन्तर्बहिस्तमःपुञ्जनिर्भेदनपटीयसीम्। महाप्रकाशरपां तां मेधाशक्तिं प्रकाशयन्॥९३॥
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सहस्रस्तम्भमण्डपे। वर्तमानो महादेव देवीः श्री भक्तिनिर्भरः।
तत्तच्छालान्समाश्रित्य वर्तते कुम्भसंभवः॥९४॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने दिक्पालादिशिवलोकान्तरकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

इसके बाद अनेकों रत्नों वाले शाल के मारुत योजन अन्तर पर सहस्र स्तम्भक नामक सुन्दर और मन को हरने वाला मण्डप है, जिसमें एक हजार खम्भे हैं।।८५।। जो अनेकों रत्नों से खचित एवं अनेकों रत्नों से अलंकृत है। वहाँ पर अनेकों प्रकार के रत्नों से बना हुआ ऊँचा शाल (कसागार) बना हुआ है।।८६।। जिसमें हजारों स्तम्भों की एक पंक्ति तिरछी लगी हुई है। वैसी ही अनेकों खम्भों की पंक्तियाँ चारों दिशाओं में लगी हुई हैं।।८७।। उसकी ऊपरी छत रत्नजटित लकड़ियों से आच्छादित है, वहाँ पर महान् शिवलोक है, जहाँ जगमगाती कान्ति वाले शिव जागते रहते हैं।।८८।। वहाँ पर अट्ठाईस शैवागम (शैव धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ) साक्षात् शरीर धारण किये हुए स्मरण किये गये हैं तथा वहाँ पर नन्दी, भृङ्गी और महाकाल प्रमुख और उत्तम छब्बीस तत्त्व देवता हैं तथा हजारों हाथी के मुख वाले गण हैं।।८९-८९½।। हजारों खम्भों से युक्त मण्डप वाले उस उत्तम शिवलोक में सब विद्याओं को पैदा करने वाले तथा सब विद्याओं के स्वामी चन्द्रमौलि भगवान् शंकर ललितादेवी के आज्ञापालक और ललितादेवी की आज्ञा को लागू कराने वाले हैं।।९१।। वे ललितादेवी के मन्त्र का जाप करने वाले तथा नित्य उनके ही ध्यान में आनन्दमग्न रहने वाले हैं तथा उन शिव की दृष्टि सदैव अपने भक्तों को ललिता देवी के मन्त्र को सिद्ध कराने के लिए लगी रहती है।।९२।। हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! अन्दर और बाहर के अज्ञान रूपी अन्धकार समूह का भेदन करने में कुशल महाप्रकाशरूपा उस मेधाशक्ति को प्रकाशित करते हुए सहस्र स्तम्भमण्डप में वर्तमान सब कुछ जानने वाले तथा सब कुछ करने वाले महादेव श्रीललितादेवी की भक्ति पर निर्भर होकर उस शाल का आश्रय लेकर वर्तमान रहते हैं।।९२-९४।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३४वाँ अध्याय दिक्पालों द्वारा शिवलोक का अन्तर का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

महापद्माटव्यार्घ्यस्थापनकथनं नाम

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

अथ वापीत्रयादीनां कक्ष्याभेदान्प्रचक्ष्महे। एषां श्रवणमात्रेण जायते श्रीमहोदयः॥१॥
सहस्रस्तम्भशालस्यांतरमारुतयोजने। मनो नाम महाशालः सर्वरत्नविचित्रितः॥२॥
पूर्ववद्गोपुरद्वारकपाटार्गलसंयुतः। तन्मध्यकक्ष्याभागस्तु सर्वाप्यमृतवापिका॥३॥
यत्पीत्वा योगिनः सिद्धा वज्रकाया महाबलाः। भवन्ति पुरुषाः प्राज्ञास्तदेव हि रसायनम्॥४॥
वाप्याममृतमय्यां तु वर्तते तोयतां गतम्। तद्गन्धाघ्राणमात्रेण सिद्धिकांतापतिर्भवेत्॥५॥
अस्पृशन्नपि विन्ध्यारे पुरुषः क्षीण कल्मषः। उभयोः शालयोः पार्श्वे सुधावापीतटद्वये॥६॥
अधक्रोशसमायामा अन्यास्सर्वाश्च वापिकाः। चतुर्योजनदूरं तु तलं तस्या जलान्तरे॥७॥
सोपानवलयस्तस्या नानारत्नविचित्रिताः। स्वर्णवर्णा रत्नवर्णास्तस्यां हंसाश्च सारसाः॥८॥
आस्फोट्यते तटद्वंद्वतरंगैर्मंदचञ्चलैः। पक्षिणस्तज्जलं पीत्वा रसायनमयं नवम्॥९॥
अजरामरतां प्राप्तास्तत्र विन्ध्यनिषूदन। सदा कूजितलक्षेण तत्र कारण्डवद्विजाः॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललिंतोपाख्यान

अध्याय–३५

महापद्माटवी अर्घ्यस्थापन कथन

हयग्रीव ने कहा कि हे मुने! इसके बाद मैं तीन वापियों के कक्ष्यों के भेदों को बताऊँगा। इनके सुनने मात्र से मनुष्य धन-दौलत से सम्पन्न हो जाते हैं।।१।। हजार खम्भों वाले शाल के अन्दर मारुत योजन पर सब रत्नों से विशेष रूप से चित्रित मन नाम का महाशाल है।।२।। वह पूर्व के महाशालों की भाँति नगरद्वारों, कपाटों और अर्गलाओं से युक्त है। उसके मध्य में कक्ष्याभाग है, जिनमें अमृत की वापियाँ हैं।।३।। जिनका जल पीकर योगी लोग और सिद्धपुरुष वज्र के शरीर वाले और महाबलशाली और महाबुद्धिमान् और विद्वान् हो जाते हैं, वही वह रसायन है।।४।। हयानन ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे विन्ध्यगुरु अगस्त्य जी! उस अमृतमय वापी में ऐसा जल है, जिसको बिना स्पर्श किये हुए ही जिसकी गन्धमात्र से मनुष्य क्षीणपाप होकर सिद्धि रूपी स्त्रियों का पति हो जाता है।।५-५½।। दोनों शालों के पास में अमृत वापी के दोनों ओर के किनारों पर आधे कोश विस्तार वाली अन्य सब छोटी वापियाँ हैं। उस अमृतमयी वापी का नीचे का तल चार योजन अन्दर जल में है।।७।।

उसके चारों ओर की सीढ़ियाँ अनेकों प्रकार के रत्नों से विशिष्ट रूप से चित्रित हैं तथा उस अमृत बावड़ी में स्वर्ण वर्ण वाले और रत्नवर्ण वाले हंस और सारस हैं, जो उस वापी के दोनों तटों पर उठने वाली लहरों के मद से चंचल चोचों से एक-दूसरे से लड़ने के लिए ताल ठोंकते हैं।।८-८½।। हे अगस्त्य जी! पक्षी उस वापी के रसायनमय नवीन जल को पीकर अजर और अमर हो गये हैं। वहाँ कारण्डव (बत्तखें) सदा कूंजती हुई, उस वापी

जपंति ललितादेव्या मंत्रमेव महत्तरम्। परितो वापिकाचक्रपरिवेषणभूयसा॥११॥
न तत्र गंतुं मार्गोऽस्ति नौकावाहनमंतरा। आज्ञया केवलं तत्र मंत्रिणी दंडनाथयोः।
तारा नाम महाशक्तिर्वर्तते तोरणेश्वरी॥१२॥
बह्व्यस्तत्रोत्पलश्यामास्तारायाः परिचारिकाः। रत्ननौकासहस्रेण खेलन्त्यो सरसीजले॥१३॥
अपरं पारमायान्ति पुनर्यान्ति परं तटम्। वीणावेणुमृदङ्गादि वादयन्त्यो मुहुर्मुहुः॥१४॥
कोटिशस्तत्र तारायां नाविक्यो नवयौवनाः। मुहुर्गायन्ति नृत्यंति देव्याः पुण्यतमं यशः॥१५॥
अरित्रपाणयः काश्चित्काश्चिच्छृगाम्बुपाणयः। पिबन्त्यस्तत्सुधातोयं संचरंत्यस्तरीशतैः॥१५॥
तासां नौकावाहिकानां शक्तीनां श्यामलत्विषाम्।
प्रधानभूता तारांबा जलौघशमनक्षमा॥१७॥
आज्ञां विना तयोस्तारा मंत्रिणीदंडधारयोः। त्रिनेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकांभसि सन्तरम्॥१८॥
गायन्तीनां चलन्तीनां नौकाभिर्मणिचारुभिः। महाराज्ञी महौदार्यं पतन्तीनां पदेपदे॥१९॥
पिबन्तीनां मधु भृशं माणिक्यचषकोदरै;। प्रतिनौकं मणिगृहे वसन्तीनां मनोहरे॥२०॥
तारातरणिशक्तीनां समवायोऽतिसुन्दरः।
काश्चिन्नौकाः सुवर्णाढ्याः काश्चिद्रत्नकृता मुने॥२१॥
मकराकारमापन्नाः काश्चिन्नौका मृगाननाः।
काश्चित्सिंहासना नावः काश्चिद्दन्तावलाननाः॥२२॥

का चक्कर काटती हुई, चारों ओर पुनः-पुनः आती-जाती हुई, ललिता देवी के महत्तर मन्त्र को जपती रहती हैं।।८½-११।। वहाँ नौका वाहन के अतिरिक्त अन्य कोई जाने का मार्ग नहीं है, वहाँ केवल मैत्रणी और दण्डनाथा देवी की आज्ञा के द्वारा ही जाया जा सकता है। वहाँ पर तारा नाम की तोरणेश्वरी शक्ति वर्तमान है।।१२।। वहाँ पर नील कमल के समान श्याम वर्ण वाली अनेकों तारादेवी की परिचायिकाएँ (सेविकाएँ) हजारों रत्नजटित नौकाओं में बैठकर जल में क्रीडा करती हैं।।१३।। वे वीणा-वांसुरी, मृदङ्ग आदि बजाती हुई, बार-बार उस पार तट पर जाती हैं और फिर इस पार तट पर आती हैं।।१४।। वहाँ पर तारादेवी की करोड़ों नवयौवना नाविकियाँ, तारादेवी के पुण्यतम यश को बार-बार गाती हैं और नाचती हैं।।१५।। उनमें कोई नाव का लंगर हाथ में लिये हुए नाव चला रही हैं, कोई नाव के सहारे हाथ में पानी लेकर उछाल रही हैं तथा इस प्रकार उस वापी का अमृत जल पीती हुई वे सैकड़ों नावों द्वारा वापी में विचरण कर रही हैं।।१६।। उन श्यामल कान्ति वाली नौकावाहिका शक्तियों की प्रधानभूत तारा अम्बा जल के वेग को शान्त करने में समर्थ है।।१७।। उन दोनों मन्त्रिणी और दण्डनाथा की आज्ञा के बिना तारादेवी उस वापी के जल में त्रिनेत्र भगवान् शिव को भी सन्तर नहीं देतीं नहाने नहीं देती।।१८।।

मणियों से सुन्दर नौकाओं से चलती हुई, गाती हुई अपनी महारानी की महती उदारता को पद-पद पर गिराती हुई, माणिक्य के प्यालों द्वारा बहुत अधिक मधु को पीती हुई, मनोहर मणिगृह वाली अलग अलग नौकाओं में बसती हुई तारा देवी की तरणि शक्तियों का समवाय अत्यन्त सुन्दर है।।१९-२०½।। कुछ नौकाएं सोने की बनी हुई हैं तथा कुछ हे मुने! रत्नों की बनी हुई हैं। कुछ मकर के आकार वाली हैं। कुछ नौकाएं मृगों के मुँह के आकार वाली

इत्थं विचित्ररूपाभिर्नौकाभिः परिवेष्टिता। तारांबा महतीं नौकामधिगम्य विराजते॥२३॥
अनुलोमविलोमाभ्यां सञ्चारं वापिकाजले। तन्वाना सततं तारा कक्ष्यामेनां हि रक्षति॥२४॥
मनशालस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः। बुद्धिशाल इति ख्यातश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥२५॥
तन्मध्यकक्ष्याभागेऽस्ति सर्वाप्यानन्दवापिका। तत्र दिव्यं महामद्यं बकुलामोदमेदुरम्।
प्रतप्तकनकच्छायं तज्जलत्वेन वर्त्तते॥२६॥
आनन्दवापिका गाथाः पूर्ववत्परिकीर्तिताः। सोपानादिक्रमश्चैव पक्षिणस्तत्र पूर्ववत्॥२७॥
तत्रत्यं सलिलं मद्यं पायम्पायं तटस्थिताः। विहरन्ति मन्दोन्मत्ताः शक्तयो मदपाटलाः॥२८॥
साक्षाच्च वारुणी देवी तत्र नौकाधिनायिका। यां सुधामालिनीमाहुर्यामाहुरमृतेश्वरीम्॥२९॥
सा तत्र मणिनौकास्थशक्तिसेनासमावृता। ईषदालोकमात्रेण त्रैलोक्यमददायिनी॥३०॥
तरुणादित्य सङ्काशा मदारक्तपोलभूः। पारिजातप्रसूनस्रक्परिवीतकचाचिता॥३१॥
वहन्ती मदिराचूर्णं चषकं लोलदुत्पलम्। पक्वं पिशितखण्डं च मणिपात्रे तथान्यके॥३२॥
वारुणीतरणिश्रेणीनायिका तत्र राजते। साप्याज्ञयैव सर्वेषां मन्त्रिणीदंडनाथयोः।
ददाति वापीतरणं त्रिनेत्रस्यापि नान्यथा॥३३॥

हैं। कुछ नौकाएँ सिंह के समान मुख वाली हैं और कुछ नौकाएँ हाथी के मुख जैसे मुख वाली हैं।।२०½-२२।। इस प्रकार विचित्र ररूप वाली नौकाओं से घिरी हुई तारा अम्बा महती नौका को प्राप्त कर उसमें विंराजमान हैं।।२३।। तथा वे ताराम्बा बावड़ी के जल में अनुलोम-विलोम रूप से अर्थात् बायें से दायें और दायें से बायें संचरण करती हुई, घूमती हुई, निरन्तर वहाँ रहती हुई, उस कक्ष्या की रक्षा करती हैं।।२४।। मनशाल के अन्तराल में सात योजन दूरी पर बुद्धिशाल नामक प्रसिद्ध शाल है, जो चार योजन ऊँचा है।।२५।। उसके मध्य कक्ष्य भाग में सबको आनन्द प्रदान करने वाली बावड़ी है। वहाँ पर मोलसिरी की सुगंध से स्निग्ध दिव्य महामद्य है, जो तपे हुए सोने की कान्ति की छाया के समान जल से युक्त है। अर्थात् वह महामद्य (महामदिरा) सोने के समान पीले रंग के जल वाली है। अच्छी मदिरा का प्रायः ऐसा ही रंग होता है।।२६।। आनन्द बावड़ी की गाथा पूर्व बावड़ियों के समान वर्णित है। वहाँ सीढ़ियों का क्रम भी पूर्व बावड़ियों के समान है तथा उसमें पक्षी भी पूर्व बावड़ियों के समान ही हैं।।२७।। वहाँ उस बावड़ी के जल को पी पी कर मदोन्मत्त एवं मद से लाल-लाल शक्तियाँ विहार करती हैं।।२८।। वहाँ पर साक्षात् जलों की देवी वारुणी नाम की मदिरा ही नौकाओं की अधिशायिका हैं। अर्थात् जल सेना की सेनापति साक्षात् वारुणी[1] देवी हैं। जिसको सुधामालिनी और अमृतेश्वरी कहा जाता है।।२९।।

वहाँ पर मणि निर्मित नौका में शक्ति सेना से घिरी हुई वे वारुणी बैठी हुई हैं, जो थोड़े से देखने मात्र से तीनों लोकों को मदमत्त कर देने वाली हैं।।३०।। तरुण सूर्य के प्रकाश के समान जिनके मदिरा के मद से लाल लाल कपोल हैं। जो कल्पवृक्ष की माला पहने हुए हैं तथा मुख पर बाल बिखेरे हुए हैं।।३१।। वे मदिरा से भरे हुए प्याले को और कमल को हिला रही हैं तथा मणिपात्र में तथा अन्य पात्रों में पके हुए मास के टुकड़े को लिये हुए हैं।।३२।। ऐसी वारुणी नाम की नौकाश्रेणी नायिका वहाँ सुशोभित हैं। वे भी मन्त्रिणी और दण्डनाथा की आज्ञा से ही सबको

---

१. मदिरा की अधिष्ठात्री देवी वारुणी

अथ बुद्धिमहाशालान्तरे मारुतयोजने। अहंकारमहाशालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः॥३४॥
तयोस्तु शालयोर्मध्ये कक्ष्याभूरखिला मुने। विमर्शवापिका नाम सौषुम्णामृतरूपिणी॥३५॥
तन्महायोगिनामन्तर्मनो मारुतपूरितम्। सुषुम्णदंडविवरे जागर्ति परमामृतम्॥३६॥
तदेव तस्याः सलिलं वापिकायास्तपोधन। पूर्ववत्तटसोपानपक्षि नौका हि ताः स्मृताः॥३७॥
तत्र नौकेश्वरी देवी कुरुकुल्लेतिविश्रुताः। तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी॥३८॥
नौकेश्वरीभिरन्याभिस्स्वसमानाभिरावृता। रत्नारित्रकरा नित्यमुल्लसन्मदमांसला॥३९॥
परितो भ्राम्यति मुने मणिनौकाधिरोहिणी। वापिका पयसागाधा पूर्ववत्परिकीर्तिता॥४०॥
अहंकारस्य शालस्यान्तरे मारुतयोजने। सूर्यबिंबमहाशालश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥४१॥
सूर्यस्यापि महानासीद्यदभूदरुणोदयः। तन्मध्यकक्ष्या वसुधा खचिता कुरविंदकैः॥४२॥
तत्र बालातपोद्गारे ललिता परमेश्वरी। अतितीव्रतपस्तप्त्वा सूर्योऽलभत तां द्युतिम्॥४३॥
ग्रहराशिगणाः सर्वे नक्षत्राण्यपि तारकाः।
तेऽत्रैव हि तपस्तप्त्वा लोकभासकतां गताः॥४४॥
मार्तंडभैरवस्तत्र भिन्नो द्वादशधा मुने। शक्तिभिस्तैजसीभिश्च कोटिसंख्याभिरन्वितः॥४५॥
महाप्रकाशरूपश्च महादारुणविलोचनः। कङ्कोलितरुखण्डेषु नित्यं क्रीडारसोत्सुकः।

यहाँ तक त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर को वापी में तैरने वाली नौका देती हैं, अन्यथा नहीं देतीं।।३३।। इसके बाद बुद्धि महाशाल के मारुत योजन अन्तर पर अहंकार महाशाल है, जो पूर्व शालों की भाँति मुख्य द्वारों, कपाटों, अर्गलाओं से युक्त है।।३४।। उन बुद्धि महाशाल और अहंकार महाशाल के मध्य में हे अगस्त्य मुने! अखिल कक्ष्याभूमि है। जहाँ कि विमर्श नाम की बावड़ी है, जो सुषुम्ना नाड़ी से निकलने वाले अमृत रूप वाली है।।३५।। वह महायोगियों के अन्तर्मन को वायु से पूरित करती है और हे अगस्त्य मुने! वह उस बावड़ी का जल सुषुम्ना नाड़ी के विवर में परमामृत को जागृत करता है तथा जैसे पूर्व बावड़ी के तट की सीढ़ियों, पक्षियों और नौकाओं का वर्णन किया है, वैसी ही सीढ़ियाँ पक्षी और नौकाएँ इस बावड़ी की भी हैं।।३६-३७।।

वहाँ पर नौकेश्वरी देवी अर्थात् नौसेना की सेनापति, कुरुकुल्ला इस नाम से सुनी गयी हैं। वह तमाल वृक्ष के समान श्यामल आकार वाली और श्याम वर्ण की कंचुकी धारण करने वाली हैं।।३८।। हाथों में रत्नजटित पतवार लिये हुए और नित्य उल्लास युक्त और मद से मस्त, अपने ही समान अन्य नौकेश्वरियों से समावृत हैं।।३९।। हयानन कहते हैं कि हे मुने! मणि नौका पर सवार नौकेश्वरी देवी चारों ओर घूम रही हैं। वह बावड़ी पूर्व वापियों के समान जल से अगाध कही गयी है।।४०।। अहंकार शाल के मारुत योजन अन्तर पर सूर्यबिम्ब महाशाल है, जो चार योजन ऊँचा, लम्बा है।।४१।। जो अरुणोदय सूर्य से भी महान् था। उसके मध्य कक्ष्याभूमि लाल मणियों से खचित (जड़ी हुई) है।।४२।। वहाँ बालातप के निकलने (बाल सूर्य के निकलने) में ललिता देवी विराजमान हैं। वहाँ अत्यन्त तीव्र तप करके सूर्य ने उस कान्ति (चमक) को प्राप्त किया था।।४३।। यहीं पर ग्रहराशिगणों और नक्षत्रों तथा तारागणों ने तप करके लोकों द्वारा दिखायी दिये जाने के गुण को प्राप्त किया है। लोक में प्रकाशित होने के गुण को प्राप्त किया है।।४४।। भगवान् हयानन कहते हैं कि हे मुने! वहाँ बारह प्रकारों में विभक्त होकर करोड़ों तैजसी शक्तियों से युक्त हैं। महाप्रकाश रूप मद से लाल-लाल नेत्रों वाले फलदार वृक्षों में क्रीड़ा करने के उत्सुक मार्तण्ड भैरव उस बावड़ी

वर्तते विंध्यदर्परि पारे यस्तन्मयस्थितः॥४६॥

महाप्रकाशनाम्नास्ति तस्य शक्तिर्महीयसी। चक्षुष्मत्यपराशक्तिश्छाया देवी परा स्मृता॥४७॥

इत्थं तिसृभिरिष्टाभिः शक्तिभिः परिवारितः।

ललिताया महेशान्याः सदा विद्या हृदा जपन्॥४८॥

तद्भक्तानामिन्द्रियाणि भास्वराणि प्रकाशयन्। बहिरन्तस्तमोजालं समूलमवमर्दयन्॥४९॥

तत्र बालातपोद्गारं भाति मार्तण्डभैरवः। सूर्यबिम्ब महाशालान्तरे मारुतयोजने॥५०॥

चन्द्रबिम्बमयः शालश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः। पूर्ववद्गोपुरद्वारकपाटार्गलसंयुतः॥५१॥

तन्मध्यभूः समस्तापि चन्द्रिकाद्वारमुच्यते॥५२॥

तत्रैव चन्द्रिकाद्वारे तपस्तप्त्वा सुदारुणम्। अत्रिनेत्रसमुत्पन्नश्चन्द्रमाः कान्तिमाययौ॥५३॥

अत्र श्रीसोमनाथाख्यो वर्तते निर्मलाकृतिः। देवस्त्रैलोक्यतिमिरध्वंसी संसारवर्तकः॥५४॥

पिबञ्चषकसम्पूर्णं निर्मलं चन्द्रिकामृतम्। सप्तविंशतिनक्षत्रशक्तिभिः परिवारितः॥५५॥

सदा पूर्णनिजाकारो निष्कलंको निजाकृतिः। तत्रैव चन्द्रिकाद्वारे वर्तते भगवाञ्छशी॥५६॥

ललिताया जपैर्ध्यानैः स्तोत्रैः पूजाशतैरपि। अश्विन्यादियुतस्तत्र कालं नयति चन्द्रमाः॥५७॥

अन्याश्च शक्तयस्तारानामधेयाः सहस्रशः। सन्ति तस्यैव निकटे सा कक्षा तत्प्रपूरिता॥५८॥

अथ चन्द्रस्य शालस्यांतरे मारुतयोजने। श्रृंगारो नाम शालोऽस्ति चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥५९॥

श्रृङ्गारागाररूपैस्तु कौस्तुभैरिव निर्मितः। महाश्रृङ्गारपरिखा तन्मध्ये वसुधाखिला॥६०॥

के तीर पर ललितादेवी में लीन होकर स्थित हैं।।४५-४६।। उन मार्तण्ड भैरव महाप्रकाश नाम की महती शक्ति है। चक्षुष्मती अपरा शक्ति है और छाया देवी पराशक्ति स्मरण की गयी हैं।।४७।। इस प्रकार तीन प्रकार की शक्तियों से परिवारित घिरे हुए, ललिता परमेश्वरी का सदा हृदय से तप करते हुए, उनके भक्तों की इन्द्रियों रूपी सूर्यों को प्रकाशित करते हुए, बाहर और भीतर के अन्धकार समूह को समूल नष्ट करते हुए, वहाँ बालतपोद्वार में मार्तण्ड भैरव चमकते हैं (सुशोभित होते हैं) ये मार्तण्डभैरव सूर्य ही हैं।।४९-४९½।। सूर्यबिम्ब महाशाल के मारुत योजन अन्तर पर चार योजन लम्बा चन्द्रबिम्बमय शाल है। जो पूर्व शालों के समान मुख्य द्वार कपाट और अर्गलाओं से युक्त है।।४९½-५१।। उसके मध्य की समस्त भूमि चन्द्रिका द्वार कही जाती है।।५२।। वहीं चन्द्रिकाद्वार पर अत्यन्त कठोर तप करके अत्रि ऋषि के नेत्र से पैदा होने वाले चन्द्रमा ने कान्ति को प्राप्त किया था।।५३।।

यहाँ सोमनाथ नाम की निर्मल आकृति, तीनों लोकों के अन्धकार को नष्ट करने वाले, संसार के जीवन, प्याले में भरे हुए चाँदनी रूपी अमृत को पीते हुए, सत्ताईस नक्षत्र शक्तियों से घिरे हुए, सदैव पूर्ण अपने आकार वाले निष्कलंक (अपने काले धब्बे से रहित) अपनी साफ सुथरी आकृति में भगवान् चन्द्रमा, वहीं चन्द्रिका के द्वार पर विद्यमान रहते हैं।।५४-५६।। वे चन्द्रमा ललितादेवी के जपों, ध्यानों, स्तुतियों और सैकड़ों प्रकार की पूजाओं द्वारा अश्विनी आदि नक्षत्रों के साथ वहाँ अपना समय व्यतीत करते हैं।।५७।। तारा नाम की हजारों शक्तियाँ उनके निकट रहती हैं, इस प्रकार वह कक्षा भरी हुई रहती है।।५८।। इसके बाद चन्द्रशाल के मारुत योजन अन्तर पर श्रृंगार नाम का चार योजन विस्तृत शाल है।।५९।। वह शाल श्रृंगार घर के रूप में कौस्तुभ मणियों के समान निर्मित है। वहाँ उसके चारों ओर महाश्रृंगार परिखा है, अर्थात् उस श्रृंगार किले के चारों ओर महाश्रृंगार नामक खाई खुदी हुई

परिखावलये तत्र शृङ्गाररसपूरिते। शृङ्गारशक्तयः सन्ति नानाभूषणभासुराः॥६१॥
तत्र नौकासहस्रेण संचरंत्यो महोद्धताः। उपासन्ते सदा मत्तं नौकास्थं कुसुमायुधम्॥६२॥
स तु संमोहयत्येव विश्वं सम्मोहनादिभिः। विशिखैरखिलाँल्लोकाँल्ललिताज्ञावशंवदः॥६३॥
तत्प्रभावेण संमूढा महापद्माटवीस्थलम्। वनितुं शुद्धवेषाश्च ललिताभक्तिर्निर्भराः।
सावधानेन मनसा यांति पद्माटवीस्थलम्॥६४॥
न गंतुं पारयत्येव सुरसिद्धनराः सुराः। ब्रह्मविष्णुमहेशास्तु शुद्धचित्ताः स्वभावतः।
तदाज्ञया परं यांति महापद्माटवीस्थलम्॥६५॥
संसारिणश्च रागान्धा बहुसंकल्पकल्पनाः। महाकुलाश्च पुरुषा विकल्पज्ञानधूसराः॥६६॥
प्रभूतरागगहनाः प्रौढव्यामोहदायिनीम्। महाशृङ्गारपरिखांतरितुं न विचक्षणाः॥६७॥
यस्मादजेयसौन्दर्यस्त्रैलोक्यजनमोहनः। महाशृगारपरिखाधिकारी वर्तते स्मरः॥६८॥
तस्य सर्वमतिक्रम्य महतामपि मोहनम्। महापद्माटवीं गंतुं न कोऽपि भवति क्षमः॥६९॥
अथ शृङ्गारशालस्यांतराले सप्तयोजने। चिंता मणिगृहं नाम चक्रराजमहालयः॥७०॥
तन्मध्यभूः समस्तापि परितो रत्नभूषिता। महापद्माटवी नाम सर्वसौभाग्यदायिनी॥७१॥
शृगाराख्यमहाकालपर्यंतं गोपुरं मुने। चतुर्दिक्ष्वप्येवमेव गोपुराणां व्यवस्थितिः॥७२॥

है। उस खाई के मध्य में अखिल (विशाल) भूमि है।।६०।। वहाँ उस शृंगार रस पूरित परिखा (वलय रेखा) पर अनेकों आभूषणों से चमकती हुई शक्तियाँ हैं।।६१।। वहाँ हजारों नौकाओं से विहार करती हुईं, मदमत्त शक्तियाँ सदा नौका में स्थित मदमत्त कामदेव की उपासना करती हैं।।६२।। वे कामदेव महाराज्ञी ललितादेवी की आज्ञा से अपने मदन, उन्मादन, तापन, शोषण और सम्मोहन बाणों से समस्त लोकों तथा विश्व को सम्मोहित करते हैं।।६३।। उन कामदेव के प्रभाव से संमूढ देवगण ऋषिगण ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि महापद्मवनी में घूमने के लिए शुद्ध वेष वाले ललिता देवी की भक्ति पर निर्भर हो सावधान मन से महापद्मवनी के स्थल पर जाते हैं।।६४।।

बिना देवी की आज्ञा के देवगण, सिद्धगण, मनुष्य वहाँ नहीं जा सकते। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तो स्वभावतः शुद्धचित्त हो, उन देवी की आज्ञा से ही महापद्मावनी के स्थल पर जाते हैं।।६५।। संसारी प्राणी, धन, स्त्री आदि की आसक्ति में अन्धे हुए लोग, बहुत से संकल्पों की कल्पना करने वाले अर्थात् प्रत्येक विषय में धनात्मक विचार रखने वाले, महान् कुल वाले पुरुष, विकल्प के ज्ञान से धूसर अर्थात् प्रत्येक विषय में नहीं होगा ऐसा विचार रखने के कारण होगा। निराश, अनेकों प्रकार की आसक्तियों से युक्त व्यक्ति, बहुत अधिक प्रणयोन्माद देने वाली महाशृंगार रूप परिधि को पार करने में कुशल नहीं होते।।६६-६७।। जिस कारण से अजेय सौन्दर्य वाले तथा तीनों लोकों के लोगों के मन को मोहित करने वाले, महाशृंगार परिधि के अधिकारी कामदेव हैं।।६८।। उन सब महानों को भी मोहित कर देने वाले कामदेव का अतिक्रमण कर महापद्माटवी में जाने में कोई भी समर्थ नहीं है। अर्थात् कामदेव को कोई न जीत सका है और न जीत सकेगा।उनका अतिक्रमणकोई नहीं कर सकता।६९।। इसके बाद शृंगार शाल के सात योजन अन्तराल में चिन्तामणि गृह नामक चक्रराज महालय है।।७०।। उसके मध्य में समस्त भूमि चारों ओर रत्नों से सजी हुई है। वहीं सब प्रकार के सौभाग्य को प्रदान करने वाली महापद्माटवी नाम की वनस्थली है, जिसमें विशाल कमल है।।७१।। हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! शृंगार नामक शाल से महाकाल तक नगर द्वार है।

सर्वदिक्षु तदुक्तानि गोपुराणि शतं मुने।
शालास्तु विंशतिः प्रोक्ताः पञ्चसंख्याधिकाः शुभाः॥७३॥
सर्वेषामपि शालानां मूलं योजनसंमितम्। पद्माटवीस्थलं वक्ष्ये सावधानो मुने शृणु॥७४॥
समस्तरत्नखचिते तत्र षड्योजनांतरे। परितस्थलपद्मानि महाकाण्डानि संति वै॥७५॥
कांडास्तु योजनायामा मृदुभिः कंटकैर्वृताः। पत्राणि तालदशकमात्रायमानि संति वै॥७६॥
केसराश्च सरोजानां पञ्चतालसमायताः। दशतालसमुन्नम्रः कर्णिकाः परिकीर्तिताः॥७७॥
अत्यन्तकोमलान्यत्र सदा विकसितानि च। नवसौरभहृद्यानि विशङ्कटदलानि च।
बहुशः संति पद्मानि कोटीनामपि कोटिशः॥७८॥
महापद्माटवीकक्ष्यापूर्वभागे घटोद्भव। क्रोशोन्नतो वह्निरूपो वर्तुलाकारसंस्थितः॥७९॥
अर्द्धयोजनविस्तारः कलाभिर्दशभिर्युतः। अर्घ्यपात्रमहाधारो वर्तते कुम्भसम्भव॥८०॥
तदाधारस्य परितः शक्तयो दीप्तविग्रहाः।
धूम्रार्चिःप्रमुखा भांति कला दश विभावसोः॥८१॥
दीप्ततारुण्यलक्ष्मीका नानालंकारभूषिताः। आधाररूपं श्रीमंतं भगवंतं हविर्भुजम्।
परिष्वज्यैव परितो वर्तंते मन्मथालसाः॥८२॥

इस प्रकार चारों दिशाओं में ही नगरद्वारों की स्थिति है।।७२।। हे मुने! सब दिशाओं में तदुक्त सैकड़ों नगरद्वार हैं। शुभ शाल तो २५ कहे गये हैं; क्योंकि पाँच की संख्या अधिक शुभ होती है। ५ × ५ = २५ अतः यह संख्या अत्यन्त शुभ है।।७३।। सब शालों की मूल (नींव) एक योजन गहरी है। हयानन (भगवान हयग्रीव) कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! अब मैं पद्माटवी के स्थल (फर्श) का वर्णन करूँगा, सावधान होकर सुनिये।।७४।। वहाँ छः योजन तक समस्त रत्नों से जटित भूमि है, उसके चारों ओर स्थलकमल हैं। उस भूमि पर अनेकों महाखण्ड हैं।।७५।।

वे खण्ड अलग-अलग एक-एक योजन लम्बे-चौड़े हैं। जो कि कोमल कांटों वाली झाड़ियों से आवृत हैं, अर्थात् उन खण्डों के चारों ओर कांटों की या फिर कांटेदार वृक्षों की बाड़ लगी हुई हैं। वहाँ उस महाकमल के पत्ते दश ताड़पत्रों के समान लम्बे हैं।।७६।। उन कमलों के पराग पाँच ताड़पत्रों के बराबर लम्बे हैं। उन कमलों की कर्णिकाएँ भी दश ताड़पत्रों के बराबर लम्बी हैं।।७७।। तथा वे महाकमल अत्यन्त कोमल हैं तथा वे सदैव खिलते रहते हैं। वे कमल नवीन सुगन्ध से युक्त हैं और विशाल एवं मजबूत पत्तों वाले हैं। इस प्रकार के वहाँ उस महापद्माटवी में करोड़ों करोड़ कमल हैं।।७८।। फिर हे अगस्त्य मुने! महापद्माटवी की कक्ष्या के पूर्व भाग में एक कोश ऊँचा अग्नि रूप वर्तुलाकार रूप में स्थित, आधे योजन विस्तार वाला, दश कलाओं से युक्त पूजा करने का पात्र का महा आधार है। अर्थात् जहाँ पर पूजा का पात्र रखा जाता है, वह महाआधार भूमि है।।७९-८०।। उस आधार भूमि के चारों ओर जलते हुए शरीरों वाली धूम्रार्चि प्रमुख अग्नि की दशकलाएँ सुशोभित हो रही हैं।।८१।। वे अग्नि की दश कला शक्तियाँ प्रकाशित तरुणता की शोभा से युक्त, जलती हुई जवानी की वह तरीनी खूबसूरती से भरी हुई तथा अनेकों प्रकार के आभूषणों से सजी हुई हैं, वे सब आधारभूत भगवान् अग्निदेव का आलिङ्गन करके ही काम के मद में मत्त होकर चारों ओर विद्यमान हैं।।८२।।

धूम्रार्चिरुष्णा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहेति च। एता दशकलाः प्रोक्ता वह्नेराधाररूपिणः॥८३॥
तत्राधारे स्थितो देवः पात्ररूपं समाश्रितः सूर्यस्त्रिलोकीतिमिरप्रध्वंसप्रथितोदयः॥८४॥
सूर्यात्मकं तु तत्पात्रं सार्द्धयोजनमुन्नतम्। योजनायामविस्तारं महाज्योतिःप्रकाशितम्॥८५॥
तत्पात्रात्परितः सक्तवपुषः पुत्रिका इव। वर्तते द्वादश कला अतिभास्वररोचिषः॥८६॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वलिनी रुचिः।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा॥८७॥
तस्मिन्पात्रे परानन्दकारणं परमामृतम्। सर्वौषधि रसाढ्यं च हृद्यसौरभसंयुतम्॥८८॥
नीलोत्पलैश्च कह्लारैरम्लानैरतिसौरभैः। वास्यमानं सदा हृद्यं शीतलं लघु निर्मलम्॥८९॥
चलद्वीचिशतोदारं ललिताभ्यर्चनोचितम्। सदा शब्दायमानं च भासतेऽर्चनकारणम्॥९०॥
तदर्घ्यममृतं प्रोक्तं निशाकरकलामयम्। तस्मिंस्तनीयसीर्नौका मणिक्लृप्ताः समास्थिताः।

अग्नि की दश कलाओं के नाम हैं, १. धूम्रार्चि, २. उष्णा, ३. ज्वलिनी, ४. ज्वालिनी, ५. विस्फुल्लिङ्गी, ६. सुश्रीः, ७. सुरूपा, ८. कपिला, ९. हव्यवाहा और १०. कव्यवाहा, ये आधार रूप अग्नि की दश कलाएँ कही गयी हैं[१]।।८३।। वहाँ उस अग्नि के आधार में पात्र रूप में सम्यक् रूप से आश्रित सूर्यदेव तीनों लोकों के अन्धकार को नष्ट करने वाले उदित हुए स्थित हैं।।८४।। जिस पात्र में सूर्यदेव स्थित हैं, वह पात्र आधे योजन ऊँचा है तथा एक योजन लम्बाई तक महाज्योति प्रकाशित है।।८५।। उस पात्र से चारों ओर शरीर सक्त पुत्री के समान अत्यन्त चमकती हुई किरणों वाले सूर्य की बारह कलायें हैं।।८६।। वे हैं—१. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७. सुषुम्णा, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११. धारिणी, १२. क्षमा इस प्रकार ये बारह सूर्य की कलाएँ हैं।।८७।। उस पात्र में अलौकिक आनन्द का कारण परमामृत है, जो समस्त औषधियों के रसों से युक्त है। मनोहर सुगन्ध संयुत है।।८८।।

वह परमामृत बिना मुरझाये हुए नील कमलों और श्वेत कमलों से सुवासित, सदा हृदय को हितकर शीतल, हल्का और निर्मल है।।८९।। उस पात्र में अमृत सैकड़ों लहरों से बहता हुआ ललिता देवी की अर्चना के लिए उचित है तथा सदा वह बहता हुआ शब्द करता रहता है। अर्चन का कारण रूप में प्रतीत होता रहता है।।९०।। वह पूजा

१. यहाँ अग्नि की दश कलाओं का अर्थ है—अग्नि के दश रूप जैसे कि पहला रूप धूमार्चिः है, जिसका अर्थ है कि जब आग जलती है, तो पहले धुंआ और चिनगारी देती है। दूसरी कला उष्मा—अतः आग गर्मी देती है। तीसरी ज्वलिनी जलने वाली, चौथी ज्वालिनी = जलाने वाली, पांचवी विस्फुल्लिंगी—चिनगारी देने वाली, अतः आग चिनगारी देती है, जैसे बिजली आदि में। छठीं कला है—सुश्री, अतः आग सुन्दर शोभा है। सातवीं कला है—सुरूपा अतः आग का रूप सुन्दर होता है। वह सर्वत्र प्रकाश फैलातीा है। आठवीं कला है—कपिला अर्थात् आग का वर्ण कपिल (भूरा पीला) होता है। नवीं कला हव्यवाहा अर्थात् हवि (आहूत) वस्तु के गन्ध को इधर-धर ले जाने वाली, सो आग ही है। वह हवन में चारों तरह सुगन्ध फैलाती है। दशमी कला है—कव्यवाहा। अतः वह अग्नि पितरों को दी गयी तर्पण सामग्री को पितरों तक पहुँचाती है। यहाँ पितरों से मेरा अर्थ सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवता है। अतः यहाँ आग के वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है।

निशाकरकला हृद्याः क्रीडंति नवयौवनाः॥९१॥
अमृता मानदा पूष्णा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः।
शशिनी चन्द्रिका कांतिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरंगदा॥९२॥
पूर्णा पूर्णामृता चेति कलाः पीयूषरोचिषः। नवयौवनसंपूर्णाः सदा प्रहसिताननाः॥९३॥
पुष्टिर्ऋद्धिः स्थितिर्मेधा कांतिर्लक्ष्मीर्द्युतिर्धृतिः।
परा सिद्धिरिति प्रोक्ताः क्रीडंति ब्रह्मणः कलाः॥९४॥
स्थितिश्च पालिनी शांतिश्चेश्वरी ततिकामिके। वरदाह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा चेति हरेः कलाः॥९५॥
तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुत्क्रोधिनी त्रपा।
उत्कारी मृत्युरप्येता रोद्धयस्तत्र स्थिताः कलाः॥९६॥
ईश्वरस्य कलाः पीताः श्वेताश्चैवारुणाः सिताः।
चतस्र एव प्रोक्तास्तु शंकरस्य कला अथ॥९७॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शांतिस्तथैव च। इंदिरा दीपिका चैव रेचिका चैव मोचिका॥९८॥
परा सूक्ष्मा च विंध्यारे तथा सूक्ष्मामृता कला।
ज्ञानामृता व्याधिनी च व्यापिनी व्योमरूपिका।
एताः षोडश संप्रोक्तास्तत्र क्रीडंति शक्तयः॥९९॥
रुद्रनौकासमारूढास्ततश्चेतश्च चञ्चलाः। शक्तिरूपेण खेलंति तत्र विद्याः सहस्रशः॥१००॥

के योग्य अमृत चन्द्रकलामय कहा गया है। उसमें एक मणिजटित छोटी-सी नौका है, जिसमें हृदय के लिए अत्यन्त अच्छी लगने वाली नवयौवना चन्द्रकलाएँ नित्य क्रीड़ा करती हैं।।९१।। वे हैं—१. अमृत, २. मानदा, ३. पूष्णा, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. रति, ७. धृति, ८. शशिनी, ९. चन्द्रिका, १०. कान्ति, ११. ज्योत्स्ना, १२. श्री, १३. प्रीति, १४. अंगदा, १५. पूर्णा और १६. पूर्णामृता, ये १६ चन्द्रकलाएँ हैं। ये सब कलाएँ अमृत की किरणों वाली हैं तथा ये नवयौवन सम्पन्न और सदैव हँसते हुए मुख वाली हैं।।९२-९३।। वही पर १. पुष्टि, २. सृष्टि (पूजापद्धति में) ऋद्धि, ३. स्थिति, ४. मेधा, ५. कान्ति, ६. लक्ष्मी, ७. द्युति, ८. धृति, ९. जरा, १०. सिद्धि, ये ब्रह्मकलाएँ कही गयी हैं, जो वहाँ क्रीड़ा करती हैं।।९४।।

तथा १. स्थिति, २. पालिनी, ३. शान्ति, ४. ईश्वरी, ५. रति, ६. कामिका, ७. वरदा, ८. आह्लादिनी, ९. प्रीति, १०. दीर्घा ये दश हरि की कलाएँ हैं।।९५।। १. तीक्ष्णा, २. रौद्री, ३. भया, ४. निद्रा, ५. तन्द्रा, ६. क्षुधा, ७. क्रोधिनी, ८. त्रया, ९. उत्कारी और १० मृत्यु, ये दश रुद्र की कलाएँ हैं।।९६।। ईश्वर की कलाएँ हैं—१. पीता, २. श्वेता, ३. अरुणा और ४. सिता ये चार ही ईश्वर की कलाएँ कहलाती हैं। अब शंकर की कलाएँ हैं।।९७।। १. निवृत्ति, २. प्रतिष्ठा, ३. विद्या, ४. शान्ति, ५. इन्दिरा, ६. दीपिका, ७. रेचिका, ८. मोचिका, ९. परा, १०. सूक्ष्मा, ११. सूक्ष्मामृतकला, १२. ज्ञाना, १३. ज्ञानामृता, १४. व्याधिनी, १५. व्यापिनी, १६. व्योमरूपिका ये सोलह कहीं हुई शक्तियाँ वहाँ पर क्रीड़ा करती हैं।।९८-९९।। ये सब शक्तियाँ रुद्र नौका पर अच्छी प्रकार आरूढ़ चञ्चल चित्त वाली हजारों विद्यायें वहाँ शक्ति के रूप से क्रीड़ा कर रही हैं।।१००।।

अर्घ्यसंशोधनार्थाय कल्पिताः परमेष्ठिना।
तदर्घ्यममृतं पीत्वा सदा माद्यन्ति शक्तयः॥१०१॥
महापद्माटवीवासा महाचक्रस्थिता अपि। मुहुर्मुहुर्नवनवं मुहुश्चाबद्धसौरभम्॥१०२॥
रत्नकुम्भसहस्रैश्च सुवर्णघटकोटिभिः। आपूर्यापूर्य सततं तदर्घ्यममृतं महत्॥१०३॥
चिंतामणिगृहस्थानां परिचारकशक्तयः। अणिमादिक शक्तीनामर्घ्ययंति मदोद्धताः॥१०४॥
महापद्माटवीकक्ष्यापूर्वभागेऽर्घ्यकल्पनम्। इत्थं समीरितं पश्चात्तत्रान्यदपि कथ्यते॥१०५॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरबागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने महापद्माटव्यार्घ्यस्थापनकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

उन परमेश्वरी ललिता देवी के द्वारा पूजा करने योग्य सामग्रियों के संशोधन के लिए कल्पित शक्तियाँ उस अर्घ्यामृत को पीकर सदा मदमत्त रहती हैं।।१०१।। महापद्माटवी में रहने वाली, महाचक्र में स्थित रहने वाली भी वे शक्तियां बार-बार नये और बार-बार सुगन्ध से बँधे हुए हजारों रत्ननिर्मित सोने के घड़ों से भर-भर कर लगातार उस महान् अर्घ्यामृत को पीती रहती हैं।।१०२-१०३।। चिन्तामणि रत्न निर्मित गृहों में स्थित देवियों की मदोन्नत परिचारक शक्तियाँ अणिमादिक शक्तियों की पूजा करती हैं।।१०४।। इस प्रकार महापद्माटवी कक्ष्या के पूर्वभाग में अर्घ्य कल्पन को यहाँ पर कहा गया। अब वहाँ और भी कहा जाता है, यह आगे बताया जायेगा।।१०५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३५वाँ अध्याय महापद्माटवी अर्घ्यस्थापन कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

चिन्तामणिगृहान्तर्कथनं नाम

षड्त्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

चिन्तामणिगृहस्याग्निदिग्भागे कुन्दमानकम्। योजनायामविस्तारं योजनोच्छासचातकम्॥१॥
तत्र ज्वलति चिद्वह्निः सुधाधाराशतार्चितः। परमैश्वर्यजनकः पावनो ललिताज्ञया॥२॥
अनिन्धनो महाज्वालः सुधया तर्पिताकृतिः।
कंकेलीपल्लवच्छायस्तत्र ज्वलांते चिच्छिखी॥३॥
तत्र होत्री महादेवी होता कामेश्वरः परः। उभौ तौ नित्यहोतारौ रक्षतः सकलं जगत्॥४॥
अनुत्तरपराधीना ललिता संप्रवर्तिता। ललिताचोदितः कामः शंकरेण प्रवर्तितः॥५॥
चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य रक्षोभागेम्बुजाटवौ॥६॥
चक्रराजरथश्रेष्ठस्तिष्ठत्युन्नतविग्रहः। नवभिः पर्वभिर्युक्तः सर्वरत्नमयाकृतिः॥७॥
चतुर्योजनविस्तारो दशयोजनमुन्नतः। यथोत्तरं ह्रासयुक्तः स्थूलतः कूबरोज्ज्वलः॥८॥
चतुर्वेदमहाचक्रः पुरुषार्थमहाहयः। तत्त्वैरुपचरद्भिश्च चामरैरभिमंडितः॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३६

चिन्तामणि गृह के अन्दर की कथा का वर्णन

हयग्रीव बोले—चिन्तामणि गृह की अग्नि दिशा के आगे अर्थात् पूर्व दिशा में एक योजन विस्तार वाला और योजन भर ऊँचा बहुत सुन्दर चातक पक्षियों से युक्त कुन्दमानक (सुगन्धित पुष्पों वाला उद्यान) है।।१।। वहाँ चिद् रूप अग्नि अमृत की सैकड़ों धाराओं से अर्चित होकर जलती रहती है अर्थात् वहाँ यज्ञ होता रहता है। वह अग्नि परमेश्वरी ललिता देवी की आज्ञा से परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाली एवं पवित्र है।।२।। वहाँ बिना ईंधन के जलने वाली महाज्वाला अमृत से तर्पित है, अर्थात् उसको अमृत से तृप्त किया जा रहा है। अतः वहाँ वह कङ्केली अशोक वृक्ष के पत्ते की कान्ति के समान चित् रूप शिखा वाली अग्नि जल रही है।।३।।

वहाँ उस यज्ञाग्नि में होत्री महादेवी तथा होता कामेश्वर हैं। वे दोनों ही नित्य होता (यज्ञ करने वाले हैं) वे दोनों नित्य यज्ञ करते हुए संसार की रक्षा करते हैं।।४।। वहाँ पर कोई उत्तर न देती हुई पराधीन ललिता देवी सम्यक् रूप से प्रवृत्त हैं तथा ललितेश्वरी द्वारा प्रेरित तथा शंकर द्वारा प्रवर्तित कामदेव हैं।।५।। चिन्तामणि गृहराज रक्षोभाग में कमल वन है। जहाँ उन्नत विग्रह, नौ पर्वों से युक्त, सब रत्नों से युक्त आकार वाला श्रेष्ठ चक्रराज रथ स्थित है।।६-७।। वह चार योजन विस्तार वाला और दश योजन ऊँचा है तथा बहुत ऊँचा, शब्द करने वाला तथा उसका कूबर (जुआ बाँधने की बल्ली बहुत उज्ज्वल है।।८।। चार वेद रूप उसके चार चक्र (पहिए) हैं, पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) ये चारों उसके महान् अश्व हैं। पंचतत्त्व (क्षिति, जल, पावक, समीर और गगन) इन पंचतत्त्वरूपी

पूर्वोक्तलक्ष्मैर्युक्ता मुक्ताच्छत्रेण शोभितः। भंडासुरमहायुद्धे कृतसाहसिकक्रियः॥१०॥
वर्तते रथमूर्धन्यः श्रीदेव्यासनपाटितः। चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य वायुभगेम्बुजाटवौ॥११॥
गेयचक्ररथेन्द्रस्तु मन्त्रिण्याः प्रान्त तिष्ठति। चिंतामणिगृहेन्द्रस्य रुद्रभागेम्बुजाटवौ॥१२॥
वल्लभो दण्डनाथायाः किरिचक्रे महारथः। एतद्रथत्रयं सर्वक्षेत्रश्रीपुरपंक्तिषु।
समानमेव विज्ञेयमङ्गस्था देवता यथा॥१३॥
आनलं कुंडमाग्नेये यत्तिष्ठति सदा ज्वलत्। तप्तमेतत्तु गायत्री तप्तं स्यादभयङ्करम्॥१४॥
घृणिसूर्यस्तु तत्पश्चादोंकारस्य च मन्दिरम्। देवी तुरीयगायत्री चक्षुष्मत्यपि तापस॥१५॥
अथ गन्धर्वराजश्च परिषद्रुद्र एव च। तारांबिका भगवती तत्पश्चाद्भागतः स्थिताः॥१६॥
चिंतामणिगृहेन्द्रस्य रक्षोभागं समाश्रितः। नामत्रय महामन्त्रवाच्योऽस्ति भगवान्हरिः॥१७॥
महागणपतिस्तस्योत्तरसंश्रितकेतनः। पञ्चाक्षरीमन्त्रवाच्यस्तस्य चाप्युत्तरे शिवः॥१८॥
अथ मृत्युञ्जयेशश्च वाच्यस्त्र्यक्षरमात्रतः। सरस्वती धारणाख्या ह्यस्य चोत्तरवासिनी॥१९॥
अकारादिक्षकारान्तवर्णमूर्तेस्तु मंदिरम्। मातृकाया उत्तरतस्तस्यां विन्ध्यनिषूदन॥२०॥
उत्तरे सम्पदेशी वै कालसंकर्षणी तथा। श्रीमहाशम्भुनाथा च देव्याविर्भावकारणम्॥२१॥
श्रीः परांबा च विशदज्योत्स्ना निर्मलविग्रहा। उत्तरोत्तरमेतास्तु देवताः कृतमंदिराः॥२२॥
बालाचैवान्नपूर्णा च हयारूढा तथैव च। श्रीपादुकाचतस्त्रस्तदुत्तरोत्तरमंदिराः॥२३॥

चँवरों से अभिमण्डित है।।९।। इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त मोतियों से निर्मित छत्र से सुशोभित हैं। भण्डासुर महायुद्ध में साहसिक क्रियाएँ करने वाले, श्रीललितेश्वरी के आसन से पाटित श्रेष्ठ रथ है।।१०-१०½।। चिन्तामणि गृह राज के रुद्रभाग वाली कमलवनी में गेय चक्र रथराज तो मन्त्रिणी के प्रान्त (पास) में स्थित है।।१०½-११½।। चिन्तामणि गृहराज के रुद्रभाग में कमलवनी में किरिचक्र में दण्डनाथा देवी का प्रिय महारथ है। ये तीन रथ श्रीपुर के सब क्षेत्र पंक्तियों में समान हैं। इन तीनों रथों के अंगों में समान रूप से देवता स्थित हैं, जैसे कि आग्नेय दिशा में आनल (अग्नि) कुण्ड है, जहाँ अग्निदेव सदा जलते हुए स्थित हैं। ये तप्त गायत्री, जो तप्त हैं; परन्तु भयंकर नहीं हैं, वे स्थित हैं।।१४।। उसके बाद उष्णता प्रदान करने वाले सूर्य हैं, फिर उसके बाद ॐकार का मन्दिर है। फिर आत्मा-परमात्मा को मिलाने वाली देवी चक्षुष्मती चौथी गायत्री हैं।।१५।।

इसके बाद गन्धर्वराज हैं, उसके बाद रुद्र की सभा है। उसके बाद अम्बिका भगवती तारा अपनी शोभायुक्त स्थित हैं।।१६।। चिन्तामणि गृहराज के रक्षो भाग पर समाश्रित नाम त्रय महामन्त्र द्वारा वाच्य भगवान् हरि विद्यमान हैं।।१७।। उनके उत्तर महागणपति ध्वजा के साथ स्थित हैं और उसके भी उत्तर में पाँच अक्षरों से वाच्य भगवान् शिव स्थित हैं।।१८।। इसके बाद तीन अक्षर मात्र से वाच्य धारणा नाम की सरस्वती देवी इसके उत्तर में वास करने वाली है।।१९।। उसके उत्तर अकारादि से क्षकार के अन्त तक के वर्णों की मूर्ति का मन्दिर है। हे अगस्त्य मुने! उसके उत्तर में मात्राओं 'अ' से लेकर 'अः' तक का स्थान समझिये।।२०।। उत्तर में सम्पदेशी (सम्पत्तियों की स्वामिनी) देवी तथा कालसंकर्षणी देवी हैं और श्री महाशम्भुनाथा देवी हैं, जो देवियों के आविर्भाव की कारण हैं।।२१।। फिर विशद ज्योत्स्ना वाली एवं निर्मल शरीर वाली श्री पराम्बा हैं। इस प्रकार इनके उत्तरोत्तर देवियों के बने हुए मन्दिर (घर) हैं।।२२।। और बाला अन्नपूर्णा उसी प्रकार घोड़े पर सवार होकर स्थित हैं। फिर उनकी चार

चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य वायव्यवसुधादितः। महापद्माटवौ त्वन्या देवताः कृतमंदिराः॥२४॥
उन्मत्तभैरवी चैव स्वप्नवाराहिका परा। तिरस्करणिकांबा च तथान्या पञ्चमी परा॥२५॥
यथापूर्वं कृतकृता एता देव्यो महोदयाः। श्रीपूर्तिश्च महादेवी श्रीमहापादुकापि च॥२६॥
यथापूर्वं कृतगृहे द्वे एते देवतोत्तमे। शंकरेण षडाम्नायसागरे प्रतिपादिताः।
या विद्यास्ताः समस्ताश्च महापद्माटवीस्थले॥२७॥
इत्थं श्रीरश्मिमालाया मणिक्लृप्ता महागृहाः।
उच्चध्वजा उच्चशालास्ससोपानास्तपोधन॥२८॥
चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य पूर्वद्वारे समुद्रप। दक्षिणे पार्श्वभागे तु मंत्रिनाथागृहं महत्॥२९॥
वामभागे दण्डनाथाभवनं रत्ननिर्मितम्। ब्रह्मविष्णुमहेशानामर्घ्यस्थानस्य पूर्वतः॥३०॥
भवनं दीपिताशेषदिक्चक्रं रत्नरश्मिभिः। समस्ता देवता एता ललिताभक्तिनिर्भराः।
ललितामन्त्रजाप्याश्च श्रीदेवीं समुपासते॥३१॥
पूर्वोक्तमर्घ्यस्थानं च पूर्वोक्तं चार्घ्यकल्पनम्। याम्यद्वारप्रभृतिषु सर्वेष्वपि समं स्मृतम्॥३२॥
अथ चिन्तामणिगृहं वक्ष्ये श्रृणु महामुने। तच्छ्रीपट्टनमध्यस्थं योजनद्वयविस्मृतम्॥३३॥
तस्य चिन्तामणिमयी भित्तिः कोशसुविस्तृता।
चिन्तामणिशिलाभिश्च च्छादिनीभिस्तथोपरि॥३४॥

श्रीपादुकाएँ हैं, उसके उत्तरोत्तर मन्दिर हैं।।२३।। चिन्तामणि गृहराज के वायव्य भूमि के आदि से (शुरू से) महापद्माटवी में तो अन्य देवियों के बने हुए मन्दिर हैं।।२४।। वहाँ पर उन्मत्त भैरवी है तथा दूसरा मन्दिर स्वप्न वाराही देवी का है। फिर तिरस्करणिका अम्बा तथा अन्य पाँचवीं परा देवी है, जैसे कि पूर्व में गृह बने हुए हैं, वैसे ही इन देवी महोदयाओं के हैं। श्री पूर्ति महादेवी और श्रीमहापादुका देवी भी उसी प्रकार के उत्तम घर वाली हैं, जैसे कि पहले कहे गये हैं।।२४½-२५½।। भगवान् शंकर ने महापद्माटवी के स्थल पर जो समस्त विद्याएँ हैं, वे तन्त्रसागर में (चारों वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणारण्यकों) में प्रतिपादित की हैं।।२५½-२७।। इस प्रकार श्रीललितेश्वरी की रश्मिमाला के मणिजटित महागृह ऊँची ध्वजाओं वाले, ऊँचे शाल वाले और सीढ़ियों से युक्त हैं।।२८।। हयानन कहते हैं कि हे समुद्र को पीने वाले अगस्त्य जी! चिन्तामणि गृहराज के पूर्व द्वार पर दक्षिण में पीछे के हिस्से पर तो मन्त्रिनाथा का महान् गृह है।।२९।।

वाम भाग में रत्नों से बना हुआ देवी दण्डनाथा का गृह है। ब्रह्मा विष्णु महेश के अर्घ्य (पूजा के योग्य) स्थान के पूर्व से रत्नों की किरणों से समस्त दिशाओं को प्रज्वलित करता हुआ भवन है।।३०-३०½।। ये समस्त देवता श्रीललिता देवी की भक्ति पर निर्भर हैं और सब ललिता देवी के मन्त्र का जाप करने वाले श्रीदेवी की सम्यक् उपासना करते हैं।।३१।। पूर्व में कहे गये अर्घ्यस्थान (पूजा के स्थान) तथा पूर्व में कहे गये अर्घ्यकल्पन (पूजा की कल्पना), दक्षिण द्वार आदि सभी में समान स्मरण किये गये हैं।।३२।। हयग्रीव ने कहा कि इसके बाद चिन्तामणि गृह को बताऊँगा। हे महामुने! अगस्त्य जी सुनिये। उस श्रीनगर के मध्य में स्थित दो योजन विस्तृत चिन्तामणि गृह है।।३३।। उस गृह की चिन्तामणिमयी भित्ति (चिन्तामणि नामक मणि से बनी हुई दीवार) एक कोश विस्तृत है तथा वे चिन्तामणि

संवृता कूटरूपेण तत्रतत्र समुन्नता। गृहाभित्तिस्तथोन्नम्रा चतुर्योजनमानतः॥३५॥
विंशतिर्योजनं तस्याश्चोन्नम्रा भूमिरुच्यते। ततोर्ध्वं ह्रासससयुक्तं स्थौल्यत्रिमुकुटोज्ज्वला॥३६॥
तानि चेच्छाक्रियाज्ञानरूपाणि मुकुटान्यृषे। सदा देदीप्यमानानि चिन्तामणिमयान्यपि॥३७॥
चिन्तामणिगृहे सर्वं चिन्तामणिमयं स्मृतम्।
यस्य द्वाराणि चत्वारि क्रोशार्धायामभाञ्जि च॥३८॥
क्रोशार्द्धार्द्धं च विस्तारो द्वाराणां कथितो मुने। द्वारेषु सर्वेषु पुनश्चिन्तामणिगृहान्तरे॥३९॥
पिहिता ललितादेव्या मूर्तिर्लोहितसिन्धुवत्। तरुणार्कसहस्राभा चन्द्रवच्छीतला ह्यपि।
मुहुः प्रवाहरूपेण प्रसरन्ती महामुने॥४०॥
पूर्वाम्नायमयं चैव पूर्वद्वारं प्रकीर्तितम्। दक्षिणद्वारदेशस्तु दक्षिणाम्नायलक्षणः॥४१॥
पश्चिमद्वारदेशस्तु पश्चिमाम्नायलक्षणः। उत्तरद्वारदेशः स्यादुत्तराम्नायलक्षणः॥४२॥
गृहराजस्यान्तराले भित्तौ खचितदण्डकाः। रत्नप्रदीपा भास्वंतः कोट्यर्कसदृशत्विषः।
परितस्तत्र वर्तंते भासयंतो गृहांतरम्॥४३॥
चिंतामणिगृहस्यास्य मध्यस्थाने महीयसि। अत्युच्चैर्वेदिकाभागे बिन्दुचक्रं महत्तरम्॥४४॥
चिन्तारत्नगृहोत्तुंगभित्तेर्विदोश्च मध्यभूः। भित्तिः क्रोशं परित्यज्य क्रोशत्रयमुदाहृतम्॥४५॥

नामक अमूल्य पत्थरों की शिलाओं वाली ऊपर छतों से संवृत (पूरी तरह ढँकी हुई) प्रधान रूप से वहाँ वहाँ बहुत ऊँची है। गृह की दीवार उसी प्रकार चार योजनमान से उसी प्रकार ऊँची है।।३४-३५।। और उसकी भूमि बीस योजन ऊँची कही जाती है। उससे ऊपर शब्दों से संयुक्त तीन मुकुटों से उज्ज्वल स्थौली है।।३६।। और हे ऋषिवर! वे इच्छा, क्रिया और ज्ञानरूप वाले मुकुट हैं तथा वे मुकुट देदीप्यमान हैं और चिन्तामणिमय भी हैं।।३७।। चिन्तामणि गृह में सब कक्ष, दीवार, द्वार आदि चिन्तामणि नामक अमूल्य पत्थर से बने हुए स्मरण किये गये हैं। जिसके चार द्वार आधे कोश की लम्बाई वाले हैं।।३८।। आधे आधे कोश का विस्तार द्वारों का कहा गया है। सब द्वारों पर फिर चिन्तामणि गृह के अन्दर ललिता देवी की लोहित (रक्त) की नदी के समान मूर्ति रखी हुई है, जो हजारों तरुण सूर्यों की आभा वाली है तथा चन्द्रमा के समान शीतल भी है। जो बार-बार प्रवाह रूप से प्रसरण करती हुई हैं।।४०।।

पूर्वाम्नायमय द्वार ही पूर्व द्वार कहा गया है। दक्षिण द्वार का जो स्थान है, उसको दक्षिणाम्नाय कहा गया है।।४१।। पश्चिम द्वार का देश पश्चिमाम्नाय कहा गया है तथा उत्तरद्वार देश उत्तराम्नाय लक्षण वाला है। कथन का आशय है कि पूर्व की तरफ वाले द्वार को पूर्वाम्नाय, दक्षिण की तरफ वाले द्वार को दक्षिणाम्नाय, पश्चिम की तरफ के द्वार को पश्चिमाम्नाय तथा उत्तर की ओर वाले द्वार को उत्तराम्नाय कहा गया है।।४२।। गृहराज (राजगृह) के अन्तर्गत दीवार में जगह-जगह दण्डक (पिलर) लगे हुए हैं, जिनमें रत्न जड़े हुए हैं, जिन रत्नों की चमक (कान्ति) करोड़ों सूर्य की कान्ति के समान है। उसके चारों ओर चमकता हुआ गृह का अन्दर का भाग है।।४३।। इस चिन्तामणि के अन्तर्गत बहुत बड़ा मध्यस्थान क्षेत्रफल) है। उस मध्यस्थान में अत्यन्त ऊँचाई पर वेदी है, उस वेदी के भाग में उससे भी महान् बिन्दु चक्र है।।४४।। चिन्तारत्न गृह की ऊँची दीवार और बिन्दु के बीच में जो भूमि है, वह दीवार एक कोश छोड़कर तीन कोश बतायी गयी है। अर्थात् एक कोश में तो बिन्दु ही है, इसीलिये कहा

तत्र क्रोशत्रयस्थाने ह्यणिमाद्यात्मरोचिषा। क्रोशत्रयं समस्तं तद्धस्तसंख्याप्रकारतः।
चतुर्विंशतिसाहस्त्रहस्तैः संमितमुच्यते॥४६॥
बिन्दुपीठेशपर्यन्तं चतुर्दशविभेदतः। अन्तरे भेदिते जाते हस्तसंख्या मयोच्यते॥४७॥
पद्माटवीस्थलाच्चिन्तामणिवेश्मानन्तरं मुने। हस्तविंशतिरुन्नम्रं तस्य स्युरणिमादयः॥४८॥
अणिमान्तरविस्तारश्चतुर्नल्वसमन्वितः। किष्कुश्चतुःशती नल्वकिष्कुर्हस्त उदीर्यते॥४९॥
तत्रांतरेऽणिमाद्यास्तु पूर्वादिकृतमंदिराः। अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा॥५०॥
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं मुक्तिरेव च।
इच्छा प्राप्तिः सर्वकामेत्येताः सिद्धय उत्तमाः॥५१॥
रसदिद्धिर्मोक्षसिद्धिर्बलसिद्धिस्तथैव च। खड्गसिद्धिः पादुकाया सिद्धिरञ्जनसिद्धिकः॥५२॥
वाक्सिद्धिर्लोकसिद्धिश्च देहसिद्धिरनन्तरम्।
एता अष्टौ सिद्धयस्तु बह्व्योऽन्या योगिसंमताः॥५३॥
तत्रांतरे तु परितः सेवते परमेश्वरीम्। कोटिशः सिद्धयस्तस्मिन्नणिमाद्यन्तरे मुने॥५४॥
नवलावण्यसंपूर्णाः स्मयमानमुखांबुजाः। ज्वलच्चिन्तामणि कराः सदा षोडशवार्षिकाः।
अत्युदारप्रकृतयः खेलंति मदविह्वलाः॥५५॥
तस्याणिमाद्यन्तरस्योपरिष्टात्सुमनोहरम्। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥५६॥

गया है कि कोश छोड़कर। इस प्रकार बिन्दु से तीन कोश स्थान में वहाँ पर अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ अपनी कान्ति से पूरे तीनों कोश हाथ की संख्या के प्रकार से चौबीस हजार हाथों से उसकी माप कही जाती है। अर्थात् तीन कोश कहिये अथवा चौबीस हजार हाथ कहिए, यही दूरी बिन्दु से दीवार की है, जिसमें अणिमा आदि सिद्धियाँ निवास करती हैं।।४५-४६।। बिन्दुपीठेश पर्यन्त चौदह हाथ के भेद से संख्या मेरे द्वारा कही जाती है। पद्माटवी स्थल से चिन्तामणि गृह का अन्तर (बीच का स्थान) बीस हाथ ऊँचा है, वहाँ पर अणिमा आदि सिद्धियाँ हैं।।४८।। उन अणिमा आदि सिद्धियों के बीच की दूरी चार नल्व समन्वित है। चार सौ किष्कु का एक नल्व होता है तथा एक किष्कु एक हाथ का होता है। इस प्रकार अणिमा आदि सिद्धियों के बीच की दूरी सोलह सौ हाथ है।।४९।।

वहाँ उस अन्तर में अणिमा आदि सिद्धियों के पूर्वादि गृहों के समान गृह बने हुए हैं। वे सिद्धियाँ हैं—१. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिना, ४. गरिमा, ५. ईशित्व, ६. वशित्व, ७. प्राकाम्य और ८. मुक्ति। इच्छा प्राप्ति और सर्वकामा इस प्रकार ये उत्तम सिद्धियाँ हैं।।५०-५१।। रससिद्धि, मोक्षसिद्धि, बलसिद्धि, खड्गसिद्धि, पादुकासिद्धि, अञ्जनसिद्धि, वाक्सिद्धि, लोकसिद्धि और देहसिद्धि, ये आठ सिद्धियाँ योगिसम्मत हैं।।५२-५३।। जो वहाँ उस बीच में चारों ओर परमेश्वरी ललिता देवी की सेवा करती हैं। यहीं नहीं हे मुने! करोड़ों सिद्धियाँ उन अणिमा आदि सिद्धियों के बीच में मौजूद हैं, जो देवी की सेवा करती हैं।।५४।। तथा वे नवीन सौन्दर्य से भरी हुई, मुस्कराते हुए मुखकमल वाली, हाथ में चमकते हुए चिन्तामणि पहनने वाली, सदा सोलह वर्षीया अत्यन्त उदार स्वभाव वाली मद से विह्वल सिद्धियाँ वहाँ खेलती रहती हैं।।५५।। उस अणिमा आदि सिद्धियों के बीच के ऊपर से अत्यन्त मनोहर बीस हाथ ऊँचा चार नल्व (१६०० हाथ) विस्तार वाला चारों दिशाओं में सीढ़ियों की पंक्तियों से अत्यन्त मनोहर

चतुर्दिक्षु च सोपानपंक्तिभिः सुमनोहरम्।
ब्रह्माद्यंबरधिष्ण्यं स्यात्तत्र देवीः स्थिताः शृणु॥५७॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डाप्यथ सप्तमी।
महालक्ष्मीरष्टमी तु तत्रैताः कृतमंदिराः॥५८॥
नानाविधायुधाढ्याश्च नानाशक्तिपरिच्छदाः। पूर्वादिदिशमारभ्य प्रादक्षिण्यकृतालयाः॥५९॥
अथ ब्राह्म्यंतरा तस्योपरिष्टात्कुम्भसंभव। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
मुद्रान्तरमिति त्रैधं तत्र मुद्राः कृतालयाः॥६०॥
संक्षोभद्रावणाकर्ष वश्योन्मादमहाङ्कुशाः।
खेचरी बीजयोन्याख्या त्रिखण्डा दशमी पुनः॥६१॥
पूर्वादिदिशमारभ्य मुद्रा एताः प्रतिष्ठिताः। अत्यन्तसुन्दराकारा नवयौवनविह्वलाः॥६२॥
कांतिभिः कमनीयाभिः पूरयंत्यो गृहांतरम्। सेवंते मुनिशार्दूल ललितापरमेश्वरीम्॥६३॥
अन्तरं त्रयमेतत्तु चक्रं त्रैलोक्यमोहनम्। एतस्मिञ्छक्तयो यासु ता उक्ताः प्रकटाभिधाः॥६४॥
एतासां समधिष्ठात्री त्रिपुरा चक्रनायिका। तच्चक्रपालनकरी मुद्रासंक्षोभणात्मिका॥६५॥
अथ मुद्रांतरस्योर्ध्वं प्रोक्ता नित्याकलांतरम्। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
पर्वतश्चैव सोपानमुत्तरोत्तरमिष्यते॥६६॥
नित्याकलांतरे तस्मिन्कामाकर्षणिकामुखाः।
परितः कृतसंस्थानाः षोडशेंदुकलात्मिकाः॥६७॥

ब्रह्माद्यंबर हवन कुण्ड है। वहाँ देवियाँ स्थित हैं, सुनिये।।५६-५७।। वे हैं—१. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. माहेन्द्री, ७. चामुण्डा और ८. महालक्ष्मी। इन आठ देवियों के वहाँ मन्दिर बने हुए हैं।।५८।। ये देवियाँ अनेकों प्रकार के आयुधों से युक्त हैं तथा अनेकों प्रकार की शक्तियाँ परिच्छद (ढकी हुई) पूर्वादि दिशाओं से दक्षिण तक अपने घर बनाये हुए हैं।।५९।। इसके बाद ब्राह्मी देवी के मन्दिर के अन्दर उसके ऊपर से बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह हाथ) विस्तृत, तीन प्रकार का मुद्रान्तर है, वहाँ पर मुद्राओं के घर बने हुए हैं।।६०।। वे मुद्राएँ हैं—१. संक्षोभण, २. द्रावण, ३. आकर्षण, ४. वश्य (वशीकरण), ५. उन्माद, ६. महाङ्कुश, ७. खेचरी, ८. बीजयोनि, ९. आख्या, १०. त्रिखण्डी।।६१।।

पूर्व आदि दिशाओं से आरम्भ करके ये मुद्राएँ प्रतिष्ठित हैं। जो अत्यन्त सुन्दर आकार वाली और नवयौवन विह्वल हैं (नयी जवानी के मद में मत्त हैं)।।६२।। वे अपनी कमनीय कान्तियों से घर के अन्तर्भाग को पूर्ण कर रही हैं तथा हे मुनि अगस्त्य जी! वे सब ललिता परमेश्वरी की सेवा कर रही हैं।।६३।। इन तीनों के बीच में तो तीनों लोकों को मोहित करने वाला चक्र है। इसमें शक्तियाँ हैं, जिनमें वे प्रकट नामक शक्तियाँ कही गयी हैं।।६४।। इन शक्तियों की अधिष्ठात्री चक्र की नायिका त्रिपुरा देवी हैं। उस चक्र की पालन करने वाली संक्षोभणात्मिका मुद्रा है।।६५।। इसके बाद इस संक्षोभणी मुद्रा के मध्य के ऊपर नित्या कलान्तर है, जो बीस हाथ ऊँचे और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला पर्वत है, जिसमें उत्तरोत्तर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।।६६।। उस नित्या कलान्तर में

तर्पयंत्यो दिशां चक्रं सुधास्यंदैः सुशीतलैः। तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज॥६८॥

कामाकर्षणिका नित्या बुद्ध्याकर्षणिकापरा।
रसाकर्षणिका नित्या गन्धाकर्षणिका कला॥६९॥
चित्ताकर्षणिका नित्या धैर्याकर्षणिका कला।
स्मृत्याकर्षणिका नित्या नामाकर्षणिका कला॥७०॥
बीजाकर्षणिका नित्या चार्थाकर्षणिका कला।
अमृताकर्षणी चान्या शरीराकर्षणी कला॥७१॥

एतास्तु गुप्तयोगिन्यस्त्रिपुरेशी तु चक्रिणी। सर्वाशापूरिकाभिख्या चक्राधिष्ठनदेवता॥७२॥
एतच्चक्रे पालिका तु मुद्रा द्वारिणिकाभिधा। नित्या कलांतरादूर्ध्वं धिष्ण्यमत्यंतसुन्दरम्॥७३॥
हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्। प्राग्वत्सोपानसंयुक्तं सर्वसंक्षोभणाभिधम्॥७४॥
तत्राष्टौ शक्तयस्तीव्रा मदारुणविलोचनाः। नवतारुण्यमत्ताश्च सेवंते परमेश्वरीम्॥७५॥
कुसुमा मेखला चैव मदना मदनातुरा। रेखा वेगिन्यंकुशा च मालिन्यष्टौ च शक्तयः॥७६॥
कोटिशस्तत्परीवारः शक्तयोऽनंगपूर्विकाः। सर्वसंक्षोभमिदं चक्रं तदाधिदेवता॥७७॥
सुंदरी नाम विज्ञेया नाम्ना गुप्ततरापि सा। तच्चक्रपालनकरी मुद्राकर्षणिका स्मृता॥७८॥
अनंगशक्त्यंतरस्योपरिष्टात्कुंभसंभव। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
संक्षोभिण्याद्यंतरं स्यात्सर्वसौभाग्यदायकम्॥७९॥

कामाकर्षणिका आदि प्रमुख चारों ओर संस्थान बनाये हुई सोलह चन्द्रकलात्मिका दिशाओं के चक्र को सुन्दर और शीतल अमृत बिन्दुओं से तर्पित कर रही है। हे अगस्त्य जी! मत्त हुए तुम उनके नामों को सुनिये।।६७-६८।। वे हैं कामाकर्षणिका, नित्या, बुद्ध्याकर्षणिका कला, रसाकर्षणिका नित्या, गन्धाकर्षणिका कला।।६९।। चित्ताकर्षणिका नित्या, धैर्याकर्षणिकाकला, स्मृत्याकर्षणिका नित्या, नामाकर्षणिका कला।।७०।। बीजाकर्षणिका नित्या, अर्थाकर्षणिकाकला, अमृताकर्षणिका नित्या, शरीराकर्षणिका कला।।७१।। ये तो गुप्त योगिनियाँ हैं। त्रिपुरेशी तो चक्रिणी (चक्र की स्वामिनी) है। उस चक्र की अधिष्ठात्री देवी सब आशाओं को पूर्ण करने वाली है।।७२।। इस चक्र में पालिका (सेविका) तो द्रावणिका नाम की देवियाँ हैं तथा नित्या कलान्तर से ऊपर अत्यन्त सुन्दर हवनकुण्ड है।।७३।।

वह हवनकुण्ड बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला है। पूर्व की भाँति यह भी सीढ़ियों से युक्त है और वह सर्वसंक्षोभण नाम का है।।७४।। वहाँ पर आठ शक्तियाँ तीव्रा और मदिरा के मद से लाल-लाल नेत्रों वाली हैं तथा नई जवानी के मद में मत्त हैं। परमेश्वरी ललिता देवी की सेवा कर रही हैं।।७५।। वे हैं— १. कुसुमा, २. मेखला, ३. मदना, ४. मदनातुरा, ५. रेखा, ६. वेगिनी, ७. अंकुशा और ८. मालिनी, ये आठ शक्तियाँ हैं।।७६।। वह परमेश्वरी ललिता देवी करोड़ों अंगरहित कामदेव की शक्तियों से घिरी हुई हैं। यह सर्वसंक्षोभण नाम का चक्र है तथा उस चक्र की अधिकारिणी देवी सुन्दरी नाम की जाननी चाहिए। वह गुप्तसरा नाम से भी जानी जाती है। उस चक्र की पालन करने वाली मुद्राकर्षणिका स्मरण की गयी है।।७८।। अनंग शक्ति के बीच में ऊपर से बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तृत संक्षोभिणी के अन्दर की ओर सबको सौभाग्य

सर्वसंक्षोभिणीमुख्यास्तत्र शक्तय उद्धताः। चतुर्दश वसंत्येव तासां नामानि मच्छृणु॥८०॥
सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा।
सर्वाकर्षणिका शक्तिः सर्वाह्लादनिका तथा॥८१॥
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तंभनशक्तिकाः। सर्वजृंभिणिका शक्तिस्तथा सर्ववशंकरी॥८२॥
सर्वरंजनशक्तिश्च सर्वोन्मादनिशक्तिका। सर्वार्थसाधिका शक्तिः सर्वसंपत्तिपूरिणी॥८३॥
सर्वमंत्रमयी शक्तिः सर्वद्वंद्वक्षयंकरी। एताश्च संप्रदायाख्याश्चक्रिणीपुरवासिनीः॥८४॥
मुद्राश्च सर्ववश्याख्यास्तच्चक्रे रक्षिता मताः।
कोटिशः शक्तयस्तत्र तासां किंकर्य्य उद्धताः॥८५॥
संक्षोभिण्याद्यंतरस्योपरिष्टात्कुंभसंभव। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
सर्वसिद्धादिकानां तु मंदिरं विष्ट्यमुच्यते॥८६॥
सर्वसिद्धिप्रदा चैव सर्वसंपत्प्रदा तथा। सर्वप्रियंकरी देवी सर्वमङ्गलकारिणी॥८७॥
सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी। सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्ननिवारिणी॥८८॥
सर्वांगसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी।
एता देव्यः कलोत्कीर्णा योगिन्यो नामतः स्मृताः॥८९॥
चक्रिणी श्रीश्च विज्ञेया चक्रं सर्वार्थसाधकम्। सर्वोन्मादनमुद्राश्च चक्रस्य परिपालिताः॥९०॥
सर्वसिद्ध्याद्यन्तरस्योपरिष्टात्कुम्भसम्भव। हस्तविंशतिरनुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥९१॥

प्रदान करने वाला चक्र है।।७९।। वहाँ सर्वसंक्षोभिणी आदि मुख्य उद्धत शक्तियाँ हैं। हे अगस्त्य जी! वहाँ वे चौदह शक्तियाँ निवास करती हैं, जिनके नाम मुझसे सुनो।।८०।। १. सर्वसंक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षणिका शक्ति, ४. सर्वाह्लादनिका, ५. सर्वसम्मोहिनी शक्ति, ६. सर्वस्तम्भनशक्तिका, ७. सर्वजृम्भणिका शक्ति, ८. सर्ववशंकरी, ९. सर्वरंजन शक्ति, १०. सर्वोन्मादन शक्ति, ११. सर्वार्थसाधिका शक्ति, १२. सर्वसम्पत्तिपूरिणी शक्ति, १३. सर्वमन्त्रमयी शक्ति, १४. सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी। ये सब सम्प्रदाय नाम की चक्रिणी ललितेश्वरी के पुर में रहने वाली शक्तियाँ हैं।।८१-८४।। सर्ववश्या (सबको वश में करने वाली) मुद्राएँ हैं। जो उस चक्र में रक्षिका मानी गयी हैं तथा वहाँ करोड़ों शक्तियाँ उन रक्षिकाओं की उद्धत सेविकाएँ हैं।।८५।। हयग्रीव बोले कि हे अगस्त्य मुने! संक्षोभिणी आदि के बीच में ऊपर से बीस हाथ ऊँचे और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला सर्वसिद्ध आदि देवियों का मन्दिरांगण कहा जाता है।।८६।।

वे देवियाँ हैं—१. सर्वसिद्धिप्रदा, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरी देवी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकामप्रदा, ६. सर्वदुःखविमोचनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमिनी, ८. सर्वविघ्ननिवारिणी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी देवी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी। ये देवियाँ कलोत्कीर्णा योगिनियाँ नाम से स्मरण की गयी हैं।।८७-८९।। इस चक्र की स्वामिनी श्री जाननी चाहिए और यह चक्र सर्वार्थ साधक नाम का चक्र है तथा सर्वोन्मादन मुद्राएँ इस चक्र की परिपालिका (रक्षा करने वाली) हैं।।९०।। हे अगस्त्य जी! सर्वसिद्धादिचक्र के अन्दर ऊपर की ओर बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तृत विस्तार वाला सर्वज्ञा आदि अन्तर्वात देवियों वाला सर्व रक्षाकर चक्र स्मरण किया गया है।

सर्वज्ञाद्यंतरं नाम्ना सर्वरक्षाकरं स्मृतम्। चक्रं महत्तरं दिव्यं सर्वज्ञाद्याः प्रकीर्तिताः॥९२॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदायिनी। सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी॥९३॥
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरी तथा। सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी॥९४॥
सर्वेप्सितप्रदा चैता निर्गर्वा योगिनीश्वराः॥९५॥
मालिनी चक्रिणी प्रोक्ता मुद्रा सर्वमहांकुशा। इति चिन्तामणि गृहे सर्वज्ञाद्यन्तरावधि।
चक्राणि कानिचित्प्रोक्तान्यन्यान्यपि मुने शृणु॥९६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने चिन्तामणिगृहांतरकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

वह चक्र महत्तर और दिव्य है तथा सर्वज्ञा आदि देवियों का चक्र बताया गया है।।९१-९२।। वे हैं—१. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वैश्वर्यप्रदायिनी, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधि विनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरी, ८. सर्वानन्दमयी देवी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी, १०. सर्वेप्सितप्रदा। इस प्रकार ये गर्वहीन योगिनीश्वरा देवियाँ हैं।।९३-९५।। मालिनी और चक्रिणी इस चक्र की रक्षिका हैं तथा सर्वमहांकुशा इस चक्र की मुद्रा है। इस प्रकार हे मुने! चिन्तामणि गृह में सर्वज्ञादि जो देवियाँ जिनके अन्तर्गत हैं, उन चक्रों का वर्णन किया गया, अब आगे अन्यों का भी वर्णन सुनिये।।९६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३६वाँ अध्याय चिन्तामणि गृह के अन्दर की कथा का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

गृहराजान्तर्कथनं नाम

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

सर्वज्ञाद्यंतरालस्योपरिष्टात्कलशोद्भव। हस्तविंशतिरुन्नश्चं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥१॥
वशिन्याद्यन्तरं ज्ञेयं प्राग्वत्सोपानमंदिरम्। सर्वरोगहरं नाम्ना तच्चक्रमिति विश्रुतम्॥२॥
वशिन्याद्यस्तत्र देव्यः पूर्वादिदिगनुक्रमात्। स्वरैस्तु रहितास्तत्र प्रथमा वशिनीश्वरी॥३॥
कवर्गसहिता पश्चात्कामेश्वर्याख्यवाङ्मयी। चवर्गजुष्टा वागीशी मेदिनी स्यात्तृतीयका॥४॥
टवर्गमंडिताकारा विमलाख्या सरस्वती। तवर्गेण तथोपेता पञ्चमी वाक्प्रधारणा॥५॥
पवर्गेण परिस्फीता षष्ठी तु जयिनी मता। यादिवर्णचतुष्कोणे सर्वैश्वर्यादिवाङ्मयी॥६॥
साधिकाक्षरषट्केन कौलिनी त्वष्टमी मता। एता देव्यो जपरता मुक्ताभरणमंडिताः॥७॥
सदास्फुरद्गद्यपद्यलहरीलालिता मताः। काव्यैश्च नाटकैश्चैव मधुरैः कर्णहारिभिः।
विनोदयन्त्यः श्रीदेवीं वर्तंते कुम्भसम्भव॥८॥
एता रहस्यनाम्नैव ख्याता वातापितापन। नायिका स्वस्य चक्रस्य सिद्धानाम्ना प्रकीर्तिता॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३७

गृहराज के अन्दर का कथन

हयग्रीव बोले—हे कलश से उत्पन्न अगस्त्य जी! सर्वज्ञादि अन्तराल के ऊपर बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला सर्वरोगहर नामक चक्र है, जो सब रोग हरने वाला है। जिसके अन्तर्गत वशिनी आदि शक्तियाँ समझनी चाहिएँ तथा उसमें पूर्व की भाँति सीढ़ियाँ और घर बने हुए हैं।।१-२।। वहाँ उस चक्र में पूर्व वर्णित दिशाओं के क्रम से वशिनी आदि देवियाँ हैं। स्वरों वाली वहाँ प्रथम वशिनी देवी हैं, जिसमें अ से लेकर अः तक के सब स्वर आ जाते हैं।।३।। उसके बाद कवर्ग (क ख ग घ ङ) सहित दूसरी कामेश्वरी नाम की वाग्देवी है। च वर्ग (च छ ज झ ञ) से युक्त तीसरी मोदिनी नाम की वाग् देवी है।।४।। ट वर्ग (ट ढ ड ढ ण) मण्डित आकार वाली चौथी विमला नाम की सरस्वती देवी है। त वर्ग (त थ द ध न) वर्णों से युक्त पाँचवीं वाक् प्रधारणा देवी है।।५।।

प वर्ग (प फ ब भ म) वर्णों से सजी हुई छठी जयिनी देवी मानी गयी हैं। यदि (य व र ल) चतुष्कोण रूप वर्णों वाली सातवीं सर्वैश्वर्यादि वाङ्मयी देवी हैं।।६।। स वर्ण वाले (श ष स ह) वर्णों वाली आठवीं तो कौलिनी देवी मानी गयी हैं। मोतियों के आभूषणों से सजी हुई ये देवियाँ ललिता देवी के जप में लगी हुई हैं।।७।। वे सब देवियाँ पद्यगद्य लहरी (झाल-मजीरा आदि वाद्यों के साथ) गाने वाली मानी गयी हैं। अतः हे घड़े से उत्पन्न अगस्त्य जी! वे सब काव्य, नाटक और कानों को मधुर लगने वाले स्वरों से ललिता देवी का मनोरंजन करती रही हैं।।८।। हयग्रीव ने कहा कि वातापि नामक राक्षस को खाकर पचाने वाले अगस्त्य जी! ये सब रहस्य नाम से ही ख्यात देवियां

अस्य चक्रस्य संरक्षाकारिणी खेचरी मता। वशिन्याद्यंतरालस्योपरिष्टाद्विंध्यमर्दन॥१०॥
हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्। अस्त्रं चक्रमिति ज्ञेयं तत्र बाणादिदेवताः॥११॥
पञ्च बाणेश्वरीदेव्यः पञ्च कामेश्वराशुगाः। अंकुशद्वितयं दीप्तमादिस्त्रीपुंसयोर्द्वयोः॥१२॥
धनुर्द्वयं च विंध्यारे नव पुंड्रेषु कल्पितम्। पाशद्वयं च दीप्ताभं चत्वार्यस्त्राणि कुम्भज॥१३॥
कामेश्वर्यास्तु चत्वारि चत्वारि श्रीमहेशितुः।
आहत्याष्टायुधानीति प्रज्वलन्ति विभांति च॥१४॥
भण्डासुरमहायुद्धे दुष्टदानवशेणितैः। पीतैरतीव तृप्तानि दिव्यास्त्राण्यति जाग्रति॥१५॥
एतेषामायुधानां तु परिवारायुधान्यलम्। वर्ततेऽस्त्रांतरे तत्र तेषां संख्या तु कोटिशः॥१६॥
वज्रशक्तिः शतघ्नी च भुशुण्डी मुसलं तथा।
कृपाणः पट्टिशं चैव मुद्गरं भिन्दिपालकम्॥१७॥
एवमादीनि शस्त्राणि सहस्राणां सहस्रशः। अष्टायुधमहाशक्तीः सेवंते मदविह्वलाः॥१८॥
अथ शस्त्रांतरालस्योपरि वातापितायन। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
धिष्ण्यं तु समयेशीनां स्थानं च तिसृणां मतम्॥१९॥
कामेशाद्यास्तत्र देव्यस्तिस्त्रोऽन्या तु चतुर्थिका।
सैव निःशेषविश्वानां सवित्री ललितेश्वरी॥२०॥
तिसृणां शृणु नामानि कामेशी प्रथमा मता। वज्रेशी भगमाला च ताः सेवन्ते सहस्रशः॥२१॥

कही गयीं हैं। अपने अपने चक्र की सिद्धा नाम की देवी कही गयी हैं। इस सर्वज्ञादि चक्र की रक्षा करने वाली खेचरी मानी गयी हैं।।८⅓।। उसके बाद हयानन जी बोले कि हे विन्ध्यपर्वत का मर्दन करने वाले अगस्त्यजी! वशिनी आदि देवियों के अन्तराल से ऊपर से बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला अस्त्रचक्र समझना चाहिए तथा वहाँ पर वाण आदि देवता हैं।।८⅓-११।। वहाँ पर पाँच वाणेश्वरी देवियाँ हैं और पाँच कामेश्वरी शीघ्र गमन करने वाली देवियाँ हैं। उनमें अंकुश वाली दो हैं, आदि स्त्री और आदि पुरुष की दीप्त आदि दो हैं। दो धनुष हैं, जो नौ पुण्ड्र में कल्पित हैं। दो दीप्त आभा वाले पाश हैं। इस प्रकार हे अगस्त्य जी! चार प्रकार के अस्त्र हैं।।१२-१३।। इनमें चार कामेश्वरी देवी के हैं और चार श्री माहेश्वरी देवी के हैं। इस प्रकार इन आठ आयुधों को लेकर ये देवियाँ प्रज्वलित होती हैं और सुशोभित होती हैं।।१४।। भण्डासुर महायुद्ध में दुष्ट दानवों के रक्तों के पीने से वे अत्यन्त तृप्त दिव्य अस्त्र वहाँ उस चक्र में जागते रहते हैं।।१५।। इन आयुधों के अनेकों आयुध परिवार हैं, वे सब अस्त्रों के बीच में विद्यमान हैं तथा उनकी संख्या करोड़ों में है।।१६।। वे हैं—वज्रशक्तिः, शतघ्नी, भुशुण्डी, मुसल, कृपाण, पट्टिश (वज्र), मुद्गर, भिन्दिपालक।।१७।। इस प्रकार ये शस्त्र हजारों हजार की संख्या में हैं। इस प्रकार ये आठ आयुध महाशक्तियाँ मद से विह्वल माँ ललितेश्वरी की सेवा करती रहती हैं।।१८।। इसके बाद शस्त्रान्तराल के ऊपर वातपितापन चक्र है, जो बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला है, वहाँ समयेशी देवियों का हवनकुण्ड है और तीन का स्थान माना गया है।।१९।। वहाँ पर कामेशी आदि तीन देवियाँ हैं, अन्य चौथी देवी हैं। वही समस्त विश्व की रचना करने वाली ललितेश्वरी देवी हैं।।२०।। उन तीनों के नामों को सुनिये,

सर्वेषां दर्शनानां च या देव्यो विविधाः स्मृताः।
ताः सर्वास्तत्र सेवन्ते कामेशादिमहोदयाः॥२२॥
एतासां च प्रसंगेषु नित्यानां च प्रसञ्जने। चक्रिणीनां योगिनीनां श्रीदेवी पूरणात्मिका॥२३॥
या कामेश्वरदेवांकशायिनी ललितांबिका। कामेश्यादिचतुर्थी सा नित्यानां षोडशी मता॥२४॥
योगिनी चक्रदेवीनां नवमी परिकीर्तिता। समयेश्यन्तरालस्योपरिष्टादिल्वलांतक॥२५॥
नाथांतरमिति प्रोक्तं हस्तविंशतिरुन्नतम्। चतुर्नल्वप्रविस्तारं प्राग्वत्सोपानमण्डितम्॥२६॥
तत्र नाथामहादेव्या योगशास्त्रप्रवर्त्तकाः। सर्वेषां मन्त्रगुरवः सर्वविद्यामहार्णवाः॥२७॥
चत्वारो योगनाथाश्च लोकानामिहगुप्तये। सृष्टाः कामेशदेवेन तेषां नामानि मे शृणु॥२८॥
मित्री च शोडिशश्चैव चर्याख्यः कुम्भसम्भव।
तैः सृष्टा बहवो लोका रक्षार्थं पादुकात्मकाः॥२९॥
दिव्यविद्या मानवौघसिद्धौघाः सुरतापसाः।
प्राप्तसालोक्यसारूप्यसायुज्यादिकसिद्धयः ॥३०॥
महान्तो गुरवस्तांस्तु सेवन्ते प्रचुरा गुरून्। अथ नाथांतरालस्योपरिष्टाद्धिष्ण्यमुत्तमम्॥३१॥
हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्। नित्यान्तरमिति प्रोक्तं नित्याः पंचदशात्र वै॥३२॥
अथ कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी।
नित्यक्लिन्ना अपि तथा भेरुण्डा वह्निवासिनी॥३३॥

उनमें कामेशी प्रथमा मानी गयी है। दूसरी वज्रेशी है और तीसरी भगमाला हैं, वे सब हजारों देवियाँ ललितेश्वरी की सेवा करती हैं।।२१।। सबके दर्शनों की जो देवियाँ हैं, वे अनेकों प्रकार की स्मरण की गयी हैं, वे सब कामेशादि महोदया देवियाँ वहाँ ललितेश्वरी की सेवा करती हैं।।२२।। इन सबके प्रसङ्गों में और नित्या देवियों के चक्रिणी योगिनियों के प्रसङ्ग में श्रीदेवी पूर्ण आत्मा वाली हैं।।२३।। जो कामेश्वर देव की गोद में शयन करने वाली ललिताम्बिका है, कामेशी आदि चतुर्थी है, वह नित्यों की सोलहवीं मानी गयी है।।२४।। चक्रदेवियों की योगिनी नवमी मानी गयी है।।२४½।। समयेशी आदि के अन्तराल से ऊपर मृगशिरा नक्षत्र के अन्त तक नाथान्तर चक्र कहा गया है, जो बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला है तथा पूर्व अन्तरालों के समान द्वार अर्गला, कपाट एवं सीढ़ियों से सजा हुआ है।।२४½-२६।।

वहाँ पर योगशास्त्र की प्रवर्तक नाथा महादेवियाँ हैं। जो सबकी मन्त्रगुरु और सब विद्याओं की महासागर अर्थात् वे नाथा महादेवियाँ सब मन्त्रों की गुरु तथा सब विद्याओं की सागर हैं।।२७।। इन सोलहों की रक्षा करने के लिये भगवान् कामेश्वर देव ने चार योगनाथों की सृष्टि की है। उनके नामों को सुनिये।।२८।। मित्री, शोडिश, चर्य नामक, उन्होंने संसार की रक्षा के लिए पादुकात्मक अनेकों लोकों की रचना की।।२९।। दिव्य विद्या मानवौघ, सिद्धौघ और तपस्वी, देव, समान प्रकाश, समान रूप और समान घनिष्ठता, मेल-जोल प्राप्त सिद्धियाँ और महान् गुरु उन सबसे श्रेष्ठ गुरु ललितेश्वरी की सेवा करते हैं।।३०-३०½।। इसके बाद नाथा अन्तराल के ऊपर उत्तम यज्ञवेदी है, जो बीस हाथ ऊँची और वहाँ चार नल्व विस्तार वाला नित्यान्तर चक्र कहा गया, जहाँ कि पन्द्रह नित्या देवियाँ कही गयी हैं।।३०½-३२।। वे हैं—१. कामेश्वरी नित्या, ३. भगमालिनी नित्या, ३. क्लिन्ना नित्या, ४. भरुण्डा नित्या, ५.

महावज्रेश्वरी दूती त्वरिता कुलसुन्दरी। नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला॥३४॥
ज्वालामालिनिका चित्रेत्येताः पंचदसोदिताः एता देवीस्वरूपाः स्युर्महाबलपराक्रमाः॥३५॥
प्रथमा मुख्यतिथितां प्राप्ता व्याप्य जगत्रयाः। कालत्रितयरूपाश्च कालग्रासविचक्षणा;॥३६॥
ब्रह्मादीनामशेषाणां चिरकालमुपेयुषाम्। तत्तत्कालशतायुष्यरूपा देव्याज्ञया स्थिताः॥३७॥
नित्योद्यता निरांतकाः श्रीपराङ्गसमुद्भवाः।
सेवन्ते जगतामृद्ध्यै ललितां चित्स्वरूपिणीम्॥३८॥
तासां भवनतां प्राप्ता दीप्ताः पंचदशेश्वराः। विसृष्टिबिंदुचक्रे तु षोडश्या भवनं मतम्॥३९॥
अथ नित्यांतरालस्योपरिष्टात्कुम्भसम्भव। अङ्गदेव्यंतरं प्रोक्तं हस्तविंशतिरुन्नतम्॥४०॥
चतुर्नल्वप्रविस्तारं प्राग्वत्सोपानमंदिरम्। तस्मिन्हृदयदेव्याद्याः शक्तयः संति वै मुने॥४१॥
हृद्देवी च शिरोदेवी शिखादेवी तथैव च। वर्मदेवी दृष्टिदेवी शस्त्रदेवी षडीरिताः॥४२॥
अत्यंतसन्निकृष्टास्ताः श्रीकामेश्वरसुभ्रुवः। नवलावण्यपूर्णांग्यः सावधाना धृतायुधाः॥४३॥

वह्निवासिनी नित्या, ६. महावज्रेश्वरी नित्या, ७. दूती नित्या, ८. त्वरिता नित्या, ९. कुल सुन्दरी नित्या, १०. नीलपताका नित्या, ११. नित्यानित्या, १२. विजया नित्या, १३. सर्वमङ्गला नित्या, १४. ज्वालामालनिका नित्या, १५ चित्रा नित्या। ये सब देवी स्वरूप हैं और महा बल और पराक्रम वाली देवियाँ हैं।।३३-३५।। ये पन्द्रहों देवियाँ प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि मुख्य तिथियों को प्राप्त होकर तीनों लोकों में व्याप्त हैं तथा तिथियाँ नित्य रहती हैं, इसलिए उपर्युक्त कामेश्वरी आदि देवियाँ नित्या कही गयी हैं। अतः क्रम से इन्हें तिथियों के अनुसार गिना जा सकता है, जैसे कि कामेश्वरी प्रथमा, भगमालिनी द्वितीया, नित्यक्लिन्ना तृतीया, मेरुण्डा चतुर्थी, वह्निवासिनी पंचमी, महावज्रेश्वरी षष्ठी (छठ), शिवदूती नित्या सप्तमी (सातवीं), कुलसुन्दरी नित्या अष्टमी, त्वरिता नित्या नवमी, नित्यानित्या दशमी, नीलपताका नित्या एकादशी, विजया नित्या द्वादशी, श्रीमंगला नित्या त्रयोदशी, ज्वालामालिनी नित्या चतुर्दशी तथा चित्रा नित्या पूर्णिमा अथवा अमावस्या। ये तिथिगत देवियाँ भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में रहने वाली तथा काल को ग्रास करने में अत्यन्त कुशल हैं अथात् समय को खाती चली जाती हैं, समय बीतता जाता है।।३६।। इन कालरूप तिथिरूप देवियों के लिए ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने बहुत समय तक देवी की उपासना की, तब ललितेश्वरी देवी की आज्ञा से उस-उस समय की सौवर्ण आयुरूप ये स्थित हुईं।।३७।। ये सब श्री परादेवी ललितेश्वरी के अंग से उत्पन्न हुई देवियाँ नित्य उद्यत हो, आतंक रहित होकर संसार की समृद्धि के लिए चित् स्वरूपिणी ललिता देवी की सेवा करती हैं।।३८।।

ये पन्द्रहों तिथियों की ईश्वरी देवियाँ उन ललिता देवी के भवनत्व को प्राप्त हो गयी हैं, अर्थात् पन्द्रहों तिथियाँ उन परमेश्वरी ललिता देवी के भवन हैं। सृष्टिचक्र के बिन्दु में तो षोडशी देवी श्रीललिता का भवन माना गया है।।३९।। हयानन बोले कि अगस्त्य जी! इसके बाद नित्यान्तराल के ऊपर अङ्गदेवी का अन्तराल कहा गया है तथा पूर्व अन्तरालों की भाँति उसमें भी सब मुख्य द्वार कपाट, अर्गला और सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उस भवन में हृदय देवी आदि अनेकों शक्तियाँ हैं।।४०-४१।। वे हैं—१. हृद्देवी, २. शिरो देवी, ३. शिखा देवी, ४. वर्म देवी, ५. दृष्टि देवी, ६. शस्त्र देवी, ये छः देवियाँ हैं।।४२।। वे सब देवियाँ सुन्दर भौंहों वाले श्री कामेश्वर के अत्यन्त सन्निकट हैं। ये सब नवीन सौन्दर्य से भरपूर और आयुध धारण करने वाली और सावधान हैं।।४२-४३।।

परितो बिन्दुपीठे च भ्राम्यन्तो दृप्तमूर्तयः। ललिताप्राज्ञाप्रवर्तिन्यो वशीनां पीठवर्तिकाः॥४४॥
अथांगदेव्यन्तरस्योपरिष्टान्मण्डलाकृति। बिन्दुनाद महापीठं दशहस्तसमुन्नतम्॥४५॥
नल्वाष्टकप्रविस्तारमुद्यदादित्यसंनिभम्। बिन्दुपीठमिदं ज्ञेयं श्रीपीठमपि चेष्यते॥४६॥
महापीठमिति ज्ञेयं विद्यापीठमपीष्यते। आनन्दपीठमपि च पंछाशत्पीठरूपधृक्॥४७॥
तत्र श्रीललितादेव्याः पंचब्रह्ममयं महत्। जागर्ति मञ्चरत्नं तु प्रपंचत्रयमूलकम्॥४८॥
तस्य मञ्चस्य पादास्तु चत्वारः परिकीर्तिताः। दशहस्तसमुन्नम्रा हस्तत्रितयविष्ठिता;॥४९॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानेश्वररूपत्वमागताः। शक्तिभावमनुप्राप्ताः सदा श्रीध्यानयोगतः॥५०॥
एकस्तु पंचपादः स्याज्जपाकुसुमसन्निभः। ब्रह्मात्मकः स विज्ञेयो वह्निदिग्भागमाश्रितः॥५१॥
चतुर्थो मंचपादस्तु कर्णिकारकसाररुक्। ईश्वरात्मा स विज्ञेय ईशदिग्भागमाश्रितः॥५२॥
एते सर्वे सायुधाश्च सर्वालंकारभूषिताः। उपर्यधःस्तंभरूपा मध्ये पुरुषरूपिणः॥५३॥
श्रीध्यानमीलिताक्षाश्च श्रीध्यानान्निश्चलांगकाः। तेषामुपरि मंचस्य फलकस्तु सदाशिवः॥४॥
विकासिदाडिमच्छायश्चतुर्नल्वप्रविस्तरः। नल्वषट्कायामवांश्च सदा भास्वरमूर्तिमान्॥५५॥
अंगदेव्यांतरारंभान्मंचस्य फलकावधि। चिंतामणिमयांगानि तत्त्वरूपाणि तापस॥५६॥
सोपानानि विभासंते षट्त्रिंशद्वै निवेशनैः। आरोहस्य क्रमेणैव सोपानान्यभिदध्महे॥५७॥
भूमिरापोऽनलो वायुराकाशो गन्ध एव च। रसो रूपं स्पर्शशब्दोपस्थपायुपदानि च॥५८॥

तथा ये दृप्त मूर्तियों वाली देवियाँ बिन्दुपीठ के चारों ओर घूमती रहती हैं, बिन्दु पीठ की रक्षा करने वाली ये देवियाँ ललिता देवी की आज्ञा को संसार में लागू कराने वाली हैं।।४४।। अंग देवी अन्तराल के ऊपर मण्डलाकार बिन्दुनाद महापीठ है, जो दश हाथ ऊँचा और आठ नल्व (बत्तीस सौ हाथ) विस्तार वाला उदित सूर्य के समान है। इस बिन्दुनाद महापीठ को ही श्री पीठ समझना चाहिए, यही श्रीपीठ है।।४५-४६।। इसको ही महापीठ जानना चाहिए, यही विद्यापीठ है, आनन्दपीठ भी इसे ही कहा जायेगा तथा यही पचास पीठ के रूपों को धारण करने वाला है।।४७।। वहाँ ललिता देवी के पंचब्रह्ममय में महान् प्रपंचत्रयमूलक मञ्चरत्न प्रकाशित है।।४७-४८।।

उस मञ्च के चार पैर कहे गये हैं, जो दश हाथ ऊँचे तथा तीन हाथ मोटे हैं।।४९।। ब्रह्मा, विष्णु और महेश ईश्वर के रूप में आकर ललितेश्वरी शक्ति के ध्यान में भावविभोर होकर उनका ध्यान करते हैं।।५०।। एक तो मंचपाद जपा के पुष्प के समान है, जिसे ब्रह्मात्मक पाद जानना चाहिए। जो अग्निदिशा आग्नेय दिशा की ओर आश्रित है।।५१।। चौथा मंचपाद तो कर्णिकार (अमलतास) की सार वाला है। उसे ईश्वरात्मा जानना चाहिए, वह ईशान दिशा के भाग में आश्रित है।।५२।। ये सब आयुध सब अलंकारों से भूषित हैं। ऊपर नीचे स्तम्भरूप हैं तथा मध्य में पुरुष रूप वाले हैं अर्थात् ऊपर नीचे खम्भे के रूप में हैं और बीच में पुरुष के आकार में हैं।।५३।। वे श्रीललितेश्वरी के ध्यान में आँखें बन्द किये हुए श्रीदेवी के ध्यान में अपने अंगों को बिल्कुल बिना हिलाये-डुलाये हुए स्थित हैं।।५३½।। उनके ऊपर मंच का फलक सदाशिव है, जो खुले हुए अनार की कान्ति के समान चार नल्व (सोलह सौ) हाथ विस्तार वाला तथा नौ नल्व (छत्तीस सौ हाथ) आयाम वाला सदा चमकता हुआ मूर्तिमान है।।५३½-५५।। अंगदेव्यन्तराल के आरम्भ से मंच के फलक की अवधि तक चिन्तामणि रत्नमय अंग तत्त्वरूप है। वहाँ छत्तीस निवेशनों के साथ सीढ़ियाँ सुशोभित होती हैं, जो आरोहण के क्रम से सीढ़ियाँ हम देखते हैं।।५६-५७।। भूमि, जल, अग्नि, वायु

पाणिवाग्घ्राणजिह्वाश्च त्वक् चक्षुः श्रोत्रमेव च। अहंकारश्च बुद्धिश्च मनः प्रकृतिपूरुषौ॥५९॥
नियतिः कालरागौ च कला विद्ये च मायया।
शुद्धा विद्येश्वरसदाशिवशक्तिः शिवा इति॥६०॥
एताः षट्त्रिंशदाख्यातास्तत्त्वसोपानपंक्तयः। पूषा सोपानपंक्तिश्च मञ्चपूर्वादिशं श्रिता;॥६१॥
अथ मञ्चस्योपरिष्टाद्धंसतूलिकतल्पकः। हस्तमात्रं समुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥६२॥
पादोपधानमूर्धोपधान द्वंद्वविराजितम्। गड्डुकानां चतुःषष्टिशोभितं पाटलत्विषा॥६३॥
तस्योपरिष्टात्कौसुंभवसनेनोत्तरच्छदः। शुचिना मृदुना क्लृप्तः पद्मरागमणित्विषा॥६४॥
तस्योपरि वसन्पूर्वदिङ्मुखो दययान्वितः। श्रृंगारवेषरुचिरस्सदा षोडशवार्षिकः॥६५॥
उद्यद्भास्करबिंबाभश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः। हारकेयूरमुकुटकटकाद्यैरलंकृतः॥६६॥
कमनीयस्मितज्योत्स्नापरिपूर्णकपोलभूः। जागर्ति भगवानादिदेवः कामेश्वरः शिवः॥६७॥
तस्योत्संगे समासीना तरुणादित्यपाटला। सदा षोडशवर्षा च नवयौवनदर्पिता॥६८॥
अमृष्टपद्मरागाभा चन्दनाब्जनखच्छटा। यावकश्रीर्निर्व्यपेक्षा पादलौहित्यवाहिनी॥६९॥
कलनिस्वानमञ्जीरपतत्कंकणमोहना। अनङ्गवरतूणीरदर्पोन्मथनजंघिका॥७०॥
करिशुण्डोःकदलिकाकांतितुल्योरुशोभिनी। अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शेन तनीयसा।
अलंकृतनितंबाढ्या जघनाभोगभासुरा॥७१॥

और आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द, उपस्थ, पायु, पैर, हाथ, वाणी, नासिका, जिह्वा, त्वचा, चक्षु, श्रोत्र, अहंकार, बुद्धि, मन, प्रकृति और पुरुष समस्त पच्चीस तत्त्व नियति, काल, राग, कली, विद्या, माया, शुद्धा, विद्येश्वर, सदाशिव, शक्ति, शिवा ये छत्तीस सीढ़ियाँ तत्त्वसोपान पंक्तियाँ हैं। पूषा सोपान पंक्तियों (पूषा नामक सीढ़ियों की पंक्तियों) वाली मंच पूर्व दिशा में आश्रित हैं।।५८-६१।। इसके बाद उस मंच के ऊपर हंसों से चित्रित गद्दी (आसव चबूतरा) है, जो एक हाथ ऊँचा और चार नल्व लम्बा है।।६२।। जिस पर पादोपधान (पैरों का तकिया) और मूर्धोपधान (शिर की तरफ का तकिया) दोनों विराजित हैं तथा वह आसन गुलाब के फूल की कान्ति से युक्त चौंसठ सोने के बर्तनों से सुशोभित है।।६३।। उसके ऊपर गेरुआ वस्त्र पहने हुए कोमल गन्ध से युक्त, पद्मराग मणि की कान्ति से युक्त, उसके ऊपर रहते हुए पूर्व दिशा की ओर मुख किये हुए, दया से युक्त, सदा सुन्दर लगने वाले श्रृंगार वेष वाले षोडश, वर्षीय उदित होते हुए सूर्य बिम्ब की आत्मा वाले, चार हाथ और तीन नेत्रों वाले, हार कंगन मुकुट कर्धनी आदि अलंकारों से अलंकृत, कमनीय मुस्कान रूप चाँदनी से परिपूर्ण कपोल वाले, भगवान् आदिदेव कामेश्वर शिव जाग रहे हैं।।६४-६७।। उनकी गोद में श्री ललितेश्वरी कामेश्वरी बैठी हुई हैं, जो तरुण सूर्य की आभा के समान पाटल (लाल) वर्ण की हैं तथा वे सदा सोलह वर्ष की बनी रहने वाले नवयौवन से गर्वित हैं।।६८।।

उनके शरीर की कान्ति बिना मसले हुए कमल की आभा के समान है, उनके नाखून चन्दन और कमल की शोभा से युक्त हैं, बिना महावर लगाये हुए उनके चरणकमलों पर महावर की लालिमा विद्यमान है।।६९।। कलकल शब्द करते हुए पैरों में घुंघरू और हाथों में कंगन मोहित करने वाले हैं। उनकी जंघायें कामदेव के श्रेष्ठ तरकश के दर्प को बता रही हैं। अर्थात् उनकी जंघाएँ इतनी सुन्दर हैं कि वे कामदेव के अपार बाणों को दर्शा रही हैं। उनकी जंघाओं को देखकर कामदेव के बाण लगते ही रहेंगे, वे समाप्त नहीं होंगे।।७०।। हाथी की सूंड तथा केले के स्तम्भ

अर्धोरुकग्रंथिमती रत्नकांचीविराजिता। नूतनाभिमहावर्तत्रिवल्यूर्मिप्रभासरित्।।७२।।
स्तनकुड्मलहिंदोलमुक्तादामशतावृता। अतिपीवरवक्षोजभारभंगुरमध्यभूः।।७३।।
शिरीषदाममृदुलच्छादाभांश्चतुरो भुजान्।।७४।।
केयूरकंकणश्रेणीमंडितान्सोर्मिकाङ्गुलीन्। वहंती पतिसंसृष्टशंखसुन्दरकंधरा।।७५।।
मुखदर्पण वृत्ताभचिबुका पाटलाधरा। शुचिभिः पंक्तिशुद्धैश्च विद्यारूपैर्विभास्वरैः।
कुन्दकुड्मललक्ष्मीकैर्दंतैर्दर्शितचन्द्रिका।।७६।।
स्थूलमौक्तिकसनद्धनानाभरणभासुरा। केतकांतर्दलश्रोणी दीर्घदीर्घविलोचना।।७७।।
अर्धेन्दुललिते भाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छटा। पालीवतं समाणिक्यकुण्डलामंडितश्रुतिः।।७८।।
नवकर्पूरकस्तूरीसदामोदितवीटिका। शरच्चञ्चन्निसानाथमण्डलीमधुरानना।।७९।।
चिन्तामणीनां सारेण क्लृप्तचारुकिरीटिका। स्फुरत्तिलकरत्नाभभालनेत्रविराजिता।।८०।।
गाढांधकारनिबिडक्षामकुन्तलसंहतिः। सीमन्तरेखाविन्यस्तसिंदूरश्रेणिभासुरा।।८१।।
स्फुरच्चंद्रकलोत्तंसमदलोलविलोचना। सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता।।८२।।
समस्तलोकमाता च सदानन्दविवर्धिनी। ब्रह्मविष्णुगिरीशेशसदाशिवनिदानभूः।।८३।।

के समान कान्ति की शोभा वाली उनकी दोनों जंघाएँ हैं, छूने में अत्यन्त सुन्दर, फैले हुए लाल दुपट्टे से अलंकृत नितम्ब वाली जंघाओं के विस्तार से सुन्दर दिखायी देने वाली वे देवी हैं।।७१।। वे आधी जंघाओं पर गाँठ वाली सोने की कर्धनी पहने हुए विराजित हैं। झुकने पर उनकी नाभि का जो गर्त है, वह तथा उनकी कमर में पड़ने वाली तीन रेखाएँ भँवरों वाली नदी की शोभा वाली है।।७२।। उनके स्तन खिले हुए फूल के समान झूलते हुए सैकड़ों मोतियों की कान्ति से आवृत हैं और अत्यन्त मोटे स्तनों के भार से वे भूमि की ओर झुकी हुई हैं।।७३।। शिरीष पुष्प की कान्ति से कोमल पत्र की आभा वाली उनकी चार भुजाएँ हैं।।७४।। बाजूबन्द, कंगन, की पंक्तियों से मण्डित हाथों और अंगूठियों वाली उनकी अंगुलियाँ हैं अर्थात् वे हाथों में बाजूवंद और कंगन पहने हुए हैं तथा सब अंगुलियों में अंगूठियाँ पहने हुए हैं तथा वे अपने पति कामेश्वर शिव से अपनी शंख के समान सुन्दर गर्दन चिपकाये हुए हैं।।७५।। उनके मुखरूपी दर्पण में गुलाब के समान ठोड़ी और अधर अत्यन्त सुशोभित हैं। वे श्वेत पंक्तियों और विद्यारूप चमकते हुए खिले हुए चमेली के फूल के समान सुशोभित दाँतों से चाँदनी फैला रही हैं।।७६।।

वे मोटे-मोटे मोतियों से युक्त अनेकों प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं। केतकी (केवड़े) के पत्र के समान उनकी कमर है, बड़ी-बड़ी उनकी आँखें हैं।।७७।। उनके मस्तक पर आधे चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो सँवारे हुए केशों की शोभा बढ़ा रहे हैं। उनके कान में माणिक्य जड़ा हुआ कुण्डल सुशोभित है, अर्थात् माणिक्यजटित कुण्डल से मण्डित उनका कान है।।७८।। नवीन कपूर और कस्तूरी की सुगन्ध से उनकी चोली सदा सुगन्धित रहती है। शरत्कालीन चन्द्रमण्डल के समान मधुर उनका मुख है।।७९।। चिन्तामणियों के सार (अर्थात् सुन्दर चिन्तामणि) नामक अमूल्य पत्थरों से सजा हुआ, उनका मुकुट है। चमकते हुए तिलकरूप रत्न की आभा वाला मस्तक पर नेत्र विराजित है।।८०।। घोर काले अन्धकार से आवृत घर के अन्धकार के समान उनके घुंघराले बाल हैं, मस्तक पर सीमन्त रेखा (मांग) सिन्दूर की पंक्ति चमक रही है।।८१।। चमकती हुई चांदनी के समान मदयुक्त उनके चञ्चल नेत्र हैं। इस प्रकार वे देवी सब श्रृंगारों से सजी हुई और सब आभूषणों से भूषित हैं।।८२।। वे समस्त संसार की माता

अपांगरिंखत्करुणानिर्झरीतर्पिताखिला। भासते सा भगवती पापघ्नी ललितांबिका॥८४॥
अन्यदैवतपूजानां यस्याः पूजाफलं विदुः। यस्याः पूजाफलं प्राहुर्यस्या एव हि पूजनम्॥८५॥
तस्याश्च ललितादेव्या वर्णयामि कथं पुनः। वर्षकोटिसहस्रेणाप्येकांशो वर्ण्यते न हि॥८६॥
वर्ण्यमाना ह्यवाग्रूपा वाचस्तस्यां कुतो गतिः। यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह॥८७॥
बहुना किमिहोक्तेन तत्त्वभूतमिदं शृणु। न पक्षपातान्न स्नेहान्न मोहाद्वा मयोच्यते॥८८॥
संतु कल्पतरोः शाखा लेखिन्यस्तपसां निधे। मषीपात्राणि सर्वेऽपि सप्त संतु महार्णवाः॥८९॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा भूमिः पत्रत्वमृच्छतु। तस्य लेखनकालोऽस्तु पराध्यार्धिकवत्सरैः॥९०॥
लिखंतु सर्वे लोकाश्च प्रत्येकं कोटिबाहवः। सर्वे बृहस्पतिसमा वक्तारो यदि कुंभज॥९१॥
अथापि तस्याः श्रीदेव्याः पादाब्जैकाङ्गुलिद्युतैः। सहस्रांशेष्वेकैकांशवर्णना न हि जायते।
अथ वा वृत्तिरखिला निष्फला तद्गुणस्तुतौ॥९२॥
बिन्दुपीठस्य परितश्चतुरस्रवया स्थिता। महामाया जवनिकालम्बेत मेचकप्रभाः॥९३॥

(बनाने वाली) और सदा समस्त संसार का आनन्द बढ़ाने वाली हैं। वे ब्रह्माविष्णु और शिव और सदाशिव की निदान भूमि हैं।।८३।। अपनी आँखों से बहती हुई करुणारूप निर्झरी से तर्पित, अर्थात् उनकी आँखों से करुणा सदैव झरती हुई दिखायी देती है, ऐसी वे पापों को नष्ट करने वाली भगवती ललिताम्बिका आदिदेव कामेश्वर भगवान् शिव की गोद में बैठी हुई सुशोभित हो रही हैं।।८४।। अन्य देवताओं की पूजाओं में जिसका फल जानिये। जिसकी पूजा का फल जिसका पूजन ही कहा गया है।।८५।। हयानन ने कहा कि उन ललितादेवी की पूजा का फल उनका ही पूजन है, तब मैं उन ललिता देवी की पूजा का फल और पूजन कैसे वर्णन करूँ।।८५½।।

उनकी पूजा का फल और उनके पूजन का प्रकार यदि वर्णन किया जाये तो करोड़ों वर्षों में भी एक भाग भी नहीं वर्णन किया जा सकता।।८६।। वे देवी अवाग्रूपा हैं, अर्थात् वाणी से वर्णन करने योग्य ही नहीं हैं, फिर उनका वर्णन कैसे किया जा सकता है; क्योंकि वाणियाँ तो मन के साथ किसी विषय को न प्राप्त कर लौट आती हैं, अर्थात् जिस विषय एवं वस्तु की जब मन से कल्पना की जाती है, तब वाणी उसका वर्णन करती है। अतः जब मन ही उसकी कल्पना करने में असमर्थ है, तब वाणी कैसे वर्णन कर सकती है।।८७।। अब हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! बहुत कहने से क्या लाभ? इस तत्त्वभूत रहस्य को सुनिये। मैं न किसी पक्षपात से न स्नेह से और न मोह से कह रहा हूँ। अर्थात् मैं यथार्थ कह रहा हूँ। मैं किसी पक्षपात, प्रेम अथवा मोह से नहीं कह रहा हूँ।।८८।। हे तपोनिधे! अगस्त्य जी! यदि कल्पवृक्ष की शाखाएँ लेखनी हो जायें तथा सब महासमुद्र स्याही के पात्र (दवात) बन जायें तथा पचास करोड़ योजन विस्तृत पृथ्वी कागज बन जाये और उसके लिखने का समय यदि परार्ध (एक शंख) वर्ष से भी अधिक होवे तथा करोड़ भुजाओं वाले समस्त संसार के लोग लिखें और वृहस्पति के समान सब यदि वक्ता होवें तो भी श्रीदेवी के चरणकमल की एक अंगुली की कांति का सहस्रांशों में से एक अंश का भी वर्णन नहीं हो सकता है। अथवा उनके गुणों की स्तुति में समस्त वृत्ति निष्फल है[1]।।८९-९२।। बिन्दुपीठ के चारों ओर चार नदियों से स्थित मेघ के समान काले रंग का महामाया का पर्दा लटक

---

१. यह तो पूर्णतः सत्य है कि ललितेश्वरी (प्रकृति) के विषय में कोई नहीं जान सकता। आज विज्ञान इतना अधिक विकास कर गया है, फिर भी आज के वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि अभी प्रकृति के एक सहस्रांश का भी ज्ञान नहीं है। पूर्णज्ञान तो कदापि सम्भव नहीं है। वैज्ञानिकों को अधिक ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व ही प्रकृति सबकुछ समाप्त कर देगी।

देव्या उपरिहस्तानां विशंतिद्वितयोर्ध्वतः। इन्द्रगोपवितानं तु बद्धं त्रैलोक्यदुर्लभम्॥९४॥
तत्रालंकारजालं तु वर्तमानं सुदुर्लभम्। मद्वाणी वर्णयिष्यंती कंठ एव ह्रिया हता॥९५॥
सैव जानाति तत्सर्वं तत्रत्यमखिलं गुणम्। मनसोऽपि हि दूरे तत्सौभाग्यं केन वर्ण्यते॥९६॥
इत्थं भण्डमहादैत्यवधाय ललिताम्बिका। प्रादुर्भूता चिदनलाद्दग्धनिःशेषदानवा॥९७॥
दिव्यशिल्पिजनैः क्लृप्तं षोडशक्षेत्रवेशनम्। अधिष्ठाय श्रीनगरं सदा रक्षति विष्टपम्॥९८॥
इत्थमेव प्रकारेण श्रीपुराण्यन्यकान्यपि। न भेदकोऽपि विन्यासो नाममात्रं पुरां भिदा॥९९॥
नानावृक्षमहोद्यानमारभ्येतिक्रमेण ये। वदंति श्रीपुरकथां ते यांति परमां गतिम्॥१००॥

आकर्णयंति पृच्छंति विचिन्वंति च ये नराः।
ये पुस्तके धारयंति ते यांति परमां गतिम्॥१०१॥

ये श्रीपुरप्रकारेण तत्तत्स्थानविभेदतः। कृत्वा शिल्पिजनैः सर्वं श्रीदेव्यायतनं महत्।
संपादयंति ये भक्तास्ते यांति परमां गतिम्॥१०२॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने
गृहराजांतरकथनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

रहा है।।९३।। उन देवी के ऊपर चालीस हाथ ऊर्ध्व से तीनों लोकों में दुर्लभ इन्द्रगोप वितान (तम्बू) तना हुआ।।९४।। वहाँ अलंकार का जाल बिछा हुआ है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। मेरी वाणी वर्णन करेगी तो कण्ठ ही लज्जा से नष्ट हो जायेगा। वहाँ के जितने गुण हैं, उनको वे ललिता देवी ही जानती हैं। जहाँ मन की गति भी नहीं पहुँच सकती, उस सौभाग्य का किसके द्वारा वर्णन किया जा सकता है।।९५-९६।। इस प्रकार भण्डासुर दैत्य के वध के लिये प्रकट हुई श्री ललिताम्बिका देवी चिद्रूप अग्नि से समस्त दैत्यों को जलाने वाली दिव्य शिल्पि लोगों द्वारा सोलह क्षेत्र वाले घरों को अधिष्ठित कर सदैव श्रीनगर विष्टप (आसन) की रक्षा करती हैं।।९७-९८।।

इसी प्रकार से अन्य श्रीपुर भी हैं। उनमें कोई भेद नहीं है, केवल नाम मात्र भेद से वे पुर हैं।।९९।। जो मनुष्य अनेकों प्रकार के वृक्षों, महोद्यानों से आरम्भ करके इस क्रम से श्रीपुर की कथा का वर्णन करते हैं, वे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।१००।। तथा जो मनुष्य इस कथा को सुनते हैं, पूछते हैं, इस कथा का चयन करते हैं तथा जो पुस्तक में धारण करते हैं, अर्थात् इस कथा पर पुस्तक लिखते हैं। वे भी परम गति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।१०१।। जो मनुष्य श्रीपुर के प्रकार को पढ़कर उसके अनुसार स्थानों का विभेद कर शिल्पकारों द्वारा श्रीदेवी के महान् आयतन को बनवाते हैं, वे मनुष्य परम गति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।१०२।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३७वाँ अध्याय गृहराज के अन्दर का कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

मन्त्रराजसाधनकथनंनाम

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

श्रुतमेतन्महावृत्तमाविर्भावादिकं महत्। भंडासुरवधश्चैव देव्याः श्रीनगरस्थितिः॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तस्या मंत्रस्य साधनम्। तन्मन्त्राणां लक्षणं च सर्वमेतन्निवेदय॥२॥

हयग्रीव उवाच

सर्वेभ्योऽपि पदार्थेभ्यः शाब्दं वस्तु महत्तरम्। सर्वेभ्योऽपि हि शब्देभ्यो वेदराशिर्महान्मुने॥३॥
सर्वेभ्योऽपि हि वेदेभ्यो वेदमन्त्रा महत्तराः। सर्वेभ्यो वेदमन्त्रेभ्यो विष्णुमन्त्रा महत्तराः॥४॥
तेभ्योऽपि दौर्गमन्त्रास्तु महांतो मुनिपुङ्गव। तेभ्यो गाणपता मन्त्रा मुने वीर्य महत्तराः॥५॥
तेभ्योऽप्यर्कस्य मन्त्रास्तु तेभ्यः शैवा महत्तराः।
तेभ्योऽपि लक्ष्मीमन्त्रास्तु तेभ्यः सारस्वता वराः॥६॥
तेभ्योऽपि गिरिजामंत्रास्तेभ्यश्चाम्नायभेदजाः। सर्वाम्नायमनुभ्योऽपि वाराहा मनवो वरा;॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३८

मन्त्रराज साधन कथन

अगस्त्य मुनि बोले कि भगवन् हयग्रीव! मैंने इस श्री ललितादेवी के महान् महाचक्र का आविर्भाव आदि को, भण्डासुर वध को और देवी के नगर की स्थिति को सुना।।१।। अब हे भगवन्! मैं उसके मन्त्रसाधन को और उन मन्त्रों के लक्षणों को सुनना चाहता हूँ। कृपा करके उस सब को हमें बताइए।।२।।

हयग्रीव बोले कि अगस्त्य मुने! सब पदार्थों से शाब्द वस्तु महान् है, अर्थात् सब पदार्थों से शब्द महान् है तथा सब शब्दों से वेदराशि चारों विद् महान् है।।३।। सब वेदों से वेदमन्त्र महान् हैं तथा सब वेदमन्त्रों से विष्णुमन्त्र महान् है।।४।। उन विष्णु मन्त्रों से भी हे मुनिश्रेष्ठ! दुर्गा देवी के मन्त्र महान् हैं। उन दुर्गा मन्त्रों से भी हे मुनिवर! गाणपत्त (गणेश जी के स्तुति मन्त्र) महान् पराक्रम प्रदान करने वाले हैं।।५।। उन गाणपत मन्त्रों से भी सूर्य के मन्त्र महान् फलदायक हैं। उनसे भी शैव मन्त्र महान् हैं। उन शैवमन्त्रों से लक्ष्मी मन्त्र श्रेष्ठ है तथा लक्ष्मी मन्त्रों से सरस्वती देवी के मन्त्र श्रेष्ठ हैं।।६।। उन सारस्वत मन्त्रों से भी श्रेष्ठ गिरिजा (हिमालय पुत्री पार्वती) के मन्त्र श्रेष्ठ हैं और उनसे भी ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों एवं मनु आदि स्मृतियों से उत्पन्न मन्त्र श्रेष्ठ है तथा उन ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् एवं मनु आदि स्मृतियों से उत्पन्न मन्त्र श्रेष्ठ हैं तथा उन ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद एवं मनुओं से भी श्रेष्ठ वाराह मनु के मन्त्र हैं।।७।।

तेभ्यः श्यामामनुवरा विशिष्टा इल्वलांतक तेभ्योऽपि ललितामन्त्रा दशभेदविभेदिताः॥८॥
तेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दन। लोपामुद्रा कामराज इति ख्यातिमुपागतौ॥९॥
ह्रादिस्तु लोपामुद्रा स्यात्कामराजस्तु कादिकाः।
हंसादेर्वाच्यतां याताः कामराजो महेश्वरः॥१०॥
स्मरादेर्वाच्यतां याता देवी श्रीललितांबिका। हादिकाद्योर्मंत्रयोस्तु भेदो वर्णत्रयोद्भवः॥११॥
तयोश्च कामराजोऽयं सिद्धिदो भक्तिशालिनाम्।
शिवेन शक्त्या कामने क्षित्या चैव तु मायया॥१२॥
हंसेन भृगुणा चैव कामने शशिमौलिना। शक्रेण भुवनेशेन चन्द्रेण च मनोभुवा॥१३॥
क्षित्या हृल्लेखया चैव प्रोक्तो हंसादिमंत्रराट्।
कामादिमंत्रराजस्तु स्मरयोनिः श्रियो मुखे॥१४॥
पञ्चत्रिकमहाविद्या ललितांबा प्रवाचिकाम्। ये यजंति महाभागास्तेषां सर्वत्र सिद्धये॥१५॥
सद्गुरोस्तु मनुं प्राप्य त्रिपञ्चार्णं परिष्कृतम्। सम्यक्संसाधयेद्विद्वान्वक्ष्यमाणप्रकारतः॥१६॥
तत्क्रमेण प्रवक्ष्यामि सावधानो मुने शृणु। प्रातरुत्थाय शिरसि स्मृत्वा कमलमुज्ज्वलम्॥१७॥
सहस्रपत्रशोभाढ्यं सकेशरसुकर्णिकम्। तत्र श्रीमद्गुरुं ध्यात्वा प्रसन्नं करुणामयम्॥१८॥

हे इल्वालान्तक![१] अगस्त्य जी! उनसे भी श्रेष्ठ श्यामा (काली) देवी के मन्त्र हैं। उनसे भी श्रेष्ठ श्री ललिता देवी के मन्त्र हैं, जो दश भेदों में विभक्त किये गये हैं।।८।। उनमें भी हे विन्ध्यमर्दन! अगस्त्य जी! दो मनुराज वरिष्ठ हैं, लोपामुद्रा और कामराज ख्याति प्राप्त किये हुए हैं।।९।। ह्रादिक तो लोपामुद्रा है और कादिक कामराज है, हंसादि से कामराज महेश्वर ने वाचाता को प्राप्त किया है।।१०।। स्मरादि से श्रीललिता अम्बिका ने वाच्यता प्राप्त की है। हादिक आदि दोनों मन्त्रों से तीन भेद पैदा हुए हैं।।११।। उन दोनों में यह कामराज भक्तिशालिनियों के लिये सिद्धि प्रदान करने वाला है। शिव ने शक्ति द्वारा, कामदेव ने पृथ्वी और माया से, हंस ने भृगु द्वारा, इन्द्र ने भुवनेश द्वारा, चन्द्रमा ने मनोभुव द्वारा, क्षिति ने हृदय उल्लेख द्वारा, हंसादि मन्त्रराज को कहा। कामादि मन्त्रराज को स्मरयोनि वाला तथा लक्ष्मी के मुख वाला है। पंचत्रिक महाविद्या वाले ललिताम्ब के प्रवाचिक मन्त्र को जो महाभाग यज्ञ करते हैं। उनकी सर्वत्र सफलता होती है।।१२-१५।। सद्गुरु के मनु को प्राप्त कर तीन और पाँच परिष्कृत मन्त्र की विद्वान् को सम्यक् रूप से सही सही उच्चारण के प्रकार से साधना करनी चाहिए।।१६।। अतः हे मुने! मैं उसी क्रम से वर्णन करूँगा, आप सावधान होकर सुनिये। प्रातः काल उठ कर कमल के समान उज्ज्वल, हजारों पत्रों की शोभा वाले, कानों में सुगन्धित केसर से युक्त वहाँ प्रसन्न और करुणामय श्रीमान् गुरु का ध्यान करना चाहिए।।१७।। उसके बाहर निकल कर शौचादिक क्रियाएँ करनी चाहिए। इसके बाद आकर मृदु जल और तैल से शरीर पर लेप करना चाहिए।।१८।।

१. महाभारत तीर्थयात्रा पर्व अगस्त्योपाख्यान अध्याय ९६ के अनुसार तथा हरिवंश पुराण अध्याय ३७ के अनुसार सिद्धि का पुत्र एवं वातापि के भाई इल्वल नामक दैत्य का अन्त करने के कारण अगस्त्य मुनि को इल्वालान्तक कहा गया है।

जब आकाश में अगस्त्य नामक तारे का उदय होता है, उस समय मृगशिरा नक्षत्र के पास पाँच तारे छिप जाते हैं, इसीलिए अगस्त्य मुनि को इल्वलान्तक कहा गया है।

ततो बहिर्विनिर्गत्य कुर्याच्छौचादिकाः क्रियाः। अथागत्य च तैलेन सामोदेन विलेपितः॥१९॥
उद्वर्तितश्च सुस्नातः शुद्धेनोष्णेन वारिणा। आपो निसर्गतः पूताः किं पुनर्वह्निसंयुताः।
तस्मादुष्णोदके स्नायात्तदभावे यथोदकम्॥२०॥
परिधाय पटौ शुद्धे कौसुम्भौ नाथ वारुणौ।
आचम्य प्रयतो विद्वान्हृदि ध्यायन्परांबिकाम्॥२१॥
ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिपुण्ड्रं वा पट्टवर्धनमेव वा। अगस्त्यपत्राकारं वा धृत्वा भाले निजोचितम्।
अन्तर्हितश्च शुद्धात्मा सन्ध्यावन्दनमाचरेत्॥२२॥
अश्वत्थपत्राकारेण पात्रेण सकुशाक्षतम्। सपुष्पचन्दनं चार्घ्यं मार्तण्डाय समुत्क्षिपेत्॥२३॥
तथार्घ्यभावदेवत्वाल्ललितायै त्रिरर्घ्यकम्। तर्प्पयित्वा यथा शक्ति मूलेन ललितेश्वरीम्॥२४॥
देवर्षिपितृवर्गांश्च तर्पयित्वा विधानतः। दिवाकरमुपास्थाय देवीं च रविबिम्बगाम्॥२५॥
मौनी विशुद्धहृदयः प्रविश्य मखमंदिरम्। चारुकर्पूरकस्तूरीचन्दनादिविलेपितः॥२६॥
भूषणैर्भूषितांगश्च चारुश्रृङ्गारवेषधृक्। आमोदिकुसुमश्रग्भिरवतंसितकुंतलः॥२७॥
संकल्पभूषणो वाथ यथाविभवभूषणः। पूजाखंडे वक्ष्यमाणान्कृत्वा न्यासाननुक्रमात्॥२८॥

उसके बाद शुद्ध और उष्ण जल से अच्छी तरह स्नान करना चाहिए, वैसे जल तो स्वभाव से ही पवित्र होते हैं, फिर उनको अग्नि से गर्म करने की क्या आवश्यकता है? अतः उष्ण जल से ही स्नान करना चाहिए; क्योंकि गर्म करने पर जल पवित्र हो जाता है, उसके समस्त घातक कीटाणु मर जाते हैं, इसलिये गर्म जल में ही स्नान करना चाहिये। उसके अभाव में जैसा जल हो, उसी से स्नान कर लेना चाहिए।।१९-२०।। फिर शुद्ध वस्त्र पहन कर फिर विद्वान् पुरुष को जलपात्र में से जल लेकर हृदय में ललिता देवी का ध्यान करते हुए आचमन करना चाहिए।।२१।। उसके बाद अपने मस्तक पर त्रिपुण्ड्र (तीन रेखाएँ) ऊपर को अथवा लम्बाई में अथवा अगस्त्य वृक्ष के पत्र के आकार की रेखाएं बनानी चाहिये, अथवा पूरे मस्तक पर ही चन्दन का लेप कर लेना चाहिए। तब अपने शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा से सन्ध्या वन्दन करना चाहिए।।२२।। तब पीपल के पत्ते के आकार वाले पात्र से अर्थात् पीपल के पत्ते को ही पात्र बनाकर कुश और अक्षत के साथ पुष्प और चन्दन से अर्घ्य बनाकर मार्तण्ड भगवान् सूर्य की ओर फेंकना चाहिए।।२३।। तथा अर्घ्यभाव देवत्व से अर्थात् मैं देवी की पूजा की सामग्री अर्पित कर रहा हूँ। इस भाव से देवी ललिता के लिये तीन अर्घ्य ले करके यथाशक्ति मुख्यतः श्री ललितेश्वरी का तर्पण करना चाहिए।।२४।।

फिर विधान पूर्वक देवर्षि पितरगण का तर्पण करके सूर्य की उपस्थापना कर और फिर सूर्य के अन्तर्गत बिम्ब रूप में स्थित ललिता देवी की उपस्थापना करे।।२५।। फिर मौन धारण कर विशुद्ध हृदय मनुष्य यज्ञमन्दिर में प्रवेश करे, तब सुन्दर कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि का शरीर पर लेप करे।।२६।। उसके बाद भूषणों से भूषित अंग वाला सुन्दर शृंगार वेष को धारण करने वाला, खिले हुए फूलों की मालाओं से अपने बालों को सजाये।।२७।। संकल्प भूषण अर्थात् यदि भूषण न हों तो भूषण पहनने का मन में संकल्प करे अथवा यदि आभूषण हों, तो पहन कर बैठने वाला व्यक्ति पूजा के भागों में, जिनको जहाँ बैठाना हो, वहाँ पर क्रम से बैठाकर कोमल आसन पर बैठकर पहले महान् श्रीनगर का ध्यान करे।।२८-२८½।। तथा मनुष्य को उस श्रीनगर का ध्यान भी अनेकों प्रकार के वृक्षों और

मृद्वासने समासीनो ध्यायेच्छ्रीनगरं महत्। नानावृक्षमहोद्यानमारभ्य ललिताविधि॥२९॥
ध्यायेच्छ्रीनगरं दिव्यं बहिरन्तरतः शुचिः। पूजाखंडोक्तमार्गेण पूजां कृत्वा विलक्षणः॥३०॥
अक्षमालां समादाय चन्द्रकस्तूरिवासिताम्। उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा जपेत्सिंहासनेश्वरीम्।
षट्त्रिंशल्लक्षसंख्यां तु जपेद्विद्या प्रसीदति॥३१॥
तद्दशांशस्तु होमः स्यात्तद्दशांशं च तर्पणम्। तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं समुदीरितम्॥३२॥
एवं स सिद्धमन्त्रस्तु कुर्यात्काम्यजपं पुनः। लक्षमात्रं जपित्वा तु मनुष्यान्वशमानयेत्॥३३॥
लक्षद्वितयजाप्येन नारीः सर्वा वशं नयेत्। लक्षत्रितयजापेन सर्वान्वशयते नृपान्॥३४॥
चतुर्लक्षजपे जाते क्षुभ्यंति फणिकन्यकाः। पञ्चलक्षजपे जाते सर्वाः पातालयोषितः॥३५॥
भूलोकसुन्दरीवर्गो वश्यः षड्लक्षजापतः। क्षुभ्यंति सप्त लक्षेण स्वर्गलोकमृगीदृशः॥३६॥
देवयोनिभवाः सर्वेऽप्यष्टलक्षजपाद्वशाः। नवलक्षेण गीर्वाणानखिलान्वशमानयेत्॥३७॥
लक्षैकादशजाप्येन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। लक्षद्वादशजापेन सिद्धीरष्टौ वशं नयेत्॥३८॥
इन्द्रस्येन्द्रत्वमेतेन मन्त्रेण ह्यभवत्पुरा। विष्णोर्विष्णुत्वमेतेन शिवस्य शिवतामुना॥३९॥
इन्दोश्चंद्रत्वमेतेन भानोर्भास्करतामुना। सर्वासां देवतानां च तास्ताः सिद्धय उज्ज्वलाः।
अनेन मन्त्रराजेन जाता इत्यवधारय॥४०॥

महोद्यानों से आरम्भ करके कामेश्वर मृदु आसन पर बैठी हुई ललितेश्वरी तक का ध्यान करना चाहिए।।२७½-२९।। विलक्षण साधक को बाहर और भीतर पवित्र श्रीनगर का ध्यान करना चाहिए। फिर पूजाखण्ड में कहे गये मार्ग से पूजा करके उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुख करके अक्षमाला लेकर कपूर और कस्तूरी से सुगन्धित सिंहासनेश्वरी श्रीललितेश्वरी का जप करना चाहिए। तब छत्तीस लाख की संख्या में मन्त्र का जाप करने से विद्या देवी प्रसन्न होती है।।३०-३१।। उसके दशवें अंश का ३६०००० (तीन लाख साठ हजार) मन्त्र से होम होना चाहिए। उसके दशवें अंश ३६००० (छत्तीस हजार) मंत्रों से तर्पण होना चाहिए, उसके दशवें अंश ३६०० (छत्तीस सौ) मन्त्र से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र का पुनः जप करना चाहिए।।३०½-३२½।। एक लाख बार जपने से साधक मनुष्यों को वश में कर सकता है। दो लाख बार जप करने से स्त्री को वश में किया जा सकता है तथा तीन लाख बार जाप करने से सब राजा वश में हो जाते हैं।।३२½-३४।।

चार लाख मन्त्रों का जप करने से नागकन्याएँ वश में हो जाती हैं। पाँच लाख जप करने पर सभी पाताल की स्त्रियाँ वश में आयी जानी चाहिएँ।।३५।। छः लाख बार जप करने पर पृथ्वी की सुन्दरियों को वश में लाया जाना चाहिए तथा सात लाख बार जप करने से स्वर्गलोक की मृगलोचनियों को वश में लाया जा सकता है।।३६।। आठ लाख जप करने पर देवयोनियों में उत्पन्न स्त्रियों को वश में किया जा सकता है। नौ लाख जाप करने पर समस्त वाणियों को वश में लाया जा सकता है।।३७।। ग्यारह लाख बार जप करने पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश को तथा बारह लाख मन्त्र जप से आठों सिद्धियों को वश में लिया जा सकता है।।३८।। प्राचीन काल में इन्द्र का इन्द्र होना इसी मन्त्र से हुआ था, अर्थात् उसी मन्त्र से सामान्य व्यक्ति इन्द्र बना था। विष्णु का विष्णु होना इसी मन्त्र से तथा इसी मन्त्र से शिव भगवान् शिव बने।।३९।। चन्द्रमा का चन्द्रमा होना तथा सूर्य का सूर्य बनना इसी मन्त्र से हुआ, सब देवताओं को वे वे उज्ज्वल सिद्धियाँ इस मन्त्रराज से ही हुईं, इस बात को समझना चाहिए।।४०।।

एतन्मत्रस्य जापी तु सर्वपापविवर्जितः। त्रैलोक्यसुन्दराकारो मन्मथस्यापि मोहकृत्॥४१॥
सर्वाभिः सिद्धिभिर्युक्तः सर्वज्ञः सर्वपूजितः। दर्शनादेव सर्वेषामन्तरालस्य पूरकः॥४२॥
वाचा वाचस्पतिसमः श्रिया श्रीपतिसंनिभः। बले मरुत्समानः स्यात्स्थिरत्वे हिमवानिव॥४३॥
औन्नत्ये मेरुतुल्यः स्याद्गांभीर्येण महार्णवः। क्षणात्क्षोभकरो मूर्त्या ग्रामपल्लीपुरादिषु॥४४॥
ईषद्भ्रूभङ्गमात्रेण स्तम्भको जृंभकस्तथा। उच्चाटको मोहकश्च मारको दुष्टचेतसाम्॥४५॥
क्रुद्धः प्रसीदति हठात्तस्य दर्शनहर्षितः। अष्टादशसु विद्यासु निरूढिमभिगच्छति॥४६॥
मन्दाकिनीपूरसमा मधुरा तस्य भारती। न तस्याविदितं किंचित्सर्वशास्त्रेषु कुम्भज॥४७॥
दर्शनानि च सर्वाणि कर्तुं खण्डयितुं पटुः। तत्त्वज्ञानाति निखिलं सर्वज्ञत्वं च गच्छति॥४८॥
सदा दयार्द्रहृदयं तस्य सर्वेषु जंतुषु। तत्कोपाग्नेर्विषयतां गन्तुं नालं जगत्रयी॥४९॥
तस्य दर्शनवेलायां श्लथन्नीवीनिबंधनाः। विश्रस्तरशनाबंधा गलत्कुण्डलसञ्चयाः॥५०॥
घर्मवारिकणश्रेणीमुक्ताभूषितमूर्तयः। अत्यन्तरागतरलव्यापारनयनाञ्चलाः॥५१॥

इस मन्त्र का जप करने वाला तो सब पापों से रहित हो जाता है, वह तीनों लोकों में सुन्दर आकार वाला हो जाता है और कामदेव को भी मोहित करने वाला हो जाता है।।४१।। वह सब सिद्धियों से युक्त हो जाता है, सर्वज्ञ और सबके द्वारा पूजित होता है। देखने से ही सब अन्तराल को पूर्ण करने वाला हो जाता है।।४२।। वह वाणी से वाणी के स्वामी ब्रह्मा के समान तथा धन-दौलत और शारीरिक सुन्दरता में लक्ष्मीपति विष्णु के समान हो जाता है तथा बल में वायु के समान और स्थिरता में हिमालय के समान हो जाता है।।४३।। ऊँचाई (उन्नति) में मेरु पर्वत के समान, गम्भीरता में महासमुद्र के समान हो जाता है। वह अपनी मूर्ति से क्षण भर में ग्राम, मुहल्ला और नगरों को दुःखी करने वाला हो जाता है, अर्थात् वह क्षण भर में ग्राम, मुहल्ला अथवा नगर में क्षोभ पैदा कर सकता है।।४४।।

वह अपनी थोड़ी सी भौंहें टेढ़ी कर दे अर्थात् थोड़ा सा क्रोध करे, तो दुष्ट पुरुषों का स्तम्भक, जृम्भक, उच्चाटक और मोहक हो जाता है, अर्थात् वह क्षण भर में दुष्ट पुरुषों का स्तम्भन (जहाँ के तहाँ हाथ-पैरों को चलने से रोक देना) जृम्भण (आलस्य युक्त) बना देना, उच्चाटन (भगाना) और मोहन (मोहित करना) कर सकता है।।४५।। क्रोधी व्यक्ति उसे देखने से हर्षित होकर प्रसन्न हो जाते हैं। अठारहों विद्याओं में वह निरुढि (प्रसिद्धि) प्राप्त कर लेता है।।४६।। तथा हे अगस्त्य मुने! उसकी वाणी मन्दाकिनी (गङ्गा) नदी की लहर के समान मधुर हो जाती है तथा सब शास्त्रों में उसके लिए कुछ अविदित नहीं होता है। अर्थात् सब छात्रों में वह प्रवीण हो जाता है।।४७।। सब दर्शनों का खण्डन करने में वह कुशल हो जाता है तथा समस्त तत्त्वों को जानता है और सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है।।४८।।

तब सब प्राणियों के प्रति उसका हृदय दयार्द्र हो जाता है। उसके क्रोध की ज्वाला में जलने के लिए तीनों लोक पर्याप्त नहीं हैं, अर्थात् उसके क्रोध की अग्नि में तीनों लोकों के अलावा अन्य कुछ भी जल सकता है।।४९।। इस मन्त्रराज का जाप करने वाले की दर्शन वेला में सुन्दरियों के नीवी बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। अर्थात् वह इतना सुन्दर और आकर्षक हो जाता है कि स्त्रियाँ उसके आगे अपनी नारी की गाँठ खोलने के लिए तैयार हो जाती हैं। यही नहीं, कर्धनी के बन्धन ढीले हो जाते हैं तथा कान से कुण्डल गिर जाते हैं।।५०।। पसीने की बूँदें जिनके मुखारविन्द पर मोती की तरह चमक रही हैं, ऐसे शरीरों वाली अत्यन्त प्रेम के कारण तरल व्यापार से चञ्चल नेत्रों वाली इस ललिता

स्रंसमानकरांभोजमणिकङ्कणपंक्तयः। ऊरुस्तम्भेन निष्पंदा नमितास्याश्च लज्जया॥५२॥
द्रवत्कन्दर्पसदनाः पुलकाङ्कुरभूषणाः। अन्यमाकारमिव च प्राप्ता मानसजन्मना॥५३॥
दीप्यमाना इवोद्दामरागज्वालाकदंबकैः। वीक्ष्यमाणा इवानंगशरपावकवृष्टिभिः॥५४॥
उत्कंठया तुद्यमानाः खिद्यमाना तनूष्मणा।
सिच्यमानाः श्रमजलैः शुच्यमानाश्च लज्जया॥५५॥
कुलं जातिं च शीलं च लज्जां च परिवारकम्। लोकाद्भयं बंधुभयं परलोकभये तथा॥५६॥
मुञ्चंत्यो हृदि याचंत्यो भवंति हरिणीदृशः। अरण्ये पत्तने वापि देवालयमठेषु वा।
यत्र कुत्रापि तिष्ठंतं तं धावंति मृगीदृशः॥५७॥
अत्याहतो यथैवांभोबिंदुर्भ्रमति पुष्करे। तद्वद्भ्रमंति चित्तानि दर्शने तस्य सुभ्रुवाम्॥५८॥
विनीतानवनीतानां विद्रावणमहाफलम्। तं सेवंते समस्तानां विद्यानामपि पंक्तयः॥५९॥
चंद्रार्कमंडलद्वंद्वकुचमंडलशोभिनी। त्रिलोके ललना तस्य दर्शनादनुरज्यति।
अन्यासां तु वराकीणां वक्तव्यं किं तपोधन॥६०॥
पत्तनेषु च वीथीषु चत्वरेषु वनेषु च। तत्कीर्तिघोषणा पुण्या सदा द्युसदद्भुमायते॥६१॥

देवी के मन्त्र का जाप करने वाले पुरुष को देखकर स्त्रियों के मुखारविन्द पर पसीनों की बूँदें मोतियों की तरह झलकने लगती हैं तथा उनके अन्दर इतनी काम की आसक्ति बढ़ जाती है कि उनके कार्यकलाप भी शिथिल पड़ जाते हैं और उनके नेत्र चञ्चल हो जाते हैं। तब उनके करमकलों के मणिजटित कंगन ढीले हो जाते हैं। वे अपनी जङ्घाओं से निष्पन्द (गतिहीन) होकर लज्जा से झुक जाती हैं।।५१-५२।। उस ललिता मन्त्रजापी को देख कर स्त्रियों के कामदेव सदन (योनियाँ) गीली हो जाती हैं और शरीर के रोम अंकुर की तरह खड़े हो जाते हैं, अर्थात् वे रोमाञ्चित हो जाती हैं। वे कामावेग में अन्य प्रकार के आकार वाली हो जाती हैं। उस मन्त्रजापी में इतना आकर्षण पैदा हो जाता है कि स्त्रियाँ उसे देखकर अन्य की तरह की हो जाती हैं।।५३।। वे स्त्रियाँ आसक्ति-कामाग्नि की ज्वालाओं से जलते हुए के समान हो जाती हैं तथा कामदेव के बाण की अग्निवर्षाओं से सराबोर होती हुई दिखाई देती हैं।।५४।।

कामबाण के कारण उनके मन की उसके साथ लिपटने की बलवती इच्छा प्रेरित करने लगती है और वे शरीर की ऊष्मा से खिन्न हो जाती हैं। तब कामबाण की आग से तप्त अपने शरीर को वे पसीने से ठंडा करती हुई लज्जा से चिन्ताग्रस्त हो जाती हैं।।५५।। उस समय कुल, जाति, शील, लज्जा, परिवार, लोक से भय, बन्धुओं से भय तथा परलोक भय सबको छोड़ती हुई मृगलोचनाएँ हृदय में उनके साथ सहवास करने की याचना करती हैं। वन में, घर में, मन्दिरों में अथवा मठों में जहाँ कहीं भी वह ललिता मन्त्र का जाप करने वाला हुआ होता है, स्त्रियाँ उसके पीछे दौड़ती हैं।।५६-५७।। जिस प्रकार किसी के द्वारा टक्कर लगाये गये जलबिन्दु तालाब में घूमने लगते हैं, उसी प्रकार उस ललिता मन्त्रजापी का दर्शन होने पर सुन्दर भौंहों वाली स्त्रियों के चित्त घूमने लगते हैं।।५८।। संसार में मक्खन के समान विनम्र स्वभाव वाली स्त्रियों को द्रवित करना महाफल है। ललिता मन्त्र का जप करने वाले समस्त विद्याओं के धनी वे व्यक्ति उस महाफल का सेवन करते हैं।।५९।। हे तपोनिधि अगस्त्य जी! त्रिलोक में चन्द्रमा और सूर्य के समान कुचमण्डलों की शोभा वाली ललना (स्त्री) उसे देखने से उसके प्रति अनुरक्त हो जाती है। अन्य बेचारियों की तो बात ही क्या है।।६०।। घरों में, गलियों में, चबूतरों पर तथा वनों में उस ललिता मन्त्रजापी की कीर्ति की

तस्य दर्शनतः पाप जालं नश्यति पापिनाम्। तद्गुणा एव घोक्ष्यंते सर्वत्र कविपुंगवैः॥६२॥
भिन्नैर्वर्णैरायुधैश्च भिन्नैर्वाहनभूषणैः। ये ध्यायंति महादेवीं तास्ताः सिद्धिर्भजति ते॥६३॥
मनोरादिमखंडस्तु कुन्देंदुधवलद्युतिः। अहश्चक्रे ज्वलज्ज्वालश्चिंतनीयस्तु मूलके॥६४॥
इंद्रगोपकसंकाशो द्वितीयो मनुखण्डकः। नीभालनीयेऽहश्चक्रे आबालांतज्वलच्छिखः॥६५॥
अथ बालादिपद्मस्थद्विदलांबुजकोटरे। नीभालनीयस्तार्तीयखण्डो दुरितखंडकः॥६६॥
मुक्ता ध्येया शशिजोत्स्ना धवलाकृतिरंबिका। रक्तसंध्यकरोचिः स्याद्वशीकरणकर्मणि॥६७॥
सर्वसंपत्तिलाभे तु श्यामलाङ्गी विचिंत्यते। नीला च मूकीकरणे पीता स्तंभनकर्मणि॥६८॥
कवित्वे विशदाकारा स्फटिकोपलनिर्मला। धनलाभे सुवर्णाभा चिंत्यते ललितांबिका॥६९॥
आमूलमाब्रह्मबिलं ज्वलन्माणिक्यदीपवत्। ये ध्यायंति महापुञ्जं ते स्युः संसिद्धसिद्धयः॥७०॥
एवं बहुप्रकारेण ध्यानभेदेन कुम्भज। निभालयंतः श्रीदेवीं भजंति महतीं श्रियम्।
प्राप्यते सद्भिरेवैषा नासद्भिस्तु कदाचन॥७१॥
यैस्तु तप्तं तपस्तीव्रं तैरेवात्मनि ध्यायते। तस्य नो पश्चिमं जन्म स्वयं यो वा न शंकरः।
न तेन लभ्यते विद्या ललिता परमेश्वरी॥७२॥
वंशे तु यस्य कस्यापि भवेदेष मनुर्यदि। तद्वंश्याः सर्व एव स्युर्मुक्तास्तृप्ता न संशयः॥७३॥

पुण्य घोषणा शीघ्र चमकती हुई बीज से वृक्ष बन जाती है।।६१।। उसके दर्शन से पापियों का पापसमूह नष्ट हो जाता है। उसके गुण ही सर्वत्र कविश्रेष्ठों द्वारा घोषित किये जायेंगे।।६२।। भिन्न वर्णों, भिन्न आयुधों, भिन्न वाहनों और भिन्न भूषणों से जो उन महादेवी का ध्यान करते हैं, वे सब उन-उन सिद्धियों को प्राप्त करते हैं।।६३।। चमेली के फूल के समान श्वेत कान्ति मनु के आदिम अखण्ड मनु ने जलती हुई ज्वाला से चिन्तनीय दिन बनाया था।।६४।। इन्द्रगोपक के समान दूसरे मनु खण्डक ने प्रातःकालीन सूर्य के अन्त तक जलती शिखाओं वाले दर्शनीय दिन को बनाया। इसके बाद बालादि कमल में स्थित दो दल वाले कमल के कोटर में दर्शनीय तीसरे पाप का खण्डन करने वाले।।६६।। चन्द्रमा की चाँदनी के समान धवल आकृति वाली अम्बिका को मुक्त रूप से ध्यान करना चाहिए और वशीकरण कर्म में उनकी लाल कमल की कान्ति के रूप में कल्पना कर ध्यान करना चाहिए।।६७।।

सब प्रकार की सम्पत्तियों को प्राप्त करने में श्यामल अंग वाली की मन में कल्पना कर ध्यान करना चाहिए तथा किसी को मूक बनाने (गूंगा बनाने) में नील वर्ण की तथा स्तम्भन कर्म में माँ के पीत वर्ण में होने की कल्पना कर ध्यान करना चाहिए।।६८।। यदि मनुष्य को कवित्व प्राप्त करना है, अच्छा कवि बनना है, तब विशाल आकार वाली स्फटिक पत्थर (संगमरमर) के समान माँ का ध्यान करना चाहिए तथा धन प्राप्त करने में स्वर्ण की आभा के समान ललितेश्वरी का चिन्तन किया जाता है।।६९।। जो मनुष्य जलते हुए माणिक्य दीप के समान आमूल ब्रह्मयोनि महापुञ्ज (शंकर) का ध्यान करते हैं, वे समस्त सम्यक् रूप से सिद्ध सिद्धियों को प्राप्त करते हैं।।७०।। इस प्रकार हे अगस्त्य जी! बहुत प्रकार से और अनेकों प्रकार से ध्यान भेदों के अनुसार ललिता देवी का मस्तक में ध्यान करते हुए उनको भजते हैं, वे महती लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं; परन्तु यह लक्ष्मी सज्जनों द्वारा ही प्राप्त की जाती है, दुष्ट पुरुषों द्वारा कभी नहीं प्राप्त की जा सकती।।७१।। जिन्होंने तीव्र तप किया है, उनके द्वारा ही वे आत्मा में ध्यान की जाती हैं। उसका बाद में जन्म नहीं होता, जो स्वयं शंकर नहीं है, उसके द्वारा ललिता परमेश्वरी की विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती।।७२।। यदि जिस किसी के वंश में यह मनुष्य है, तो उसके समस्त वंशज जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं और तृप्त हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।७३।।

गुप्ताद्गुप्ततरैवैषा सर्वशास्त्रेषु निश्चिता। वेदाः समस्तशास्त्राणि स्तुवंति ललितेश्वरीम्।।७४।।
परमात्मेयमेव स्यादियमेव परा गतिः। इयमेव महत्तीर्थमियमेव महत्फलम्।।७५।।
इमां गायंति मुनयो ध्यायंति सनकादयः। अर्चंतीमां सुरश्रेष्ठा ब्रह्माद्याः पंचसिद्धिदाम्।।७६।।
न प्राप्यते कुचारित्रैः कुत्सितैः कुटिलाशयै;। दैवबाह्यैर्वृथातर्कैर्वृथा विभ्रांत बुद्धिभिः।।७७।।
नष्टैरशीलैरुच्छिष्टैः कुलभ्रष्टैश्च निष्ठुरैः। दर्शनद्वेषिभिः पापशीलैराचारनिंदकैः।।७८।।
उद्धतैरुद्धतालापैर्दांभिकैरतिमानिभिः। एतादृशानां मर्त्यानां देवानां चातिदुर्लभा।।७९।।
देवतानां च पूज्यत्वमस्याः प्रोक्तं घटोद्भव। भंडासुर वधायैषा प्रादुर्भूता चिदग्नितः।।८०।।
महात्रिपुरसुन्दर्या मूर्तिस्तेजोविजृंभिता। कामाक्षीति विधात्रा तु प्रस्तुता ललितेश्वरी।।८१।।
ध्यायतः परया भक्त्या तां परां ललितांबिकाम्। सदाशिवस्य मनसो लालनाल्ललिताभिधा।।८२।।
यद्यत्कृतवती कृत्यं तत्सर्वं विनिवेदितम्। पूजाविधानमखिलं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना।
खण्डांतरे वदिष्यामि तद्विलासं महाद्भुतम्।।८३।।

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मंत्रराजसाधनप्रकारकथन्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

यह सब शास्त्रों में गुप्त से भी गुप्त और निश्चित तथ्य है कि वेद और समस्त शास्त्र ललितेश्वरी देवी की स्तुति करते हैं।।७४।। ये ललिताम्बिका ही परमात्मा हैं और ये ही परा गति हैं। ये देवी ही महान् तीर्थ हैं और ये ही महान् फल हैं।।७५।। इन्हीं देवी का सनकादि मुनि गान करते हैं और इन्हीं का ध्यान करते हैं तथा इन्हीं पाँच प्रकार की सिद्धि देने वाली ललिता देवी की ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता पूजा करते हैं।।७६।। वे ललितेश्वरी बुरे चरित्रों वालों, नीच पुरुषों, कुटिल आशय रखने वालों, ईश्वर को न मानने वालों (नास्तिकों), वृथा तर्क करने वालों, वृथा बुद्धि घुमाने वालों, नष्ट पुरुषों, शीलरहितों, समाज से बहिष्कृतों, कुलभ्रष्टों, निष्ठुरों, दर्शनों से द्वेष करने वालों, पापियों, सदाचार की निन्दा करने वालों, उद्दण्डों, उद्दण्डतापूर्वक बात करने वालों, घमण्डियों, अपने को अधिक मानने वालों के द्वारा प्राप्त नहीं की जाती है। ऐसे उपर्युक्त प्रकार के मनुष्यों और देवों को उन देवी का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, वे ऐसे लोगों के लिए दुर्लभ हैं।।७७-७९।। हयग्रीव कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! देवताओं के लिए इनका पूज्य होना कहा गया है, अर्थात् ये देवी-देवताों के लिए पूजनीय हैं, क्योंकि देवों को दुःख देने वाले भण्डासुर के वध के लिये चित् रूप अग्नि से पैदा हुई थीं।।८०।। महात्रिपुर सुन्दरी की मूर्ति तेज से युक्त है, विधाता ने कामाक्षी नाम से ललितेश्वरी को सबके समक्ष प्रस्तुत किया है।।८१।। उन पराशक्ति ललिता अम्बिका का पराभक्ति से ध्यान करते हुए सदाशिव के मन का लालन करने के कारण वे देवी ललिता कही गयी हैं।।८२।। हयानन कहते हैं कि जो जो कृत्य उन देवी ने किये हैं, उन सबका वर्णन कर दिया है तथा शास्त्रोक्त विधि से सब पूजा का विधान भी बता दिया है, दूसरे खण्ड में उनके महा अद्भुत विलास को बताऊँगा।।८३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३८वाँ अध्याय मन्त्रराज साधन कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

काञ्चीय कामाक्षी वर्णनं नाम

नवत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अनाद्यनंतमव्यक्तं व्यक्तानामादिकारणम्। आनंदबोधैकरसं तन्महन्मन्महे महः॥१॥
अश्वानन महाप्राज्ञ वेदवेदांतवित्तम। श्रुतमेतन्महापुण्यं ललिताख्यानमुत्तमम्॥२॥
सर्वपूज्या त्वया प्रोक्ता त्रिपुरा परदेवता। पाशांकुशधनुर्बाण परिष्कृतचतुर्भुजा॥३॥
तस्या मंत्रमिति प्रोक्तं श्रीचक्रं चक्रभूषणम्। नवावरणमीशानी श्रीपरस्याधिदैवतम्॥४॥
कांचीपुरे पवित्रेऽस्मिन्महीमंडलमंडने। केयं विभाति कल्याणी कामाक्षीत्यभिविश्रुता॥५॥
द्विभुजा विविधोल्लासविलसत्तनुवल्लरी। अदृष्टपूर्वसौन्दर्या परज्योतिर्मयी परा॥६॥

सूत उवाच

अगस्त्यैनैवमुक्तः सन्परानंदादृतेक्षणः। ध्यायंस्तच्च परं तेजो हयग्रीवो महामनाः।
इति ध्यात्वा नमस्कृत्य तमगस्त्यमथाब्रवीत्॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३९

काञ्चीय कामाक्षी वर्णन

अगस्त्य मुनि बोले कि हे महाप्राज्ञ! वेद-वेदान्त को जानने वाले भगवन् हयग्रीव! जो अनादि हैं, जिनका कोई आदि काल ज्ञात नहीं है कि ये कब और कहाँ पैदा हुईं तथा जो अनन्त हैं अर्थात् उनका कोई अन्त ही नहीं है, एवं जो किसी भी इन्द्रिय से नहीं जानी जा सकतीं; परन्तु फिर भी इन्द्रियों से ज्ञेय जितने भी पदार्थ हैं, उन सबकी जो कारण हैं, अर्थात् सब उन्हीं से पैदा हुए हैं तथा आनन्द का अनुभव ही जिनका एक रस है। उस रस को मैं महान् मानता हूँ, अतः ऐसे महापुण्यदायक ललिता देवी के उत्तम व्याख्यान को मैंने सुना है।।१-२।। हे हयानन! आपने त्रिपुरा पर देवता ललितेश्वरी, जो पाश, अंकुश, धनुष बाण धारण करने वाली परिष्कृत भुजाओं से युक्त हैं, उनको सबके द्वारा पूजनीय कहा है।।३।। तथा उनका मन्त्र चक्रभूषण श्रीचक्र कहा है, जो नौ आवरण वाला श्री परा अधिदेवता (परा देवी) का स्थान है।।४।। सुन्दर भूमण्डल पर इस पवित्र काञ्चीपुर में ये कौंन कल्याणी सुशोभित होती हैं, इसके उत्तर में सुना जाता है कि वह देवी कामाक्षी हैं।।५।। जो कि दो भुजाओं वाली, अनेकों प्रकार के उल्लास से उसकी शरीर लता सुशोभित है। वे इतनी सुन्दर हैं कि ऐसा सौन्दर्य पहले कभी नहीं देखा है तथा परा देवी पर ज्योतिर्मयी हैं, अर्थात् उनसे अधिक ज्योति अन्यत्र कहीं नहीं है, उनकी ज्योति अलौकिक है।।६।।

अब ब्रह्माण्डपुराण की कथा कहने वाले सूतजी बोले कि जब अगस्त्य मुनि ने ऐसा कहा तब परानन्द से आदृत आँखों वाले उस परम तेज का ध्यान करते हुए महामना हयग्रीव उन देवी का ध्यान कर उनको नमस्कार कर उन अगस्त्य मुनि से इस प्रकार बोले।।७।।

हयग्रीव उवाच

रहस्यं संप्रवक्ष्यामि लोपामुद्रापते शृणु॥८॥
आद्या याणुतरा सा स्याच्चित्परा त्वादिकारणम्।
अन्ताख्येति तथा प्रोक्ता स्वरूपात्तत्त्वचिंतकैः॥९॥
द्वितीयाभूत्ततः शुद्धपराद्विभुजसंयुता। दक्षहस्ते योगमुद्रां वामहस्ते तु पुस्तकम्॥१०॥
बिभ्रती हिमकुंदेन्दुमुक्तासमवपुर्द्युतिः। परापरा तृतीया स्याद्बालार्कायुतसंमिता॥११॥
सर्वाभरणसंयुक्ता दशहस्तधृताम्बुजा। वामोरुन्यस्तहस्ता वा किरीटार्धेन्दुभूषणा॥१२॥
पश्चाच्चतुर्भुजा जाता सा परा त्रिपुरारुणा। पाशांकुशेक्षुकोदंडपंचबाणलसत्करा॥१३॥
ललिता सैव कामाक्षी कांच्यां व्यक्तिमुपागता। सरस्वतीरमागौर्यस्तामेवाद्यामुपासते॥१४॥
नेत्रद्वयं महेशस्य काशीकांचीपुरद्वयम्॥१५॥
विख्यातं वैष्णवं क्षेत्रं शिवसांनिध्यकारकम्। कांचीक्षेत्रे पुरा धाता सर्वलोकपितामहः॥१६॥
श्रीदेवीदर्शनायैव तपस्तेपे सुदुष्करम्। आत्मैकध्यानयुक्तस्य तस्य व्रतवतो मुने॥१७॥
प्रादुरासीत्पुरो लक्ष्मीः पद्महस्ता परात्परा। पद्मासने च तिष्ठन्ती विष्णुना जिष्णुना सह॥१८॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता। सिंहासनेश्वरी ख्याता सर्वलोकैकरक्षिणी॥१९॥

हयग्रीव ने कहा कि हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य जी! मैं रहस्य बताऊँगा, आप सुनिये।।८।। पहली जो अत्यन्त अणुतर (सूक्ष्मतर) थी, वह चित्परा थी और आदि कारण थी, अर्थात् चित् (जीवनी शक्ति) के रूप में सबसे पहले वह देवी (प्रकृति) अत्यन्त सूक्ष्म रूप में थी; परन्तु यही समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का आदि कारण थी, उससे समस्त प्रपञ्च उत्पन्न हुआ। तत्त्व का चिन्तन करने वालों द्वारा उसके स्वरूप से उसे अन्ता नाम से कहा गया। इस प्रकार पहले वह देवी चित् परा (जीवरूप) में थी।।९।। उसके बाद दो भुजाओं से युक्त द्वितीया शुद्ध परा हुई। जो दायें हाथ में योगमुद्रा और बायें हाथ में पुंस्तक लिये हुए थी तथा बर्फ, चमेली और मोती के समान उसके शरीर की कान्ति थी। तीसरी देवी परा और अपरा दोनों रूप वाली प्रातःकालीन सूर्य की आभा के समान थी।।११।। उस समय वह देवी सभी आभूषणों से युक्त थी और उसके दश हाथ थे तथा हाथों में कमल धारण किये हुए थी। वे अपनी बाँयीं जंघा पर हाथ रखे हुए थीं तथा उनके मुकुट में अर्ध चन्द्रमा आभूषण रूप में स्थित थे।।१२।।

बाद में वही परा देवी चार भुजाओं वाली हो गयीं, तब वे त्रिपुरा देवी पाश, अंकुश, इक्षु, धनुष और पाँच बाणों से सुशोभित हाथों वाली हो गयीं। अर्थात् उनके एक हाथ में पाश था, एक हाथ में अंकुश था, एक हाथ में ऊख काण्ड था और एक हाथ में धनुष था तथा तरकश में पाँच बाण थे।।१३।। वे ललिता ही कामाक्षी हैं, जो कांची में व्यक्तित्व को प्राप्त हुईं, अर्थात् कांची नगरी में सशरीर प्रकट हुईं। सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती उस आद्या देवी की उपासना करती हैं।।१४।। काशी और कांची ये दो नगर भगवान् शंकर के दो नेत्र हैं।।५।। शिव के सान्निध्य को कराने वाला यह वैष्णव क्षेत्र नाम से विख्यात है। पूर्वकाल में कांची क्षेत्र में सब लोकों के पितामह धाता (ब्रह्मा) ने अत्यन्त कठोर तप किया था।।१६।। जब उन्होंने अपनी आत्मा पर ध्यान लगाया तो हे व्रतपरायण मुने! अगस्त्य जी! उन ब्रह्मा के सामने हाथ में कमल लिये हुए पर से भी परा लक्ष्मी प्रकट हो गयीं, जो सब पर विजय प्राप्त करने वाले विष्णु के साथ पद्मासन पर बैठी हुई थीं।।१७-१८।। वे समस्त शृंगारों से युक्त और सभी आभूषणों से भूषित

तां दृष्ट्वाद्भुतसौन्दर्यां परज्योतिर्मयीं पराम्।
आदिलक्ष्मीमिति ख्यातां सर्वेषां हृदये स्थिताम्॥२०॥
यामाहुस्त्रिपुरमेव ब्रह्मविष्ण्वीशमातरम्। कामाक्षीति प्रसिद्धां तामस्तौषीत्पूर्णभक्तिमान्॥२१॥

ब्रह्मोवाच

जय देवि जगन्मातर्जय त्रिपुरसुन्दरि। जय श्रीनाथसहजे जय श्रीसर्वमङ्गले॥२२॥
जय श्रीकरुणाराशे जय शृङ्गारनायिके। जयजयेधिकसिद्धेशि जय योगींद्रवन्दिते॥२३॥
जयजय जगदम्ब नित्यरूपे जय जय सन्नुतलोकसौख्यदात्रि।
जयजय हिमशैलकीर्तनीये जयजय शङ्करकामवामनेत्रि॥२४॥
जगज्जन्मस्थितिध्वंसपिधानानुग्रहान्मुहुः। या करोति स्वसङ्कल्पात्तस्यै देव्यै नमोनमः॥२५॥
वर्णाश्रमाणां सांकर्यकारिणः पापिनो जनान्। निहंत्याद्यातितीक्ष्णास्त्रैस्तस्यै देव्यैनमोनमः॥२६॥
नागमैश्च न वेदैश्च न शास्त्रैर्न च योगिभिः। वेद्या या च स्वसंवेद्या तस्यै देव्यै नमोनमः॥२७॥
रहस्याम्नायवेदांतैस्तत्त्वविद्भिर्मुनीश्वरैः। परं ब्रह्मेति या ख्याता तस्यै देव्यै नमोनमः॥२८॥
हृदयस्थापि सर्वेषां या न केनापि दृश्यते। सूक्ष्मविज्ञानरूपायै देव्यै नमोनमः॥२९॥

थीं। वे सब लोकों की एकमात्र रक्षा करने वाली सिंहासनेश्वरी इस नाम से विख्यात हुईं।।१९।। उन अद्‌भुत सौन्दर्य वाली अलौकिक ज्योतिर्मयी परा देवी सबके हृदय में स्थित देवी को देखकर उन्हें आदिलक्ष्मी कह दिया गया।।२०।। जिन त्रिपुरा को ही ब्रह्मा, विष्णु और शंकर की माता कहते हैं और कामाक्षी इस नाम से प्रसिद्ध उन देवी की भक्तिमान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे।।२१।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे देवि! तुम्हारी जय हो, हे संसार की माता, त्रिपुरसुन्दरी! तुम्हारी जय हो, हे श्रीनाथ सहजे! तुम्हारी जय हो। हे सबका कल्याण करने वाली देवि! तुम्हारी जय हो।।२२।। हे करुणा की राशि देवि! तुम्हारी जय हो, हे शृङ्गारनायिके देवि! तुम्हारी जय हो, हे अधिक सिद्धेशि देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे योगिनियों द्वारा वन्दनीय देवि! तुम्हारी जय हो।।२३।। हे जगदम्बे! नित्य रूप वाली देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे नतमस्तक लोगों को सौख्य प्रदान करने वाली देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे हिमालय पर प्रशंसनीय देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे कामेश्वर भगवान् शंकर की वाम नेत्रि देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो।।२४।। ब्रह्मा जी ने कहा कि जो देवी संसार को तथा संसार के समस्त प्रपञ्च को पैदा करने वाली, उसको स्थिर रखने वाली और उसका विध्वंस करने वाली तथा समस्त प्रपञ्च को धारण करने वाली तथा बार-बार सृष्टि का अनुग्रह करने वाली हैं, जो यह सब अपने संकल्प से करती हैं, उन देवी को मेरा नमस्कार है।।२५।। जो देवी वर्णों और आश्रमों में संकरता पैदा करने वाले पापी लोगों को अत्यन्त तेज धार वाले अस्त्रों से मारती हैं। उन देवी को नमस्कार है।।२६।। हे देवि! जो आप न आगमों द्वारा, न वेदों से, न शास्त्रों द्वारा, न योगियों द्वारा जानने योग्य है तथा जो आप स्वयं ही संवेद्य हैं, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।२७।। रहस्य की बात बताने वाले वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और वेदान्तों द्वारा तत्त्व को जानने वाले मुनीश्वरों द्वारा जो पर ब्रह्म इस नाम से विख्यात हुईं, उन आप देवी के लिए मेरा नमस्कार है।।२८।। जो देवी आप सबके हृदय में स्थित होते हुए भी किसी के द्वारा भी दिखाई नहीं देती हो, अर्थात् न आँख से देखी जाती हो, न कान से सुनी जाती है, न वायु की तरह त्वचा से स्पर्श की जाती है, न जिह्वा से चखी जाती

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। यद्ध्यानैकपरा नित्यं तस्यै देव्यै नमोनमः॥३०॥
यच्चरणभक्ता इन्द्राद्या यदाज्ञामेव बिभ्रती। साम्राज्यसंपदीशायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३१॥
वेदा निःश्वसितं यस्या वीक्षितं भूतपंचकम्। स्मितं चराचरं विश्वं तस्यै देव्यै नमोनमः॥३२॥
सहस्त्रशीर्षा भोगींद्रो धरित्रीं तु यदाज्ञया। धत्ते सर्वजनाधारां तस्यै देव्यै नमोनमः॥३३॥
ज्वलत्यग्निस्तपत्यर्को वातो वाति यदाज्ञया। ज्ञानशक्तिस्वरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३४॥
पंचविंशतितत्त्वानि मायाकञ्चुकपंचकम्। यन्मयं मुनयः प्राहुस्तस्यै देव्यै नमोनमः॥३५॥
शिवशक्तीश्वराश्चैव शुद्धबोधः सदाशिवः। यदुन्मेषविभेदाः स्युस्तस्यै देव्यै नमोनमः॥३६॥
गुरुर्मंत्रो देवता च तथा प्राणाश्च पंचधा। या विराजति चिद्रूपा तस्यै देव्यै नमोनमः॥३७॥
सर्वात्मनामन्तरात्मा परमानन्दरूपिणी। श्रीविद्येति स्मृता वा तु तस्यै देव्यै नमोनमः॥३८॥
दर्शनानि च सर्वाणि यदंगानि विदुर्बुधाः। तत्तन्नियमयूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३९॥
या भाति सर्वलोकेषु मणिमन्त्रौषधात्मना। तत्त्वोपदेशरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥४०॥
देशकालपदार्थात्मा यद्यद्वस्तु यथा तथा। तत्तद्रूपेण या भाति तस्यै देव्यै नमोनमः॥४१॥

हो, न तुम्हारी गर्मी का अनुभव होता हो तथा न तुम मन से सोची जाती हो, अर्थात् तुम किसी से भी दिखायी नहीं देती ऐसी अतिसूक्ष्म विशेष ज्ञान रूप वाली देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।२९।। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव, जिन आपके ध्यान में नित्य लगे रहते हैं, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३०।। जिनके चरणों के भक्त इन्द्र आदि जिनकी आज्ञा को धारण करते हैं, ऐसी साम्राज्य सम्पत्ति की स्वामिनी आपको मेरा नमस्कार है।।३१।। जिसकी श्वास वेद हैं। पंच महाभूत जिनकी दृष्टि (आँखें) हैं, यह चराचर विश्व जिनकी मुस्कान है, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३२।। हजार शिरों वाले शेषनाग जिन देवी की आज्ञा से पृथ्वी को धारण करते हैं, उन समस्त मनुष्यों की आधार स्वरूपा देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।३३।। जिसकी आज्ञा से अग्नि जलती है, सूर्य तपते हैं और हवा बहती है, उन ज्ञानशक्ति स्वरूपा आपको मेरा नमस्कार है।।३४।। शरीर से सम्बन्धित पच्चीस तत्त्व, पाँच माया रूप कञ्चुक, जिनसे युक्त आपको मुनि लोग कहते हैं, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३५।। शिवशक्तीश्वर शुद्धबोध सदाशिव आदि रूप जिनके अनेक उन्मेष (प्रकाश) हैं, ऐसी देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।३६।। गुरु, मन्त्र, देवता और पाँच प्रकार के प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान) जिस चित् रूप देवी में विराजमान हैं, उन आप देवी को मेरा नमस्कार है।।३७।।

सब आत्मावालों की जो परमानन्द रूपिणी अन्तरात्मा हैं, जिनको श्री विद्या इस प्रकार कहा गया है, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३८।। विद्वान् लोग सब दर्शनों को जिनका अंग जानते हैं, अर्थात् दर्शनों के जितने भी नियम हैं, उन सबकी स्तम्भरूप आपको मेरा नमस्कार है।।३९।। जो देवी सब लोकों में मणिमन्त्र और औषधि की आत्मा है, सब मणिमन्त्र और औषधियों में आप समायी हैं, उसी से वे सब अपना प्रभाव छोड़ती हैं। इसलिए हे तत्त्व की उपदेश रूप देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।४०।। देशकाल और पदार्थात्मक जो वस्तु जैसी-तैसी है, अर्थात् जहाँ, जिस समय जो वस्तु जैसी है, वैसी ही दिखाई देती है, अतः वह जो उस उस रूप में प्रतीत होती है, वह सब आप ही हैं। यहाँ पर वेदान्त का 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब कुछ जो वस्तु दिखाई देती है तथा जो कुछ भी संसार में है, वह सब ब्रह्म है)। यहाँ उसे देवी का रूप कहा गया है, ऐसी देवी आपको मेरा नमस्कार है।।४१।।

हे प्रतिभटाकारा कल्याणगुणशालिनी। विश्वोत्तीर्णेति चाख्याता तस्यै देव्यै नमोनमः॥४२॥
इति स्तुत्वा महादेवीं धाता लोकपितामहः। भूयोभूयो नमस्कृत्य सहसा शरणं गतः॥४३॥
सन्तुष्टा सा तदा देवी ब्रह्माणं प्रेक्ष्य संनतम्। वरदा सर्वलोकानां वृणीष्व वरमित्यशात्॥४४॥

ब्रह्मोवाच

भक्त्या त्वद्दर्शनेनैव कृतार्थोऽस्मि न संशयः।
तथापि प्रार्थये किञ्चिल्लोकानुग्रहकाम्यया॥४५॥

कर्मभूमौ तु लोकेऽस्मिन्प्रायो मूढा इमे जनाः। तेषामनुग्रहार्थाय नित्यं कुर्वत्र संनिधिम्॥४६॥
तथेति तस्य तं कामं पूरयामास वेधसः। अथ धाता पुनस्तस्या देव्या वासमकल्पयत्॥४७॥
श्रीदेवीसोदरं नत्वा पुण्डरीकाक्षमच्युतम्। तत्सांनिध्यं सदा कांच्यां प्रार्थयामास चादृतः॥४८॥
ततस्तथा करिष्यामीत्यब्रवीत्तं जनार्दनः। अथ तुष्टो जगद्धाता पुनः प्राह महेश्वरीम्॥४९॥
शिवोऽप्यत्रैव सांनिध्यं तव प्रीत्या करोत्विति। अथ श्रीत्रिपुरादक्षभागात्कामेश्वरः परः॥५०॥
ईशानः सर्वविद्या नामीश्वरः सर्वदेहिनाम्। आविरासीन्महादेवः साक्षाच्छृङ्गारनायकः॥५१॥
ततः पुनः श्रीकामाक्षीभालनेत्रकटाक्षतः। काचिद्बाला प्रादुरासीन्महागौरा महोज्ज्वला॥५२॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या महालावण्यशेवधिः। अथ श्रीपुण्डरीकाक्षो ब्रह्मणा सह सादरम्॥५३॥

हे प्रतिभटाकारा कल्याणगुण वाली विश्वोत्तीर्णा देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।४२।। इस प्रकार महादेवी की स्तुति करके लोकपितामह ब्रह्मा बार-बार नमस्कार कर उनकी शरण में गये।।४३।। तब सम्यक् रूप से नतमस्तक हुए ब्रह्मा जी को देखकर सन्तुष्ट सब लोकों को वर देने वाली देवी ने ब्रह्माजी से कहा कि वर माँगो।।४४।।

तब ब्रह्माजी बोले, हे देवि! भक्तिपूर्वक तुम्हारे दर्शन कर लेने से ही मैं कृतार्थ हो गया हूँ, फिर भी मैं संसार पर कृपा करने की इच्छा से कुछ वर माँगता हूँ।।४५।। इस संसार में कर्मभूमि में प्रायः ये लोग मूढ़ हैं। उनके अनुग्रह के लिए यहाँ इस संसार में नित्य सन्निधि करो, अर्थात् हे त्रिपुरसुन्दरि! इस संसार में आप रहकर लोगों को कर्मभूमि में प्रवृत्त करने की कृपा करो, जो मूर्ख अपने कर्मों को कुशलतापूर्वक नहीं करते हैं, उनको कर्मों में प्रवृत्त करो।।४६।। वैसा ही हो, इस प्रकार कहकर देवी ने उन ब्रह्मा की उस इच्छा को पूर्ण कर दिया। इसके बाद ब्रह्मा ने पुनः उन देवी के वास की कल्पना की।।४७।। श्री देवी ने आदर सहित पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु को नमस्कार कर कांची में उनका सदा सान्निध्य रहने की प्रार्थना की अर्थात् उन देवी ने ब्रह्माजी से कहा कि वहाँ पर भगवान् विष्णु को भी सदैव मेरे साथ रहने चाहिये।।४८।। उसके बाद भगवान् विष्णु ने कहा कि मैं वैसा ही करूँगा, अर्थात् मैं कांची में तुम्हारे पास रहूँगा। इसके बाद संसार को धारण करने वाले ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये और फिर महेश्वरी से बोले।।४९।। शिव को भी यहीं पर अपने पास प्रीतिपूर्वक रख लो, यहाँ मां त्रिपुरेश्वरी ने शिष्टाचार वश स्वयं शिव को साथ में रहने के लिये नहीं कहा, जिसे ब्रह्मा जी के मुख से कहलवाया; क्योंकि शिव तो उनके पति ही थे। इसके बाद श्रीत्रिपुरा के दक्ष भाग में सब विद्याओं के स्वामी, सब प्राणियों के ईश्वर, शृंगार के साक्षात् नायक महादेव, कामेश्वर भगवान् शिव सामने थे।।५१।। उसके बाद पुनः श्रीकामाक्षी के मस्तक स्थित नेत्र के कटाक्ष से महागौर वर्ण वाली, महा उज्ज्वल कोई बाला उत्पन्न हो गयी।।५२।। वह बाला समस्त शृंगारों के वेष से सजी हुई और महा सौन्दर्य की अमूल्य कोष थी।।५२३।। इसके बाद पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी के साथ उन दोनों आदि स्त्री-पुरुष, का आदर

कारयामास कल्याणमादिस्त्रीपुंसयोस्तयोः। आखण्डलादयो देवा वसुरुद्रादिदेवताः॥५४॥
मार्कण्डेयादिमुनयो वसिष्ठादिमुनीश्वराः। योगींद्राः सनकाद्याश्च नारदाद्याः सुरर्षयः॥५५॥
वामदेवप्रभृतयो जीवन्मुक्ताः शुकादयः। यक्षकिन्नरगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगाः॥५६॥
गणाग्रणीर्महाशास्ता दुर्गाद्याश्चैव मातरः।
या यास्तु देवताः प्रोक्तास्ताः सर्वाः परमेश्वरीम्॥५७॥
भद्रासनविमानस्था नेमुः प्राञ्जलयस्तदा। मनसा निर्मितं धात्रा मध्ये नगरमद्भुतम्॥५८॥
मंदिरं परमेशान्या मनोहरतमं शुभम्। श्रीमतां वासुदेवेन सोदरेण महेश्वरः॥५९॥
तत्रोदवोढतां गौरीमुपाग्नि भगवान्भवः। देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह॥६०॥
दम्पत्योर्जगतां पत्योः पाणिग्रहणमङ्गलम्।
को वा वर्णयितुं शक्तो यदि जिह्वासहस्रवान्॥६१॥
आदि श्रीमन्दिरस्यास्य वायुभागे महेशितुः। विस्तृतं भुवनश्रेष्ठं कल्पितं परमेष्ठिना॥६२॥
श्रीगृहस्याग्निभागे तु विचित्रं विष्णुमंदिरम्। इत्थं ता देवतास्तत्र तिस्रः सन्निहिताः सदा॥६३॥
तदा प्रदक्षिणीकृत्य तत्परौ दम्पती तु तौ। प्राप्तौ सभावनागारं तदा विधिजनार्दनौ॥६४॥
समागम्य च सभ्यानां समस्तानां यथाविधि। संस्कारं वैदिकैर्मंत्रैः कथयामासतुर्मुदा॥६५॥
आद्यादि लक्ष्मीः सर्वेषां पुरतः श्रीपरेश्वरी। विरंचि दक्षिणेनाक्ष्णा वामेन हरिमैक्षत॥६६॥
का नाम वाणी मा नाम कमला ते उभे ततः। प्रादुर्भूते प्रभापुञ्जे पञ्जरांत इव स्थिते॥६७॥
श्रीदेवतानमच्छीर्षबद्धाञ्जलिपुटावुभौ। जय कामाक्षिकामाक्षीत्यूचतुस्तां प्रणेमतुः॥६८॥

सहित कल्याण किया। फिर इन्द्र आदि देवता, वसु, रुद्र आदि देवताओं, मार्कण्डेय आदि मुनियों, वशिष्ठ आदि मुनीश्वरों, सनक आदि योगीश्वरों, नारद आदि देवर्षियों, वामदेव आदि जीवन्मुक्तों, शुकदेव आदियों तथा यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सिद्धगण, विद्याधरों, सर्पों, गणों के आगे रहने वाली दुर्गा आदि माताओं ने तथा अन्य जो-जो देवता कहे गये हैं, सबने विमान पर स्थित परमेश्वरी ललिता देवी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।।५२½-५७½।। और फिर उसके बाद ब्रह्माजी ने मन से नगर के मध्य में परमेश्वरी ललिता देवी का सबसे मनोहर मन्दिर बनाया।।५७½-५८½।। श्रीमान् सोदर भगवान् विष्णु के द्वारा महेश्वर भगवान् शिव ने वहाँ उन बाला गौरी के साथ विवाह सम्पन्न किया, तब देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाईं और फूलों की वर्षा की।।५८½-६०।।

उस समय जगत् पति दोनों दम्पतियों के विवाह में जो मङ्गल हुआ, उसका वर्णन हजार जिह्वाओं वाला भी कोई नहीं कर सकता है।।६१।। आदिश्री मन्दिर की वायव्य दिशा में परमेष्ठी ब्रह्मा ने भगवान् शिव का विस्तृत श्रेष्ठ भवन बनाया।।६२।। और श्रीललितादेवी के मन्दिर की आग्नेय दिशा में विचित्र विष्णु मन्दिर बनाया। इस प्रकार वहाँ तीनों देवता सदैव एक साथ स्थित हैं।।६३।। तब परिक्रमा करके उन दोनों दम्पतियों ब्रह्मा और विष्णु ने सभावनागार को प्राप्त किया।।६४।। उस सभावनागार में आकर समस्त सभ्यों का यथाविधि वैदिक मन्त्रों से आनन्द पूर्वक संस्कार किया।।६५।। सबसे पहले आदि लक्ष्मी ने सबके सामने दक्षिण नेत्र से ब्रह्माजी को तथा बायें नेत्र से विष्णु को देखा।।६६।। तब का नाम से वाणी (सरस्वती) और मा नाम से कमला दोनों ही तब प्रभासमूह में इस प्रकार उत्पन्न हो गयीं, जिस प्रकार कि पिंजड़े में स्थित किसी को निकाल दिया जाता है।।६७।। उसके बाद उन

मूर्ते च गङ्गायमुने तत्र सेवार्थमागते। तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च या यास्तीर्थाधिदेवताः॥६९॥
सेवार्थं त्रिपुरांबायास्तास्ताः सर्वाः समागताः। तदा कराभ्यामादाय चामरे भारतीश्रियौ।
श्रीदेवीमुपतस्थाते वीजयन्त्यौ यथोचितम्॥७०॥
अनर्घ्यरत्नखचितकिङ्किणीचितदोर्लते। आदिश्रीनयनोत्पन्ने ते उभे भारतीश्रियौ॥७१॥
संवीक्ष्य सर्वजनता विशेषेण विसिस्मिये।
तदा प्रभृति कल्याणी कामाक्षीत्यभिधामियात्।
तदुच्चारणमात्रेण श्रीदेवी शं प्रयच्छति॥७२॥
कामाक्षीति त्रयो वर्णाः सर्वमङ्गलहेतवः। अथ सा जगदीशानी वेदवेदांगपारगे॥७३॥
विधौ नित्यं निषीदेति संदिदेश सरस्वतीम्। सापि वाणीश्वरी गङ्गाहस्तनिक्षिप्तचामरा।
पश्यतां सर्वदेवानां विधातुर्मुखमाविशत्॥७४॥
इन्दिरा च महालक्ष्म्या संदिष्टा तुष्टया तथा। यथोचितनिवासाय विष्णोर्वक्षस्थलं मुदा।
तदाज्ञां शिरसा धृत्वा रमा विष्णुश्च भक्तितः॥७५॥
तावुभौ दंपती नत्वा महात्रिपुरसुन्दरीं। प्रार्थयामासतुर्भूयस्तदावरणदेवताम्॥७६॥
तथास्तिविति वरं दत्त्वा ताभ्यां त्रिपुरसुन्दरम्। तदावरणदेवत्वं प्राप्तौ पद्माच्युतौ तदा॥७७॥
स्वपीठोत्तरमास्थाप्य दक्षिणे स्थितवान्स्वयम्। अथोवाच महागौरीं त्वमन्यद्रूपमाचर।

परमेश्वरी के दोनों नेत्रों की प्रभा से उत्पन्न दोनों देवियाँ वाणी और कमला श्री ललिता देवी को शीश झुकाते हुए दोनों हाथों को जोड़ कर माँ ललितेश्वरी को जय कामाक्षी जय कामाक्षी इस प्रकार कहते हुए प्रणाम किया।।६८।। तब वहाँ गङ्गा और यमुना साक्षात् शरीर धारण कर उनकी सेवा के लिए उपस्थित होने पर साढ़े तीन करोड़ जो जो तीर्थ देवता थे, वे सभी त्रिपुराम्बा की सेवा के लिए वहाँ पर आ गये, तब सरस्वती और लक्ष्मी ने हाथों में चामर लेकर त्रिपुरेश्वरी पर यथोचित ढुलाना प्रारम्भ कर दिया।।७०।। बहुमूल्य रत्नों से जुड़े हुए कंगनों को हाथ में पहने हुई आदिश्री के नेत्रों से उत्पन्न उन दोनों सरस्वती और लक्ष्मी ने समस्त जनता को देखकर विशेष रूप से विस्मय में उस समय कल्याणी श्रीललितादेवी का कामाक्षी यह नाम दे दिया। अतः कामाक्षी इस नाम के उच्चारण मात्र से श्रीललितेश्वरी कल्याण प्रदान करती हैं।।७२।। तब से कामाक्षी नाम से वे देवी तीनों वर्णों की मंगलकारणी हैं, इसके बाद उन संसार की स्वामिनी श्रीललिता देवी ने सरस्वती को आदेश दिया कि तुम नित्य ब्रह्माजी के पास बैठो। वे वाणीश्वरी सरस्वती देवी गङ्गा के हाथ से निक्षिप्त चामर वाली देवताओं के देखते ही देखते ब्रह्मा जी के मुख में प्रविष्ट हो गयीं।।७३-७४।।

उसके बाद महालक्ष्मी के द्वारा तुष्ट इन्दिरा (कमला) को आदेश दिया कि वह यथोचित निवास के लिए आनन्द के साथ विष्णु के वक्षःस्थल को ग्रहण करे, तब उन परमेश्वरी श्री ललिता देवी की आज्ञा शिरोधार्य कर लक्ष्मी और विष्णु दोनों भक्तिपूर्वक स्थित हुए।।७५।। इसके बाद उन दोनों दम्पतियों ने महात्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार कर पुनः उस त्रिपुरसुन्दर नगर की आवरण देवता (उसके रक्षक) बनने की प्रार्थना की।।७६।। उसके बाद श्रीललितेश्वरी ने वैसा ही होगा, यह कहकर विष्णु और लक्ष्मी को त्रिपुरसुर का आवरण देवता नियुक्त कर दिया और फिर कमला और विष्णु ने उस नगर का आवरणत्व प्राप्त किया, अर्थात् वे दोनों श्रीचक्रपुर के रक्षक नियुक्त हुए।।७७।। अपनी पीठ को उत्तर में स्थापित कर वे स्वयं दक्षिण में स्थित हो गये। इसके बाद उन्होंने महागौरी से कहा कि तुम अन्य रूप

तत्र यातो महागौर्याः प्रतिबिंबो मनोहरः॥७८॥
चकासद्दिव्यदेहेन महागौरीसमाकृतिः। तरुणारुणराजाभसौन्दर्यचरणद्वयः॥७९॥
क्वणत्कङ्कणमञ्जीरतित्तिरीकृतपीठकः। विद्युदुल्लासितस्वानमनोज्ञमणिमेखलः॥८०॥
रत्नकंकणकेयूरविराजितभुजद्वयः। मुक्तावैदूर्यमाणिक्य निबद्धवरबंधनः॥८१॥
विभ्राजमानो मध्येन वलित्रितयशोभितः। जाह्नवीसरिदावर्तशोभिनाभीविभूषितः॥८२॥
पाटीरपङ्क कर्पूरकुंकुमालंकृतस्तनः। आमुक्तमुक्तालंकारभासुरस्तनकुंचुकः॥८३॥
विनोदेन कटीदेशलंबमानसुशृंखलः। माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकाभिरलंकृतः॥८४॥
दक्षहस्तांबुजासक्तस्निग्धोज्ज्वलमनोहरः। आभात्याप्रपदीनस्रग्दिव्याकल्पकदंबकैः॥८५॥
दीप्तभूषणरत्नांशुराजिराजितदङ्मुखः। तप्तहाटकसंक्लृप्तरत्नग्रीवोपशोभितः॥८६॥
मांगल्यसूत्ररत्नांशुशोणिमाधरकंधरः। पालीवतंसमाणिक्यताटंकपरिभूषितः॥८७॥
जपाविद्रुमलावण्यललिताधरपल्लवः। दाडिमीफलबीजाभदंतपंक्तिविराजितः॥८८॥
मंदमंदस्मितोल्लासिकपोलफलकोमलः। औपम्यरहितोदारनासामणिमनोहरः॥८९॥
विलसत्तिलपुष्पश्रीविमलोन्नत नासिकः। ईषदुन्मेषमधुरनीलोत्पलविलोचनः॥९०॥

को धारण करो। तब वह महागौरी का अत्यन्त मनोहर प्रतिबिम्ब हो गया।।७८।। उसके बाद महागौरी की आकृति दिव्य देह से युक्त सुशोभित हो गयी। उस समय उनके दोनों चरण तरुण चन्द्रमा की आभा के समान सुन्दरता से युक्त हो गये।।७९।। हाथों के कंगनों ने मंजीरों की ध्वनि से उस शक्तिपीठ को ध्वनित कर दिया। उनकी कमर में मणिजटित कर्धनी बिजली की तरह चमक रही थी।।८०।। रत्न जड़े हुए कंगन और बाजूबंदों से उनकी दोनों भुजाएँ सुशोभित थीं। मोती वैदूर्य और माणिक्य जटित श्रेष्ठ बन्धन वस्त्र पहने हुए थीं।।८१।। कमर में पड़ने वाली तीन रेखाओं और नाभि से वे गङ्गा नदी में पड़ने वाले भँवर के समान शोभा को प्राप्त कर रही थीं। अर्थात् उनकी त्रिवली अत्यन्त सुन्दर लग रही थी, साथ ही नाभि तो गङ्गा नदी में उठने वाले भँवर के समान थी।।८२।। चन्दन, कपूर और कुंकुम से उनके स्तन अलंकृत थे तथा उन स्तनों को ढँकने वाला कंचुक वस्त्र मोतीजटित अलंकारों से चमक रहा था।।८३।। विनोद के रूप में कमर से नीचे लटकने वाला वस्त्र माणिक्य के टुकड़ों से बद्ध मुद्रिकाओं (मुहरों) से अलंकृत था।।८४।। वे अपने दायें हाथ में स्निग्ध, उज्ज्वल और मनोहर कमल लिये हुए थीं। वे पैरों के अग्र भाग तक लटकती हुई कल्पवृक्ष के फूल की माला से सुशोभित थीं।।८५।।

प्रदीप्त आभूषणों में लगे रत्नों की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला उनका मुख है तथा तपे हुए सुवर्ण में लगे हुए रत्नों के भूषण से उनकी ग्रीवा (गरदन) शोभित थी।।८६।। मांगलिक सूत्र रत्न की किरणों से लाल-लाल उनके अधर (ओष्ठ) और गर्दन थी। वे कान की लोर में लटकते हुए झुमका, माणिक्य जटित कुण्डल से सुशोभित थीं।।८७।। जपा पुष्प और मूंगे के लावण्य से अत्यन्त सुन्दर उनके अधरपल्लव दोनों ओष्ठ थे अर्थात् उनके अधर (ओष्ठ) जपा पुष्प और मूंगे के समान लाल-लाल थे। अनार के फल के बीज की आभा के समान उनकी दन्तपंक्ति सुशोभित थी।।८८।। मन्द-मन्द मुस्कान से उल्लासित उनका कोमल कपोल फलक था। उनकी नासिका में लगा हुआ मणि इतना मनोहर था कि उसकी कहीं उपमा नहीं हैं।।८९।। खिले हुए तिलपुष्प की शोभा के समान उन्नत उनकी नासिका थी। कम खिले हुए मधुर नीलकमल के समान उनकी आँखें थीं।।९०।।

नवप्रसूनचापश्रीललितभ्रूविकाशकः। अर्द्धेन्दुतुलितो भाले पूर्णेन्दुरुचिराननः॥९१॥
सांद्रसौरभसंपन्नकस्तूरीतिलकोज्ज्वलः। मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखांबुजः॥९२॥
पारिजातप्रसूनस्त्रग्वाहिधम्मिल्लबंधनः। अत्यर्थरत्नखचितमुकुटांचितमस्तकः॥९३॥
सर्वलावण्यवसतिर्भवनं विभ्रमश्रियः। शिवो विष्णुश्च तत्रत्याः समस्ताश्च महाजनाः॥९४॥
बिंबस्य तस्य देव्याश्च अभेदं जगृहुस्तदा। अथ तर्हि महेशानी स्वतंत्रा प्रविवेश ह॥९५॥
अग्रतः सर्वदेवानामाश्रयेण प्रपश्यताम्।
बिम्बं कृत्वात्मना बिम्बे संप्रविश्य स्थितां च ताम्।
दृष्ट्वा भूयो नमस्कृत्य पुनः प्रार्थितवान्विधिः॥९६॥
पूर्णब्रह्मे महाशक्ते महात्रिपुरसुन्दरि। श्रीकामाक्षीति विख्याते नमस्तुभ्यं दिनेदिने।
किंचिद्विज्ञापयाम्यद्य शृणु तत्कृपया मम॥९७॥
अत्रैव तु महागौर्या महेशस्योभयोरपि। श्रीदेवी नित्यकल्याणि विवाहः प्रतिवत्सरम्।
कर्तव्यो जगतामृद्धसेवायै च दिवौकसाम्॥९८॥
भूलोकेऽस्मिन्महादेवि विमूढा जनता अपि।
तां दृष्ट्वा भक्तितो नत्वा प्रयांतु परमां गतिम्॥९९॥
तथेत्याकाशवाण्या तु ददौ तस्योत्तरं परा। विससर्ज च सर्वांस्तान्स्वनिकेतनिवृत्तये॥१००॥

नवीन पुष्पबाण की शोभा से शोभित उनकी भौंहें थीं तथा अर्द्धचन्द्र चन्द्रमा जिसके भाल पर हो, ऐसा पूर्ण चन्द्रमा के समान उनका रुचिर मुख था।।९१।। सान्द्र सुगन्ध से सम्पन्न कस्तूरी के तिलक से उज्ज्वल, मदमत्त भौंरों की पंक्तियों के समान केशपाशों से ढँका हुआ, उनका मुखकमल सुशोभित था, अर्थात् भौंरों के समान काले-काले बाल उनके मुखारविन्द पर लटक रहे थे, जो बहुत सुन्दर लग रहे थे।।९२।। उनके शिर के केशों का बँधा हुआ जूड़ा कल्पवृक्ष के फूलों से सजा हुआ था। उनका मस्तक बहुत अधिक रत्नों से जड़े हुए मुकुट से सजा हुआ था।।९३।। उनके भवन की शोभा समस्त लावण्य का वासभवन थी। शिव, विष्णु तथा वहाँ के सभी लोगों ने उन देवी के बिम्ब का अभेद ग्रहण किया। अर्थात् वहाँ उपस्थित शिव, विष्णु आदि सभी ने उन देवी का बिम्ब ग्रहण कर लिया अर्थात् फोटो ले लिया। इसके बाद वे महेशानी स्वतंत्र हो प्रविष्ट हुईं।।९४-९५।। देखते हुए सब देवों के आगे आश्रय द्वारा बिम्ब बना करके बिम्ब में प्रवेश करके देवी स्थित हो गयीं, तब बिम्ब में स्थित उनको देखकर नमस्कार करके ब्रह्मा ने पुनः प्रार्थना की।।९६।। कि हे पूर्णब्रह्मे! महाशक्ते! महात्रिपुरसुन्दरि! कामाक्षि! इस नाम से विख्यात होने पर मैं तुम्हें प्रतिदिन नमस्कार करूँगा। मैं तुम को कुछ बता रहा हूँ, उसे तुम कृपया सुनो।।९७।।

हे नित्यकल्याणी श्रीदेवी! महागौरी और महेश उन दोनों का विवाह प्रति वर्ष संसारों और देवों की समृद्धि के लिए यहाँ पर करना चाहिए।।९८।। हे महादेवि! इस पृथ्वी लोक में जनता अत्यन्त विमूढ़ है। वह अज्ञानी है, अतः उस प्रतिवर्ष होने वाले विवाह को देखकर भक्तिपूर्वक नमन करके परम गति (मोक्ष) को लोग प्राप्त करें।।९९।। वैसा ही हो, इस प्रकार आकाशवाणी से परा देवी ललितेश्वरी ने उसका उत्तर दिया, अर्थात् ललितेश्वरी ने कहा कि ठीक है, आप लोग प्रतिवर्ष महागौरी और महेश का विवाह कीजिए, ताकि भूलोक के लोग परम गति को प्राप्त करें तथा यह उत्तर उन्होंने आकाशवाणी द्वारा दिया और फिर सभी लोग अपने-अपने घर को विदा हो गये।।१००।। उस

तदद्भुततमं शीलं स्मृत्वा स्मृत्वा मुहुर्मुहुः। तां नमस्कृत्य ते सर्वे ततो जग्मुर्यथागतम्॥१०१॥
पितामहस्तु हृष्टात्मा मुकुंदेन शिवेन च। सार्धं श्रीमंदिरे तत्र मंत्रोपेतां निवेश्य च।
आराध्य वैदिकैः स्तोत्रैः साष्टांगं प्रणनाम सः॥१०२॥
अथाकाशगिरा देवी ब्रह्माणमिदमब्रवीत्॥१०३॥
विष्णुं शिवं च स्वस्थाने समाधाय समाहितः। प्रतिसंवत्सरं तत्र सेवां कुरु दृढाशय॥१०४॥
स्वयंव्यक्तमिह श्रीशमित्रेशांबासमन्वितम्।
श्रीकामगिरिपीठं तु साक्षाच्छ्रीपुरमध्यगम्॥१०५॥
वामभागे वृतं लक्ष्यं विष्णुनान्यत्र सेविनम्॥१०६॥
चिदानंदाकाररूपं सर्वपीठाधिदैवतम्। अदृश्यमूर्तिमव्यक्तमादधार यथाविधि॥१०७॥
श्रीमनोज्ञे सुनक्षत्रे दलानां हीरकोरकैः। अर्चिष्मद्भिरप्रधृष्यैर्ल्लोकानामभिवृद्धये॥१०८॥
इदानीं त्वं तदभ्यर्च्य यथाविधि विधे मुदा।
मंडलं त्वखिलं कृत्वा निजलोकं हि पालय॥१०९॥
इत्युक्तो भगवान्ब्रह्मा तथा कृत्वा तदीरितम्।
निक्षिप्य हृदि तां देवीं निजं धाम जगाम सः॥११०॥
इति ते तत्त्वतः प्रोक्तं कामाक्षीसीलमद्भुतम्।
साक्षादेव महालक्ष्मीमिमां विद्धि घटोद्भव॥१११॥

अद्‌भुत शील को बार-बार स्मरण करके उन देवी को नमस्कार करके वे सब, जिनको जहाँ जैसे जाना था, चले गये।।१०१।। पितामह ब्रह्मा ने प्रसन्न होते हुए भगवान् विष्णु और शिव के साथ वहाँ श्री मन्दिर में मन्त्रों से युक्त उन्हें वहाँ स्थापित कर वैदिक मन्त्रों की स्तुतियों से प्रणाम किया।।१०२।। इसके बाद आकाशवाणी द्वारा देवी ने ब्रह्मा से यह कहा।।१०३।। हे दृढ़ आशय वाले ब्रह्माजी! आप विष्णु और शिव को अपने स्थान पर समाधान करके सम्यक् प्रकार से ध्यान करते हुए प्रतिवर्ष उनकी सेवा करो।।१०४।। क्योंकि यहाँ श्रीश (विष्णु) मित्रेश अम्बिका से समन्वित हैं, श्रीकामगिरि पीठ तो साक्षात् श्रीललितेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी का श्रीपुर मध्यस्थान है।।१०५।। श्रीपुर के वामभाग में विष्णु के द्वारा सेवा करने वाला अन्य स्थान लक्ष्यकृत होना चाहिए।।१०६।। अतः चित् आनन्दाकार रूप वाली समस्त पीठ की पीठेश्वरी देवी की अदृश्य मूर्ति को यथाविधि स्थापित करो, अर्थात् वहाँ कोई मूर्ति दिखाई न दे, क्योंकि वे त्रिपुरसुन्दरी ललितेश्वरी अव्यक्त स्वरूप वाली हैं।।१०७।।

श्री मनोज्ञ शुभ नक्षत्र में सांसारिक प्राणियों की अभ्युन्नति के लिए अधखिले फूलों के हारों से जलते हुए अहानिकर दीपों से इस समय तुम यथाविधि देवी की आनन्द के साथ पूजा करके समस्त श्रीचक्रमण्डल बनाकर अपने संसार का पालन करो।।१०८-१०९।। इस प्रकार जब देवी ने कहा तब भगवान् ब्रह्मा ने वैसा ही किया, जो देवी ने कहा था, उसके बाद उन ललितेश्वरी देवी को अपने हृदय में धारण कर वे अपने धाम चले गये।।११०।। हयग्रीव अगस्त्य मुनि से बोले कि अगस्त्यजी! मैंने आपको कामाक्षी देवी के अद्‌भुत चरित्र को तत्त्वतः पूर्ण रूप से कह दिया है, अतः हे अगस्त्य जी! इन कामाक्षी को ही तुम साक्षात् महालक्ष्मी समझो।।१११।।

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि प्रयतः पठेत्।
तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च करस्था नात्र संशयः॥११२॥
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या सर्वविद्याधिपो भवेत्।
आदिर्नारायणः श्रीमान्भगवान्भक्तवत्सलः॥११३॥
तपसा तोषितः पूर्वं मया च चिरकालतः। सारूप्यमुक्तिं कृपया दत्त्वा पुत्राय मे प्रभुः।
महात्रिपुरसुन्दर्या माहात्म्यं समुपादिशत्॥११४॥
ततस्तस्मादहं किंचिद्वेद्मि वक्ष्ये न चान्यथा। रहस्यमंत्र संवक्ष्ये शृणु तं त्वं समाहितः॥११५॥
न ब्रह्मा न च विष्णुर्वा न रुद्रश्च त्रयोऽप्यमी। मोहिता मायया यस्यास्तुरीयस्तु स चेश्वरः।
सदाशिवो न जानाति कथं प्राकृतदेवताः॥११६॥
सदाशिवस्तु सर्वात्मा सच्चिदानन्दविग्रहः। अकर्तुमन्यथा कर्तुं कर्तुमस्या अनुग्रहात्॥११७॥
सदा कश्चित्तदेवाह मन्यमानो महेश्वरः। तन्मायामोहितो भूत्वा त्ववशः शवतामगात्॥११८॥
सैव कारणमेतेषामुत्पत्तौ च लयेऽपि च।
कश्चिदत्र विशेषोऽस्ति वक्तव्यांशोऽपि तं शृणु॥११९॥
ब्रह्मादीनां त्रयाणां च तुरीयस्त्वीश्वरः प्रभुः। चतुर्णामपि सर्वेषामादिकर्ता सदाशिवः॥१२०॥

जो इस कथा को नित्य सुने अथवा जो इसको नित्य पढ़े, अर्थात् इसका नित्य पाठ करेगा, समस्त प्रकार के भोग और मोक्ष, सब उसके हाथ में स्थित हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।११२।। तथा इस ललिता वृत्तान्त को नित्य सुनने वाला और नित्य पाठ करने वाला व्यक्ति बुद्धि से बृहस्पति के समान सब विद्याओं का स्वामी हो जायेगा।।११२½।। हयानन कहते हैं कि पूर्वकाल में मैंने आदि नारायण श्रीमान् भक्तवत्सल भगवान् विष्णु को चिरकाल से तुष्ट किया, उनकी पूजा की, तब कृपा कर उन्होंने मुझ पुत्र के लिये सारुप्य मुक्ति प्रदान कर दी, अर्थात् उन्होंने मुझे अपना रूप प्रदान कर दिया, जिसके कारण मैंने महात्रिपुरसुन्दरी का माहात्म्य तुम्हें सुनाया है।।११२½-११४।। उसके बाद उससे अधिक मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ और मैं अब कुछ अन्यथा नहीं कहूँगा। अब रहस्यमन्त्र बताऊँगा, उसको तुम ध्यानपूर्वक सुनो।।११५।। उनके चरित्र को न ब्रह्मा, न विष्णु और न रुद्र ये तीनों भी नहीं जानते। ये तीनों भी उनकी माया से मोहित हैं और वह ईश्वर सदाशिव नहीं जानते हैं कि वह प्राकृत देवता महामाया ललितेश्वरी कैसे मोहित करती हैं। जब वे सदाशिव नहीं जानते तो ये सामान्य देवता कैसे जान सकते हैं?।।११६।।

सदाशिव तो सब आत्माओं की आत्मा परमात्मा हैं तथा वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। अर्थात् सत् (प्रकृति) चित् (जीव) के रूप वाले आनन्दरूप हैं। वे नहीं किये जाने वाले असम्भव कार्य को अन्य प्रकार करने योग्य बना देते हैं। उनकी कृपा से अकरणीय भी करणीय हो जाता है।।११७।। मैं सदा महेश्वर को मानने वाला हूँ, उनकी माया से मोहित होकर न वश में होने वाला भी वशता को प्राप्त होता है, अर्थात् जो किसी के द्वारा वश में नहीं किया जा सकता है, वह भी वश में हो जाता है।।११८।। इन सब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सबकी उत्पत्ति और विलय में कारण वही ललितेश्वरी है; परन्तु यहाँ बताने योग्य कोई विशेष अंश भी है, उसको सुनो।।११९।। ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों तथा चौथे ईश्वर प्रभु हैं, इस प्रकार ये चार हुए। अतः इन सब चारों के आदि कर्ता सदाशिव हैं।।१२०।।

एतद्रहस्यं कथितं तस्याश्चरितमद्भुतम्। भूय एव प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु॥१२१॥

इति श्रीब्रह्माण्डेमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

काञ्चीपुरमाहात्म्यम्

चत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

श्रीकामकोष्ठपीठस्था महात्रिपुरसुन्दरी। कंकं विलासमकरोत्कामाक्षीत्यभिविश्रुता॥१॥
श्रीकामाक्षीति सा देवी महात्रिपुरसुंदरी। भूमण्डलस्थिता देवी किं करोति महेश्वरी।
एतस्याश्चरितं दिव्यं वद मे वदतां वर॥२॥

हयग्रीव उवाच

अत्र स्थितापि सर्वेषां हृदयस्था घटोद्भव। तत्तत्कर्मानुरूपं सा प्रदत्ते देहिनां फलम्॥३॥

हयानन बोले कि इस रहस्य को मैंने कह दिया है, अब उनके अद्भुत चरित्र को पुनः बताऊँगा, अब सावधान होकर सुनिये।।१२१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३९वाँ अध्याय काञ्चीय कामाक्षी वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-४०

काञ्चीपुर माहात्म्य

अगस्त्य मुनि बोले कि हे भगवान् हयग्रीव जी! हमको यह बताइए कि श्रीकामकोष्ठ पीठ में स्थित महात्रिपुरसुन्दरी ने कौंन-कौंन विलास किया? जिसके कारण वह कामाक्षी इस नाम विशेष से प्रसिद्ध हुईं।।१।। तथा श्री कामाक्षी इस नाम से पुकारी जाने वाली वे महेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ने इस भूमण्डल पर स्थित होकर क्या-क्या करती हैं? हे वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवन् हयग्रीव हमें इनका दिव्य चरित्र बताइए।।२।।

हयग्रीव बोले—हे अगस्त्य जी! वे श्री महात्रिपुर सुन्दरी यहाँ पर स्थित रहते हुए भी सबके हृदयों में स्थित रहती हैं और प्राणियों को उनके उन-उन कर्मों के अनुसार फल प्रदान करती हैं, अतः जो प्राणी शुभ कर्म करते हैं, उनको अच्छा फल प्रदान करती हैं तथा जो दुष्कर्म करते हैं, उन्हें बुरा फल प्रदान करती हैं।।३।।

यत्किञ्चिद्वर्तते लोके सर्वमस्या विचेष्टितम्। किञ्चिच्चिन्तयते कश्चित्स्वच्छंदं विदधात्यसौ॥४॥
तस्या एवावतारास्तु त्रिपुराद्याश्च शक्तयः। इयमेव महालक्ष्मीः ससर्जांडत्रयं पुरा॥५॥
परत्रयाणामावासं शक्तीनां तिसृणामपि। एकस्मादंडतो जातावंबिकापुरुषोत्तमौ॥६॥
श्रीविरिञ्चौ ततोऽन्यस्मादन्यस्माच्च गिराशिवौ। इंदिरां योजयामास मुकुंदेन महेश्वरी।
पार्वत्या परमेशानं सरस्वत्या पितामहम्॥७॥
ब्रह्माणं सर्वलोकानां सृष्टिकार्ये न्ययुंक्त सा। वासुदेवं परित्राणे संहारे च त्रिलोचनम्॥८॥
ते सर्वेऽपि महालक्ष्मीं ध्यायंतः शर्मदां सदा। ब्रह्मलोके च वैकुंठे कैलासे च वसंत्यमी॥९॥
कदाचित्पार्वती देवी कैलासशिखरे शुभे। विहरंती महेशस्य पिधानं नेत्रयोर्व्यधात्॥१०॥
चंद्रसूर्यौ यतस्तस्य नेत्रात्तस्माज्जगत्रयम्। अंधकारावृतमभूदतेजस्कं समंततः॥११॥
ततश्च सकला लोकास्त्यक्तदेवपितृक्रियाः। इतिकर्त्तव्यतामूढा न प्रजानन्त किञ्चन॥१२॥
तद्दृष्ट्वा भगवान्रुद्रः पार्वतीमिदमब्रवीत्। त्वया पापं कृतं देवि मम नेत्रपिधानतः॥१३॥
ऋषयस्त्यक्ततपसो हतसन्ध्याश्च वैदिकाः। सर्वं च वैदिकं कर्म त्वया नाशितमंबिके॥१४॥
तस्मात्पापस्य शांत्यर्थं तपः कुरु सुदुष्करम्।
गत्वा काशीं व्रतं तत्र किञ्चित्कालं समाचर॥१५॥

जो कुछ भी इस संसार में होता है, वह सब उनकी इच्छा से होता है, कोई कुछ चिन्तन करता है, वह स्वतन्त्र रूप से करता है; परन्तु उनकी इच्छा के बिना कुछ नहीं होता।।४।। त्रिपुरा आदि आद्यशक्तियाँ उन महात्रिपुरसुन्दरी का ही अवतार हैं। इन महालक्ष्मी ने पूर्वकाल में तीन अण्डों की सृष्टि की।।५।। तीनों शक्तियों का आवास वे महात्रिपुरसुन्दरी ही थीं। एक अण्ड से अम्बिका और पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु पैदा हुए।।६।। उसके बाद दूसरे अण्डे से लक्ष्मी और ब्रह्मा पैदा हुए और तीसरे अण्डे से वाणी (सरस्वती) और शिव पैदा हुए। इन्दिरा (लक्ष्मी) को महेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ने विष्णु से युक्त कर दिया। पार्वती से शंकर जी को और सरस्वती को पितामह ब्रह्मा से युक्त कर दिया।।७।। उसके बाद ब्रह्मा जी को उन महात्रिपुरसुन्दरी ने सृष्टिकार्य में नियुक्त कर दिया। वासुदेव भगवान् विष्णु को सृष्टि की रक्षा करने में नियुक्त कर दिया तथा सृष्टि के संहार कार्य में त्रिलोचन भगवान् शिव को नियुक्त कर दिया।।८।। वे सभी उपाधि देने वाली उन महालक्ष्मी महात्रिपुरसुन्दरी का सदा ध्यान करते हुए ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ और कैलास पर रहते हैं।।९।। कभी पार्वती देवी ने शुभ कैलास पर विहार करते हुए शंकर जी के दोनों नेत्रों को हाथों से ढँक दिया, क्योंकि भगवान् शिव के सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही नेत्र हैं। दायाँ नेत्र सूर्य है, तो बायाँ चन्द्रमा है। स्वाभाविक है कि दोनों नेत्र हाथों से ढँक दिये जायेंगे तो सूर्य और चन्द्रमा ही ढँक दिये जायेंगे तो फिर सर्वत्र अंधेरा ही छा जायेगा। हुआ यही कि तीनों लोकों में चारों ओर अन्धकार छा गया।।१०-११।।

उसके बाद समस्त लोकों ने देव, पितृ क्रिया त्याग दी, अर्थात् देवों और पितरों ने सब कार्य करना बन्द कर दिया। इस रहस्य को कर्तव्यतामूढ़ कोई नहीं जान सका।।१२।। इसको देखकर भगवान् रुद्र पार्वती से यह बोले कि हे देवि! तुमने मेरे नेत्र ढँक कर पाप किया है।।१३।। ऋषि लोग तपस्या छोड़ चुके हैं, वैदिक लोग सन्ध्यावन्दनादि नहीं कर रहे हैं, अतः हे अम्बे! समस्त वैदिक कर्म (यज्ञादि) तुमने नष्ट कर दिये।।१४।। इसलिए

पश्चात्कांचीपुरं गत्वा कामाक्षीं तत्र द्रक्ष्यसि।
आराधयैतां नित्यां त्वं सर्वपापहरीं शिवाम्॥१६॥
तुलसीमग्रतः कृत्वा कम्पाकूले तपः कुरु। इत्यादिश्य महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१७॥
तथा कृतवतीशानी भर्तुराज्ञानुवर्तिरनी। चिरेण तपसा क्लिष्टामनन्यहृदयां शिवाम्॥१८॥
अग्रतः कृतसांनिध्या कामाक्षी वाक्यमब्रवीत्। वत्से तपोभिरत्युग्रैरलं प्रीतास्मि सुव्रते॥१९॥
उन्मील्य नयने पश्चात्पार्वती स्वपुरःस्थिताम्। बालार्कायुतसंकाशां सर्वाभरणभूषिताम्॥२०॥
किरीटहारकेयूरकटकाद्यैरलंकृताम्। पाशांकुशेक्षुकोदंडपञ्चबाणलसत्कराम्॥२१॥
किरीटमुकुटोल्लासिचंद्ररेखाविभूषणाम्। विधातृहरिरुद्रेशसदाशिवपदप्रदाम्॥२२॥
सगुणं ब्रह्मतामाहुरनुत्तरपदाभिधाम्। प्रपञ्चद्वयनिर्माणकारिणीं तां परांबिकाम्॥२३॥
तां दृष्ट्वाथ महाराज्ञीं महानदपरिप्लुता। पुलकाचितसर्वांगी हर्षेणोत्फुल्ललोचना॥२४॥
चंडिकामंगलाद्यैश्च सहसा स्वसखीजनैः। प्रणिपत्य च साष्टाङ्गं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्॥२५॥
बद्धांजलिपुटा भूयः प्रणता स्वैक्यरूपिणी। तामाह कृपया वीक्ष्य महात्रिपुरसुंदरी॥२६॥
बाहुभ्यां संपरिष्वज्य सस्नेहमिदमब्रवीत्। वत्से लभस्व भर्तारं रुद्रं स्वमनसेप्सितम्॥२७॥
लोके त्वमपि रक्षाथरं ममाज्ञामनुवर्तय। अहं त्वमिति को भेदस्त्वमेवाहं न संशयः॥२८॥

पाप की शान्ति के लिए अत्यन्त कठोर तप करो और तपव्रत तुम काशी में जाकर कुछ समय तक करो।।१५।। उसके बाद तुम कांचीपुर में जाकर वहाँ पर कामाक्षी देवी को देखोगी। वहाँ जाकर तुम उन कल्याण करने वाली, सब पापों को नष्ट करने वाली, सदा रहने वाली शिवा की आराधना करो।।१६।। तुलसी को आगे करके कम्पा नदी के किनारे तपस्या करो, ऐसा आदेश कर महादेव वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।१७।। तब पार्वती ने अपने पति की आज्ञा मानकर वैसा ही किया। तब बहुत समय तक कठोर तप करने वाली अनन्य हृदय वाली पार्वती के आगे उपस्थित होकर कामाक्षी महात्रिपुरसुन्दरी ने यह वाक्य बोला कि पुत्रि! हे सुन्दर व्रत करने वाली! अब तपस्या मत करो, मैं प्रसन्न हूँ।।१८-१९।। तब पार्वती ने अपनी आँखों को खोलकर देखा तो सामने उन पराम्बिका महात्रिपुर सुन्दरी को खड़े हुए देखा, जो प्रातःकालीन सूर्य की कान्ति के समान सब आभूषणों से भूषित थी।।२०।।

जो मुकुट, हार, बाजूबन्द, कर्धनी आदि से अलंकृत, पाश, अंकुश, इक्षु, धनु, और पाँच पुष्पबाण युक्त हाथों से सुशोभित थी।।२१।। किरीट मुकुट में उल्लासयुक्त चन्द्ररेखा से विभूषित, ब्रह्मा, विष्णु और शिव ईश्वर और सदाशिव को पद प्रदान करने वाली थीं।।२२।। जिनको सगुण साकार यदि कहा जाये, इस विषय में कोई उत्तर नहीं था। दोनों प्रपञ्चों का निर्माण करने वाली पराम्बिका सामने खड़ी हुई थी, वहीं थी त्रिपुरेश्वरी कामाक्षी थी।।२३।। इसके बाद उन महाराज्ञी महात्रिपुरसुन्दरी को देखकर पार्वती महान् आनन्द से सराबोर हो गयीं। उनके समस्त शरीर के सभी अंग पुलकित हो गये। हर्ष से उनकी आँखें खिल उठीं।।२४।। तब उन्होंने अचानक ही चण्डिका, मंगला आदि अपनी सखियों के साथ उन महाराज्ञी को साष्टांग प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की।।२५।। उसके बाद हाथ जोड़कर नमन करती हुई अपने में ही एकाग्रचित्त उन पार्वती को देखकर महात्रिपुरसुन्दरी ने उनको अपनी बाँहों से आलिंगन कर स्नेहपूर्वक यह कहा कि पुत्रि! तुम अपने मनवाञ्छित पति रुद्र को प्राप्त करो। लोक में तुम भी लोक रक्षा के लिए मेरी आज्ञा का पालन करो। मैं और तुममें कोई भेद नहीं है। तुम ही मैं हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं

किं पापं तव कल्याणि त्वं हि पापनिकृंतनी।
आमनंति हि योगींद्रास्त्वामेव ब्रह्मरूपिणीम्॥२९॥
लीलामात्रमिदं वत्से परलोकविडंबनम्। इत्यूचिषीं महाराज्ञीमंबिकां सर्वमंगला।
भक्त्या प्रणस्य पश्यंती परां प्रीतिमुपाययौ॥३०॥
स्तुवत्यामेव पार्वत्यां तदानीमेव सापरा। प्रविष्टा हृदयं तस्याः प्रहृष्टाया महामुने॥३१॥
अथ विस्मयमापन्ना चिंतयंती मुहुर्मुहुः। स्वप्नः किमेष दृष्टो वा मया किमथ वा भ्रमः॥३२॥
इत्थं विमृश्य परितः प्रेरयामास लोचने। जयां च विजयां पश्चात्सख्यावालोक्य सस्मिते।
प्रसन्नवदना सा तु प्रणते वदति स्म सा॥३३॥
एतावंतमलं कालं कुत्र याते युवां प्रिये। मया दृष्टां तु कामाक्षीं युवां चेत्किमपश्यतम्॥३४॥
सख्यौ तु तद्वचः श्रुत्वा प्रहर्षोत्फुल्ललोचने। पुष्पाणि पूजनार्हाणि निधायाग्रे समूचतुः॥३५॥
सत्यमेवाधुना दृष्टा ह्यावाभ्यामपि सा परा।
न स्वप्नो न भ्रमो वापि साक्षात्ते हृदयं गता।
इत्युक्त्वा पार्श्वयोस्तस्या निषण्णे विनयानते॥३६॥
एकाम्रमूले भगवान्भवानीविरहार्तिमान्। गौरीसंप्राप्तये दध्यौ कामाक्षीं नियतेंद्रियः॥३७॥
तत्रापि कृतसांनिध्या श्रीविद्यादेवता परा। आचष्ट कृपया तुष्टा ध्यायंतं निश्चलं शिवम्॥३८॥
अलं ध्यानेन कंदर्पदर्पघ्न त्वं ममाज्ञया। अंगीकुरुष्व कंदर्पं भूयो मच्छासने स्थितम्॥३९॥

है।।२६-२८।। महात्रिपुरसुन्दरी ने पार्वती से कहा कि हे कल्याणि! तुम्हारा क्या पाप है। अरे तुम तो पाप को नष्ट करने वाली हो, योगीन्द्रगण ब्रह्मरूपिणी तुम्हीं को मानते हैं।।२९।। हे पुत्रि! यह तो लीलामात्र है कि मैं और तुम अलग-अलग हैं तथा यह लोक की विडम्बना है। हम दोनों अलग नहीं एक ही हैं। इस प्रकार कहने वाली महाराज्ञी महात्रिपुरसुन्दरी को देखती हुई सर्वमङ्गला पार्वती भक्ति से उनको प्रणाम करके परा प्रीति को प्राप्त हुईं।।३०।। इस प्रकार जब वे पार्वती प्रसन्न होकर उनकी स्तुति कर ही रही थीं कि उसी समय हे महामुने! अगस्त्य जी! वे महात्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होकर उन पार्वती देवी के शरीर में प्रविष्ट हो गयीं।।३१।। इसके बाद आश्चर्यचकित होकर वे बार-बार चिन्ता करने लगीं कि यह मैंने स्वप्न देखा है अथवा क्या यह मेरा भ्रम है।।३२।। इस प्रकार विचार-विमर्श करके उन्होंने अपने नेत्रों को चारों ओर घुमाया तो जया और विजया अपनी सखियों को बाद में मुस्कराते हुए देखकर प्रसन्नवदन पार्वती उनसे बोलीं।।३३।। कि हे मेरी प्रिय सखियों! इतने समय तक तुम दोनों कहाँ गयी थीं, मैंने जिन कामाक्षी देवी को देखा था, क्या तुम दोनों ने भी देखा?।।३४।।

दोनों सखियाँ उनके वचन को सुनकर हर्ष से पुलकित नेत्रों से पूजा के योग्य सामग्रियों को सामने रखकर बोलीं।।३५।। कि हम दोनों ने भी साक्षात् उन परा देवी महात्रिपुरसुन्दरी को देखा था, इसमें न कोई भ्रम है अथवा न कोई स्वप्न है तथा हमने यह भी देखा कि वे साक्षात् तुम्हारे हृदय में समाविष्ट हो गयी थीं।।३६।। एकाम्र मूल क्षेत्र में पार्वती के विरह में व्याकुल भगवान् शिव ने गौरी को प्राप्त करने के लिये नियतेन्द्रिय होकर कामाक्षी देवी का ध्यान किया।।३७।। वहाँ भी श्री परादेवी महात्रिपुरसुन्दरी उनके पास उपस्थित हुईं और उन पर दयार्द्र हो ध्यानमग्न

एकाम्रसंज्ञे मत्पीठे त्विहैव निवसन्सदा। त्वमेवागत्य मत्प्रीत्यै संनिधौ मम सुव्रत।
गौरीमनुगृहाण त्वं कंपानीरनिवासिनीम्॥४०॥
तापद्वयं जहीह्याशु योगजं तद्वियोगजम्। इत्युक्त्वांतर्दधे तस्य हृदये परमा रमा॥४१॥
शिवो व्युत्थाय सहसा धीरः संहृष्टमानसः। तस्या अनुग्रहं लब्ध्वा सर्वदेवनिषेवितः॥४२॥
हृदि ध्यायंश्च तामेव महात्रिपुरसुन्दरीम्। यद्विलासात्समुत्पन्नं लयं याति च यत्र वै॥४३॥
जगच्चराचरं चैतत्प्रपंचद्वितयात्मकम्। भूषयन्तीं शिवां कम्पामनुकंपार्द्रमानसाम्॥४४॥
अङ्गीकृत्य तदा गौरी वैवाहिकविधानतः। आदाय वृषमारुह्य कैलास शिखरं ययौ॥४५॥
पुनरन्यं महाप्राज्ञं समाकर्णय कुम्भज। आदिलक्ष्म्याः प्रभावं तु कथयामि तवानघ॥४६॥
सभायां ब्रह्मणो गत्वा समासेदुस्त्रियमूर्त्तयः।
दिक्पालाश्च सुराः सर्वे सनकाद्याश्च योगिनः॥४७॥
देवर्षयो नारदाद्या वशिष्ठाद्याश्च तापसाः। ते सर्वे सहितास्तत्र ब्रह्मणश्च कपर्दिनः।
द्वयोः पंचमुखत्वेन भेदं न विविदुस्तदा॥४८॥
अन्योन्यं पृष्टवंतस्ते ब्रह्मा कः कश्च शङ्करः। तेषां संवदतां मध्ये क्षिप्रमंतर्हितः शिवः॥४९॥
तदा पंचमुखो ब्रह्मा सितो नारायणस्तयोः। उभयोरपि संवादस्त्वहं ब्रह्मेत्यजायत॥५०॥

निश्चल शिव से बोलीं कि हे कामदेव के घमण्ड को नष्ट करने वाले शिव! तुम अब मेरा ध्यान मत करो। मेरी आज्ञा से अब तुम पुनः मेरे शासन में कामदेव को स्वीकार करो।।३८-३९।। एकाम्र नामक क्षेत्र में स्थित मेरे पीठ में यहीं कांचीपुर में सदा रहते हुए मेरी प्रीति के लिए मेरे निकट रहो और हे सुन्दर व्रत करने वाले! यहाँ आकर तुम कम्पा नदी के नीर में निवास करने वाली गौरी (पार्वती) को स्वीकार करो।।४०।। अब हे शिव! तुम पार्वती के योग से पैदा होने वाले तथा उनके वियोग से पैदा होने वाले दोनों संतापों को नष्ट कर दो। इस प्रकार कहकर परमेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी उनके हृदय में अन्तर्धान हो गयीं।।४१।। धैर्यशाली प्रसन्नचित्त भगवान् शिव भी उन देवी का अनुग्रह प्राप्त कर हृदय में उन्हीं महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करते हुए सब देवताओं द्वारा सेवित हुए।।४२।। जिन महात्रिपुरसुन्दरी के विलास से जहाँ यह चराचर जगत् जो कि स्थावर और जंगम दो प्रपंचों वाला है, उत्पन्न होता है और लय को प्राप्त होता है, अर्थात् उन महाराज्ञी महात्रिपुर सुन्दरी के विलास से ही संसार के जड़-चेतन पदार्थ पैदा होते हैं तथा नष्ट होते हैं।।४३-४३½।। इस प्रकार कृपासिक्त मानस उन भगवान् शिव भूषित हुईं कम्पा शिवा को गौरी वैवाहिक विधान से स्वीकार कर बैल पर चढ़कर कैलास पर्वत पर चले गये।।४३½-४५।।

भगवान् हयग्रीव अगस्त्य मुनि से बोले कि हे निष्पाप! महाप्राज्ञ! अगस्त्य जी! अब मैं आदिलक्ष्मी का अन्य प्रभाव पुनः कहता हूँ, आप सुनिये।।४६।। ब्रह्मा की सभा में त्रिमूर्ति भगवान् शिव, विष्णु और ब्रह्मा सभी दिक्पाल, सभी देवता, सनक आदि योगीगण, नारद आदि देवर्षिगण, वशिष्ठ आदि तपस्वीगण एकत्रित हुए, तब वहाँ वे सब दोनों के पाँच मुख होने के कारण ब्रह्मा और कपर्दी शिव में भेद नहीं समझ सके।।४७-४८।। तब वे सब एक दूसरे से पूँछने लगे कि कौंन ब्रह्मा है और कौंन शंकर हैं? उन बोलने वालों के मध्य में भगवान् शिव शीघ्र छिप गये, अन्तर्ध्यान हो गये।।४९।। तब पाँच मुख वाले ब्रह्मा और श्वेत वर्ण वाले नारायण थे। उन दोनों में भी यह संवाद होने लगा कि मैं ही ब्रह्मा इस नाम से पैदा हुआ हूँ।।५०।।

अज्ञ मन्नाभिकमलाज्जातस्त्वं यन्ममात्मजः। सृष्टिकर्ता त्वहं ब्रह्मा नामसाधर्म्यतस्तथा।
त्वं च रुद्रश्च मे पुत्रौ सृष्टिकर्तुरुभौ युवाम्।।५१।।
इति मायामोहितयोरुभयोरंतरे तदा। तयोश्च स्वस्य माहात्म्यमहं ब्रह्मेति दर्शयन्।
प्रादुरासीन्महा ज्योतिस्तंभरूपो महेश्वरः।।५२।।
ज्ञात्वैवैनं महेशानं विष्णुस्तूष्णीं ततः स्थितः। पंचवक्रस्ततो ब्रह्मा ह्यवमत्यैवमास्थितः।
ब्रह्मणः शिरसामूध्वर ज्योतिश्चक्रमभूत्पुरः।।५३।।
तन्मध्ये संस्थितो देवः प्रादुरासोमया सह। ऊर्ध्वमैक्षथ भूयस्तमवमत्य वचोऽब्रवीत्।।५४।।
तन्निशम्य भृशं क्रोधमवाप त्रिपुरान्तकः। विष्णुमेवं तदालोक्य क्रोधेनैव विकारतः।।५५।।
तयोरेव समुत्पन्नो भैरवः क्रोधसंयुतः। मूर्धानमेकं चिच्छेद नखेनैव तदा विधेः।
हाहेति तत्र सर्वेऽपि क्रन्दंतश्च पलायिताः।।५६।।
अथ ब्रह्मकपालं तु नखलग्नं स भैरवः। भूयोभूयो धुनोति स्म तथापि न मुमोच तम्।।५७।।
तद्ब्रह्महत्यामुक्त्यर्थं चचार धरणीतले। पुण्यक्षे त्राणि सर्वाणि गंगाद्याश्च महानदीः।।५८।।
न च ताभिर्विमुक्तोऽभूत्कपाली ब्रह्महत्यया। विष्णवदनो दीनो निःश्रीक इव लक्षितः।
चिरेण प्राप्तवान्कांचीं ब्रह्मणा पूर्वमोषिताम्।।५९।।
तत्र भिक्षामटन्नित्यं सेवमानः परां श्रियम्। पंचतीर्थे प्रतिदिनं स्नात्वा भूलक्षणांकिते।।६०।।

नारायण भगवान् विष्णु ने कहा कि मूर्ख! तुम मेरी नाभि से पैदा होने वाले कमल से पैदा हुए हो, इसलिए तुम मेरे पुत्र हो। जिस ब्रह्मा शब्द का अर्थ है सृष्टि करने वाला अतः सृष्टि का करने वाला तो मैं हूँ, क्योंकि मैंने तुम्हें पैदा किया है। ब्रह्मा शब्द का अर्थ पैदा करने वाला है तथा मैं पैदा करने वाला हूँ, इसलिए मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं सृष्टिकर्ता हूँ। तुम और रुद्र दोनों मेरे पुत्र हो।।५१।। तब माया से मोहित उन दोनों के बीच में मैं महान् हूँ, मेरा माहात्म्य अधिक है, मैं ब्रह्मा हूँ, यह दिखाते हुए महान् ज्योति के स्तम्भ रूप से महेश्वर प्रकट हो गये।।५२।। यह महेश ही हैं, ऐसा जानकर भगवान् विष्णु चुप होकर खड़े हो गये। उसके बाद पाँच मुख वाले ब्रह्मा उनको तिरस्कार कर खड़े हो गये। तब ब्रह्माजी के शिरों के ऊपर तो ज्योतिश्चक्र स्थित था।।५३।। उसके मध्य भगवान् शंकर चन्द्रमा के साथ प्रकट होकर स्थित थे। तब ब्रह्माजी ने ऊपर को देखा और फिर अवहेलना करके ये वचन बोले।।५४।। उसको सुनकर त्रिपुरान्तर बहुत अधिक क्रोधित हो गये। इस प्रकार विष्णु को देखकर क्रोध के द्वारा अर्थात् क्रोध के ही विकार से क्रोध से युक्त भैरव उत्पन्न हो गये। तब उस भैरव ने ब्रह्मा जी के मूर्धान मस्तक में एक छेद कर दिया, तब हा हा इस प्रकार क्रन्दन करते हुए सब भाग गये।।५६।।

इसके बाद ब्रह्माजी के कपाल में नाखून लगाये हुए वे भैरव बार-बार उन ब्रह्माजी को धुनते रहे, अर्थात् उनके मस्तक को नाखूनों से छेदते रहे। ब्रह्माजी छटपटाते रहे, फिर भी भैरव ने उन्हें नहीं छोड़ा और मार दिया।।५७।। तब भैरव ब्रह्महत्या से मुक्ति के लिए समस्त भूमण्डल में सब पुण्यक्षेत्रों गङ्गा आदि महानदियों में विचरण करने लगे। फिर भी वे कपाली उस ब्रह्महत्या से मुक्त नहीं हुए, तब वे दुःखी मुख वाले शोभारहित दिखाई दे रहे थे, तब बहुत समय के बाद कांचीपुर में पहुँचे, जहाँ वे पहले रह चुके थे।।५८-५९।। वहाँ पर वे कपाली भैरव भिक्षाटन करते हुए उन परा श्रीत्रिपुरसुन्दरी की सेवा करते हुए लक्षणांकित पृथ्वी के लक्षण से अंकित पंचतीर्थ में प्रतिदिन स्नान करके

कञ्चित्कालमुवासाथ प्रभ्रान्त इव बिल्वलः। कांचीक्षेत्रनिवासेन क्रमेण प्रयताशयः॥६१॥
निर्धूतनिखिलांतकः श्रीदेवीं मनसा वहन्। उत्तरे सेवितुं लक्ष्म्या वासुदेवेन दक्षिणे॥६२॥
श्रीकामकोष्ठमागत्य पुरस्तात्तस्य संस्थितः। आदिलक्ष्मीपदध्यानमाततान यतात्मवान्॥६३॥
यथा दीपो निवातस्थो निस्तरंगो यथांबुधिः। तथांतर्वायुरोधेन न चचालाचलेश्वरः॥६४॥
तैलधारावदच्छिन्नामनवच्छिन्नभैरवः। वितेन शैलतनयानाथश्रीध्यानसन्ततिम्॥६५॥
न ब्रह्मा नैव विष्णुर्वा न सिद्धः कपिलोऽपि वा।
नान्ये च सनकाद्या ये मुनयो वा शुकादयः।
तया समाधिनिष्ठायां न समर्थाः कथंचन॥६६॥
अथ श्रीभावयोगेन श्रीभावं प्राप्तवाञ्शिवः। ततः प्रसन्ना श्रीदेवी प्रभामण्डलवर्तिनी।
अर्धरात्रे पुरः स्थित्वा वाचं प्रोवाच वाङ्मयी॥६७॥
श्रीकण्ट सर्वपापघ्न किं पापं तव विद्यते। मद्रूपस्त्वं कथं देहः सेयं लोकविडम्बना॥६८॥
श्वोभूते ब्रह्महत्यायाः क्षणान्मुक्तो भविष्यसि। इत्युक्त्वान्तर्दधे तत्र महासिंहासनेश्वरी॥६९॥
भैरवोऽपि प्रहृष्टात्मा कृतार्थः श्रीविलोकनात्।
विनीय तं निशाशेषं श्रीध्यानैकपरायणः॥७०॥

कुछ समय तक भूले-भटके से दुःखी रहते हुए निवास करते रहे।।६०-६०½।। कांची क्षेत्र में निवास करने से उन प्रयत्नशील आशय वाले ब्रह्माजी के समस्त दुःख समाप्त हो गये, तब श्रीदेवी का मन से स्मरण करते हुए उन भैरव शंकर जी ने उत्तर में लक्ष्मी जी की सेवा की और दक्षिण में वासुदेव भगवान् विष्णु की सेवा कर श्रीकामकोष्ठ में आकर उसके सामने स्थित हो गये और फिर संयत आत्मा वाले वे भैरव रूप शंकर आदिलक्ष्मी के चरणों में ध्यानमग्न हो गये।।६०½-६३।। जिस प्रकार वायुरहित स्थान में रखा हुआ दीपक निश्चल होता है, उसी प्रकार निश्चल होकर बिना हिलते-डुलते हुए वे ध्यानमग्न थे तथा जिस प्रकार लहरों रहित समुद्र होता है, उसी प्रकार उन्होंने वायु को अपने अन्तर्गत रोक लिया था, जिसके कारण वे बिल्कुल अचल हो गये थे।।६४।। जिस प्रकार तेल की धार बिना टूटे हुए एक होकर गिरती है, उसी प्रकार बिल्कुल अनवच्छिन्न (एकलय) होकर वे भैरव श्रीशैलनाथ पुत्री पार्वती श्रीनाथा के ध्यान में लीन हो गये तथा वे भैरव उनके ध्यान में इतने लीन हो गये कि ध्यानमग्नता न तो ब्रह्मा कभी ब्रह्मा न ही विष्णु की हुई न सिद्धगण हुई न कपिल मुनि की हुई और न अन्य मुनिगण सनक आदि ही हुए और न जो शुक आदि मुनि थे, वे भी ऐसी समाधिनिष्ठा में किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हुए थे।।६५-६६।।

इस प्रकार श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के प्रति अपनी भावना के योग से भगवान् शिव श्रीदेवी के भाव को प्राप्त हो गये, अर्थात् वे भी श्रीदेवीमय हो गये। तब प्रकाशमण्डल में रहने वाली श्रीदेवी ने प्रसन्न हो अर्धरात्रि में शिव के समक्ष उपस्थित होकर यह वाङ्मयी वाणी बोली।।६७।। कि हे श्रीकण्ठ! सब पापों को नष्ट करने वाले शिव जी! तुम्हारा क्या पाप है? तुम तो मेरे रूप वाले हो, तुम्हारे और मेरे रूप में कोई भाद नहीं, यह शरीर-भेद तो लोक-विडम्बना है। यह सब भेद तो लोगों को भ्रमित करने के लिये है।।६८।। कल होने पर ब्रह्महत्या के पाप से क्षण भर में मुक्त हो जाओगे। इस प्रकार ऐसा कहकर वे महासिंहासनेश्वरी श्रीदेवी त्रिपुरसुन्दरी अन्तर्धान हो गयीं।।६९।। श्रीदेवी के दर्शन से भैरव की आत्मा अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और वे कृतार्थ हो गये, तब वे विनय पूर्वक शेष रात्रि में उन्हीं श्रीदेवी

प्रातः पञ्चमहातीर्थे स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य च। पुनः पुनर्धूनुते स्म करलग्ने कपालकम्॥७१॥
तथापि तत्तु नास्त्रंसत्स निर्वेदं परं गतः। स्वप्नः किमेष माया वा मानसभ्रांतिरेव वा॥७२॥
मुहुरेव विचिंत्येशः शोकव्याकुलमानसः। स्वयमेव निगृह्याथ शोकं धीराग्रणीः शिवः॥७३॥
तुलसीमण्डलं नत्वा पूजयित्वा पुरः स्थितः। निगृहीतेंद्रियग्रामः समाधिस्थोऽभवत्पुनः॥७४॥
याममात्रे गते देवी पुनः सांनिध्यमागता। अलं समाधिना शम्भो निमज्जात्र सरोवरे॥७५॥
इत्यादिश्य तिरोऽधत्त सोऽपि चिंतामुपागमत्।
इयं च माया स्वप्नो वा किं कर्त्तव्यं मयाथ वा॥७६॥
श्वोभूते ब्रह्महत्यायाः क्षणान्मुक्तो भविष्यसि। इत्युक्तं श्रीपरादेव्या यामातीतमिदं दिनम्॥७७॥
एवं सर्वं च मिथ्यैवेत्यधिकं चिन्तयावृतः। भगवान्व्योमवाण्या तु निमज्जाप्स्विति गर्जितम्॥७८॥
श्रुत्वा शङ्कां समुत्सृज्य तत्त्वं निश्चित्य शङ्करः। निममज्ज सरस्यां तु गङ्गायां पुनरुत्थितः॥७९॥
तत्र काशीं समालोक्य किमेतदिति चिन्तयन्। स मुहूर्तं स्थितस्तूष्णीं नखलीनकपालकः॥८०॥
ललाटंतपमुद्वीक्ष्य तरणिं तरुणेंदुभृत्। भिक्षार्थं नगरीमेनां प्रविवेश वशी शिवः॥८१॥
गृहाणि कानिचिद्गत्वा प्रतोल्यां पर्यटन्भवः।
सोऽपश्यदग्रतः कांचित्कांचीं श्रीदेवताकृतिम्॥८२॥

के ध्यान में लीन हो गये।।७०।। उसके बाद प्रातःकाल पञ्च महातीर्थ में स्नान कर सन्ध्या और उपासना करके वे भैरव ब्रह्महत्या के पाप के भय से पुनः-पुनः अपने कपाल को धुनने लगे।।७१।। फिर भी उनको यह विश्वास नहीं हुआ कि मेरा पाप नष्ट हो गया है, तब वे फिर अत्यन्त दुःखी हो गये। अब तो उन्हें यह भ्रम हो गया कि पूर्व रात्रि में जो श्रीदेवी ने दर्शन देकर कहा था, वह एक स्वप्न था, अथवा कोई भ्रम था।।७२।। बार-बार इस प्रकार विचार कर वे ईश्वर भैरव शोकाकुल मन हो गये और फिर स्वयं ही उस शोक को रोककर धैर्यशालियों में अग्रणी शिव तुलसीमण्डल को नमस्कार कर श्रीदेवी के सामने स्थित हो, अपनी समस्त इन्द्रियों को आत्मस्थ कर, पुनः समाधिस्थ हो गये।।७३-७४।। रात्रि के कुछ शेष रह जाने पर श्रीदेवी पुनः उनके सामने प्रकट हो गयीं और उन्होंने कहा कि हे शम्भो! अब समाधि मत लगाओ, इस सरोवर में डूब जाओ।।७५।। इस प्रकार आदेश देकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं, तब वे भी चिन्तित हो गये कि यह माया है या स्वप्न है, अब मुझे क्या करना चाहिए।।७६।। मुझसे श्रीदेवी ने कहा था कि कल होने पर तुम क्षण भर में ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाओगे। यह जो परादेवी ने कहा, उसको एक रात और एक दिन बीत गया।।७७।।

इस प्रकार यह सब मिथ्या ही है, इस प्रकार भगवान् शंकर अधिक चिन्ता से युक्त हो गये। तब आकाशवाणी द्वारा तुम जल में डूब जाओ, इस प्रकार की गर्जना हुई।।७८।। तब उस गर्जना को सुनकर तथा उस आकाशवाणी तत्त्व है, यह निश्चय कर भगवान् शंकर उस सरोवर में डूब गये और फिर गङ्गा में जाकर काशी में निकले।।७९।। तब वहाँ काशी को देखकर यह क्या है? यह सोचते हुए वे नाखून में लगे ब्रह्मा के कपाल वाले भगवान् शंकर थोड़ी देर तक वहाँ चुपचाप खड़े रहे।।८०।। फिर तरुण चन्द्रमा को धारण करने वाले भगवान् शिव ललाट को तप्त करने वाले सूर्य को देखकर भिक्षा के लिए इस काशी नगरी में प्रविष्ट हुए।।८१।। कुछ घरों में जाकर गली में घूमते हुए उन भगवान् शंकर ने अपने आगे किसी देवी त्रिपुरेश्वरी की आकृति वाली काञ्ची (स्त्री) को देखा।।८२।।

भिक्षां ज्योतिर्मयीं तस्मै दत्त्वा क्षिप्रं तिरोदधे। क्षणाद्ब्रह्मकपालं तत्प्रच्युतं तन्नखाग्रतः॥८३॥
तदृष्ट्वाद्भुतमीशानः कामाक्षी शीलमुत्तमम्। प्रसन्नवदनांभोजो बहु मेने मुहुः परम्॥८४॥
पुरी कांची पुरी पुण्या नदी कंपा नदी परा। देवता सैव कामाक्षीत्यासीत्संभावना पुरः॥८५॥
इत्थं देवीप्रभावेण विमुक्तः संकटाद्धरः।
स्वस्थः स्वस्थानमगमच्छ्लाधमानः परां श्रियम्॥८६॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि विलासं शृणुं कुम्भज। प्रभावं श्रीमहादेव्याः कामदं शृण्वतां सदा॥८७॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान्नाम्ना दशरथो नृपः। सन्तानरहितोऽतिष्ठद्बहुकालं शुचाकुलः॥८८॥
रहस्याहूय मतिमान्वशिष्ठं स्वपुरोहितम्। उवाचाचारसंशुद्धः सर्वशास्त्रार्थवेदिनम्॥८९॥
श्रीनाथ बहवोऽतीताः काला नाधिगतः सुतः। संततेर्मम संतापः संततं वर्धतेतराम्।
किं कुर्वे यदि संतानसंपत्स्यात्तन्निवेदय॥९०॥

वशिष्ठ उवाच

मम वंश महाराज रहस्यं कथयामि ते।
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवंतिका।
एता पुण्यतमाः प्रोक्ताः पुरीणामुत्तमोत्तमाः॥९१॥

तब उन भगवान् शिव के लिए भिक्षा देकर वे ज्योतिर्मयी देवी शीघ्र अन्तर्धान हो गयीं और शीघ्र ब्रह्मा का कपाल उनके नाखून के अग्रभाग से निकल कर गिर पड़ा।।८३।। तब भगवान् शिव ने कामाक्षी देवी के उस अद्भुत उत्तम शील को देखकर प्रसन्नमुख होकर उन देवी को फिर बहुत अधिक शक्तिशाली माना।।८४।। और फिर पुरी कांची पुण्य पुरी है तथा वहाँ पर जो कम्पा नदी है, वह तो और भी अधिक पुण्यमय है तथा देवी तो वही कामाक्षी हैं, ऐसी पहले सम्भावना थी। वह आज सम्भावना पूरी हो गयी तथा यह सिद्ध हो गया कि कांची नगर सबसे पुण्य नगरी है और वहाँ पर स्थित कामाक्षी देवी सबसे श्रेष्ठ देवी हैं।।८५।। इस प्रकार देवी की कृपा से संकट से विमुक्त भगवान् शंकर स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त होकर श्रीपरा देवी त्रिपुरेशी की प्रशंसा करते हुए अपने स्थान को चले गये।।८६।।

इसके बाद भगवान् हयग्रीव ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे अगस्त्य जी! यह मैंने आपको देवी महात्रिपुरसुन्दरी का माहात्म्य बताया है, अब पुनः मैं उनके एक अन्य विलास (माहात्म्य) को बताऊँगा, अतः सुनने वालों की सदा इच्छा पूर्ण करने वाले देवी के प्रभाव को सुनिये।।८७।। अयोध्यापति श्रीमान् राजा दशरथ बहुत समय तक सन्तानरहित रहे। इसलिए वे बहुत समय तक शोक से व्याकुल रहे।।८८।। तब शुद्ध आचरण वाले बुद्धिमान् दशरथ ने एकान्त में अपने सब शास्त्रों के अर्थों को जानने वाले पुरोहित गुरु वशिष्ठ को बुलाकर उनसे कहा।।८९।। कि हे नाथ! बहुत समय बीत गया; परन्तु हमने पुत्र को नहीं प्राप्त किया। हे गुरुदेव हमारा सन्तान का दुःख निरन्तर बढ़ता जा रहा है। हे नाथ! बताइए अब हम क्या करें, जिससे सन्तान प्राप्त हो सके।।९०।।

वशिष्ठ ने कहा कि मेरे वंश में उत्पन्न महाराज दशरथ! मैं तुम्हें रहस्य की बात बता रहा हूँ। अयोध्या, मथुरा, काशी, कांची और अवन्तिका (उज्जैन नगरी) ये सब नगरियाँ नगरियों में उत्तम और पुण्यतम कही गयी हैं।।९१।।

अस्याः सांनिध्यमात्रेण महात्रिपुरसुन्दरीम्। अर्चयंति ह्ययोध्यायां मनुष्या अधिदेवताम्॥९२॥
नैतस्याः सदृशी काचिद्देवता विद्यते परा। एनामेवार्चयंत्यन्ये सर्वे श्रीदेवतां नृप॥९३॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सस्त्रीकाः सर्वदा सदा।
नारिकेलफलालीभिः पनसैः कदलीफलैः॥९४॥
मध्वाज्यशर्कराप्राज्यैर्महापायसराशिभिः। सिद्धद्रव्यविशेषैश्च पूजयेत्रिपुरांबिकाम्।
अभीष्टमचिरेणैव संप्रदास्यति सैव नः॥९५॥
इत्युक्तवन्तमभ्यर्च्य गुरुमिष्टैरुपायनैः। स्वाङ्गजप्राप्तये भूयो विससर्ज विशांपतिः॥९६॥
ततो गुरूक्तरीत्यैव ललितां परमेश्वरीम्। अर्चयामास राजेंद्रो भक्त्या परमया युतः॥९७॥
एवं प्रतिदिनं पूजां विधाय प्रीतमानसः। अयोध्यादेवताधामामशिषत्तत्र सङ्गतः॥९८॥
अर्धरात्रे व्यतीते तु निमृतोल्लासदीपिके। किञ्चिन्निद्रालसस्यास्य पुरतस्त्रिपुरांबिका॥९९॥
पाशांकुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भुजां सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता।
स्थित्वा वाचमुवाचेमां मन्दमिन्दुमतीसुतम्॥१००॥
अस्ति पंक्तिरथ श्रीमन्पुत्रभाग्यं तवानघ। विश्वासघातकर्माणि संति पूर्वकृतानि ते॥१०१॥
तादृशां कर्मणां शान्त्यै गत्वा काञ्चीपुरं वरम्।
स्नात्वा कम्पासरस्यां च तत्र मां पश्य पावनीम्॥१०२॥
मध्ये काञ्चीपुरस्यत्वं कन्दराकाशमध्यगम्।
कामकोष्ठं विपाप्मापि सप्तद्वारबिलान्वितम्॥१०३॥

इनमें से इस एक के भी सान्निध्य मात्र से अर्थात् इनमें से किसी एक नगरी में रहने मात्र से श्रीदेवी प्रसन्न होती हैं। इसलिए मनुष्य अयोध्या में श्रीदेवी महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा करते हैं।।९२।। क्योकि इन देवी महात्रिपुरसुन्दरी के समान अन्य कोई देवी नहीं है। इसलिए हे राजन्! इन श्रीदेवी की ही सब अर्चना करते हैं।।९३।। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ सदैव नारियल के फलों, कटहलों, केलों, मधु, घृत, शक्कर और प्रचुर महाखीर आदि सिद्ध द्रव्यविशेषों से त्रिपुराम्बिका का यदि पूजन करें तो वे हमें अभीष्ट फल को शीघ्र ही प्रदान कर देंगी।।९५।। इस प्रकार अभीष्ट उपहारों से गुरु की अभ्यर्चना करके अपने अंग से उत्पन्न होने वाले पुत्र के लिए प्रजापति दशरथ ने विशेष व्यवस्था की।।९६।। उसके बाद महाराज दशरथ ने परम भक्ति से युक्त होकर गुरु वशिष्ठ द्वारा बतायी गयी रीति से ललिता परमेश्वरी की पूजा की।।९७।। इस प्रकार प्रतिदिन पूजा करके अयोध्याधाम को वहाँ पर अर्थसङ्गत कर दिया।।९८।। आधी रात के बीत ने पर चमकते हुए दीपक के शान्त हो जाने पर कुछ निद्रा से आलसयुक्त दशरथ के सामने महात्रिपुरसुन्दरी उपस्थित हो गयीं।।९९।। जो अपनी चार भुजाओं में पाश, अंकुश, धनुष-बाण लिये हुए थीं, एवं समस्त शृंगार के वेष से सजी हुई थीं तथा सभी प्रकार के आभूषणों से भूषित थीं, ऐसी वे महात्रिपुरसुन्दरी इन्दुमती के पुत्र शान्तचित्त राजा दशरथ से इस प्रकार बोलीं।।१००।। कि हे निष्पाप श्रीमन् दशरथ! तुम्हारे पुत्र भाग्य में आपके द्वारा किये गये कुछ विश्वासघात रूप कर्म हैं, जिनके कारण तुमको पुत्र नहीं पैदा हो रहा है।।१०१।। इसलिए वैसे कर्मों की शान्ति के लिए आप श्रेष्ठ कांचीपुर में जाकर कम्पा सरोवर में स्नान करके मुझ पवित्र करने वाली देवी का दर्शन करो।।१०२।। वहाँ कांचीपुर के मध्य में पापरहित सात द्वारों से युक्त

साम्राज्यसूचकं पुंसां त्रयाणामपि सिद्धिदम्। प्राङ्मुखी तत्र वर्तेऽहं महासिंहासनेश्वरी॥१०४॥
महालक्ष्मीस्वरूपेण द्विभुजा पद्मधारिणी। चक्रेश्वरी महाराज्ञी ह्यदृस्या स्थूलचक्षुषाम्॥१०५॥
ममाक्षिजा महागौरी वर्तते मम दक्षिणे। सौन्दर्यसारसीमा सा सर्वाभरणभूषिता॥१०६॥

मया च कल्पिताऽऽवासा द्विभुजा पद्मधारिणी।
महालक्ष्मीस्वरूपेण किं वा कृत्यात्मना स्थिता॥१०७॥
आपीठमौलिपर्यन्तं पश्य तस्तां ममांशजाम्।
पातकान्याशु नश्यंति किं पुनस्तूपपातकम्॥१०८॥

कुवासना कुबुद्धिश्च कुतर्कनिचयश्च यः। कुदेहश्च कुभावश्च नास्तिकत्वं लयं व्रजेत्॥१०९॥
कुरुष्व मे महापूजां सितामध्वाज्यपायसैः। विविधैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पदार्थै षड्रसान्वितैः॥११०॥
तत्रैव सुप्रसन्नाहं पूरयिष्यामि ते वरम्। उपदिश्येति साम्राज्ञी दिव्यमूर्तिस्तिरोदधे॥१११॥

राजापि सहसोत्थाय किमेतदिति विस्मितः।
देवीमुद्बोध्य कौसल्यां शुभलक्षणलक्षिताम्॥११२॥

तस्यै तद्रात्रिवृत्तांतं कथयामास सादरम्। तत्समाकर्ण्य सा देवी सन्तोषमभजत्तदा॥११३॥
प्राप्तहर्षो नृपः प्रातस्तया दयितया सह। अनीकसचिवोपेतः। काञ्चीपुरमुपागत्॥११४॥

कामकोष्ठ है, जो पुरुषों के साम्राज्य का सूचक है, अर्थात् मनुष्य को साम्राज्य प्रदान करने वाला है तथा मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम तीनों की भी सिद्धि प्रदान करने वाला है, अतः हे दशरथ! वहाँ तुम जाओ, वहाँ मैं महासिंहासनेश्वरी पूर्वाभिमुख होकर वर्तमान हूँ।।१०३-१०४।। वहाँ महालक्ष्मी के स्वरूप से दो भुजाओं वाली, कमल को धारण करने वाली महाराज्ञी चक्रेश्वरी, स्थूल चक्षुओं से न देखे जाने वाली, मेरी आँख से उत्पन्न हुई महागौरी मेरे दक्षिण भाग में विद्यमान है। वह देवी सुन्दरता का जो सार तत्त्व है, उसकी सीमा है, अर्थात् त्रिलोकी में सुन्दरता के तत्त्वों की जो सीमा है, उसी सीमा पर वे स्थित हैं तथा वे सब आभूषणों से भूषित हैं।।१०५-१०६।। महात्रिपुर सुन्दरी ने दशरथ से कहा कि मैंने ही दो भुजाओं वाली पद्मधारिणी देवी को वहाँ पर आवास दिया है तथा अपने कर्म से लक्ष्मी के स्वरूप से वे वहाँ स्थित हैं।।१०७।।

वहाँ पीठ से लेकर मौलि (पीठ की शिखा) तक उन मेरे अंश से उत्पन्न महागौरी को देखते ही समस्त पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, फिर छोटे-मोटे पापों की तो बात ही क्या है?।।१०८।। वहाँ जाकर उनका दर्शन करके बुरी वासना (बुरी इच्छाएँ), बुरी बुद्धि, कुतर्क आदि करने का विचार, बुरा शरीर, मन के बुरे विचार और ईश्वर को न मानने के भाव नष्ट हो जाते हैं।।१०९।। हे राजन्! वहाँ जाकर तुम शक्कर, मधु, घृत, खीर तथा छः रसों से बनाये हुए अनेकों प्रकार के भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों से मेरी पूजा करो।।११०।। वहीं पर मैं तुम्हारी पूजा से प्रसन्न होकर तुम्हें वर प्रदान करूँगी। इस प्रकार स्वप्न में उपदेश देकर श्री दिव्यमूर्ति त्रिपुरसुन्दरी अन्तर्धान हो गयीं।।१११।। इसके बाद राजा दशरथ भी अचानक उठकर यह क्या है? ऐसा सोचकर आश्चर्यचकित हो गये और अपनी पत्नी शुभलक्षणा कौशल्या को जगाकर उनसे उस समस्त वृत्तान्त को आदरपूर्वक कह सुनाया। तब उस वृत्तान्त को सुनकर वे देवी कौशल्या सन्तोष को प्राप्त हुईं।।११२-११३।। प्रातःकाल राजा दशरथ अपनी प्रिय पत्नी के साथ मुख्य सचिव के साथ कांची पुर में पहुँच गये।।११४।।

स्नात्वा कंपातरंगिण्यां दृष्ट्वा देवीं च पावनीम्।
पञ्चतीर्थे ततः स्नात्वा देव्या कौसल्यया नृपः॥११५॥
गोभूवस्त्र हिरण्याद्यैस्तत्तीर्थक्षेत्रवासिनः।
प्रीणयित्वा सपत्नीकस्तथा तद्भक्तिपूजकान्॥११६॥
अथालयं समाविश्य महाभक्त्या नृपोत्तमः। प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा विनयेन समन्वितः॥११७॥
ततः संनिधिमागत्य देव्या कौसल्यया सह। श्रीकामकोष्ठनिलयं महात्रिपुरसुन्दरीम्॥११८॥
त्रिमूर्तिजननीमंबां दृष्ट्वा श्रीचक्ररूपिणीम्।
प्रणिपत्य तु साष्टांगं भार्यया सह भक्तिमान्॥११९॥
स्वपुरे त्रैपुरे धाम्नि पुरेक्ष्वाकुप्रवर्तिते। दुर्वासा सशिष्येण पूजार्थं पूर्वकल्पिते॥१२०॥
दासीदासध्वजारोहगृहोत्सवसमन्विते। तत्र स्वगुरुणोक्तं च कृत्वा स्वात्मार्घपूजनम्॥१२१॥
रात्रौ स्वप्ने तु यद्रूपं दृष्टवान्स्वपुरे महः। तदेवात्रापि संदध्यौ सन्निधौ राजसत्तमः॥१२२॥
चिरं ध्यात्वा महाराजः सुवासांसि बहूनि च।
दिव्यान्यायतनान्यस्यै दत्त्वा स्तोत्रं चकार ह॥१२३॥
पादाग्रलंबिपरमाभरणाभिरामे मञ्जीररत्नरुचिमञ्जुलपादपद्मे।
पीतांबरस्फुरितपेशलहेमकाञ्चि केयूरकङ्कणपरिष्कृतबाहुवल्लि॥१२४॥
पुंड्रेक्षुचापविलसन्मृदुवामपाणे रत्नोर्मिकासुमशराञ्चितदक्षहस्ते।
वक्षोजमंडलविलासिवलक्षहारि पाशांकुशांगदलसद्भुजशोभितांगि॥१२५॥

वहाँ कम्पा नामक नदी में स्नान कर उन पवित्र देवी का दर्शन किया, उसके बाद पञ्चतीर्थ में स्नान करके देवी कौशल्या के साथ राजा दशरथ वहाँ के तीर्थ में रहने वालों को देवी की पूजा करने वाले भक्तों को गाय, भूमि, वस्त्र और स्वर्ण आदि से प्रसन्न करके पत्नी सहित आलय (मन्दिर) में सम्यक् रूप से प्रविष्ट होकर महान् भक्ति के साथ नृपश्रेष्ठ दशरथ परिक्रमा करके विनम्रता से युक्त हो गये।।११५-११७।। उसके बाद कौशल्या के साथ महादेवी त्रिपुरसुन्दरी के पास आकर भक्तिमान् उन्होंने श्रीकामकोष्ठनिलय की महात्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों मूर्तियों की जननी श्रीचक्ररूपिणी महाराज्ञी को देखकर पत्नी के साथ उनको साष्टांग प्रणाम किया।।११८-११९।। फिर प्रणाम करके अपने पुर त्रिपुराधाम कांचीपुर में ही उन्होंने शिष्यों से युक्त दुर्वासा ऋषि द्वारा वहाँ पर पूर्वकल्पित पूजा में दासी, दास, ध्वजारोहण तथा घर के जो भी उत्सव होते हैं, वे सब करते हुए अपने गुरु वशिष्ठ के कहे हुए के अनुसार उन्होंने सब प्रकार से पूजा-पाठ किया।।१२०-१२१।। तब रात्रि में स्वप्न में जिस रूप को उन्होंने अपने अयोध्या महान् पुर में देखा था, उसी रूप को उन राजश्रेष्ठ दशरथ ने यहाँ श्रीदेवी के पास में भी देखा।।१२२।। तब बहुत देर तक उनका ध्यान कर महाराज ने बहुत से सुन्दर वस्त्रों को तथा दिव्य आयतनों को इस देवी को प्रदान कर उनकी स्तुति की।।१२३।। कि हे पैरों के अग्रभाग तक लटकने वाले आभूषणों से सुन्दर लगने वाली, हे रत्नजटित घुंघरुओं के रत्नों की कान्ति से युक्त सुन्दर चरण कमल वाली, हे पीत वस्त्र पर चमकती हुई कोमल सोने के घुंघरुओं युक्त कर्धनी वाली, हे बाजूबन्द और कंगन से सजी हुई भुजलता वाली देवि! तुम मेरे हृदय में वास करो।।१२४।। हे पुण्ड्र, इक्षु और वाण से सुशोभित वाम हाथ वाली, हे रत्नों की चमक से युक्त पुष्पबाण से सुशोभित

वक्त्रश्रिया विजितशारदचन्द्रबिंबे ताटंकरत्नकरमण्डितगंडभागे।
वामे करे सरसिजं सुबिसं दधाने कारुण्यनिर्झरपाङ्गयुते महेशि॥१२६॥
माणिक्यसूत्रमणिभासुरकंबुकंठि भालस्थचन्द्रशकलोज्ज्वलितालकाढ्ये।
मंदस्मितस्फुरणशालिनि मंजुनासे नेत्रश्रिया विजितनीलसरोजपत्रे॥१२७॥
सुभ्रूलते सुवदने सुललाटचित्रे योगींद्रमानससरोजनिवासहंसि।
रत्नानुबद्धतपनीयमहाकिरीटे सर्वांगसुन्दरि समस्तसुरेन्द्रवंद्ये॥१२८॥
कांक्षानुरूपवरदे करुणार्द्रचित्ते साम्राज्यसम्पदभिमानिनि चक्रनाथे।
इन्द्रादिदेवपरिसेवितपादपद्मे सिंहसनेश्वरि परे मयि संनिदध्याः॥१२९॥

इति स्तुत्वा स भूपालो बहिर्निर्गत्य भक्तितः।
तस्यास्तु दक्षिणे भागे महागौरीं ददर्श ह॥१३०॥
प्रणम्य दंडवद्भूमौ कृत्वा चास्याः स्तुतिं पुनः।
दत्त्वा चास्यै महार्हाणि वासांसि विविधानि च॥१३१॥

अमूल्यानि महार्हाणि भूषणानि महांति च। ततः प्रदक्षिणीकृत्य निर्गत्य सह भार्यया॥१३२॥
स्वगुरूक्तविधानेन महापूजां विधाय च। तामेव चिन्तयंस्तत्र सप्तरात्रमुवास सः॥१३३॥

दक्ष हाथ वाली, हे स्तनों पर सुशोभित स्वच्छ हार वाली, हे पाश, अंकुश और कुहुनी से ऊपर पहने जाने वाले (वारा) आभूषण से सुशोभित भुजाओं से युक्त शरीर वाली देवि! आप मेरे हृदय में वास करो।।१२५।। हे अपने मुख की शोभा से शरत्कालीन चन्द्रबिम्ब को भी जीतने वाली, हे कर्धनी में जड़े हुए रत्न की किरण से मण्डित कमर वाली, हे बायें हाथ में डंठल सहित कमल धारण करने वाली, अपनी आँखों से करुणा टपकाने वाली महेश्वरि! आप मेरे हृदय में वास करो।।१२६।। हे माणिक्य जटिल सूत्र की मणि से चमकती हुई सुराही जैसी लम्बी गरदन वाली देवि! मस्तक पर स्थित द्वितीया के चन्द्रमा से युक्त केशपाश वाली, मन्द मुस्कान के स्फुरण वाली, सुन्दर नासिका वाली तथा अपनी आँखों की शोभा से नीलकमल पत्र की शोभा को जीतने वाली देवि! तुम मेरे हृदय में वास करो।।१२७।। हे सुन्दर भ्रूलता (भौहों) वाली, सुन्दर मुख वाली, सुन्दर मस्तक वाली, हे योगियों के कमल रूपी मन में निवास करने वाली हंसिनी! हे रत्नों से अनुबद्ध चमकते हुए महामुकुट वाली, सर्वांग सुन्दरि! समस्त देवों तथा देवेन्द्र से वन्दनीय देवि! तुम मेरे हृदय में वास करो।।१२८।।

हे इच्छा के अनुरूप वर प्रदान करने वाली, करुणा से आर्द्र चित्त वाली, साम्राज्य संपदा के अभिमान वाली, श्रीचक्र की स्वामिनी, इन्द्रादि देवों द्वारा सेवित चरण कमल वाली, सिंहासन की स्वामिनि! श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि! देवि! तुम मेरे हृदय में सन्निधान करो, निवास करो।।१२९।। इस प्रकार स्तुति करके उन राजा दशरथ ने बाहर निकलकर उन महात्रिपुरसुन्दरी के दक्षिण भाग में महागौरी को देखा।।१३०।। तब राजा दशरथ ने उन्हें भूमि पर दण्डवत् करते हुए प्रणाम करके पुनः स्तुति की और इन महागौरी को अनेकों प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र देकर तथा अमूल्य एवं बहुत योग्य आभूषणों को देकर उसके बाद उनकी परिक्रमा करके पत्नी के साथ निकल गये।।१३१-१३२।। और फिर गुरु वशिष्ठ द्वारा कहे गये विधान से महापूजा करके उन त्रिपुरेशी का ही चिन्तन करते हुए उन्होंने सात रातों तक वहाँ कांची नगर में निवास किया।।१३३।।

अष्टमे दिवसे देवीं नत्वा भक्त्या विलोकयन्।
अम्बाभीष्टं प्रदेहीति प्रार्थयामास चेतसा॥१३४॥
सुप्रसन्ना च कामाक्षी सांतरिक्षगिरावदत्। भविष्यंति मदंशास्ते चत्वारस्तनया नृप॥१३५॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रमोदविकसन्मुखः। श्रियं प्रणम्य साष्टांगमनन्यशरणः पराम्॥१३६॥
आमन्त्र्य मनसैवांबां सस्त्रीकः सह मंत्रिभिः।
अयोध्यां नगरीं प्रापेदिंदुमत्यास्तु नन्दनः॥१३७॥
एवं प्रभावा कामाक्षी सर्वलोकहितैषिणी। सर्वेषामपि भक्तानां कांक्षितं पूरयत्यलम्॥१३८॥
एनां लोकेषु बहवः कामाक्षीं परदेवताम्।
उपास्य विविधद्भक्त्या प्राप्ताः कामानशेषतः॥१३९॥
अद्यापि प्राप्नुवंत्येव भक्तिमन्तः फलं मुने।
अनेके च भविष्यंति कामाक्ष्याः करुणादृशः॥१४०॥
माहात्म्यमस्याः श्रीदेव्याः को वा वर्णयितुं क्षमः। नाहं न शम्भुर्न ब्रह्मा न विष्णुः किमुतापरे॥१४१॥
इति ते कथितं किञ्चित्कामाक्ष्याः शीलमुज्ज्वलम्। शृण्वतां पठतां चापि सर्वपापहरं स्मृतम्॥१४२॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

आठवें दिन देवी त्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार करके भक्तिपूर्वक देखते हुए हे मातः! आप मेरे अभीष्ट (पुत्रों) को मुझे प्रदान करें, इस प्रकार मन से प्रार्थना की।।१३४।। तब उनकी उस प्रार्थना से कामाक्षी ने आकाशवाणी द्वारा कहा कि हे राजन्! मेरे अंश से तुम्हारे चार पुत्र होंगे।।१३५।। इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर राजा दशरथ का मुख आनन्द से खिल उठा और फिर उन्होंने उन परालक्ष्मी त्रिपुरेश्वरी को साष्टांग प्रणाम किया।।१३६।। उसके बाद इन्दुमती पुत्र वे राजा दशरथ मन से श्री अम्बा को आमन्त्रित करके सपत्नीक मन्त्रियों के साथ अयोध्या नगरी में पहुँचे।।१३७।। इस प्रकार के प्रभाव वाली, समस्त लोकों का कल्याण चाहने वाली वे कामाक्षी देवी सब भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करती हैं।।१३८।। बहुत से मनुष्यों ने इन पर देवता कामाक्षी की विधिवत् भक्तिपूर्वक उपासना करके सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त किया है।।१३९।। हयग्रीव बोले कि हे अगस्त्य मुने! आज भी भक्ति करने वाले लोग प्राप्त करते ही हैं और आगे भविष्य में भी अनेक लोग कामाक्षी देवी की करुणा के पात्र होंगे।।१४०।। इन श्रीदेवी कामाक्षी का माहात्म्य कौंन वर्णन कर सकता है, न मैं, न शम्भु और विष्णु, तब अन्यों की तो बात ही क्या है?।।१४१।। इस प्रकार हे अगस्त्य मुने! आपको कुछ कामाक्षी देवी का उत्तम चरित्र वर्णन किया है। यह चरित्र सुनने वालों और पढ़ने वालों के सब पापों को हरने वाला स्मरण किया गया है।।१४२।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४० वाँ अध्याय काञ्चीपुर माहात्म्य का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

श्रीविद्यायन्त्रोपासना नाम

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

कीदृशं यंत्रमेतस्या मंत्रो वा कीदृशो वरः।
उपदेष्टा च कीदृक्स्याच्छिष्यो वा कीदृशः स्मृतः॥१॥
सर्वज्ञस्त्वं हयग्रीव साक्षात्परमपूरुषः। स्वामिन्मयि कृपादृष्ट्या सर्वमेतन्निवेदय॥२॥

हयग्रीव उवाच

मंत्रं श्रीचक्रमेवास्याः सेयं हि त्रिपुरांबिका। सैषेव हि महालक्ष्मीः स्फुरच्चैवात्मनः पुरा॥३॥
पश्यति स्म तदा चक्रं ज्योतिर्मयविजृंभितम्। अस्य चक्रस्य महात्म्यपरिज्ञेयमेव हि॥४॥
साक्षात्सैव महालक्ष्मीः श्रीचक्रमिति तत्त्वतः। यदभ्यर्च्य महाविष्णुः सर्वलोकविमोहनम्।
कामसंमोहिनीरूपं भेजे राजीवलोचनः॥५॥
अर्चयित्वा तदीशानः सर्वविद्येश्वरोऽभवत्। तदाराध्य विशेषेण ब्रह्मा ब्रह्मांडसूरभूत्।
मुनीनां मोहनश्चासीत्स्मरो यद्वरिवस्यया॥६॥
श्रीदेव्याः पुरतश्चक्रं हेमरौप्यादिनिर्मितम्। निधाय गन्धैरभ्यर्च्य षोडशाक्षरविद्यया॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-४२

श्रीविद्यायन्त्र उपासना

अगस्त्य मुनि बोले कि हे भगवान् हयग्रीव! आपने कामाक्षी महात्रिपुरसुन्दरी की भक्ति का माहात्म्य वर्णन किया; परन्तु अभी तक यह नहीं बताया कि इन महात्रिपुरसुन्दरी कामाक्षी का कैसा यन्त्र है? और कैसा मन्त्र है? तथा इसका उपदेष्टा कैसा होना चाहिए? तथा शिष्य कैसा होना चाहिए?।।१।। हे हयग्रीव! आप सब कुछ जानने वाले हैं तथा आप साक्षात् परम पुरुष हैं, अतः हे स्वामिन् मुझ पर कृपादृष्टि रखते हुए सब कुछ बतलाइए।।२।।

हयग्रीव बोले कि इन महात्रिपुरसुन्दरी का यन्त्र श्रीचक्र है और वह यह त्रिपुरात्मिका हैं। वह यही महालक्ष्मी प्राचीन काल में इस चक्र में आत्मा के रूप में प्रकाशित होती हुई देखी गयी थीं, तब यह प्रकाशमय चक्र प्रकट हुआ, अतः इस चक्र का माहात्म्य अपरिज्ञेय है।।३-४।। तत्त्वरूप में यह चक्र ही साक्षात् महालक्ष्मी है, जिसकी पूजा करके कमलनयन भगवान् विष्णु ने समस्त संसार को मोहित करने वाला कामसम्मोहिनी रूप धारण किया था।।५।। जिस चक्र की पूजा-अभ्यर्चना करके भगवान् शंकर सब विद्याओं के स्वामी बने, जिसकी विशेष रूप से आराधना करके ब्रह्मा जी ब्रह्माण्ड के रचयिता बने तथा उनकी पूजा के ही कारण कामदेव मुनियों को मोहित करने वाले और सम्मान के योग्य बने।।६।। सोने अथवा चाँदी में श्रीदेवी का चक्र बनवाकर आगे रखकर सोलह अक्षरों की विद्या से गन्धों

प्रत्यहं तुलसीपत्रैः पवित्रैर्मंगलाकृतिः। सहस्त्रैर्मूलमंत्रेण श्रीदेवीध्यानसंयुतः॥८॥
अर्चयित्वा च मध्वाज्यशर्करापायसैः शुभैः। अनवद्यैश्च नैवेद्यैर्माषापूपैर्मनोहरैः॥९॥
यः प्रीणाति महालक्ष्मीं मतिमान्मण्डलत्रये। सहसा तस्य सांनिध्यमाधत्ते परमेश्वरी॥१०॥
मनसा वाञ्छितं यच्च प्रसन्ना तत्प्रपूरयेत्। धवलैः कुसुमैस्चक्रमुक्तरीत्या तु योऽर्चयेत्॥११॥
तस्यैव रसनाभागे नित्यं नृत्यति भारती। पाटलैः कुसुमैश्चक्रं योऽर्चयेदुक्तमार्गतः।
सार्वभौमं च राजानं दासवद्वशयेदसौ॥१२॥
पीतवर्णैः शुभैः पुष्पैः पूर्ववत्पूजयेच्च यः।
तस्य वक्षस्थले नित्यं साक्षाच्छ्रीर्वसति ध्रुवम्॥१३॥
दुर्गंधैर्गंधहीनैस्च सुवर्णैपि नार्चयेत्। सुगन्धैरेव कुसुमैः पुष्पैश्चाभ्यर्चयेच्छिवाम्॥१४॥
कामाक्ष्यैव महालक्ष्मीश्चक्रं श्रीचक्रमेव हि। श्रीविद्यैषा परा विद्या नायिका गुरुनायिका॥१५॥
एतस्या मंत्रराजस्तु श्रीविद्यैव तपोधन। कामराजांतमंत्रांते श्रीबीजेन समन्वितः॥१६॥
षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता। इत्थं रहस्यमाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः॥१७॥
तिसृणामपि मूर्तीनां शक्तिर्विद्येयमीरिता। सर्वेषामपि मंत्राणां विद्यैषा प्राणरूपिणी॥१८॥
पारंपर्येण विज्ञाता विद्येयं बन्धमोचिनी। संस्मृता पापहरणी जरामृत्युविनाशिनी॥१९॥

से उसकी पूजा करके प्रतिदिन पवित्र तुलसी के पत्तों से मंगलाकृति रूप में स्थित हो एक हजार मूलमन्त्रों से श्रीदेवी के ध्यान में लीन होकर पूजा करनी चाहिए। पूजा करके शुभ मधु, घृत, शक्कर, खीर, शुद्ध मिष्ठान्नों, मनोहर उड़द के पूओं से जो बुद्धिमान् मनुष्य महालक्ष्मी को तीन मण्डलों में प्रसन्न करता है। उसके पास में अचानक वे परमेश्वरी आ जाती हैं तथा उस व्यक्ति के मन में जो भी इच्छा होती है, उसको वे प्रसन्न देवी पूर्ण करें।।७-१०½।। जो मनुष्य पूर्वोक्त रीति से पूजा करता हुआ सफेद फूलों से श्रीचक्र की पूजा करता है, उसके ही जिह्वा के भाग पर भारती (सरस्वती) देवी के नित्य नृत्य करती हैं तथा पूर्वोक्त रीति से ही पूजा करता हुआ व्यक्ति यदि लाल पुष्पों (गुलाब आदि) के फूलों से यदि श्रीचक्र की पूजा करे, तो वह व्यक्ति सबके स्वामी राजा को दास के समान बना कर वश में कर लेगा।।१०½-१२।। पूर्वोक्त रीति से सब कुछ कर यदि पीले रंग के फूलों से पूर्ववत् पूजा करे, तो उस मनुष्य के हृदय में लक्ष्मी नित्य और निश्चित रूप से वास करती हैं।।१३।। यदि पुष्प दुर्गन्धयुक्त हों अथवा गन्धहीन हों, पर भले ही सुन्दर वर्ण के हों, उनसे शिवा की पूजा नहीं करनी चाहिए। सुगन्धित पुष्पों से ही उन महात्रिपुरसुन्दरी शिवा की पूजा करनी चाहिये।।१४।।

कामाक्षी ही महालक्ष्मी हैं तथा महालक्ष्मी चक्र ही श्रीचक्र है, यह श्रीविद्या ही परा विद्या है, यही कामाक्षी नायिका है तथा यही गुरुनायिका है। अतः हे अगस्त्य जी! इसका मन्त्रराज तो श्रीविद्या ही है। कामराज के अन्त तक के मन्त्र हैं, जो श्रीदेवी के बीजमन्त्र से युक्त हैं।।१५-१६।। यह श्रीविद्या सोलह अक्षर वाली बतायी गयी है। इस प्रकार यह प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रहस्य बताया गया है।।१७।। तीन मूर्तियों (सरस्वती, लक्ष्मी और रौद्री) की शक्ति यह देवी ही कही गयी हैं। सभी मन्त्रों की यह प्राणरूप वाली विद्या है। अर्थात् सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाली जो तीन शक्तियाँ हैं, जिनको कि सरस्वती, लक्ष्मी और शिवा (रौद्री) नाम दिये गये हैं, वे तीनों शक्तियाँ इन महात्रिपुरसुन्दरी में निहित हैं, यही देवी सब मन्त्रों की विद्या है तथा उनका श्रीचक्र ही उनका प्राण धारण करने वाला रूप है।।१८।। परम्परा

पूजिता दुःखदौर्भाग्यव्याधिदारिद्र्यनाशिनी।
स्तुता विघ्नौघशमिनी ध्याता सर्वार्थसिद्धिदा॥२०॥
मुद्राविशेषतत्त्वज्ञो दीक्षाक्षपितकल्मषः। भजेद्यः परमेशानीमभीष्टफलमाप्नुयात्॥२१॥
धवलांबरसंवीतां धवलावासमध्यगाम्। पूजयेद्धवलैः पुष्पैर्ब्रह्मचर्ययुतो नरः॥२२॥
धवलैश्चैव नैवेद्यैर्दधिक्षीरौदनादिभिः। संकल्पधवलैर्वापि पूजयेत्परमेश्वरीम्॥२३॥
श्रीर्वालंत्र्यक्षीबीजैः क्रमात्खंडेषु योजिताम्। षोडशाक्षरविद्यां तामर्चयेच्छुद्धमानसः।।२४।।
अनुलोमविलोमेन प्रजपन्मात्रिकाक्षरैः॥२५॥
भावयन्नेव देवाग्रे श्रीदेवीं दीपरूपिणीम्। मनसोपांशुना वापि निगदेनापि तापस॥२६॥
श्रीदेवीन्याससहितः श्रीदेवीकृतविग्रहः। एकलक्षजपेनैव महापापैः प्रमुच्यते॥२७॥
लक्षद्वयेन देवर्षे सप्तजन्मकृतान्यपि। पापानि नाशयत्येव साधकस्य परा कला॥२८॥
लक्षत्रितयजापेन सहस्रजनिपातकैः। मुच्यते नात्र संदेहो निर्मलो नितरां मुने।
क्रमात्षोडश लक्षेण देवीसांनिध्यमाप्नुयात्॥२९॥
पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च। होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते॥३०॥

से ही इस विद्या को बन्धन से मुक्त करने वाली कहा गया है तथा ये पाप को हरने वाली तथा जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु का नाश करने वाली स्मरण की गयी हैं।।१९।। जब इनकी पूजा की जाती है, तब ये मनुष्य के दुःख, दुर्भाग्य, व्याधि (रोगादि) तथा दरिद्रता का नाश कर देती हैं तथा स्तुति की जाती है, तो समस्त विघ्नों को शान्त करती हैं तथा ध्यान करने पर महादेवी समस्त अर्थों की सिद्धि (सफलता) प्रदान करती है।।२०।। पूजा करने की जो मुद्राएँ हैं, उनके तत्त्व विशेष रूप से जानने वाला दीक्षा प्राप्त और निष्पाप व्यक्ति यदि परमेशानी की पूजा करे, उनका भजन करे, तो वह अभीष्ट फल को अवश्य प्राप्त करेगा।।२१।।

श्वेत वस्त्र पहने हुए, श्वेत घर के मध्य स्थित हो, वहीं पर श्रीचक्र को स्थापित कर ब्रह्मचर्य से युक्त मनुष्य को श्वेत पुष्पों से, श्वेत वर्ण के भोज्य पदार्थों से दही, खीर, भात आदियों से तथा श्वेत संकल्पों (श्वेत विचारों) से, महात्रिपुरेश्वरी की पूजा करनी चाहिए।।२२-२३।। श्री वालंत्र्यक्षी बीजों से क्रम से उनको श्रीचक्र के खण्डों में रखता हुआ, उस सोलह अक्षरी विद्या की शुद्ध चित्त वाले मनुष्य को पूजा करनी चाहिए।।२४।। अनुलोम और विलोम क्रम से मात्रा के अक्षरों को जपते हुए अर्थात् अ, आ, इ, ई, उ़, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इस अनुलोम क्रम से तथा अः, अं, औ, ओ, ऐ, ए, ॡ, ऌ, ऊ, उ, ई, इ, आ, अ इस विलोम क्रम से जपते हुए देवता के आगे भावविभोर होता हुआ मन ही मन जाप करते हुए अथवा बोलते हुए श्रीदेवी के न्यास के साथ श्रीदेवी का शरीर बनाकर एक लाख बार जप करने से मनुष्य महापापों से मुक्त हो जाता है।।२५-२७।। हयग्रीव कहते हैं कि हे देवर्षि अगस्त्य जी! यदि मनुष्य दो लाख बार जाप करे, तो सात जन्म के किये गये पाप भी नष्ट हो जाते हैं, यह साधक की परा कला है।।२८।। तीन लाख बार जप करने से मनुष्य हजारों जन्मों के पापों से मुक्त हो निर्मल हो जाता है। इसमें हे मुने! कोई सन्देह नहीं है तथा क्रम से सोलह लाख बार जाप करने से मनुष्य देवी के सान्निध्य को प्राप्त करता है।।२९।। जो मनुष्य नित्य प्रातः दो पहर और सायं ८ घण्टे के अन्तर पर तीन बार जप, तर्पण, हवन और ब्राह्मण को भोजन कराये तो वह पुरश्चरण कहा जाता है।।३०।।

होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः। मंत्रांते पूजयेद्देवीं जपकाले यथोचितम्॥३१॥
जपाद्दशांशो होमः स्यात्तद्दशांशं तु तर्पणम्। तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं विंध्यमर्दन॥३२॥
देशकालोपघाते तु यद्यदंगं विहीयते। तत्संख्याद्विगुणं जप्त्वा पुरश्चर्यां समापयेत्॥३३॥
ततः काम्यप्रयोगार्थं पुनर्लक्षत्रयं जपेत्। व्रतस्थो निर्विकारश्च त्रिकालं पूजने रतः।
पश्चाद्वश्यादिकर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यति॥३४॥
अभ्यर्च्य चक्रमध्यस्थो मन्त्री चिन्तयते यदा। सर्वमात्मानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतम्॥३५॥
ततो भवति विन्ध्यारे सर्वसौभाग्यसुन्दरः। वल्लभः सर्वलोकानां वशयेन्नात्र संशयः॥३६॥
रोचनाकुंकुमाभ्यां तु समभागं तु चन्दनम्। शतमष्टोत्तरं जप्त्वा तिलकं कारयेद् बुधः॥३७॥
ततो यमीक्षते वक्ति स्पृशते चिन्तयेच्च यम्। अर्धेन च शरीरेण स वशं याति दासवत्॥३८॥
तथा पुष्पं फलं गन्धं पानं वस्त्रं तपोधन। शतमष्टोत्तरं जप्त्वा यस्यै संप्रेष्यते स्त्रियै।
सद्य आकृष्यते सा तु विमूढहृदया सती॥३९॥
लिखेद्रोचनयैकांते प्रतिमामवनीतले। सुरूपां च सशृङ्गारवेषाभरणमंडिताम्॥४०॥
तद्भालगलहृन्नाभिजानुमंडलयोजितम्। जन्मनाम महाविद्यामंकुशांतर्विदर्भितम्॥४१॥
सर्वांगसंधिसंलीनामालिख्य मदनाक्षरैः। तदाशाभिमुखो भूत्वा त्रिपुरीकृतविग्रहः॥४२॥

होम और तर्पण में स्वाहा और न्यास (देवी स्थापना) और पूजन में नमस्कार कहना चाहिए। जप के समय मन्त्र के अन्त में देवी का यथोचित पूजन करना चाहिए।।३१।। जप का दशवाँ भाग का होम (हवन) करना चाहिए। होम का दशवाँ भाग तर्पण करना चाहिए तथा हे अगस्त्य जी! उसका भी दशवाँ भाग ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।।३२।। देश, काल और उपघात में जो जो अंग छूट जाता है, उस उस अंग का तिगुना जाप करके पुरश्चर्या सम्पन्न करनी चाहिए।।३३।। उसके बाद काम्य प्रयोग के लिए पुनः तीन लाख बार जाप करना चाहिए। इस प्रकार व्रत में स्थित रहता हुआ, मन में कोई विकार न रखकर तीनों कालों प्रातः, दोपहर, सांय में पूजारत मनुष्य वश्यादि कर्मों को करता हुआ अवश्य सिद्धि को प्राप्त करेगा।।३४।। श्रीचक्र के मध्य में स्थित होकर मन्त्र का जाप करने वाला व्यक्ति जब चिन्तन ध्यान करता है तथा स्वयं को अरुण (लाल वर्ण) करके और साध्य जो भी है, उसको भी अरुण कर देता है, उसके बाद वह सब प्रकार से सुन्दर भाग्य वाला और समस्त लोकों का प्रिय हो जाता है तथा सबको वश में कर लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३५-३६।।

गोरोचन, कुंकुम और चन्दन तीनों समान भाग करके १०८ बार जप करके जो तिलक लगाये, उसके बाद वह मनुष्य जिसको देखे, जिससे बात करे, जिसको स्पर्श करे अथवा जिसके विषय में सोचे, वह व्यक्ति आधे शरीर से सेवक के समान वश में हो जाता है।।३७-३८।। तथा हे तपोधन! पुष्प, फल, गन्ध, पान, वस्त्र आदि १०८ बार मन्त्र का जप कर जिस स्त्री को देता है, वह स्त्री विमूढ़ हृदय होकर शीघ्र उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है।।३९।। अब महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा करने से मनुष्य को कामदेव के समान हो जाने का विधान बताते हुए कहते हैं कि व्यक्ति एकान्त में पृथ्वीतल पर सुन्दर रूप वाली, शृंगार वेषभूषा और आभूषणों से सजी हुई महात्रिपुर सुन्दरी ललितेश्वरी की गोरोचन से प्रतिमा बनाये तथा उसके मस्तक से नाभि और जंघाओं तक लटकती हुई जन्मनाम महाविद्या अंकुश से लेकर कुशों तक सर्वाङ्ग सन्धि संलीना को मदनाक्षरों से सम्यक् प्रकार से चित्रित कर, जिस दिशा में वह हो, उसी

बद्ध्वा तु क्षोभिणीं मुद्रां विद्यामष्टशतं जपेत्। संयोज्य दहनागारे चन्द्रसूर्यप्रभाकुले॥४३॥
ततो विह्वलितापांगीमनङ्गशरपीडिताम्। प्रज्वलन्मदनोन्मेषप्रस्फुरज्जघनस्थलाम्॥४४॥
शक्तिचक्रे लसद्रश्मिवनाकवलीकृताम्। दूरीकृतसुचारित्रां विशालनय नाम्बुजाम्॥४५॥
आकृष्टनयनां नष्टधैर्यसंलीनव्रीडनाम्। मन्त्रयन्त्रौषधमहामुद्रानिगडबंधनाम्।
नवानुरागसंधानवेषमानहृदंबुजाम्।।४६।।
मनोऽधिकमहामंत्रजपमानां हृतांशुकाम्। विमूढामिव विक्षुब्धामिव प्लुष्टामिवाद्भुताम्॥४७॥
लिखितामिव निःसंज्ञामिव प्रमथितामिव। निलीनामिव निश्चेष्टामिवान्यत्वं गतामिव॥४८॥
भ्रमन्मन्त्रानिलोद्धूतवेणुपत्राकृतिं च खे। भ्रमन्तीं भावयेन्नारीं योजनानां शतादपि॥४९॥
चक्रमध्यगतां पृथ्वी सशैलवनकाननाम्। चतुःसमुद्रपर्यंतं ज्वलंतीं चिंतयेत्ततः॥५०॥
षण्मासाभ्यासयोगेन जायते मदनोपमः। दृष्ट्वा कर्षयते लोकं दृष्ट्वैव कुरुते वशम्॥५१॥
दृष्ट्वा संक्षोभयेन्नारीं दृष्ट्वैव हरते विषम्। दृष्ट्वा करीति वागीशं दृष्ट्वा सर्वं विमोहयेत्।
दृष्ट्वा चातुर्थिकादींश्च ज्वरान्नाशयते क्षणात्॥५२॥

दिशा की ओर मुँह करके श्रीत्रिपुरेश्वरी के शरीर वाला व्यक्ति क्षोभिणी मुद्रा को बाँध कर चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा से आकुल दहनागार में संयुक्त कर विद्या देवी को १०८ बार जप करे।।४०-४३।। उसके बाद व्याकुल आँखों वाली, कामदेव के बाण से पीड़ित, प्रज्ज्वलित कामाग्नि से फड़कती हुई जंघाओं वाली, शक्तिचक्र में सुशोभित किरण को कमरे में कवलीकृत करती हुई, दूर कर दिया है सुचरित्र को, जिसने ऐसी विशाल कमल के समान नेत्रों वाली और आकृष्ट नेत्रों वाली तथा पूरी तरह नष्ट हो गया है, धैर्य जिसका और लज्जा में जो संलीन हो गयी है, मन्त्र, यन्त्र औषध महामुद्रा नाम की जंजीर से बंधी हुई बन्धन वाली, नवीन प्रेम के संधान से काँपते हुए हृदय कमल वाली, विशाल नेत्र कमल वाली, मन में अधिक महामन्त्र जपती हुई, वस्त्र विहीन, किंकर्तव्यविमूढ़, विशेष घबराती हुई, कामावेग से जमीन पर लोटती हुई के समान चित्र में लिखित की भाँति, बिल्कुल चेतनाहीन हुई के समान, काम से अत्यन्त पीड़ित के समान, निलीन हुई के समान, कुछ और ही हुई के समान, घूमती हुई, वायु से आकाश में उड़ते हुए बाँस के पत्ते की आकृति के समान आकाश में घूमती हुई सौ योजन दूरी पर रहने वाली, कामविह्वल नारी का भाव करना चाहिए। फिर श्रीचक्र के मध्य में स्थित पर्वतवन और काननों वाली चार समुद्र पर्यन्त जलती हुई पृथ्वी का चिन्तन करना चाहिए अर्थात् जब उस कामविह्वल नारी का ध्यान किया जा रहा हो, तब उस श्रीचक्र के मध्य में कामदेव की ज्वाला में जलती हुई, वहाँ की वनपर्वत नदी समुद्र वाली भूमिका भी ध्यान करना चाहिये अर्थात् उस समय साधक को यह भाव रखना चाहिये कि कोई काममद में व्याकुल स्त्री है तथा वह सैकड़ों योजन से उसको पाने के लिये व्याकुल है। जैसी की उसकी दशायें बतायी गयी हैं वह भाव रखना है तथा वैसा ही मदनोद्वेलित प्राकृतिक वातावरण का भी ध्यान करना है।।।५०।।

इस प्रकार छः माह के लगातार अभ्यास में लगे रहने से मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। वह संसार को देखकर आकृष्ट कर लेता है और देखकर ही सबको वश में कर लेता है।।५१।। वह जिस स्त्री को देख ले तो एक नजर में ही उस स्त्री के हृदय में उथल-पुथल मचा देता है तथा देखकर ही विष को हर लेता है। उसके देखते ही मनुष्य अच्छा वक्ता हो जाता है और देखकर ही सबको मोहित कर लेता है। वह देखकर ही सामने वाले

पीतद्रव्येण लिखितं चक्रं गूढं तु धारयेत्। वाक्स्तंभं वादिनां क्षिप्रं कुरुते नात्र संशयः॥५३॥
महानीलीरसेनापि शत्रुनामयुतं लिखेत्। दक्षिणाभिमुखो वह्नौ दग्ध्वा मारयते रिपून्॥५४॥
महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रैर्नाम टंकितम्। आरनालस्थितं चक्रं विद्वेषं कुरुते द्विषाम्॥५५॥
युक्त्वा रोचनया नाम कंकपक्षेण मध्यगम्। लंबमानस्तदाकारो उच्चाटनकरं परम्॥५६॥
दुग्धलाक्षा रोचनाभिर्महानीलीरसेन च। लिखित्वा धारयंश्चक्रं चातुर्वर्ण्यं वशं नयेत्॥५७॥
अनेनैव विधानेन जलमध्ये यदि क्षिपेत्। सौभाग्यमतुलं तस्य स्नानपानान्न संशयः॥५८॥
चक्रमध्यगतं देशं नगरीं वा वरांगनाम्। ज्वलंतीं चिंतयेन्नित्यं सप्ताहात्क्षोभयेन्मुने॥५९॥
लिखित्वा पीतवर्णं तु चक्रमेतद्यदाचरेत्। पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तंभयेत्सर्ववादिनः॥६०॥
सिंदूरवर्णलिखितं पूजयेदुत्तरामुखः। यदा तदा स्ववशगो लोको भवति नान्यथा॥६१॥
चक्रं गैरिकयालिख्यपूजयेत्पश्चिमामुखः। यः स सर्वाङ्गनाकर्षवश्यक्षोभकरो भवेत्॥६२॥

व्यक्ति को चौथे दिन आने वाले बुखार को क्षण भर में नष्ट कर देता है। अर्थात् ऐसे सिद्ध पुरुष को देखने मात्र से ही चौथैया बुखार भाग जाता है।।५२।। पीले रंग से लिखित गूढ़ श्रीचक्र को धारण करना चाहिए। वह चक्र बोलने वालों की वाणी का स्तम्भन शीघ्र कर देता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५३।। यदि महानीली[1] अर्थात् स्याही से इस चक्र के साथ शत्रु का नाम लिख दिया जाये और दक्षिण की ओर मुख करके उसको आग में जला दिया जाये तो वह जलकर शत्रुओं को मार देता है।।५४।।

भैंसा और घोड़ा के गोबर और लीद में गोमूत्रों से यदि किसी कागज पर शत्रु के नाम को टंकित कर चावल के माड़ में चक्र को स्थित कर दिया जाये तो वह चक्र शत्रुओं के समूह में विद्वेष पैदा कर देता हैं, अर्थात् शत्रुसमूह ही आपस में लड़ने लगता है।।५५।। गोरोचन को पानी में घोलकर श्रीचक्र के मध्य में कौए के पंख से नाम लिखकर लटकाने वाले आकार वाला व्यक्ति उच्चाटन करता है (शत्रु का नाश करता है) दूध, महावर, राल और महानीली के रस से लिखकर चक्र को धारण करता हुआ चारों वर्णों को वश में ला सकता है।।५७।। इसी विधान से यदि उसे जल में फेंक दिया जाये तो उसे स्नान पान आदि सब प्रकार का असीमित सौभाग्य प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५८।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य मुने! श्रीचक्र के मध्य में किसी देश, नगरी अथवा किसी सुन्दर स्त्री को जलती हुई यदि कोई साधक सोचेगा तो सात दिन के अन्दर उस देश में, नगरी में अथवा स्त्री को क्षोभ उत्पन्न हो जायेगा, अर्थात् उस देश और नगरी में उपद्रव, आतंक फैल जायेगा तथा सुन्दर स्त्री के हृदय में उथल-पुथल पैदा हो जायेगी।।५९।। यदि कोई मनुष्य इस श्रीचक्र को पीले रंग में लिखकर (चित्रित) कर उसका व्यवहार करे, तो वह पूर्व दिशा की ओर मुख करके सब बोलने वालों को स्तम्भित कर सकता है।।६०।। सिन्दूर वर्ण में श्रीचक्र को लिखकर उत्तर की ओर मुख करके जब उसकी पूजा करे, तब सारे संसार को अपने वश में कर सकता है, अन्य किसी प्रकार से नहीं।।६१।। गेरू से श्रीचक्र को लिखकर (चित्रित कर) पश्चिम की ओर मुख करके जो उसकी पूजा करे, वह मनुष्य सब स्त्रियों को आकर्षित कर उन्हें वश में करके उनको स्वयं से मिलने के लिए व्याकुल कर सकता है।।६२।।

१. महानीली रस—नीलम अथवा पन्ना का पानी अथवा स्याही, क्योंकि वही महानीली होता है।

पूजयेद्विंध्यदर्परि रहस्येकचरो गिरौ। अजरामरतां मन्त्री लभते नात्र संशयः॥६३॥
रहस्यमेतत्कथितं गोपितव्यं महामुने। गोपनात्सर्वसिद्धिः स्याद्भ्रंश एव प्रकाशनात्॥६४॥
अविधाय पुरश्चर्यां यः कर्म कुरुते मुने। देवताशापमाप्नोति न च सिद्धिं स विंदति॥६५॥
प्रयोगदोषशांत्यर्थं पुनर्लक्षं जपेद्बुधः। कुर्याच्च विधिवत्पूजां पुनर्योग्यो भवेन्नरः॥६६॥
निष्कामो देवतां नित्यं योऽर्चयेद्भक्तिनिर्भरः॥६७॥
तामेव चिंतयन्नास्ते यथाशक्ति मनुं जपन्॥६८॥
सैव तस्यैहिकं भारं वहेन्मुक्तिं च साधयेत्।
सदा संनिहिता तस्य सर्वं च कथयेत् सा॥६९॥
वात्सल्यसहिता धेनुर्यथा वत्समनुव्रजेत्। तथानुगच्छेत्सा देवी स्वभक्तं शरणागतम्॥७०॥

अगस्त्य उवाच

शरणागतशब्दस्य कोऽर्थो वद हया नन। वत्सं गौरिव यं गौरी धावन्तमनुधावति॥७१॥

हयग्रीव उवाच

यः पुमानखिलं भारमैहिकामुष्मिकात्मकम्। श्रीदेवतायां निक्षिप्य सदा तद्गतमानसः॥७२॥
सर्वानुकूलः सर्वत्र प्रतिकूलविवर्जितः। अनन्यशरणो गौरीं दृढं सम्प्रार्थ्य रक्षणे॥७३॥

हयग्रीव बोले कि हे विन्ध्य पर्वत के घमण्ड को दूर करने वाले अगस्त्य जी! यदि कोई मनुष्य एकान्त में अकेला पर्वत पर श्रीचक्र की पूजा करे, तो वह मन्त्र का जाप करने वाला व्यक्ति अजरता और अमरता को प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।६३।। हयग्रीव बोले कि हे महामुने! यह रहस्य मैंने आपसे कहा है, इसको गुप्त रखना चाहिए। गुप्त रखने से सब सिद्धि प्राप्त होती है और इस रहस्य को सबसो बता देने पर भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् इस पूजा का प्रभाव नष्ट हो जाता है।।६४।। हे मुने! पुरश्चर्या न करके जो मनुष्य कर्म करता है, वह देवी का शाप प्राप्त करता है और वह सिद्धि (सफलता) को प्राप्त नहीं करता।।६५।। प्रयोग में होने वाले दोष की शान्ति के लिए बुद्धिमान् पुरुष को पुनः एक लाख बार जप करना चाहिए और विधिवत् पूजा करनी चाहिए, तब मनुष्य पुनः योग्य हो सकता है।।६६।। जो व्यक्ति श्रीदेवी की भक्ति पर निर्भर रह कर निष्काम भाव से नित्य श्री त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करता है तथा उन देवी का ही चिन्तन करता हुआ यथाशक्ति मन्त्र का जप करता हुआ स्थित रहता है, उसके शारीरिक भार को वही देवी वहन करती है और मुक्ति प्रदान करती है तथा सदा उसके साथ संनिहित रहती है और उसको वे त्रिपुरेशी सब कुछ कहती रहती है।।६७-६९।। जिस प्रकार से गाय अपने बछड़े के प्रति पुत्र प्रेम से युक्त हो उसके पीछे-पीछे चलती है, उसी प्रकार वे देवी महात्रिपुरसुन्दरी अपनी शरण में आये हुए भक्त का अनुसरण करती हैं। वे पुत्र की तरह उससे प्यार करती हैं।।७०।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे हयग्रीव जी! शरणागत शब्द का क्या अर्थ है, बतलाइए। जिस वत्स के पीछे गौरी गौ के समान दौड़ते हुए दौड़ती हैं।।७१।।

हयग्रीव ने कहा कि अगस्त्य जी! जो मनुष्य अपने इस ऐहिक (इस लोक) के भार को श्री ललिता देवी पर छोड़ कर सदा उन्हीं के ध्यान में अपना मन लगा कर सर्वत्र सब प्रकार से उनके अनुकूल रहता हुआ, उनके विपरीत न रहता हुआ, गौरी के अतिरिक्त अन्य की शरण में न रहता हुआ, गौरी श्री ललितेश्वरी से ही अपनी रक्षा की दृढ़

रक्षिष्यतीति विश्वासस्तत्सेवैकप्रयोजनः। वरिवस्याततत्परः स्यात्सा एव शरणागतिः॥७४॥
यदा कदाचित्स्तुतिनिंदनादौ निंदन्तु लोकाः स्तुवतां जनो वा।
इति स्वरूपं सुधिया समीक्ष्य विषादखेदौ न भजेत्प्रपन्नः॥७५॥
अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥७६॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः। अङ्गीकृत्यात्मनिक्षेपं पञ्चांगानि समर्पयेत्।
न ह्यस्य सदृशं किंचिद्भुक्तिमुक्त्योस्तु साधनम्॥७७॥
अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम्। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥७८॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।

प्रार्थना करता हुआ, उन्हीं पर सब प्रकार से निर्भर रहता है। उसकी वे देवी अवश्य रक्षा करेंगी। यह विश्वास करना ही उनकी सेवा का एक प्रयोजन है। कथन का आशय है कि जो मनुष्य इस विश्वास से कि वे अवश्य रक्षा करेंगी, पूजा करेगा तो साधक को अवश्य लाभ होगा। अतः मनुष्य को उनकी पूजा उनपरक रहकर करनी चाहिए; क्योंकि वही शरण में आये हुए को गति प्रदान करती हैं।।७२-७४।। जब कभी स्तुति और निन्दा आदि में लोग माँ ललितेश्वरी की निन्दा करें अथवा प्रशंसा करें तो इस स्वरूप की अपनी बुद्धि से समीक्षा करके बुद्धिमान् मनुष्य को पुनः विषाद और खेद नहीं करना चाहिए।।७५।।

अतः मनुष्य को अनुकूल रहने का संकल्प करना चाहिए और विपरीत भाव को छोड़ देना चाहिए। अर्थात् त्रिपुरेशी की प्रशंसा के अनुकूल ही भाव रखने चाहिएँ, प्रतिकूल नहीं रखने चाहिएँ, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार सबसे पहले उनके अनुकूल विचार और दूसरे प्रतिकूल विचारों का परित्याग तीसरे वे अवश्य करेंगी, इस प्रकार विश्वास, चौथे रहस्य को छिपाने की प्रवृत्ति, पाँचवाँ आत्मनिक्षेप (अपनी आत्मा को उन्हें समर्पित करना) तथा अपनी आत्मा में उन्हें स्थित करना और छठा कार्पण्य (कृपणता) अपने को उनके सामने दीन-हीन, असहाय समझना। ये छः प्रकार शरण में आये हुए व्यक्ति के लिए अर्थात् जिसमें ये छः प्रकार के भाव हैं, वह शरणागत माना जायेगा। यही शरणागति की परिभाषा है।।७६-७६½।। आत्मा में उनको स्थित कर अथवा आत्मा को उनमें लीन करके अपने पाँचों अंगों कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और नासिका को उनको समर्पित करे अर्थात् उनमें पूरी तरह लीन हो जाये, अर्थात् न कान से कोई शब्द सुने, न त्वचा से कुछ स्पर्श करे, न आँखों से कुछ देखे, न जिह्वा से कुछ स्वाद ले और न नासिका से कुछ सूंघे, अर्थात् सब इन्द्रियों को उन्हें ही समर्पित कर दे तथा जब सबका समर्पण हो जायेगा तो फिर पूर्ण लीनता हो ही जायेगी, उनमें समाधि लग ही जायेगी, क्योंकि मन को इधर-उधर ले जाने का कार्य तो ये पाँच इन्द्रियाँ ही करती हैं। जब उन महात्रिपुरसुन्दरी में आत्मा लीन हो जायेगी, तब इसके समान मुक्ति और भोग का अन्य कोई साधन नहीं है।।७७।। अमानित्व (अभिमानी न होना), दम्भ रहित होना, अहिंसा, सहनशीलता, उदारता (सीधापन), गुरुओं की उपासना, शौच (पवित्रता स्नानादि), स्थिरता (अपनी बात पर दृढ़ रहना), अपनी आत्मा का निग्रह, इन्द्रियों के अर्थों—श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वाद लेना, सूंघना आदि में वैराग्य अर्थात् इनके वश

विशेष—शरणागत के छः प्रकार हैं, जिसमें ये निम्न छः गुण हों, वही शरणात समझना चाहिये, वे हैं—१. अनुकूल रहने का संकल्प, २. प्रतिकूल रहने का परित्याग, ३. वे मेरी अवश्य रक्षा करेंगे, यह विश्वास, ४. रहस्य छिपाने की प्रवृत्ति, ५. आत्मनिक्षेप अर्थात् अपना पूरी तरह समर्पण, ६. कार्पण्य—अपने को दीनहीन समझना।

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु॥७९॥
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु। मयि चानन्यभावेन भक्तिरव्यभिचारिणी॥८०॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि। अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतानि सर्वदा ज्ञानसाधनानि समभ्यसेत्॥८१॥
तत्कर्मकृत्तत्परमस्तद्भक्तः संगवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स याति परां श्रियम्॥८२॥
गुरुस्तु मादृशो धीमान्ख्यातो वातापितापन।
शिष्योऽपि त्वादृशः प्रोक्तो रहस्याम्नायदेशिकः॥८३॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

में न होना और अहंकार न करना ये सब तथा जन्म-मृत्यु, वृद्धता, रोग, दुःख और दोषों का निरीक्षण करना, अर्थात् इनके कारणों पर विचार करना और फिर निवारण सोचना। पुत्र, पत्नी और गृह आदियों में लगाव एवं अत्यधिक प्रेम का न होना और नित्य इष्ट एवं अनिष्ट की प्राप्तियों में समान भाव रखना, माँ त्रिपुरेश्वरी के प्रति अनन्य भाव से निर्दोष एवं निर्विघ्न भक्ति रखना, विवेकशील देशसेवी होना, लोगों की जमात में न रहना, अध्यात्म ज्ञान में नित्य लगे रहना और तत्त्वज्ञान के लिए अर्थ का गम्भीरता से विचार करना, इन सब ज्ञान के साधनों का सदैव अभ्यास करना चाहिए।।७८-८१।। इस प्रकार उन कामाक्षी के कर्म को करने वाला, उनके प्रति परम भक्ति रखने वाला, उनका भक्त आसक्ति रहित, सब प्राणियों में वैर न रखने वाला जो व्यक्ति है, वही उन पराशक्ति महात्रिपुरेशी को प्राप्त करता है।।८२।। अन्त में हयग्रीव ने कहा कि हे वातापि राक्षस को मारने वाले अगस्त्य जी! मेरे जैसा बुद्धिमान् गुरु और तुम्हारे जैसा रहस्य एवं वेद-वेदांग, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों के विषय में जानने वाला और जानने की इच्छा रखने वाला शिष्य भी होना चाहिए।।८३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४१ वाँ अध्याय श्रीविद्यायन्त्र उपासना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

देवीपूजने मुद्रा विवेचनं नाम

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

मुद्राविरचनारीतिमश्वानन निवेदय। याभिर्विरचिताभिस्तु श्रीदेवी संप्रसीदति॥१॥

हयग्रीव उवाच

आवाहनी महामुद्रा त्रिखण्डेति प्रकीर्तिता। परिवृत्य करौ स्पष्टमङ्गुष्ठौ कारयेत्समौ॥२॥
अनामांतर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृति। कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने तपोधन।
संक्षोभिण्याख्यमुद्रां तु कथयाम्यधुना शृणु॥३॥
मध्यमे मध्यगे कृत्वा कनिष्ठांगुष्ठरोधिते। तर्जन्यौ दंडवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके॥४॥
एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदि। क्रियते विंध्यदर्पारे मुद्रा विद्राविणी तथा॥५॥
मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे। अंकुशाकाररूपाभ्यां मध्यगे कलशोद्भव।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा॥६॥
पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती। परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–४२

देवी पूजा में मुद्रा

अगस्त्य मुनि ने हयग्रीव से कहा कि भगवन्! मुझे मुद्रा बनाने की रीति बतलाइए। किस प्रकार उनमें स्थित हुआ जाता है, कौंन मुद्रा किस प्रकार बनायी जाती है। जिनको बनाने के द्वारा श्री त्रिपुरेशी प्रसन्न होती हैं।।१।।

हयग्रीव ने कहा कि आवाहनी नामक महामुद्रा है, जिसके द्वारा महात्रिपुर सुन्दरी का आह्वान किया जाता है, उन्हें बुलाया जाता है, जो त्रिखण्डा इस प्रकार कही जाती है, जिसका विधान है कि दोनों हाथों को बंद करके दोनों हाथ के अंगूठों को समान करे और अनामिका अंगुली के अन्तर्गत तर्जनी को टेड़ी कर रखे और कनिष्ठा को अपने स्थान पर रखे तो यह आवाहनी मुद्रा है—

अब हे अगस्त्य जी! मैं संक्षोभिणी मुद्रा को बताता हूँ, उसे सुनिये।।३।। कि मध्यमा अंगुली को बीच में करके कनिष्ठा को अंगूठे से रोककर दोनों तर्जनी अंगुलियों को डण्डे के समान खड़ी करना, यह संक्षोभिणी मुद्रा है।।४।। इस संक्षोभिणी मुद्रा में यदि मध्यमा अंगुली को सीधा कर दिया जाये तो तो वह विद्राविणी मुद्रा हो जाती है।।५।। मध्यमा अंगुलियों को तर्जनी अंगुलियों द्वारा कनिष्ठिकाओं और अनामिका के समान करने पर अंकुश के आकार की मध्यमा अंगुलि के होने पर यह आकर्षणी मुद्रा कही जाती है, जो तीनों लोकों को आकर्षित करने की क्षमता रखती है।।६।। हाथों की मुट्ठी बाँध कर दोनों तर्जनी अंगुलियों को अंकुश की तरह खड़ी करके परिवर्तन क्रम से ही मध्यमाओं को उसके तर्जनी के नीचे करने पर इसी क्रम से मध्यमा को बीच में करने पर अनामिका को सीधा करने पर उसके बाहर दोनों तर्जनी अंगुलियों को करने पर उसके दोनों अंगूठों को दण्डाकार करके मध्यमा के पास करने

क्रमेणानेन देवर्षे मध्यममामध्यगेऽनुजे। अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम्॥८॥
दंडाकारौ ततोऽगुष्ठौ मध्यमावर्तदेशगौ। मुद्रैषोन्मादिनी नाम्ना ख्याता वातापितापन॥९॥
अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधः कृत्वांकुशाकृति। तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत्॥१०॥
इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधिका॥११॥
सव्यं दक्षिणदेशे तु दक्षिणं सव्यदेशतः। बाहू कृत्वा तु देवर्षे हस्तौ सम्परिवर्त्य च॥१२॥
कनिष्ठानामिके युक्ते क्रमेणानेन तापस। तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे॥१३॥
लोपामुद्रापतेङ्गुष्ठौ कारयेत्सकलावपि। इयं तु खेचरी नाम मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा।
एतद्विज्ञानमात्रेण योगिनीनां प्रियो भवेत्॥१४॥
परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्रसमाकृती। तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपद्योजयेत्ततः॥१५॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धमध्यमे विनियोजयेत्। अथैते कुटिले युक्त्वा सर्वाधस्तादनामिके।
बीजमुद्रेयमचिरात्सर्वसिद्धिंप्रवर्तिनी ॥१६॥
मध्याग्रे कुटिलाकारे तर्जन्युपरि संस्थिते। अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके॥१७॥
सर्वा एकत्र संयोज्य चाङ्गुष्ठपरिपीडिताः। एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेति संज्ञिता॥१८॥
एता मुद्रास्तु देवर्षे श्रीदेव्याः प्रीतिहेतवः। पूजाकाले प्रयोक्तव्या यथानुक्रमयोगतः॥१९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने हयग्रीवागस्त्यसम्वादे द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

पर यह मुद्रा उन्मादिनी नाम से प्रसिद्ध है।।७-९।। इसी मुद्रा में दोनों अनामिकाओं को नीचे करके अंकुश की आकृति बनाकर तर्जनियों को भी उसी क्रम से लगाये तो वह महांकुशा मुद्रा है, जो सब कार्यों के अर्थों को सिद्ध करने वाली है।।१०-११।। बायें हाथ को दायें तरफ और दायें को बायें हाथ पर तथा दोनों भुजाओं को करके तथा दोनों हाथों को पूरी तरह उलट कर कनिष्ठा और अनामिका को क्रम से मिलाने पर तर्जनियों से समाक्रान्त करने पर सबके ऊपर मध्यमा को रखने पर, हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य जी! सह सर्वोत्तम खेचरी नामक मुद्रा हैं। इसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य योगिनियों का प्रेमी हो जाता है।।१२-१४।। दोनों हाथों को परिवर्तन करके दोनों को एक-दूसरे से स्पर्श कराकर अर्ध चन्द्रमा के समान आकृति करके तर्जनी को दोनों अंगूठों में एक साथ लगा दे तथा नीचे कनिष्ठा को मध्यमा में लगाये। इस प्रकार इन सबको टेढ़ी करके सबसे नीचे अनामिका को करने पर यह बीज मुद्रा है, जो शीघ्र ही सब सिद्धियों को देने वाली है।।१५-१६।। दोनों मध्यमा अंगुलियों को टेढ़ी करके दोनों तर्जनियों पर रखने पर अनामिकाओं को बीच में करने पर, उसी प्रकार कनिष्ठिकाओं को भी बीच में करने पर सबको एक जगह मिलाकर सबके ऊपर अंगूठे रहने पर यह प्रथमा मुद्रा है, जो योनिमुद्रा नाम से कही जाती है।।१७-१८।। हयग्रीव कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! ये सब मुद्राएँ श्रीदेवी को प्रसन्न करने की कारण हैं। इनको पूजा के समय यथा क्रम से प्रयुक्त करना चाहिए।।१९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४२ वाँ अध्याय देवी पूजा में मुद्रा का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगला-सरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथनं नाम

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अश्वानन महाप्राज्ञ करुणामृतवारिधे। श्रीदेवीदर्शने दीक्षा यादृशी तां निवेदय॥१॥

हयग्रीव उवाच

यदि ते देवताभावो यया कल्मषकर्दमाः।
क्षाल्यन्ते च तथा पुंसां दीक्षामाचक्ष्महेऽत्र ताम्॥२॥
हस्ते शिवपुरं ध्यात्वा जपेन्मूलाङ्गमालिनीम्। गुरुः स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षेयमीरिता॥३॥
निमील्य नयने ध्यात्वा श्रीकामाक्षीं प्रसन्नधीः।
सम्यक्पश्येद्गुरुः शिष्यं दृग्दीक्षा सेयमुच्यते॥४॥
गुरोरालोकमात्रेण भाषणात्स्पर्शनादपि। सद्यः सञ्जायते ज्ञानं सा दीक्षा शाम्भवी मता॥५॥
देव्या देवो यथा प्रोक्तो गुरुर्देहस्तथैव च। तत्प्रसादेन शिष्योऽपि तद्रूपः सम्प्रकाशते॥६॥
चिरं शुश्रूषया सम्यक्तोषितो देशिकेश्वरः। तूष्णीं संकल्पयेच्छिष्यं सा दीक्षा मानसी मता॥७॥
दीक्षाणामपि सर्वासामियमेवोत्तमोत्तमा। आदौ कुर्यात्क्रियादीक्षां तत्प्रकारः प्रवक्ष्यते॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–४३

श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथन

अगस्त्य मुनि हयग्रीव से बोले कि हे करुणा रूप अमृत के सागर महाप्राज्ञ भगवन् हयग्रीव! आपने मुद्रा बनाने की रीति तो बता दी, अब श्रीदेवी का दर्शन होने पर जैसी दीक्षा है, उसका वर्णन कीजिए, अर्थात् श्रीदेवी ललितेश्वरी के दर्शन होने पर उनकी किस प्रकार वन्दनादि करनी चाहिए, उसको हमें बतलाइए।।१।।

हयग्रीव बोले, हे अगस्त्य जी! यदि आपका उन महात्रिपुरेश्वरी के प्रति देवीभाव है, जिसके द्वारा पापी मनुष्यों के समस्त पाप समूह धुल जाते हैं, तो यहाँ मैं उनकी दीक्षा को वर्णन कर रहा हूँ।।२।। हाथ में शिवपुर का ध्यान करके मूलांगमालिनी का जप करना चाहिए, फिर गुरु को शिष्य का शरीर स्पर्श करना चाहिए, यह स्पर्श दीक्षा कही जाती है।।३।। फिर प्रसन्न बुद्धि रखते हुए दोनों आँखें बन्द कर कामाक्षी देवी का ध्यान करके गुरु शिष्य को देखे, वह दृग्दीक्षा कही जाती है।।४।। गुरु के देखने मात्र से बोलने से और स्पर्श करने से भी शीघ्र ज्ञान हो जाता है, वह शाम्भवी दीक्षा कही जाती है।।५।। देवी का शरीर जैसा कहा गया है, वैसा ही गुरु का शरीर है तथा उनकी कृपा से शिष्य भी उसी रूप में पूर्णतः प्रकाशित होता है।।६।। चिरकाल तक की सेवा द्वारा सम्यक् प्रकार से प्रसन्न हुए देशिकेश्वर चुपचाप शिष्य को संकल्प करें, वह मानसी दीक्षा मानी गयी है।।७।। सभी दीक्षाओं में यही दीक्षा उत्तमों से उत्तम अर्थात् सर्वोत्तम दीक्षा है। सबसे पहले क्रिया दीक्षा करनी चाहिए, उसका प्रकार बताया जायेगा।।८।।

शुक्लपक्षे शुभदिने विधाय शुचिमानसम्।
जिह्वास्यमलशुद्धिं च कृत्वा स्नात्वा यथाविधि॥९॥
संध्याकर्म समाप्याथ गुरुदेहं परं स्मरन्। एकान्ते निवसञ्छ्रीमान्मौनी च नियताशनः॥१०॥
गुरुश्च तादृशो भूत्वा पूजामंदिरमाविशेत्। देवीसूक्तेन संयुक्तं विद्यान्यासं समातृकम्॥११।
कृत्वा पुरुषसूक्तेन षोडशैरुपचारकैः। आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा॥१२॥
स्नानं वस्त्रं च भूषा च गन्धः पुष्पं तथैव च। धूपदीपौ च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा॥१३॥
प्रणामश्चेति विख्यातैः प्रीणयेत्रिपुरांबिकाम्। अथ पुष्पाञ्जलि दद्यात्सहस्राक्षरविद्यता॥१४॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ नमस्त्रिपुरसुन्दरि हृदये देवि शिरोदेवि शिखादेवि कवचदेवि नेत्रदेवि आस्यदेवि कामेश्वरि भगमालिनि नित्यक्लिन्ने भैरुंडे वह्निवासिनि महावज्रेश्वरी विद्येश्वरि परशिवदूति त्वरिते कुलसुन्दरि नित्ये नीलपताके विजये सर्वमङ्गले ज्वालामालिनि चित्रे महानित्ये परमेश्वरि मन्त्रेशमयि षष्ठीशमय्युद्यानमयि लोपामुद्रामय्यगस्त्यमयि कालतापनमयि धर्माचारमयि मुक्तकेशीश्वरमयि दीपकलानाथमयि विष्णुदेवमयि प्रभाकरदेवमयि तेजोदेवमयि मनोजदेवमयि अणिमसिद्धे महिमसिद्धे गरिमसिद्धे लघिमसिद्धे

शुक्ल पक्ष के किसी शुभ दिन को पवित्र मन बनाकर जिह्वा और मुख की दुर्गन्ध को हटाकर दन्तधावनादि करके जीभ साफ करके, विधिपूर्वक स्नान करके, सन्ध्याकर्म को समाप्त करके, गुरु के शरीर का स्मरण करते हुए एकान्त में रहते हुए श्रीमान् मौन रूप से निश्चित आसन पर बैठकर जैसे गुरु है, वैसा होकर पूजामन्दिर में प्रवेश करना चाहिए।।९-१०½।। और फिर वह देवीसूक्त के साथ मातृका सहित विद्यान्यास करके पुरुषसूक्त द्वारा सोलह उपचारकों से आवाहन करना चाहिए, फिर देवी को आसन देना चाहिए, तब आसन पर पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, उसी प्रकार उनको धूप, दीप, नैवेद्य (पूजन सामग्रियों) को देकर पान खिलाना चाहिए, फिर उनकी परिक्रमा करें।।१०½-१३।। और फिर त्रिपुराम्बिका को प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहिये। इसके बाद सहस्राक्षर विधि से देवी को पुष्पांजलि देनी चाहिए।।१४।। वह पुष्पांजलि देते हुए निम्न स्तोत्र का जाप करना चाहिए।

ओ३म् ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ओ३म नमस्त्रिपुरसुन्दरि अर्थात् हे त्रिपुरसुन्दरि! तुम्हें नमस्कार है। हृदय शिरोदेवि! शिखा, कवच, नेत्र और मुख में निवास करने वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे कामेश्वरि! हे योनि मालाओं वाली! हे नित्यक्लिने! भैरुण्डे! अग्नि में रहने वाली महावज्रेश्वरी! विद्याओं की स्वामिनि! पर शिव की दूति! हे त्वरिते! नित्ये! कुलसुन्दरि! नीले आकाश रूपी पताका वाली! विजय रूपि! सबका कल्याण करने वाली! अग्नि की मालाओं वाली! चित्रे! महानित्ये! परमेश्वरि! मन्त्रेशमयि! षष्ठीशमयी उद्यानमयि देवि! लोपामुद्रामयि! अगस्त्यमयि! कालतापमयि! धर्माचारमयि! खुले हुए केश वाली! दीपकलानाथमयी! विष्णुदेवमयी! सूर्यदेवमयि! देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे तेजोमयि! कामदेवमयि! अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राप्ति और प्राकाम्य सिद्धियों वाली देवि! हे भोजन के छः रसों वाली तथा काव्य के सब रसों वाली, हे मोक्ष देने वाली ब्राह्मी! सृष्टि की रचना करने वाली, महेश्वरि! संहार करने वाली कौमारि! वैष्णवि! वाराहि! इन्द्राणि! चामुण्डे! महालक्ष्मि! सबको आतंकित करने वाली! सर्वत्र उपद्रव फैलाने वाली! सबका विद्रावण (दयार्द्र) करने वाली! सबका आकर्षण करने वाली! सबको वश में करने वाली! सबको उन्मत्त बनाने वाली! सबको महादण्ड देने वाली! सर्वत्र आकाश में विचरण करने वाली! समस्त चराचर

ईशित्वसिद्धे वशित्वसिद्धे प्राप्तिसिद्धे प्राकाम्यसिद्धे रससिद्धे मोक्षसिद्धे ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि चामुण्डे महालक्ष्मि सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्ववशङ्करि सर्वोन्मादिनि सर्वमहांकुशो सर्वखेचरि सर्वबीजे सर्वयोने सर्वास्त्रखंडिनि त्रैलोक्यमोहिनि चक्रस्वामिनि प्रकटयोगिनि बौद्धदर्शनांगि कामाकर्षिणि बुद्ध्याकर्षिणि अहंकाराकर्षिणि शब्दाकर्षिणि स्पर्शाकर्षिणि रूपाकर्षिणि रसाकर्षिणि गन्धाकर्षिणि चित्ताकर्षिणि धैर्याकर्षिणि स्मृत्याकर्षिणि नामाकर्षिणि बीजाकर्षिणि आत्माकर्षिणि अमृताकर्षिणि शरीराकर्षिणि गुप्तयोगिनि सर्वाशापरिपूरकचक्रस्वामिनि अनंगकुसुमे अनंगमेखले अनङ्गमादिनि अनंगमदनातुरेऽनङ्गरेखेऽनंगवेगिन्यनंगांकुशेऽनंगमालिनि गुप्ततरयोगिनि वैदिकदर्शनांगि सर्वसंक्षोभकारक चक्रस्वामिनि पूर्वाम्नायाधिदेवते सृष्टिरूपे सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्वाह्लादिनि सर्वसंमोहिनि सर्वस्तंभिणि सर्वजृंभिणि सर्ववशङ्करि सर्वरंजिनि सर्वोन्मादिनि सर्वार्थसाधिके सर्वसंपत्प्रपूरिणि सर्वमंत्रमयि सर्वद्वंद्वक्षयकरि सम्प्रदाययोगिनि सौरदर्शनांगि सर्वसौभाग्यदायकचक्रे सर्वसिद्धिप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे सर्वप्रियङ्करि सर्वमङ्गलकारिणि सर्वकामप्रदे सर्वदुःखविमोचिनि सर्वमृत्युप्रशमिनि सर्वविघ्ननिवारिणि सर्वांगसुन्दरि सर्वसौभाग्यदायिनि कुलोत्तीर्णयोगिनि सर्वार्थसाधकचक्रेशि

जगत् की बीज (कारण) सबकी योनि (सबको पैदा करने वाली) सब अस्त्रों का खण्डन करने वाली! तीनों लोकों को मोहित करने वाली! श्रीचक्र की स्वामिनि! प्रकटयोगिनि! बौद्धदर्शन की अंगरूपे! प्रकृति के चौबीस तत्त्वरूपि! अर्थात् बुद्धि के, अहंकार के, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच तन्मात्राओं के आकर्षण वाली, फिर चित्त का आकर्षण करने वाली धैर्य, स्मृति (याददाश्त) नाम के आकर्षण वाली! फिर बीज आत्मा और अमृत के आकर्षण वाली, शरीर के आकर्षण गुप्तयोगिनि! सब आशाओं को पूर्ण करने वाले चक्र की स्वामिनि! कामदेव के पुष्पों वाली! कामदेव की मेखला वाली! कामदेव के मादन वाली! कामदेव द्वारा प्राणी को मदमत्त करने वाली! कामदेव की रेखा वाली! कामदेव के वेग वाली! कामरूपी अंकुश वाली! कामदेव की मालाओं वाली! गुप्ततर योगिनि! वैदिक दर्शन की अंगरूपे! सबका संक्षोभ करने वाली! अर्थात् सर्वत्र उपद्रव उथल-पुथल करने वाली! चक्र स्वामिनि! पूर्व आम्नाय (द्वार) के देवी! सृष्टिरूपा देवी! सबको बेचैन बनाने वाली! सबको पिघलाने वाली! सबका आकर्षण करने वाली! सबको आनन्दित कर देने वाली! सबको सम्मोहित करने वाली! सबका स्तम्भन करने वाली! सबको आलस्य में डुबो देने वाली! सबको वश में करने वाली! सबका अनुरंजन करने वाली! सबको उन्मत्त बना देने वाली! सब अर्थों को सिद्ध करने वाली! सब सम्पत्तियों को पूर्ण करने वाली! सब मन्त्रमयी! सब दुविधाओं एवं झगड़ों को दूर करने वाली! सम्प्रदाय योगिनी! सौरदर्शन के अंग वाली! सब सौभाग्य प्रदान करने वाली चक्ररूपी देवी! सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली! सब सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली! सब कुछ प्रिय करने वाली! सब प्रकार से मंगल करने वाली! सब इच्छाओं को प्रदान करने वाली! सब दुःखों से विमुक्त करने वाली! सब मृत्यु को शान्त करने वाली, अर्थात् मृत्यु को शान्त करने वाली! सब विघ्नों को दूर करने वाली! सब अंगों से सुन्दर शरीर वाली! सब सौभाग्य प्रदान करने वाली! कुलोत्तीर्ण योगिनी! सर्वार्थसाधक श्रीचक्र की स्वामिनि! सब कुछ जानने वाली! सब शक्तियों वाली! सब ऐश्वर्य और फल को प्रदान करने वाली! सब ज्ञानों वाली! सब व्याधियों को दूर करने वाली! सबकी आधार! सब

सवज्ञे सर्वशक्ते सर्वैश्वर्यफलप्रदे सर्वज्ञानमयि सर्वव्याधिनिवारिणि सर्वाधारस्वरूपे सर्वपापहरे सर्वानन्दमयि सर्वरक्षास्वरूपिणि सर्वेप्सितफलप्रदे नियोगिनि वैष्णवदर्शनांगि सर्वरक्षाकरचक्रस्थे दक्षिणाम्नायेशि स्थितिरूपे वशिनि कामेशि मोदिनि विमले अरुणे जयिनि सर्वेश्वरि कौलिनि रहस्ययोगिनि रहस्यभोगिनि रहस्यगोपिनि शाक्तदर्शनांगि सर्वरोगहरचक्रेशि पश्चिमाम्नाये धनुर्बाणपाशांकुशदेवते कामेशि वज्रेशि भगमालिनि अतिरहस्ययोगिनि शैवदर्शनांगि सर्वसिद्धिप्रदचक्रगे उत्तराम्नायेशि संहाररूपे शुद्धपरे बिंदुपीठगते महारात्रिपुरसुन्दरि परापरातिरहस्ययोगिनि शांभवदर्शनांगि सर्वानन्दमयचक्रेशि त्रिपुरसुन्दरि त्रिपुरवासिनि त्रिपुरश्रीः त्रिपुरमालिनि त्रिपुरसिद्धे त्रिपुरांब सर्वचक्रस्थे अनुत्तराम्नायाख्यस्वरूपे महात्रिपुरभैरवि चतुर्विधगुणरूपे कुले अकुले कुलाकुले महाकौलिनि सर्वोत्तरे सर्वदर्शनांगि नवासनस्थिते नवाक्षरि नवमिथुनाकृते महेशमाधवविधातृमन्मथस्कन्दनन्दीन्द्रमनुचंद्रकुबेराग-स्त्यदुर्वासःक्रोधभट्टारकविद्यात्मिके कल्याणतत्त्वत्रयरूपे शिवशिवात्मिके पूर्णब्रह्मशक्ते महापरमेश्वरि महात्रिपुरसुन्दरि तब श्रीपादुकां पूजयामि नमः। क एं ईल ह्रीं हस कहल ह्रीं सकल ह्रीं ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं ऐं श्रीं।

देव्याः पुष्पांजलिं दद्यात्सहस्त्राक्षरविद्यया। नोचेत्तत्पूजनं व्यर्थमित्याहुर्वेदवादिनः॥१५॥

पापों को हरने वाली! सब आनन्दों से युक्त! सबकी रक्षा स्वरूप वाली! सब इच्छित फल प्रदान करने वाली! नियोगिनि! वैष्णव दर्शन के अंगरूपिणि! सबकी रक्षा करने वाले श्रीचक्र में स्थित दक्षिण द्वार की स्वामिनि! संसार का पालन करने वाली! वश में करने वाली! काम की स्वामिनि! आनन्द देने वाली! विमले! अरुणे! जय दिलाने वाली! सबकी उत्पत्ति करने वाली! सबकी स्वामिनि! कौल वाली! रहस्ययोगिनि! रहस्यभोगिनी! शाक्तदर्शन की अंगरूपा! सब रोगों को हरने वाले चक्र की स्वामिनि! श्रीचक्र के पश्चिम द्वार की स्वामिनि! धनुष बाण पाश और अंकुश वाली देवि! कामेशि! वज्रेशि! भगमालिनि! अति रहस्य की योगिनि! शैवदर्शन की अंगरूपे! सर्वसिद्धि प्रदान करने वाले चक्र की स्वामिनि! श्रीचक्र के उत्तर द्वार की स्वामिनि! संहाररूपे! श्रीचक्र के शुद्ध परा बिन्दु के मध्य स्थित रहने वाली अर्थात् श्रीचक्र के मध्य में त्रिकोण स्थित बिन्दु के मध्य रहने वाली! महात्रिपुरसुन्दरि! पर अपर के जो अत्यन्त रहस्य हैं, उनके योग वाली! शाम्भव दर्शन के अंग वाली! सर्वानन्दमय चक्र की स्वामिनि! त्रिपुरसुन्दरि! तीनों लोकों में रहने वाली! तीनों लोकों की लक्ष्मी! त्रिपुरमालिनि! त्रिपुरसिद्धे! तीनों लोकों की माँ! सर्वचक्र में स्थित रहने वाली उत्तर द्वार की स्वामिनि महात्रिपुरभैरवि! चार प्रकार के गुण रूप कुल अकुल कुलाकुल तीनों प्रकार की तिथिवार नक्षत्रों वाली! सबका उत्तर देने वाली! सब दर्शनों के अंगों वाली! नवीन आसन पर स्थित नये अक्षरों वाली! नवीन मिथुन की आकृति वाली! महेश, विष्णु, ब्रह्मा, कामदेव, कार्तिकेय, नन्दी, चन्द्रमा, कुबेर, अगस्त्य, दुर्वासा के क्रोध की पूज्य विद्यात्मरूपी देवि! कल्याण तत्त्वत्रयरूप वाली देवि! शिव और शिवा के स्वरूप वाली पूर्णब्रह्म की शक्ति महापरमेश्वरि महात्रिपुरसुन्दरि! मैं आपकी श्रीपादुका की पूजा करता हूँ और तुम्हें नमन करता हूँ। इस प्रकार क एं ईल ह्रीं हस कहल ह्रीं ऐं क्लीं, सौः सौः क्लीं ऐं श्रीं।। कहकर देवि को सहस्त्राक्षर विद्या से पुष्पांजलि देनी चाहिए। यदि यह नहीं किया तो उनका पूजन व्यर्थ है, ऐसा वेदवादी कहते हैं।।१५।।

ततो गोमयसंलिप्ते भूतले द्रोणशालिभिः।
तावद्भिस्तण्डुलैः शुद्धैः शस्तार्णैस्तत्र नूतनम्॥१६॥
द्रोणोदपूरितं कुंभं पञ्चरत्नैर्नवैर्युतम्। न्यग्रोधाश्वत्थमांकंदजंबूदुम्बरशाखिनाम्॥१७॥
त्वग्भिश्च पल्लवैश्चैव प्रक्षिप्तैरधिवासिनम्। कुम्भाग्रे निक्षिपेत्पक्वं नारिकेलफलं शुभम्॥१८॥
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्धूपदीपादि दर्शयेत्। श्रीचिन्तामणिमंत्रं तु हृदि मातकृमाजपेत्॥१९॥
कुम्भं स्पृशञ्छ्रीकामाप्तिरूपीकृतकलेवरम्। अष्टोत्तरशते जाते पुनर्दीपं प्रदर्शयेत्॥२०॥
शिष्यमाहूय रहसि वाससा बद्धलोचनम्। कारयित्वा प्रणामानां साष्टांगानां त्रयं गुरुः॥२१॥
पुष्पाणि तत्करे दत्त्वा कारयेत्कुसुमाञ्जलिम्। श्रीनाथकरुणाराशे परंज्योतिर्मयेश्वरि॥२२॥
प्रसूनांजलिरेषा ते निक्षिप्ता चरणांबुजे। परं धाम परं ब्रह्म मम त्वं परदेवता॥२३॥
अद्यप्रभृति मे पुत्रान्रक्ष मां शरणागतम्। इत्युक्त्वा गुरुपादाब्जे शिष्यो मूर्ध्नि विधारयेत्॥२४॥
जन्मान्तर सुकृतत्वं स्यान्न्यस्ते शिरसि पादुके।
गुरुणा कमलासनमुरशासनपुरशासनसेवया लब्धे॥२५॥
इत्युक्त्वा भक्तिभरितः पुनरुत्थाय शांतिमान्।
वामपार्श्वे गुरोस्तिष्ठेदमानी विनयान्वितः॥२६॥
ततस्तुंबीजलैः प्रोक्ष्य वामभागे निवेदयेत्। विमुच्य नेत्रबंधंतु दर्शयेदर्चनक्रमम्॥२७॥

उसके बाद गोबर से लिपी हुई भूमि पर ६४ किलो साठी धान और उतने ही शुद्ध चावलों द्वारा तथा विशुद्ध जल से वहाँ नया ६४ सेर वाले भरे हुए घड़े को पाँच नवीन वस्त्रों से युक्त, बरगद, पीपल, आम, जामुन, गूलर की शाखाओं की छालों और पत्तों से चारों ओर बिखेरते हुए ढँक दे, फिर उस घड़े के आगे पके हुए शुभ नारियल के फल को फोड़ कर गन्ध-पुष्प आदि से पूजा करके धूप-दीप आदि दिखाए और श्रीचिन्तामणि मातृक मन्त्र को हृदय में जपे।।१६-१९।। उसके बाद उस घड़े का स्पर्श करते हुए श्रीकामाप्तिरूपी उस कलेवर पर १०८ बार चिन्तामणि मन्त्र का जाप हो जाने पर पुनः दीपक दिखाना चाहिए।।२०।।

फिर एकान्त में शिष्य को बुला कर वस्त्र से आँखें बाँध कर तीनों को साष्टांग प्रणाम करवा कर गुरु उसके हाथ में पुष्पों को देकर कुसुमों की अंजलि करवाये और हाथ जोड़ते हुए फूलों को गिराये और कहे कि हे श्रीनाथे! हे करुणा की राशि! परम प्रकाशमय ईश्वरी! मैंने नये फूलों की अंजलि तुम्हारे चरणों में गिरायी है।।२१-२२½।। और फिर अनुरोध करे कि हे परं धाम परं ब्रह्म! तुम्हीं पर देवता हो। आज से तुम मेरे पुत्रों की रक्षा करो। मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूँ, मुझ शरणागत की रक्षा करो। इस प्रकार कहकर गुरु के चरणकमलों में शिष्य अपने शिर को धारण करे।।२२½-२४।। शिष्य द्वारा गुरु के चरणों में शिर के रख देने पर जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों की प्राप्ति होती है और गुरु द्वारा कमलासन और हृदय पर शासन और पुरशासन सेवा द्वारा प्राप्त होने पर पुण्यों की प्राप्ति होती है।।२५।। इस प्रकार भक्ति से पूर्ण होकर पुनः उठकर शान्तचित्त और विनम्र और अभिमान रहित शिष्य को गुरु के बायें पार्श्व में बैठना चाहिए।।२६।। उसके बाद तुम्बी के जलों से छिड़क कर वाम भाग में बैठने का निवेदन करना चाहिए, अर्थात् गुरु शिष्य को जल के छींटे मारकर अपने वाम भाग में बैठने को कहे। फिर शिष्य अपनी आँखें खोल करके पूजन क्रम का दर्शन करे।।२७।।

सितामध्वाज्यकदलीफलपायसरूपकम्। महात्रिपुरसुन्दर्या नैवेद्यमिति चादिशेत्॥२८॥
षोडशार्णमनुं तस्य वदेद्वामश्रुतौ शनैः। ततो बहिर्विनिर्गत्य स्थाप्य दार्वासने शुचिम्॥२९॥
निवेश्य प्राङ्मुखं तत्र पट्टवस्त्रसमास्तृते। शिष्यं श्रीकुम्भसलिलैरभिषिंचेत्समंत्रकम्॥३०॥
पुनः शुद्धोदकैः स्नात्वा वाससी परिगृह्य च। अष्टोत्तरशतं मन्त्रं जप्त्वा निद्रामथाविशेत्॥३१॥
शुभे दृष्टे सति स्वप्ने पुण्यं योज्यं तदोत्तमम्। दुःस्वप्ने तु जपं कुर्यादष्टोत्तरसहस्त्रकम्॥३२॥
कारयेत्रिपुरांबांयाः सपर्यां मुक्तमार्गतः। यदा न दृष्टः स्वप्नोऽपि तदा सिद्धिश्चिराद्भवेत्॥३३॥

स्वीकुर्यात्परया भक्त्या देवी शेषं कलाधिकम्।
सद्य एव स शिष्यः स्यात्पंक्तिपावनपावनः॥३४॥

शरीरमर्थं प्राणं च तस्मै श्रीगुरवे दिशेत्। तदधीनश्चरेन्नित्यं तद्वाक्यं नैव लंघयेत्॥३५॥
यः प्रसन्नः क्षणार्धेन मोक्षलक्ष्मीं प्रयच्छति। दुर्लभं तं विजानीयाद्गुरुं संसारतारकम्॥३६॥
गुकारस्यांधकारोऽर्थो रुकारस्तन्निरोधकः। अंधकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥३७॥
बोधरूपं गुरुं प्राप्य न गुर्वंतरमादिशेत्। गुरुक्तं परुषं वाक्यमाशिषं परिचिंतयेत्॥३८॥
लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च। आददीत ततो ज्ञानं पूर्वं तमभिवादयेत्॥३९॥
एवं दीक्षात्रयं कृत्वा विधेयं बोधयेत्पुनः। गुरुभक्तिस्सदाचारस्तद्द्रोहस्तत्र पातकम्॥४०॥

फिर शक्कर, मधु, घृत, केला, खीर और रुपया तथा अन्य पूजा की सामग्री आदि महात्रिपुरसुन्दरी को समर्पित करनी चाहिए।।२८।। उसके बाद गुरु शिष्य के बायें कान में सोलह वर्णों को कहे, अ से अः तक के सोलह वर्ण हैं। उसके बाद बाहर निकलकर लकड़ी की चौकी पर ब्राह्मण को स्थापित कर पूर्व की ओर मुख करके वहाँ वस्त्र से ढके रहने पर शिष्य को श्रीकुल के जल से मन्त्र के साथ गुरु द्वारा अभिसिंचन किया जाना चाहिए।।३०।। फिर शुद्ध जलों से स्नान करके वस्त्र पहन कर १०८ मन्त्र जप कर सोना चाहिए।।३१।। यदि शुभ स्वप्न दिखाई देता है, तब पुण्य और उत्तम योग समझना चाहिए तथा यदि सोते समय अशुभ स्वप्न दिखायी दें तो फिर १००८ बार मन्त्र का जाप करना चाहिए।।३२।। इस प्रकार मुक्त मार्ग से त्रिपुराम्बा की पूजा करनी चाहिए, जब कोई स्वप्न न दिखाई दे, तब सिद्धि अधिक समय में होगी।।३३।। परा भक्ति द्वारा देवी की अधिक कला को स्वीकार करना चाहिए। जो शिष्य स्वीकार करता है, वह पंक्तिपावन पावन हो जाता है, अर्थात् वेदशास्त्रपारग सम्माननीय व्यक्तियों में भी श्रेष्ठ हो जाता है।।३४।। शरीर, अर्थ और प्राण उन श्रीगुरु को समर्पित करना चाहिए। गुरु के अधीन रहकर सदा आचरण करना चाहिए तथा उसके वाक्य का कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।।३५।।

जो गुरु प्रसन्न हो जाता है, वह आधे क्षण में ही मोक्षरूप लक्ष्मी को प्रदान कर देता है। उस गुरु को दुर्लभ और संसार सागर से पार कराने वाला समझना चाहिए।।३६।। गुकार का अर्थ अन्धकार और रुकार का अर्थ उसको रोकने वाला है, अर्थात् गु = अन्धकार, रु = रोकने वाला, इस प्रकार गुरु शब्द का अर्थ हुआ अन्धकार को रोकने वाला। अतः अज्ञान रूपी अन्धकार को रोकने के कारण ही 'गुरु' इस प्रकार कहा जाता है।।३७।। ज्ञानरूपी गुरु को प्राप्त करके अन्य गुरु को नहीं प्राप्त करना चाहिए। गुरु के कठोर वाक्य को आशिष् के रूप में समझना चाहिए।।३८।। लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक तीनों ज्ञान प्राप्त करने चाहिएँ। उसके बाद पूर्व ज्ञान लौकिक ज्ञान के अनुसार गुरु को अभिवादन करना चाहिए।।३९।। इस प्रकार तीनों प्रकार के ज्ञानों की दीक्षा लेकर फिर विधेय

तत्पदस्मरणं मुक्तिर्यावद्देहमयं क्रमः। यत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात्॥४१॥
गोब्राह्मणवधं कृत्वा न तत्पापं समाश्रयेत्। ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं यस्य मे गुरुसंततिः॥४२॥
तस्य मे सर्वपूज्यस्य को न पूज्यो महीतले। इति सर्वानुकूलो यः स शिष्यः परिकीर्तितः॥४३॥
शीलादिविमलानेकगुणसंपन्नभावनः। गुरुशासनवर्तित्वाच्छिष्य इत्यभिधीयते॥४४॥
जपाच्छ्रांतः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रांतः पुनर्जपेत्।
जपध्यानादियुक्तस्य क्षिप्रं मन्त्रः प्रसिध्यति॥४५॥
यथा ध्यानस्य सामर्थ्यात्कीटोऽपि भ्रमरायते। तथा समाधिसामर्थ्याद्ब्रह्मीभूतो भवेन्नरः॥४६॥
यथा निलीयते काले प्रपञ्चो नैव दृश्यते। तथैव मीलयेन्नेत्रे एतद्ध्यानस्य लक्षणम्॥४७॥
विदिते तु परे तत्त्वे वर्णातीते ह्यविक्रिये। किंकरत्वं च गच्छंति मंत्रा मंत्राधिपैः सह॥४८॥
आत्मैक्यभावनिष्ठस्य सा चेष्टा सा तु दर्शनम्।
योगस्तपः स तन्मंत्रस्तद्धनं यन्निरीक्षणम्॥४९॥

को जानना चाहिए, अर्थात् तीनों ज्ञानों की दीक्षा लेकर ही किस प्रकार क्या करना है, उसकी विधि जाननी चाहिए। गुरु की भक्ति ही सदाचार है तथा गुरु से द्रोह करना सबसे बड़ा पाप है।।४०।। गुरु के चरणों का स्मरण करना ही मुक्ति है। जब तक यह शारीरिक क्रम है, अर्थात् जब तक यह शरीर चल रहा है, तब तक गुरु के चरणों का स्मरण करना चाहिए। उसी से मुक्ति सम्भव है। गुरु के आगे झूठ बोलने से जो पाप मनुष्य प्राप्त करता है, वह पाप गोवध और ब्राह्मण वध करने से नहीं प्राप्त होता, अर्थात् गुरु के आगे झूठ बोलने का पाप गो, ब्राह्मण वध से भी बड़ा पाप है। ब्रह्मा आदि गुरुओं के समूह तक जो मेरी गुरुओं की सन्तति (परम्परा) उन मेरे सर्वपूज्य गुरु से अन्य इस पृथ्वी पर कौंन पूज्य है। इस प्रकार जो इन सब गुरुओं के अनुकूल आचरण करता है, वह शिष्य कहा गया है।।४१-४३।। शील आदि पापरहित, अनेक गुणों से सम्पन्न भावना वाला गुरु की शिक्षा (गुरु के शासन) के अनुकूल व्यवहार करने से ही व्यक्ति शिष्य कहा जाता है।।४४।।

जप करने से श्रान्त हो जाये, थक जाये तो फिर ध्यान करे। ध्यान करने से थक जाये तो फिर जप करे। इस जप और ध्यान में लगे हुए मनुष्य का मन्त्र शीघ्र सिद्ध होता है।।४५।। जिस प्रकार ध्यान की सामर्थ्य से कीट भी भ्रमर बन जाता है, उसी प्रकार समाधि की सामर्थ्य से मनुष्य ब्रह्म हो जाना चाहिए।।४६।। जिस प्रकार प्रलयकाल में पंचतत्त्व निर्मित कोई भी वस्तु, नदी, पर्वत, समुद्र, जड़-चेतन सब पदार्थ कुछ भी नहीं दिखाई देता, उसी प्रकार आँख मींचने पर कुछ भी दिखाई न दे, यही ध्यान का लक्षण है।।४७।। वर्णातीत और निर्विकार ब्रह्मरूप पर तत्त्व को विदित करने में मन्त्र, मन्त्रों के स्वामियों के साथ किंकरत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् उस परब्रह्म तक पहुँचाने में मन्त्र नौकर का काम करते हैं।।४८।। आत्मा के ऐक्य भाव में निष्ठ मनुष्य की जो चेष्टा है, वही दर्शन है। अर्थात् मनुष्य जब सब ओर से ध्यान को हटाकर सब इन्द्रियों सहित मन को अपनी आत्मा में ही एकीकृत कर देता है, तब जो वह चेष्टा करता है, वही दर्शन है, क्योंकि दर्शन का अर्थ भी यही है। दृश्-प्रेक्षणे के अनुसार प्रकृष्ट रूप से किसी विषय को देखना ही दर्शन है तथा वह प्रकृष्ट रूप ही आत्मैक्य भाव है। योग और तप जिसमें है, वह मन्त्र है तथा वह धन है, जो निरीक्षण है। अर्थात् मन्त्र का प्रयोग योग और तप के साथ होना चाहिए, बिना मन्त्र के योग और तप नहीं तथा बिना योग और तप के मन्त्र व्यर्थ है तथा धन वही है, जिसे अच्छी तरह जाँच कर ग्रहण किया जाये,

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि। यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥५०॥
यः पश्येत्सर्वगं शांतमानंदात्मानमद्वयम्। न तस्य किंचिदाप्तव्यं ज्ञातव्यं वावशिष्यते॥५१॥
पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः। जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः॥५२॥
देहो देवालयः प्रोक्तो जीव एव महेश्वरः। त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोहंभावेन योजयेत्॥५३॥
तुषेण बद्धो ब्रीहिः स्यात्तुषाभावे तु तंडुलः। पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तो महेश्वरः॥५४॥
आकाशे पक्षिजातीनां जलेषु जलचारिणाम्। यथा गतिर्न दृश्येत महावृत्तं महात्मनाम्॥५५॥

नित्यार्चनं दिवा कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्।
उभयोः काम्यकर्मा स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः॥५६॥

कोटिकोटिमहादानात्कोटिकोटिमहाव्रतात्। कोटिकोटिमहायज्ञात्परा श्रीपादुकास्मृतिः॥५७॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यावद्देहस्य धारणम्। तावद्वर्णाश्रमाचारः कर्तव्यः कर्ममुक्तये॥५८॥
निर्गतं यद्गुरोर्वक्रात्सर्वं शास्त्रं तदुच्यते। निषिद्धमपि तत्कुर्याद्गुर्वाज्ञां नैव लंघयेत्॥५९॥

अच्छी तरह परिश्रम से कमाया जाये।।४९।। शरीर के अभिमान के नष्ट हो जाने पर अर्थात् जब मनुष्य का अहंभाव (अभिमान) समाप्त हो जाता है, जब पुरुष मैं, मेरा शरीर, मैं कर्ता इस अहंभाव को भूल कर प्रकृतिस्थ हो आत्मस्थ हो जाता है तथा आत्मा-परमात्मा को जान लेती है। तब परमात्म तत्त्व को जान लेने पर, जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ समाधियाँ हैं।।५०।। जो पुरुष सर्वत्र जाने वाले अर्थात् सर्वत्र व्याप्त, शान्त, आनन्दात्मक और अद्वय अर्थात् दो नहीं, सगुण और निर्गुण नहीं, साकार और निराकार नहीं, कहीं अन्य नहीं, केवल एक ही ब्रह्म को देख लेता है, उसके लिए संसार में कुछ भी प्राप्त करने और जानने के लिए शेष नहीं रह जाता। अर्थात् जिसने परमात्मा को प्राप्त कर लिया, उसे भला क्या प्राप्त करने के लिए शेष रहेगा तथा क्या उसे जानने के लिये ही रहेगा।।५१।। करोड़ों पूजाओं के समान स्तोत्र होता है तथा करोड़ों स्तोत्रों के समान जप होता है। करोड़ों जप के समान ध्यान है और करोड़ों ध्यानों के समान लय है।।५२।। शरीर ही देवालय (मन्दिर) कहा गया है, जीव ही महेश्वर है, अतः अज्ञानमाला-को त्याग कर अपने को सोऽहं भाव से जोड़ देना चाहिए। अर्थात् समाधि काल में वह परमात्मा मैं हूँ, यह भाव आ जाना चाहिए।।५३।। जैसे छिलका रहने पर धान धान रहता है; परन्तु छिलके के न रहने पर वह चावल हो जाता है, उसी प्रकार शरीर रूपी पाश में बँधा हुआ जीवात्मा जीव कहा जाता है तथा पाशमुक्त होने पर वह जीव महेश्वर हो जाता है, अर्थात् आत्मा परमात्मा हो जाता है।।५४।।

आकाश में पक्षी जातियों की और जल में जलचर जातियों की जैसी गति है, वैसी महान् आत्मा वाले महापुरुषों का महाव्यवहार की गति नहीं देखा जाता।।५५।। महापुरुषों को दिन में नित्य अर्चना (पूजा) करनी चाहिए और रात्रि में नैमित्तिक अर्चना करनी चाहिए, अर्थात् नित्य अर्चना-शौचादि से निवृत्त होकर सन्ध्यावन्दनादि तो दिन में नित्य करनी चाहिए, वह नित्य कर्म है; परन्तु यदि धन, पुत्र, ऐश्वर्य आदि किसी विशेष फल की प्राप्ति के लिए पूजा करनी है, तो वह नैमित्तिक पूजा रात्रि में करनी चाहिए। दोनों ही नित्य और नैमित्तिक काम्यकर्म होने चाहिएँ, यह शास्त्र का निश्चय है।।५६।। करोड़ों-करोड़ महादानों से करोड़ों-करोड़ महाव्रतों से श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के चरणपादुका की स्मृति बढ़कर है।।५७।। ज्ञान से अथवा अज्ञान से जब तक व्यक्ति शरीर धारण किये हुए है, तब तक उसे वर्ण और आश्रम धर्म के आचरणों का पालन कर्म से मुक्त होने के लिए अवश्य करना चाहिए।।५८।। जो गुरु के मुख से निकला

जातिविद्याधनाढ्यो वा दूरे दृष्ट्वा गुरुं मुदा। दंडप्रमाणं कृत्वैकं त्रिःप्रदक्षिणमाचरेत्॥६०॥
गुरुबुद्ध्या नमेत्सर्वं दैवतं तृणमेव वा। प्रणमेद्देवबुद्ध्या तु प्रतिमां लोहमृन्मयीम्॥६१॥
गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं वादैर्विजित्य च। विकास्य गुह्यशास्त्राणि भवंति ब्रह्मराक्षसाः॥६२॥
अद्वैतं भावयेन्नित्यं नाद्वैतं गुरुणा सह। न निंदेदन्यसमयान्वेदशास्त्रागमादिकान्॥६३॥
एकग्रामस्थितः शिष्यस्त्रिसंध्यं प्रणमेद्गुरुम्।
क्रोशमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत्॥६४॥
अर्धयोजनगः शिष्यः प्रणमेत्पंचपर्वसु। एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि॥६५॥
तत्तद्योजनसंख्यांतमासेषु प्रणमेद्गुरुम्। अतिदूरस्थितः शिष्यो यदेच्छा स्यात्तदा व्रजेत्॥६६॥
रिक्तपाणिस्तु नोपेयाद्राजानं देवतां गुरुम्। फलपुष्पांबरादीनि यथाशक्ति समर्पयेत्॥६७॥
मनुष्यचर्मणा बद्धः साक्षात्परशिवः स्वयम्। सच्छिष्यानुग्रहार्थाय गूढं पर्यटति क्षितौ॥६८॥
सद्भक्तरक्षणायैव निराकारोऽपि साकृतिः। शिवः कृपानिधिर्लोके संसारीव हि चेष्टते॥६९॥

हुआ वचन है, वही शास्त्र कहा ज़ाता है, क्योंकि यह प्राचीन गुरुओं की वाणी है। गुरु यदि निषिद्ध कार्य को भी कहें तो करना चाहिए; परन्तु गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं ही करना चाहिए।।५९।। मनुष्य भले ही किसी उच्च जाति का हो, बहुत विद्यावान् हो अथवा बहुत धनवान् हो, उसे गुरु को दूर से ही देखकर प्रसन्नता के साथ दण्ड प्रणाम करके तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिए।।६०।। सभी देवताओं, यहाँ तक तृण को भी गुरु मानकर नमस्कार करे तथा लोहे की बनी हुई मूर्ति को देवता मानकर प्रणाम करना चाहिए।।६१।। गुरु को हुंकार और तुंकार करके और विप्र को वादों से जीत कर अर्थात् गुरु को ऊँचे स्वर में डराते हुए अनादर सूचक शब्द बोलकर तथा ब्राह्मण को वाद-विवाद में जीत कर गुप्त शास्त्रों का विकास करके, अर्थात् अश्लील शास्त्रों का विकास कर मनुष्य ब्रह्मराक्षस हो जाते हैं।।६२।। गुरु के साथ सदैव अद्वैत का भाव रखना चाहिए, द्वैत का नहीं रखना चाहिए। अर्थात् उन्हें एक मान कर उनकी सेवा करनी चाहिए, दो मानकर दुर्मति नहीं करनी चाहिए। वेदशास्त्र और आगम (न्याय मीमांसा अर्थशास्त्र आदि) की तथा अन्य आचारों (सम्प्रदायों) की निन्दा नहीं करनी चाहिए।।६३।।

गुरु और शिष्य यदि एक ही ग्राम में स्थित हों, तो शिष्य को गुरु को तीन बार प्रणाम करना चाहिए। यदि गुरु कोश भर दूरी पर स्थित हों, तो प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए।।६४।। यदि गुरु एक योजन (चार कोश) की दूरी पर रहते हों तो गुरु को शिष्य पाँच पर्वों (होली, रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली, दुर्गापूजा आदि) में जाकर प्रणाम करे। एक योजन से आरम्भ कर बारह योजन तक उस उस संख्या के महीनों में गुरु को प्रणाम करना चाहिए, जैसे कि यदि गुरु एक योजन पर है, तो एक मास में, दो योजन पर है, तो दो मास में, तीन पर है, तो तीन मास, इसी प्रकार संख्या के अनुसार जितने योजन दूरी पर गुरु हों, उतने ही मास बाद गुरु को प्रणाम करना चाहिए तथा जब गुरु अत्यन्त दूरी पर रहते हों तो शिष्य की जब इच्छा हो, तब गुरु के पास जाये।।६५-६६।। राजा, देवता और गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। फल पुष्प और वस्त्र आदि गुरु के लिए यथाशक्ति समर्पित करने चाहिए।।६७।। मनुष्य की चमड़ी में बँधे हुए अर्थात् मनुष्य रूपी परदेवता साक्षात् भगवान् शिव स्वयं सच्चे शिष्य के अनुग्रह के लिए गूढ रूप से समस्त पृथ्वी पर घूमते हैं।।६८।। सच्चे भक्त की रक्षा के लिए निराकार होते हुए भी आकार सहित कृपानिधि भगवान् शिव संसारी व्यक्ति के समान चेष्टा सच्चे शिष्य पर कृपा करने के लिए तीन नेत्र

अत्रिनेत्रः शिवः साक्षादचतुर्बाहुरच्युतः। अचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः परिकीर्तितः॥७०॥
श्रीगुरुं परतत्त्वाख्यां तिष्ठंतं चक्षुरग्रतः। भाग्यहीना न पश्यंति सूर्यमन्धा इवोदितम्॥७१॥
उत्तमा तत्त्वचिंता स्याज्जपचिंता तु मध्यमा।
अधमा शास्त्रचिंता स्याल्लोकचिंताधमाधमा॥७२॥
नास्ति गुर्वधिकं तत्त्वं नास्ति ज्ञानाधिकं सुखम्।
नास्ति भक्त्यधिका पूजा न हि मोक्षाधिकं फलम्॥७३॥
सर्ववेदेषु शास्त्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु। तत्र तत्रोच्यते शब्दैः श्रीकामाक्षी परात्परा॥७४॥
शचींद्रौ रोहिणीचंद्रौ स्वाहाग्नी च प्रभारवी।
लक्ष्मीनारायणौ बाणीधातारौ गिरिजाशिवौ॥७५॥
अग्नीषोमौ बिंदुनादौ तथा प्रकृतिपूरुषौ। आधाराधेयनामानौ भोगमोक्षौ तथैव च॥७६॥
प्राणापनौ च शब्दार्थौ तथा विधिनिषेधकौ। सुखदुःखादि यद्वद्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा॥७७॥
सर्वलोकेषु तत्सर्वं परं ब्रह्म न संशयः। उत्तीर्णमपरं ज्योतिः कामाक्षीनामकं विदुः॥७८॥
यदेव नित्यं ध्यायंति ब्रह्मविष्णुशिवादयः। इत्थं हि शक्तिमार्गेऽस्मिन्यः पुमानिह वर्तते॥७९॥
प्रसादभूमिः श्रीदेव्या भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम्।
अमन्त्रं वा समंत्रं वा कामाक्षीमर्चयंति ये॥८०॥

वाले शिव बिना तीन नेत्र के, सामान्य मनुष्य के रूप में चार भुजाओं वाले विष्णु बिना चार भुजाओं के सामान्य मनुष्य के रूप में तथा चार मुख वाले ब्रह्मा बिना चार मुख के सामान्य मनुष्य के रूप में घूमते हैं, ये तीनों देव ही श्रीगुरु कहे गये हैं।।६९-७०।। जिस प्रकार अन्धे व्यक्ति उदित होते हुए सूर्य को नहीं देखते हैं, उसी प्रकार आँखों के सामने बैठे हुए परतत्त्व नामक श्रीगुरु (ब्रह्मा विष्णु शिव) को भाग्यहीन नहीं देखते हैं।।७१।। तत्त्वों का चिन्तन करना उत्तम चिन्तन है, जप करना मध्यम चिन्तन है, शास्त्र चिन्तन अधम चिन्तन है तथा लोक चिन्तन सबसे निम्न कोटि का चिन्तन है।।७२।। गुरु से अधिक कोई तत्त्व नहीं है। ज्ञान से अधिक कोई सुख नहीं है। भक्ति से अधिक कोई पूजा नहीं है और मोक्ष से अधिक कोई फल नहीं है।।७३।। सब वेदों और शास्त्रों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदियों में वहाँ-वहाँ जो श्री कामाक्षी कहीं, परात्परा नाम से कही जाती है, अर्थात् वे ही कामाक्षी हैं, पर से पर नाम वाली हैं, अर्थात् वे कामाक्षी परब्रह्म से परे हैं।।७४।।

शची-इन्द्र, रोहिणी-चन्द्रमा, स्वाहा और अग्नि, प्रभा और सूर्य, लक्ष्मी और नारायण, वाणी और धाता (ब्रह्मा), गिरिजा (पार्वती) और शिव, अग्नि और सोम, बिन्दु और नाद, प्रकृति और पुरुष, आधार और आधेय, उसी प्रकार भोग और मोक्ष, प्राण और अपान, शब्द और अर्थ, विधि और निषेधक (हाँ और ना, हैं और नहीं) सुख और दुःख आदि जितने द्वन्द्व (जोड़े) दिखायी देते हैं अथवा सुने जाते हैं, वे सब लोकों में परम् ब्रह्म हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनको भी पार कर उनसे महान् एक ज्योति है, जिसे कामाक्षी नाम से जानते हैं।।७५-७८।। जिस ज्योति का ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि भी नित्य ध्यान करते हैं, इस प्रकार इस शक्ति के मार्ग में जो मनुष्य इस संसार में वर्तमान है, वह उन श्री कामाक्षी देवी का कृपापात्र है और वह भोग और मोक्ष का पात्र है, उसे ही सब प्रकार के भोग और मोक्ष मिलते हैं।।७९-७९½।। मन्त्र के बिना या मन्त्र के साथ जो श्रीकामाक्षी की अर्चना करते

स्त्रियो वैश्याश्च शूद्राश्च ते यांति परमां गतिम्।
किं पुनः क्षत्रिया विप्रा मंत्रपूर्वं यजंति ये॥८१॥
संसारिणोऽपि ते नूनं विमुक्ता नात्र संशयः। सितामध्वाज्यकदलीफलपायसरूपकम्॥८२॥
पञ्चपर्वसु नैवेद्यं सर्वदेव निवेदयेत्। यो नार्चयति शक्तोऽपि स देवीशापमाप्नुयात्॥८३॥
अशक्तौ भावनाद्रव्यैरर्चयेन्नित्यमंबिकाम्। गृहस्थस्तु महादेवीं मंगलाचारसंयुतः॥८४॥
अर्चयेत महालक्ष्मीमनुकूलांगनासखः। गुरुस्त्रिवारमाचारं कथयेत्कलशोद्भव॥८५॥
शिष्यो यदि न गृह्णीयाच्छिष्ये पापं गुरोर्न हि।
लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ॥८६॥
श्रीगुरुं गुरुपत्नीं च पितरौ चिंतयेद्धिया। इति सर्वं मया प्रोक्तं समासेन घटोद्भव॥८७॥
एतावदवधानेन सर्वज्ञो मतिमान्भवेत्॥८८॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

हैं, वे परम गति को प्राप्त करते हैं।।७९½-८०½।। यही नहीं क्षत्रिय और ब्राह्मण भी जो मन्त्रपूर्वक श्रीकामाक्षी देवी का यज्ञ करते हैं, वे संसारी होते हुए भी मोक्ष प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।८०½-८१½।। शक्कर, मधु, घृत, केला, खीर, रुपया और नैवेद्य (पूजन सामग्री) सदैव पाँच पर्वों में श्रीकामाक्षी देवी को प्रदान करनी चाहिए।।८१½-८२½।। जो व्यक्ति समर्थ होते हुए भी श्रीदेवी की पूजा नहीं करता है, वह देवी के शाप को प्राप्त करता है, जिसमें उक्त द्रव्यों द्वारा पूजा करने की सामर्थ्य नहीं है, तो उसे हे अगस्त्य जी! नित्य भावना के साथ द्रव्यों द्वारा मां की अर्चना करनी चाहिये।।८२½-८३½।।

गृहस्थ को तो अपनी पत्नी के साथ मंगलाचार के साथ महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए।।८३½-८४½।। हयग्रीव कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! गुरु को तीन बार आचार करना चाहिए। शिष्य यदि इस कथन को नहीं स्वीकार करता है, तो वह शिष्य के लिए पाप है, गुरु के लिए नहीं।।८४½-८५½।। गुरु तीन हैं—विष्णु, ब्रह्मा और महेश; परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य को उनका सपत्नीक ध्यान करना चाहिए, वह लक्ष्मी-विष्णु, सरस्वती-ब्रह्मा और पार्वती-शिव। इस प्रकार गुरु और गुरुपत्नी दोनों का ही चिन्तन करना चाहिए।।८५½-८६½।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी! उपर्युक्त प्रकार से मैंने सब कुछ संक्षेप में आपसे कह दिया है। इसको ध्यानपूर्वक सुनने से सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हो जाना चाहिए।।८६½-८८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४३ वाँ अध्याय श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

देवीपूजाप्रकार कथनं नाम

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

प्रविश्य तु जपस्थानमानीय निजमासनम्। अभ्युक्ष्य विधिवन्मंत्रैर्गुरूक्तक्रमयोगतः॥१॥
स्वात्मानं देवतामूर्ति ध्यायंस्तत्राविशेषतः। प्राङ्मुखो दृढमाबध्य पद्मासनमनन्यधीः॥२॥
त्रिखण्डामनुबध्नीयाद्गुर्वादीनभिवंद्य च। द्विरुक्तबालबीजानि मध्याद्यंगुलिषु क्रमात्॥३॥
तलयोरपि विन्यस्य करशुद्धिपुरःसरम्। अग्निप्राकारपर्यंतं कुर्यात्स्वास्त्रेण मन्त्रवित्॥४॥
प्रतिलोमेन पादाद्यमनुलोमेन कादिकम्। व्यापकन्यासमारोप्य व्यापयन्वाग्भवादिभिः॥५॥
व्यक्तैः कारणसूक्ष्मस्थूलशरीराणि कल्पयेत्।
नाभौ हृदि भ्रुवोर्मध्ये बालाबीजान्यथ न्यसेत्॥६॥
मातृकां मूलपुटितां न्यसेन्नाभ्यादिषु क्रमात्। बालाबीजानि तान्येव द्विरावृत्त्याथ विन्यसेत्॥७॥
मध्यादिकरशाखासु तलयोरपि नान्यथा। नाभ्यादावथ विन्यस्य न्यसेदथं पदद्वये॥८॥
जानूरुस्फिग्गुह्यमूलनाभि हृन्मूर्धसु क्रमात्। नवासनानि ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं तथेश्वरम्॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–४४

देवी पूजा प्रकार वर्णन

हयग्रीव ने कहा कि अगस्त्यजी! जप के स्थान में प्रवेश करके अपने आसन को लेकर गुरु द्वारा बताये गये क्रम के अनुसार मन्त्रों से विधिवत् जल का छिड़काव करके अपनी आत्मा और देवी की मूर्ति का ध्यान करते हुए वहाँ पर विशेष रूप से पूर्व की ओर मुख करके दृढ़ पद्मासन बाँध कर अन्य किसी को ध्यान न करते हुए बैठना चाहिए।।१।। त्रिखण्डा का अनुबन्धन करे और गुरु आदि की अभिवन्दना करके दो बार बाला देवी के बीजमन्त्रों का मध्यमा आदि अंगुलियों में जाप करना चाहिये। यहाँ पहले क्रमशः दोनों हाथों की हथेलियों को पहले धोकर शुद्धि कर लेनी चाहिए और अग्नि प्राकार तक मन्त्रज्ञ को अपने अस्त्र से शुद्धि करनी चाहिए।।४।। प्रतिलोम क्रम से पादादि का और अनुलोम क्रम से कादि का अर्थात् प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह तक इनको उल्टे क्रम से अर्थात् ह, स, ष, श, व, ल, र, य, म, भ, ब, फ, प के क्रम से और कादि क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न। इनको इसी क्रम से व्यापक न्यास को आरोप कर वाग्वादियों द्वारा व्याप्त करते हुए व्यक्तों द्वारा कारण सूक्ष्म स्थूल शरीरों में भी कल्पना करे और नाभि में, हृदय में और भौंहों के मध्य में बाला के बीजमन्त्रों का न्यास करे।।६।। मूलपुटित मातृका का क्रम से नाभि आदि में न्यास करे, उन बाला बीजों को ही दो बार घुमा कर नाभि आदि में विन्यस्त करे।।७।। मध्या आदि हाथ की अंगुलियों में और दोनों हाथ की हथेलियों पर भी अन्यथा नाभि आदि में भी रख कर दोनों पैरों में भी न्यास करे।।८।। घुटनों, जंघाओं,

सदाशिवं च पूषाणं तूलिकां च प्रकाशकम्। विद्यासनं च विन्यस्य हृदये दर्शयेत्ततः॥१०॥
पद्मत्रिखण्डयोन्याख्यां मुद्रामोष्ठपुटेन च। वायुमापूर्य हुं हुं हुं त्विति प्राबोध्यकुण्डलीम्॥११॥
मन्त्रशक्त्या समुन्नीय द्वादशान्ते शिवैकताम्।
भावयित्या पुनस्तं च स्वस्थाने विनिवेश्य च॥१२॥
वाग्भवादीनि बीजानि मूलहृद्बाहुषु न्यसेत्। समस्तमूर्ध्नि दोर्मूलमध्याग्रेषु यथाक्रमम्॥१३॥
हस्तौ विन्यस्य चांगेषु ह्यङ्गुष्ठादितलावधि। हृदयादौ च विन्यस्य कुंकुमं न्यासमाचरेत्॥१४॥
शुद्धा तृतीयबीजेन पुटितां मातृकां पुनः। आद्यबीजद्वयं न्यस्य ह्यंत्यबीजं न्यसेदिति॥१५॥
पुनर्भूतलविन्यासमाचरेन्नातिविस्तरम्। वर्गाष्टकं न्यसेन्मूले नाभौ हृदयकण्ठयो;॥१६॥
प्रागाधायैषु शषसान्मूलहृन्मूर्द्धसु न्यसेत्। कक्षकट्यंसवामांसकटिहृत्सु च विन्यसेत्॥१७॥
प्रभूताधः षडंगानि दादिवर्गैस्तु विन्यसेत्। ऋषिस्तु शब्दब्रह्मस्याच्छंदो भूतलिपिर्मता॥१८॥
श्रीमूलप्रकृतिस्त्वस्य देवता कथिता मनोः। अक्षस्त्रक्पुस्तके चोर्ध्वे पुष्पसायककार्मुके॥१९॥
वराभीतिकराब्जैश्च धारयंतीमनूपमाम्। रक्षणाक्षमयीं मालां वहन्ती कण्ठदेशतः॥२०॥
हारकेयूरकटकच्छन्नवीरविभूषणाम्। दिव्यांगरागसंभिन्नमणिकुंडलमण्डिताम्॥२१॥
लिपिकल्पद्रुमस्याधो रूपिपंकजवासिनीम्।
साक्षाल्लिपिमयीं ध्यायेद्भैरवीं भक्तवत्सलाम्॥२२॥

कूल्हों, लिङ्ग, मूल, नाभि, हृदय और सिर में क्रमशः न्यास करे। फिर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, पूषाण, तूलिका, प्रकाशक और विद्या के नौ आसनों का विन्यास करके उनका हृदय में दर्शन करे।।९-१०।। पद्मत्रिखण्ड योनि नाम की मुद्रा बनाकर ओष्ठपुर से अन्दर वायु को भर कर हुं हुं हुं इस प्रकार कहते हुएं कुण्डली को जगाये।।११।। मन्त्र की शक्ति से बारह के अन्त में शिव की एकता को उठाकर भावयुक्त करके फिर उसको अपने स्थान में रखकर वाणी से उत्पन्न बीजों का मूल हृदय और बाहुओं में न्यास करे। फिर समस्त भुजा पर कांख भुजा के मध्य आगे सर्वत्र भुजा पर न्यास करते हुए क्रम से हाथों पर विन्यास करे। शरीर के सभी अंगों, अंगूठा आदि के तलों तक हृदय आदि पर न्यास करे तथा वह न्यास कुंकुम का होना चाहिए।।१२-१४।। फिर तीसरे बीज से पुटित मातृका को शुद्ध करे, पहले दो बीजों का न्यास करके अन्त्य बीज का न्यास करे।।१५।। उसका अति विस्तृत भूमितल का विन्यास करे। तब मूल में, नाभि में और कण्ठों में अष्ट वर्ग (१. स्वर वर्ग, २. क वर्ग, ३. च वर्ग, ४. ट वर्ग, ५. त वर्ग, ६. प वर्ग, ७. य वर्ग, ८. श वर्ग) का विन्यास करे।।१६।। पहले आधान कर श ष स ह को मूल हृदय और ऊपर शिर पर न्यस्त करे। कक्ष (कांख), कमर, कन्धे, बायें कन्धे, कमर, हृदय आदि में विशेष न्यास करे। बहुत नीचे जो छः अंग हैं, उनमें द आदि वर्गों का न्यास करे। ऋषि तो शब्द ब्रह्म माना गया है और छन्द भूत लिपि माने गये हैं।।१८।।

श्री मूल प्रकृति इसकी देवी कही गयी है। अक्षमाला पुस्तक दो हाथों में तथा ऊपर वाले हाथों में पुष्पों का बाण और धनुष है।।१९।। वे अपने श्रेष्ठ और भय पैदा करने वाले हाथों द्वारा इन अक्षमाला, पुस्तक, बाण और धनुष धारण किये हुई हैं। रक्षा करने वाली अक्षमाला को कण्ठ में पहने हुई हार बाजूबन्द कर्धनी से ढँके हुए वीर भूषण वाली, दिव्य अंगराग से युक्त तथा मणिजटित कुण्डल से मण्डित, लिपि कल्पवृक्ष के नीचे रूप कमलवासिनी साक्षात्

अनेककोटिदूतिभिः समंतात्समलंकृताम्। एवं ध्यात्या न्यसेद्भूयो भूतलेप्यक्षरान्क्रमात्॥२३॥
मूलाद्याज्ञावसानेषु वर्गाष्टकमथो न्यसेत्। शषासान्मूर्ध्नि संन्यस्य स्वरानेष्वेव विन्यसेत्॥२४॥
हादिरूर्ध्वादिपञ्चास्येष्वग्रे मूले च मध्ये। अङ्गुलीमूलमणिबन्धयोर्दोष्णोश्च पादयोः॥२५॥
जठरे पार्श्वयोर्दक्षवामयोर्नाभिपृष्ठयोः शषसान्मूलहृन्मूर्धस्वेतान्वा लादिकान्न्यसेत्॥२६॥
ह्रस्वाः पञ्चाथ सन्ध्यर्णाश्चत्वारो हयरा वलौ। अकौ खगेनगश्चादौ क्रमोयं शिष्टवर्गके॥२७॥
शषसा इति विख्याताद्विचत्वारिंशदक्षराः। आद्यः पञ्चाक्षरो वर्गो द्वितीयश्चतुरक्षरः॥२८॥
पञ्चाक्षरी तु षड्वर्गी त्रिवर्णो नवमो मतः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च धनेशेंद्रयमाःक्रमात्॥२९॥
वरुणश्चैव सोमश्च शक्तित्रयमिमे नव। वर्णानामीश्वराः प्रोक्ताः क्रमो भूतलिपेरयम्॥३०॥
एवं सृष्टौ पाठो विपरीतः संहृतावमून्येव। स्थानानि योजनीयौ विसर्गबिंदू च वर्णांतौ॥३१॥
ध्यानपूर्वं ततः प्राज्ञो रत्यादिन्यासमाचरेत्। जपाकुसुमसंकाशाः कुंकुमारुणविग्रहाः॥३२॥
कामवामाधिरूढांका ध्येयाः शरधनुर्धराः। रतिप्रीतियुतः कामः कामिन्याः कांत इष्यते॥३३॥
कांतिमान्मोहिनीयुक्तकामांगः कलहप्रियाम्। अन्वेति कामचारैस्तु विलासिन्या समन्वितः॥३४॥

लिपिमयी भक्तवत्सला अनेक कोटि दूतियों द्वारा चारों ओर से अलंकृता भैरवी का ध्यान करके पुनः पृथ्वी पर क्रम से अक्षरों का न्यास करे।।२०-२३।। फिर मूल आदि आज्ञा और अवसान में अष्टवर्ग का न्यास करे। श ष स को शिर पर न्यस्त कर स्वरों को इन्हीं स्थानों में विन्यस्त करे।।२४।। हादि ऊर्ध्वादि पाँच को मुखों में आगे मूल और मध्य में अंगुलि में मूल मणिबन्ध में दोनों भुजाओं और पैरों में न्यस्त करना है।।२५।। पेट पर, पीछे, दायें-बायें, नाभि के पृष्ठों पर श ष स का न्यास करे तथा मूल हृदय और मूर्धा पर लादिकों (य र ल व) का न्यास करे।।२६।। ह्रस्व पाँच हैं, अ, इ, उ, ऋ, ऌ। सन्ध्यवर्ण हैं ह, य, व, र, ल, अ, और क, ख, ग, न ग ये सब क्रम से शिष्ट वर्ग के वर्ण हैं।।२७।। श ष स ये वर्ण विख्यात हैं। इस प्रकार कुल बयालीस अक्षर हैं। पहले पाँच अक्षरों का वर्ग है १. कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ), २. चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ), ३. टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण), ४. तवर्ग (त, थ, द, ध, न), ५. पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) इस प्रकार पच्चीस वर्ण हुए। फिर दूसरा वर्ग चार अक्षरों वाला वर्ग है— ज़ैसे— य, व, र, ल (यादि) श, ष, स, ह (हादि) इस प्रकार कुल सात वर्ग हुए। षड्वर्गी पाँच अक्षर हैं—अ, इ, उ, ऋ और ऌ तथा नवाँ वर्ग तीन अक्षरों संयुक्ताक्षर क्ष, त्र, ज्ञ का है। यह त्रिवर्ण नौवाँ वर्ग माना जाता है। इस प्रकार कुल अक्षर ४१ हुए; परन्तु ह को सूत्र में दो बार लिया गया है, अतः कुल अक्षर बयालीस हुए तथा ये कुल ९ वर्ग माने गये हैं।।२८-२८½।।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर, इन्द्र, यम, वरुण, सोम और तीन शक्तियाँ ये नौ वर्णों के ईश्वर कहे गये हैं और क्रमशः यही भूतलिपि का क्रम है।।२८½-३०।। इस प्रकार सृष्टि पर यह पाठ है, ये ही विपरीत रूप से संहृत होते हैं। विसर्ग और बिन्दु तो वर्ण के अन्त में जोड़ने चाहिएँ।।३१।। उसके बाद विद्वान् पुरुष को ध्यानपूर्वक रति आदि का न्यास करना चाहिए। जपा के पुष्प के समान चमकने वाली कुंकुम के समान लाल शरीर वाली, कामदेव के वाम गोद में बैठी हुई बाण और धनुष को धारण करने वाली रति आदि हैं।।३२-३२½।। कामदेव रति से प्रेम करते हुए रति के युक्त हैं, इसलिये वे कामिनी के कान्त कहे जाते हैं।।३३।। कान्तिमान् मोहिनी से युक्त काम का अंग, कलहप्रिया कामिनी का अनुसरण करता है। जो काम का आचरण व्यवहारों द्वारा विलासिनी रति से युक्त है।।३४।।

कामः कल्पलतायुक्तः कामुकः श्यामवर्णया।
शुचिस्मितान्वितः कामो बंधको विस्मृतायुतः॥३५॥
रमणो विस्मिताक्ष्या च रामोऽयं लेलिहानया।
रमण्या रतिनाथोपि दिग्वस्त्राढ्यो रतिप्रियः॥३६॥
वामया कुब्जया युक्तो रतिनाथो धरायुतः। रमाकांतो रमोपास्यो रममाणो निशाचरः॥३७॥
कल्याणो मोहिनीनाथो नन्दकश्चोत्तमान्वितः। नन्दी सुरोत्तमाढ्यो नन्दनो नन्दयिता पुनः॥३८॥
सुलावण्यान्वितः पंचबाणो बालनिधीश्वरः। कलहप्रियया युक्तस्तथा रतिसुखः पुनः॥३९॥
एकाक्ष्या पुष्पधन्वापि सुमुखेशो महाधनुः।
नीली जटिल्यो भ्रमणः क्रमशः पालिनीपतिः॥४०॥
भ्रममाणः शिवाकांतो भ्रमो भ्रान्तश्च मुग्धया।
भ्रामको रमया प्राप्तो भ्रामितो भृङ्ग इष्यते॥४१॥
भ्रांताचारो लोचनया दीर्घजिह्विकया पुनः। भ्रमावहं समन्वेति मोहनस्तु रतिप्रियाम्॥४२॥
मोहकस्तु पलाशाक्ष्या गृहिण्यां मोह इष्यते। विकटेशो मोहधरो वर्धनोयं धरायुतः॥४३॥
मदनाथोऽनूपमस्तु मन्मथो मलयान्वितः। मादकोह्लादिनीयुक्तः समिच्छन्विश्वतोमुखी॥४४॥
नायको भृंगपूर्वस्तु गायको नंदिनीयुतः। गणकोऽनामया ज्ञेयः काल्या नर्तक इष्यते॥४५॥

कामदेव कल्पवृक्ष की लता से युक्त हैं और कामुक हैं तथा श्याम वर्ण वाली, पवित्र मुस्कान से युक्त विस्मृता रति से युक्त हैं। यह काम बन्धक (बाँधने वाला) है।।३५।। यह काम ही विस्मित नेत्र वाली के साथ रमण करने वाला है। यह काम लेलिहाना मुद्रा से रमणी से संयुक्त है। यह रतिनाथ होते हुए भी दिशाओं रूपी वस्त्र से ढँका हुआ रति देवी को अत्यन्त प्रिय है।।३६।। यह काम कुब्जा नामक स्त्री से संयुक्त है। रति का स्वामी है। धरा से युक्त है। ये रमाकान्त है। ये ही रमा की उपासना करने वाला अर्थात् रमा के पास रहने वाला है। रमण करने वाला और रात्रि में विचरण करने वाला है।।३७।। ये मोहिनीनाथ भगवान् कामेश्वर नन्दक से युक्त हैं। भगवान् नन्दी श्रेष्ठ देवताओं से युक्त हैं। वे सबको आनन्दित करने के कारण नन्दी कहे गये हैं।।३८।। सुन्दर लावण्य से युक्त, पाँच बाण वाले, बालनिधिपति, कलहप्रिया से युक्त तथा फिर रति के सखा हैं।।३९।। एक दृष्टि से वे पुष्परूपी धनुष को धारण करने वाले हैं, सुन्दर मुख वाले और महाधनु हैं। वे नीलवर्ण वाले जटाधारी, भ्रमण करने वाले शिवा के पति भ्रम हैं और मुग्धा शिवा द्वारा भ्रान्त हैं तथा सबको भ्रम में भी डालने वाले हैं। रमा से प्राप्त होकर वे भ्रमित हैं, इसलिए भृङ्ग कहे जाते हैं।।४१।।

पुनः लम्बी जिह्वा वाली और नेत्र वाली द्वारा भ्रान्त आचरण वाले हैं। वे मोहन करने वाले तो भ्रमावह रति प्रिया का सम्यक् अनुसरण करते हैं।।४२।। मोहक तो कमलपत्र के समान आँखों वाली गृहिणी के प्रति मोह कहा जाता है। वे विकटेश मोह को धारण करने वाले वर्धन और धरायुत हैं।।४३।। वे मदनाथ अनुपम, मन्मथ और मलय (चन्दन) से युक्त हैं। वे ही मद देने वाले और आंह्लाद करने वाली देवी से युक्त हैं तथा सब कुछ चाहते हुए चारों ओर अपनी दृष्टि रखे हुए हैं।।४४।। वे भृङ्ग पूर्व नायक हैं और गायक नन्दिनी से युक्त हैं। बिना नाम से वे गणक जाने जाने योग्य हैं तथा काली द्वारा नर्तक कहे जाते हैं।।४५।।

क्ष्वेल्लकः कालकर्ण्याढ्यः कंदर्पो मत्त इष्यते।
नर्तकः श्यामलाकांतो विलासी झषयान्वितः॥४६॥
उन्मत्तामुपसंगम्य मोदते कामवर्धनः। ध्यानपूर्वं ततः श्रीकण्ठादिविन्यासमाचरेत्॥४७॥
सिंदूरकांचनसमोभयभागमर्धनारीश्वरं गिरिसुताहरभूपचिह्नम्।
पाशद्वयाक्षवलयेष्टदहस्तमेव स्मृत्वा न्यसेल्लिपिपदेषु समीहितार्थम्॥४८॥
श्रीकंठानंतसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः। उर्वीशो भारभूतिश्चातिथीशः स्थाणुको हरः॥४९॥
चण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः। अक्रूरश्च महासेनः स्युरेते वरमूर्त्तयः॥५०॥
ततः क्रोधीशचण्डीशौ पञ्चांतकशिवोत्तमौ। तथैकरुद्रकूर्मैकनेत्राः सचतुराननाः॥५१॥
अजेशः शर्वसोमेशौ हरो लांगलिदारुकौ। अर्धनारीश्वरश्चोमाकांतश्चापाढ्यदंडिनौ॥५२॥
अत्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा। खड्गदंडद्विदंडौ च सुमहाकालव्यालिनौ॥५३॥
भुजंगेशः पिनाकी च खड्गेशश्च बकस्तथा। श्वेतो ह्यभ्रश्च लकुलीशिवः संवर्त्तकस्तथा॥५४॥

वे हँसी-मजाक करने वाले और कालकर्णी (आपत्ति मुसीबत से युक्त हैं) अर्थात् वे सबको मुसीबत में भी डाल देते हैं। वे ही कामदेव के दर्प को हरने वाले और मत्त कहे गये हैं। काली को युक्त होकर वे ही नृत्य करने वाले हैं। अर्थात् प्रलय काल में काली कें साथ वे ही नृत्य करते हैं। वे भोग-विलास (मैथुनादि) करने वाले हैं तथा मीन चित्रित ध्वजा से युक्त हैं; क्योंकि कामदेव की ध्वजा पर मछली का चिह्न है।।४६।। वे कामवर्धन उन्मत्त रति का उपसंगम करके आनन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक श्रीकण्ठ आदि का विन्यास करे।।४७।। श्रीकण्ठ, सिन्दूर और स्वर्ण के समान जिनके दो भाग हैं, जिसमें आधा भाग नारी का है और आधा पुरुष का है, जिसके कारण जो अर्धनारीश्वर कहे गये हैं। पर्वतपुत्र पार्वती के मन को हरने वाले राजचिह्न से युक्त हाथों में पाश, अक्षमाला रखने वाले भगवान् शंकर का स्मरण करके लिपि के पदों में इच्छित अर्थ के लिए भगवान् शंकर का न्यास करे।।४८।। वे शंकर श्रीकण्ठ, अनन्त और सूक्ष्म इन तीन मूर्तियों वाले अमरेश्वर हैं। वे पृथ्वी के स्वामी, भारभूति, अतिथीश (अतिथियों के स्वामी) और स्थाणुक (ठूंठ रूपी) और हर (प्राणों को अथवा दुःखों को हरने वाले दोनों हैं)।।४९।। वे चण्डीश, भौतिक तत्त्वों वाले, शीघ्र उत्पन्न होने वाले, अनुग्रहेश्वर हैं। वे सब पर अनुग्रह करने वाले हैं। अक्रूर महासेन जो भी श्रेष्ठ मूर्तियाँ हैं, वे सब भगवान् शंकर हैं।।५०।।

उसके बाद क्रोध के स्वामी अर्थात् क्रोध को पैदा करने वाले तथा सबसे बड़े क्रोधी भी वही हैं। इसलिए तो प्रलयकाल लाने वाली चण्डी के स्वामी कहे जाते हैं। वे इतने क्रोधी हैं कि क्रोध में सब कुछ नष्ट कर देते हैं। इसलिए उन्हें पञ्चान्तक उत्तम शिव भी कहा गया है, क्योंकि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश सबका अन्त करने वाले हैं तथा वे ही एक रुद्र कूर्म और एक नेत्र वाले और चार मुख वाले ब्रह्मा हैं।।५१।। वे ही अजापति (मायापति) हैं। अजेश (तथा जीवों के स्वामी) हैं। जीवों को पैदा करने वाले हैं। वे ही हर (प्राणों को हरने वाले तथा दुःखों को हरने वाले) दोनों वे ही हैं। नारियल और देवदारु वही हैं, अथवा यों कहिए कि सर्प और लकड़ी की मूर्ति वही हैं। वे अर्धनारीश्वर उमा के प्रिय, धनुष और दण्ड धारण करने वाले हैं, ऐसे उन अपार गुणों वाले भगवान् शंकर का न्यास करना है।।५२।। इसके बाद अत्रि, मीन, मेष, सर्प (लाल रंग) मोर तथा खड्ग, दण्ड, दो दण्ड, सुमहाकाल और व्यालि, भुजङ्गेश (वासुकि), पिनाकी (शिव) खड्गेश (गेंडा), बगुला, श्वेत बादल, लकुली शिव, प्रलयकालीन अग्नि

पूर्णोदरी च विरजा तृतीया शाल्मली तथा।
लोलाक्षी वर्तुलाक्षी च दीर्घघोणा तथैव च॥५५॥
सुदीर्घमुखिगो मुख्यौ नवमी दीर्घजिह्विका। कुञ्जरी चोर्ध्वकेशा च द्विमुखी विकृतानना॥५६॥
सत्यलीलाकलाविद्यामुख्याः स्युः स्वरशक्तयः।
महाकाली सरस्वतत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते॥५७॥
गौरी त्रैलोक्यविद्या च तथा मंत्रात्मशक्तिका। लंबोदरी भूतमता द्राविणी नागरी तथा॥५८॥
खेचरी मञ्जरी चैव रूपिणी वीरिणी तथा।
कोटरा पूतना भद्रा काली योगिन्य एव च॥५९॥
शंखिनीगर्जिनीकालरात्रिकूर्दिन्य एव च। कपर्दिनी तथा वज्रा जया च सुमुखेश्वरी॥६०॥
रेवती माधवी चैव वारुणी वायवी तथा। रक्षावधारिणी चान्या तथा च सहजाह्वया॥६१॥
लक्ष्मीश्च व्यापिनीमाये संख्याता वर्णशक्तयः।
द्विरुक्तबालाया वर्णैं रंगं कृत्वाथ केवलैः॥६२॥
षोढा न्यासं प्रकुर्वीत देवतात्मत्वसिद्धये। विघ्नेशादींस्तु तत्रादौ विन्यसेद्ध्यानपूर्वकम्॥६३॥

या बादल पूर्णोदरी, विरजा, तीसरी शाल्मली, लोलाक्षी (चंचल आँखों वाली देवी), वर्तुलाक्षी (टेढ़े नेत्रों वाली देवी), बड़ी नाक वाली देवियों का न्यास करे।।५३-५५।। बड़े मुख वाली देवी नवमी, लम्बी जिह्वा वाली, कुञ्जरी, ऊर्ध्वकेशा, दो मुख वाली, विकृत मुख वाली का न्यास करे।।५६।। सत्य लीला कलाविद्या आदि मुख्य-मुख्य स्वर शक्तियाँ हैं। महाकाली, महासरस्वती जो सब सिद्धियों से युक्त हैं, उनका न्यास होना चाहिए।।५७।। गौरी त्रैलोक्य विद्या तथा मन्त्रात्मशक्तिका, लम्बोदरी, भूतमता, द्राविणी तथा नागरी का न्यास करे।।५८।। खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी और वीरिणी, कोटरा, पूतना, भद्रा, काली और योगिनी इन देवियों का न्यास करे।।५९।। शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कूर्दिनी, कपर्दिनी, वज्रा, जया, सुमुखेश्वरी का न्यास करे।।६०।। रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षावधारिणी तथा सहजाह्वया देवियों को न्यस्त करे।।६१।। लक्ष्मी, व्यापिनी माया, ये सब वर्णशक्तियाँ हैं, जो महाकाली से लेकर व्यापिनी माया तक हैं, इन सबका भी न्यास करे। द्विरुक्तबाला के केवल वर्णों से ही इनका रंग करके न्यास करे।।६२।।

देवी की आत्मा की सिद्धि के लिए सोलह मात्राओं का न्यास करे। ५१ वर्ण तन्त्र में बताये गये हैं—ऊप वाले क्रम से ही ५१ होते हैं; परन्तु वह क्रम भी प्रमाणिक नहीं हो सकता; परन्तु अ$_{३}$ इ$_{३}$ उ$_{३}$ ऋ$_{३}$ प्रायः ५० वर्ण ही तन्त्रसार के अनुसार ग्रहण होते हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, ये ५० वर्ण गोस्वमी प्रह्लाद गिरि ने अपने श्रीचक्रनिरूपण में स्वीकार किये हैं। यदि इनमें त्र अथवा ज्ञ को मिलाया जोय तो ५१ वर्ण हो सकते हैं। वैसे कुल ५२ वर्ण होते हैं। पाणिनिव्याकरण के अनुसार मूल वर्ण अ, इ, उ, ऋ, ऌ ये पाँच स्वर और क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म। ये पच्चीस व्यञ्जन श, ष, स, ह कुल मिलाकर ३३ वर्ण ही है;परन्तु संयुक्त स्वरों ए ऐ ओ और अनुस्वार अं और विसर्ग अः तथा य, व, र, ल को मिलाकर १० संयुक्त स्वर तथा क्ष, त्र, ज्ञ को

तरुणाऽरुणसंकाशान्गजवक्त्रांस्त्रिलोचनान्।
पाशांकुशवराभीतिहस्ताञ्छक्तिसमन्वितान्।।६४।।
विघ्नेशो विघ्नराजश्च विनायकशिवोत्तमौ। विघ्नकृद्विघ्नहन्ता च विघ्नराड्गणनायकः।।६५।।
एकदन्तो द्विदन्तश्च गजवक्त्रो निरञ्जनः कपर्दवान्दीर्घमुखः शंकुकर्णो वृषध्वजः।।६६।।
गणनाथोगजेन्द्रास्यः शूर्पकर्णस्त्रिलोचनः। लम्बोदरो महानादश्चतुर्मूर्तिः सदाशिवः।।६७।।
आमोदो दुर्मदश्चैव सुमुखश्च प्रमोदकः। एकपादो द्विपादश्च शूरो वीरश्च षण्मुखः।।६८।।
वरदो नाम देवश्च वक्रतुण्डो द्विदन्तकः। सेनानीर्ग्रामणीर्मत्तो मत्तमूषकवाहनः।।६९।।
जटी मुण्डी तथा खड्गी वरेण्यो वृषकेतनः। भक्ष्यप्रियो गणेशश्च मेघनादो गणेश्वरः।।७०।।
एते गणेशा वर्णानामेकपञ्चाशतःक्रमात्। श्रीश्च ह्रीश्चैव पुष्टिश्च शांतिस्तुष्टिः सरस्वती।।७१।।
रतिर्मेधा तथा कांतिः कामिनी मोहिनी तथा।
तीव्रा च ज्वालिनी नंदा सुयशाः कामरूपिणी।।७२।।
उग्रा तेजोवती सत्या विघ्नेशानी स्वरूपिणी।
कामार्त्ता मदजिह्वा च विकटा घूर्णितानना।।७३।।

मिलाकर संयुक्त व्यञ्जन तब ४६ वर्ण हो जाते हैं। वैसे मूल वर्णों की ३३ संख्या ही समीचीन है। जैसे ३३ देवता माने जाते हैं, वैसे ३३ वर्ण हैं।।६३।। वहाँ पहले ध्यानपूर्वक तरुण सूर्य के प्रकाश के समान (दोपहर के सूर्य के प्रकाश के समान) विघ्नेश आदि का विन्यास करे। हाथी के मुख वाले, तीन आँखों वाले, हाथों में पाश, अंकुश रखने वाले, शक्ति समन्वित।।६३-६४।। वे सब विघ्नेश आदि इक्वान हैं, जिनके नाम हैं—१. विघ्नेश, २. विघ्नराज, ३. विनायक, ४. शिव, ५. उत्तम, ६. विघ्नकृत्, ७. विघ्नहन्ता, ८. विघ्नराम्, ९. गणनायक, १०. एकदन्त, ११. द्विदन्त, १२. गजवक्त्र, १३. निरञ्जन, १४. कपर्दवान्, १५. दीर्घमुख, १६. शंकुकर्ण, १७. वृषध्ववज, १८. गणनाथ, १९. गजेन्द्रास्य, २०. शूर्पकर्ण, २१. त्रिलोचन, २२. लम्बोदर, २३. महानाद, २४. चतुर्मूर्ति, २५. सदाशिव, २६. आमोद, २७. दुर्मद, २८. सुमुख, २९. प्रमोदक, ३०. एकपाद, ३१. द्विपाद, ३२. शूर, ३३. वीर, ३४. षण्मुख, ३५. वरद, ३६. नामदेव, ३७. वक्रतुण्ड, ३८. द्विदन्तक, ३९. सेनानी, ४०. ग्रामणी, ४१. मत्त, ४२. मत्तमूषकवाहन, ४३. जटी, ४४. मुण्डी, ४५. खड्गी, ४६. वरेण्य, ४७. वृषकेतन, ४८. भक्ष्यप्रिय, ४९. गणेश, ५०. मेघनाद, ५१. गणेश्वर। ये गणेश—क्रमशः ५१ वर्णों के ५१ देवता हैं। वे वर्ण हैं— क्रमशः अ, आ, अ३, इ, ई, इ३, उ, ऊ, उ३, ऋ, ॠ, ॠ३, ऌ ऌ३, ए, ऐ, ओ, औ, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह के रूप इन वर्णों के रूप में ५१ विघ्नेशों का न्यास करे। यह वर्णानुक्रम व्याकरण के अनुसारहै तथा शास्त्रसंगत है। वैसे पीछे भी ५१ वर्णों को गिनाया गया है, जिनमें १६ स्वर हैं। २५ व्यंजन हैं, चार यादि, चार हादि हैं और कुल ४९ हुए, फिर उन तीन संयुक्त वर्णमिलाकर ५२ होते हैं। अतः उनमें तो एक को छोड़ना ही पड़ेगा, तभी ५१ होंगे। मेरी दृष्टि में व्याकरण सम्मत संख्या ही उचित है।।६२½-७०½।। इसके बाद १. श्री, २. ह्री, ३. पुष्टि, ४. शान्ति, ५. तुष्टि, ६. सरस्वती, ७. रति, ८. मेधा, ९. कान्ति, १०. कामिनी, ११. मोहिनी, १२. तीव्रा, १३. ज्वालिनी, १४. नन्दा, १५. सुयशा, १६. कामरूपिणी, १७. उग्रा, १८. तेजोवती, १९. सत्या, २०.

भूतिर्भूमिर्द्विरम्या चामारूपा मकरध्वजा। विकर्णभ्रुकुटी लज्जा दीर्घघोणा धनुर्धरी॥७४॥

तथैव यामिनी रात्रिश्चंद्रकांता शशिप्रभा।
लोलाक्षी चपला ऋज्वी दुर्भगा सुभगा शिवा॥७५॥
दुर्गा गुहप्रिया काली कालजिह्वा च शक्तयः।
ग्रहन्यासं ततः कुर्याद्ध्यानपूर्वं समाहितः॥७६॥

वरदाभयहस्ताढ्याञ्छक्त्यलिंगितविग्रहवान्। कुंकुमक्षीररुधिरकुंदकांचनकंबुभिः॥७७॥

अम्भोदधूमतिमिरैः सूर्यादीन्सदृशान्स्मरेत्।
हृदयाधो रविं न्यस्य शीर्ष्णि सोमं दृशोः कुजम्॥७८॥

हृदि शुक्रं च हृन्मध्ये बुधं कण्ठे बृहस्पतिम्। नाभौ शनैश्चरं वक्रे राहुं केतुं पदद्वये॥७९॥

ज्वलत्कालानलप्रख्या वरदाभयपाणयः। तारा न्यसेत्ततो ध्यायन्सर्वाभरणभूषिताः॥८०॥

भाले नयलनयोः कर्णद्वये नासापुटद्वये। कण्ठे स्कन्धद्वये पश्चात्कूर्पयोर्मणिबन्धयोः॥८१॥

स्तनयोर्नाभिकट्यूरुजानुजङ्घापदद्वये। योगिनीन्यासमादध्याद्विशुद्धो हृदये तथा॥८२॥

नाभौ स्वाधिनिष्ठिते मूले भ्रूमध्ये मूर्धनि क्रमात्।
पद्मेंदुकर्णिकामध्ये वर्णशक्तीर्दलेष्वथ॥८३॥

विघ्नेशानी, २१. स्वरूपिणी, २२. कामार्त्ता, २३. मदजिह्वा, २४. विकटा, २५. घूर्णितानना, २६. भूति, २७. भूमि, २८. द्विरम्या, २९. चामा, ३०. रूपा, ३१. मकरध्वजा, ३२. विकर्ण, ३३. भृकुटी, ३४. लज्जा, ३५. दीर्घघोणा, ३६. धनुर्धरी, ३७. यामिनी, ३८. रात्रि, ३९. चन्द्रकान्ता, ४०. शशिप्रभा, ४१. लोलाक्षी, ४२. चपला, ४३. ऋज्वी, ४४. दुर्भगा, ४५. सुभगा, ४६. शिवा, ४७. दुर्गा, ४८. गुहप्रिया, ४९. काली, ५०कालजिह्वा ये सब शक्तियाँ हैं (जो पचास हुईं, ५२वीं सरस्वती हो सकती हैं। इस प्रकार जितने वर्ण हैं, उतनी ही उनकी शक्तियाँ हुईं)। अतः कुंकुम, दूध, रुधिर, चमेली, स्वर्ण और शंखों से युक्त वर देने वाले एवं अभय प्रदान करने वाले हाथों से युक्त शक्ति से आलिंगित शरीरों का समाहित चित्त से ध्यानपूर्वक गृहन्यास करना चाहिए।।७०½-७७।। और बादल के धुएँ के अन्धकारों द्वारा घिरे हुए सूर्य आदि के समान स्मरण करना चाहिए। हृदय के नीचे सूर्य को न्यस्त करके, शिर पर सोम (चन्द्रमा) आँखों में मंगल, हृदय पर शुक्र, हृदय के मध्य में बुध, कण्ठ में बृहस्पति, नाभि में शनैश्चर, मुख में राहु और दोनों पैरों में केतु को न्यस्त करना चाहिए।।७८-७९।। उसके बाद जलती हुई कालाग्नि के समान वर देने वाले और अभय देने वाले हाथों वाली सब आभूषणों से भूषित, तारा देवी का ध्यान करते हुए न्यास करना चाहिए।।८०।।

मस्तक पर, दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दो नासिका पुटों, कण्ठ, दोनों कन्धों, पीछे के दो कूबड़ों, दोनों मणिबन्धों (हाथों) दोनों स्तनों, नाभि, कमर, दोनों ऊरू (कूल्हे, कमर के नीचे का भाग), दोनों जानु (घुटने) और दोनों जंघाओं (घुटनों से नीचे पिण्डलियों) तथा दोनों पैरों में विशुद्ध हृदय से योगिनी का न्यास करे तथा हृदय नाभि स्वाधिष्ठान मूल, भ्रूमध्य, सिर पर क्रम से कमलचन्द्रकर्णिका के मध्य में वर्णशक्तियों के दलों में, दलों के आगे में पद्म के ऊपर सिर पर सब वर्णशक्तियों का न्यास करे। अर्थात् जो कमल है, उनमें वर्णों की शक्तियों का न्यास करे

दलाग्रेषु तु पद्मस्य मूर्ध्नि सर्वांश्च विन्यसेत्।
अमृता नंदिनीन्द्राणी त्वीशानी चात्युमा तथा॥८४॥

ऊर्ध्वकेशी ऋद्धिदुषी ऌकारिका तथैव च। एकपादात्मिकैश्वर्यकारिणी चौषधात्मिका॥८५॥
ततोंबिकाथो रक्षात्मिकेति षोडश शक्तयः। कालिका खेचरी गायत्री घण्टाधारिणी तथा॥८६॥
नादात्मिका च चामुण्डा छत्रिका च जया तथा। झङ्कारिणी च संज्ञा च टंकहस्ता ततः परम्॥८७॥
ठंकारिणी च विज्ञेयाः शक्तयो द्वादश क्रमात्। डंकारी ढंकारिणी च णामिनी तामसी तथा॥८८॥
थंकारिणी दया धात्री नादिनी पार्वती तथा। फट्कारिणी च विज्ञेयाः शक्तयो द्वयपन्नगाः॥८९॥

बर्धिनी च तथा भद्रा मज्जा चैव यशस्विनी। रमा च
लामिनी चेति षडेताः शक्तयः क्रमात्॥९०॥
नारदा श्रीस्तथा षंढा सरस्वत्यपि च शक्तयः।
चतस्रोऽपि तथैव द्वे हाकिनी च क्षमा तथा॥९१॥

ततः पादे च लिंगे च कुक्षौ हृद्दोःशिरस्सु च। दक्षा दिवामपादान्तं राशीन्मेषादिकान्न्यसेत्॥९२॥
ततः पीठानि पञ्चाशदेकं चक्रं मनो न्यसेत्। वाराणसी कामरूपं नेपालं पौण्ड्रवर्धनम्॥९३॥

तथा उन सबको कमल के ऊर्ध्व भाग में न्यस्त करना चाहिए। वे वर्ग शक्तियाँ हैं। अ से अमृता, आ से नन्दिनी, इ से इन्द्राणी, ई से ईशानी, उ से उमा, ऊ से ऊर्ध्वकेशी, ऋ से ऋद्धिदुषी, ॠ से ॠद्धीश्वरी, ऌ से ऌता, ॡ से ऌकारिका, ए से एकपादात्मिका, ऐ से ऐश्वर्यकारिणी, ओ से ओंकारात्मिका, औ से औषधात्मिका उसके बाद अं से अम्बिका अः से रक्षात्मिका, इस प्रकार से सोलह मात्रिकाशक्तियाँ रक्षा करने वाली हैं[1]।।८१-८५½।।

आगे क से कालिका, ख से खेचरी, ग से गायत्री, घ से घण्टाधारिणी, ङ से नादात्मिका, च से चामुण्डा,

छ से छत्रिका, ज से जया, झ से झङ्कारिणी, ञ से संज्ञा, ट से टङ्कहस्ता, ठ से ठंकारिणी, ये क्रम से बारह शक्तियाँ जाननी चाहिएँ। उसके बाद ड से डंकारी, ढ से ढंकारिणी, ण से णामिनी, त से तामसी, थ से थंकारिणी, द से दया ध से धात्री, न से नादिनी, प से पार्वती, फ से फट्कारिणी, ये दो शक्तियाँ पन्नग हैं। ब से बर्धिनी, भ से भद्रा, म से मज्जा, य से यशस्विनी, र से रमा, ल से लामिनी, व से नारदा, श से श्री तथा ष से षंढा, स से सरस्वती, ह से हाकिनी। इस प्रकार ये श ष स चार शक्तियाँ हुईं और एक संयुक्त वर्ण क्ष से क्षमा। इन समस्त वर्णों को कमलकर्णिकाओं में न्यस्त करना है।।८५½-९१।। उसके बाद पैर, लिङ्ग, कुक्षि, हृदय, भुजाओं और शिर पर दक्ष आदि वाम पैर के अन्त तक मेष आदिक राशियों को विन्यस्त करे। मेषादि राशियाँ बारह हैं, १. दायें पैर में मेष, २. बायें में वृष, ३. लिङ्ग में मिथुन, ४. कुक्षि में कर्क, ५. हृदय पर सिंह, ६. दायीं भुजा पर कन्या, ७. बायीं भुजा में तुला, ८. दायें नेत्र में वृश्चिक, ९. बायें नेत्र में धनु, १० दायीं नासिका में मकर, ११. बायीं नासिका में कुम्भ, १२. सिर पर मीन इस प्रकार बारह राशियाँ बारह स्थानों पर न्यस्त करनी चाहिएँ।।९२।। उसके बाद पचास पीठ और एक चक्र मन का न्यास करे। १. वाराणसी, २. कामरूप, ३. नेपाल, ४. पौण्डवर्धन, ५. वरस्थिर,

---

१. यहाँ पर पुराण लेखक ने १६ शक्तियों का वर्णन किया है; परन्तु गिनने पर बारह ही होती हैं; परन्तु यहाँ ॠ से ॠद्धीश्वरी ओ से ओंकारात्मिका, ऌ से ऌता और ऊः से अक्षरात्मिका को छोड़ दिया गया है।

वरस्थिरं कान्यकुब्जं पूर्णशैलं तथार्बुदम्। आम्रतकेश्वरैकाम्रं त्रिस्त्रोतः कामकोष्ठकम्॥९४॥
कैलासं भृगुनगरं केदारं चन्द्रपुष्करम्। श्रीपीठं चैकवीरां च जालन्ध्रं मालवं तथा॥९५॥
कुलान्त्रं देविकोटं च गोकर्णं मारुतेश्वरम्। अट्टहासं च विरजं राजवेश्म महापथम्॥९६॥
कोलापुरकैलापुरकालेश्वरजयन्तिकाः। उज्जयिन्यपि चित्रा च क्षीरकं हस्तिनापुरम्॥९७॥
उडीरां च प्रयागं च षष्टिमायापुरं तथा। गौरीशं सलयं चैव श्रीशैलं मरुमेव च॥९८॥
पुनर्गिरिवरं पश्चान्महेन्द्रं वामनं गिरिम्। स्याद्धिरण्यपुरं पश्चान्महालक्ष्मीपुरं तथा॥९९॥
पुरोद्यानं तथा छायाक्षेत्रमाहुर्मनीषिणः। लिपिक्रमसमायुक्ताँल्लिपिस्थानेषु विन्यसेत्॥१००॥

अन्यान्यथोक्तस्थानेषु संयुक्ताँल्लिपिसङ्क्रमात्।
षोढा न्यासो मयाख्यातः साक्षादीश्वरभाषितः॥१॥

एवं विन्यस्तदेहस्तु देवताविग्रहो भवेत्। ततः षोढा पुरः कृत्वा श्रीचक्रन्यासमाचरेत्॥२॥
अंशाद्यानन्द्यमूर्त्यन्तं मन्त्रैस्तु व्यापकं चरेत्। चक्रेश्वरीं चक्रसमर्पणमन्त्रान्हृदि न्यसेत्॥३॥
अन्यान्यथोक्तस्थानेषु गणपत्यादिकान्न्यसेत्। दक्षिणोरुसमं वामं सर्वांश्च क्रमशो न्यसेत्॥४॥
गणेशं क्षेत्रपालं च योगिनीं बटुकं तथा। आदाविन्द्रादयो न्यस्याः पदाङ्गुष्ठद्वयाग्रके॥५॥
जानुपार्श्वांसमूर्धास्यपाश्वजानुषु मूर्धनि। मूलाधारेऽणिमादीनां सिद्धीनां दशकं ततः॥६॥
न्यस्तव्यमंसदोः पृष्ठवक्षस्सु प्रपदोः स्फिजि। दोर्देशपृष्ठयोर्मूर्धपादद्वितययोः क्रमात्॥७॥

६. कान्यकुब्ज, ७. पूर्णशैल (पूर्णागिरि), ८. अर्बुद, ९. आम्रातकेश्वर, १०. एकाम्रक्षेत्र, ११. त्रिस्रोत, १२. कामकोष्ठ, १३. कैलास, १४. भृगुनगर, १५. केदार, १६. चन्द्रपुष्पक, १७. श्रीपीठ, १८. एकवीर, १९. जालन्धर, २०. मालव, २१. कुलान्त्र, २२. देवकोटि, २३. गोकर्ण, २४. मारुतेश्वर, २५. अट्टहास, २६. विरज, २७. राजवेश्म, २८. महापथ, २९. कोलापुर, ३०. कैलापुर, ३१. कालेश्वर, ३२. जयन्तिका, ३३. उज्जयिनी, ३४. चित्रा, ३५. क्षीरक, ३६. हस्तिनापुर, ३७. उडीश, ३८. प्रयाग, ३९. षष्टिमायापुर, ४०. गौरीश, ४१. सलय, ४२. श्रीशैल, ४३. मरु, ४४. पुनर्गिरिवर, ४५. पश्चान्महेन्द्र, ४६. वामनगिरि, ४७. हिरण्यपुर, ४८. महालक्ष्मीपुर, ४९. पुरोधान, ५०. छायाक्षेत्र, इन सब पचास स्थानों को मनीषी लोग पीठ कहते हैं। इन सबको लिपि क्रम से समायुक्त कर लिपि के स्थानों में विशेष रूप से न्यस्त करे।।९३-१००।। अर्थात् अ, इ, उ, ऋ आदि लिपियों का जो न्यास किया है, उन्हीं में जिस अक्षर से उनका नाम है, उसके अनुसार ही न्यस्त करे, जैसे अ के स्थान पर अट्टहास, क में कामकोष्ठ कैलास। अन्य अन्य यथोक्त स्थानों में संयुक्त लिपि के सम्यक् क्रम से विन्यस्त करे। हयग्रीव कहते हैं कि ये सोलह न्यास मैंने बताये हैं, जो साक्षात् ईश्वर द्वारा कहे गये हैं।।१।। इस प्रकार विन्यस्त देह तो ललिता देवी का शरीर हो जायेगा। उसके सोलह पुर बनाकर श्रीचक्र का न्यास करे।।२।। अंश आदि अमूर्ति के अन्त तक मन्त्रों द्वारा व्यापक करे। चक्रेश्वरी को चक्रसमर्पण कर मन्त्रों को हृदय में धारण करे।।३।।

अन्य अन्य यथोक्त स्थानों में गणपति आदि का न्यास करना चाहिए। दक्षिण ऊरु के समान वाम ऊरु में सब देवताओं का क्रमशः न्यास करे।।४।। गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी तथा बटुक को न्यस्त करे। आदि में इन्द्र आदि को पैर के दोनों अंगूठों में न्यस्त करना चाहिए।।५।। घुटनों के पास कन्धे, मूर्धा, मुख, कांख, घुटनों और सिर पर तथा मूलाधार में अणिमा आदि दश सिद्धियों का न्यास करे।।६।। फिर कंधे, भुजाएँ, पीठ, वक्षस्थल, पैरों के

अणिमा चैव लघिमा तृतीया महिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं प्राप्तिरेव च।
इच्छासिद्धी रससिद्धिर्मोक्षसिद्धिरिति स्मृताः॥८॥
ततो विप्र न्यसेद्धीमान्मातृणामष्टकं क्रमात्। पादाङ्गुष्ठयुगे दक्षपार्श्वे मूर्द्धनि वामतः॥९॥
वामजनौ दक्षजानौ दक्षवामांसयोस्तथा॥१०॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा चैव सप्तमी॥११॥
महालक्ष्मीश्च विज्ञेया मातरो वै क्रमाद् बुधैः। मुद्रादेवीर्न्यसेदष्टावेष्वेव द्वे च ते पुनः॥१२॥
मूर्द्धाघ्र्योरपि मुद्रास्तु सर्वसंक्षोभिणी तथा। सर्वविद्राविणी पश्चात्सर्वार्थाकर्षणी तथा॥१३॥
सर्वाद्या वशकारिणी सर्वाद्या प्रियकारिणी। महाङ्कुशी च सर्वाद्या सर्वाद्या खेचरी तथा॥१४॥
त्रिखण्डा सर्वबीजा च मुद्रा सर्वप्रपूरिका। योनिमुद्रेति विज्ञेयास्तत्र चक्रेश्वरीं न्यसेत्॥१५॥
त्रैलोक्यमोहनं चक्रं समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि। ततः कलानां नित्यानां क्रमात्षोडशकं न्यसेत्॥१६॥
कामाकर्षणरूपा च शब्दाकर्षणरूपिणी। अहंकाराकर्षिणी च शब्दाकर्षणरूपिणी॥१७॥
स्पर्शाकर्षणरूपा च रूपाकर्षणरूपिणी। रसाकर्षणरूपा च गन्धाकर्षणरूपिणी॥१८॥
चित्ताकर्षणरूपा च धैर्याकर्षणरूपिणी। स्मृत्याकर्षणरूपा च हृदाकर्षणरूपिणी॥१९॥
श्रद्धाकर्षणरूपा च ह्यात्माकर्षणरूपिणी।
अमृताकर्षिणी प्रोक्ता शरीराकर्षिणी तथा॥२०॥

अग्र भाग, चूतड़, भुजाओं के स्थान के पीछे, मूर्धा और दोनों पैरों में क्रम से १. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा, ४. ईशित्व, ५. वशित्व, ६. प्राकाम्य, ७. प्राप्ति, ८. इच्छासिद्धि, ९. रससिद्धि और १० मोक्षसिद्धि ये दश सिद्धियाँ स्मरण की गयी हैं।।७-८।। उसके बाद बुद्धिमान् पुरुष को आठ मातृकाओं का न्यास करना चाहिए। पैर के दोनों अंगूठों में, दायीं कांख में, सिर पर, बायें घुटने पर, फिर दायें घुटने पर, दायें बायें कन्धों पर आठ मातृकाओं का न्यास करना चाहिए। ये प्रायः आठ स्थान होते हैं—१. पैर का बायाँ अंगूठा, २. दायाँ अंगूठा, ३. दांयी कोख, ४. सिर, ५. बायाँ घुटना, ६. दायाँ घुटना, ७. दायाँ कन्धा, ८. बायाँ कन्धा। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और महालक्ष्मी, ये आठ मातृदेवियाँ क्रमशः विद्वानों द्वारा जानी गयी हैं।।९-११½।। फिर उसके बाद इन्हीं स्थानों में मुद्रा देवियों का न्यास करना चाहिए, उनका न्यास सिर से पैरों तक करना है। आठ मुद्राएँ हैं—१. सर्व संक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वार्थाकर्षिणी, ४. सर्वाद्यावशकरिणी, सर्वाद्याप्रियकरिणी, ५. सर्वाद्यामहांकुशी, ६. सर्वाद्या खेचरी, ७. सर्वबीजा त्रिखण्डा, ८. सर्व प्रपूरिका योनिमुद्रा ये सब आठ मुद्राएँ हैं। इन्हें चक्रेश्वरी के आठ स्थानों में स्थापित करें।।११½-१५।।

त्रैलोक्यमोहन चक्र को शरीर पर व्याप्त करके, समर्पित करके उसके बाद सोलह कलाओं का क्रमशः न्यास करना चाहिए, वे कलाएँ हैं—१. कामाकर्षणरूपिणी कला, २. बुद्ध्याकर्षणरूपिणी, ३. अहंकारकर्षिणी, ४. शब्दाकर्षणरूपिणी, ५. स्पर्शाकर्षणरूपिणी, ६. रूपाकर्षणरूपिणी, ७. रसाकर्षणरूपा, ८. गंधाकर्षणरूपिणी, ९. चित्ताकर्षणरूपा, १०. धैर्याकर्षणरूपिणी, ११. स्मृत्याकर्षणरूपा, १२. हृदाकर्षणरूपिणी, १३. श्रद्धाकर्षणरूपा, १४. आत्माकर्षणरूपिणी, १५. अमृताकर्षिणी, १६. शरीराकर्षिणी। इस प्रकार ये सोलह देवियाँ त्रैलोक्यमोहन चक्र

स्थानानि दक्षिणं श्रोत्रं पृष्ठमंसश्च कूर्परः। दक्षहस्ततलस्याथ पृष्ठं तत्स्फिक्च जानुनी॥२१॥
तज्जंघाप्रपदे वामप्रपदादिविलोमतः। चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्च्य व्याप्य वर्ष्मणि॥२२॥
न्यसेदनंगकुसुमदेव्यादीनामथाष्टकम्। शंखजत्रूरुजङ्घासु वामे तु प्रतिलोमतः॥२३॥
अनङ्गकुसुमा पश्चाद्द्वितीयानंगमेखला। अनंगमदना पश्चादनंगमदनातुरा॥२४॥
अनंगरेखा तत्पश्चाद्वेगाख्यानंगपूर्विका। ततोऽनंगांकुशा पश्चादनंगाधारमालिनी॥२५॥
चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि। शक्तिदेवीर्न्यसेत्सर्वसंक्षोभिण्यादिका अथ॥२६॥
ललाटगण्डयोरंसे पादमूले च जानुनी। उपर्यधश्च जंघायां तथा वामे विलोमतः॥२७॥
सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा। सर्वाद्याकर्षणी शक्तिः सर्वप्रह्लादिनी तथा॥२८॥
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वाद्या स्तंभिनी तथा। सर्वाद्या जृंभिणी शक्तिः सर्वाद्या वशकारिणी॥२९॥
सर्वाद्या रञ्जिनी शक्तिः सर्वाद्योन्मादिनी तथा। सर्वार्थसाधिनी शक्तिस्सर्वाशापूरिणी तथा॥१३०॥
सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करा। चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि॥३१॥
सर्वसिद्धिप्रदादीनां दशकं चाथ विन्यसेत्। दक्षनासापुटे दंतमूले दक्षस्तने तथा॥३२॥
कूर्परे मणिबन्धे च न्यस्येद्वामे विलोमतः। सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं सर्वसंपत्प्रदा तथा॥३३॥
सर्वप्रियंकरा देवी सर्वमङ्गलकारिणी। सर्वाघमोचिनी शक्तिः सर्वदुःखविमोचिनी॥३४॥

में न्यस्त करनी चाहिएँ।।२०।। स्थान हैं— दक्षिण श्रोत्र, पीठ, कन्धा, कुहनी, दायीं हथेली के पीछे, चूतड़, दोनों घुटने, जंघा, पैरों के अग्रभाग में, वाम पैर के अग्रभाग से उल्टे क्रम से चक्रेशी और चक्र को शरीर पर न्यस्त कर उसकी पूजा करके व्याप्त करके अनङ्गकुसुमा आदि आठ देवियों का कनपटी (कान के पीछे की हड्डी), जत्रु (गरदन की हड्डी), ऊरु (कान के नीचे का भाग), जंघाओं पर बायें भाग पर उल्टे क्रम से न्यास करना चाहिए। वे हैं— अनंगकुसुमा (कनपटी पर बायें) द्वितीया अनंकमेखला (कनपटी पर दायें) अनंग मदना (गरदन की हड्डी पर बायें), अनंगमदनातुरा (गरदन की हड्डी पर दायें) अनंगरेखा (ऊरू पर बायें), उसके बाद वेग नाम की अनंगपूर्विका (ऊरु के दायें) अनंगांकुशा (जंघा के बायीं ओर) और अनंगाधर मालिनी को (दायीं जंघा पर) स्थापित करना चाहिए।।२३-२५।। फिर इस प्रकार चक्रेशी को न्यस्त चक्र की पूजा करके शरीर पर व्याप्त करके सर्व संक्षोभिणी आदि शक्तियों का न्यास करना चाहिए। उनको ललाट पर, गण्डस्थल पर, कन्धे पर, पादमूल पर, घुटनों पर, ऊपर और नीचे जंघा पर बायीं ओर से उल्टे क्रम से न्यस्त करना चाहिए। वे शक्तियाँ हैं—१. सर्वसंक्षोभिणी शक्ति (ललाट पर) बायें, २. सर्वविद्राविणी शक्ति (ललाट पर, दायीं ओर), ३. सर्वाद्याकर्षिणी शक्ति (बायें गण्डस्थल पर), ४. सर्वप्रह्लादिनी शक्ति (दायें गण्डस्थल पर), ५. सर्वसम्मोहिनी शक्ति (बायें कन्धे पर), ६. सर्वाद्यास्तम्भिनी शक्ति (दायें कन्धे पर), ७. सर्वाद्याजृम्भिणी शक्ति (बायें पैर पर), ८. सर्वाद्यावशकारिणी शक्ति (दायें पैर पर), ९. सर्वाद्यारञ्जिनी शक्ति (घुटने पर), सर्वाद्योन्मादिनी शक्ति (घुटने पर), ११. सवार्थसाधिनी शक्ति (बायीं जंघा पर), १२. सर्वाशापूरिणी शक्ति (दायीं जंघा पर), १३. सर्वमन्त्रमयी शक्ति १४. सर्वद्वन्द्वक्षयंकरा शक्ति।।१३०½।। चक्रेशी और चक्र बनाकर उसकी पूजा करके शरीर पर व्याप्त करके सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली दश देवियों का विन्यास करे। वे स्थान हैं— १. दक्षनासापुर, २. दन्तमूल और ३. दक्ष स्तन, ४. कूर्पर (कुहनी) मणिबन्ध वाम पर विलोम क्रम से न्यास करे। वे हैं—. सब सिद्धिप्रदा, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरा, ४. सर्वमंगलकारिणी, ५. सर्वाघमोचिनी शक्ति, ६.

सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्नविनाशिनी। सर्वांगसुन्दरी चैव सर्वसौभाग्यदायिनी॥३५॥
चक्रेशी न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि। सर्वज्ञाद्यान्न्यसेद्वक्षस्यपि दन्तस्थलेष्वथ॥३६॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वज्ञानप्रदा तथा। सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी॥३७॥
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा। सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी।
विज्ञेया दशमी चैव सर्वेप्सितफलप्रदा॥३८॥
चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।
प्राग्वामाद्याश्च विन्यस्य पक्षिण्याद्यास्ततः सुधीः॥३९॥
दक्षे तु चिबुके कण्ठे स्तने नाभौ च पार्श्वयोः।
वामा विनोदिनी विद्या वशिता कामिनीमता॥१४०॥
कामेश्वरी परा ज्ञेया मोहिनी विमला तथा। अरुणा जयिनी पश्चात्तथा सर्वेश्वरी मता।
कौलिनीति समुक्तानि तासां नामानि सूरिभिः॥४१॥
चक्रेश्वरीं न्यसेच्चक्रं समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।
हृदि त्रिकोणं संभाव्य दिक्षु प्रागादितःक्रमात्॥४२॥
तद्बहिर्विन्न्यसेद्धीमानायुधानां चतुष्टयम्। न्यसेदग्न्यादिकोणेषु मध्ये पीठचतुष्टयम्॥४३॥

सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्नप्रनाशनी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी।।१३०½-१३५।। चक्रेशी का न्यास कर और चक्र का न्यास कर उसकी सम्यक् प्रकार से पूजा करके शरीर पर व्याप्त करके सर्वज्ञा आदि देवियों को वक्षःस्थल पर और दन्ततलों पर न्यस्त करें। वे हैं—१. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वज्ञानप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी देवी, ५. सर्वव्याधिविनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरा, ८. सर्वानन्दमयी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी तथा दशमी १०. सर्वेप्सित फलप्रदा जाननी चाहिएँ।।३८।।

चक्रेशी और चक्र को न्यस्त कर उसकी अर्चना करके फिर उसके शरीर पर व्याप्त करके बुद्धिमान् पुरुष यक्षिणी आदि का बायें पहले न्यास करे। दक्ष, चिबुक, (ठोढ़ी), कण्ठ में, स्तन में, नाभि में, पीठ में, न्यास करे। १. वामा विनोदिनी विद्या हैं, २. वशिता, ३. कामिनी मानी गयी हैं। ४. कामेश्वरी परा ज्ञेय हैं। ५. मोहिनी, ६. विमला, ७. अरुणा, ८. जयिनी, उसके बाद ९. सर्वेश्वरी मानी गयी हैं। १०. कौलिनी, इस प्रकार विद्वानों द्वारा इन देवियों के नाम कहे गये हैं। अर्थात् १. विनोदिनी विद्या, २. वशिता, ३. कामिनी, ४. कामेश्वरी, ५. मोहिनी, ६. विमला, ७. अरुणा, ८. जयिनी, ९. सर्वेश्वरी, १०. कौलिनी, इस प्रकार ये भी दश देवियाँ जो चक्र में स्थित हैं। उन सबको ठोढ़ी, कण्ठ, दोनों स्तन, नाभि और पार्श्व में न्यस्त करें। ये सब एक स्थान दो के क्रम से न्यस्त करें।।३९-४०।।

इसके बाद चक्रेश्वरी और चक्र को समर्पित कर शरीर पर व्याप्त कर इन्हें हृदय पर त्रिकोण की कल्पना कर दिशाओं में पूर्व की ओर से क्रम से न्यस्त करें।।४२।। उस त्रिकोण के बाहर बुद्धिमान् पुरुष को चार आयुधों को स्थापित करना चाहिए। अग्नि आदि कोणों में मध्य में चार पीठ का न्यास करे।।४३।।

मध्य में वृत्त का न्यास करके नित्या आदि सोलह शक्तियों को स्थापित करे। वे सोलह नित्याएँ हैं—१. कामेश्वरी

मध्यवृत्तं न्यसित्वा च नित्याषोडशकं न्यसेत्। कामेश्वरी तथा नित्या नित्या च भगमालिनी॥४४॥
नित्यक्लिन्ना तथा नित्या नित्या भेरुण्डिनी मता। वह्निवासिनिका नित्या महावज्रेश्वरी तथा॥४५॥
नित्या च दूती नित्या च त्वरिता तु ततः परम्। कुलसुन्दरिका नित्या कुल्या नित्या ततः परम्॥४६॥
नित्या नीलपताका च नित्या तु विजया परा। ततस्तु मङ्गला चैव नित्यपूर्वा प्रचक्ष्यते॥४७॥
प्रभामालिनिका नित्या चित्रा नित्या तथैव च। एतास्त्रिकोणान्तरेण पादतो हृदि विन्यसेत्॥४८॥
नित्या प्रमोदिनी चैव नित्या त्रिपुरसुन्दरी। तन्मध्ये विन्यसेद्देवीमखण्डजगदात्मिकाम्॥४९॥
चक्रेश्वरीं हृदि न्यस्य कृत्वा चक्रं समुद्धतम्। प्रदर्श्य मुद्रां योन्याख्यां सर्वानन्दमनुं जपेत्॥५०॥
इत्यात्मनस्तु चक्रस्य चक्रदेवी भविष्यति॥५१॥

इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे उत्तरभागे दलवीरसिंहकृत हिन्द्यनुवादान्तर्गते हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने आत्माचक्र अनुष्ठाननाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीमत्प्रतापगढपत्तनमध्यवर्त्ति श्रीरामपूर्वकगढाभिधवासिनेदम्।
संशोधितं निखिलमान्यपुराणकं यद् ब्रह्माण्डसंज्ञमिह तद्विदुषां मुदेऽस्तु॥१॥
रघुनाथेनेदं यत् क्वचिदस्ती हाप्यसंशुद्धम्।
संशोधितमपि दयया तत्क्षन्तव्यं ह्यशेषेण॥२॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। रामाय नमः॥

समाप्तमिदं ब्रह्माण्डमहापुराणम्

॥इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणं समाप्तम्।

***

नित्या, २. भगमालिनी नित्या, ३. नित्यक्लिन्ना नित्या, ४. भेरुण्डिनी नित्या, ५. वह्निवासिनी नित्या, ६. वज्रेश्वरी नित्या, ७. शिवदूती नित्या, ८. त्वरिता नित्या, ९. कुलसुन्दरी नित्या, १०. कुल्या नित्या, ११. नीलपताका नित्या, १२. विजया नित्या, १३. मंगला नित्या, १४. ज्वालामालिनी नित्या, १५. विचित्रा नित्या, १६. श्री सुन्दरी नित्या। ये सब नित्याएं मध्यवृत्त में न्यस्त करनी हैं।।४२-४७½।। इन सब नित्याओं को त्रिकोण के अन्तर्गत पैर से हृदय तक न्यस्त करे।।४८।। नित्या प्रमोदिनी और नित्या त्रिपुरसुन्दरी का न्यास करे, फिर उनके मध्य में संसार की अखण्ड अम्बिका देवी का न्यास करना चाहिए।।४९।। इसके बाद चक्रेश्वरी ललिताम्बिका को हृदय में न्यस्त कर समुद्धृत चक्र बनाकर योनि नामक मुद्रा को प्रदर्शित कर सर्वानन्द सदाशिव का जाप करना चाहिए।।५०।। इस प्रकार आत्मा के चक्र की चक्रदेवी होगी।।५१।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४४ वाँ अध्याय आत्माचक्र अनुष्ठान का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

।इति श्री ब्रह्माण्ड पुराण॥

***

ब्रह्माण्डपुराण-श्लोकानुक्रमणिका

Note : The references are to the sections, Purua, Madhyama and Uttara, and to the chapter and verse numbers therein. semicons are used to mark off second and further references to identical entries

अ

अंशाशकं १.२१.६४
अंशाद्यानन्द्य ३.४४.१०३
अंशुमन्तं २.५४.२४; ३६; ५५.२२
अंशुर्विवस्वान् २.२४.३४
अंशेन त्रिषु २.७३.१२३
अंशेन साध्या: २.४.३४
अकर्णका २.७३८७
अकर्णो २.७.३३
अकर्तु ३.१९.९२
अकर्मक: २.७.३७९
अकाण्ड ३.२५.६२
अकारादि ३.३६.२०
अकाल ३.२१.६.७
अकृतव्रण २.२५.७४; ४.१६:३५.३७; ३८.२; ४६.११; ४६.२८; ४७.३४
अकृतानि ३.२.१०
अकृत्वा २.१४.९५
अक्रूरयज्ञ २.७१.८३
अक्रूरश्च २.७१८६
अक्रूरस्तु २.७१.६१
अक्रूरादौग्र २.७१.११३
अक्रोधना २.१९.२६
अक्लिष्ट २.१५.२१
अक्षमालां ३.३८.३१
अक्षयं तु २.१३८९
अक्षयं सर्व २.११.११३; १३.४३
अक्षयत्वं तु १.२१.११०
अक्षयश्च ३.२.२२८
अक्षयस्स्वर्ग ३.५४.४४
अक्षीण ३.२३.८४
अक्षुद्रत्वं २.१२.४२
अक्षुद्रा: २.७.२०१
अक्षेण १.२२.७४
अक्षेयं ३.४.५४
अक्षौहिणी ३.२.८५
अक्षौहिणीनां ३.२६.१०९
अक्षौहिणीशतं ३.२८.९८
अक्षौहिणीसहस्र ३.२८.२६
अक्षौहिण्यश्च ३.२५.१९
अगदर्शन ३६.२३.६
अगम्यागमनं किं ३.८.१
अगम्यागमनं नाम ३.८.२
अगस्त्यदर्शनं ३.३५.३४
अगस्त्यपीत २.५२.१६; ५६.५३
अगस्त्येनैव ३३.९७
अगस्त्यो नाम ३.५.३
अगात्कथममा १२.८१
अगाधापारं १.३५.१३२
अगारदाही २.१९.३१; ३.२१.६७
अगावहस्य २७.१२.५७
अग्नेय कव्य २१.१९.९३
अग्नि: शान्त: २.१३.४५
अग्निकार्यं च २.२७.१०९
अग्निज्वाला २.५७.६६
अग्निप्रस्कन्द २.६८.५५
अग्निप्राकार ३.२६.६६
अग्निमाविशते १.२४.१७
अग्निमाहवनीयं २.७२.२५
अग्निमित्रो २.७४.१५१
अग्निवर्णस्य ३.६३.२१०
अग्निष्टोमं २.६१.३५; ३.१५.११
अग्निष्वात्ता १.१३.२९
अग्निष्वात्ता: १.१३.६;१३.७; २८.७३
अग्निष्वात्तार्त्तवा: १.२३.७७
अग्निस्थाली २.६६.१९
अग्ने: पुत्रं १.११.१९; २.३.२५
अग्ने: प्रजाया: १.१.६२
अग्नेर्विकेश्यां १.२४.९१
अग्नीषोमौ ३.४३.४६
अग्र: प्रथम: ३.३४.३०
अग्रजस्य ३.२१.२६

अग्रत: कृत	३.४०.१९
अग्रत: सर्व	३.३९.९६
अग्राम्यै:	१.३५.१०६
अग्राह्य	३.२.३१७
अग्रे दत्त्वा	२.१२.१३
अग्रे पुच्छे	३.२३.३५
अंकुशेनाति	३.२८.१००
अंगदश्चन्द्र	२.६३.१८८
अंगदस्यागं	२.६३.१८९
अंगदस्यापि	२.७.२२०
अंगदेव्यंतरा	३.३७.५६
अंगप्रत्यंग	१.१३.१२१
अंगसुमनसं	१.३६.१०८
अंगहीनं	२.३८.३२
अंगाय लोम	२.७.३४९
अंगारेभ्य:	२.१.६२
अंगारेष्व	२.१.४०
अंगिरा वैद्य	१.३२.१०७
अंगिराश्चैव	३.१.१०२
अंगीकृत्य	३.४०.४५
अंगुलानां शतं	१.३२.६
अंगुलाष्टशतं	१.३२.१२
अंगुष्ठस्य	१.७.९७
अंगै: सहस्र	३.२९.८५
अचरत् स	२.७१.२४०
अचरांश्च	१.३७.४३
अचला श्री:	३.१५.५७
अचिरेणैव	२.३०.४६
अच्छोदकं	२.१३.७८
अच्युतश्च	३.२९.७१
अज: पुत्रो	२.६३.१८४
अज: शंडश्च	२.७.८२
अज:स्वयम्भुवा	२.१०.४८
अजकस्य तु	२.६६.३१
अजन्मकांक्ष	२.४.७
अजरामरतां	३.३५.१०
अजातपुत्राय	२.७१.१४३
अजातशत्रु:	२.७४.१३१
अजानेया	३.१६.१७
अजाय प्रथमा	१.३.६
अजाविको	३.२.१६६
अजितश्च	१.३६.७४
अजिताश्चैव	१.९.४६
अजिनं कांचनं	२.१६.३३
अजीजनन्महा	२.६८.१७
अजेय: क्षत्रि	२.६६.४०
अजेयत्वं च	२.२५.४२
अजेश: सर्व	३.४४.५२
अजैकपादहि	२.३.४२;३.७१
अजैडकं खरो	२.७४.२१८
अजैश्च मुनिभि:	१.२.२८
अजो निरंजन:	२.३६.६१
अज्ञ मन्त्राभि	३.४०.५१
अज्ञात: प्रमथै:	३.१०.४१
अज्ञातमुनयो	२.२८.४९
अज्ञानं तमसो	३.३.४१
अज्ञानपूर्वकं	३.३.४९
अज्ञानादि	१.२७.७३
अञ्जनस्यैक	२.७.३५६
अञ्जनादंजन:	२.७.३४३
अञ्जना नाम	२.७.२२४
अट्टशूला	१.३१.५०
अट्टहास	३.२०.५९
अट्टहासी	३.२१.८८
अट्टालकेषु	३.३१.१४
अणिमा चैव	३.४४.१०८
अणिमान्तर	३.३६.४९
अणिमा महिमा	३.१९.४
अण्डं हिरण्मयं	१.१.४३
अण्डस्यान्त	१.१९.१५५; २१.२१
अण्डानामीदृ	१.१९.१५८
अण्डे द्विधाकृते	२.५९.५८
अत: परं कथानां	१.३५.७४
अत: परं कथानां	१.२१.५; २.१४.१; १४.२८;१६.१
अत: परं प्रव	१.१.४७
अत: परं ब्रह्म	३.२८.८७
अत: परं मत्र	२.१२.४३
अत: परं विधिं	१.२५.११४
अत: परतरं	१.१.७७
अत ऊद्र्ध्व	२.९.७६; १.३१.१; २.१७.१;६६.९०; ३.१.२०८;३.४६
अत ऊर्ध्वं	
अत एव	३.३२.४२
अतत्त्वदर्शनात्	३.३.३७
अतश्च	१.१.१७४
अतस्तत्कृत	३.२३.४३
अतस्तुल्य	१.२१.१४३
अतस्त्वं बहु	३.२५.१७
अतितीक्ष्ण	३.२०.८
अतिनामा च	१.२६.७८
अतिमायो	३.२१.८४
अतिमेढ्रीग्र	१.९.७४
अतिष्ठदप	२.५८.२१
अतिहृद्यमति	३.२२.८१
अतीतानागतं	१.१०.२५
अतीतानागता:	२.८.२५;९.१४

अतीतानागतानां	१.१.९६;९७; २३.३६; ३१.१२२;३२.७०
अतीतावर्त	२.७४.२४६; ३.२. ३;४४
अतीतैस्तु	१.२४.८७
अतीत्य सुबहून्	२.२२.७;५७.२
अतीव विस्तरो	२.१५.२
अतुलमिह	१.२७.९५
अतो नामानि	३.३१.२५
अतोऽयं प्रथमो	१.३८.१५
अतोऽयं वार्य	२.३०.७४
अतोऽस्माभि:	३.२६.१६
अत्यद्भुतानि	३.४.३
अत्यन्तं विस्मया	३.२६.९४
अत्यन्तकोमल	३.३५.७८
अत्यन्तधार्मिका	२.६३.६७
अत्यन्तभास्वरा	३.३३.५१
अत्यन्तम	१.३३.२४
अत्यन्तविस्मिता	३.२६.१००
अत्यन्तसंकुल	३.२३.२३
अत्यन्तसन्नि	३.३७.४३
अत्यन्तसेना	३.२९.२६
अत्यन्तसैन्य	३.१६.३४
अत्यरिच्यत	२.५७.६१; ७३.७९
अत्यर्थं भ्रजते	१.२८.४६
अत्यर्थसुन्दरा	३.९.७१
अत्याप्तैर्मन्त्रिभि:	३.२५.४
अत्याहतो	३.३८.५८
अत्युच्चपात	२.५.२४
अत्युपद्रव	२.३६.४४
अत्यूर्ध्वमंबर	२.३२.९
अत्येति तेजसा	१.९.९१
अत्र गच्छन्ति	२.२४.५६
अत्र गाथा	२.६८.९६
अत्रय: सभरद्वाजा:	१.१६.५०
अत्र यत् प्राप्त	३.२७.६६
अत्र वै वर्ण	१.६.५
अत्र वो कीर्त	२.९.१३
अत्र वो वर्ण	१.१६.४
अत्र श्रीसोम	३.३५.५४
अत्र श्रीसोम	१.२९.३०
अत्र संवत्सरा	३.४०.३
अत्र स्थितापि	२.३४.२६
अत्राप्यागत्य	२.२.७; ६३.६९; ६३.१६८
अत्राप्युदाहर	३.४३.७०
अत्रिनेत्र:	२.१०.१११
अत्रिभृग्वंगिरा	१.४४.५३
अत्रिभृग्वंगिरा	२.८.८४
अत्रिर्मीनश्च	१.३६.६८
अत्रे: पुत्रं	३.३९.९८
अत्रे: पुत्रस्य	३.२८.५४
अत्रैव तु	
अत्रैवावसरे	
अत्रैवोदाहरं	३.७.९
अत्रोपाय:	३.२८.५५
अथ ऋत्विग्	१.५५.२; ५५.७
अथ कल्पक	३.३२.२१
अथ कामेश्वरी	३.३७.३३
अथ किष्कुश	१.७.११०
अथ कृष्णो	२.४३.२९
अथ कोलाहलं	२.४२.७
अथ क्रुद्धो भण्ड	२.२९.११२
अथ क्रोधसमा	२.२७.९८
अथ क्रोधारुण	३.२२.६४
अथ क्रोधारुण	३.२२.५२
अथ गन्धर्व	३.३६.१६
अथ गीति	३.१९.७७
अथ चक्र	३.१९.२८; १९.४६
अथ चन्द्रस्य	३.३५.५९
अथ चिन्तामणि	३.३६.३३
अथ चीनमरूंश	१.१८.४६
अथ तद्दर्शनो	३.३०.४५
अथ तद्भस्म	३.११.३०
अथ तस्या	३.७१.१७६
अथ तस्यै वरं	२.५.४७
अथ तात	३.३०.१०३
अथ तानागतान्	२.४७.४३
अथ तां पृतनां	३.२२.८४
अथ तां मुनय:	३.९.७७
अथ तामपि	२.७१.२१९
अथ तासां	३.२०.६९
अथ तुंग	३.१६.३५
अथ ते ऋषय:	३.२.२६०
अथ ते तु	२.३०.५६
अथ ते दुष्ट	३.२५.८९
अथ तेनाव्याहि	३.२५.७४
अथ ते प्रोचुर्	२.४५.७
अथ ते वासरं	३.२४.७०
अथ तेषु प्रण	२.२.२३
अथ तेषु विन	३.२९.१३०
अथ दुर्योधनो	२.७१.८४
अथ देवा न	१.३२.२७
अथ देवा महे	३.१०.१
अथ देवी सती	१.१३.७७
अथ देव्या	२.३२.५३
अथ देव्याज्ञया	२.२४.७४
अथ नष्टेषु	३.२७.१
अथ नानारत्न	३.३४.८५

अथ नारायण	३.२९.१३९
अथ नित्यान्तरा	३.३७.४०
अथ नील	३.२५.९८
अथ पञ्चरथा	२.४६.१७
अथ पाशुपत	३.२९.१४०
अथ पुत्रसहस्त्रं	२.२.११
अथ पोत्री	३.१७.६
अथ प्रववृते	३.२३.२२
अथ प्रसन्नो	३.९.४८
अथ प्रोक्षयेद्	३.८.५३
अथ बन्धुमत:	३.६१.१०
अथ बालादि	३.३८.६६
अथ बालार्क	३.२२.८९
अथ बाह्येतरा	३.३६.६०
अथ बुद्धिमहा	३.३५.३४
अथ ब्रह्मकपालं	३.४०.५७
अथ ब्रह्मादयो	३.९.४७
अथ भग्नं	३.२२.४७
अथ भण्डकनीय	३.२८.१४
अथ भण्डस्त्वति	३.२९.९८
अथ भण्डासुरं	३.१०.८८
अथ भण्डासुरा	३.२२.२३
अथ मञ्चस्योपरि	३.३७.६२
अथ मन्वन्तरे	१.६.२०
अथ मातुश्च	२.४४.१३
अथ मुक्ताख्य	३.३४.५४
अथ मुद्रान्तर	३.३६.६६
अथ मृत्युञ्जये	३.३६.१९
अथ राजनायिका	३.१८.१
अथ राजा	३.७१.२४
अथ राम:	२.४४.८
अथ रामोऽपि	२.४३.३०; ३.४१.७
अथ रामो महा	२.२४.८१
अथर्वर्ग्युजुषां	१.३२.६७
अथर्वणां	२.३०.५२
अथर्वरूपै:	३.२०.१०४
अथर्वा तु	१.१२.१०
अथ वज्राख्य	३.३३.३४
अथवा गो	२.२८.६०
अथवा च	२.२३.६०
अथवा जगतां	२.२४.७
अथवा तां	३.२१.७४
अथवान्य	३.७.२१
अथवा त्वं	२.६७.१८
अथ वात्य	३.१९.९
अथ वापी	३.३५.१
अथवा मम	३.२१.७६
अथवा मृग	३.३४.२१
अथवार्थे	१.३३.५०
अथवा शङ्करं	३.८.५७
अथ वासन्त	३.३२.४९
अथवा सर्व	१.२५.११२
अथ वा हल	३.१७.१५
अथ विज्ञाय	२.७१.९३
अथ विद्रुम	३.३४.७१
अथ विस्मय	३.४०३२
अथ वीक्ष्य	२.४.२०
अथ वीरमती	२.७१.५६
अथर्षीश्चैव	२.७२.२६
अथ शस्त्रान्तर	३.३७.१९
अथ श्रीदण्ड	३.१६.३१
अथ श्रीनकुली	३.२३.५६
अथ श्रीपुर	३.३१.२७
अथ श्रीभाव	३.४०.६७
अथ श्रीललिता	३.१६.१४; २५.३४;२९.९६
अथ श्रीललितावाम	३.२९.११०; ११४; ११९;१३३
अथ श्रीललितासेना	३.२२.१
अथ शृङ्गार	३.३५.७०
अथ षोडश	३.३२.११
अथ सक्षत	३.३०.६
अथ संकेत	३.१७.२२
अथ संगीत	३.१७.३८
अथ सञ्चोदित:	१.३४.६६
अथ सत्कृत्य	२.३०.३६
अथ सम्मोहितो	३.१२.३९
अथ सा जगतां	३.१६.१;२९.४४
अथ सा नकुली	३.२३.८३
अथ सा नवमे	२.७१.१३
अथ सा ललिते	३.२०.९८
अथ सा सर्व	३.९.६९
अथ सूर्यसमा	३.२४.६७
अथ सूर्यस्य	१.२१.११२
अथ सैनिक	३.२२.१०३
अथ सैनिक	२.४३.१७
अथ स्वगृह	३.१६.२२
अथ स्वस्तिक	२.६०.५
अथाकरोत्	३.३९.१०३
अथाकाश	२.२.१०;३.१२.२
अथागच्छद्	३.१२.२७
अथागतस्तु	३.२६.९५
अथाङ्ग	३.३७.४५
अथातश्चा	२.३५.७
अथातिथ्यो	२.५०.५०
अथात्मनि	१.९.१०; ३.१.१९०
अथाद्भुत	३.१०.९८
अथाद्रि	३.३०.९५
अथाधिका	१.६.१९

अथानन्द ३.१९.५४
अज्ञानुज्ञाप्य २.२१.३४
अथानुज्ञाय २.४९.१
अथान्तरेषु १.१४.१
अथापतन्त्या: ३.२१.१०१
अथापि तव ३.३१.९६
अथापि तस्या: ३.३७.९२
अथाब्रवीत् २.७.५४
अथाभिषिक्त: ३.१२.६
अथाभिषेक ३.१५.२६
अथामरपुरे ३.६.३२
अथाम्भसा ३.१.१७४
अथारुह्य ३.१७.२८
अथार्द्धरात्रि ३.२८.१११
अथालयं ३.४०.११७
अथावोचत् ३.४८.४१
अथाश्रमं ३.२६.५६
अथाश्रवारूढया ३.२३.१
अथाससाद २.४४.३; ३.२७.२९
अथास्य तु १.७.१३८
अथास्थाने ३.२१.२८
अथास्य ३.१२.२९
अथाह भीम ३.१५.५६
अथाहूय मयं ३.१२.३
अथेष्टप्रापको १.३२.३०
अथैकशेषं तं ३.२९.१४१
अथैकादश ३.३४.१२९
अथैतैरभ्यनु २.५८.२७
अथो तिरस्कर ३.२४.८०
अथोपविश्य ३.६.१
अथो फलमुख: ३.२४.४८
अथोभावपि २.४३.२९
अथो मरकता ३.३४.६६
अथोवाच जगन्नाथ ३.५.१२
अथोवाच जगन्माता २.४३.२३
अथोवाच धरा २.४३.२६
अथोवाच प्रस २.४३.१२
अथोवाच महा ३.१४.२६
अथोवाच विधाता ३.१५.१४
अतिदिर्दितिर्दनु: २.३.५६
अदृश्य: सर्व २.१३.९७; ७३.११०; ३.११.२५
अदृश्यतां गते २.२५.४६
अदृश्यन्त्यां १.२.१२
अदृश्यमूर्ति: ३.३०.६१
अदृश्यां सर्व २.५९.७४
अदृष्ट: सर्व १.३१.८५
अदृष्टमश्वं २.५३.२
अद्भि: पवित्र २.११.११
अद्भिरव्यक्तके २.१४.९४
अद्भिर्विविध १.२७.६२
अद्भिस्तेजो ३.१.१६९
अद्यप्रभृति ३.३०.६२
अद्यप्रभृति मे ३.४३.२४
अद्यप्रभृति लोके २.३७.२९; ४३.२८
अद्यप्रभृति विप्र २.३२.५४
अद्यप्रभृत्येष २.६२.५२
अद्य मे सिद्धि २.३८.३७
अद्यापि प्राप्नु ३.४०.१४०
अद्यायं २.४२.३९
अद्रिका २.७.७
अद्वैतं ३.४३.६३
अध: कनिष्ठा ३.४२.१६
अध: परिचरो ३.३४.१६
अध: प्रमाण १.२०.१
अध: शिर: ३.२.१४८
अधरोत्तर १.३६.१६३
अधर्मसूतयस्ते ३.२.१८०
अधर्म ध्याय मानस्य २.६९.१२
अधर्मो धर्म १.३०.१८
अधर्मो बल १.३०.१७
अधस्तात् ३.१.१५४
अधस्ताद् २.५.६६
अधस्तान्नोप १.१०.४९
अधार्मिकाश्च २.७४.२०७
अधिकं षट्शतं ३.१.२२०
अधिकस्तव ३.१२.४०
अधिगम्य १.१.११
अधिज्यकार्मुकै: ३.३३.८१
अधिरोपित २.५७.५२
अधिष्ठानं ३.३.१०९
अधिष्ठितं १.१९.१९३
अधीतौ २.७४.७३
अधीत्य च १.१.१५
अधीयते तदा १.३१.६७
अधीयते पुराणं २.१९.२३
अधुनैवाश्रमाद् २.२१.७५
अध्यर्धयोजनं २.३५.३९
अनग्नदर्शनं २.६६.९९
अनङ्गकुसुमा ३.४४.१२४
अनङ्गबाण ३.३०.७४
अनङ्गमदन ३.१९.२५
अनङ्गमालिंग्य ३.१९.२६
अनङ्गरेखा ३.४४.२५
अनङ्गवीर ३.१०.५९
अनङ्गशक्त्यन्तर ३.३६.७९
अनङ्गो निरता १.३३.१७
अनतिव्यग्र २.२६.१६
अन्तं पठ्यते १.२०.७

अनन्तः पठ्यते	१.२०.६	अनादिरखिला	३.६.४	अनिवेद्य न	२.११.३४
अनन्तमक्षयं	२.११.२	अनाद्यनन्त	३.३९.१	अनिश्चित्य	१.३३.५५
अनन्तमपरि	१.७९.१६५	अनाद्यन्तमजं	१.३.११	अनिष्टमिष्ट	३.३.४७
अनन्तरं च निर्दिष्टं	१.१.१३०	अनाद्यन्तां	१.१९.१७३	अनिष्टशब्दां	२.१४.३०
अनन्तरं च चक्रेभ्यो	१.१.४१	अनाद्यौ वर	३.४.२१	अनीकवान्	१.१२.४३
अनन्तरमृषेः	१.१.१२६	अनाधारमिदं	३.१.१२१	अनुकर्षन् स वै	१.३१.७८
अनन्ता गीयते	१.२.४	अनाधाराः	३.७४.२१०	अनूकूलस्य	३.४१.७६
अनन्ता धातवो	१.२०.२	अनाध्यानाद्	३.२.१९९	अनुकृष्णः	१.३३.१३
अनन्यमनसो	३.२०.२५०;	अनामया	१.१७.४	अनुगंगाप्रयागं	२.७४.१९५
	२८५	अनामन्तर्गते	३.४२.३	अनुगच्छत मां	२.७३.२७
अनन्यवेद्य	२.२४.३०	अनालपन्त्यां	२.४५.१३	अनुग्रहाद्	३.८.२१
अनपत्योऽभवत्	२.४१.१९४	अनालबावहारौ	२.७१.७०	अनुग्राह्यः	१.१.२६
अनपत्यो मरुत्	२.२४.३	अनावृष्टिभयं	१.३१.३४	अनुजस्य	२.६४.१
अनपानस्य	२.७४.१०३	अनावृष्टिभये	२.६३.१११	अनुजाता	१.७१.१७७
अनपायं च	३.५.२६	अनावृष्टिहताः	१.३१.९७;	अनुज्ञातः कुरु	२.११.१०८
अनभ्यर्च्य	३.७.७६		२.७४.२०९	अनुज्ञातः पिता	२.७१.२१२
अनमित्रं	२.७१.२०	अनावृष्ट्या हतं	२.७१.९०	अनुज्ञातस्तत	२.४९.५;
अनमित्रा	२.७१.१००	अनावृष्ट्या हते	२.८.८९		५९.७१
अनया मायया	१.२२.१८	अनाश्रमी तपः	२.१५.३९	अनुज्ञातस्तया	२.४९.३०
अनया सततं	२.७३.५	अनाश्रमी द्विजः	२.५०.७	अनुत्तरपराधीना	३.३६.५
अनयोरन्तर	३.३१.६७	अनिकेतान्तर	३.२.२८	अनुतप्ता	१.१९.१९
अनयोरुभयोः	३.३१.७१	अनित्यमशिवं	३.३.६३	अनुद्देश्य	१.१२.२१
अनयोस्तुल्यता	३.२.१९४	अनित्यं परतो	१.१९.१६६	अनुद्देश्यो	१.१२.२६
अनर्घ्यरत्न	३.३९.७१	अनित्यभावाद्	१.३५.८५	अनुनीयर्क्ष	२.७१.५१
अनशनादि	२.४७.४२	अनित्ये नित्य	३.३.३९	अनुपूर्वं ततो	२.१२.४०
अनष्टद्रव्यता	२.६९.२२	अनित्योऽयं	२.५३.४८	अनुपेक्ष्यं	२.२८.६१
अनसूया विज्ञे	१.११.२२	अनिन्धनो	३.३६.३	अनुमेने च	३.१२.५८
अनस्त्रज्ञोऽस्मि	२.२४.७२	अनिमित्रान्वय	१.१.१२३	अनुरागवती	३.२७.२७
अनाख्यानाद्	३.२.२९०	अनिरुद्धश्च	२.७२.२	अनुराधासु	२.१८.९
अनागताश्च	३.१.१०	अनिर्दिष्टा हि	२.६८.३२	अनुर्द्रुह्यादयः	१.१.१३३
अनाचार्या	२.७२.१२७	अनिर्देश्ये	३.२.२९२	अनुलोम	३.३५.२५;
अनादित्वाच्च	३.२.६८	अनिलस्य	२.३.२६		४१.२५
अनादिनिधन	२.७.१६	अनिवर्तनं तु	२.१३.८२	अनुवाता	१.१३.११९
अनादिमध्यान्त	३.१३.२७	अनिवार्यमिदं	२.२८.४२	अनुवाद	२.३०.४०

अनुव्याहृत्य	२.७२.१४४
अनुषंग उपो	१.१.३९
अनुषंगमयो	२.६२.३०
अनुहृदस्य	१.२०.२६
अनूपदेशं	१.३६.१७२
अनूपेषु	२.५६.२७
अनृतोपहता:	२.७४.२३७
अनेककोटि	३.१६.८;४४.२३
अनेकधा	१.१९.१८०
अनेकफल	२.८.९०
अनेकरत्नो	२.२६.५७; २७.१२
अनेकरथ	२.४८.६
अनेकसमवाय	२.६२.४३
अनेका:	३.२४.२३
अनेन तुरगं	३.६.७१
अनेन विधिना	२.११.७४; ८५
अनेनस: सुतो	२.६८.७
अनेनानु	१.१.१६८
अनेनैव	३.४१.५८
अनेनैवायुधेन	२.२४.७६
अन्तकश्चाभवद्	१.३६.२०९
अन्तकास्त्रं	३.२९.६६
अन्तं गन्तुं न	१.२७.९१
अन्त:पुरे	२.७४.६४
अन्तरं त्रय	३.३६.६४
अन्तरिक्षं	१.१८.३०; ३८.१७
अन्तरिक्षे	१.२९.८८
अन्तरिक्षो	१.३६.६९
अन्तरैव हि	३.२७.७३
अन्तर्जनित	२.२२.६७
अन्तजानूप	२.१५.६२
अन्तर्द्धानं गते	२.३८.१
अन्तर्द्धानं प्रजायां	२.७.४०२
अन्तर्द्धानेन	२.१३.३४
अन्तर्बहि:	३.३४.९३
अन्तर्वत्नीं	२.६५.३७
अन्तर्वर्त्ति च	१.१.४५
अन्तर्विधाय	२.११.९२
अन्तस्सर्ग	१.१.१६३
अन्तस्सार	१.२८.३
अन्तर्हिता	२.३९.५३
अन्तर्हितायां	१.३०.२
अन्तर्हिते	२.२४.३९; ६७.६४
अन्ते द्रुमस्य	३.३.४
अन्तेऽनेक	३.१.११८
अन्त्यजात्	३.७.८
अन्धक: सिन्धु	३.२१.८२
अन्धकानां	२.७१.१४४
अन्धकारात्	१.१९.७३
अन्धकारो	२.७२.७५
अन्धतामिस्रकं	३.२९.६२
अन्धमन्यतमं	१.७.६
अन्धास्त्र	३.२९.६४
अन्धिनी	३.२०.३८
अन्धीकृताश्च	३.२४.८३
अन्ध्रवाकां	१.१६.५३
अन्ध्रांशे	२.७४.२३६
अन्ध्राणां	२.७४.१७१
अन्नं तस्य	३.६८.४
अन्नं पश्येयु:	२.१४.५०
अन्नदो लभते	२.१६.५२
अन्नं भवति	२.९.५८
अन्नप्रकारान्	२.११.८४
अन्नादा:	२.८.६९
अन्नाद्भूतानि	२.१६.५३
अन्नाल्लोका:	२.१६.५४
अन्य: कटको	३.२४.५५
अन्यच्च दधि	२.१५.५८
अन्यच्च दृष्ट	२.२८.३४
अन्यत्सर्वं	३.२८.१८
अन्यथा मम	२.४९.५५
अन्यदत्तै:	३.२९.८६
अन्यदैवत	३.३७.८५
अन्यदैवस्य	३.२१.८७
अन्यस्यान्यस्य	१.३३.५३
अन्यस्यामभवत्	२.७१.१८७
अन्यांश्चैवं	२.११.११६
अन्यान्यथोक्त	३.४४.१०१; १०४
अन्यायोपगतै:	२.६६.७९
अन्या वेश्या	३.८.१२
अन्याश्च शक्तय:	३.७.७३;३५.५
अन्यासामपि	३.२६.३६
अन्या: सृजस्व	१.९.८०
अन्या: सिन्दूर	३.२८.२८
अन्यासामपि	३.२९.४०
अन्यास्तु हीरक	३.२८.२९
अन्यूनानति	१.१९.१३४
अन्ये कर्णेषु	३.२३.७७
अन्ये तु	३.१.१७१
अन्येऽपि च	३.२३.७९
अन्येऽब्ज	३.५.३१
अन्येऽ सहस्रशो	२.४१.३९
अन्यैर्नाना	२.३५.२०
अन्यैश्च बल	३.२३.३६
अन्यैश्च विविधै:	२.२२.३९
अन्यो न कोऽप्यस्य	२.४०.४९
अन्योन्यं च	३.२७.६२
अन्योन्यतुमुले	३.२२.३८

अन्योन्यं पृष्ट	३.४०.४९
अन्योन्यप्रहतौ	३.२८.११०
अन्योन्यमंगं	३.२८.१०८
अन्योन्यमनुरक्त	१.१५.७९
अन्योऽन्यमभवत्	३.७.३९
अन्योन्यं मिथुनं	१.४.११
अन्योन्यमूचुः	२.२.२५; २७.४५
अन्योन्यशस्त्र	३.२३.३४
अन्योन्यसक्तैः	३.१७.२
अन्योन्यस्य	१.२९.८१
अन्वतिष्ठत्	२.४९.३५
अन्वये चास्य	२.७.३३८
अन्वाधान	१.२८.३७
अन्वास्त राजसमितौ	२.२७.४०
अन्वीयमानः	२.२५.७३; ५५.१०
अपक्षस्येव	२.१०.११६
अपग्रहास्ततः	१.२१.९२
अपतन्वेदि	३.२१.१९
अपत्यकामो	२.१८.३
अपतयानीति	२.१.६९
अपधृष्यप्रभा	३.१९.९०
अपध्वंसेति	२.६३.८०
अपमानाप	२.१४.४८
अपयाने ततो	२.७१.७१
अपरं परं	३.३५.१४
अपरं प्रजानां	२.१.५३
अपरं यद्गुणा	३.५.२२
अपराजित	३.१६.२३
अपराधं ततः	३.१५.५३
अपराधमिमं	२.५७.७५
अपरार्द्धपरैः	१.१.१४०
अपराह्ने	१.२३.७२
अपरिज्ञेय	२.५७.२९
अपरे क्षीरिणो	१.१५.७४
अपरेण तु	१.१८.१८
अपश्यच्च	२.२४.१८; ७१.४५
अपश्यतां	२.७.७
अपश्यद्भय	२.३०.१६
अपश्यन्मज्ज	२.७४.६६
अपसव्यं	२.११.५५
अपां भूमेस्तु	१.७.१२६
अपां वृद्धिः	१.१९.१३६
अपांशौ तौ	१.७.७४
अपां सारमय	१.१.८४
अपाङ्गरिङ्गित्	३.३७.८४
अपानः	२.७२.५३
अपामदुत्तर	२.६१.५०
अपि जेतुं	२.५०.५२
अपि योनिशतं	२.२०.१४
अपुत्रत्वेन	२.५०.२९
अपुत्रस्यामराः	२.५०.२५
अपुनर्मारिका	३.२.८५
अपुनर्मारिको	३.२.१४२
अपूजितो	२.१५.१५
अपूर्वाहव	३.२२.८५
अपृच्छतां च	२.७.८१; २५.९०
अपृथग्धर्म	१.३७.२८; २.५१.४८
अप्यायन्ति	२.१०.५
अप्रतर्क्य	३.३.१०५
अप्रतिष्ठः	३.२.१८२
अप्रतीकार	३.३०.९०
अप्रतीपांस्ततः	२.७२.१११
अप्रतीयाय	२.७२.१७९
अप्रद्वेषो	३.३.७२
अप्रधृष्यतमं	२.२९.९;५७.३०
अप्रबुद्धे	२.११.१००
अप्रमेय	३.२६.५७
अप्राप्ता	१.२८.८
अप्सरोगण	१.२५.२८
अप्सरोनुचर	१.१८.२
अप्सरोभिः	२.११.४७; १६.१५; ३.२८.१६
अफालकृष्टाः	१.७.१२७
अबुद्धिपूर्वः	१.३.३८
अबुद्धिपूर्वकं	१.२९.४८; ३२.७२
अबुद्धिपूर्वकं युक्त	३.४.२२
अबुद्धिपूर्विका	१.७.५४
अब्जं देवं तु	२.६७.२१
अब्जपाशोत्पल	३.२७.७०
अब्जयोनि	१.१२.४
अब्जस्त्वमिति	२.६७.१२
अब्रवीच्च भृशं	२.५७.७४
अब्रुवंस्त्वेष वो	१.३६.११
अब्रूतां च	१.२६.६०
अभजेतां महा	३.२६.११
अभयं ते मया	२.७.२६२
अभवंल्लोक	२.७.४६९
अभवंस्तस्य	१.३४.३१
अभवत् सा	२.५९.८४
अभवन् दनु	२.६.१
अभावतः पुनः	१.५.१२०
अभिगच्छन्ति	१.१९.२०;६३
अभिजातात्याऽथ	१.३५.९९
अभिज्ञानेन	२.३.९२
अभिदुद्राव	१.२६.२०
अभिध्याय ततः	२.७२.१३९

अभिमन्युश्च	१.३६.८०; ३६.१०७; ३.१.७१
अभिमनात्मकं	१.९.२३
अभिवाद्य स	१.२९.८
अभिवीजिता	३.१८.४
अभिशस्त	२.१९.३३
अभिषिच्य ततः	२.६८.९०
अभिषिच्याधि	२.८०.२
अभिषेकाय	१.३६.१५२
अभिसंभाष्य	२.९.९
अभूतस्यापि	२.४७.६७
अभेद्यमजरं	२.२५.४१
अभ्यनुज्ञाय तं	२.४९.५७
अभ्यन्तरं तु	२.२१.८२
अभ्यन्तरं प्रका	१.२१.१०६
अभ्यन्तरं शक्ति	३.२४.३५
अभ्यर्च्य गन्ध	३.४३.१९
अभ्यर्च्य चक्र	३.४१.३५
अभ्यवर्त्तत तं	२.२३.१३
अभ्यसन्निमं	१.१.१७२
अभ्यागतः	२.१५.१७
अभ्याजगाम	२.४९.३९
अभ्याययुस्ततः	२.४९.१८
अभ्युक्षयेत्	२.१४.१०८
अभ्येत्य पितरौ	२.५५.८७
अभ्रस्थाः	१.२२.२७
अमंगलानि	३.१५.५१
अमंगलास्पदं	३.१४.१८
अमद्यपश्च यः	३.२.३१४
अमन्त्रयंस्तदा	२.७२.१००
अमराणां कृते	३.२७.४४
अमरैरमृताः	३.१०.३९
अमर्त्ताश्च	२.१.५२
अमानित्व	३.४१.७८
अमावसेता	१.२८.४७
अमावस्यां	१.१०.६२
अमावास्या	१.१०.६५
अमूर्त्तीनां	२.११.२३
अमूल्यानि	३.४०.१३२
अमृतं स्यात्	३.३१.६९
अमृता मानदा	३.३५.९२
अमृष्टपद्म	३.३७.६९
अमोघं बल	३.११.१५
अमोघरेताः	२.७४.४०
अमोघाय	२.७२.१८४
अम्बरीषमिव	३.१.१४८
अम्बरीषस्तु	२.६३.६
अम्बरीषस्य	२.३४.३९; ६३.७३
अम्बा दुला	३.३२.२९
अम्बिकानां	१.९.५
अम्बिकाहृदयं	३.७.७०
अम्बिकेयस्य	१.१९.९३
अम्बिकेयात्	१.१९.९०
अम्भोदधूम	३.४४.७८
अम्भोधिसलिले	२.५६.२१
अम्लानकुसुमैः	२.५०.३६
अयं गुरुर्हितो	२.७३.३३
अयं तु नवमः	१.१६.१०
अयं ते भार्गवः	२.४२.११
अयं धर्मो ह्यं	१.३१.९
अयं भंडोऽसुरो	३.१५.४९
अयं मे	१.२६.५८
अयं रामो	२.३४.१७; ३४.३०
अयं लोकस्तु	१.१६.१७
अयं स गर्भो	२.१७.२१७
अयं हि मे	१.७४.३९
अयज्वा चैव	२.१४.११४
अयत्नात्	२.१९.५५
अयत्नेनैव	२.४९.४६
अयास्यं वाम	२.१.१०५
अयि नग	२.४२.४८
अयुक्तान्	२.७.३९६
अयुतं च	३.६.३९
अयुतानि	२.७१.२५४
अयुतायोस्तु	२.६३.१७३
अये विजय	३.२५.६
अयोध्यां चैव	२.६३.९३
अयोध्याधि	३.४०.८८
अयोध्यायां	२.४९.५८
अयोमुखस्तु	२.६.५
अरक्षितारो	१.३१.४९
अरण्यदेवतानां	२.२२.२७
अरण्यमभि	२.७४.२१५
अरण्यस्योदकः	१.३६.१०४
अरण्यां मध्य	३.६४.५
अरण्ये नाग	२.२८.१७
अरत्नीनां	१.१७.२६
अरयस्त्यक्त	२.४९.४७
अरयो देव	२.५.३८
अररुर्बल	२.६.३१
अराः पंच	१.२२.६८
अराजके	१.३१.९३
अराजा	२.६८.५१
अरिघ्नी चेति	३.१७.२०
अरिघ्नो विघ्न	३.२७.८२
अरिंजयस्तु	२.७४.१२१
अरित्रपाणयः	३.३५.१६
अरिष्टं वृषमं	२.७३.१००
आरष्टनेमि	२.७१.११५

अरिष्टो धेनुकः	३.२९.१२४
अरुणा चापि	२.७.८७
अरुणेन	३.१०.६०
अरुद्धस्य	२.७४.९
अरुन्धत्यां	२.८.९१
अरूपां	२.७.१३
अर्काग्नि	१.२८.६३
अर्घ्यपाद्या	२.५०.४९
अर्घ्यसंशोधन	३.३५.१०१
अर्चनाच्च	३.७.७९
अर्चयन्तो	३.१२.१६
अर्चयित्वा	३.४१.६; ४१.९
अर्जयेत	३.४३.८५
अर्चितास्तेन	२.१३.५१
अर्चिर्भिर्भाजते	२.१९.१४
अर्चिष्मान्	२.११.१०३; ३.१.१५
अर्च्यमाना	३.२६.१०६
अर्जुनो नाम	२.६९.४६
अर्णवेषु च	१.१९.१७९
अर्थकामरताः	२.१५.५४
अर्थयोजनगः	३.४३.६५
अर्थशास्त्रं	१.३५.८९
अर्द्धमासं तु	२.१४.८७
अर्द्धमासं तु	१.७.२०
अर्द्धमासांश्च	१.५.६८
अर्द्धमुण्डान्	२.४८.४४
अर्द्धं शकानां	२.६३.१३८
अर्धकोशसमा	३.३५.७
अर्धकोशायतः	३.२०.४०
अर्द्धयोजन	३.३५.८०
अर्धरात्रे	३.४०.९९
अर्धेन नारी	१.९.३३
अर्धेन्दु	३.३७.७८

अर्धोरुक	३.३७.७२
अर्बुदं न्यर्बुदं	३.२.१०१
अर्यमा दशभिः	१.२४.४०
अर्यम्णो दक्षिणं	१.३५.१११
अर्वाक् च	१.१५.३६; ३५.१२३
अर्वावसुः	१.२४.६७
अलं युद्धेन	३.१०.१०
अलं रामेण	२.४६.३५
अलंकारास्तु	२.६२.२; ६२.९
अलंकृतांगः	२.२२.५३
अलंघनीयं	२.५७.३९
अलं ध्यानेन	३.४०.३९
अलर्कं प्रति	२.६७.७०
अलसा कृपणा	३.२७.३८
अलातचक्र	१.२३.९८
अलाबुं	२.१४.१८
अलाबूपात्र	१.३६.२१३
अलाभे ध्यान	२.९.७३
अल्पप्रसादा	२.७४.२००
अल्पीयसी	३.२५.१८
अल्पेन तपसा	२.१३.१६
अल्पेनाप्यत्र	२.१३.१११
अल्पेन्धनो वा	२.११.१०१
अवगत्य स वै	२.३६.१
अवगाढे	१.१८.६७
अवति त्रीन्	१.२१.४
अवध्या देव	२.६.२८
अवध्याश्च	१.३६.१८५
अवन्दत पितुः	२.२५.८४
अवन्दत यथा	२.२१.६०
अवमानहतः	३.१२.३३
अवुरुह्य ततो	२.४९.२६
अवरुह्य महा	३.१७.९

अवरुह्य स्वया	३.२६.९
अवलेपनं तु	२.७४.५९
अवलोक्य	३.२८.४४
अवश्यभवि	१.६.३४
अवश्यभाव्य	१.७.३४
अवस्कार	१.७.११६
अवस्थास्थानि	३.३.२९
अवस्फूर्जो	१.१२.३१
अवाकिरन्	३.२२.५०
अवाङ्मुखो	३.२४.५४
अवाचीने	३.२२.२३
अवापविष्णोः	२.५७.५७
अवापुरक्षयां	२.४७.११
अवाप्तविद्यः	१.१.१७
अवाप्य विपुलं	१.१.२७
अविकारमजं	२.२५.२५
अविकाराय	२.२५.२३
अविच्छिन्नं	३.२८.७७
अविज्ञात	१.१०.८०
अविज्ञातं	२.१५.७
अविज्ञाताः	१.१६.२०
अविद्या पंच	१.५.३२
अविधाय	३.४१.६५
अविमृश्यैव	३.२१.५४
अविरोधेन	२.६८.६९
अवीचि	३.२.१८५
अवैक्षत च	२.५३.३१
अवोचत्	२.२१.३१
अव्यक्तं कारणं	१.१.४२; ५.१०३
अव्यक्तं क्षेत्र	१.३.३७; ३.२.३००
अव्यक्तं वै	३.४.७१
अव्यक्तत्वाय	१.४.१६
अव्यक्तबीज	१.५.१००

अव्यक्तां सत्त्व	१.८.८
अव्यक्तात्	३.४.३५
अव्यक्तानु	३.३.८१
अव्यक्तायाथ	२.७२.१९२
अव्ययानि	३.२.२१९
अव्यर्था त्वत्	२.३१.३३
अव्याकर्ता	१.३१.५५
अव्युच्छिन्नो	२.६३.२९५
अव्यूहा	३.२.३०४
अशक्त: कार्य	२.६८.३५
अशक्तौ भावना	३.४३.८४
अशक्यप्रति	३.१२.५५
अशक्यमन्य	३.२९.३४
अशंका चैव	१.३१.५६
अशपत्तु तत:	२.७२.९३
अशब्दगोचर	२.२५.३०
अशरीरे	२.५१.६२
अशिरस्कत्या	२.५९.११
अशीतिर्नियुता	१.२१.७५
अशीतिर्मंडल	१.२२.८३
अशीलिन्यो	१.३१.४४
अशून्या मे	१.१.२५
अश्मक	२.६३.१७८
अश्मक्यां	२.७१.१४५; १८९
अश्रूयन्त तत:	३.२७.५७
अश्वकर्णा हस्ति	३.३१.६०
अश्वत्थपत्रा	३.३८.२३
अश्वमेढ्रो	३.२१.८९
अश्रयमेघफलं	२.११.९८
अश्वमेधेन	२.६८.२६
अश्वरूपाय	१.३५.२५; ३५.२६
अश्वश्वाकं	२.७.१३६
अश्वहर्ता	२.५३.२४
अश्वानन	३.२९.१;३०.१; ३९.२;४३.१
अश्वारूढा प्रभृतयो	३.२८.९९;
अश्वारूढाचकारो	३.२८.३८;
अश्वारूढ:प्रदीप्त:	३.२९.१३४
अश्वारूढाम्बिका	३.२२.९३
अश्वाश्चैवाश्व	३.३४.२१
अश्वास्तमेक	१.२३.५६
अश्विनी कृत्तिका	१.२१.७७
अश्वो गविष्णु:	१.२३.५७
अष्टकापतय:	१.२८.२१
अष्टको लोहित	१.३२.११८
अष्टद्रंष्ट्रा	२.८.६४
अष्टदिक्षु	३.२७.३७
अष्टपर्वत	३.२०.३५
अष्टपाद	२.२२.२१
अष्टभिर्वैश्य	३.८.१४
अष्टत्रिंशच्छसं	२.७४.१२७
अष्टत्रिंशत्समा	२.७४.११८
अष्टम; सुरुचि:	२.७.१२
अष्टमे दिवसे	३.४०.१३४
अष्टविंशति	२.७४.१६७
अष्टादशमुहूर्तं	१.२१.९२
अष्टादश समु	१.२.९५
अष्टानां	३.२.११९
अष्टापद	१.२२.६२
अष्टाभि:	२.१६.३२
अष्टाभिरधि	१.१५.४६
अष्टाविंशति	१.३५.११६; १२५
अष्टाविंशत्समा	२.७४.११६
अष्टावेता:	३.१९.४९
अष्टाशीति तु	२.७४.१४१
अष्टाशीति सह	१.७.१८०; २५.५; ३५.१४६
अष्टाश्व:	१.२३.८४
अष्टासवेतासु	१.८.४२
अष्टौ च	३.१५.२४
अष्टो ता:	१.१३.९९
अष्टौ तानि	१.३२.४२
अष्टौ तु	१.५.३९;
अष्टौ तु समवाय	२.६२.४४
अष्टौ दिग्दन्तिन:	३.९.७९
अष्टौ धनु:	१.७.१०१
अष्टौ प्रकृतयो	३.३.७३
अष्टौ विभागा	३.७.१५७
अष्टौ शत	१.३५.१६७
अष्टो सह	१.३५.७७
असंशान्तास्तु	३.४.२८
असंहती तु	२.५९.६७
असंख्याता:	१.१९.१९६
असंगतय:	२.७.१८४
असंगवेगं	२.२५.४०
असंगं कांचनं	२.६८.१८
असत्कृत्य	१.१३.५०
असत् प्रतिग्रही	३.२.१६३
असद्भावो	३.३.८६
असमंज इति	३.६३.१६०
असमंजसत्व	२.५१.६४
असंमृष्टो	२.७.४०४
असरन्त्यो	३.१.१७६
असह्य तेज:	२.५९.३९
असह्यदु:खं	३.३०.३७
असह्यरश्मि	३.१.१३५
असाधारण	३.२.१
असिजो वृहद्	१.३२.१११
असितस्य	२.१३.३९

असितस्यैक	२.८.३२
असितो देव	१.३२.११३
असिद्धसाधकं	२.३६.४८
असिपत्रवने	२.३३.६१
असिपत्रेवन	३.२.१७३
असीमन्तश्च	३.३४.१७
असु: प्राण:	१.८.५
असुराणां	३.३१.७
असुरान् मोह	१.१.१३१
असुरा ये	१.१३.९८
असुराश्च	१.२६.७
असुरेन्द्रं प्रति	३.१९.३१
असृष्ट्वैव	१.५.६४
असोमं दूर	२.७.१२४
असौ सृजति	३.११.१३
अस्तंगते	३.२८.१०२
अस्तं याति	१.२४.२१
अस्ति नास्तीति	३.३.९७; १०२
अस्ति पङ्क्तिरथ	३.४०.१०१
अस्तवंस्ते परां	३.१४.२३
अस्तु न:	३.५.२
अस्तोदयौ	१.२२.१०
अस्त्रं रामो	२.४०.५६
अस्त्रग्राम	२.२१.७९
अस्त्रग्राम	३.२८.१०३
अस्त्रप्रत्यस्त्र	२.४६.७२
अस्त्राग्निा	३.२६.५४
अस्त्राण्यपि च	२.२५.३७
अस्त्रे शस्त्रे च	२.७.४७
अस्थूलं	३.३५.६
अस्पृशन्नपि	३.२२.२९
अस्मत्किङ्कर	३.२२.२९
अस्मत्त्रयो	२.४२.४२
अस्माकं हि	३.३१.१२
अस्माकमिन्द्र:	२.६७.८८
अस्माकमिषु	३.२१.४१
अस्माकमेव	२.२८.१६
अस्माञ्जेतुं	३.२१.३६
अस्मात्कल्पात्	१.६.७; ६.१५
अस्मानपि	२.४७.२४
अस्मिन् कल्पे	१.१०.१
अस्मिन् कार्ये	३.२५.३२
अस्मिन्नवसरे	३.३०.७
अस्मिन्नेव युगे	२.७४.१०४
अस्मिन्नेव	३.२५.१४
अस्मिन्नेवान्तरे	३.२७.६५
अस्मिन् पूर्वे	१.६.१४
अस्मिन् युगे	१.३४.११
अस्य चक्रस्य	३.३७.१०
अस्य भारत	१.२१.२
अस्यांक्षितौ	१.१३.६४
अस्या: शतांश	२.२७.३०
अस्या सहस्रे	३.१.२१०
अस्या: सांनिध्य	३.४०.९२
अस्याध: पुन:	३.२.१८१
अस्यास्त्वना	३.४२.१०
अस्यैव राज्ञो	३.१०.६८
अस्वित्रं परि	२.१४.५४
अहं व: कीर्त	२.७२.६२
अहं व: पितरं	२.३०.३६
अहं वोऽध्याप	२.७३.१८
अहं कर्तास्मि	१.२६.१६
अहं कर्ता हि	१.२६.१७
अहंकारस्तु	३.४.३७
अहंकारस्य	३.३५.४१
अहंकृता	१.५.३८
अहं गौरीगुरु	३.३१.९८
अहं जेष्यामि	२.६७.८७
अहं तद्ग्रहणम्	२.३५.२८
अहं तु त्वत्	२.५१.१४
अहं तु सम्यग्	२.२३.८०
अहं नैवात्र	२.४३.१५
अहमग्निर्महा	१.२७.११२
अहमादिर्हि	३.५.१८
अहमीज्यश्च	१.३६.१३२
अहमूर्ध्वं	१.२६.२६
अहमेकश्च	१.३५.२०
अहमेव	३.१३.३२
अहमेवात्र	३.१०.११
अहं पूर्वं	२.३८.२७
अहं प्रभो	२.३७.२४
अहं मुनिगणै:	२.५७.३६
अहरादौ	३.२.५४
अहस्तत्र	१.२९.१४
अहिंसासाथ	२.७२.१९०
अहिंसालक्षणो	२.२३.६८
अहिंसा सर्व	२.२३.९१
अहीनगोस्तु	२.६३.२०४
अहोऽनुजीविन:	२.२८.४७
अहो दारुण	२.५३.४१
अहो दिव्य:	२.२०.१७
अहो धन्य:	२.१५.१
अहो नाश्रौषं	२.३०.३
अहो पश्यत	२.३१.३
अहो प्रभुत्वं	१.२५.९४
अहो बत कुल	३.२५.५
अहो बत महत्	२.३६.३; २७.५९
अहो बलंवीर्य	१.२५.९३
अहो महाप्रभा	२.७.२७४
अहो मे सुनृ	२.३०.२
अहोरात्रं कलानां	३.१.२१४
अहोरात्रं तदा	१.३१.१०२

अहोरात्रकलानां	२.३.३७
अहोरात्रविभाग	२.३.३६
अहोरात्राणि	१.१३.१४
अहोरात्रात्पतं	१.२१.७०;
अहोरात्राद्रथेन	१.२३.४५
अहोरात्रेक्ष	१.५.२०
अहोरात्रौ	१.२९.७
अहो श्रुतमपूर्वं	२.४१.४७
अह्नां तु अधि	१.२१.१३६
अह्नानेन तु	३.१.२२२
आ	
आकर्णदा	२.७.४५
आकर्णय	३.३२.४३
आकर्णयन्ति	३.३७.१०१
आकर्ण्य	३.२१.१
आकालावधि	२.२२.७८
आकाशं तस्य	१.१०.५१
आकाशश्च	१.२०.८
आकाशस्य	१.२६.३६
आकाशावरणं	३.२.२९६
आकाशे गमयेद्	२.१२.३५
आकाशे दृश्यते	२.१३.११९
आकाशे पक्षि	३.४३.५५
आकूत्यां मनसा	२.३.११३
आकृष्टनयनां	३.४१.४६
आकृष्य बाणान्	२.३८.४३
आकृष्यमाणा	२.२९.१७
आकृत्येते यदा	१.२२.८२
आक्रान्त	२.२२.४१; ३.२५.७३
आक्रुष्ट	१.२७.४५
आक्रुष्टो	१.३२.४९
आख्यानकु	२.५९.४
आख्यानभानु	२.५.११
आख्यानेश्च	१.३४.२१
आगच्छेतु	२.६६.१६
आगतागतिकं	१.५.१३२
आगत्यतुष्टुवुः	३.३०.१०
आगत्य ते	३.२६.७१
आगत्य भण्ड	३.२६.५१
आगमादनु	१.२४.१५१
आगमेन भवान्	१.३०.१९
आगस्त्यवैश्वा	२.८.५९
आग्नीध्रं ज्येष्ठ	१.१४.४४
आग्नीध्रश्च	१.१३.१०४; १४.९
आग्नीध्रस्तुषे	१.१४.५३
आग्नेयास्त्र	२.४८.२१
आचख्यो	१.२.३
आचमनं	२.१४.७७
आजगाम	३.१४.२
आजग्मुराश्रमं	२.२३.५
आजश्च परशुः	१.३६.३९
आजह्रुरप्सर	३.९.४१
आजहाराश्व	२.६३.१५१
आजानुबाहव	१.२९.८५
आजीवः सर्व	१.५.१०२
आजीवान्तं	२.४७.९९
आजेन सर्व	२.१९.११
आज्ञां विना	३.३५.१८
आज्ञा धरो	३.३३.७
आज्ञापय	१.२७.९०
आज्यपा नाम	२.१०.९३
आज्यपास्तु	१.२८.१९
आतिश्र्य	२.२७.२२
आतर्यश्च	३.३४.४३
आत्रेयः	३.१.११४
आत्रेयाश्च	२.१.५१
आत्मच्छन्देन	२.४.२२
आत्मदारात्म	३.६.४७
आत्मनस्तनयः	२.४२.१७
आत्मनिक्षेप	३.४१.७७
आत्मनोऽनु	२.२४.२०
आत्मनो विपुलं	२.७१.१३६
आत्मन्यवस्थिते	१.४.१
आत्मप्राणाभि	२.२३.५२
आत्मवतसर्वं	१.३२.४.८
आत्मस्थेन	३.५.२७
आत्मानं व्यदधात्	१.१२.२७
आत्मानं हन्तुं	३.६.४६
आत्मानं तारयन्ति	२.१३.८५
आत्मानं धारयन्	१.३६.९२
आत्मानं बहुधा	३.२८.९१
आत्मानमात्मना	३.११.३
आत्मानुरूप	२.२७.८३
आत्मारामं	२.३२.२०
आत्मार्थं वा	१.३२.५२
आत्मा वा स	३.३.१०३
आत्मैक्यध्यान	३.११.१९
आत्मैक्यभाव	३.४३.४९
आत्मैक्याद्	३.६.५
आत्मीयं परशुं	२.२४.७४
आथर्वः पव	१.१२.२१
आदावुद्वा	३.८.२२
आदिकर्ता	१.३.२५; ३७.९
आदिकर्म	१.१२.३२
आदिकल्पे	१.२९.४९
आदिकूर्म	३.१७.११
आदिकूर्माकृतिः	३.९.६०
आदितेयस्त्वसौ	१.१३.११७
आदित्यकिरण	२.१०.८३
आदित्यमण्डले	३.२१.९

आदित्यमेति	१.२३.९०; २४.१०३
आदित्यरश्मि	१.२४.९९
आदित्यवर्णो	१.६.६४; ३.१.१८३
आदित्यशत	२.१०.३५
आदित्यस्तु	२.५९.६२
आदित्याः परि	३.२.२७०
आदित्यानां पुनः	२.८.५
आदित्या मरुतो	१.३८.३
आदित्या वसवो	१.३८.२
आदित्यो जन	२.५९.४७
आदित्यो विप्र	२.७०.३
आदिदेवा इति	२.९.५४
आदिराजो नमः	१.३७.८
आदिराजो महा	१.३६.१५५
आदिश्रीमन्दिर	३.३९.६२
आदि सर्गे	१.१२.४५
आदौ कृतयुगं	१.७.४५
आदौ प्रादुः	३.६.६
आद्रिकाप्सरसा	२.१०.५७
आद्रिकामत्	२.१०.७४
आद्य एष	२.९.७५
आद्यन्तं वै	३.४.२६
आद्यादि लक्ष्मीः	३.३९.६६
आद्यायाणु	३.३९.९
आद्ये कृते	१.३१.५
आद्ये मन्वन्तरे	२.१.७
आद्यो वेदः	१.३४.७
आद्यो हि	१.४.२९
आधिपत्यं विना	१.५.१११; ३.२.८१
आधिपत्यं विमाने	१.६.३२
आध्वर्यवं	१.३४.१८
आनकाः पणवाः	३.१६.४
आनकानां च	२.७१.१४७
आनन्त्यय	२.१९.८
आनन्दं च	१.१४.३९
आनन्दं दुन्दुभेः	१.१९.१६
आनन्दं ब्रह्मणः	३.२.७८; २.८०
आनन्दध्वज	३.२९.३६
आनन्दपूरिता	३.३३.७२
आनन्दयन्	३.३०.४७
आनन्दवापिका	३.३५.२७
आनन्दाश्च	१.१९.२२
आनन्दिता	३.३०.४८
आनयत्मात्म	१.२२.५५
आनर्चुः स्म	१.२.३०
आनर्त्तविषयो	२.६१.२०
आनलं कुण्ड	३.३६.१४
आनागतं	२.३२.४४
आनिन्ये सागरा	२.५६.४४
आनीय पित्रे	२.३५.१६
आनृशंस्येन	२.६८.६७
आनौपम्यमिदं	१.१.१५७
आपगां च	२.१४.८४
आपत्कालेषु	३.२६.१७
आपत्सु ब्राह्मणो	३.६.५९
आपत्स्वात्मार्थके	३.६.५१
आपातालतलं	२.५३.१५
आपातालाद्	१.१९.१७२
आपीतं खलु	३.२.२६८
आपीठमौलि	३.४०.२०८
आपूरयन्	१.२३.६१
आपूर्यमाणो	१.१९.१३२
आपोऽग्निः	१.५.६६;७.१८
आपो ग्रसन्ति	३.३.७
आपोऽग्रे सर्वगा	१.५.१
आपो दशगुणेन	१.३.३२
आपो नाराः	१.६.६२
आपो नारा इति	१.५.५
आपे मूर्तिः	३.१.७०
आपो वातश्च	१.२३.१५
आप्याययत्	१.२८.३०
आप्यायितः	२.१०.६
आबभाषे कृपा	१.२६.५२
आभाति यस्मात्	१.५.१३३
आभूतसंप्लव	१.११.२०
आभूतसंप्लवात्	१.११.३८; ३६.९३; ३.१.२००
आभूतसंप्लवान्ते	१.२१.१७५
आभूतसंप्लवे	३.२.२७१
आभूतसंप्लवो	३.१.२३६
आभूतेभ्यः	३.१.२३७
आमन्त्रितस्तु	२.१५.३३
आमन्त्र्य मनसा	३.४०.१३७
आमावस्यां	१.२८.६०
आमीवक्ताश्च	३.३४.५०
आमूलमाब्रह्म	३.३८.७०
आमूलाग्रं	३.३४.६१
आमृष्टरोष	२.२७.७
आमोदप्रमुखा	३.२७.८१
आमोदो दुर्मदः	३.४४.६८
आमोदं परमं	३.१३.३६
आम्रादीनां	१.१.५२
अयच्छतः	३.३४.१९
आयतिः	१.११.६
आयतो हि	१.१६.११
आययुः समरे	१.३९.३
आययुः सर्वे	२.१.२९
आयश्चापि	१.३६.११

आयसं पात्र	१.३६.२१०
आयस्यपुत्रो	२.३.२४
आयातायात	३.२४.२४
आयामतश्च	१.१५.५३
आयामादथ	१.१५.५७
आयामोऽपि	३.३१.४७
आयु: कीर्ति	३.७४.२७७
आयु: क्षेत्राणि	३.७२.३१
आयु: प्रमाणं	१.१५.६८; १७.१४
आयुधानि	२.२८.१०४
आयुरयमव	१.२.२५
आयुर्दानो	१.३६.१४
आयुर्नाशन	३.२९.७३
आयुर्मेधा	१.३१.४२
आयुर्वेदं	२.६७.२४
आयुर्वेदविकल्प:	१.३१.२३
आयुषो महिष:	१.१२.४०
आयुषोऽन्ते	१.७.३७
आयुष्मता	२.२३.४२
आयुष्मांश्च	२.७४.९४
आयुष्मान्	२.१.१२५
आयुस्तदा	२.७४.२२१
आयो: पुत्रा	२.६७.१
आरब्धास्ता	१.७.९३
आरम्भन्ते तु	३.२.३०
आरम्भयज्ञा	१.२९.५५
आराधय	२.३१.७६
आराधयद्	२.२२.७९
आराधयितुम्	१.२७.५८
आराधिता	२.३.५९
आराध्य च	३.८.३७
आराध्य तस्मात्	२.५६.३८
आराध्य वचसो	१.६.२
आरुणिश्च	३.१.७९
आरुरोह भृगु	२.२२.४४
आरुह्य कुन्त	३.२३.४८
आरुह्य विविधं	३.२४.४१
आरूढयाना:	३.२८.९
आरोग्यायु:	१.३७.५९
आरोहणेन	२.६२.८
आर्चीको जनया	१.६६.६२
आर्तवा ऋतवो	१.२८.६८
आर्तवाश्च	१.२१.१५२
आर्तवा:	१.१३.२०
आर्तव्या:	३.३२.६४
आर्षाणि	१.५.९६;८.६६
आलक्ष्य	२.४०.३९
आलबेषु	१.३०.१३
आलम्बि	१.३५.१३
आलयं	१.२०.२३
आलोकस्तस्य	१.१९.१५१
आलोककंकण	३.२२.५३
आलोलचामर	३.१६.२७
आलोलवलय	३.१७.४७
आवश्योर्भगवन्	२.६७.८२
आवर्तन्ते पुन:	१.७.२४
आवर्तमाना	१.१३.८१; ३१.१४५
आवर्तमानास्ते	१.७.२८
आवाहनी	३.४२.२
आविकं	२.१४.२७
आविद्धं	२.७०.८
आविर्बभूव	३.९.६५
आविर्भावं	३.६.३
आविष्कुर्वन्	२.२४.१२
आविहोत्र	१.१३.११४
आवृत: पशुभि:	१.१९.२९
अवृत्तोत्तर	३.२५.५१
अवृतास्तमसा	१.८.७
आवृत्ता वाल	१.२२.४९
आवेक्षमाण:	१.१३.१२८
आशामयेन	२.४.१८
आशीभिरभि	२.२५.८९; २८.१४
आशीभिरेनं	२.३२.३४
आशीर्यज्ञ:	१.३३.४५
आशीर्वादेन	३.२०.१०५
आशीर्वादै:	१.३६.१७३
आशुषेण:	३.३४.३४
आश्चर्यं परमं	२.७२.६०
आश्चर्यं ब्रुवतो	३.२६.१०५
आश्रमं पुण्य	३.२६.४३
आश्रम: कस्तव	२.६८.३८
आश्रमप्रत्यव	३.२.१७४
आश्रमाचार	१.१४.३१
आश्रमादभि	२.३०.११
आश्रमानथ	२.७०.१०
आश्रमाभ्यन्तरे	२.४४.१०
आश्रमे तिष्ठ	१.२७.३४
आश्रमोऽवावनो	२.१५.३४
आश्रयं सर्व	२.५७.३१
आश्रयान्मयि	१.१३.१४०
आश्रया: पुण्य	१.२४.९८
आश्रित्य रुद्रा:	३.३३.९६
आश्लेषसु	२.१८.५
आश्वका वर	३.२२.५५
आसंयमात्	१.३.८
आसनस्थं	३.१०.२९
आसनारूढं	२.१४.५३
आसन्नभृत्य	२.२७.३९
आसन्नमरणा:	२.५३.२५

आसन्मन्त्राः	१.२९.५०
आसवस्य	३.७.६३
आससाद	२.७.७४;६३.५८
आसांचकार	१.२७.४१
आसां मध्ये	३.१७.३१
आसीत्त्वैड	२.६३.१८१
आसीत् पुर	२.७०.४७
आसीन्द्रि	२.७४.१५
आसीदिह	१.३७.१
आसीनन्	१.९.७५
आसीनाश्च	३.३४.२
आसीन्महिष्म	२.६९.६
आसीन्मुनिः	२.२५.६६
आसुरायण	१.३५.४६
आस्तिकः सर्व	२.५०.१३
आस्ते रक्त	१.२०.४
आस्थाय रूप	१.५.१५
आस्थितं	२.२४.६२
आस्फोट्यते	३.३५.९
आस्यतामिति	३.४९.४२
आहताश्च ततः	२.१.११
आहरत्स मरुत्	२.६८.२
आहर्यो ह्यजः	१.३२.१०९
आहुकश्चाप्य	२.७१.१२८
आहुतश्चा	२.२१.९
आहुतेषु च	१.३०.१४
आहूय कंचन	२.२७.२१
आहृत्य दक्षि	२.११.९१
आहृत्य षोडश	३.३१.२०
इ	
इक्ष्वाकूणां	२.७४.१०६
इक्ष्वाकौ	२.६३.२१
इध्यातप्यौ तथा	३.३४.३९
इच्छन् दहेयं	१.३६.१३९
इच्छयावृत्य	१.३.३५
इच्छाद्वेष	१.२१.११५
इच्छाविहारो	३.५.२०
इज्यते मुनिभिः	१.९.४
इज्याधम	२.१.८०
इज्यावेदा	१.३२.४४
इङ्गत्सरः	१.१३.११५
इडा च पिंगला	३.३३.७०
इडावत्सरः	१.२१.१३२
इतः परं	३.२३.४
इतः स्वर्गश्च	१.१६.७
इतरेषु ससं	१.२९.२६
इतस्ततः	३.२९.२६
इतस्ततः खण्ड	३.२३.५७
इतस्ततः प्रच	३.२२.१०१
इतस्ततः प्रव	३.२२.३९
इतस्ततः शक्ति	३.२२.४६
इतस्ततो	३.२४.७९
इति कर्माणि	२.४.१९
इति कारण	३.३१.१३; ३१.२६
इति कृत्वा मतिं	२.५३.१२
इति कृत्वा महत्	३.२८.११४
इति चिन्ता	२.३४.१८
इति तद्वचनं	२.३०.४७; ४७.४५; ३.७.२३
इति तस्य वचः	३.२१.११; २३.३८; ५८.८; ५८.१३;३.५.३५; ७.४६;७.५६; १०.१३;२७.२५
इति तस्या वचः	३.२२.८८
इति तान् भर्त्सं	३.२५.८६
इति तेऽभिहितं	२.३६.५६
इति ते कथितं	३.४०.१४२
इति ते तत्त्वतः	३.३९.१४४
इति ते मन्त्रिणी	३.२७.६१
इति तेषां वचः	२.२८.८; ४८.३८
इति तैरभि	३.२३.७८
इति दत्त्वा वरं	२.५१.३२; ३.११.३८
इति द्वादशभिः	३.३४.८४
इति निश्चित्य	३.२६.७७
इति पुत्रा	२.६.१३
इति पूर्वं वरः	३.२४.६६
इति पृष्टस्तदा	२.२५.७१; २६.१
इति पृष्टो भगवता	३.५.१३
इति पृष्टो महेशेन	३.१०.३२
इति प्रणम्य	३.१७.४३
इति प्रसूति	२.७१.२६५
इति भण्डवचः	२.२३.६
इति भण्डस्य	३.२६.११२
इति भण्डासुरे	३.२४.८
इति मन्त्रित	३.२५.३३
इति मातंग	३.३१.१०६
इति माया	३.४७.५२
इति रोषस्खलद्	३.२७.१७
इति वाक्यं	३.३५.८
इति विज्ञापिता	३.१५.११
इति व्याहृत्य	२.७३.३७
इति शंकाकुल	३.२६.७
इति शप्त्वा	३.६.२९
इति श्रीललिता	३.१९.९३; २६.८४;३०.६५
इति श्रीवासु	३.९.५५
इति श्रुत्वापि	२.५७.३७
इति संख्या	१.३५.८३

इति संचित	२.३०.४
इति संतर्जयन्	३.२२.८३
इति संप्रार्थित:	३.१०.४८
इति संप्रेषित:	३.२२.७२
इति संप्रेषित:	२.२४.३२
इति संस्तूयमान:	२.२५.३२
इति स्तुतस्तदा	२.२५.३२
इति स्तुत्वा महा	३.१३.२९; ३९.४३
इति स्तुत्वा महे	३.३०.४३
इति स्तुत्वा स	३.४०.१३०
इति स्वामि	३.२२.७५
इतिहासपुराणस्य	१.३४.१६
इतिहासपुराणाभ्यां	१.१.१७१
इतिहासमिमं	३.४.५६
इतो विदूरे	२.३७.४
इतो व्रज त्वं	२.३१.१९
इत्थं कथयतोरेव	३.९.३८
इत्थं कुरुण्डे	३.२२.१०७
इत्थं तिसृभि:	३.३५.४८
इत्थं देवीप्रभावेण	३.४०.८६
इत्थं निर्दिश्यमाना:	३.२८.८५
इत्थं पालयत:	२.५०.२१
इत्थं प्रचण्ड	३.१८.१९
इत्थं प्रचलिता	३.२९.२७
इत्थं प्रचलिते	३.२८.३४
इत्थं प्रवर्तं	२.२१.१; २१.४
इत्थं प्रववृते	३.५९.५५
इत्थं बहुविधं	३.२८.७९
इत्थं बहुविधत्राणं	३.२०.८६
इत्थं भण्ड	३.३७.९७
इत्थमेव	३.३७.९९
इत्थं रात्रौ	३.२५.१०७
इत्थं वरप्रदानेन	३.२८.९१
इत्थं विचित्र	३.३५.२३
इत्थं विधाय	३.२९.१४५
इत्थं विमृश्य	३.४०.३३
इत्थं विमोहन्तं	३.३०.८५
इत्थं शक्रादि	३.३४.५३
इत्थं श्रीरश्मि	३.३६.२८
इत्थं समस्ते	३.२९.१३७
इत्थं सम्मोहिता	३.३०.१०६
इत्थं सुरक्षितं	३.२६.४२
इत्यन्तराण्येव	१.३५.२१०
इत्यन्योन्यं	३.२६.६७
इत्यर्कपितृ	१.२८.९७
इत्यश्रमेण	२.२७.३२
इत्याज्ञप्त	२.४५.५३
इत्यात्मनस्तु	३.४४.१५१
इत्यादिलक्षणं	१.२९.४५
इत्यादिश्य	३.५.३८
इत्यादिश्य तिर:	३.४०.४६
इत्यादिश्य ददौ	३.७.५१
इत्याभाष्य	३.२१.१००
इत्युक्तं तु समा	२.४२.४५
इत्युर्क्त: कथ	१.१३.४३
इत्युक्त: प्रणि	२.४४.३५
इत्युक्त: प्राह	२.४४.३३
इत्युक्त: सग	२.५१.१९
इत्युक्त: स निरा	२.६३.८२
इत्युक्त: सविष	३.२१.६२
इत्युक्तमात्रे	१.३०.३१
इत्युक्तवन्तं	३.४०.९६
इत्युक्तवन्तं रामं	२.३५.५१
इत्युक्तस्तेन	२.२४.७३
इत्यक्तस्तेन	२.४४.१
इत्युक्तस्तेन भूपाल	२.२८.१९
इत्युक्तस्तेन मुनिना	२.२९.५
इत्युक्तस्तेन सं	२.२८.२५
इत्युक्तस्तेन स:	२.५३.७
इत्युक्तस्तै रुषा	२.२१.१८
इत्युक्तस्तौ	२.३०.३३
इत्युक्ता रेणुका	२.५२.२०
इत्युक्तास्तेन	
इत्युक्ते तेन	२.२७.१४
इत्युक्ते त्वथ	१.१०.३०
इत्युक्ते दण्ड	३.२८.५८
इत्युक्ते दिन	३.२४.६१
इत्युक्ते यत्	१.१०.३८
इत्युक्ते वचने	२.३४.२७
इत्युक्ते सति	३.२५.८३
इत्युक्तो देव	२.२५.३५
इत्युक्तो भगवान्	३.३९.११०
इत्युक्तो विभुना	२.७४.३२
इत्युक्त्वा खड्ग	२.४५.८
इत्युक्त्वा तं	२.२४.१५
इत्युक्त्वा तु	२.२५.५९
इत्युक्त्वा तेन	३.९.४६
इत्युक्त्वा प्रे	३.२४.९२
इत्युक्त्वाभक्ति	३.४३.२६
इत्युक्त्वा भगवान्	२.५१.४५
इत्युक्त्वा भंड	३.२२.३०
इत्युक्त्वा भार्गव	२.४१.४१
इत्युक्त्वा भार्गवो	२.४१.५१; ४४.४१
इत्युक्त्वान्तर्दधु:	२.४७.३३
इत्युक्त्वान्तर्दधे	३.२४.२८; ३.६.६६
इत्युक्त्वा मन्त्रिणी	३.२६.२८
इत्युक्त्वा राज	२.५४.१८
इत्युक्त्वा वचनं	२.३०.४१
इत्युक्त्वा विष	२.३८.१६

इत्युक्त्वा शंकर: २.३२.५६
इत्युक्त्वा शत ३.११.३३
इत्युदीरित ३.२७.३३; ४०.१३६
इत्येत असुरा: २.६.१४
इत्येतत् कीर्तितं २.७३.१२५
इत्येतत् परमं १.२५.९७
इत्येतत् लक्षणं १.३१.१२१
इत्येदं गिरा: २.२०.१९
इत्येतदन्तरं १.३५.२१५
इत्येतदमृतं ३.२.८४
इत्येन्मण्डलं १.२४.४५
इत्येन्मानवं २.७४.१०७
इत्येता औष १.७.१४६
इत्येता मूर्च्छना: २.६१.५२
इत्येता वृत्तय: २.४.३७
इत्येतास्तनव: १.८.२२
इत्येतास्तनवो २.३.११९
इत्येतास्तस्य २.७३.११२
इत्येता ह्यमि २.७.३८४
इत्येते अपरान्ता: १.१६.६३
इत्येते ऋषय: १.३२.१००
इत्येते ऋषिका: १.३२.१०३
इत्येते क्रूर २.८.५७
इत्येते दुर्मदा: ३.२६.५०
इत्येते द्वादश २.३.६९
इत्येते नव २.७४.१४९
इत्येते पर्वता: १.१९.४३
इत्येते पावक १.१२.३८
इत्येते पितरो १.१३.२६; २८.९४;२८.९५; २.९.३५;११.९०; २०.१
इत्येते प्राकृता: १.५.५५; ५.१०६
इत्येते बहु २.७.२५
इत्येते ब्रह्मण: १.९.२५; २.१.४७
इत्येते वाजिन: १.३५.३०
इत्येते वै नृपा: २.७४.१७०
इत्येते सिंहिका २.६.२१
इत्येते ह्यमिताभा ३.१.१८
इत्येतै: कारणै: १.२१.१७३
इत्येतै: पीय १.२३.६९
इत्येतै: सप्तभि: १.१४.५४
इत्येवमादय: ३.२१.९०; ३३.३७
इत्येवमादयो २.१.५५; ७.४५७
इत्येवमादि २.७.४२४
इत्येवमादिर्हि २.७.४२८
इत्येवमुक्त: २.२३.२४
इत्येवमुक्त: स २.३२.३६
इत्येवमुक्त: संक्रुद्ध: २.२८.७५
इत्येवमुक्तो २.२२.१
इत्येवमुक्त्वा २.३२.३३; ३५.३५; ३८.३८
इत्येवमृषिभि: १.२९.२२
इत्येवमेषा २.३३.५६
इत्येवं कारणाद् १.५.९७
इत्येवं कृष्ण २.३६.४२
इत्येवं चिन्त २.२८.३१
इत्येवं जामदग्न्यं ३.३७.२५
इत्येवं तद्वच: २.३२.४७
इत्येवं धन १.३४.४४
इत्येवं परि २.३२.४६
इत्येवं प्रथमं १.६.१
इत्येवं मानसै: १.७.४०
इत्येवं विलपन्तो २.३०.१४
इत्येवं संनि १.१९.३२; २४.१२७
इत्येवं सान्त्व २.३०.२७
इत्येष एक १.२३.४४
इत्येष कीर्तित: १.३५.१७५
इत्येष कृत्यविद् २.५०.३२
इत्येष जाम २.४८.६२
इत्येष धातकीखण्डे १.१९.१२५
इत्येष निचयो १.१२.५३
इत्येष प्रति १.६.७६; ३.३.११३
इत्येष प्राकृत: ३.३.११२
इत्येष मानुषो १.३२.८
इत्येष व: ३.१.२४२
इत्येष विचय: १.२८.९६
इत्येष विषये २.३.६५
इत्येष वैषयो ३.३.४८
इत्येष वैसु १.९.६३
इत्येष वो २.७४.२७८; ३.४.३४
इत्येष संनिवेशो १.१९.१९१
इत्येष सस्थिति १.३५.१७१
इत्येष ह मया १.३८.३३
इत्येषा तामसी ३.३.५३
इत्येषा समनु १.१३.८७
इत्येषोऽनुग्रह: १.५.१०४
इदं च शृणु ३.८.३५
इदं चोक्त २.१०.२७
इदं त्विदमिदं १.३३.५२
इदं परमिदं २.३.९७
इदं यो ब्राह्मणो ३.४.४७
इदं रहस्यं ३.८.५८
इदं राम महा २.२६.५७
इदं विष्णु ३.८.५२; ५६
इदं शृणु ३.२९.४
इदानीं चैव ३.२२.८०

इदानीं श्रोतुं	३.३९.१०९	इमं वृत्तान्तं	३.१०.४०; २६.२; २७.९८	इष्टेनान्नेन	२.१२.२३
इदानीमपि	३.३८.२			इह सर्वाभि:	३.२७.४६
इदानीमेव तां	३.२१.६९	इमं वंशं	१.१३.१५१	इहाभ्येति तत:	१.२२.५६
इन्दिरा च	३.२७.१६	इमं श्राद्धविधिं	२.१८.१५		ई
इन्दीवर	३.३९.७५	इमं स्तवं	१.२६.६५	ईषमाणा:	२.७.७८
इन्दोश्चन्द्रत्वं	३.३४.७७	इममेकं सहध्वं	३.२६.५८	ईदृक् च	२.५.९७
इन्द्रगोपक	३.३८.४०	इमां विशृष्टिं	१.३७.५५;	इदृक् चैव	२.५.९६
इन्द्रगोपनिभा:	२.३८.६५		२.२.३२; ७०.४९	ईदृशस्त्वं	२.२८.४५
इन्द्रत्वमखिलै:	३.९.४५	इमांश्चोदा	२.७१.१२२	ईदृशीत्रो	३.२८.५२
इन्द्रद्वीप:	१.१६.९	इमानि सर्व	३.१९.९५	ईशान: सर्व	३.३४.९१; ३९.५१
इन्द्रद्वीपसमुद्रं	१.१८.५८	इमान्नरस्य वै	१.१.५		
इन्द्रनीलाख्य	३.३३.५०	इमां गायन्ति	३.३८.७६	ईशानस्य	१.१०.७९
इन्द्रप्रमति	१.३४.२८	इमां मनोभव	३.३०.८४	ईशान्यां पुण्डरी	३.३४.८०
इन्द्रबाधनकेशी	२.६.१६	इमां मिथ्याभि	२.७१.९९	ईशित्वं च	३.३६.५१
इन्द्रश्चैव	१.२३.९	इमे च ऋतव:	१.१३.१२	ईशिरे चैव	१.१.१६०
इन्द्रस्यापि हि	१.२७.२३	इमे च वंशानु	२.६.१५	ईशोऽहमस्य	२.२३.१८
इन्द्रस्येन्द्रत्वं	३.३८.३९	इमे देत्यगणै:	२.२४.६७	ईश: सर्वजगत्	३.६.७०
इन्द्रादयस्तथा	१.२७.१२७	इमे वै जनयि	२.१.६४	ईश्वर: सर्व	१.१३.१३७
इन्द्रादयस्सुरा:	३.१०.२२	इमौ च शिष्यै	२.७३.५८	ईश्वरस्य कला:	३.३५.९७
इन्द्रादीनां च	२.११.२४	इमौ चाक्षय	३.१७.४२	ईश्वराणां	१.३२.९०; ३२.९८
इन्द्रास्त्रयस्ते	२.७२.९२	इयं तन्तुधना	२.७.८५		
इन्द्रियाणां मनो	२.१३.१४०	इयं ब्रह्मधना	२.७.८४	ईश्वरात् स्वयं	१.३२.८८
इन्द्रियार्थेषु	३.४१.७९	इयमम्बा जगद्	३.८.३३	ईश्वराद्बीज	३.२.२३१
इन्द्रियैरजितै:	१.२७.११९	इदं महांकुशा	३.४२.११	ईश्वराधिष्ठिते	३.१.२३४
इन्द्रेणैव स	२.७२.८०	इयं रतिर्भर्तृ	३.३०.३७	ईश्वरैस्तत्	३.२.११०
इन्द्रोतो नाम	२.६८.२५	इयाज च परां	३.६.६७	ईश्वरो दण्ड	१.१९.१४६
इन्द्रोऽपि स्वपरुं	३.६.३१	इरावत्या:	२.७.३२६	ईषत्प्रस्वेद	३.१७.२९
इन्द्रो वह्नि:	३.२४.४	इरावत्यास्तथा	२.७.२९१	ईषद्भ्रूभङ्ग	३.३८.४५
इन्द्रो विवस्वान्	२.३.६८	इलावृतं चतु	१.१७.२२	ईषद्भ्रुकुटि	३.२५.७५
इमं चोदा	२.३.११०	इषश्चैव	१.१३.१०		उ
इमं तु वंशं	२.७.४७९	इषश्चीश्च	२.३२.३४	उक्तं श्राद्धं	२.१५.४
इमं पवित्रं	३.२९.१४८	इषोर्ज्जश्च	१.३६.३८	उक्तं च विष्णो	१.१.१३२
इमं प्रसंगं	३.२५.११	इष्टद्रव्यं च यो	२.१६.२७	उक्तमेवाक्षयं	२.१३.६७
इमं विधिं यो	२.१९.७३	इष्टापूर्तव्रता	३.२.१७५	उक्त्वा चैवं	१.१.१५

उखास्थमग्नि १.१९.१३३
उग्र: प्रज्ञो १.३६.५३
उग्रसेनो महा २.७१.१३५
उग्रस्त्वं देव १.१०.१६
उग्रा तेजवती ३.४४.७३
उग्रेण तपसा २.१५.४०
उग्रे तपसि ३.१२.४६
उग्रो भीम: ३.३४.४१
उच्चत्वाद् १.२४.११४
उच्चावचानि १.५.८९
उच्चावचै २.२६.६१
उच्चैर्घोषा ३.३४.१३
उच्छिष्टस्य च २.१४.१०२
उच्छिष्टे २.१४.९९
उच्छ्रयस्य १.२१.५३
उच्छ्रयात् २.७.११०
उडीरां च ३.४४.९८
उतथ्यश्च १.३२.११०
उतथ्योतमकौ ३.१.५९
उतथ्यो वाम १.३२.९९
उत्कर्णा: क्रोध ३.२३.५८
उत्कलश्च गय: २.६०.१८
उत्कण्ठया ३.३८.५५
उत्कृष्टबल २.७.१५४
उत्तकं दर्शया २.६३.६०
उत्तंकस्य २.६३.५१
उत्तप्तहेम २.२७.५
उत्तमस्य मनो: २.४.२९
उत्तमा तत्त्व ३.४३.७२
उत्तमानां दशा १.१६.६४
उत्तमा भक्ति २.३४.४०
उत्तमा मध्यमा २.३४.३८
उत्तमो भार्गव: १.३६.७७
उत्तमं मार्ग १.२४.६२
उत्तरप्रक्रमे १.२१.९८
उत्तरं मानसं २.१३.११७
उत्तरं यत्समु १.१६.५
उत्तरं यदप: १.२१.१५९
उत्तरं सवितु: १.२१.१६९
उत्तराकोशले २.६३.२००
उत्तरां दिशं १.२६.१८
उत्तरा: कुरव: १.१५.५१
उत्तरादिस्वर: २.६१.४४
उत्तराणां १.१९.१२४
उत्तरान् सा २.५९.४६
उत्तरापथ २.६३.१०
उत्तराया: १.२१.७४
उत्तरासु च १.२४.११८
उत्तरे चैव १.२१.५९
उत्तरेण महा २.१४.३२
उत्तरेणाहरेद् २.१४.९८
उत्तरे तु ३.२२.२५
उत्तरे वप्र २.६२.३७
उत्तरे वै १.१५.७१
उत्तरे सम्प ३.३६.२१
उत्तरेषु तु १.१९.५९
उत्तरे हलधृग् ३.३४.७८
उत्तरोत्तर १.१८.८३
उत्तानं वदनं ३.२८.७८
उत्तानपादात् १.३६.८७
उत्तिष्ठति पुन: १.२४.२०
उत्तीर्यमाण: २.५७.७२
उत्तुगहनु २.२३.१०
उत्थापितो २.२४.२४
उत्थयोत्थाय २.२५.४
उत्थितश्च २.४४.६५
उत्थिता ३.९.६७
उत्पत्तयश्च १.१.११५
उत्पत्तिं निधनं २.५.२
उत्पत्तिरादि १.१०.२
उत्पत्तिश्च १.३७.५२
उत्पत्यगगनात् ३.२३.७३
उत्पद्यमाना: २.७४.२६१
उत्पन्न: कलशात् २.६७.११
उत्पन्न: स कथं १.१३.४२
उत्पन्ना: कलि १.३१.१०४
उत्पन्ना: प्रथम १.७.१४८
उत्पन्ना चापि १.३६.८८
उत्पन्ना महता २.१.१०४
उत्पन्नास्तु २.१०.८५
उत्पन्नौ शूद्र २.७४.७५
उत्पातवात ३.१६.१३
उत्पातानां ३.२१.७
उत्पादयामास २.६५.४५
उत्पादित: २.७.१४२
उत्पादितवती ३.२१.६७
उत्पादिता: २.१.४९
उत्पादिता महा २.७.१४५
उत्पादिता: सुधो २.७.१५१
उत्साद्य पार्थिवा २.७४.१९१
उत्सारितार्णव २.५७.१४
उत्साहेन फलं ३.२७.४९
उत्सिक्तबल २.७.३२२
उत्सृष्टे स्वे च २.५.८
उदकस्यायनं २.१९.१३७
उदकायनं २.१३.२६
उदक्पूर्वे बलिं २.१२.२१
उदक्पन्थान १.२१.१७१
उदक्यां सूतिकां २.७४.८८
उदग्दक्षिणतश्च १.१७.१७
उदग्धिमवत: १.२२.५३
उदतिष्ठञ्शिखा: ३.१.१५५

उदपद्यन्त	२.८.९३
उदयत्सहस्रमहसा	३.१८.२
उदयात्प्रथमं	१.१९.९१
उदयास्थमने	१.२१.६२
उदयास्तमया	१.२१.४९
उदयी भविता	२.७४.१३२
दरस्थेषु	१.२६.११
उदरे धवल	३.२०.७१
उदर्षिर्भद्र	२.७१.१७५
उदारधे: सुतं	१.३६.१०१
उदारवंशाभिजन	१.३५.२१२
उदावसोस्तु	२.६४.७
उदिते हि पुन:	१.२१.५७
उदितो वर्द्धमानाभि:	१.२१.४८
उदीच्यान्मध्य	२.७३.१०७
उदीर्णा राक्षस	२.७.१४०
उदीर्णे राक्षस	१.२०.४६
उद्गात्राद्रींश्च	२.७२.२९
उद्गातान्त्रो	१.५.२२
उद्गीथस्तस्य	१.१४.६७
उद्दण्डपोत्रनिर्घात	३.२०.४
उद्धतैरुद्धतालापै:	३.३८.७९
उद्धरिष्यति	२.७४.१४७
उद्धृत्योदकमादाय	२.१४.७२
उद्धृत्योर्वीमथ	१.७.८
उद्यद्भास्कर	३.३७.६६
उद्धूतैर्धूलिका	३.२३.१३
उद्यन्सतिष्ठति	१.१०.२६
उद्यमे क्रियमाणे	३.२४.६९
उद्वर्तितश्च	३.३८.२०
उद्वाहे किल	२.७१.२२६
उद्वेजनीया	२.५३.४३
उद्वेजनीया	३.५७.६४
उद्वेलतामित:	३.३६.२५
उन्मत्तभैरवी	३.३६.२५
उन्मत्तामुप	३.४४.४७
उन्मत्ताश्चित्त	३.२.१७२
उन्मादको	१.१३.१३८
उन्मादिनीति	३.७.६७; १९.६६
उन्मीयत्तदा	२.५३.२९
उन्मील्य नयने	३.४०.२०
उन्मुखा विमुखा:	१.२३.१०६
उपगच्छन्ति	१.१८.४४; १८.६३
उपगम्या जु	१.५.२४
उपगम्याब्र	१.३७.३४
उपतस्थुर्महा	२.१०.३९
उपतिष्ठन्ति	१.७.१५५
उपत्यकशिला	२.२२.१३
उपदाभिरनेका	२.५५.१८
उपदेक्ष्यति	२.३४.५२
उपनिन्यु:	२.६६.२८
उपपातक	२.१५.४७
उपबिम्बोऽथ	२.७१.१७३
उपबृंहितवान्	३.९.६३
उपबृंहितवान्नागं	३.९.६४
उपभोगसमर्थैस्तु	३.२.१८९
उपभोगसमर्थैश्च	३.१.१४५
उपभोज्य:	२.६६.३९
उपमंगुस्तथा	२.७१.१११
उपयुक्ता:	१.३२.१७
उपयेमेऽन	२.७.१२०
उपरागे न	२.१४.४
उपरिष्टात्	१.२४.११०; २.९.५६; ३.२.१७८
उपरिष्टान्निप	२.२२.२३
उपर्याच्छादनं	३.३४.८८
उपर्युपरि	३.२३.४१
उपलबुमिमे	२.५८.५
उपवासतपो	२.२४.४२
उपवासनि	२.१३.१३८
उपविष्ट:	२.३६.८
उपविष्टे	१.१.२२
उपशान्ता	२.५०.४४
उपस्थिता	१.३५.२००
उपस्थिते	१.७.१९०
उपहार:	२.११.९६
उपहूता	१.१३.३४; २.१०.८९
उपह्वरनितम्ब	२.१२.१२८
उपांशुव्रत	२.६३.९२
उपागतस्त्वया	२.२६.५५
उपान्तोपल	२.५७.३२
उपायं कुरु	२.३१.३६
उपाविवेश	२.२१.६२
उपासत	२.३६.७
उपासन्ते	१.१९.१४२
उपास्यते	१.२०.५४
उपास्यमानं	२.२४.६०
उपेत्य मुनि	२.२६.४५
उपोषिता:	३.८.८
उपोष्य तच्छेष	३.८.१६
उभयं दन्तिन	२.७.३५३
उभयो: काष्ठयो:	१.२१.९७
उभयोर्गुण	३.३१.९९
उभावेव समेतौ	३.२८.२
उभौ तौ नार्हत:	२.१५.५२
उमया रममाणं	२.६०.२४
उमां देव:	२.१०.२६
उमा तासां	२.१०.१७
उमा तुंगे भुगो	२.१३.८८

उमापि तं ३.१०.७२
उरोभिर्मर्द ३.२७.९५
उर्ध्वाध: ३.२.१८७
उर्वशी चक्रमे १.२.१६
उर्वशी पूर्व १.२३.१८
उर्वशी मानुषं २.६६.१५
उर्वशी विश्व १.३३.१८
उर्वश्यां जज्ञिरे २.६५.४६
उर्वी सागर २.१५.९
उलूकजित् ३.२८.६
उलूको नाम २.६३.२०५
उलूखलस्य २.११.६५
उल्लासयन् ३.२२.८
उवाच कुटि ३.२९.१०
उवाच तां ३.२८.४८
उवाच निज ३.२१.९५
उवाच परमं १.२४.४
उवाच प्रणता २.३६.१३
उवाच प्राञ्जलि: २.५.१०२
उवाच भगवन् २.४७.९४
उवाच भय २.७.२६३
उवाच भार्गवं २.३९.४६
उवाच ममता २.७४.३८
उवाच वसु १.७१.२१०
उवाच शृण्वतां २.४९.४४
उवाच श्लक्ष्णया १.२७.३२
उवाचादित्य २.७.२८८
उवाचापनयन् २.३०.३०
उवाचेदं न २.७३.४८
उवास तत्र २.४७.१६
उशद्रथो २.७४.२५
उशना: स २.७०.२४
उशनास्तस्य २.६५.३१
उशिगग्नि: १.१२.३०
उशिजस्य २.७४.३७
उशिजो नाम २.७४.३६
उशीनरं च २.७४.१७
उषित्वा रजनीं १.६.५०
उष्ट्रांश्चैव १.८.४५
उष्ट्रारोहा ३.२२.१६
उष्णस्योष्ण १.१४.२५
उह्यमान: २.७४.३५

ऊ

ऊचु: प्रजापतिं २.७.२८०
ऊचु: सनत्कुमा ३.२.७४
ऊचु: सर्वे २.१.१६
ऊचुश्च तं २.२८.४
ऊचुस्तत्पितर: २.४७.२३
ऊचुस्तान्वै. २.९.५९
ऊनमासाधि १.२१.१५०
ऊनषोडश १.३१.५९
ऊरु: पुरु: १.३६.७९; ३६.१०६
ऊर्जस्वी ३.१.११५
ऊर्जा वशिष्ठ १.३६.१७
ऊर्जा स्वाहा ३.१.८५
ऊर्ज्जत: पर्वत: २.१३.५३
ऊर्ज्जाश्चैव २.७.१९
ऊर्ध्वकेशं २.७.४४
ऊर्ध्वकेशी ३.४४.८५
ऊर्ध्वं चाधश्च ३.३.१६
ऊर्ध्वदृष्टेश्च २.७.२०५
ऊर्ध्वपुण्ड्रं ३.३८.२२
ऊर्ध्वबाहूर्ध्व २.७.३९१
ऊर्ध्वभावो ३.३.२६
ऊर्ध्वमाचक्रमे २.६५.५
ऊर्ध्वरेता २.८.८८
ऊर्ध्वरेता: २.७४.४७
ऊर्ध्वलोकै: ३.२.१८८
ऊद्र्ध्वस्रोत: १.५.४५
ऊष्मपा: पितरो १.२७.१११
ऊष्मा प्रकुपित ३.३.६५

ऋ

ऋक्षवत् संप्र १.१६.३२
ऋक्षवन्तं २.७१.३९
ऋषाणामेव २.७.३०५
ऋक्षेण निहतो २.७१.४१
ऋक्षो दृष्ट्वा २.७.२१६
ऋक्षो नाम २.७.२१०
ऋग्यजु: १.२५.७६; २.१३.५४
ऋग्वेद १.३४.१४
ऋचश्च यो २.१५.६८
ऋचां दश १.३५.८०
ऋचोयजूंसि १.८.५५; ३२.३५; ३२.६३; ३.१२.१७
ऋज्वायत २.५३.१८
ऋज्वायता: १.१९.६
ऋणं भुङ्क्ते स २.१२.२०
ऋणैस्त्रिभि: २.१३.११५
ऋतजित्सत्य १.२३.२३; २.५.९३
ऋतवस्त्रिंशत: १.२१.१३४
ऋतश्च द्वादश १.३६.१२
ऋतव: पिता १.२८.१७
ऋतवश्च २.५०.१४
ऋतुत्रितय १.२१.१२६
ऋतुधामा १.१२.२४
ऋतुपर्णस्य २.७३.१७५
ऋतुपुत्रा: १.१३.१९
ऋतुपुत्रार्त्तवा: १.१३.१४९

ऋतुतपश्च	३.१.१४
ऋत्विग्द्धिमूर्द्धा	१.३६.२११
ऋद्धमैन्द्रमपि	२.२८.३०
ऋद्धिं दृष्ट्वा तु	२.६१.६
ऋभु: सनत्कुमार	३.२.२४; २.३५
ऋभुर्हंसोऽरुणि:	२.३६.६
ऋष इत्येष	१.१९.१३०
ऋषन्तिरञ्जनादि	१.३५.९७
ऋषभं पार्थिव	१.१४.६०
ऋषभो दुन्दुभि:	१.१८.७५
ऋषयश्चापि	१.१.१९; २५.२
ऋषयश्चैव	१.२.३३
ऋषयस्तद्वच:	१.३४.१
ऋषयस्तपसा	२.२९.५३
ऋषयस्त्यक्त	३.४०.१४
ऋषयस्त्वेवं	२.५९.१
ऋषयोंऽगिरस:	३.२.२९
ऋषयो देव	१.२३.३१
ऋषयो मनवो	३.१.१९८
ऋषयो रोम	२.१.५९
ऋषयास्त्वपि	२.७.४१३
ऋषिकान्ता	२.७४.२१४
ऋषिकुल्या	१.१६.३८
ऋषिपुत्र	१.३३.२८
ऋषिपुत्रा:	१.३३.२२
ऋषिभिर्दैवतै:	१.१४.७५
ऋषिभिर्धर्म	१.३२.६१
ऋषिभिर्यज्ञ	१.३३.४७
ऋषिभिस्तै	१.१.२१
ऋषिभिस्तौ	१.३६.१७०
ऋषिमन्त्रात्	१.३१.१२
ऋषिवंश	१.२९.४३
ऋषीकाणां	१.३२.९३; ३३.१
ऋषीणां वचनं	३.२.२४८
ऋषीणां तारका	१.३२.६९
ऋषीणां देवता:	१.३६.२२
ऋषीणां नैमिष	१.२.३६
ऋषीणां बाल	३.२.२१६
ऋषीणामृषिभि:	१.३४.६८
ऋषीन्देवांश्च	२.२.३
ऋषे: शुश्रूषणं	१.१.३०
ऋष्यन्तरेषु	२.१.११३
ए	
एकं शत	३.२.९३
एक: स तु	२.३.९८
एक आसीत्	१.३४.१७
एक एव	१.२३.१०८
एककर्णात्	२.७.२६५
एककार्याभि:	२.५२.४
एककोटि	३.२.१४३
एकग्राम	३.४३.६४
एकचक्रो	२.६.७
एकत्वेन	२.३.९०
एकदन्तो	३.४४.६६
एकदा तु	३.३४.११
एकदाहं	२.३६.४
एकधा बहुधा	१.२६.४२
एकधा स	१.४.२१
एकनेत्रान्	२.७.३६१
एकं दशशतं	३.२.९२
एकं निन्दति	२.३.९४
एकपत्न्यो	१.३१.४५
एकमेकार्णवे	३.१.१८१
एकमेव फलं	३.९.३२
एकं पवित्रं	२.११.५७
एकं मणिमयं	२.१५.१७
एकयैव	३.२८.१९
एकयोजन	३.२१.२४; ३१.३८
एकविंशत्	२.७४.१२६
एकविंशति	२.३०.७३
एकविंशमथ	१.८.५३
एकशीर्षै:	१.२५.३९
एकसूकात्मज	२.७.३५८
एकस्तु पंच	३.३७.५१
एकस्था यत्र	२.१३.२९
एकस्य नाश	३.२३.४२
एकस्यार्थाय	१.३६.१८७
एकस्यैता:	२.३.८२
एकहस्ताद्	२.९.३६६
एकाकी य:	१.१०.६६
एकाक्ष्या	३.४४.४०
एकाग्र: पर्युपा	२.१२.४१
एकातपत्रां	२.४९.३६
एका तत्र	२.१०.१२
एका तु	३.२४.२९
एकादश	१.१७.८
एकादशानां	३.२.२५७
एकादशे तु	३.१.७३
एकान्ते मन्त्र	३.२५.२
एका पंक्ति:	३.३४.८७
एकाग्रमूले	३.४०.३७
एकाग्रसंज्ञे	३.४०.४०
एकायोजन	३.२.१३९; २.२२४
एकार्णवे तत:	१.५.१३९
एकार्णवे तदा	१.५.२; ३.१.१७९
एकार्णवे भव	१.६.५७
एकावलम्बनं	३.२६.१५
एके विप्रा:	२.१२.३६
एके विवद	२.३.१२३
एकैकमाया	३.२३.५९
एकैकशस्ता	२.४१.१३

एकैकस्माद् ३.२१.४६
एकैकस्य ३.२१.९१
एकैकाक्षौ २.४१.२; ३.२५.३०
एकैव सा ३.२३.७०
एकोत्तरः स्वरस्तु १.६२.१५
एकोनविंशतिं २.७४.१६८
एकोनविंश प्रयुगे २.६३.२११
एको नैकोऽथ १.१३.१२५
एको वेदः १.३१.११
एको वैवस्वतः ३.१.११६
एको हि भग ३.२.२८३
एकौघस्य ३.२६.४४
एत एव त्रयो १.४.९
एतच्चक्रे ३.३६.७३
एतच्छत १.२१.७८
एतछ्रुत्वा गताः १.२६.६४
एतछ्रुत्वा तु ३.१.२२५
एतछ्रुत्वा तु ते सर्वे ३.२.१११
एतछ्रुत्वा तु मुनयः १.२२.२; २४.२
एतछ्रुत्वा तु मुनयो १.१.३२
एतछ्रुत्वा नैमि ३.४.३९
एतछ्रुत्वाऽब्रवीत् १.३०.५
एतछ्रुत्वा स २.७१.२६
एतत्कार्यं न १.२७.४६
एतत्कालं २.७४.२२३
एतत्कालान्तरं २.७४.२२९
एतत्ते चरितम् २.५६.१
एतत्तेऽभिहितं २.५८.३७
एतत्प्रमाणं १.२१.८६
एतत्सर्वं २.२६.४; ५७.१८
एतत्सर्वं तदा १.२६.६६
एतत्सर्वं प्रव १.३८.११
एतत्सर्वं यथा १.२.४६; २७.४
एतत्सर्वं समा १.२४.३
एतत्सूक्ष्म १.२६.६३
एतत्सोमस्य २.६५.४९
एतदाख्यानं ३.१५.५४
एतदायुध ३.२०.३०
एतदाश्चर्य २.७२.६१
एतदिच्छाम १.२७.८५; २.९.१२; ९.४४
एतदुक्तं च २.११.३०
एतदुक्तं मया २.७.२९५
एतदुक्त्वा महा १.२५.१
एतदुक्त्वा महा १.३१.११६
एतदेव तु ३.२७.१३
एतदेव विना २.१.७२
एतदेवं च १.५.९४; ८.६४
एतद्गजानां २.७.३५५
एतद्दत्त्वा १.३०.३७
एतद्दिव्य १.२९.१३
एतद् दृष्ट्वा ३.११.३७; ३०.५२
एतद्ब्रह्मवचः २.९.३६
एतद्रथतरं ३.२०.८८
एतद्रहस्यं ३.३९.१२१
एतद्वः संप्रव १.२७.१०६
एतद्विष्णुपदं १.२१.१७६
एतद्वेदितुं १.१६.३
एतद्वोऽहं १.२४.५; २.९.३८; ३.२.११५
एतं नः संशयं १.३७.५१
एतन्मन्त्रस्य ३.३८.४१
एतन्मन्त्रानु ३.८.३४
एतन्मे स्मृति २.३५.३०
एतयोरावयोः २.४२.५१
एतस्मिन्नन्तरे काले ३.६.१४
एतस्मिन्नन्तरे चैका २.३५.२६
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ३.११.२३
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा २.३२.४८
एतस्मिननन्तरे देवाः ३.११.७
एतस्मिन्नन्तरे देवी २.४३.२०
एतस्मिन्नन्तरे पूर्वं १.३५.१७७
एतस्मिन्नन्तरे राजन् २.३०.५१
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञः २.५१.५३
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः ३.१०.४
एतस्मिन्नेव काले २.७.५२; २४.४६; २६.७; ३०.४२; ५१.३५;५२.२; ५४.५; ५६.२९; ६७.२७; ६७.३२; ७०.१२; ७१.८१; ३१.४.१
एतस्मिन् पुष्कर १.१९.१४५
एतस्या एव ३.४२.५
एतस्याननुभूत ३.२६.७०
एतभ्या मन्त्र ३.४१.१६
एतस्यां तु २.७४.२४९
एतांल्लब्ध्वा २.७२.१६२
एताः पत्न्यो २.७१.२४५
एता एकादश २.७.३२०
एताञ्चैकाग्र २.७१.२२२
एताञ्जनपदान् १.१८.४७; १८.५२
एतादृशं न ३.२१.७२
एतादृशींश्च ३.२७.५०
एतानुत्पादयित्वा २.१०.७१
एतानेव च २.९.६८
एतां त्वां २.७२.१४५
एतान् पंच २.१२.१७

एतान्भाव १.३५.१०३
एतान्महात्मन: २.७१.१८३
एतान्यपि २.१४.११
एतान्युक्तानि ३.१.८
एतान्येव ६.८.२६
एताभि: सहिता ३.१९.६०
एता महाकाल ३.३२.१९
एता मुद्रास्तु ३.४२.१९
एता रहस्य ३.३७.९
एतावदधिकं १.३५.७९
एतावदवधानेन ३.४३.८८
एतावदेव १.१९.१०७
एतावन्तमलं ३.४०.३४
एतावन्तमिमं ३.९.३०
एतावानृचि १.३५.८१
एतावान् संनिवेश: १.१९.१९४
एतावान् स्थिति ३.१.२३९
एताश्चतुर्भुजा ३.१९.४५
एताश्च ब्रह्म १.३३.२०
एता: षट्त्रिंशद् ३.३७.६१
एता: षोडश ३.१९.२१; ३२.१६
एतासां च ३.३७.२३
एतासां तपसा सृष्टं २.१०.१५
एतासां द्विलव: १.२८.६१
एतासामन्वये २.७.१००
एतासां सम ३.३६.६५
एतासु देवता: ३.२०.९३
एतास्तु गतय: ३.३.३६
एतास्तु गुप्त ३.३६.७२
एतास्तु वीथय २.३.५१; ३.५३
एतेऽत्रीणां तु २.८.८६
एतेऽपि च १.३८.५
एते ऐक्ष्वाकव: २.७४.१०९
एते कश्यप २.७.४६३
एते क्षत्र १.३६.४१; २.६३.७
एते गणेशा ३.४४.७१
एते चन्द्रमसं १.२३.५८
एते चान्ये च १.२७.२६; ३०.४१
एते जनपदा: १.१६.६६
एते तपन्ति १.२३.३२
एते ते ३.४.४१
एते त्वद्वंश २.१.७०
एते दशैव ३.२०.८३
एते दिनमुहूर्ता: २.३.४१
एते देवा भविष्यन्ति १.९.८३
एते देवा वसन्ति १.२३.२५
एते देवा: सुकर्माण: ३.१.८९
एते देशा उदीच्या १.१६.५१
एते द्वादश ३.३४.१४
एते द्विजर्षय: १.३३.७
एते द्विजातयो १.३३.५
एतेन क्रमयोगेन १.६.२९;२४.२२; ३५.१५२
एते धनुषा ३.२.१२७
एतेन मन्त्रेण तु २.११.८२
एतेन विधि २.११.३१
एतेनैव शरीरेण २.६७.१७
एते पक्ष २.८.१००
एते पर्वत १.१५.२३
एते पुत्रा: २.१०.७७
एते प्रजानां १.१३.१३५
एते मनुष्या २.६.१७
एते मन्त्रकृत: १.३२.१०४; ११२; १२२
एते महाभुजा: १.९.२
एते ये वै १.९.८२
एते रात्रेर्मुहूर्त्ता: २.३.४४
एते रात्र्यहनी ३.१.२८८
एते लांगलिन: १.३५.४९
एते वसन्ति वै १.२३.२; २३.५
एते वाराप्लुत ३.१.२१८
एते विहरणीय १.१२.४६
एते शिष्या १.३५.६५
एते षट्कोणगा: ३.३४.८
एतेषामप्यधो १.२०.१३
एतेषामभ्युप २.१०.९९
एतेषामायु ३.३७.१६
एतेषामेव १.२३.२९
एतेषां मानसी २.१०.५४; १०.९०; १०.९५
एतेषां यदपत्यं १.१३.१५०
एतेषां वै २.३.९६
एतेषु देव: १.१९.१७
एतेषु वन २.६६.८
एतषु स्थानिनो १.१३.१५
एतेष्वेव तु २.१३.१३२
एते सप्तर्षय: १.३८.३०
एते सर्वे सायुधा: ३.३७.५३
एते सहैव १.२३.३४
एते सुरा १.३५.३६
एते स्वभावा: १.३१.३२
एते हि ब्रह्मण: ३.१.७७
एते ह्येकोन २.५.९९
एतैर्नामभि: ३.१७.२१
एतैरन्यैश्च २.७.४०८
एतै राजर्षिभि: २.७४.२७३
एतैरेव तु २.१.८१
एतैर्व्याप्त २.७.१५५
एतैस्तु वर्त्तयेत् २.१५.४४

एतैस्सह	३.३३.६९
एतौ क्षत्र	२.७४.२५१
एनां लोकेषु	३.४०.१३९
एनांसि यत्	२.५६.१२
एभ्यो दत्त्वा	१.३७.४५
एलापत्रश्च	२.७.३४
एवमभ्यर्थितो	३.११.२१
एवमस्तु महा	१.२६.६१; २.४३.४५
एवमादि क्रमे	३.२.१७९
एवमादिषु	३.३३.६२
एवमादीनि	२.१४.२०; ७१.२५३; ३.३७.१८
एवमादीन्य	२.११.८८
एवमाराध्य	२.७३.१; २.३.४
एवमावर्त्त	१.२१.१६४; ३५.१४४
एवमाश्रम	१.३२.२६
एवमुक्तं	२.३१.७
एवमुक्त: स	१.३५.२२; २.३१.२०
एवमुक्तस्तत:	१.३५.२१; २.५९.३
एवमुक्तस्ततो	१.९.८६; २.२८.६३
एवमुक्तस्ततो राम:	२.२४.७७
एवमुक्तस्तथे	१.३४.८
एवमुक्तस्तदा	१.१.२९
एवमुक्तस्तया	१.७४.४१
एवमुक्तस्तु गुरुणा	३.१२.५२
एवमुक्तस्तु मुनिना	२.५०.५८
एवमुक्तस्तु राजर्षि:	२.६३.४६
एवमुक्ताऽब्रवीत्	२.७३.७; ७०.३५
एवमुक्तास्तदा	२.१२.८
एवमुक्तास्तु	२.७३.५९
एवमुक्ते तु	१.१०.५६; २.५१.३१
एवमुक्ते शुभे	२.३०.६०
एवमुक्तोंऽशु	२.५४.२९
एवमुक्तोऽब्रवीद्	२.७२.९७
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं	१.९.८१
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां	१.१३.५१; २.७३.८
एवमुक्तो महा	२.३८.१८
एवमुक्तो विधा	३.११.११
एवमुक्तो ह्यग	२.३७.८
एवमुक्त्वा तु तान्	२.४.४
एवमुक्त्वा तुते	२.१.१८; ३.६१
एवमुक्त्वा दा	२.१०.७३
एवमुक्त्वा मृगो	२.३४.५५
एवमुक्त्वा यदुं	२.६८.३९
एवमुक्त्वा स	२.६८.१०४
एवमुद्दाम	३.२५.१०
एवमेते खला	३.२४.५८
एवमेते प्रजा	१.९.८
एवमेव चतु:	३.४.४४
एवमेव तु विज्ञेया	१.१८.६५; २.७४.२५७
एवमेव निसर्गो	१.१६.१
एवमेव महा	२.३४.२८
एवमेव रणा	३.२७.५२
एवमेव समु	२.१४.६९
एवमेवाद्यलं	२.६२.२६
एवमेवाहं	२.२८.३८
एवमेष महा	२.६३.१९८
एवं कालमयं	२.७३.५३
एवं काष्ठामनु	२.७३.१२३
एवं कृतवतो	३.१२.१९
एवं कृते सम्यग्	३.१२.१५
एवं कृतोत्तरा:	१.३०.३०
एवं क्रमेण तीर्थ	२.२४.४३
एवं क्रमेण पृथिवीं	२.४७.३८
एवं क्रमेण संजातां	२.५१.४७
एवं क्रोधाग्निा	२.५३.३९
एवं गति	१.२१.१००
एवं गतेऽर्थे	१.१.३१
एवं चतुर्युग	१.२९.३७
एवं चतुर्युगे	१.२९.३५
एवं चतुर्षु	१.२१.४६; ३.३१.३९
एवं च सति	३.२६.२३
एवं चिन्तयत:	३.२३.२७
एवं चोपेक्षिता	३.२७.५१
एवं चोभयतो	३.२५.६९
एवं तद्वत्सला	३.१५.४३
एवं तस्य वच:	१.२५.८५
एवं तयोर्मेहा	२.२१.३२
एवं तयोश्चिन्त	२.२१.२५
एवं तवास्य	२.४२.४१
एवं तानभि	३.४.१६
एवं तीर्णप्रतीक:	२.४७.७
एवं तु तुर्वसुं	२.६८.४५
एवं तु सम्प्र	३.१९.३५
एवं तौ तिश्चयं	२.५.१०५
एवं त्रिषवण	२.११.१३
एवं त्वया	३.२४.९०
एवं दत्त्वा वरं	२.७२.१६१
एवं दश सुता:	२.७१.१८२
एवं दिनक्रमात्	१.२३.७०
एवं दीक्षात्रयं	३.४३.४०

एवं देवयुगान् १.३५.१५६; ३५.१५७
एवं देवेषु ३.१.१२४
एवं द्विमण्डल २.१३.३०
एवं द्वीपसमुद्रा १.१९.१२८
एवं द्वीपा: १.१९.१२७
एवं ध्रुव १.२३.९९
एवं नकुल ३.२३.८९
एवं नमस्कृत्य २.३६.५५
एवं नय: १.७.१३५
एवं निरुद्य २.७३.६९
एवं पञ्चशता ३.२२.२७
एवं पञ्चौषधी: १.८.४६
एवं परस्परै: १.३.३६
एवं परस्परो १.१९.१८१
एवं पित्रा २,३१,१४
एवं पित्रो: २.२६.६
एवं पित्र्यं २.११.८३
एवं पिशाच २.७.८८
एवं पुरसहस्राणि १.२०.३१; २०.३८
एवं पूर्वानुपूर्व्येण १.३५.२०३
एवं प्रकारतो ३.२३.६४
एवं प्रकारा ३.२०.५५
एवं प्रजा १.१५.१
एवं प्रजासु २.८.१
एवं प्रतिदिनं ३.४०.९८
एवं प्रभाव: २.४७.६४
एवं प्रभावा ३.४०.१३८
एवं प्रभावो २.५८.३४; ६६.२०
एवं प्रवर्त्त २.५१.१६; ५१.५१
एवं प्रवर्तत: २.२३.७
एवं प्रवर्तितं २.५५.५; ३.६.५६
एवं प्रवृत्ते ३.२२.४५; २२.९४; २४.३८
एवं प्रश्नं २.३५.५८
एवं प्रसिद्धा: १.७.१२०
एवं प्रीतात्मन: १.९.१४
एवं बहुधनं ३.७.१५
एवं बहुप्रका ३.३८.७१
एवं बहुविधं १.३६.१८६
एवं बृहस्पति: २.२०.२३
एवं ब्रह्मा १.६.७३
एवं ब्रुवन्तं २.२८.३९
एवं ब्रुवाणं २.५८.१
एवं भगवता १.२५.७८
एवं भवतु १.९.८७; २.७३.११
एवं भविष्यन्ति २.७४.२२०
एवं भूता २.५.१०३
एवं मन्वन्त १.३५.१७४
एवं महान हिम २.५५.२७
एवं मिथ्या २.७१.२३४
एवं ययाति २.७४.४
एवं युक्तान् १.१०.२८
एवं युगो १.३१.१११
एवं यो १.१०.६३
एवं रश्मिसहस्रं १.२४.४४
एवं राज २.७४.२७०
एवं रामेण २.५८.३२
एवं रूपेषु २.७४.२११
एवं लब्ध्वा धनं २.६६.८२
एवं लब्ध्वा वरं ३.१२.२४
एवं व्रजमयै: ३.२३.९०
एवं वंशक्रम १.७४.२२६
एवं वर्णा १.७.१८५; ३१.१२६
एवं वर्ष २.६८.५२
एवं वर्षेषु १.१४.५५
एवं वारा २.६७.६२
एवं विद्राव्य २.४६.२३
एवं विधगुणो २.५०.४३; ५१.३०
एवं विधस्तु २.७.२६४
एवं विधा २.५१.१३
एवं विधान् २.७.४०१
एवं विन्यस्त ३.४४.१०२
एवं विभजय २.६८.९४
एवं विरूपा २.४८.४५
एवं वेदं १.३५.८६
एवं वेदितुं २.९.७
एवं शृणोति २.४.३६
एवं श्लोकार्थं २.४.२५
एवं संस्तूय १.२६.५१; २.५४.३
एवं स त्रीणि २.६३.१०८
एवं स धर्षित: १.३४.५६
एवं स पृष्टो २.३०.६०
एवं स राजा २.५०.१; ५०.२०
एवं सर्ग: १.३७.५६
एवं सर्गेषु ३.२.१०१
एवं सर्वं च ३.४०.७८
एवं स लोके ३.१.१९२
एवं स सगरो ४२.४९.७
एवं स सिद्ध ३.३८.३३
एवं सा चाव २.६६.१४
एवं सुरमुनीन्द्र २.५३.४९
एवं सुस्निग्ध २.४३.१
एवं सुहृद्धि: २.५५.२१
एवं सूर्यस्य १.२८.३२
एवं सृष्टौ ३.४४.३१

एवं सञ्चिंत्य २.३४.२३
एवं सन्तत्य १.३५.११०
एवं सन्तर्प्य २.५५.८
एवं सम्पूज्यते २.६७.४६
एवं सम्प्रार्थ्य २.५७.२५
एवं सम्बोधित ३.१२.४३
एवं सम्भ्रामितो २.४२.१
एवं स्तुत्वा १.२७.७४
एवं स्मृत: १.३४.६७
एवं स्मृत्वा २.९.२७
एवं स्वभाव: १.१४.५६
एवं हि दण्ड ३.२०.८४
एवं हि मोहिता: १.२७.२७
एवं हि वदत: २.२८.५१
एष एव पुरा ३.५.१५
एष एव मया १.२६.१२
एष कर्मरतो १.३६.१६९
एष कक्षा ३.३१.७०
एष चैव प्रजा: १.२७.५०
एष ते कथित: ३.८.६१
एष त्रेता १.२९.९२
एष दत्त ३.११.१४
एष धर्मो १.३०.२१
एष रामो २.४२.५०
एष वृत्ति १.३६.१७४
एष वै गुरु २.७३.३१
एष सर्गैक २.७.४६४
एष त्वनाथा ३.३०.४२
एषा निसर्ग ३.३.१११
एषामन्यतम: २.२४.५
एषामर्थे तत: २.५८.६
एषामर्थे विशे २.५८.११
एषा संज्ञी ३.२.२१०
एषा स्वाभाविकी ३.२.१९५
एषां घोषस्य ३.१६.२८
एषां जिह्वापरा २.७.३५२
एषां तु संप्रणाशं २.५४.३९
एषु सर्वेषु ३.३१.७३
एषोंऽशभूतो ३.५.३७
एषोर्ध्वग: ३.२.२२५

ऐ

ऐक्ष्वाकव: २.७४.१३६
ऐक्ष्वाकी २.७०.४८
ऐड: पुरूरवा १.२०.२०
ऐन्द्रेण हविषा १.३६.१६१
ऐरावतोऽथ २.७.२९२
ऐरावतो १.२३.३
ऐलश्चेक्ष्वाकु २.७४.२४४
ऐलं क्षत्रं २.७४.२४५
ऐल: पुरूखा १.२८.९
ऐश्वरश्च ३.१.५७
ऐश्वर्यहीना २.७.१६८
ऐश्वर्यमूढं २.२८.४३
ऐश्वर्यं विहितं २.१०.११५
ऐश्वर्येण च १.३३.३४
ऐश्वर्येणाणिमा १.२९.८२
ऐहिकामुष्मिका २.३०.२४

ओ

ओंकार: सर्व १.२७.८२
ओंकारं समनु १.२५.६३
ओंकाराष्टतनुं १.५.९
ओंनमो दैत्य २.३३.२०
ओं ह्रीं भगवते २.३३.१६
ओं ह्रीं श्रीपद्म २.३३.१७
ओं ह्रीं श्रीरसि २.३३.१९
ओजिष्ठ: १.३६.७३
ओषधिप्रवरा: ३.९.५०
ओषधीनामा १.७.१९

औ

औतथ्यो गौतमो १.३८.२८
औत्तानपाद: १.२३.१०२
औदकानि तु ३.३१.१८
औद्भिदं नाम २.३५.१७
औन्नत्ये मेरु ३.३८.४४
औपवस्तास्तथा २.१५.४१
औरभ्रेण २.१९.७
औरसाङ्गिरस: २.१.१०९
और्वस्तदखिलं २.४७.८३
और्वस्ताभ्यां २.६३.१५६
और्वस्तु जात २.६३.१३३
और्वाद्यै: सहितो २.५२.३७
और्वेणानु २.३४.२
और्वोऽथ १.३२.१०२
औषधीनां १.५.६७
औषधी: १.१३.१४३
औषधीषु १.२४.४३; ३०.३

क

कंस्यस्यापि च १.१.१२५
क एते पितरो २.९.४०
क एष भगवान् १.१३.१०९
क एष वसुदेव: २.७१.२३६
ककुभो बधिरी २.५७.६८
ककुभश्च ३.३४.१५
कक्षीवांश्चैव २.६६.८८
कक्षीबांस्तु २.७४.९५
कंकस्य वैद्यूतं १.१९.४५
कच्छप: पूरण: २.६६.६९
कंचित्कालं २.६८.५७
कंचित्काल ३.४०.६१
कंचिदर्थमहं २.२१.७
कटकाण्ड ३.२०.५३
कंटकटाय १.२७.७७

कठोरेणाट्ट	३.२०.१०
कण्टकश्लिष्ट	२.२२.२५
कण्ठ: सम	१.२५.८७
कण्ठे धृतं	१.२५.९०
कतिचिन्नकुलं	३.१७.२६
कतिद्वीपा	१.१५.२
कथं तस्य	३.२९.३
कथं त्रेतायुग	१.३०.१
कथं दारुवणे	१.२७.२
कथं देवासुर	२.७२.६६
कथं द्विवारा	२.९.१
कथं धारयिता	१.३६.१८१
कथं प्रपत्स्यते	३.४.८
कथं बले: सुता:	२.७४.३५
कथं बहुषुगे	२.६१.२६
कथं भण्डासुरो	३.११.१
कथं भवद्भि:	२.५३.८
कथं मुच्येत	२.७२.१३७
कथं वा ते	२.९.६
कथं विनाश	२.३४.३४
कथं वै नाशिता:	२.२.१९
कथं वै सर्वं	३.६.१०
कथं सप्तर्षय:	२.१.१३
कथं सह	२.२५.९१
कथं सा	३.२२.६९
कथं सूत	३.४.६
कथनाच्चैव	३.२.६१
कथमेवं विनि:	३.२७.६
कथयामास	२.२१.६६
कथयिष्यामि	२.९.४६
कथां मङ्गल	१.२५.२०
कथामिमां	१.२५.११६
कथितो भीम	२.६१.४२
कथितं सप्त	३.३३.१
कदम्बगोलका	३.२८.९७
कदम्बनिम्ब	२.२२.३५
कदाचिंत् काशी	२.७१.१०४
कदाचित् पार्वती	३.४०.१०
कदाचिदभ	३.१२.३५
कदाचिदप्य	२.६३.१२९
कदाचिन्मृगयां	२.७१.३४
कद्रूपुत्रस्य	१.२०.२४
कद्रूरिवापरा	३.२३.१९
कद्रूर्नागसहस्त्रं	२.७.२१
कद्रूर्माता च	२.३.५७
कनकं रजतं	२.११.५
कनकस्य तु	२.६९.८
कनिष्ठसहितं	३.२८.४
कनिष्ठया	१.७.९८
कनिष्ठानामके	३.४२.१३
कनीयसी तु	२.६३.१५५
कनीयान्मम	२.६८.८५
कन्दच्छेदे	३.२५.२१
कन्यां वै	२.७१.९२
कन्यां कीर्ति	२.१०.८२
कन्यां तस्य	२.८.३९
कन्यां दत्त्वा	३.४.१८
कन्यां कीर्ति	२.८.९४
कन्यानिमित्त	२.१.१२०
कन्याभावात्त	९.६०.२१
कन्या भूत्वा	२.१०.६७
कन्यामेकां	१.३७.४६
कन्यायां	२.२.१८
कन्या सा	२.७१.२२०
कन्यासु	२.७.३५४
कन्ये द्वे	१.१४.८
कपर्दिने	९.२४.६८
कपर्दी च	३.३४.४५
कपालं च	३.२०.५८
कपाली	३.१९.७९
कपियूथ	२.५०.३९
कपिल: पुण्डरी	२.७.३३५
कपिलश्च	२.७.३६
कपिलेन च	२.७.१४६
कपिशत्वात्	२.७.३७५
कपिशायाश्च	२.७.३७४
कपोतकुर	२.७.४३५
कफस्य हृदयं	२.७२.४८
कबन्धाय पुन:	१.३५.५६
कमनीयस्मित	३.३७.६७
कम्पमाना	३.१६.१२
कम्पयन्तो	२.३९.२०
कम्बुग्रीव:	१.२६.५३
करं ललाटे	१.२७.८६
करणै: सह	१.३.२७
करन्धमस्तु	२.७४.२
करमुक्तेन	३.२४.३१
करम्भवालु	१.२८.८४
करवीर:कराम्यां	२.७.३५
कराम्यामेव	३.६.१९
करालाक्षश्च	२.१४.१००
करालायु:	३.२४.५२
करावाप्ति	१.१९.१०६
करिशुण्डदो:	३.३७.७१
करिष्यति च	२.२१.७८
करेण कतिचिद्	३.२२.६०
करेण भ्राम	२.४४.२७
करोति वलिनं	३.२५.७
कर्णप्रावरण	१.१८.६०
कर्णाकर्णिकया	३.२५.६६
कर्णीरथं	३.२६.८७
कर्णेषु दष्ट्वा	३.२३.७४

कर्तव्य: श्रेयसे	२.५३.४७
कर्ता कशल्पी	२.५९.१८
कर्तुं न शक्य	२.२६.५१
क्रर्दमश्चोर्वरी	१.११.३१
कर्दमस्य तु	१.११.२३
कर्दमस्य श्रुति:	१.११.३२
कर्मक्षये पुन:	३.३३.४७
कर्मणा तेन	३.२८.६८
कर्मणा निहता	२.७३.११६
कर्मणानेन	२.४७.९५
कर्मणा मनसा	१.२७.६४; ६५.२
कर्मणैतेन	१.३२.११
कर्मभिलंभ्यते	३.५.२५
कर्मभिस्तैस्तु	१.७.३०
कर्मभूमिं व्रजे:	३.९.१०
कर्मभूमौ तु	३.३९.४६
कर्म वा कीदृशं	३.६.३६
कर्मस्वेतेषु	१.२८.७६
कलनिस्वान	३.३७.७०
कलभोन्मेषणा	२.२२.१७
कलाकलापेषु	२.४०.३६
कलाकार्या तु	२.६२.१४
कलाकाष्ठा	३.३२.१४
कलानां तु परी	३.१.२२३
कलापग्रामाकांश्	१.१८.५०
कलामुहूर्त्त	३.१३.६
कलास्तास्त्रिंशत:	१.२१.१२७
कलिं वर्षसहस्रं	१.२९.२८
कलि: कल्पा च	३.३२.१८
कलि: पंचदश	२.७.४
कलि: सुराया:	२.५९.९
कलिंगा महिषा:	१.७४.१९८
कलिजै: सहते	१.३१.१०६
कलिपुत्रौ महा	२.५९.७
कल्यस्यादौ कृत	१.७.२२
कल्वृक्षोद्भवा	३.२८.७२
कल्पसंख्या	१.४.३१
कल्पस्यादौ	१.६.७४
कल्पादा	१.१०.७४
कल्पादाव	३.१.१९५
कल्पादि	३.३२.६५
कल्पादौ मानसी	१.७.६८
कल्पादौ रजसो	१.६.६५
कल्पादौ संप्रवृ	१.१४.८५
कल्पानां	१.१.४८
कल्पान्तकाले	३.२०.८०
कल्पान्तेऽभ्यु	२.५७.५५
कल्पास्त्वन्ये	१.६.१३
कल्पे कल्पे	१.१.१४३
कल्माषपदो	१.२.११
कल्याणं कार	३.१५.१८
कल्याणाभिमुखा:	२.४९.५१
कल्याणो	३.४४.३८
कवची च श्रुत:	३.३४.३५
कवये राज	२.७२.१६७
कवर्गसहिता	३.३७.४
मवित्वे	३.३८.६९
कशेति नाम	२.१.१२२
कश्च धन्वन्तरि	२.६७.९
कश्चिद्भ्रामयते	१.२२.४
कश्यप: सवितु:	२.१.११९
कश्चपस्य पुल	१.१.११७
कश्यपस्याश्च	२.५.७
कस्तूरितिलक	३.१९.६८
कस्त्वं ब्रूहि	२.२४.२
कस्त्वं वटो	२.३२.३५
कस्माच्च पितर:	२.९.४१
कस्मादेषु	३.२.९०
कस्मै श्राद्धानि	२.९.४२
कस्य त्वं सुभगे	२.७३.४
कह्लारकंज	२.२७.१६
कांस्यशाल	३.३१.६६
कांस्यारकूटार	२.२६.५८
काकवर्ण:	२.७४.१२९
काकवाशित	३.२३.९३
कांक्षानुरूप	३.४०.१२९
काचिच्चिच्छेद	३.२४.२६
काचिच्छक्ति:	३.२४.२८
काचित् प्रति	३.२४.३०
काचिन्मुद्गर	३.२४.३३
कांचनत्वक्	३.३१.६८
कांचीपुरे	३.३९.५
काणश्च	२.१९.३४
काण्डकर्ता	३.२.१६२
काण्डास्तु	३.३५.७६
कातरत्वं	३.२१.३९
कादण्डिनी	३.२७.६४
कादम्बमधु	३.१७.२७
कदम्बरीमदा	३.३१.८८
काद्रवेयौ	१.२३.२१
काननं च	३.७.३०
का नाम वाणी	३.३९.६७
कानि द्वादश	३.१७.१७
कान्त चात्रैव	३.२४.२५
कान्तां प्रभा	२.५९.७३
कान्तिभि:	२.३६.६३
कान्तिमान्मोहि	३.४४.३४
कापेयेनैव	१.६.४
काम:कल्प	३.४४.३५
कामक्रोध	२.५६.१८
कामतोऽकाम	२.४१.४५
कामराजप्रिया	३.१८.१६

कामराजश्च	३.१९.६७	कार्तवीर्यं	२.३८.३६; ४४.२३	कालीकटाक्ष	३.१७.४९
कामवामाधि	३.४४.३३	कार्तवीर्यस्तु	२.४०.२३	कालीयफणि	२.३६.३९
कामास्थार्थेन	१.३४.५९	कार्तवीर्यस्य	२.६९.५६	कालेन गतवान्	२.६३.२३
कामाकर्षण	३.४४.१७	कार्यविर्यार्जुन	२.४२.१२	कालेन तावता	२.४६.३४
कामाकर्षणिका	३.१९.१७; ३६.६९	कार्पासं	३.३८.३३	कालेन प्रति	१.३५.१६०
कामाक्षीति	३.३९.७३	कार्यकारण	१.१३.२८	कालेन प्राप	१.३२.७५
कामाक्ष्यैव	३.४१.१५	कार्यमासीद्	१.३५.१५	काले पूर्णे ततः	२.५१.४४
कामात्मानो	१.३१.५८	कार्याकार्यं	२.७४.५५	कालेयपंक	२.२७.२७
कामिनां	२.४१.४८	कार्ष्णायसं	१.२३.५८	काले प्राप्ते	२.५२.३०
कामेशाद्या	३.३७.२०	कालकण्ठ	२.७.४२०	कालोदरान्	२.१८.५५
कामेशि वज्रेशि	३.३०.२७	कालक्रीता	३.१५.४; १५.५	काल्यां पराशन	२.८.५२
कामे शिवे	३.३०.१६	कालचक्रं	३.३२.७; ४४	काल्यै कलानाथ	२.३९.३७
कामेशी चैव	३.१९.५२	कालदण्डं	३.२९.८३	काव्यआङ्गिरस	१.३६.४७
कामेश्वरीकरा	३.२५.१०२	कालदण्डवद्	३.२०.४१	काव्यशापाभि	२.७३.६८
कामेश्वरी परा	३.४४.४१	कालनेमिसुता	२.५.४०	काव्याश्चैवोस्म	१.२८.२३
कामेश्वरी पुरी	३.३१.२४	कालयन्सकलां	२.३९.२२	काव्यस्य गात्रं	२.७३.२
कामेश्वरोत्संग	३.३०.२९	कालरात्रिं	३.२२.७	काव्यो दृष्ट्वा	२.७२.१०४
कामेश्वर्या	३.२५.९०	कालरात्रिश्च	३.२७.१०३	काव्योऽहं वो	२.७३.२९
कामेश्वर्यादि	३.२५.५६	कालं वर्ष	२.६८.७२	काशतोयजकाः	२.७.४२७
कामेश्वर्यास्तु	३.३७.१४	कालः कृतयुगे	१.७.६१	काशः शलश्च	२.६७.४
काम्यनैमि	१.१२.४७	कालं कंचित्	२.५२.१३; ५२.३४	काशैः पुनर्भवैः	२.११.८९
काम्याप्रिय	१.११.३४			काश्चिच्छीदण्ड	३.१६.३३
कायाग्नि	२.१६.२२	कालाखयां	१.३०.७	काश्चिद्गायन्ति	३.१७.२४
कारणत्वात्	१.३२.७४	कालागुरु	३.३१.६३	कश्चिद्धसन्ति	३.२८.८३
कारणे विषये	३.३.५२	कालाग्निमिव	२.५७.७	काश्चिद्रत्न	३.२२.६
कारयामास	२.७.२१८; ३.३०.५१	कालाग्निरिव	३.२९.१६	काश्चिद्वल्गन्ति	३.२८.८४
		कालादृते न	१.२४.५८	काश्चिन्नृत्यन्ति	३.२८.८२
कारयेत् त्रिपुरा	३.४३.३३	कालानलस्य	२.७४.१४	काश्यपः संहिता	१.३५.६६
कारयेऽहं	२.५.१६	कालान्ते भविता	२.५४.४८	काश्यपस्य	२.१३.९८; ३.९.३
कारस्कराः	२.१४.३३; १४.८०	कालाम्रस्य	१.१५.६१	काश्यपाय	२.४७.५४
		कालायसाख्य	३.३१.५१	काश्यपी तु	२.४७.६०
कारुकादीन	२.१५.४३	कालावस्था	२.३.४५	काश्यश्च पुरु	२.६६.८७
कारुण्यात्	१.३२.५६	कालियस्य च	१.२०.१९	काश्यस्य काशिपो	२.६७.७
				काश्यां तु पंच	२.७१.२६०

काषायिणोऽथ १.३१.६५
काष्ठयोरन्तरं १.२१.७९
काष्ठानिमेषा १.२१.११६; २९.६
काष्ठेन्धनस्तु १.२४.१५
का स्वामिनी ३.२७.४५
किं रोदिषि १.१०.६; १०.९; १०.१२; १०.१५
किं लक्षणेन २.३६.७६
किं स्विद्दत्तं २.१९.१
किं हतैरसुरैः ३.२७.४३
किं कार्यं ते १.२५.८०
किंकिणीजाल २.१०.११९
किंकुविच्चरितं १.१.११९
किंचिच्छिष्टाः २.७४.२०८
किंचिच्छिष्टास्तु २.७२.१०८
किंचिच्छिष्टे २.३.१२
किंचूषयामः ३.२७.२१
किंतवश्चाप्यया २.१.१०६
कितवो मद्यपो २.१९.३०
किन्तन्नो मिषतां २.७२.९६
क्रिन्तु मे महतीं २.२३.२६
किन्तुं युष्मद् २.५७.१९
किंन्त्वद्य मयि २.५१.१७
किंन्त्वेकं संशयं २.३५.५४
किं दुःखं कोऽनु १.२५.५२
किन्नराः सह ३.३३.२७
किमप्याराध ३.११.२२
किमर्थं तु वनं २.७०.१
किमर्थं दिव्यं २.७२.११
किमर्थमीदृशं '२.७.२६१
किमर्थं राज २.२८.३२
किमर्थं वसु २.७१.२२३
किमर्थं वाऽकृष २.६४.१७
किमर्थं वाऽभव १.३४.३५
किमर्थ वा शका २.६३.१२५
किमर्थ सा २.५९.२६
किमसौ धक्ष्यति ३.१७.१४
किमस्य चक्षुः १.१३.११०
किमिच्छसि २.७३.६
किमिदं धैर्यं २.५४.२१
किमिदं श्रीपुरं ३.३१.१
किं पापं तव ३.४०.२९
किं फलानि च ३.६.३४
किं भर्तृदारिके ३.२६.९१
किं मयापकृतं २.२३.४०
कियत् प्रमाणं ३.३१.२
कियन्तं चैव १.२.२
कियन्तो वै २.९.३७
किरन्तमाजौ ३.३८.४६
किरातः कश्चिद् ३.७.१३
किराता मूर्च्छिता ३.२९.१३५
किरिचक्रं ज्ञेय ३.२८.१५
किरिचक्ररथेन्द्र ३.२०.१; २०.९; २०.३४; २०.९४
किरीटमग्निः ३.१५.२१
किरीटमुकुटो ३.४०.२२
किरीटहार ३.१४.२०; ४०.२१
किष्किन्धा २.७.२४७
कीकसातनयैः ३.२४.६८
कीकसानूनवः ३.२४.११
कीटमूषक १.३१.६२
कीर्त्तयिष्यामि २.१५.३
कीर्त्तयिष्ये २.१.२
कीर्तितस्तु १.६.७७
कीर्त्तिताश्च २.७४.२७६
कीर्तितास्तु १.३६.५८
कीर्त्यते च १.१.१४७
कीर्त्यते मरुतां १.१.११३
कीर्त्यन्ते-चात्र १.१.१४१
कीर्त्यन्ते धूत १.१.५८
कीर्त्यन्ते यत्र १.१.१३४
कीर्त्यन्ते योजन १.१.७१
कीदृशं यन्त्र ३.४१.१
कुकुद्मिनस्तु २.६३.१
कुकुरम्य सुतो २.७१.११७
कुञ्जेषु पिण्डित ३.२५.३७
कुटिलाक्षः ३.२१.७७
कुतः कुल १.७.३८
कुतः सस्य १.२४.५९
कुतस्त्वं २.२३.५८
कुन्तचक्रधरा ३.१९.७२
कुन्तेर्धृष्टः २.७०.४०
कुन्दकुड्मल ३.१०.६५
कुबेरः कुशरीर २.८.४५
कुब्जाकृष्टांबर २.३६.३३
कुम्भगत्तो २.५.४३
कुम्भपात्रश्च २.७.३७८
कुम्भस्थायी १.१९.१५७
कुम्भोपदोह २.१६.२८
कुम्भं स्पृशन् ३.४३.२०
कुमारं सम्परं २.६२.११
कुमारा ललिता ३.३१.६
कुमारास्ते २.६३.१६३
कुमारी ललिता ३.२६.७३
कुमार्यश्चापि २.७१.१६८
कुमुदस्य स्मृतं १.१९.४४
कुरण्डदुर्मदौ ३.२३.३
कुरण्डं सानुजं ३.२२.१०८
कुरुविन्दो १.७.१४७
कुरुवीराश्च २.७३.१०३

कुरुष्व मे	३.४४.११०	कुसुमोत्तर	१.१४.२०	कृतार्थः सोऽपि	२.७४.१०१
कुरुस्तु सप्तम	१.१४.४७	कुसुं चरं पिशंगं	२.७.१२८	कृतार्थमागतं	२.७३.१३
कुरो पौत्रस्य	२.६८.२१	कुसुमा मेखला	३.३६.७६	कृतार्थैश्च	२.७.३४८
कुर्यात् सत्रि	२.१४.७६	कुसुमित बहु	१.२७.६०	कृतास्त्रशिक्षा	३.२८.७
कुर्यादाग्रयणं	२.१४.९	कुहूमात्रः	१.२८.१८	कृतिकानां	१.२१.१४५
कुर्यान्मूत्रं	१.१०.५३	कूपरि मणि	३.३४.१३३	कृत्तिकाभिस्तु	२.१०.४४
कुर्वाणः पूजनं	२.१७.१०	कूष्माण्डा	२.७४.९९	कृते कृतींशे	१.७.७१
कुर्वाणौ विविधान्	३.२८.११०	कृच्छ्रेणैव	१.३६.२०१	कृतेऽपूज्यन्त	२.१४.४७
कुलं जातिं च	३.३८.५६	कृत एव च	१.१९.४	कृतो दुर्वाससा	३.५.१६
कुलस्पदापि	२.५.९	कृतकर्मदिशः	२.१४.४२	कृतो यज्ञः	२.६७.१४
कुलनाथाम्नाय	३.१८.१७	कृतकार्यौ	२.४१.१८	कृतोजाश्च	२.६९.९
कुलं पुण्यं	२.७१.२०३	कृतकौशल	२.४७.४४	कृत्याकृत्य	२.२३.२०
कुलात्रं देव	३.४४.९६	कृतञ्जयः	१.३५.१२१	कृत्रिमाणां च	१.७.१०६
कुलालचक्र	१.२१.९६	कृतज्ञायात्	३.४.६३	कृत्वा किल	३.२२.३२;
कुलालश्चेति	३.३४.२५	कृतं त्रेता	१.१६.६९		२६.४१
कुलज्ञानां	३.३४.१८	कृतं मया	२.४०.५१	कृत्वा चैतानि	१.५.१००
कुले कुले	३.१.३८	कृतत्रेता	१.१४.७३	कृत्वा छन्द	१.७.९०
कुवलाश्वस्तु	३.६३.४९	कृतप्रणामं	२.१३.१३४	कृत्वा छन्दाभि	१.७.१२२
कुवलाश्वस्य	२.६३.३१	कृतप्रतिकृत	२.५०.४८	कृत्वा पुरुष	३.४३.१२
कुवासना	३.४०.१०९	कृतप्रिया	२.३९.२७	कृत्वा प्रदक्षिणं	२.१३.६५
कुशद्वीपं	१.१९.५२	कृतमाला	१.१६.३६	कृत्वा बीजाव	१.३१.८८
कुशद्वीपे कुश	१.१९.१३९	कृतमेवं वच	२.५९.६१	कृत्वा मातृवधं	२.२३.६९
कुशद्वीपे तु	१.१९.५४	कृतवानस्य	२.१०.२८	कृत्वा यदेन	१.३६.९५
कुशपुत्राः	२.६६.३२	कृतसन्ध्यांशका	१.७.७०	कृत्वा वत्सं	१.७.१४२
कुशप्लवन	२.५.५५; ५.५६	कृतस्थला	२.७.१५	कृत्वा वैवा	३.३.१४
कुशलं ननु	२.५०.५१	कृतस्यकर्मणो	३.६.३५	कृत्वा संस्थाप्य	२.४८.४६
कुशलं मार्ग	२.३९.१४	कृतस्याखिल	३.७.७५	कृत्स्नं यथावत्	२.१९.६५
कुशलं मम	२.५१.१	कृताकृतं	१.२७.१०७	कृत्स्नान्येतानि	१.१९.१८८
कुशलस्य तु	१.१४.२४	कृतां द्वारवतीं	२.६१.२३	कृपयैव कृतं	३.७.३४
कुशलाकुशल	१.३२.५९	कृतात्मा वा	२.१३.६१	कृपातरङ्गित	३.१२.७३
कुशवत्रैर्विनि	१.२.२३	कृताञ्जलिपुटा	१.३६.१८०	कृपानां नियुतं	२.२.८
कुशस्य कोशला	२.६३.१९९	कृताञ्जलिपुटो	२.४९.५०	कृपापात्रं स	२.३४.४
कुशस्य पुत्रो	२.६३.२०१	कृतादिषु	१.३५.१०७	कृपयो मांस	२.५९.६०
कुशिकस्तु	२.६६.१३३	कृतार्थः स	२.७३.३८	कृम्याः कृमिस्तु	२.७४.२०

कृशाश्व:	१.३६.५०
कृशाश्वश्च	२.६३.६५
कृशाश्वस्य	२.६१.१६
कृषिर्वृष्टि:	१.११.१२
कृष्णच्छागस्य	२.१९.९
कृष्णधूम्रा	२.७.४४३
कृष्णपक्ष:	१.२९.९
कृष्णपक्षा:	३.३२.१५
कृष्णपक्षेऽप	२.१९.४९
कृष्णपक्षे भुजां	२.२८.१३
कृष्णपक्षे यथा	१.२८.२६
कृष्णप्रेमामृत	२.३४.५३
कृष्णयोर्भवयो:	२.४३.२४
कृष्णरूपभुजङ्ग	३.२४.७८
कृष्णवर्णास्तथा	२.७.३११
कृष्णवस्त्रपरा	३.३८.३१
कृष्णश्च	१.२३.८३
कृष्ण: स्कन्द	२.४२.५५
कृष्णस्य	२.३५.५७
कृष्णाजिनधरं	१.२६.१४
कृष्णाजिनस्य	२.११.४
कृष्णानि चैव	२.७.१०
कृष्णामृतं न:	२.३६.५४
कृष्णोभ्यश्च	२.११.६८
कृष्णो भ्राता	२.७४.१६२
क्लृप्तं तत्रासनं	२.५.१०
के च ते वितरो	२.९.११
केचित्तु योनिजा:	२.७.४४१
केचित् पाताल	३.१०.८५; २१.७०
केचित् पुरवरा	३.१.१६४
केचित् पुरुषकारं	१.८.६२
केचित् प्रविश्य	३.२३.७६
केचित् सन्ध्या	२.७.३७१
केचिदभ्राव	१.२७.८
केचिदारुरुहु:	३.२२.९
केचिद् भूमे:	३.२९.२४
केचिद् रासभ	३.१.१६२
केचिन्नीलो	३.१.१६०
केतकान्त:	३.१०.६६
के तु तत्र	३.२.२४७
केतुमन्तं	२.८.२०
केन धर्म	३.९.२
केनवायं	२.२५.६३
केनोपि वा	२.२१.६५
केनोपायेन	३.५.१४
केयं कस्मात्	३.२१.६५
केयूरकंकण	३.३७.७५
केयूरहार	२.२७.६
केवलश्च	२.८.३६
केवलो विश्व	१.१३.९४
केशा: स्निग्धा:	१.२९.८४
केशिनी च	२.७.१२९
केशिनी दुहिता	२.७.१४७
केशिन्या	२.६३.१६४
केशैस्तु	२.१.४५
केषु वै सर्व	२.९.४३
केष्वावरण	३.३४.२
केसराश्च	३.३५.७७
कैकया	२.७१.१५७
कैकसीं	२.८.४०
कैकसेया	३.२४.६०
कैलासं भृगु	३.४४.९५
कैलासव्याज	२.२२.५६
कैलासशिखरा	३.६.१२
कैलासशिखरे	१.२५.२४
कैलासाद्रि	२.५५.१६
कैलासे या	२.१३.३६
कोऽयमेव	२.२३.२५
कोऽयमेष	२.२१.२४
कोकिलाराव	१.२५.२९
कोंकणा: कुत	१.१६.५९
कोटिकन्दर्प	३.१४.१९
कोटिकोटि	३.२.९९; ४३.५७
कोटिवर्ष	१.४.३२
कोटिशश्चापि	२.१०.११८
कोटिशस्तत्र	३.३५.१५
कोटिसस्तत्परी	३.३६.७७
कोटिशतानि	३.१.२२९
कोटिशो	३.२८.६२
कोटिसहस्र	३.२.९८
कोन्वेषां	१.३४.३८
कोपं त्यजत	१.३७.३५
कोपस्थानं	२.१३.१३३
कोलाटेन च	३.२८.४२
कोलापुर	३.४४.९७
कोलाहला:	१.१६.२१
को वानुरूप:	३.१४.२७
को वृत्तान्तो	३.२६.५
कोशलांश्चान्ध्र	२.७४.२९७
कोष्ठयो लेखयो:	१.१.७८
को हेतु: कारणं	१.२५.४३
कोथुमस्य तु	१.३५.४७
कौमारं च	२.१३.८६
कौमारास्ते	२.७.१६०
कौररं पंच	२.७.४५४
कौशिकस्य	२.७०.३९
कौशिकान् प्रति	१.३१.६३
कौशिका: सौश्रु	२.६६.७४
कौशीति: कंक	१.३३.१०
कौश्यां वृष्यां	२.३५.५९
कौशल्यानन्द	२.३७.३१

कौस्तुभाख्यं ३.९.७३
कौस्तुभोद्भासित २.३७.१३
क्रतवे सन्ततिं १.९.५६
क्रतु: सनत्कुमार: १.५.७९
क्रतो: क्रतुसमान् १.११.३६
क्रतौ तस्मिन् २.१.४४
क्रन्थलोऽथो १.३३.११
क्रन्दतिशस्त्रै: २.४१.११
क्रन्दनैश्चापि ३.२९.३३
क्रमाद्दशांशतो ३.८.४०
क्रमाद् दशगुणं ३.४३
क्रमेण नव ३.२६.१०
क्रमेण परिवृत्ता १.३१.११७
क्रमेण बहुली ३.२५.४१
क्रमेणानेन ३.४२.८
क्रमेणोत्तिष्ठ १.६.४६
क्रयविक्रयो २.२८.७०
क्रान्त: पञ्च १.२८.२४
क्रान्ता ह्यना २.६.३५
क्रियते यैर्व्यव १.३५.११५
क्रियायास्त १.९.६०
क्रियावन्त: १.९.२८
क्रीडते भगवान् २.७३.६५
क्रीडन्ते विविधै: ३.२.२५६
क्रीडागार निभा: ३.१.१६५
क्रीडा ते लोक ३.१३.११
क्रीडाभमैषा ३.२६.७९
क्रीडार्थं चैव २.१०.४६
क्रीडावेग १.२५.३३
क्रीणाति २.१९.३८
क्रुद्ध: प्रसीदति ३.३८.४६
क्रुध्यते यदि २.६७.५०
क्रूरग्रहे ३.२.१५३
क्रूरा: पाप २.५४.१५
क्रूरान्तक ३.३०.१४
क्रूराश्च २.४८.४८
क्रूरा हता २.७३.८२
क्रोडीचकार २.४२.५४
क्रोडे दुर्गा २.३२.२४
क्रोधं मा १.३४.४९
क्रोधयन्त: ३.२७.९४
क्रोधहुंकार ३.२७.८४
क्रोधाग्नि २.५४.१
क्रोधाच्छाशाप २.७०.१४
क्रोधात्वप्र २.६.३८
क्रोधाद् वा १.३३.४१
क्रोधाया: कन्यका २.७.१७१
क्रोधेन महता २.५३.२६
क्रोधेनात्यन्त ३.२९.११८
क्रोशद्वयं ३.३१.४८
क्रोशमात्राच्च १.२२.३५
क्रोशार्द्धार्द्धं ३.३६.३९
क्रोशार्धार्धा: ३.२०.७०
क्रौञ्चजीवित १.२५.१८
क्रौञ्चद्वीप: १.१९.७७
क्रौञ्चद्वीपस्य १.१९.६५; १९.८१
क्रौञ्चद्वीपेन १.१९.९४
क्रौञ्चद्वीपेश्वर १.१४.२२
क्रौञ्चात् परो १.१९.६७
क्वचित् स १.२७.१३
क्वचिदर्कांशु २.२२.१४
क्वचिद्रवि २.२२.११
क्वचिन्निरुक्त १.३३.२५
क्वणत् कंकण ३.३९.८०
क्वणत् कनक ३.१०.१७
क्व वा महा ३.७.३३
क्व सत्त्वमस्मत् ३.२५.८
क्षणक्षणमिता २.७.२३१
क्षणं तिष्ठ २.४१.४२
क्षणं रणक्रीडया ३.२६.८०
क्षणं सन्धाय २.७२.३४
क्षणं सहस्व ३.२२.८७
क्षणं स्थित्वा २.४०.१३
क्षणमूर्ध्व २.५०.३५
क्षणाद् विदार ३.२९.१०५
क्षणार्धमपि २.२१.१६; २३.४४
क्षणार्धेनैव ३.२०.२२
क्षणे क्षणे बालि ३.२६.१०१
क्षणे क्षणे वर्ध ३.२९.१०७
क्षणेन नाशय २.३९.११
क्षत्रक्षेत्रेषु २.४६.३१
क्षत्रप्रवर्तकौ २.७४.२५३
क्षत्रं प्रति २.४७.३२
क्षत्रवृद्धात्म २.६७.३
क्षत्रवंश्या २.४६.९
क्षत्रस्यैव २.७४.२५८
क्षत्रहत्याभि २.४४.३२
क्षत्रहत्यां हि २.४७.२५
क्षत्रियाणां १.७.१६१; ३२.१२१; २.६३.१२४
क्षत्रियादि ३.७.६५
क्षत्रोपेता: २.६६.८९
क्षपणात् कारणात् ३.३.८९
क्षपयित्वा तु २.७३.११७
क्षमा तु सुषुवे २.११.३०
क्षमाधना २.३१.१०
क्षमाधृति १.२७.१२०
क्षमानुग्रह २.१२.१६
क्षमावत्त्वं २.२८.५६

क्षमावत्त्वं	२.४.१३
क्षमास्माकं	१.१९.१३५
क्षयवृद्धत्व	१.१९.१३५
क्षयातिशय	२.४.६; ३.२.१२
क्षित्याद्धृल्लेखया	३.३८.१४
क्षिप्रमाप्नोति	२.१७.६
क्षिप्रं नाशय	२.३८.७
क्षिप्रं प्राप्नोति	२.१६.६५
क्षिप्रं ममान्तिकं	२.५२.३९
क्षिप्रा ह्यवन्ति	१.१६.२९
क्षीणां जवेन	२.७१.७३
क्षीणे कलियुगे	२.७३.१२४; ७४.२५४
क्षीणे कल्पे	१.६.१६
क्षीरं सुरां च	३.२१.६४
क्षीरमासीत् तदा	१.३६.२०५
क्षीरमूर्चं च	१.३६.२०७
क्षीराब्धि	३.९.५६
क्षीरोदतीरगं	३.१०.४२
क्षीरोदश्च	१.२७.२५
क्षीरस्य	१.२१.७१
क्षीरोदेन	१.१९.१०२
क्षुभ्यद्दिगन्तरं	३.२७.९२
क्षुभ्यन्ति सर्व	३.२०.१००
क्षुवतस्तु मनोह	२.६३.८
क्षेत्रं तल्लोक	२.५६.९
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते	३.३.८८
क्षेत्रज्ञस्य	३.४.२०
क्षेत्रज्ञाः	१.८.२
क्षेत्रज्ञा अपि	२.३.१०४
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं	३.२.३०३; ४.१८; ४.१९
क्षेत्रज्ञे	३.३.१०६
क्षेत्रज्ञेष्वनु	३.३.७७
क्षेत्रभागी	२.१८.४
क्षेत्राण्येतानि	१.२४.७३
क्षेत्रे कनक	२.७.२३०
क्षेमधन्वसुतो	२.६४.२०३
क्षेमधर्मा	३.१.८१
क्षेमस्य केतु	२.६७.७४
क्षेभ्योवोच	३.३४.३३
क्षोभयन्निन्द्रिय	३.२८.४६
क्ष्वेल्लकः	३.४४.४६
ख	
खङ्गः कृत्वा	१.३५.६३
खण्डनं प्रोक्षणं	२.११.५६
खण्डोऽयं भारतो	२.५६.२
खण्ड्यमाना	३.२३.४०
खदिरासन	२.३५.४७
खद्योत्वत्स	१.२४.९
खनद्भिः सागरैः	२.५७.१३
खनन्तो वसुधां	२.५४.१२
खरैः खुरपुटैः	३.२२.९०
खशा विजज्ञे	२.७.३८
खातपूर्ति	३.९.२६
खातमब्धौ	२.५८.३०
खात्वाधः	२.५६.२४
खिन्नोऽतिमात्रं	२.४०.४४
खेचरीमञ्जरी	३.४४.५९
खेटानां च	१.७.१०५
ख्याताातपाः	१.६.४९
ख्यातानीह	१.३१.१२३
ख्यातास्तु	१.७.९३
ख्यातिमन्तः	२.७१.५५
ख्यातिं च	२.२५.५३
ग	
गंगाकुले	३.११.४
गंगा चापि	२.९.४
गंगानिमित्तं	१.१८.२६
गंगाया दक्षिणे	२.७४.१३३
गंगां सरिद्वरां	१.१३.३५
गंगोद्भेदे	२.७.३५७
गच्छतस्तस्य	१.१.१५८
गच्छत्सु चाश्रम	२.२६.१७
गच्छत्स्वपार्श्व	२.२७.३१
गच्छन्ति घोर	३.२.१४६
गच्छन्नथ	२.२५.४९
गच्छ रे कुटिलाक्ष	३.२९.१४
गच्छ शीघ्रं	२.५४.३७
गच्छेयं धर्म	१.१३.६०
गजं द्रुत	२.५१.१०
गजभेरुण्ड	३.२९.४१
गजानां पर्व	१.२२.४८
गजानां बृंहितैः	४.३८.२९
गजासुरे च	३.२७.१०२
गजेन्द्रगतयश्च	१.२९.८६
गजोगवय	२.७.२४१
गण एष	२.५.९४
गणनाथमुखो	३.२७.९७
गणनाथेन	३.२७.८६
गणनाथो	३.४४.६७
गणस्तृतीयो	३.१.७६
गणाग्रणीः	३.३९.५७
गणाश्चगण	३.३४.२३
नणास्त्वप्सरसां	२.७.१८
गणास्त्वेते	३.१.७४
गणितस्याथ	२.८.३७
गणेशं कीर्ति	२.४३.३१
गणेशं क्षेत्र	३.४४.१०५
गणेशं चाभि	२.४२.२
गणेशस्त्वभि	२.४२.३
गण्डूषायान	२.७१.१९१

गतस्सवाहन	२.४९.४८
गतानि तत्र	२.२०.२१
गतायदान	२.७३.१४
गतिस्तासु च	१.२४.११३
गते तस्मिन्	२.३१.२; ४८.१
गते तु नृपतौ	२.२८.६४
गते पितरि	२.७.६८
गतेषु तेषु	२.४७.५९
गतेष्वखिल	३.७.४२
गत्यथदृषते:	१.६.७१; ३२.८७
गत्वा चैतानि	२.१३.९३; १३.१०२
गत्वा जवं	३.२.५८; २.२९९
गत्वा तु ते	१.६.२८
गत्वा त्वमेव	२.२८.६२
गत्वा देशा	२.१४.८३
गत्वान्तिकं	२.६०.१०
गत्वा पूरो:	२.६८.७१
गत्वा यूयं	२.५२.१७
गत्वा राजन् स	२.२४.४५
गत्वा समीपं	२.२९.२४
गत्वा स्त्रुवोप	२.५८.१७
गत्वैतान्मुच्यते	२.१३.५५
गदा त्रिशूलं	३.१९.८५
गदामिश्च	३.२२.११
गन्तुकामोऽप	२.२५.६८
गन्धमादन	१.१४.५२; २.६६.७
गन्धरूपोप	२.११.७०
गन्धर्ववदन	२.३२.४०
गन्धर्वरक्षितं	१.१.१६४
गन्धर्वराजो	१.३६.२२२
गन्धर्बाणां	२.८.१०
गन्धर्वाद्या:	१.५.१२२; २७.१७०
गन्धर्वाप्सरस:	१.२३.२७; ३७.४८; २.७.१
गन्धर्वाप्सरसां	२.७.११६
गन्धर्वाप्सरसो	३.२.२६; १५.४१
गन्धर्वी	२.६६.९
गन्धर्वै:	२.४१.२३
गन्धानां	२.८.१२
गन्धै: पुष्पै:	२.२४.८८
गन्धैर्धूपैश्च	२.६७.४५
गभस्तिभिश्च	२.७.२२
गम्भीरघोषं	२.५७.३३
गमयेन्मस्तकं	२.१४.६०
गमिष्यामि	२.३७.३२
गम्यतां भवता	२.२३.४४
गयादीनपां	२.१९.१२
गयायामक्षयं	२.१९.१३
गयायां धर्म	२.१३.१०४
गरिमा पञ्चमी	१.२७.१२६
गरीय: सर्व	२.२३.६
गरुडस्यात्मजा:	२.७.४५.९
गर्जनकण्ठ	३.२४.५१
गर्भं दुर्बल	२.७.२८७
गर्भवासो	१.२७.२४
गर्भस्थो	१.३१.३५
गर्भलाबुरयं	२.५१.४१
गर्भे त्वं	२.१०.२९
गर्भोऽश्म	२.७२.४६
गवाक्षो	२.७.२४३
मवां नाम	२.७४.५६
गवां शत	१.२५.११०
गवां सहस्त्र	१.३४.३९
गवेषणं महा	२.७१.१८४
गव्यूतिमात्र	३.२७.३६
गाढान्धकार	३.३७.८१
गाणपत्यं स	३.२.३१५
गाथां चैवात्र	२.६३.१९२
गान्धारदेशजा:	२.७४.१०
गान्धारसेतु	२.६२.३१
गान्धारस्थेन	२.६२.३४
गान्धारान्	१.३१.८३; २.७३.१०८
गान्धारा यवना:	१.१६.४७
गान्धारी जनया	२.७१.१९
गान्धर्वं गारुडं	२.३२.५८
गान्धर्वं प्रति	२.६१.२८
गान्धर्वं शूद्र	१.७.१६७
गायत्री चैव	१.१३.१४५; २२.७७
गायत्रीं च	२.८.५०
गायत्र्यादीनि	२.७.३०
गायद्भि:	२.४९.२३
गायद्विद्या	२.५०.४०
गायन्तीनां	३.३५.१९
गासर्ग्यस्य गर्ग	२.६७.७८
गार्ग्यस्य हि	२.६८.२२
गार्हपत्येन	२.७२.२४
गावश्चैव	१.८.४४
गावस्तमुप	२.१६.२१
गिरयो हि	१.७.१२
गिरिकन्दर	२.२२.२६
गिरिकुञ्जेषु	२.२२.२३
गीतशीला	२.७.४६७
गीतिचक्र	३.१९.८७
गीतिं चक्रू रथ	३.१९.७३
गीर्भिर्भंगल	२.७१.२०८
गीर्भिचैव	२.७२.१५५
गीर्वाणगण्य	३.३३.२६

गुकारस्यान्ध	३.४३.३७
गुणत्रयात्मने	१.२७.७९
गुणमात्रात्म	३.४.२९
गुणमात्रा:	३.३.३३
गुणवृद्ध्या तु	२.६३.९८
गुणवैषम्य	१.४.५
गुणसाम्ये	१.४.३; ३२.७१
गुणास्तु ये	१.३६.५१
गुणास्ते यानि	३.४.३१
गुणेन चाभवत्	२.४९.६४
गुणैश्चैवाधि	१.१३.५३
गुप्ताद्गुप्त	३.३८.७४
गुरुं हुङ्कृत्य	३.४३.६२
गुरुण्डा वृषलै:	२.७४.१७७
गुरुदेवद्विज	३.७.७
गुरुपत्नीं	२.४१.१७
गुरुबुद्ध्या	३.४३.६१
गुरुमभ्यर्च्य	२.३३.२९
गुरुर्मन्त्रो देवता	३.३९.३७
गुरुशुश्रूषको	२.३४.४६
गुरुशुश्रूषणे	२.३५.१५
गुरुश्च तादृशो	३.४३.५१
गुरुश्च मादृशो	३.४१.४३
गुरुस्त्रीब्रह्म	२.२३.६६
गुरुंश्चैव	३.२.१५८
गुरोरात्म	३.८.६
गुरोरालोक	२.४३.५
गुर्वाज्ञया कृतं	३.६.४१
गुर्विणी लभते	१.२५.१०९
गुल्मास्तया	२.७.४६२
गुहशप्तान्	३.३३.५८
गुहायां निहितं	२.१९.५२
गुह्यकें शिति	२.७.४२
गुह्ययोगं	२.३१.२५
गृत्सश्चाष्टा	३.३४.२२
गृध्रयुगरथा	३.२३.४९
गृध्रीमासी	३.७.४४६
गृहभूमिषु	२.७.१९७
गृहं मे गच्छ	२.७.११४
गृहमेधिन:	१.३५.११२
गृहमेधि पुराणा:	१.५.७८
गृहराजस्य	३.३६.४३
गृहस्था ये	१.२८.२०
गृहस्थानां	२.९.७०
गृहस्थो ब्रह्म	१.७.१६९
गृहाण यौवनं	२.६८.६०
गृहाणि कानि	३.४०.८२
गृहाणि यानि	२.७.४०३
गृहानिष्टकरान्	३.६.७२
गृहिणां न्यासिनां	१.१.८०
गृहीत्वा कथं	३.१०.७३
गृहीत्वा तां	३.१.४०
गृहीत्वा रोप	२.५७.४३
गृहैरमर्त्यौचित	२.२६.६२
गृह्यते तु दिवा	१.२८.५५
गेयचक्ररथा	३.१७.५०
गेयचक्ररथेन्द्रस्तु	३.३६.१२
गेयचक्ररथे पर्व	१.१९.६२
गोकर्ण नाम	२.५६.७
गोकर्णनिलया	२.५८.३
गोकर्णामिति	२.५६.५६
गोकर्ण निहितं	२.१३.२१
गोकर्णैरिक	१.२५.३७
गोत्राणां	२.७४.२५५
गोदावरीं	१.१२.१५
गोधा भद्रा:	१.१६.४२
गोनक्षत्र	१.२४.१२५
गोषगोपीश्वरो	२.३६.२९
गोपालाय नमो	२.३३.९
गोपायन्ति	१.१०.६४; २३.३५
गोपीजन	२.३३.३
गोपुरद्वार	३.३१.७४
गोपुरस्योन्नति:	३.३१.४५
गोपुरेषु कपाटेषु	३.२१.१६
गोप्ता धर्मस्य	१.३६.१२४
गोप्तारश्चाप्य	१.३१.५७
गोब्राह्मणबधं	३.४३.४२
गोभूवस्त्र	३.४०.११६
गोभ्य: समभि	२.७.४३७
गोभ्यो हि	२.७.४३३
गोमती धूत	१.१६.२६
गोमयेनोप	२.१३.१३०
गोमेदकमहा	३.३३.१८
गोमेदकस्य	३.३३.१७
गोमेदकोऽत्र	१.१९.७
गोमेदं प्रथमं	१.१९.१५
गोरत्नभूता	२.२८.२९; २८.३३
गोलोकनाथं	२.४२.१९
गोविन्द: पातु	२.३३.२४
गौडी पैष्टी च	३.२८.७१
गौतमश्चाज	१.३५.५२
गौतमादुत्तम:	१.३५.१२२
गौतमोऽत्रि:	१.२७.१०४
गौरज: पुरुषो	१.८.४७
गौरं नाम	१.१८.२४
गौरप्रायो जन:	१.१९.६१
गौरीकुमुद्वती	१.१९.७५
गौरीगुरुत्व	३.३१.१००
गौरीत्रैलोक्य	३.४४.५८
गौरैरश्वै:	१.२३.८६

ग्रन्थिमन्ति यथा	१.२८.३५
ग्रस्ते च सलिले	३.३.११
ग्रहं तु वां	२.७३.६६
ग्रहशशिगणा:	३.३५.४४
ग्रहश्चांगिरस:	१.२४.१३२
ग्रहाश्च चन्द्र	१.२४.१२४
ग्रामांश्चैव	१.७.९४
ग्रामासक्तो	२.७.३११५
ग्रामेषु वन	२.७.३०८
ग्राम्या: कण्ट	२.११.१११
ग्राम्याणा	१.२७.५३
ग्राहाश्चतु	२.७.४१६
ग्रीष्मे च वर्षासु	१.२३.३७
ग्रीष्मे पञ्चाग्नि	२.२२.७२
घ	
घनतोयात्मकं	१.२४.७९
घनवातं	१.२१.२७
घनवाहन	१.२७.९९
घर्घरध्वनिना	३.२०.४३
घृणिसूर्यस्तु	३.३६.१५
घृतमात्रं तथा	२.६६.१२
घृतोदकसमुद्रो	१.१९.६६
घोरत्वाद्गौरव:	३.२.१८३
घोरसंग्रामिणी	३.२४.१३
घोरं परशुं	२.४०.१०
घोरान् क्रूरांश्च	२.७.३६८
घोरो दहति	३.१.१५७
घोरैस्तमोभि:	३.३१.९२
च	
चकमे सरसं	२.७.१०१
चकर्त्त गारुडा:	२.३९.६
चकार क्षोभ	२.६९.३२
चकार नगरं	३.१४.५
चकार मर्दला	३.१६.२
चकार शरजालं	२.४०.३०
चकारातितरा	२.३४.३१
चकारावभृथ	२.५५.४१
चकासद्दिव्य	३.३९.७९
चक्रं रथो मणि:	१.२९.७४; २९.७५
चक्रं गौरिकया	२.४१.६२
चक्रनिघोष	२.३८.२६
चक्रनेमिहत	३.२३.११
चक्रमक्षे	१.२२.७३
चक्रमध्यगतं	३.४१.५९
चक्रमध्यगतां	३.४१.५०
चक्रमैनाक	१.१८.७९
चक्रराजरथ	३.२९.३५; ३६.७
चक्रराजरथं	३.२५.५४
चक्रराजरथे	३.१९.१
चक्रराजरथो	३.२०.८७
चक्रवर्ती	२.७.२७५
चक्रवाकांश्च	२.७.४५८
चक्राविद्धं च	२.१६.७
चक्रिणी श्रीश्च	३.३६.९०
चक्रिरे पृष्ट	१.२.३७
चक्रुरेव तदूर्ध्वं	२.४५.१६
चक्रुश्च	२.३९.१२
चक्रुस्तदा	१.७.९५
चक्रेण	३.२३.४६
चक्रेशीं	३.४४.१२६; १३६.१३९
चक्रेश्वरीं न्य	३.४४.१४२
चक्रेश्वरीं हृदि	३.४४.१५०
चक्रो बलाहक:	१.१८.७८
चक्षुर्लोहित	१.१६.२७
चक्षुषोऽन्यत्	१.७.३५
चक्षु:शास्त्रं	१.२४.१५२
चचाराद्भुत	३.५.४
चचाल निखिला	२.५७.४५
चचालभण्ड	३.२०.९९
चण्डाश्वारु	२.७.३४०
चण्डिका मंगला	३.४०.२५
चण्डीशो भौतिक:	३.४४.५०
चण्डै: खुरपुटै:	३.२२.९९
चण्डो दण्डादय:	६.१७.४
चतस्र: संहिता	१.३४.२६
चतस्रो जज्ञिरे	२.७१.२४८
चतुरङ्गबलोपेत:	१.४७.७५
चतुरङ्गबलो	२.४६.१८
चतुरस्रं च	३.३२.४५
चतुरान्युद्ध	३.२६.४५
चतुरावरणं	३.३२.४१
चतुरो वै	३.१.४२
चतुर्णामथ	१.७.१०२
चतुर्थमाभि	१.३५.६५
चतुर्थं देहि	१.१०.११
चतुर्थं पैलवं	१.१.१४
चतुर्थस्तत्र	१.१९.१०
चतुर्थस्य	१.१०.४२
चतुर्थी मधु	३.३२.५४
चतुर्थे दैत्य	१.२०.३२
चतुथे येऽपि	३.२.४२
चतुर्थोऽहं प्रिये	२.३५.१३
चतुर्थो मञ्च	३.३७.५२
चतुर्थो मम	२.५.८६
चतुर्थोऽगिरस:	१.३५.६२
चतुर्थ्यो तु	२.१७.१२
चतुर्थ्यामुदित:	२.४२.३६
चतुर्दशगुणो	१.३५.१६८
चतुर्दश तथा	२.६.२७; ६१.४३
चतुर्दशसह	२.७.४५१

चतुर्दशसु	३.३३.२२
चतुर्दशानां	२.२.३६
चतुर्दसापि	३.३३.२३
चतुर्दशैव	३.२.८; २.१४४
चतुर्दिश च	३.३६.५७
चतुर्धा प्रवि	१.४.२३
चतुर्नल्व	३.३७.४१
चतुर्बाहुमुखान्	३.२६.७२
चतुर्बाहुयुतो	३.१७.३९
चतुर्बाहुश्चको	३.२६.४७
चतुर्भिरद्भुतैः	३.२६.६०
चतुर्भिर्धृत	३.२९.१७
चतुर्भिर्बाहुभिः	३.१६.२९
चतुर्भुजात्त	२.३६.२३
चतुर्भुजा भुज	३.१९.१२
चतुर्भुजे	३.५.१
चतुर्भेदतया	३.५६.५२
चतुर्मुखस्तु	१.४.१७
चतुर्युग	१.६.६८; ३.२.१२७; १.१८४
चतुर्युगसहस्र	३.१.१२७
चतुर्युगानां	१.३१.११४
चतुर्युगानि	१.२९.१
चतुर्युगे त्वति	२.८.३४
चतुर्युगैक	२.१.४
चतुर्योजन	३.३६.८
चतुर्लक्षजपे	३.३८.३५
चतुर्वर्णश्च	१.१५.१६
चतुर्विधमिदं	२.६२.२३
चतुर्विधाः प्रजाः	१.६.६९
चतुर्विधा यदा	३.१.१८५
चतुर्विंशतिः	३.३४.३२
चतुर्विंशत्पर	१.७.१०९
चतुर्विंशत्तु	२.७४.१६४
चतुर्विंशसमा	२.७४.१२५
चतुर्विंशाश्च	२.७.५
चतुर्विंशे युगे	२.३७.३०
चतुर्वेदमहा	२.३६.९
चतुर्व्यूहं	३.२९.१२७
चतुर्व्यूहाधिपः	२.३७.१२
चतुर्षु	२.७.१९४
चतुर्हस्तो	१.७.१००
चतुष्पदानां	३.२.२०४
चतुष्पादाय	२.७२.१७८
चतुषष्टिकलाः	३.३४.७०
चतुष्षष्टिसह	१.१५.४७
चतुःसाहस्र	१.२९.४१
चतुःसाहस्तिकाः	१.३५.६८
चत्वारः प्रकृतौ	२.६२.५
चत्वार एव	१.७.१८३
चत्वारश्चाप्य	१.३७.७
चत्वारि भारते	१.२९.२३
चत्वारि मन्दिरा	३.३१.८३
चत्वारि विंशतिः	१.७.९९
चत्वारिंशत्कलाः	३.१.२१६
चत्वारिंशत्तथा	१.२९.३६
चत्वारिंशत्त्रय	२.७४.१३४
चत्वारिंशत्समाः	२.७४.१३०
चत्वारो निलयाः	३.३४.५६
चत्वारो यस्य	१.१५.५०
चत्वारो योग	३.३७.२८
चत्वारो विंशतिः	३.२.१२३
चत्वार्याहुः	१.२९.२५
चन्दनाश्चैव	१.२४.२७
चन्दनेभ्यः	२.१३.२७
चन्द्र ऋक्षः	१.२४.५६
चन्द्रकाक	१.१८.७६
चन्द्रगुप्तं च	३.२५.९९
चन्द्रगुप्तं नृप	२.७४.१४४
चन्द्रतीर्थे	३.१३.२८
चन्द्रबिम्ब	३.३५.५१
चन्द्रभागा च	२.१३.१२१
चन्द्रशीतल	१.१५.६०
चन्द्रसूर्यद्वयं	२.७२.३७
चन्द्रसूर्यप्रभो	१.५.९८
चन्द्रसूर्यौ यतः	३.४०.११
चन्द्रस्य	१.२४.१०४
चन्द्रादित्या	१.१९.१७०
चन्द्रादित्यौ	१.३.३१
चन्द्रार्क	३.३८.६०
चन्द्रास्ता	१.२४.२९
चपलोऽरिष्ट	२.७.३३३
चमरीरुरु	२.२६.३४
चमूपतिशर	३.२३.८१
चरकाध्वर्यका	१.३३.१४
चरकाध्वर्यवः	१.३३.१२; ३५.१४
चरितं पुण्यदं	२.३४.४८
चरितैरनघैः	३.३०.२
चरित्वान्ते	१.२२.६०
चरिष्णु	१.११.२१
चरन्तु मम	२.५.८३
चर्षिणे चान्त	३.४.६२
चलद्वीचि	३.३५.९०
चलितं ते	१.२१.१६२
चाक्षुषस्य	१.१.१०५; ३६.८३
चाक्षुषः कस्य	१.३६.४२
चाक्षुषस्यान्तरे	३.१.८; ३.१५०
चातुराश्रम	१.३१.४७; २.१५.२८

चातुर्वर्ण्य १.३७.५
चातुर्वर्ण्य १.१३.६५
चातुर्वर्ण्यं ३.७.१९
चातुर्वर्ण्यासु २.७२.३६
चातुर्विद्यस्य ३.१९.२३; १९.५०
चापबाणौ ३.२९.८२
चापमक्षय ३.१२.८
चामरे चन्द्र ३.२०.२६
चामरे बीज ३.२१.५२
चारचक्षुः ३.३३.१२
चारणीनां ३.३३.१२
चारुश्च चारु २.७१.२४६
चिक्षुभश्चाम ३.२९.७६
निक्षेप नाग २.२९.५
चिक्षेप राज्ञः २.४०.५२
चिक्षेप राम २.४०.५९
चित्रकस्याभवन् २.७१.११४
चित्रजीव ३.१७.४८
चित्रजीवं ३.१७.४४
चित्रजीवमिमं ३.१७.४१
चित्रज्योतिश्च २.५.९२
चित्रवर्षी १.३१.५२
चित्रसेनो ३.१.१०४
चित्रैर्मणिमयैः १.१९.११०
चित्रोपचित्रौ २.७१.१७२
चित्रोपला १.१६.३१
चिदानन्दाकार ३.३९.१०७
चिदानन्दात्मकं ३.१५.७
चिन्तयामास २.२२.७७; २२.८१
चिन्तयामि २.७१.९
चिन्ताकर्षण ३.४४.११९
चिन्ताकर्षणिका ३.१९.१९; ३६.७०
चिन्तामणिकपालं ३.१९.६
चिन्तामणिकल्प ३.१५.३७
चिन्तामणिगृह ३.३५.१७; ३५.१०४; ३६.१; ३६.६; ३६.२४; ३६.२९; ३६.३८; ३६.४४
चिन्तामणीनां ३.३७.८०
चिन्तामणे ३.३०.१२
चिन्तारत्न ३.३६.४५
चिरकालेन ३.६.१५
चिरं ध्यात्वा ३.४०.११२
चिरं निरूप्या २.४८.४०
चिरं शुश्रूषया ३.४३.७
चिरादिव २.३०.८
चिरोत्पन्न २.५९.२७
चीरपत्राजिन १.३१.९९; २.७३.१२२
चीरपत्राजिनानि १.७.१७६
चीराण्युत्सृज्य २.१३.६२
चुक्रुशुर्मुनयः ३.२.२४६
चुक्रोध श्रुत्वा २.३८.१४
चूतप्रियालपन २.२७.१७
चूताग्रपल्लवा २.५०.३७
चूताः कंको ३.३१.५६
चूर्णिकृत २.६९.३१
चेतनाचेतना १.३२.६०
चैत्रः किंपुरुषः १.३६.१९
चैत्रे मासि १.२८.३५
चोराच्चोराच्च १.३१.६१
च्यवनस्य तु १.२०.२७
च्यवनस्य सुक २.८.३१
च्यवनाच्च्यवनः २.१.९२

छ

छन्दोऽनुष्टुब् २.३६.२१
छन्दोभिश्श्च १.२३.४६
छन्दोभिर्वाजि १.२२.६५
छन्द्यमानो २.६३.११०
छायायां सृष्टि १.३६.९८
छायायां ह्रस्ति २.१६.४४
छित्वा बाहु २.६९.४७
छिद्राण्याकाश २.७२.५६
छिनदाम ३.२७.२२
छिन्नमौर्विः ३.२२.१०४

ज

जगच्चरा ३.४०.४४
जगज्जन्म ३.३९.२५
जगतः प्रलयो १.३५.१३१
जगतामार्त्ति १.२५.७३
जगतो जल १.२२.१४
जगत्प्रताप १.२४.६०
जगत्सृष्टं २.३१.६०
जगदभ्युदय ३.१५.४८
जगदुज्जीवन ३.१२.७१
जगुद्गुरुः २.३६.३७
जगद्योनिं १.३०.१०
जगाद भृगु २.२३.१७
जगाम परमा २.५७.६९
जगाम साप्यना १.१३.४८
जगुः सामानि १.२.३१
जगृहुर्नैव तां ३.९.६८
जगृहस्तत्कृतां २.४७.२२
जग्राहाग्निः २.१.४२
जग्राह तानि २.३९.३२
जग्राह समरे २.४०.५८
जघान तत्र २.४७.७

जघान दमनं ३.२५.९४
जघान दानवान् २.६८.९०
जघान पृथिवीं २.६३.१२३
जघान सानुगान् २.४८.१९
जघ्ने विष्णु २.७२.८४
जंगमाः स्थावराः १.६.४८
जंगमान् स्थावरान् १.५.१२५
जंघाकाण्ड ३.१६.२५
जंघापथ १.७.११५
जज्ञार्तेऽधक १.७१.८८
जज्ञिरे तानि १.७.१४३
जज्ञिरे मणि २.७.१२६
जज्ञिरे मानसा २.८.८७
जज्ञिरे ह २.१.१९
जज्ञिरे हुतवः १.२८.१६
जज्ञे चित्ररथः २.७०.१८
जज्ञे तथैव २.७१.२०८
जज्ञे तस्याः २.७१.११
जज्ञे तु २.७१.१५६
जज्ञे श्रावः २.६३.२८
जज्वलुस्त्वग्नि २.७१.२०४
जज्वाल तस्य २.६९.४१
जटामुकुट ३.२९.११५
जटायुषः २.७.४४७
जटावन्तः ३.३३.९१
जटिलो मुण्ड ३.१४.१७
जटी मुण्डी ३.४४.७०
जठरे पार्श्वयोः ३.४४.२६
जनकस्याश्व १.३४.३६
जनमेजय २.६१.१७
जनयामास पुत्रौ २.१.९३; ७४.७२
जनयिष्यसि २.५.५२
जनलोकं ३.११.८५
जनलोके ३.२.५३
जनस्तपश्च ३.२.७३
जनस्तपस्तथा १.१९.१५६
जनस्तु पंचमो ३.२.२२
जनाः परगुण २.५०.११
जनास्तत्रिलयाः २.५६.२८
जनितस्तस्य १.३६.११०
जनिमा विश्वदेवा १.१३.९५
जनिष्यति हि २.६६.४८
जन्तवस्तुरगा २.७.४३१
जन्मनक्षत्र २.२४.१३८
जन्माद्याहार ३.८.२४
जन्मान्तर ३.४३.२५
जपहोरताः २.५६.१९
जपं कृत्वा तथा २.६६.८०
जपन्ति ललिता ३.३५.११
जपाकुसुम ३.१२.७२
जपाच्छ्रान्तः ३.४३.४५
जपाद्दशांशो ३.४१.३२
जपापटल ३.२७.६९
जपाविद्रुम ३.३९.८८
जगदग्निः २.१.९६
जगदग्नितपो २.६६.६४
जमदग्निरथ २.२९.६
जमदग्निस्ततो २.२९.१
जमनाद्वैष्णा २.१.९७
जम्बुकाक्षो जृंभ ३.२१.८०; २५.२९
जम्बूद्वीपः पृथुः १.१५.१२
जम्बूद्वीपस्य १.१५.२७; १९.२
जम्बूद्वीपात् १.१९.१४३
जम्बूद्वीपेश्वरं १.१४.११
जम्बूफलरसा १.१७.१२
जम्बूफलरसे १.१७.२९
जम्भो गगन २.६.१०
जयकारि च ३.१३.२
जयजय ३.३९.२४
जय देवि ३.१३.१; ३९.२२
जयद्धालाहले २.७२.८६
जयध्वजस्य १.६९.५१
जयन्तमिति २.६४.२
जयन्त्यां २.१.८६
जयब्रह्ममये ३.१३.३
जयमंगल ३.२०.१०२
जयविघ्नं ३.२७.५४
जयशब्दं २.४४.९
जयशब्दैश्च २.४९.२२
जयश्रीकरुणा ३.३९.२३
जय श्रीकण्ठ ३.१३.४
जरादोषः २.६८.५४
जरामृत्युभयं २.७४.९३
जरायां २.६८.३३
जरावली २.६८.३०; ५६
जराव्याधि १.३१.१००
जरासंधस्य २.७४.१०८
जरां वर्ष २.६८.४७
जलक्रीडा १.५.११
जलदं च १.१४.१७
जलदं जल १.१४.१८
जलस्थल २.२२.२९
जले तप्ते च २.५९.६८
जलेन समनु १.७.३
जले स्थले २.३३.२६
जवे जवे च २.७.२२९
जहारोरणकौ २.६६.१७
जह्नुस्तु २.६६.३०
जाज्वल्ल्यमानं २.२१.२२; ५१.३८
जातकर्मादिकं २.४७.८७

जातकर्मादि	२.४२.४३	जिता प्रसह्य	२.३८.१५	ज्ञात्वैवैनं	३.४०.५३
जातमात्रोऽथ	२.६५.३९	जित्वा शत्रून्	२.४९.३८	ज्ञानं परं	१.७.५९
जातस्य जय	३.१३.५	जिह्वया चैव	२.१४.१०४	ज्ञानं वैराग्यं	१.३२.८२;
जातमात्रं हि	३.१२.४९	जीभूतकवचा	३.३२.२७		३.२.२१८
जातिविद्या	३.४३.६०	जीमूतपुत्रौ	२.७०.४२	ज्ञानतोऽज्ञानतो	३.४३.५८
जाते तस्मिन्	२.७.११२	जीर्यन्ति	२.६८.१०२	ज्ञानपूर्व	१.२५.१०
जातो भवानद्य	२.४०.५०	जीवग्राहं	२.७.७९	ज्ञानप्रतिमं	१.१.४
जातो मनुष्य	२.७४.२६	जीवन्ति ते	१.१५.६५	ज्ञानाच्चतुर्दश	३.३.८५
जात्यञ्जननिभो	२.८.४९	जीवन्न प्रति	२.२९.७	ज्ञानाच्चात्यन्तिक:	३.१.१३०
जात्यञ्जनमयै:	१.१९.३८	जीवन्नाहं	२.२७.७२	ज्ञानात् प्राप्नोति	१.३०.४५
जात्यन्तर	१.१३.८६	जीवस्य सदसद्	२.३५.१०	ज्ञानाद्धि त्यजते	३.४.३५५
जानन्धर्मान्	२.६३.९७	जुगुप्समाना:	२.४.११	ज्ञानानि भूत	२.९.५१
जानुजंघस्तथा	१.३६.४९	जृम्भतस्तस्य	२.१०.४५	ज्ञानपेन च	१.९.९२
जानुपार्श्वांश	३.४४.१०६	जृम्भिणी	३.२०.५७	ज्ञेय: पंचसु	१.१४.४२
जानूरुस्फिग्	३.४४.९	जेष्ठं प्रति	२.६८.५१	ज्ञेयान्येतानि	२.१४.१११
जान्वन्तराम्यां	२.११.६२	जेष्ठं यद्दुं	२.६८.७८	ज्योघोषं च	१.४६.१४
जामदग्न्य	२.७३.९१	जेष्ठस्तु	२.७.२२६	ज्यामधस्य	१.१.१२२;
जामदग्न्येन	२.७४.२६२	जेष्ठ: शांत	१.१४.२६		२.७०.३३
जामदग्न्यो	२.२३.२९	जेष्ठा पत्नी	२.७१.१६४	ज्यामारोप्य	२.६९.३५
जामाता श्वशुरे	१.१३.२९	जेष्ठो भ्रातृ	२.६१.२१	ज्यायसी च	१.११.४०
जाम्बवानृक्ष	२.७१.३५	जेष्यन्ति	२.५०.२६	ज्येष्ठश्चैव	३.३४.३१
जाम्बूनद	२.१६.३;	जैष्ठ्यकनिष्ठ्य	१.३७.५४	ज्योतिश्चैव	१.३६.३०
	३.३४.७६	जैमिनिं च	१.३४.१३	ज्योतिर्गुण	१.२१.२९
जायते च	२.७२.६४	जैमिनिं साम	१.३४.१५	ज्योतिषां गति	१.२४.११७
जायन्ते कार्य	२.७.४७५	जैत्रं शरासनं	२.३०.७०	ज्योतिषोऽपि	३.३.१३
जायन्ते कृमयो	२.७.४३२	ज्ञात: पितृभ्यां	३.८.१९; २०	ज्योतिष्मत:	१.१४.२७
जायन्ते तत्समा:	२.२.१०५	ज्ञातव्यं वाप्य	१.३५.२०	ज्योतिष्मान्	३.१.६३
जायन्ते मोहयन्ति	२.३.१२४	ज्ञातिभेदभयात्	२.७१.८९	ज्योतींष्यभ्यधिकं	१.७१.२०५
जायमानास्तु	१.२१.१६३	ज्ञात्वा काव्यो	२.७.४७	ज्योत्स्ना च	१.१८.७१
जायस्व शीघ्रं	२.७१.१०८	ज्ञात्वा गृहपति:	१.१३.७६	ज्योत्सना सन्ध्या	१.८.२३
जालान्तरगते	३.२.११८	ज्ञात्वा च	१.२७.३;	ज्वलतो वर्षत:	१.९.७६
जिज्ञासुस्तस्य	२.२३.८		२.३४.५१	ज्वलत्कालानल	३.४४.८०
जितं भगवता	१.१.२	ज्ञात्वा तु	१.२५.७७	ज्वलत्यग्नि:	३.३९.३४
जिता देवमनुष्यै:	२.७२.८३	ज्ञात्वा प्रमाणं	२.२.२६	ज्वलदस्त्रयुगं	२.४०.३१

ज्वलदादित्यवद् ३.२९.९९
ज्वलन्तमिमं २.३०.३९
ज्वालाकपाल: ३.२२.४२
ज्वालाकबलित २.४६.२५
ज्वालामाल १.२६.२३; ३.२६.३२
ज्वालामाला १.२०.५०; २६.२४
ज्वालामालि ३.२९.४५; ३७.३५
ज्वालामालिनी ३.२५.८८

झ

झर्झराश्च ३.१६.५
झिल्लिकाश्च १.१६.५२

ट

टंकारिणी च ३.४४.८८
टवर्गमण्डिता ३.३७.५

त

तं कालं सूर्य १.२८.४२
तं कुमार ३.१४.२१
तं गर्भं धार २.१०.३३
तं गर्भं विधिना २.६५.६
तं गर्भं सप्तधा २.५.७१
तं गृह्यातु ३.१.४८
तं वारय महा २.६३.४२
तं विचित्रतनुं ३.११.३१
तं सिनि च २.६५.२६
तं हत्वाऽस्य शिरो २.४५.९
तक्षकं नाग १.२५.८८
तक्षककोर्टक ३.२३.२९
तक्षस्य दिक्षु २.६३.१९१
तच्चाकाशे पुरं ३.२.२३८
तच्चापक्षिप्त २.७०.११
तच्चित्रपट ३.३०.८०
तच्चैकसप्त १.३५.१७३
ताच्छिष्या वै १.६.४३
तच्छीलवर्णन ३.३०.४३
तच्छुत्वा तत् ३.७.१७
तच्छुत्वा नृपतिं ३.१२.५३
तच्छुत्वा भीर १.३७.२
तच्छुत्वा वचनं २.२३.४५; ५२.११;५४.१९; ३.६.१७; १२.५; १५.१
तच्छुत्वा शकलं २.३१.२८
तच्छुत्वा स भृगु: २.३०.५८
तज्जंघाप्रपदे ३.४४.१२२
तज्जटामण्डले २.५६.४२
तज्जलादुदिता ३.३३.३३
तज्ज्ञात्वा भग २.५१.४०
तज्ज्ञात्वा लोक २.३२.४२
तडिमन्मय ३.२८.१३
तत इन्द्र २.१.८३
तत उत्सारया १.३६.१९५
तत उन्मील्य २.२४.१९
तत एव ३.३१.१०४
तत:कदाचिद् २.४५.१; ३.१५.४६
तत: कर्म २.६७.१०२
तत: कलकला ३.२८.११
तत: कलकले ३.२६.११०
तत: कल्यस्ततो ३.२९.१३१
तत: काम्यप्रयो ३.४१.३४
तत: कालवशं ३.७.३८
तत: कालान्तरे १.७.८६
तत: काले गते २.४५.१७
तत: कालेन १.७.७७; २.७४.९६
तत: काव्यस्तु २.७२.१०३
तत: किलकिला ३.२२.५; २२.६५; २७.७६
तत: कृष्णस्य २.७१.९६
तत: क्रोध २.९८.८; ४६.२४
तत: क्रोधीश ३.४४.५१
तत: परं किं १.१७.६
तत: परं च १.२४.६
तत: पर्वाणि १.१.९०
तत: पादे च ३.४४.९२
तत: पीठानि ३.४४.९३
तत: पुनरभूत् १.७.१२९; २.४६.२०
तत: पुन: श्री ३.३९.५२
तत: पूर्वे ३.९.३
तत: पौत्रं २.५.५१
तत: प्रकृतय: २.४९.१७
तत: प्रचेतसा २.५७.४०
तत: प्रजा: १.९.१६; २.५९.३१; ३.२.४९
तत: प्रणम्य २.४४.३०; ५१.२५; ४४.३०; ५४.४०; ५४.५४
तत: प्रदक्षिणं १.२७.५७
तत: प्रनष्टे २.७३.३९
तत: प्रभृति १.९.८८; २.२.२८; ४७.५५; ४७.१४०
तत: प्रभृत्यभूद् २.४७.८
तत: प्रलीने ३.१.१४७
तत: प्रवर्तते तासां १.३१.३
तत: प्रवर्तते भूय: २.१३.१२०
तत: प्रवर्तते यज्ञ: २.५५.३

ततः प्रवर्तते युद्धं ३.२८.३५; २९.४७
ततः प्रवर्तते युद्धे २.७१.६९
ततः प्रशान्तं २.५४.४
ततः प्रसन्ना ३.१३.३०
ततः प्रसन्नो ३.११.९; ३४
ततः प्रहृष्ट ३.९.७५
ततः प्राप्य ३.२.७२
ततः प्रासादात् २.१०.६१
ततः शकान् २.६३.१३४
ततः शरान् २.७०.९
ततः शान्तिं २.४७.७२
ततः शीतांशु ३.९.७२
ततः शुष्कसुमि २.५७.१
ततः शैशिरयोः १.२३.२०
ततः श्रीदण्ड ३.१६.३६
ततः श्रीललिता ३.२९.५६
ततः श्रुत्वा ३.२५.१
ततः संनिधि ३.४०.११८
ततः संवत्सरं २.७४.१६५
ततः संवत्सरे २.५१.४६
ततः संवर्द्धितः ३.१.१५२
ततः संवृत २.७३.६२
ततः संस्तूय २.६५.१२
ततः स ऋच १.३४.१९
ततः सकाला ३.४०.१२
ततः स जनया २.१.३२
ततः स तेन १.९.११
ततः स तैः २.२८.१३
ततः सत्वर १.७.१८८
ततः स दुःख २.६८.२४
ततः स ध्यान १.३५.२३
ततः स पर्वत २.४७.३९
ततः स पृथिवीं २.२४.४०; ३.१.१५३
ततः स बाहु २.५.२९
ततः स मन्त्री २.२८.६५
ततः समभवद् १.३४.६२
ततः समाकुलाः २.५३.३
ततः समुत्थिता ३.२९.८०
ततः समुत्थितो ३.१०.७५
ततः समेत्य २.५३.९
ततः सर्वाणि १.३५.१६९
ततः सर्वे १.२५.५८
ततः स वह्नि २.५३.३७
ततः शुशुभे २.२४.७८
ततः स शूर २.४६.२१
ततः स सगरो २.४७.९३
ततः स सर्व २.४७.३७
ततः सा नगरी २.४९.१२
ततः सा ललिता २.२७.६७
ततः सा विहतं २.३०.७
ततः सुखोप २.२१.२९
ततः सुरगणाः २.२५.९२
ततः सैन्यमस्त्रेण २.३८.५०
ततः सोऽन्तर्हिते २.७३.३
ततः सोऽप्सरसां २.७.१०७
ततः सोऽभ्या २.७३.१७
ततः सोमस्य १.३७.४०
ततः स्तब्धेषु ३.२४.६५
ततः स्वरूप २.२४.२३
ततः स्वर्णमयी १.१.७३
ततः स्वायम्भुवे २.४.२८
ततजाच्च १.३५.१२४
ततश्चक्र ३.२५.६३
ततश्च ह्लादि १.१८.५३
ततश्चान्यो ३.३४.३८
ततस्तं दीर्घ २.७४.८२
ततस्तं मुनयः १.२७.६१
ततस्तं समनु २.४७.५८
ततस्तत् क्रोध २.५४.१४
ततस्तथा ३.३९.४९
ततस्तद्भक्ति २.२५.१
ततस्तद्रक्षको २.५१.५६
ततस्तत्रिलयाः २.५६.६; ५७
ततस्तपोधना २.४५.१४
ततस्तमार्जव २.७१.९७
ततस्तमाह २.५४.४६
ततस्तयोः २.२५.७९
ततस्तलातलं १.२०.१२
ततस्तस्मादहं ३.३९.११५
ततस्तस्मिन् १.९.१३
ततस्तस्मै २.६५.१९
ततस्तस्य ३.९.१८
ततस्तस्या २.७१.७४
ततस्ताः सृज्य १.७.२५
ततस्तानदहत् २.१.८४
ततस्तानब्रवीत् २.७२.११५
ततस्तानागतान् २.५७.९
ततस्तान् बध्य २.७२.१३१
ततस्तान् स १.२७.१०२
ततस्ताप १.१.१४६
ततस्तारक ३.३०.१०४
ततस्तासु १.७.१३९
ततस्तु चिन्त ३.९.२१
ततस्तु परमा ३.६.६१
ततस्तु पावनी १.१८.८६
ततस्तुम्बीजलैः ३.४३.२७
ततस्तु या ३.७.४६
ततस्तु रामोऽवनि २.४१.१२
ततस्तु विस्मया ३.५.३९

ततस्तु सलिले	१.५.८
ततस्तृतीयं	१.१९.३३
ततस्ते कृत	२.७२.११२
ततस्ते जननीं	२.४७.२१
ततस्ते दोष	१.३५.१५५
ततस्तेन तु	२.६७.५७
ततस्तेन रुषा	२.४.२७
ततस्तेनाभि	२.७२.१४३
ततस्तेनाव	१.१३.५८
ततस्ते पर्य	१.७.१३०
ततस्ते प्रबला	१.७.१३४
तवस्ते भगवान्	२.५१.२६
ततस्ते भग्न	२.२९.२२; ४६.२२
ततस्ते भारतं	२.५३.१४
ततस्ते मुदिता:	१.२७.९६
ततस्ते मुनय:	१.२७.१०३
ततस्ते मुनयो	२.५७.१२
ततस्ते रश्मय:	३.१.१४०
ततस्तेऽवश्य	१.६.२३
ततस्ते वै	२.४.३३
ततस्तेषां तु	१.३५.१९२
ततस्तेषां प्रतापेन	३.१.१४३
ततस्तेषां प्रति	२.२४.५०
ततस्तेषां प्रभा	१.२७.१०
ततस्तेषां भृगु	२.५८.२५
ततस्तेषामनु	२.४७.४५
ततस्तेषु गतेषु	१.६.४२
ततस्तेषु प्रकी	१.५.२७
ततस्तेषु प्रणष्टे	१.७.८२
ततस्तेषु प्रमूढेषु	२.७३.३६
ततस्तेषु व्यतो	१.३५.१९९
ततस्तेषूप	१.६.५१
ततस्ते सगणा:	१.३५.१७

ततस्ते सलिले	१.५.१३७
ततस्ते स्वसुतान्	१.९.२०
ततस्ते हरयो	२.४.३१
ततस्ते ह्युप	१.५.१२८
ततस्तौ प्रीत	२.२१.२७
ततस्तौ प्रीति	२.२५.७२
ततस्त्वं कुपितो	३.९.७४
ततस्त्वभ्यर्चिता:	१.१३.४५
ततस्त्वरित	२.७१.६६
ततस्त्वृतु	१.२२.२६
ततो गजकुला	३.१.१५९
ततो गत्वा	२.७३.२२
ततो गुरु	२.२२.४
ततो गुरूक्त	३.४०.४७
ततो गोमय	३.४३.१६
ततोऽङ्गस्तु	१.७४.८७
ततो जगृहिरे	३.१०.३
ततो जलमुप	२५७४२
ततो दक्षो	१.१.११२
ततो दिव्याम्बर	३.९.७४
ततो दीर्घतमा	२.७४.४६
ततो दुहितरा	२.३.७३
ततो देवद्विज	२.७.६
ततो देवस्तिरो	२.४.२६
ततो देवा जयं	२.७३.६७
ततो देवान्	२.२४.४७
ततो देवान्यव	२.७२.११४
ततो देवास्ततो	२.९.५५
ततो देवास्तु	२.७२.१०२
ततो देवै:	१.१३.७४; ३.९.२२
ततो देत्येश्वरो	३.९.५
ततो द्रक्ष्यथ	१.२७.५६
ततो द्वितीया	१.२३.६४

ततो ध्यान	१.२६.३०
ततो नियुक्तो	२.७२.१२२
ततो निरुद्धा	१.१८.३२
ततो निरूप्य	२.५८.१४
ततो निवार्यो	२.६५.३६
ततो निष्क्रम्य	२.४०.४; ४७.७३; ७३.७६
ततो नीत्वा	२.३०.४८
ततोऽनुमान्य	३.४९.८
ततोऽन्तरिक्षे	२.७१.२२७
ततोऽन्धनामक:	३.२.२०९
ततोऽन्यां	१.७.१८६
ततोऽपरे	२.७४.२६९
ततो बलेन	२.४९.९
ततो बहि:	३.३८.१९
ततो वृहस्पति	३.२.१३३
ततोऽब्रवीत्	१.१०.४१;४५; ५९; १३.४९; २.७४.९७
ततो ब्रह्मार्णव:	१.३४.४८
ततोऽभवत्	२.२४.८०
ततो भवति	३.४१.२६
ततोऽभ्यमध्या	१.८.१
ततोऽभ्युण	१.३४.५०; ३७.३
ततो मनुष्य	२.७४.९०
ततो मन्दतरं	१.२१.९४
ततो मन्वन्तरे	२.६०.१
ततो मामब्रवीद्	१.२६.१५; २५
ततो मुखात्	१.८.९
ततो मुमुदिरे	३.१५.१३
ततो मुसल	३.२८.११३
ततो मूर्द्धाभि	२.७४.१
ततोऽम्बिका	३.४४.८६
ततो य: पावको	१.१२.३३

ततो यक्ष्माभि २.६५.४७
ततो यमीक्षते ३.४१.३८
ततो यावन २.४८.२६
ततो यवीयस: २.७४.५८
ततो यवीयसी २.७.२८
ततो यानि १.३५.२४
ततो यास्यामि २.७३.१०९
ततो युग ३.१.१३२
ततोऽयोध्यां २.५३.५
ततो राज २.४७.२
ततो राजेति १.३६.१५६
ततो रात्रिक्षये ३.१.१९१
ततो राम: २.५७.३७
ततो रामोऽत्र २.२४.६९
ततो रामो महा २.३०.३४
ततो लेभे २.६७.१०४
ततो वज्राभि ३.७.५३
ततो वधस्तस्य ३.३०.३६
ततोऽवनेरध: २.५४.११
ततो वर्षति १.२२.२८
ततो वर्षसहस्रं १.२६.२७
ततो वसिष्ठो २.६३.१०१
ततो विकसितां ३.९.७६
ततो विग्रहवंतं २.७१.२७
ततो विदर्भराट् २.४९.२
ततो विनष्टं २.५४.१०
ततो विप्र ३.४४.१०९
ततो विमृश्य २.२३.२८
ततो विवेश २.५.६८
ततो विसर्ज १.१८.३८
ततो विसृज्य १.१८.३९
ततो विसृष्टा १.१०.१९
ततो विस्मय १.२६.२९
ततो विहर १.१२.२७
ततो विह्वलिता ३.४१.४४
ततो वेदविद २.३.६८
ततो व्यतीते १.३१.९०; २.७३.११८
ततोऽसुरा: २.७३.१४१
ततोऽसुरान् २.७२.९५
ततोऽसृजत् १.५.७२; ९.२०
ततोऽसृजत् १.८.५७
ततोऽस्य २.४६.७
ततोऽहं पातुं १.२५.८६
ततोऽहं मुराय १.२५.७९
ततो हत्वा २.६८.२८
ततो हाहा ३.२३.७२
तत्कथं वचनं २.३०.७१
तत्कथ्यमान ३.४.४
तत्कर्मकृत्त ३.४१.८२
तत्कर्म कृष्णस्य २.७१.३६
तत्कर्मफल १.७.१९४
तत्कालकूटं १.२५.९१
तत्कालभाविते १.५.११४
तत्कालवासिनां ३.२.३०८
तत्कालसंमिता १.२८.५९
तत्किमर्थं १.२५.१९
तत्क्रमेण ३.३८.१७
तत्क्षेत्रसेवन २.५६.१३
तत्क्षेत्रस्य २.५६.११
तत्क्षोभात् ३.२८.१२
तत्तटाक ३.७.२९
तत्तत्कुमार: १.२८.९२
तत्तथाऽनु २.४९.७४
तत्तदेवाव २.३.१२२
तत्तद्योजन २.४३.६६
तत्तपोवन २.२८.३६
तत्तम: प्रति १.९.१२
तत्तुल्यं पर्वते १.२.१८
तत्तु शून्य ३.२१.३
तत्तेज: समनु ३.१.१५८
तत्तेजस २.१.६१
तत्तोय २.५८.६१
तत्त्वं धैर्य २.३०.२५
तत्त्वज्ञाना १.१.९
तत्त्वप्रसंयमो ३.३.२५
तत्त्वयैव ३.२४.८९
तत्त्वानां च ३.३.५४
तत्पदस्मरणं ३.४३.४१
तत्पश्चात् २.७४.१४२
तत्पत्रात् ३.३५.८६
तत्पार्श्वे तु ३.३०.५४
तत्पुण्यमद्य २.३४.५४
तत्पूर्वापर २.७४.२७२
तत्प्रभावेण ३.३५.६४
तत्प्रश्नस्योत्तरं ३.९.८
तत्प्रसंगेन ३.२१.५८
तत्प्रसीद २.५४.४५
तस्मात्तवैष २.५९.५४
तस्माद्द्यात् २.१५.२०
तत्वरे विज्वल ३.२९.२२
तत्संहर २.७.२८३
तत्सत्रमभवत् १.२.१४
तत्सर्वं दहते १.२७.१२२
तत्सर्वं हि ३.२१.६४
तत्सामुद्रं च ३.२९.९४
तत्सुचंद्रं जये २.३९.४८
तत्स्थलस्यैव ३.३३.४२
तत्स्वप्नस्य ३.३१.१०३
तत्र कक्षानतरे ३.३४.७५
तत्र कल्पान् दश १.५.११०; ६.३१
तत्र काला १.१५.५४

तत्र काशीं	३.४०.८०
तत्र किं वर्ण्यते	२.३८.५
तत्र कोशत्रय	३.३६.४६
तत्र गत्वा ज्वल	३.२७.३१
तत्र गत्वा त्व	२.२४.५२
तत्र गत्वा यथा	३.२१.२४; ५२.१०
तत्र गत्वा स्तवं	२.३७.६
तत्र गर्तास्त्रय:	२.११.९
तत्र गोवर्द्धनं	१.१६.४४
तत्र जंबूनदी	१.१८.६९
तत्र चौर्वाश्र	२.४७.७९
तत्र जांबूनदं	१.१७.३०
तत्र ज्वलति	२.३६.२
तत्र ज्वाला	२.१३.१२
तत्र तत्र निवा	२.२२.६
तत्र तत्र प्रजा	१.३६.२००
तत्र तद्युद्ध	१.६५.३४
तत्र तीरे	२.३५.४५
तत्र तेऽभ्य	३.२.७५
तत्र ते दिवि	२.१०.५३
तत्र ते मेनिरे	१.२.१३
तत्र ते ह्यव	१.५.११२; ६.३३
यत्रत्यं सलिलं	३.३५.२८
यत्रत्यैर्देवता	३.२०.८५
तत्रत्यैस्तै:	१.१८.६४
तत्र दिव्यानि	३.३३.४४
तत्र दिव्याम्बर	२.६०.६
तत्र दिव्यो	१.१५.५५
तत्र दीप	२.४७.६१
तत्र दृष्टा	२.३६.५
तत्र देवीं	३.३३.१५
तत्र नाथा	४.३७.२७
तत्र नौका	३.३५.६२
तत्र नौकेश्वरी	३.३५.३८
तत्र पुण्य	१.१९.८२; ९५
तत्र पूर्वादि	३.६४.६४
तत्र पूर्वार्द्धं	३.१९.७
तत्र बालातपो	३.३५.४३; ५०
तत्र भागीरथी	३.१२.४४
तत्र भिक्षा	३.४०.६०
तत्र मुक्तात	६.२५.५५
तत्र रत्नान्य	१.१९.४३
तत्र रुद्रालय:	३.३४.३
तत्र लग्ना	३.२४.२७
तत्र वंशे	२.७१.८४
तत्र वारण	३.५.७
तत्र वासं	२.३७.१०
तत्र वृक्षा	१.१५.७२
नत्र वैदूर्य	३.३३.३९
तत्र वैष्णव	३.३४.७२
तत्र शिष्टास्तु	२.६५.३५
तत्र श्रीललिता	३.३७.४८
तत्र संध्यांशके	१.३१.९१
तत्र सर्वत्र	३.१०.५६
तत्र सिद्धा:	३.३३.३
तत्रस्थलास्तु	३.६४.६७
तत्रस्थानां	१.२८.८५
तत्रस्थिताभि:	३.२७.७५
तत्र स्थितौ	२.३२.१२
तत्र स्नात्वा	२.१३.११४; ४५.३
तत्र होत्री	३.३६.४
तत्रांगस्य	२.७४.१०२
तत्रान्तरेऽणिमा	३.३६.५०
तत्रान्तरे तु	३.३६.५४
तत्राणिमादि	३.२५.५९
तत्रातिकौतुक	२.३५.२५
तत्राथ नगरीं	३.१४.९
तत्राधारे	३.३५.८४
तत्रानुवंश	२.७०.२०
तत्रापश्यं	३.२७.३३
तत्रापश्यत्	२.३१.२२
तत्रापि कृत	३.४०.३८
तत्रापि पर्वता:	१.१९.८३
तत्रायं प्रवि	३.३१.३४
तत्रालंकार	३.३७.९५
तत्राश्चर्य	३.२४.१००
तत्राश्रमे	२.२१.७०
तत्राष्टौ	३.३६.९५
तत्रासंख्यानि	२.५६.८
तत्रासते	१.२१.१६०
तत्राह: कर्म	१.२९.८
तत्रैक: संचर	२.६२.७
तत्रैक: संचर	३.३३.१३
तत्रैव कल्प	३.३५.५३
तत्रैव चन्द्रिका	३.३५.५३
तत्रैव चावस	२.५६.२६
तत्रैव देवता	३.२०.५६
तत्रैव पञ्च	३.३२.१०
तत्रैव पर्वणो	३.१९.८२
तत्रैव मंत्रिणी	३.३१.८२
तत्रैव माता	२.४१.५०
तत्रैव शृंगे	३.३१.३३
तत्रैव संस्थितो	१.३२.८०; ८१
तत्रैव सुप्र	३.४०.१११
तत्रैव हीर	३.३३.१९
तत्रैवांगिरसा	२.६५.१२
तत्रोदवोढ	३.३९.६०
तत्रोद्दाम	३.२९.९२
तत्रोद्धूतो	३.३०.१०१
तत्रोपवर्गिणां	१.६.४१

तत्रोर्ध्वस्रोत	१.५.५७	तथा वत्स	१.३६.१२०	तथैव जायते	१.७.८४
तथाऽवेहि	२.२३.५०	तथा वशिष्ठो	१.२३.६	तथैव नाग	१.२०.४५
तथा करीतय	२.१६.६१	तथा वाक्यानि	१.३३.२३	तथैव नाम्ना	२.१०.१४
तथा काम	१.२१.१६७	तथा वासन्त	३.३२.६१	तथैव बाह्यतः	१.२२.८४
तथा कार्या	२.१४.६६	तथा विवद	१.१.१६६	तथैव ब्रह्मा	१.२६.२८
तथा कृतवती	३.२५.४८; ८.४०.१८	तथा बिवृत्ताः	१.३२.७८	तथैव मायया	३.२३.२१
		तथा विवृत्तो	१.३२.७९	तथैव यामिनी	३.४४.७५
तथा खरपथां	१.१८.५७	तथा वैतरणी	३.२.१४९	तथैव रक्त	२.१४.२५
तथा चारण	१.३५.७८	तथा शतबला	२.७१.१६९	तथैव शत	१.१.५७
तथा चान्येषु	१.३१.११८	तथा शतसहस्राणि	१.२१.१६; २९.३२; ३४; २.७२.८९; ३.१.२३०	तथैव सन्ध्या	१.३१.३०
तथा चित्ररथ	३.२०.५०			तथैव समरं	३.२९.८८
तथा तं नयते	२.२०.१३			तथैव सैन्य	३.२८.३१
तथा तामरसा	२.८.७६			तथैवाथर्व	१.३१.१७
तथा दश	३.२.९४	तथा शुक्ति	२.७.४१९	तथैवानर्दधे	३.१०.७७
तथा देवालया	१.२३.९५	तथा श्यामाक	२.११.७६	तथैवाहृत्य	३.७.२८
तथा न	२.१०.५५	तथा श्राद्धेषु	१.२८.९१	तथोक्तस्तु	२.६७.३८
तथा निर्वचनं	१.१.५३	तथा संयोग	१.२२.७५	तथोदगयनं	१.२१.९१
तथा नेनांभस	३.१.२१७	तथा समय	३.१७.१९	तथोपचरितं	२.४.१७
तथान्ये ऋक्ष	३.७.३०२	तथा सव्याप	१.१२.१३	तथौत्कार्येष्टय	२.७.१४१
तथा पंचदश	१.२१.१२५	तथा सातिशय	१.३२.१५	तदग्रे निखिलः	२.४४.२०
तथापि तत्तु	३.४०.७२	तथास्त्विति	३.३९.७७	तदर्धं तु	३.९.२४
तथापि न	२.४८.३	तथास्य	२.१.२२	तदं कुशविनि	३.२२.१०६
तथापि बहु	३.७.२०	तथा स्वनाम	१.२४.१३६	तदत्र मूल	३.२५.१२
तथा पुष्पं	३.४१.३९	तथा स्वप्रति	३.१.२४१	तदद्भुत	३.३९.१०१
तथाप्नुयात्	२.१५.१२	तथा स्वांशो	२.७.२१५	तदन्नरमनु	२.५.७४
तथा बभूव	३.२८.९५	तथा हारिद्र	१.३५.७५	तदन्तरे च	३.२२.५८
तथा बिभेद	१.१.१५४	तथेति तत्प्रति	३.११.३६; १५.३	तदन्तस्तनुते	१.५.१३४
तथा भूतगणा	३.२०.४९	तथेति तस्य	३.३९.४७	तदम्भसा	२.५४.५०
तथा भतशरीर	३.२.१८६	तथेति तस्या	२.५४.५१	तदरण्ये	३.७.१२
तथा मन्वन्तरा	१.३५.१८३	तथेति समनु	२.१.३८	तदर्घ्यममृतं	३.३५.९१
तथा महेन्द्र	३.२६.१८	तथेत्याकाश	३.३९.१००	तदर्थमेव	२.४९.६६
तथा रूक्ष	२.१.११२	तथेत्युक्त्वा	२.२५.३८; ४८	तदस्त्रं शत	२.३९.२८
तथार्घ्यभाव	३.३८.२४	तथेत्येवाह	२.६७.९४	तदस्त्रज्वालया	३.२९.१४३
तथा वञ्चितु	१.२७.१६	तथैव चातु	१.३२.६२	तदस्त्रतो	३.२३.८५

तदस्त्रदर्प	३.२९.१०६	तदाऽब्रवीद्	२.६६.४७	तदोवाच	४.४२.२७
तदाऽकरोत्	२.६३.२२	तदा भवति	१.६.६१	तदौषधी:	१.३६.२२३
तदाख्यास्तत्	१.१३.२२	तदा भवत्यना	३.१.१३३	तद्गारुढास्त्र	३.२३.६६
तदागमन	२.४९.११	तदा भाविन	२.७.६३	तद्दशांशस्तु	३.३८.३२
तदा चाल्पेन	१.३१.७१	तदाभिध्यायत:	१.८.४	तद्दृष्ट्वा	३.१५.३५; ४१;१३
तदा जलधरा:	३.१.१६६	तदा महानु	३.२७.५८		
तदाज्ञयाथवा	२.२१.१७	तदा यास्यन्	२.३७.३३	तद्बहि:	३.४४.१४३
तदाज्ञया प्रव	३.१३.२०	तदारोह रथं	२.७१.६८	तद्ब्रह्महत्या	३.४०.५८
तदाज्ञयैव	२.२६.३	ततदालोकन	३.३०.७९	तद्बाण	३.३०.५८
तदाज्ञां शिरसा	३.३०.५०	तदा विभज्य	३.६.६०	तद्भक्तानां	३.३५.४९
तदा तदखिलं	३.१०.२७	तदा विवाद:	१.३०.२२	तद्भवत्यक्षमं	२.१३.११
तदा तां प्रोक्ष्य	२.७२.१४७	तदा सत्य	१.७.५३	तद्भालगल	३.४१.४१
तदा तां शप्तु	२.६७.४१	तदाऽसुरा	२.७३.२८	तद्भाविनां	१.३५.२०७
तदा तान्यपि	३.१.१९६	तदा हतौ	३.२९.६	तद्यंत्रस्य	३.२७.४२
तदा तासु	१.७.६३	तदाहारा	१.३६.२१५	तद्यजन्ते	१.३०.१५
तदाऽतिदु:खेन	२.४०.४६	तदा हि	२.७१.५९	तद्यज्ञवाटं	२.५६.४५
तदा तिर्यक्	२.७२.१६३	तदिच्छाम:	१.१.२८	तद्वक्ष्यामि	१.२१.१०
तदा तु सर्वे	२.४१.९	तदिदं दु:ख	१.५१.१८	तद्वत्सहस्त्र	१.२४.६४
तदा ते विवशा:	१.५.१२६	तदुक्तमृषिभि:	३.२.७१	तद्वयं श्रोतु	१.२५.७
तदा तेष्वपि	२.२.३०	तदुदन्तं तत:	३.२३.९९	तद्वर्णवलिला	३.३३.८
तदा दहति	३.१.१५६	तदुपश्रुत्य	१.१३.६२; ७२; ३.२.६९	तद्वाक्यमुररी	३.१०.१६
तदा दानानि	१.२१.१४९			तद्वासिनी तत:	३.३२.३९
तदा देवा	३.३१.५	तदेतन्मणि	२.७१.२९	तद्विग्रहवत:	३.२.२३४
तदा देवासुरे	२.६७.८१	तद्दृष्ट्वा	३.४०.८४	तद्विधै: कर्म	२.५.९१
तदा देवी	३.१७.३७	तदेकद्वय	३.३२.४६	तद्विमान	३.१५.२९
तदा धर्म्म	१.२९.६९	तदेतदुचितं	३.२६.९२	तद्वीर्यबिन्दु	३.१०.७६
तदानीमेव	३.१०.८४	तदेनमन्वगा	३.२९.२०	तद्वृत्तान्त	२.४७.९०; ३.२२.६७
तदा पञ्चमुखो	३.४०.५०	तदेनां समरे	३.२६.५६		
तदा प्रदक्षिणी	३.३९.६४	तदेव कृत्स्नं	२.११.१०७	तद् वृथा	३.२१.९४
तदा प्रभृति	१.२७.११४; २.२५.७६	तदेव तस्या:	२.३५.३७	तद्वै भ्रातृशतं	२.६३.२
		तदेव प्रथमं	३.१९.६३	तद्वैरिणां तु	३.३२.३२
तदा प्रमुदिता	१.२९.५६	तदेव शक्ति	३.२०.९७	तनु: पाशुपती	१.१०.७१
तदा प्रवर्त्तते	१.२९.८९	तदेवानन्य	३.१०.४९	तनुरंबूद्भवा	१.१०.६८
तदा प्राच्छा	२.३८.२८	तदोत्सुका	१.६.२५	तनुरुग्रात्मिका	१.१०.७३

तं च ताल	३.३४.६२	तन्मध्यकक्षा	३.३३.४२; ३५.२६	तपसा हि	२.२०.९
तं च दृष्ट्वा	२.२१.६९	तन्मध्यत:	३.१२.७०	तपसोऽन्ते क्रिया	३.२.८३
तं चाभिवाद्य	२.२५.८२	तन्मध्यभू:	३.३५.५२; ७१	तपसोऽन्ते महा	२.६७.८
तं चित्रकर्मा	३.११.३२	तन्मध्ये	२.३२.११; ४०.५४	तपस्तपस्यौ	१.२१.१५१
तं चोरं वज्र	३.७.२६	तन्महायोगि	३.३५.३६	तपस्तेपे	१.३६.९१
तं जातं रक्ष	२.७१.२१५	तन्मात्रभूत	३.३०.८२	तपस्यत:	२.७४.१९
तं तथागत	२.३०.२१	तन्मात्राणां	१.५.५४	तपस्यभिरतो	२.६६.४२
तं तदाश्रम	२.५७.५	तन्मात्राणि	१.३२.९२	तपस्विजन	२.२१.४८
तं तु बद्धं	२.६३.८७	तन्माया	३.१०.३६	तपस्विं	२.२३.१
तन्तूनामिव	१.१९.१८९	तन्वा यदसुरान्	१.८.२५	तपस्विनां	२.२६.५३
तन्त्रीस्वनोप	२.२७.८	तप: प्रकर्ष	१.३३.३२	तपस्विनो	२.४०.४५
तं त्वामहं	२.३७.१८	तप:प्रीति	३.३.६२	तपस्विन्द्विज	२.३२.४९
तं देवदेवं	२.३७.२०; ३.४.७३	तप:शक्त्यात्त	३.३१.९१	तपिनी	३.३५.८७
तं दृष्ट्वा ऋषिभि:	२.२.९	तप:शीला तु	२.७.४६६	तपो गृह	१.२.६
तं दृष्ट्वा कुपित:	३.११.२८	तपते चैव	१.२७.३७	तपो धनबल:	२.२८.५९
तं दृष्ट्वा गजा	२.४१.५४	तपत्यसौ	१.२३.२०	तपोधनानन्द	२.२१.४९
तं दृष्ट्वा च	२.२५.८३	तपत्येष	१.२४.६१	तपोनिष्ठं	३.३०.७१
तं दृष्ट्वा दान	३.१२.६०	तपन्ति तार्षै:	२.३७.२१	तपोबल	३.८.३१
तं दृष्ट्वा देव	२.२५.२	तपश्चचार	२.२२.७०	तपोभिश्चिर	३.५.२३
तं दृष्ट्वानन्द	३.५.११	तपच तेषु	१.३७.२९	तपोमूर्ति	३.१.९२
तं दृष्ट्वा पाप	२.५४.१३	तपश्चैव	१.१३.११	तपोयज्ञ	१.३१.५१
तं दृष्ट्वाऽप्यसु	३.१०.२०	तपसा फल	२.३१.२४	तपोविघ्न	३.१२.५९
तं दृष्ट्वा राज	२.४८.२९	तपसां तु	२.६६.८५	तपोवीर्य	२.३२.४
तं दृष्ट्वा सहसो	२.३७.१४	तपसा तेजसा	२.१३.७	तप्तकुम्भो	३.२.१४७
तं दृष्ट्वा सुरसं	१.२५.४६	तपसा तोष	२.२३.३२	तम एव	१.१९.१६७
तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं	२.७२.१४१	तपसा तोषित:	३.३९.११४	तम:प्रकाशको	१.४.८
तं ध्यानयुक्तं	२.५४.२०	तपसा त्वं	२.५१.५	तम:सत्त्वगुणा	१.४.२
तं नमस्कृत्य	२.२१.३६	तपसापि	१.२८.६९	तमतिक्रान्त	१.३६.१३३
तं नियोजय	३.११.२०	तपसा ब्रह्म	१.२७.७५	तमनुद्रुत्य	२.२५.५२
तं निरुध्य च	३.२७.१८	तपसा विप्र	२.१०.१०६	तमभिप्रस्थितम्	२.७१.२८
तन्निवारण	३.२९.७०	तपसा संभृता	३.१.५४	तमश्च कृष्ण	३.२.१५०
तन्निवेदित	३.७.७४; ८.५९	तपसा सर्व	२.२३.३०	तमसा भवि	२.१.३३
तन्निशम्य	३.४०.५५			तमसेवन्त	३.१२.१४
				तमसोन्ते	१.१९.१६८

तमहं त्वत् २.५.६३
तमहं विश्व १.१.७
तमागत २.५४.६
तमागस्कारिणं २.६३.१९६
तमादिपुरुषं २.६३.१४५
तमादिश ३.२८.५६
तमापतन्त ३.२२.३६
तमायान्त २.३०.१७
तमारुह्य २.५७.३०
तमालं शत २.१४.१६
तमालताल ३.१०.५४
तमालश्याम ३.२४.७६
तमालिंग्य २.२१.१२
तमाश्लिष्य: २.२१.२८
तमासनस्थं ३.९.१५
तमासीनं २.२८.१५
तमुग्रतपसं २.६६.३४
तमुत्थाप्य २.२४.६६
तमुपागम्य २.५४.३०
तमुवाच २.७१.२३०; ७४.८१; ३.१०.४५
तमुष्ट्रवाहनं ३.२२.४९
तमेवं विधि २.७१.२२१
तमेव सुचिरं २.५१.६०
तमेवानुविकारं ३.३.९१
तमोगुण २.२५.२२
तमोबहु १.५.३७
तमोऽभिभूते २.८.७८
तमोमयो १.१४.१३४
तमोमात्रात् ३.४.१४
तमोमात्रावृत १.१.५६
तमोलिप्ताह्वयं ३.२४.७५
तं प्रणम्य २.५२.३५
तं प्रार्थयित्वा २.५४.२८
तं ब्रह्मवादिनं २.६६.४
तं मूर्धनि ३.२८.११२
तया कृताशी: ३.२७.७२
तया कोटर २.७.४३०
तया च रम २.३०.९६
तया चाभ्युप २.७२.१३०
तया तु दृष्टेन ३.३०.३८
तया ते महिष ३.२९.८७
तयाधिरूढ: ३.२२.५९
तयाधिष्ठित ३.२३.५४
तया विलोकिता: ३.१२.७५
तया संप्रार्थितो ३.१२.२५
तया स रमते १.९.३८
तया सह ३.२३.६५
तया सहावसद् २.६६.५
तया सहृदय ३.१६.१५
तमैव पूर्व ३.२६.६४
तयैवं प्रेषिता: ३.२३.९८
तयोत्सृष्टा हि ३.१५.१२
तयोरपत्यं २.७.४४२
तयोरेव २.४०.५६
तयोर्मध्य ३.३१.७७
तयोर्मध्ये च २.७४.२३४
तयोर्मध्ये मही ३.३१.७९
तयोश्च काम ३.३८.१२
तयोश्च संगाद् ३.३०.३९
तयो: पत्न्यौ २.७.१२१
तयो: पुत्रा: २.७.३१३
तयो: पुत्राश्च १.११.१०
तयो: प्रवर्त्तकं ३.३.३४
तयो: प्रादिश २.७.६४
तयो: सकाशं २.१०.२४; २.६०.९
तयोर्मध्ये मही ३.३१.७२
तयोस्तु शालयो ३.३५.३५
तरन्ति सुमहा ३.२.२७८
तरलेन्दु ३.२८.२०
तरुगाऽरुण ३.४४.६४
तरुणादित्य १.२०.५२; ३.१६; ३०; ३५.३१
तर्पयन्त्यो ३.३६.६८
तर्हि पल्लव ३.२१.३७
तलयोरपि ३.४४.४
तले ज्ञेयानि १.२०.२०
तल्लक्षणस्तु १.३२.१४
तल्लब्ध्वा २.४४.२२
तल्लोकपूर्व ३.३३.७५; ७९
तव देहात् १.२७.७२
तव पुत्रोऽस्मि ३.३०.५६
तव प्रभावेण ३.३०.३१
तव युद्धे ३.१२.५७
तवायुधार्थं ३.११.१२
तव शीलं यताक्षौद्र २.१४.१५
तवापराधो २.७४.८३
तस्तम्भ तेन २.३८.४५
तस्थौ तु २.२१.७२
तस्मात्कल्पात्त १.६.१०
तस्मात्कृष्टेन १.१०.६९
तस्माच्च ऋतवो १.२१.१५३
तस्माच्च कश्यपा २.१.१२३
तस्माच्चोशनसा ३.४.५९
तस्माच्छनैश्चर १.२४.१२२
तस्माच्छीत्रं २.२३.५३
तस्माच्छीता १.२१.६०
तस्माच्छ्रद्धानि २.९.६६
तस्माज्जरां २.६८.४२
तस्मात्तत्परि २.५१.५७

तस्मात्तत्सकली	२.५१.४२
तस्मात्तदुत्सार	३.२१.४४
तस्मात्तदेव	२.२५.७५
तस्मात्तव	२.७४.९२
तस्मात्तस्मान्	२.६१.४७
तस्मात्तिमिर	३.२५.४०
तस्मात्तु नाश	२.६७.५४
तस्मात्तु भारतं	१.१४.६२
तस्मात्तु विषुवं	१.२१.१५४
तस्मात्ते दुःख	१.५.४९
तस्मात्ते मरुतो	२.५.१०४
तस्मात्तेषां प्रचारे	२.३.१२५
तस्मात्तेषां सदा	२.१५.६७
तस्मात्तौ तत्	२.७.२९
तस्मात्त्वं गच्छ	२.५४.५३
तस्मात्त्वं तपसा	२.७२.१५८
तस्मात्त्वं राज	२.२८.५०
तस्मात्त्वं शोक	२.३०.३२
तस्मात्त्वं सर्व	२.२४.३१
तस्मात्त्वमव	३.३०.४१
तस्मात्त्वमेव	३.२४.९१
तस्मात्परित्य	२.६३.२०
तस्मात्परिमिता	१.१९.१९०
तस्मात्परिवृतैः	२.१९.४३
तस्मात्पशुपते	१.१०.४८
तस्मात्पश्यन्ति	२.१५.६५
तस्मात्पापस्य	३.४०.१५
तस्मात्पाशात्	३.२२.१०२
तस्मात्पुण्यतरं	२.३६.२०
तस्मात्पुरुष	३.२.३०५
तस्मात्पृथक्त्व	२.३.१००
तस्मात्पौत्र	२.५४.१७
तस्मात्प्रजा	२.६८.४३
तस्मात्प्रभवते	१.१८.२२
तस्मात्प्रमथ्य	१.३६.१४२
तस्मात्प्रसन्नान्	२.५६.४७
तस्मात्सत्य	२.६६.५६
तस्मात्सदैव	२.५३.४६
तस्मात्स नर	२.५.२७
तस्मात्सन्ध्येति	१.२१.१०८
तस्मात्सप्तर्ष	१.३२.९१; ९४
तस्मात्समास	१.१.१६९
तस्मात्सम्प्र	२.२५.६७
तस्मात्सर्वेश्वरं	२.२३.३१
तस्मात्स विपुला	२.४.२१
तस्मात्सहस्रशो	३.२९.९५
तस्मात्सा तु	२.७१.१५२
तस्मात्सुधा	१.२८.२५
तस्मात्सृष्ट्वा	२.३.२०१
तस्मात्सोमस्य	१.२८.६६
तस्मात्सौरो	१.२४.१४
तस्मात्स्मार्तः	१.३२.३६
तस्मात्स्मृतं	१.२१.१५५
तस्मात्स्मृतः	१.१३.२१
तस्मास्वतपसः	२.१०.६४
तस्मात्स्वीकृत्य	२.२८.५५
तस्मादग्नि	१.२७.८७
तस्मादज्ञानतो	२.२५.३१
तस्माददतिथि	२.१५.८
तस्मादनुगमि	२.३०.३८
तस्मादन्नसमं	२.१६.५५
तस्मादप्यधिकं	३.१२.५४
तस्मादब्धेः	२.५३.११
तस्मादस्म	२.५७.२४
तस्मादस्य	२.३१.१७
तस्मादहः	१.८.१२; १६
तस्मादहिंसा	१.३०.३५
तस्मादात्म	३.१.४९
तस्मादित	२.२३.३४
तस्मादुत्तरता	२.६१.४९
तस्मादुत्तरमा	१.२४.११६
तस्मादुदक	३.१.१३७
तस्मादुष्णा	१.२१.६१
तस्मादेते	१.१३.२७
तस्माद्गोपुर	३.३१.४४
तस्माद्द्वयं	१.१८.६८
तस्मादेवं	१.२७.५४
तस्माद्देवात्	३.२१.३४
तस्माद्देवा दिव्य	१.८.२४
तस्माद्देवासुरा	१.८.१७
तस्माद्ध्रसन्ति	१.२३.६२
तस्माद्धैर्यधना	२.३०.४५
तस्माद्ध्वेन्	१.१०.२७
तस्माद्ध्व्यो	१.३८.१९
तस्माद्धस्म	१.२७.११३
तस्माद्धागीरथी	१.१८.४२;
	२.६३.१६९
तस्माद्यदुक्तं	२.९.२४
तस्माद्यावत्	२.५८.१२
तस्माद्युष्म	२.५२.१४
तस्माद्यूयम	२.४.१२
तस्माद्रत्नं	२.२८.६७
तस्माद्रत्नार्ह	२.२८.३७
तस्माद्रात्र्यहयोः	१.८.१८
तस्माद् द्रुह्यो	२.६८.५०
तस्माद्विशिष्यते	१.३०.४२
तस्माद्विहीन	२.२३.४८
तस्माद्वैश्रवणो	२.८.४९
तस्माद्वैवस्वतात्	२.६०.२
तस्माद्वैवस्वते	१.१३.६७
तम्माद्व्यव	१.२१.६३
तस्मान्न कश्चि	२.२३.२२

तस्मात्र दानं १.३०.३६
तस्मात्र निश्च १.३०.३४
तस्मात्र राज्य २.६८.४०
तस्मात्र वाच्य १.३०.३३
तस्मात्रान्वेति १.३०.४३
तस्मान्मदर्थे २.५८.७
तस्मान्ममाज्ञया २.२४.६८
तस्मान्मिथ्याभि २.७१.५३
तस्मान्मूत्रं १.१०.३२
तस्मान्मूल ३.३.४४
तस्मिंस्तस्मिं १.२८.८९
तस्मिंस्तु परमो २.६३.९९
तस्मिंस्तु विफले २.५.७५
तस्मिंस्तु विषये २.६३.८४
तस्मिंस्त्रेतायुगे १.७.१८७
तस्मिञ्जनपदा: १.१९.१०३
तस्मिञ्छिद्रे २.७२.१२४
तस्मिन् क्षीणे १.७.४२
तस्मिन् गिरौ १.१८.२१
तस्मिन्द्वीपे १.१९.११६
तस्मिन्नरपतौ १.२.१७
तस्मिन्नष्ट २.४६.३०
तस्मिन्निपतितं १.२२.५४
तस्मिन्निपतिते २.६५.११
तस्मिन्नेकार्णवे ३.१.१७३
तस्मिन्नेव ३.२१.४
तस्मिन्पलायिते ३.२५.१०४
तस्मिन्पात्रे ३.३५.८८
तस्मिन्पुरे २.२७.१
तस्मिन्प्रचलिते ३.२९.३९
तस्मिन्प्रयातु ३.२७.२६
तस्मिन् युग १.५.१३६
तस्मिन् रथे ३.२५.२४
तस्मिन्संवर्तमाने १.७.२३
तस्मिन्सन्तिष्ठते २.६४.२४
तस्मिन्स्थित्वा २.४७.३५
तस्मै तदुपनीतं १.३४.४१
तस्मै तादृग् २.७.२११
तस्मै दत्तो २.६९.११
तस्मै प्रदत्तं २.३२.५१
तस्मै सर्व २.५.२४
तस्य कन्या २.६६.६१
तस्य क्रोधो १.८.३८
तस्य गेहे २.६७.२३
तस्य गोत्रान् २.८.८५
तस्य चक्षु: २.६३.१४६
तस्य चत्वारि ३.३१.२९
तस्य चारयत: २.६३.१४३
तस्य चिन्तय ३.५.६
तस्य चिन्ता २.३६.३४
तस्य चैकादश २.७०.४४
तस्य चोक्तं १.१९.१७७
तस्य चोत्तर ३.३३.६४; ६७
तस्य जांबवती २.७.३०१
तस्य ज्वालस्य १.२६.२१
तस्य तत्पाप २.६५.४८
तस्य तत्प्राप्य २.६५.२८
तस्य तद्विद्धि १.३३.५७
तस्य ते तनया: २.७४.३४
तस्य ते रश्मय: ३.१.१३९
तस्य तेऽहं १.२८.२
तस्य दर्शनत: ३.३८.६२
तस्य दर्शनबेलायां ३.३८.५०
तस्य देवस्य २.३६.१४
तस्य देवा: २.५.२३
तस्य नाम्नो १.१०.६०
तस्य नि:श्वास २.६३.४०
तस्य पट्टिशपातेन ३.२४.९७
तस्य पत्नीगले २.६३.८६
तस्य पत्न्यस्तु २.८.७४
तस्य पादे १.१.८६; ११; १५.२५
तस्य पीत्वा १.१५.५६; ६९
तस्य पुत्र: २.७४.१४६
तस्य पुत्रशतं १.१४.७१; २.६९.४९
तस्य पुत्रस्तु २.६३.१६६
तस्य पुत्रा १.१४.४५; २.३५.१२; ६६.२२
तस्य पुत्रास्तु २.६३.५७
तस्य पुत्रो २.७०.४१
तस्य पुत्रोऽभव १.३६.१२७; २.६३.७६
तस्य पुष्टि २.११.१५
तस्य प्रति २.५७.५४
तस्य प्रतीच्यां १.१५.४०
तस्य बाला २.११.७७
तस्य बाहु २.६९.१५; ३०
तस्य भार्या २.७१.४
तस्य भ्राता २.७४.४८
तस्य मञ्चस्य ३.३७.४९
तस्य मध्येऽति २.७१.१२०
तस्य मानं १.३४.४
तस्य मे चोप २.४९.५२
तस्य मे सर्व ३.४३.४३
तस्य यद्वर्द्धितं २.६५.१५
तस्य या प्रथमा १.१०.७६
तस्य रश्मि १.२४.२६
तस्य राज्ञ: २.३८.२०
तस्य राज्ञो २.६९.१९
तस्य रामस्तदा २.६९.४८

तस्य वाहन	३.२४.९६
तस्य वै पूर्वतः	१.२१.१४०
तस्य वै रोहिणी	१.१०.८४
तस्य व्रतेन	२.६३.९०
तस्य शिष्य	१.३५.८७
तस्य शिष्यास्तु	१.३५.४
तस्य सत्यरता	२.६३.११५
तस्य सत्यव्रतो	२.६३.७७
तस्य सत्त्वस्य	३.३३.७४
तस्य सर्व	३.३५.६९
तस्य सा	२.७४.८०
तस्य सिंहासनं	३.१२.११
तस्य स्थानं	३.२.२६३
तस्य हेषारवा	३.२२.१००
तस्यां च	१.७.६६
तस्यां जातस्तु	२.७.२२५
तस्यां जातो	२.८.३८; २३.४७
तस्यां तु	२.६७.२९
तस्यां द्वादश	२.३.१४
तस्यां मयोद्यतः	२.५९.५६
तस्यां रणे	३.२६.५८
तस्यां वै	३.६.९
तस्याः काला	२.६१.३२
तस्याः पत्नी	१.१०.८१
तस्याः परा	६.२६.११४
तस्याः पिवन्त्य	२.३५.२७
तस्याः पुत्र	३.९.४
तस्याः पुत्रा	२.७१.२५६
तस्याः शक्ति	३.२८.२७
तस्याः सा	२.७०.३६
तस्याः स्त्रियाः	३.२९.१३
तस्याः स्मित	३.२७.६८
तस्या ऊर्ध्व	१.२१.१३
तस्या एवाव	३.४०.५
तस्याग्रेसर	२.४८.८
तस्याणिमा	३.३६.५६
तस्यातपत्रं	३.१२.९
तस्यात्मजा	१.३.१२
तस्याथ	२.७१.१२१
तस्यादित्य	१.१०.२२
तस्याधस्ता	२.४१.२७
तस्यानंगस्य	३.३०.६६
तस्यानुजं	२.७.४३
तस्यान्वये	२.७४.१८३
तस्यान्ववायः	२.७१.१८
तस्यापराधा	१.३६.१०९
तस्यापरेण	१.१९.१५०; ८८; ८९
तस्यापानं	२.७४.८४
तस्यापि ते	१.१५.६४
तस्यापि पुत्रो	२.७.२०९
तस्यापि भगवान्	१.२४.१४६
तस्या शंख	२.१०.२१
तस्या बहिश्चराः	३.२६.७६
तस्याभिजित्	२.७१.११९
तस्याभिध्यायत	१.५.३६; ४७
तस्याभिध्यायतो	१.५.४२
तस्याभूत् काश्यपो	२.४७.४८
तस्या मंत्रमिति	३.३९.४
तस्यामसुर	३.१७.१३
तस्यामुत्पाद	२.६३.७२
तस्यामेवाल्प	१.७.८८
तस्यामौर्व	२.१.९५
तस्या ये बिन्दवः	१.१८.३१
तस्यालक्ष्यत	१.५७.५६
तस्याश्चरूमथा	२.६६.४५
तस्याश्च ललिता	३.३७.८६
तस्याश्च संपन्ना	३.१६.११
तस्याश्रमे तु	२.६३.१३२
तस्यासीत्	२.४७.६६
तस्यासीद्द्विजयो	२.७०.३४
तस्यासीद्विश्रुत	२.६३.२१३
तस्यासीन्नर	२.५.२६
तस्यास्तीरे	१.१८.७; १६;२३
तस्यास्तु गौरिकः	२.६३.६८
तस्यास्तु ते	१.११.४१
तस्यास्तु पर	३.१४.२२
तस्यास्त्वाद्या	२.१३.७९
तस्येश्वरस्य	३.२.२२१
तस्यैयकसप्तति	१.९.३७
तस्यैतद्रात्रि	३.४०.११३
तस्यैवं यज	२.३४.१०
तस्यैव च	१.२६.१०; ३.२०.६१
तस्यैव पर्वणः	३.२०.२५
तस्यै पर्वणो	३.२०.३१; ७२
तस्यै पर्वणो	३.१९.८१; २०.१५; ४४
तस्यै पश्चिमे	३.३३.६३
तस्यैव ब्रह्मणो	१.३५.१२७
तस्यैव रथ	३.२०.६
तस्यैव रस	३.४१.१२
तस्यैव राज्ञ	२.१०.७२
तस्योत्संगे	३.३७.६८
तस्योत्तरे	१.१९.८७
तस्योपतिष्ठतः	२.७१.२३
तस्योपरि	३.३७.६५
तस्योपरिष्टात्	३.३७.६४
तस्योर्ध्वरेतस	२.६५.४
तस्योर्ध्वं च	२.४१.५५
तां कथां	२.६१.२४
तां कन्यां	३.१.४३

तां गाधि:	२.६६.३७
तां गृहीत्वा	२.६.२५
तां च दृष्ट्वा	३.१२.६३
तां तथा भूत	३.२५.५७
तां तुष्टुवु:	३.१७.३२
तां दुष्टवनितां	३.२२.७१
तां दृष्ट्वा चारू	३.१२.२८
तां दृष्ट्वाथ	३.४०.२४
तां दृष्ट्वाद्भुत	३.२९.२०
तां दृष्ट्वा	३.६.२६
तां दृष्ट्वा मृग	३.६.१६
तां पृथुर्धनु	१.३६.१७७
तां ये त्यजन्ति	२.१४.३६
तां विजित्य	३.२५.२५
तां विलोक्य	३.१२.७४
तां वै रोषाच्च	२.५९.५२
तां शप्तुकामो	२.५९.६४
तांश्च संभाव	२.२१.६१
तां श्रुत्वा	२.७१.२२९
तां स दीर्घतमां	२.७४.७८
तां सेना भगवान्	२.४१.४
तां सेवैकरसा	३.१५.३८
तांस्तथावादिन:	१.३६.१३६
तांस्तथा स्वानु	२.७.२०६
तांस्तु दृष्ट्वा	२.२.१२
तांस्तेन तर्पया	१.२८.२४
ता: कश्यप:	२.५.४६
ता: पञ्चकोट्यो	२.८.५२
ता: पिबन्ति	१.१९.२१; ९९
ता: शाखास्ते	१.३५.१४९
ताडयेत्ताडयन्तं	२.३१.१२
तादात्म्यगुण	२.२३.६४
तादात्म्येनैव	३.५.३३
तादृशं घोष	३.९.४२
तादृशं लाघवं	३.२३.९४
तादृशां कर्मणां	३.४०.१०२
तादृशानामपि	२.२१.४२
तादृशे समरे	३.१०.३४
तानग्निरदहद्	१.३७.३३
तानब्रवीत्ततो	२.४.९
तानापतत	२.२३.१५
तानासीना	२.५७.१०
तानि गीत	१.३६.१७१
तानि चेच्छा	३.३६.३७
तानि दग्धानि	२.७.२८२
तानि देव	१.२४.८१
तानि वक्ष्याम्यहं	२.१३.३
तानि षष्टि	१.११.३७
तानि सर्वाणि	२.३९.२६
तानि सर्वाण्यवा	१.१६.३९
तानुवाच तत:	३.१२.६४
तान् कुमारान्	३.२६.६१
तान् दानवगणा	२.१०.७६
तान् दृष्ट्वा	१.८.३५
तान्येवात्र	३.१.१३४
तान्विनाशयितु	३.२९.१२६
तान्स्थापये	२.११.१४
तापत्रय	३.१५.१८
तापद्वयं	३.४०.४१
तापनीयाश्च	१.३५.२९
ताभिरेकत्व	१.१३.१४६
ताभिर्दैत्यास्त्र	३.२५.७२
ताभिर्न निहतो	३.२५.१०३
ताभिर्निर्वेद्य	३.२६.११६
ताभिश्च साकं	३.३३.८४
ताभि: पुण्यात्ययं	२.६५.१६
ताभि: प्रणम्य	३.२६.८९
ताभि: स बालार्क	२.१०.४१
ताभ्यां च प्रीति	२.२५.८१
तामन्वगा	३.१६.१०
तामसा नरका:	३.२.१५१
तामसी चान्त	२.३.८५
तामसे हरयो	२.३.९
तामस्यास्तस्य	२.३.१०६
तामायान्तीं	३.२४.९३; २६.९०
तामालम्य	२.५.५४
तामिमां	३.१०.४१
तामिलेत्यथ	२.६०.७
तामुदार	३.१०.३५
तामेव चिंत	३.४१.६८
तामेव सर्वत:	३.३०.८१
ताम्रपर्णी	३.३३.५२
ताम्राय	२.७२.१७१
तार: शंभु	३.३४.४२
तारका: शिशु	१.२३.१०५
तारकासन्नि	१.२१.१७
तारकासु	२.२६.२१
तारके	२.१०.४९
तारतम्य	३.७.६०
तारयेच्च	२.१३.१२५
ताराग्रहाणां	२.२३.८०; ३.२.१३२
तारातरणि	३.३५.२१
तारानक्षत्र	१.२४.१०८
तारा नाम	२.७.२१९
तारारूपाणि	१.१.८६
तालजंधान्	२.४८.२५
तालास्तमाल	३.३१.६१
तावच्छेषेऽपि	३.२.१०४
तावत्कालं तु	२.६६.१३
तावत्कालं स्मृतो	१.१०.५७

तावत्काले	१.६.५८
तावत्कोटि	३.४.५७
तावत्तदंतिकं	२.३०.२९
तावत्तराक्षुः	२.२५.५५
तावत्यस्तारका	१.२४.११२
तावत्संख्यमहं	२.३०.३१
तावत्समागतो	२.३४.१५
तावदभ्याययुः	२.२८.१२
तावदशनंति	२.१५.६०
तावद्रामोऽपि	२.३०.१५
तावन्तं कालमेवं	३.१.१८०
तावन्त्येव तु	१.२३.१०१
तावन्त्येव सह	२.७१.१२७
तावांश्च विस्तर	१.१९.१५२
तावुभौ दंपती	३.३९.७६
तावुभै परम	३.२८.३
तावुभौ मंत्र	२.८.३०
तावुभौ योग	१.५.८१
तावुभौ रण	५.४०.२७
तावुचतुस्ततः	१.३६.१६७
तावूचुर्मुनयः	१.३६.१६६
ताश्च नित्थाव	३.२५.९२
ताश्च शक्तय	३.२२.६३
ताश्च सर्वाः	३.३३.८३
ताश्च स्फटिक	३.१९.३६
तासां च	३.२०.३९
तासां चैव	१.१३.५२
तासां तीरेषु	३.३३.५३
तासां तेनाप	१.७.८७
तासां देवर्षि	२.७.२७
तासां नद्युप	१.१६.४०
तासां नामानि	३.१९.५७; २०.६८
तासां नौका	३.३५.१७
तासां पुनः	१.७.७९
तासां भवनतां	३.३७.३९
तासां विना	१.७.५२
तासां स्वयंभू	१.७.१५२
तासां सहस्र	१.१९.७६
तासामाख्वयाश्च	३.२०.३७
तासु प्रकृति	३.२.२२७
तासु वन्ध्यो	१.१०.८५
तास्तदा प्रति	२.२.३१
तास्तदा प्रत्य	१.९.५३
तांस्तु नद्यः	१.१६.३९
तास्ते तेऽहं	२.१९.१०
तास्स्पृष्टास्तु	१.८.३१
तिथिनित्याः	३.१९.५५
तिथिर्वारांश्च	३.३२.१७
तिथीनां नाम	१.२८.५६
तिमिरच्छत्र	३.२५.६४
मितिरेणावृतं	३.२५.४२
तिरस्करिणका	३.२४.८२; ८५
तिरस्त्वं कृत	२.३८.१०
तिरो भावयितुं	१.१८.३४
तिरोभूतेषु	३.१.८२
तिरोहिता	३.१०.३८
तिर्यक् स्रोतः	१.५.५६
तिर्यक् स्रोतस	१.५.४०
तिर्यक् स्रोतस्तु	२.५.४१
तिर्यगित्यपि	३.२१.५५
तिर्यगूर्ध्व	३.३.७९
तिर्यग्वातादि	१.२.४०
तिर्यग्हेतुक	२.७.४२१
तिर्य्यग्योनि	३.३.५
तिलैर्व्रीहियवैः	२.१९.३
तिलोत्तमा	१.२३.३
तिलोत्तमेति	३.२३.२०
तिष्ठन्तं सरस	२.२३.१५
तिष्ठत्सु तेषु	१.५.१२३
तिष्ठस्वेह महा	२.७१.७५
तिसृणामपि	३.४१.१८
तिसृणां शृणु	३.३७.२१
तिस्रः कन्याः	१.१.११८
तिस्रः कन्या	२.१०.८
तिस्रः कन्यास्तु	२.२१.७२; ७१.२६१
तिस्रः कोट्यस्तु	२.३.४९
तिस्रस्तु वीथयो	३.१७.७
तीक्ष्णदंष्ट्र	३.१७.७
तीक्ष्णा रौद्री	३.३५.९६
तीक्ष्णासि	३.२९.५३
तीरे तु सरस	२.१३.११६
तीर्णानां	१.२४.७४
तीर्थं शूर्पारकं	२.५८.२०
तीर्थयात्रा	२.६६.४३; ३.९.९
तीर्थादीनां	२.१९.७२
तीर्थेषु क्षेत्र	२.२४.४१
तीव्राभिरावण	३.१८.११
तुंगप्रस्थः	१.१६.२२
तुंगभद्रा	१.१६.३५
तुंडिकेराश्च	२.६९.५३
तुंदिलश्चन्द्र	३.२७.७१
तुभ्यं वरो	२.४३.१४
तुम्बुरुर्नारद	१.२३.४
तुम्बश्च तुम्ब	२.७१.२५८
तुम्बुरुश्चेति	२.७.९
तुरगारूढ	३.२२.९७
तुर्वसोस्तु	२.७३.१२६; २४.१
तुला तु दृश्यते	२.१३.७५

तुलामानैस्तथा	२.१३.१०८
तुलसीं च	३.९.८०
तुलसी तु	३.९.८२
तुलसीमग्रत:	३.४०.१७
तुलसीमण्डलं	३.४०.७४
तुल्यं युगसहस्रं	१.७.१
तुल्यं युगसहस्रस्य	१.५.६
तुल्यकालं तु	२.७१.२१३
तुल्यमायु:	१.७.४३
तुल्यरूपायुष:	१.७.५६
तुल्यस्तयोस्तु	१.२४.१०१
तुल्यानेवात्मना	१.९.७०
तुषिताद्यास्तु	३.१.८७
तुषितानां तु	२.३.१६
तुषितायां	२.३.११४
तुषेण बद्धो	२.४३.५४
तुष्टस्तेऽहं	२.७०.७
तुष्टाव प्रयतो	२.४३.२
तुहुण्डा	१.१६.६५
तूणीरमुखत:	३.२८.२३
तूलपूर्णे च	२.१६.८
तृणबिन्दुस्तु	३.४.६५
तृणीकृत	२.३६.२८
तृतीयं वै	१.१४.२८; १९.५८
तृतीयपर्व	३.१९.६५
तृतीयायां	२.१३.१०९
तृतीये युद्ध	३.२८.७०
तृतीयो द्युति	१.१९.५५
तृतीयो नारदो	१.२९.९
तृप्तान्यवात्	२.२७.४४
तृप्तिश्च शुक्ले	१.२३.४१
तृषाविरहिता	२.४१.२२
तृष्णाक्षय	३.३.७१
तृष्णाक्षया	३.३.५९
ते कटक्रोड	३.२७.७९
ते कन्ये काम	२.७.७६
ते करङ्मुखा:	३.२३.१६
ते चरन्ति	१.२७.३९
ते चासंख्य	२.५०.६
तेजश्चैवाधिकं	२.७.२८९
तेजसश्चाप्यु	१.२.४२
तेजसस्तत्सुत	१.१४.६४
तेजसा च	१.२६.१९
तेजसा तपसा	१.३८.१०; ३.१.११०
तेजसाभ्यधिकै:	३.२.२५५
तेजसा यशसा	२.११.४६
तेजस्त्वभ्यधिकं	२.५९.३६
तेजस्वी सांप्रत	२.३८.६
तेजोमंडलिनं	२.७१.२५
ते तत्र न्यवसन्	२.४७.७१
ते तु खिन्ना	१.३०.२३
ते तु तद्वचनं	२.२.२२
ते तुल्यलक्षणा:	१.६.३८
ते देवा दानवा:	२.६७.८५
ते देवै: सह	३.२.२
तेऽधिरुह्य	३.७.५८
तेन क्षीरेण	१.३६.२२०
तेन चाघ्राणि	१.२२.२४
तेन जातेन	२.१०.४३
तेन तस्यां	२.७.२१४
तेन ता वर्त्त	१.७.८५
तेन ते कर्मणा	१.८.३३
तेन ते किंचि	२.३०.५०
तेन तेऽदर्शनं	२.४०.८
तेन ते मरुत	२.६८.३
तेन त्वां न	१.१३.५५
तेन त्वाहं न	२.७४.५३
तेन त्विदानीं	२.६३.१००
तेन दत्तानि	२.६६.८१
तेन दावानल	३.२८.४५
तेन दु:सह	३.२२.५१
तेन दृश्यो	३.६३.७५
तेन दैतेयनाथेन	३.१२.३०
तेन दोषेण	१.७.१३७
तेन पापेन	३.९.१७
तेन पुत्रेण	२.६७.६८
तेन प्रौढ	३.२५.१५
तेन ब्रह्म	२.६५.३३
तेन मर्दित	३.२२.२
तेन मांस	२.६३.१८
तेन वज्र	३.२९.९७
तेनवानित्य	२.६१.३८
तेन शब्देन	१.२६.५६
तेन शूल	२.४०.६०
तेन संग्राम	३.२१.९९
तेन सत्येन	२.७२.१४६
तेन सत्त्वेन	३.३३.७३
तेन सप्तसु	१.६९.१६
तेन स्नेहेन	२.६५.३२
तेनाग्निा	१.७.१०
तेनांकुशेन	३.२२.१०५
तेनातीव	३.२९.२८
तेनाथ वैराग्य	३.३०.३५
तेनाद्रिवंशे	३.३०.३४
तेनाधीतं	१.१.१७०
तेनान्नेन	१.३६.२०३
ते नाम्नो	१.३५.३९
तेनायं सगरो	२.४८.३६
तेनाविष्ट	२.५१.६३
तेनावृत:	१.१९.३

तेनासि त्वं	२.७४.६३
तेनासौ पीडिता	२.५९.७०
तेनासौ सर्पते	१.२२.६६
तेनास्य शूद्र	१.१५.२१
तेनाहं व्याकुल:	२.७२.१५२
तेनेयं गौ:	१.३६.११४
तेनेयं पृथिवी	२.६९.१४
तेनैकजन्मो	२.३७.२३
तेनैतत्सर्वथा	२.९.३४
तेनैव तत्कृतं	१.३५.१४१
तेनैव तपसा	३.३०.९४
तेनैव मार्गेण	२.५६.५१
तनैव वपुषा	२.२५.४५
तेनैव सांत्वितो	३.९.२८
तेनोक्तमखिलं	२.३५.५५
तेऽन्ववक्ष्ये	१.२१.८०
ते पतन्तो	३.२४.१९
तेऽपि तेनैव	२.२.२७
ते पुत्रानब्रुवन्	२.९.२२
ते पुरश्चलिता	३.२७.८३
ते प्रणम्य	१.२८.१०५
ते प्रविश्य	२.४५.२
ते प्रोचुर	२.४५.५
ते बाह्यकायां	२.७१.५
ते ब्रह्मलौकिका:	३.२.८२
ते भूय: प्रणता:	२.९.१८
तेभ्य: प्रवर्तते	२.७४.२३३
तेभ्य: श्यामा	३.३८.८
तेभ्य: श्राद्धानि	२.१०.१०८
तेभ्यस्ते नियता	१.९.२१
तेभ्योऽधस्तात्तु	१.२४.१११
तेभ्योऽपरे	१.२८.७९
तेभ्योऽपि	३.३८.५; ७
तेभ्योऽप्यर्कस्य	३.३८.६
ते यदा तु	२.६७.१०३
ते युक्तानुप	१.६.२६
ते युद्धदुर्मदा:	३.२३.५
ते वारिणा	३.१.१४२
ते वितस्त्या	२.११.१०
ते विध्यमाना:	३.१०.२३
ते शप्ता	२.९.१७
तेषां कीर्ति	३.४.४९
तेषां गणस्तु	३.१.१३
तेषां गतिं	१.२५.१०७; २८.६८
तेषां च रक्षण	३.६.४९
तेषां जनपदा:	२.७४.३३
तेषां तत्काल	१.७.८०
तेषां तत्त्वं	१.१३.११६
तेषां तत्रोप	२.३०.४९
तेषां तद्वचनं	३.२.११४
तेषां तु तद्भय	२.६३.३
तेषां तु तप्त	१.२९.४७
तेषां तु मानसी	३.२.४६
तेषां ते यान्ति	१.५.९२
तेषां दारां	२.७.२२२
तेषां द्वादश	१.५.८३; २९.२९
तेषां द्वौ ख्यचात	२.८.८२
तेषां नद्यस्तु	१.१९.१८
तेषां नारायणं	२.६३.१५२
तेषां निबोध	२.७४.२७१
तेषां पंच गणा:	२.६९.५२
तेषां परार्द्ध	१.६.१२
तेषां पुत्रसह	२.१.९९
तेषां पुत्रासह	१.११.२५; २.५.३२; ७.१३२; १८२; ८.१०२
तेषां पुत्राश्च	२.५.४२
तेषां प्रधाना	३.२३.८
तेषां प्रयाण	१.३६.४६
तेपां बभूव	१.१.६७
तेषां भार्यास्ति	२.१.७३
तेषां भृगो:	१.३१.१८
तेषां भेदा:	१.१५.७
तेषां मनुष्या	१.१५.७
तेषां माया	३.२५.४३
तेषां मूत्रं	१.१७.३२
तेषां यतो	१.१३.९१
तेषां यथा	२.७.१३३
तेषां ये यानि	१.८.५९
तेषां रूपं	२.८.६३
तेषां लोकातरे	१.७.१६७
तेषां लोकान्	२.१०.२
तेषां विपर्ययो	१.३१.१९
तेषां विहरणीया	१.१२.१९
तेषां शास्ता	१.३१.७६
तेषां श्रुत्वा	३.१.२२७
तेषां श्रेष्ठो	२.६३.९
तेषां संरक्षणा	३.६.५४; ७.३६
तेषां संव्यव	१.१६.१४
तेषां सप्त ऋषीं	३.१.७८
तेषां सप्त समा	२.९.५५
तेषां स्वभावत:	१.१४.५७
तेषां स्वसार:	२.७१.१३४
तेषामज्ञानिनां	१.३१.२२
तेषामनुचरा	१.६.२१
तेषामनुमते	२.४७.४७
तेषामन्तर	१.१.७०; १९.५७
तेषामपिहि	२.३.६३
तेषामभ्रंशिनो	३.२.८९
तेषामाप्यायनं	१.२२.४७
तेषामाप्यायियि	२.९.३३

तेषामिन्द्रस्तथा ३.१.६९
तेषामिन्द्रस्तु १.३६.३७;
३.१.९१
तेषामुत्सादना २.७१.२६४
तेषामेकशतं २.७४.२६५
तेषामेकैक ३.२१.२९
तेषामेवान्वये १.३५.१०९
तेषामैडविडो २.८.६०
तेषुच्छिन्नेषु २.७४.१७८
तेषु तत्र २.५३.१
तेषु तेषु तु १.३६.११३
तेषु तेष्वखिला ३.५.५
तेषु दर्भेषु यः २.१३.१०
तेषु द्वौ मनु ३.३८.९
तेषु नामानि २.३६.१५
तेषु संदह्य २.२२.२३
तेष्वेकं यजते २.३.९९
ते सप्त पूर्वं ३.२४.५९
ते सप्त रश्मयो १.५.१२४
ते समेत्य २.५७.८
ते सर्वे चाप्य ३.१५.४२
ते सर्वेऽपि ३.४०.९
ते सर्वे सुमहा ३.३३.९४
ते सार्द्धं १.५.१२१
ते स्तुता २.४०.६४
ते स्वामिनं ३.२३.७
ते हन्यमाना २.६३.१३५
ते हरन्त्यस्य १.२२.३७
ते हि विद्युद् २.६७.८६
ते हृष्टमनसः १.६.२७
तैः कल्प २.५३.१३
तैः खन्यमाना ३.२१.३५
तैः पुनः ३.२४.९८
तैः सप्तदैत्य ३.२३.९२
तैः समः बहुधा ३.२६.७८
तैः समं योद्ध ३.२६.७८
तैः समुत्पतिता ३.२३.१७
तैरिदं भारतं १.१४.७२
तैरियं पृथिवी २.८.२२; ६८.४३;
३.१.३१
तैरैव तत्कर्म २.१०.६३
तैरैव तु १.१२.४९
तैर्लब्धं रुद्र ३.२.२८७
तैर्विमिश्रा १.१६.२४;
२.७४.२०३
तैर्विमोह्य ३.३.६८
तैलधारावद् ३.४०.६५
तैलपीडा १.२३.९७
तैश्च सार्धं १.५.११५
तैश्चापि नरके २.५४.४७
तैश्चापि शृङ्गे १.२१.१३९
तैस्तथाकारिभिः ३.२.५
तैस्तैर्मनोऽनु २.७२.१५३
तैस्तैः सायुज्यगैः १.६.२२
तोमरान् १.१८.५९
तोषयित्वा २.२४.४९
तौ कामरूपिणौ २.७.७०
तौ च तेनोदितं २.२६.५
तौ तु तद्वचनं २.३२.१६
तौ नमस्कृत्य २.४४.२४
तौ सुतां पितरं २.७.५३
त्यक्त्वा पुत्रं ३.५२.१
त्यक्त्वा रथं २.३८.४९
त्यक्त्वा स २.४७.७८
त्याजिते च १.२७.३१
त्रय एते गणाः २.१०.८४
त्रय एव गणाः ३.१.९६
त्रय एव मुहूर्त्ता १.२१.१२१
त्रयश्च त्रिंशतः १.२३.६८
त्रयस्तु कुशुभेः १.३५.४२
त्रयस्त्रिंशत्तु २.७४.११९
त्रयस्त्रिंशद् ३.१.९८
त्रयाणामाश्रमाणां १.७.१७३
त्रयी वार्त्ता १.३२.४०;
३५.१९५
त्रयी विद्या १.१९.१२२;
२.४.२४
त्रयोऽभिसंहिता २.६३.१८३
त्रयोदश १.१५.८०;
२.७४.१७३
त्रयोदशार्द्धं १.२१.९३
त्रयोदशावरण ३.३४.४०
त्रयोदशे १.३५.१२०
त्रयादशैते १.३२.११९
त्रयोदशैव ३.२.२२३
त्रयो य १.१.५४
त्रयो वर्णा २.७२.३२
त्रयोविंशद् २.७४.११३
त्रसरेणवो ३.२.१२०
त्रसरेणुप्रमा २१०५९
त्रातः स १.३६.१५१
त्रायध्व २.१०.६०
त्रिंशच्छतं भवेत् १.२१.१३३
त्रिंशत्संख्याश्च २.२६.४६
त्रिंशदेव त्वहो १.२१.१३५
त्रिंशद्यानि तु १.२९.१५
त्रिशन्मुहूर्ता १.२१.९५
त्रिः कृत्वा २.१४.९१
त्रिः सप्तकृत्व २.४६.३६
त्रिकोणं २.३१.३१;
३२.४५
त्रिकोणे तु ३.३२.९

त्रिखण्डा	३.४४.३
त्रिखण्डा सर्व	३.४४.११५
त्रिगर्त्ता	१.१६.६८
त्रिगुणस्तस्य	१.२४.१००
त्रिचक्रोभयतो	१.२३.५३
त्रिदशानां	१.१९.१६९
त्रिधा भेदास्तु	१.३५.११
त्रिधा मेधा:	१.२२.३१
त्रिधा विष्णु	२.७२.१४०
त्रिपादं सुमहा	२.८.४२
त्रिपुरघ्नमख	१.२५.१३
त्रिभिरेव	१.१३.१४४
त्रिभि: क्रमै:	२.३.११८
त्रिभिर्द्वाभ्यां	२.१६.५८
त्रिमूर्तिजननी	३.४०.११९
त्रिमूर्तिस्त्रिगुणा	३.५.१९
त्रिरात्रं समरे	२.३९.१६
त्रिलोकैक	३.१५.४५
त्रिविक्रम:	३.३४.७९
त्रिवेदोऽनंतरं	२.१५.२६
त्रिशतं चाक्षौ	३.२४.५
त्रिशताक्षौहिणी	३.२४.१२; १५
त्रिशिखं पान	३.१९.७८
त्रिशिरा दूषण	२.८.५६
त्रिशूलपट्टिश	२.३२.१४
त्रिशूलशोभित	२.३२.१९
त्रिशूलाग्र	३.२०.८१
त्रिषु कालेषु	२.३.१०७
त्रिसाधन:	१.९.६
त्रिसामा ऋषि	१.१६.३७
त्रिसाहस्रं तु	२.६३.५
त्रीणि द्वे च	१.२९.२७
त्रीणि वर्ष	१.२९.१७; ९१
त्रीणि शौचानि	२.१४.११६
त्रीण्यपत्यानि	२.५९.३७
त्रीण्येव नियुता	१.२९.२०
त्रेतादौ सहिता	१.२९.५२
त्रेतायुगमुखे	१.१३.८९; २.८.३७; ६१.११
त्रेतायुगे	१.१.९२; २९.५९; २.८.५४
त्रैलोक्यं विजितं	२.७२.१०५
त्रैलोक्यगर्भ	३.१८.७
त्रैलोक्यमेतद्	३.२.१३८
त्रैलोक्यमोहनं	३.४४.११६
त्रैलोक्यविजय	२.३.३५; ६
त्रैलोक्यविजयं	२.३१.३८; ३३.२८
त्रैलोक्यस्थित	२.३४.४७
त्रैलोक्यस्थिति	१.२१.१७४
त्रैलोक्यस्य	२.७३.७६
त्रैलोक्यस्याधिप	२.१६.५९
त्रैलोक्यस्यैष	३.२.१३६
त्रैलोक्याद्यत्परं	२.७.२७७
त्रैलोक्ये तानि	२.३६.५९
त्रैलोक्ये ता:	२.३.८६
त्रैलोक्ये यानि	१.३८.९
त्रैलोक्ये सर्व	१.२७.३६
त्रैलोक्यैश्वर्यं	३.६.२७
त्रैलोक्योत्साद	१.२५.५६
त्रैलोक्योल्लंघि	३.२१.६८
त्र्यंबक: स	१.१३.१४७
त्र्यंबकस्याभि	१.१३.४१
त्र्यंबकाय	१.२७.६९
त्र्यक्षस्त्रिशूल	१.२५.१०४
त्वं किलाखिल	२.५२.२२
त्वं किलार्कान्वय	२.४८.३५
त्वं च मे ब्रूहि	२.२३.२३
त्वं च लोक	१.२७.८९
त्वं चाहमावयो	२.४२.४८
त्वं तु शीघ्रमितो	३.१२.२३
त्वं धाता त्वं च	१.२६.६
त्वं न: सुहृत्	२.४८.३७
त्वं नो धाता	२.५२.२५
त्वं नो वृत्तिं	१.३६.१७५
त्वं ब्रह्मा	१.२७.८०
त्वं मे गुरु:	२.५१.३
त्वं यज्ञस्त्वं	१.२६.३४
त्वं यदो प्रति	२.६८.३१
त्वं हि दुर्जन	३.२४.८७
त्वं हि सर्वाणि	३.१२.२२
त्वग्भिश्च	३.४३.१८
त्वत्कृतेन	२.५.९०
त्वत्त: प्रसूता	१.२६.४४
त्वत्तोये	२.५८.४
त्वत्प्रसादा	२.१.६५
त्वत्सन्निधौ	२.२३.३६
त्वत्समो नास्ति	२.४३.१६
त्वत्सान्निध्य	३.२४.६४
त्वत्सेवैकपरा	३.१५.५०
त्वमस्मांस्तृण	१.३४.५७
त्वमिमं	२.४२.१४
त्वमेव माता च	२.३९.४५
त्वमेव सन्तति	२.५४.२६
त्वमेव सर्वस्व	१.२५.९६
त्वमेव सूर्यो	१.२५.९५
त्वमेव स्वेच्छया	२.२८.७३
त्वमेवानादि	३.१५.८
त्वया पूजयितुं	२.२३.६१
त्वया मया	३.९.२०
त्वया यच्छासितो	३.६.२८
त्वया यदा	३.२४.६३

त्वयापि हि २.३५.२
त्वया सार्द्धं २.४१.३६
त्वयि क्रुद्धे २.५४.३२
त्वयेह भवने २.५९.४२
त्वयैव विदितं २.४७.८८
त्वयोपदिष्टेन २.५१.४
त्वय्यादृष्टे २.७३.४५
त्वरयाऽभ्याययौ २.५७.७३
त्वष्टा चैव २.१.७८
त्वष्टुः समीपम् २.५९.४४
त्वष्ट्रा वै २.१४.६
त्वां निहत्याशु १.३६.९०
त्वां विना ३.२६.८२
त्वां विनास्मिन् ३.११.१८
त्वादृशानां २.२८.२२
त्वामविज्ञाय २.२५.२६
त्वामेव तत्र १.२७.८४
त्वामेव मन्ये २.२५.६५
त्वामेव हि ३.१५.१०
त्वामेवाश्रित्य ३.१२.४८
त्वाष्ट्री या २.५९.२२
त्विषिमान् १.२४.१३०

थ

थंकारिणी ३.४४.८९

द

दंशिताः २.७३.६१
दंष्ट्राकट ३.२०.३२
दंष्ट्रात्वजनयत् २.७.४१२
दंष्ट्रिभ्यो न २.७.३१६
दक्ष एवेह १.१३.७०
दक्षपुत्रस्य ३.१.५६
दक्षपुत्राश्च २.२.२०
दक्षस्य कन्या ३.१.३९
दक्षस्य चापि १.१.१०३
दक्षस्य ते हि ३.१.२४
दक्षस्य दुहिता २.१२.३
दक्षस्यासब्सुता १.१३.४४
दक्षहस्त ३.२९.१०८
दक्षहस्तांगुष्ठ ३.२९.९१
दक्षहस्तानामिका ३.२९.१०२
दक्षहस्तांबुजा ३.३९.८५
दक्षाय च २.७२.१८१
दक्षिणद्वारवत् ३.३१.५०
दक्षिणप्रक १.२१.८८; ९९
दक्षिणापरतो २.६८.९१
दक्षिणापरदे १.२१.४०
दक्षिणाभिः २.७.२६८; ३.३.३८
दक्षिणामददात् २.६५.२५
दक्षिणायन १.२४.११९
दक्षिणावभृथा २.७२.१८९
दक्षिणा हृदयो १.५.१८
दक्षिणेन तु १.१५.३८; १७.१९; २.१४.७३
दक्षिणेनाग्नये २.११.९५
दक्षिणेनाथ १.२७.१२५
दक्षिणे विश्व १.२४.६९
दक्षिणोऽपक्रमे १.२१.३६
दक्षिणोत्तर २.३.४६
दक्षे तु चिबुके ३.४४.१४०
दक्षे पंचशतं २.४०.२४
दक्षो जज्ञे १.३७.४२
दग्धदेहा १.५.१२७
दग्धशैल २.३२.१३
दग्धंश्चकार २.५३.३५
दग्ध्वा त्वस्त्रा २.२५.५६
दग्ध्वा वपुः २.३९.५२
दण्डके निहतः २.५.३६
दण्डकारौ ३.४२.९
दण्डनाथा ३.१७.१; २८.३७
दण्डश्रीशात २.७४.१६९
दण्डिनी ३.२०.६३; २६.८३
दण्डिनीं च ३.२४.१०२
दण्डी च १.७.१७५
दण्डैः कशाभिः २.२९.१०
दण्डो दैव २.१२.३०
दत्तकश्चोशनः २.१०.१८
दत्तकः स तु १.३६.८५
दत्तसर्वाभ्यो २.५७.२०
दत्तात्रेयाद्वरं २.४७.६५
दत्तार्घाः कृत २.३५.१८
दत्तावलम्बनम् ३.२५.३९
दत्ता सनत्कुमारेण २.१०.८७
दत्ता हिमवत्ता २.१०.१९
दत्तेषु कर्म ३.७.२५
दत्त्वा च सर्व २.४७.५७
दत्त्वा चाभिमतं २.५.१९
दत्त्वा दानानि २.२८.११
दत्त्वा न शोचते २.१६.४३
दत्त्वा मोदन्ति ३.१६.३०
दत्त्वेमं नंद २.७१.२१६
ददतश्चाक्षयं २.६३.६१
ददर्श ऋक्ष २.७१.४६
ददर्श च कुरुक्षेत्रे २.६६.१८
ददर्श तत्र २.४१.३१
ददर्श परितो २.२१.५२
ददर्श ब्रह्मणो २.३१.२१
ददर्श मुनिमासीनं २.३५.४८
ददर्श वीति २.४७.७०
ददामीत्येव २.७३.७७

ददाह कार्त्त	२.६९.४२
ददाह सव	२.६९.४३
ददृशुर्मुनयो	२.५७.५३
ददृशुश्च महा	२.५३.१७
ददृशुस्ते मुनि	२.४७.४२
ददृशुः सर्वतो	२.५८.२९
ददौ कृष्णस्य	२.३४.३४
ददौ च विधिवत्	२.४७.२१
ददौ तस्यै	३.१५.१७
ददौ ब्रह्मेक्षु	३.१५.१९
ददौ सत्राजिते	२.७१.५२
ददौ स दश	१.३७.४४
ददौ सुराणाम्	३.१५.२२
दद्यात्प्रजार्थी	२.१२.३२
दधाना घूर्ण	३.२०.७४
दधानो भुज	३.२९.१५
दधिशाकं तथा	२.१४.५८
दधिसिन्धुः	३.३१.१९
दनुजकुल	२.४३.५
दन्तपातेन	२.४२.५
दन्तो निपतितः	२.४४.२८
दमघोषस्य	२.७१.१५९
दम्पत्यो	३.३९.६१
दया विधेया	२.४३.१५
दरीमुख	२.२२.१५
दर्भान्पिण्डान्	२.११.५३
दर्शनात्सूकरो	२.१९.४४
दर्शनानि च	३.३९.४९
दर्शनानि स	३.३८.४८
दर्शनीया	२.७.२१३
दर्शश्च	२.३.६; ४.२
दर्शितं	१.३५.१३८
दलाग्रेषु तु	३.४४.८४
दशकोटि	२.७.१८५
दश चापि	२.१४.७४
दश चैव	१.२९.१६
दश चैवाधिका	१.२९.१२
दश तानि	२.६.२२
दश तान्वै	२.८.८१
दशधा तदधात्	२.६०.२०
दश पद्मानि	२.७.१८८
दशपंच	१.२१.१२२
दशभिः	१.२८.६५
दशभ्यश्च	१.१.१०७
दशभ्यस्तु	१.१३.८२
दशमे त्वथ	३.१.६६
दशमो भाव्य	२.७३.१०५
दशयोजन	१.५.१२; २२.६३; ३.२५.२२; २९.३८
दशयोजनायति	३.१८.३
दशरात्रमशौचं तु	२.१४.८६
दशवर्षसहस्राणि	१.१७.३; १९.११८; ३७.३१; २.१३.१३४; ६३.१९४
दशाऽक्षौहिणिका	३.२५.६७; २६.१
दशात्मके ये	१.३२.२१
दशात्मके यो	१.३२.५३
दशार्थम्	२.७४.४९
दशार्बुदानि	२.७.१८६; १८७
दशाष्टषट्	३.७.६८
दशैताः कथिता	३.१९.४१
दशैव महतो	३.२.११६
दष्टौष्ठैः	३.२२.२४
दस्युधर्मगतो	२.६३.१०४
दहत्य इव	३.१७.५
दहस्तेषां	३.३३.८६
दह्यमानानि	३.२३.४४
दह्यमानां	२.४६.२६
दह्यते प्राणिनः	१.२७.८८
दाता द्विजानां	२.२८.७४
दाता यज्वा	२.७१.११०
दातारमुप	२.१६.२५
दातुमर्हसि	३.१५.१६
दानधर्मरतो	२.७०.४३
दानहोम	२.५६.२०
दानं विनाप	२.५६.२०
दानं त्रिविधम्	१.३२.५५
दानाच्च सुखुवे	१.११.२९
दानात्तु लभते	२.१६.२०
दानानि व्रत	२.१४.१०९
दानानि सह	२.२०.१८
दामोदरस्तु	३.३४.८३
दायाद्यमिन्द्रा	२.६७.९५
दारयन्ती	३.२८.२५
दारांस्तु	२.६३.८५
दाराग्नयश्	१.७.१७४
दाराननग्रहैः	२.६८.६६
दासीदास	३.४०.१२१
दास्ये चाभि	२.२४.३४
दिक्चक्रजयिनो	२.४९.१६
दिक्पूर्वा तस्य	२.६०.१६
दिग्वासस	२.७.३७०
दिङ्नागाश्च	३.२९.३०
दितेः पुत्रद्वयं	२.५.३
दित्या गर्भा	२.५.५
दिदृक्षवः	२.२३.३
दिदृक्षुराश्रमो	२.४७.८६
दिधक्षुभिः	३.२२.२०
दिधक्षुरिव	२.५३.२८

दिलीपस्तस्य	२.६३.१८२
दिलीपस्तु	२.५६.३१
दिवं स्मृतं	१.३८.२०
दिवस्पर्शोऽथ	१.३६.१०
दिवश्च्युता	२.१३.११८
दिवसार्द्ध	२.१३.११४
दिवस्तु सत्रि	१.२१.१२
दिवस्पतिर्म	३.१.१०१
दिवाकर:	१.२४.१४५
दिवापर्व	१.२८.५४
दिवावृत:	१.१९.६८
दिविच्छाया	१.२८.२९
दिवि येऽपि	३.३३.८९
दिवोदासस्तु	२.६७.३१
दिवोदासेन	२.६७.६७
दिव्यं च	१.१८.४
दिव्यं वर्ष	२.७४.२४३
दिव्यदेहधरौ	२.३६.६१
दिव्यमंत्र	२.७.१९२
दिव्यरूपधरा:	२.७.१९३
दिव्यविद्या	३.३७.३०
दिव्यशिल्पिजनै:	३.३७.९८
दिव्यश्चन्दन	२.१३.२३
दिव्यसंख्या	३.१.२३८
दिव्यस्रगनु	३.६.२३
दिव्यानां	१.२४.७५
दिव्यामृत	१.२२.५१
दिव्या: पुण्या	२.९.६१
दिव्ये च	३.३.६१
दिव्येन	२.८.४१
दिव्यै: पुष्पै:	२.१६.१६
दिव्यौषधाद्ये	३.३०.१७
दिशत प्रीति	३.२७.४
दिशस्तु सर्वा:	२.३८.४७
दिशि दक्षिण	२.११.७
दिशन्ती क्रमश:	३.१०.१९
दिशं प्राचीं	२.२५.६९
दिश: पत्न्य:	१.१०.८२
दिश्युत्तरस्यां	१.२१.३३
दिष्ट्या त्वया	२.५०.५३
दीक्षयामास	२.४७.९६
दीक्षाणामपि	३.४३.८
दीक्षा पत्नी	१.१०.८३
दीक्षामयं	२.७१.८२
दीक्षासमाप्ती	१.५.१६
दीक्षितस्य	२.२०.२२
दीक्षिता	१.१०.२०
दीपं पितृभ्य:	२.११.४५
दीप्ततारुण्य	३.३५.८२
दीप्तभूषण	३.३९.८६
दीप्ताभि:	३.१.१४४
दीप्तायुध	३.१८.१०
दीप्तायुधा	३.२९.१९
दीप्तिमन्तो	१.१३.९७
दीप्तिमूर्ति	२.१.२८
दीप्यमानश्च	१.३६.१४८
दीप्यमाना	३.३८.५४
दीर्घग्रीव:	३.२२.४८
दीर्घमायु	२.१७.१८
दीर्घायुषो	१.२८.८१; ३५.१०४; २.६१.१८
दीर्घेण तपसा	१.३०.२८
दु:खप्रवचन	१.३१.६९
दु:खशोक	२.३०.२८
दुग्धलाक्षा	३.४१.५७
दुग्धा मही	१.३७.१८; १९
दुग्धा हितार्थं	१.३६.२२७
दुग्धेयं तामसं	१.३७.१७
दुरिष्टैर्दुरधीतै:	१.३१.३६
दुर्गसंख्या	१.१.९८
दुर्गन्धं फेनिलं	२.१४.२६
दुर्गन्धश्चैव	२.११.१०२
दुर्गन्धाय	१.२७.७८
दुर्गन्धैर्गन्धहीनै:	३.४१.१४
दुर्गा गुहप्रिया	३.४४.७६
दुर्जयस्तस्य	२.६९.५४
दुर्दमं दमनं	२.७१.१६५
दुर्बला देवता:	३.९.३७
दुर्मदस्याग्रज:	३.२२.९८
दुर्मदस्याथ	३.२२.५६
दुर्मदस्याभि	२.७१.१७१
दुर्वाससमथा	३.६.१३
दुर्वृत्तं त्वां	२.७४.३२
दुष्कृतस्य	२.७४.५
दुष्टाभिचारा:	३.२१.९७
दुष्पूर: पूरणा	२.७.३७७
दुष्प्रयुक्ता हि	२.१३.३२
दुस्तरो मदन	३.८.२५
दुहिता सुताश्च	२.७.१५०
दुहितृत्वं च	१.३६.१५२
दुन्दुभिस्वर	१.२६.५२
दूतस्तु प्रेषित:	३.२२.३१
दूतं प्रस्थाप	२.३८.८
दूरप्रसारित	२.२७.३४
दूरादेवाप	२.४७.१३
दूराद्द्रुतं	३.१७.१६
दृढधन्विने	२.७२.१८३
दृशश्चंद्रार्क	३.१३.१०
दृश्यते पर्व	२.१३.४९
दृश्यते हि	१.३३.३५
दृश्यन्ते तानि	३.१.१०२

दृश्यमानोऽप्सरो	२.७.१०९
दृश्यादृश्य	३.१३.१२
दृश्यादृश्येषु	३.३.१००
दृश्यते च न	१.३१.६४
दृश्यन्ते तत्र	२.३८.२२
दृष्टवान् स्वर्ग	२.१३.९
दृष्टहासो	३.२१.८६
दृष्टिपूतेन	२.४९.२५
दृष्टं वै	१.२७.५५
दृष्टस्ते	२.५४.२
दृष्टानुश्रविके	२.३.६४
दृष्ट्वा चैव	२.१४.५६
दृटवा तत्र	२.३०.६१
दृष्ट्वा तमित्थं	२.३८.४२
दृष्ट्वा तं पुष्क	२.४०.५
दृषदश्वः पृथोः	२.६३.२७
दृषद्वती सुतः	२.६६.७५
दृष्ट्वा तं	२.३९.१०
दृष्ट्वा तेषां	१.३२.४५
दृष्ट्वा त्वामीदृशा	२.५३.४०
दृष्टवा धनं	१.३४.४२
दृष्ट्वानुकम्प	२.२५.५१
दृष्ट्वा परशुरामस्तु	२.३७.१
दृष्ट्वा पितुर्वधं	२.४१.१
दृष्ट्वा ब्रह्मा	१.९.७९
दृष्ट्वा वामे	२.४१.३२
दृष्ट्वा विनि	२.३९.१८
दृष्ट्वा विस्मय	२.३२.१८
दृष्ट्वा विहाय	२.३९.३५
दृष्ट्वा शक्रो	२.७२.१५०
दृष्टवाश्रम	२.४५.४
दृष्ट्वा संक्षोभ	३.४१.५२
दृष्ट्वा समुद्यतं	२.३८.३९
दृष्ट्वा संभ्रांत	२.५७.४९
दृष्ट्वा संमुमुहुः	२.७३.८५
दृष्ट्वा हिरण्मयं	१.२५.४७; २.७२.१२५
दृष्ट्वोपायं	१.१.१६५
देयमोंकार	२.७.१०६
देयं सप्तनदे	२.१३.७०
देवकश्चोग्र	२.१३.५८
देवकार्यमिदं	२.७१.१२९
देवकि प्राकृत	३.२४.८८
देवक्यां वसु	३.२७.११
देवक्षत्रोऽभवद्	२.७१.१९७; ७३.९४
देवगन्धर्व	२.७.२००
देवताः पितर	१.३५.१८१
देवतानामव	२.६३.३७
देवतानामृषी	१.३०.४६; ३५.१६२
देवतानां गणाः	३.१.१०६
देवतानां च	३.३८.८०
देवतानां हि	२.२०.८
देवताभ्यः	२.१०.१०५; ३.७.३१
देवतामभि	२.२८.१०
देवतार्थे च	३.६.५७
देवताष्टक	३.२७.३९
देवतासुर	२.७.४७१
देवत्वं च	१.१३.१४१
देव त्वदाज्ञया	३.२२.२८
देव त्वदीय	३.२१.३२; ४५
देव त्वमेव	३.२१.४९
देवत्वे च	३.२.६२
देवदारुवने	२.१३.९९
देवदासी	३.८.११
देवदेवा	३.१२.२४
देवदेवा	३.२५.७८
देवदेवो	२.७१.१९६
देवदुन्दुभय	२.६३.५३
देवदुन्दुभयो	३.२९.४५
देवद्विषम्	३.१९.३७
देवनात्स	२.७०.४६
देवबाहुः	२.७१.१४१
देवबाहोः	२.७१.१४२
देवब्राह्मण	३.२.१६०
देवभाग	२.७१.१४९
देवभूमिं	२.७४.१५७
देवमित्रश्च	१.३५.१
देवमित्रस्तु	१.३४.३३
देवयानी	२.६८.१५
देवयोनिभवाः	३.३८.३७
देवराज्य	२.७३.५५
देवर्षयः सुताः	१.३५.९३
देवर्षये	३.१४.३; १५.४०; ४०.४८
देवर्षिगधर्व	१.१९.८४
देवर्षिपितृ	३.३८.२५
देवर्षिभवने	२.१३.२२
देवर्षिमनु	३.१.१९४
देवर्षीणां च	२.११.२७
देवलोकच्युता	१.१५.७६; १७.७; १३
देवलोकप्रतिष्ठा	१.३५.९८
देवलोकं	२.७२.१०
देववानुप	२.७१.१३०; ३.१.९४
देवस्य महतो	१.१३.८४
देवाज्ञया	२.६७.३३
देवादिभिः	१.३७.११
देवाद्याः	१.७.३१

देवानामप्य १.२०.५७
देवानामुप ३.२.२२२
देवानृषीन् २.७.७१
देवानेकादशै २.३.७२
देवान्सृजत २.९.१६
देवान् सृष्ट्वा १.८.११
देवानां च १.१.१२८
देवानां दान १.३७.४९; २.३.१
देवानां देव २.३.१२८
देवानां हृदय ३.३४.४८
देवापि: पौरवो २.७४.२५०
देवा मन्वन्तरे १.३७.२२
देवा ये वै १.२१.११
देवारण्यं १.१८.१२
देवारिस्कन्दन: २.१०.५१
देवालये २.१३.८७
देवाश्च पितर: १.७.२६; १८९;
२.१२.१; १५.१४
देवश्चांगिरसो २.१.१०२
देवाश्चाष्ट १.१४.२
देवाश्चैतान् २.२०.४
देवासुरमनु १.१३.३
देवासुरमहा १.२०.५६
देवासुरविमर्देषु २.७.३२१
देवासुरं २.७२.६७
देवासुरा: १.३५.१९१
देवासुराणां २.७२.७१
देवासुराणामा २.१.७६
देवासुराहव २.७१.२६३
देवास्तं २.१६.५७
देवास्ते ३.२.५५
देवा हुताशन २.७२.४३
देवा ह्यष्ट १.३१.१२५
देवांश्च २.१४.४५
देवांस्तु २.१७.९
देवा: शृणुत २.५२.१२
देवा: सौम्याश्च १.२८.७०
देवि कस्य ३.२७.६२
देविकायां २.१३.४१
देवि त्वत्स्मृति ३.३१.९४
देवि नाम्ना १.९.४२
देवि पश्य ३.१७.४०
देवि भण्डा २.७३.१०
देवीन्द्रनील ३.१९.५६
देवीसम १.२३.६०
देवै: पीत १.२३.६०
देवैर्दत्त: २.६६.६७
देवैर्महा १.१२.४८
देवैश्च ३.२०.५१
देवो विष्णु: २.७१.२०१
देवौ च २.६०.१२
देवौ तस्मा २.५९.७६
देवौ धातृ १.११.२
देव्या उपरि ३.३७.९४
देव्या देहो ३.४३.६
देव्या वै ३.२.२७९
देव्या: पुष्पांजलिं २.७३.१५
देशकाल ३.३९.४१
देशकालोप ३.४१.३३
देशं पुण्य १.१.१५६
देशा उत्तर १.२१.४१
देहबन्धै: १.२५.३४
देहाभिमाने ३.४३.५०
देहैर्वियोग: ३.१.१९३
देहो देवालय: ३.४३.५३
दैतेयान् २.७.२५५
दैत्यवाहन ३.२९.५४
दैत्यशस्त्र ३.२५.१०६
दैत्यं मलक ३.१०.२४
दैत्यानामथ २.८.६
दैत्यानां दानवा १.१.११४;
२.५.१; ६.३०
दैत्यान्मानुष २.७३.१०१
दैत्यासुराणा १.३६.९४
दैवतै: सहित: १.३०.१०
दैवं हि २.३१.४
दैवान्न: ३.२६.१४
दोधूयमानो २.२२.५९
दोलालंबित १.२५.३१
दौरात्म्यं १.१.१४४
दौर्मनस्यं २.५४.२२
दौहित्रा २.१०.१०७;
२०.२६
द्युतिमन्तं केतु २.७.१२५
द्युतिमन्तं च १.१४.१३
द्युतिर्द्युति १.२४.५३
द्यौरन्तरिक्षं २.९.४७
द्रवत्कन्दर्प ३.३८.५३
द्रव्यस्यान्यस्य २.१४.९६
द्रव्याण्यानीय २.४७.९७
दष्टुमिच्छामि २.२४.५५
द्रष्टुं त्वदाननं ३.१०.४७
द्राक्षामधूका २.२८.६
द्रुह्यना २.२२.३७
द्रुह्योश्च २.६८.८४
द्रोणोदपूरितं २.४३.१७
द्वयेन द्वय ३.२८.९४
द्वयो: पंक्त्योश्च ३.१०.१५
द्वात्रिंशदेक २.७४.१३७
द्वात्रिंशे १.३१.८७
द्वादशांगुल ३.२.१२२
द्वादशे त्वथ ३.१.८२

द्वादशैते	१.९.२७
द्वादश्यां	२.१७.२७
द्वापरस्यांश	१.३१.३१
द्वापरादौ	१.३१.२
द्वापरे तु	१.३४.२
द्वापरेषु	१.३१.१५; २८
द्वापरेष्वभि	१.३१.२५
द्वापरे सर्व	१.३१.२६
द्वारयोजन	३.२६.३१
द्वाराण्यट्टाल	२.७.४०५
द्वाराण्येतानि	१.९.५१
द्वारे द्वारे	३.३१.५३
द्वारे निवेशया	३.२६.३९
द्वारैश्चतुर्भि:	३.२.२३७
द्वावर्द्धमासौ	१.१३.१७
द्विकथं वा	२.६२.१९
द्विगुणेषु	१.२४.१२३
द्विजवर्मा	३.७.५९
द्विजवर्मेति	३.७.३५
द्विजात्मदासी	३.८.४८
द्विजानां	२.८.३
द्विजो मोहात्र	३.७.७८
द्वितीयं	२.६२.३९
द्वितीयं द्वापरं	१.३५.५७
द्वितीयं नाम	१.१०.२९
द्वितीयं प्रवहं	१.२२.३९
द्वितीय: पर्वत	१.१९.८
द्वितीयमुद	३.६.७
द्वितीयाभूत्त	३.३९.१०
द्वितीयायां	२.१७.११; ६७.१६
द्वितीयेऽस्मिन्	१.२०.२५
द्वितीये द्वापरे	१.३५.११७; २.६७.२०
द्वितीयो देव	२.२०.३
द्वितीयो भुव	३.२.१९
द्विधाकृत	३.५.२१
द्विपदां चैव	२.१४.६५
द्विभुजा विविधो	३.३९.६
द्विमूर्द्धा शंबर	२.६.४
द्विरेव मार्जनं	२.१४.१०७
द्विलवां कुहू	१.२८.१०
द्विविदास्त्रं	२.१९.११७
द्विविद: कुमुदो	२.७.२४२
द्विवंशकारण	२.७४.२६३
द्विशत्यक्षौ	३.२६.६४
द्विषष्टिना	१.२१.१२८
द्विहस्त:	१.७.१०४
द्वीपभेद	१.१.६८
द्वीपार्धस्य	१.१९.११२
द्वीपाश्च	३.१.१५०
द्वीपिन:	२.७.३१९
द्वीपेषु तेषु	१.७.१४
द्वीपेषु सप्तसु	२.७.१९५; ६९.२१
द्वीपेषु सप्तसु	१.१६.१२
द्वीपो ह्युप	१.१६.१२
द्वे कृत्वा	१.३४.२५
द्वे पत्न्यौ सगर	२.६३.१५४
द्वे सहस्रे	१.३५.७६
द्वैधात्तथा	१.३१.७
द्वैपायनस्तत:	१.१.१२
द्वैपायनो	३.१.११
द्वौ द्वौ लवा	१.२८.४९
द्वन्द्वाश्च	२.२२.४८
द्वन्द्वैरनुद्धे	२.२२.७३
ध	
धत्ते धर्म:	१.९.७
धनवाहं	२.३६.४६
धनुर्गुणं	३.२८.१०५
धनुर्गृहीत्वा	१.३६.१७६
धनुर्ज्यात	३.२९.५७
धनुर्दण्डयुगं	३.२.१२५
धनुर्द्वयं च	३.३७.१३
धनुर्न्यस्य	२.६७.९५
धनुश्च	३.१२.१०
धनुषां	३.२७.१०
धनुषो	३.२८.२१
धनु: सहस्रे	३.२१.२६९
धनु: संस्थे	१.१५.३५
धनूषि चापि	१.७.११४
धनूंषि दश	१.७.११३
धन्यं यशस्य	१.३.४; ३६.१२४; ३.४.५
धन्य: पुण्यो	२.७.२०४
धन्यमारोग्य	२.६५.५०
धन्यास्ते	२.१३.१५
धन्योऽहं	२.३०.६२
धन्वकारा	३.३४.२६
धन्वन्तरि	२.६७.२५
धन्वन्तरे:	२.६७.१०
धन्विनो	२.७०.२७
धमनीसन्ततं	१.१८.३६
धयत्यत्राति	२.५१.८
धयेति धातु:	१.८४.१
धरणै: प्राकृतै:	१.१९.१५९
धरस्य पुत्रो	२.३.२२
धराधरोऽलं	२.३६.५२
धरा सा	२.५२.८
धरो ध्रुवश्च	२.३.२१
धर्म एव	२.५०.५४
धर्मकेतोस्तु	२.६७.७५

धर्मचेता	२.७.२३७
धर्मज्ञै	१.३२.३३
धर्मतो	२.७३.४०
धर्मनेत्रस्य	२.६९.५
धर्मपुत्रा	२.३.१०
धर्मपुत्रा:	२.३.८०
धर्मं ज्ञानं	२.९.२३
धर्मयुक्तमिदं	२.६०.८
धर्मराज:	१.२९.६५
धर्मवान्	३.२७.१२
धर्मवारिकण	३.३८.५१
धर्मवृद्ध:	२.७१.११२
धर्मशास्त्रं	१.३५.८८
धर्मस्य	१.१.६०
धर्मस्याथ	१.३५.९२
धर्मस्यैव	२.३.२
धर्मादय:	१.५.७७
धर्मादीनि	१.३.१७
धर्माद्या	३.१३.१३
धर्माद्युधि	२.७१.१५४
धर्माधर्म	३.२.१९२
धर्माधर्माविह	१.३२.२८
धर्माधर्मौ	१.१४.५८;
	३५.१४२;
	३.३.३०; ४.१३
धर्मान्नारायण	३.७३.७२
धर्मार्थं	२.२.१६
धर्मार्थकाम	२.७.४७४
धर्माविरोधी	२.६८.६५
धर्मासत्त्वेन	१.३१.८
धर्म चैव	१.२७.४०
धर्मेण रंज	२.५९.७९
धर्मैश्वर्येण	२.७.१६९
धर्षितुं कातरा	३.२५.७९
धवलाम्बर	३.४१.२२
धातकिश्चापि	१.१४.१५
धाता कृस्नस्य	१.२२.२९
धातुनाथा	३.२०.१९
धातुर्दिव्येति	१.८.१०
धातुस्तनोति	१.६.५६
धात्रीश्चैकै	२.६३.१६२
धारणार्थे	१.३२.२९
धारणी मानसी	१.१३.३२
धारया दारय	३.२९.१११
धारयामास	१.१३.६१;
	२.६६.४६
धारां पापा	२.१३.३५
धार्यमाणं	१.१९.१६२
धिष्णीषु	१.१२.१८
धिष्ण्या वा	१.१२.३२
धीमांश्च	१.३५.६
धीवरानृषिकां	१.१८.५४
धुंधरासादित	२.६३.५५
धुंधोर्वधं	२.६३.३०
धुर्यान्विश्राम	२.५०.४५
धूतपापस्थलं	२.१३.२०
धूतपाप्मा	३.४.५३
धूपश्च	२.११.६९
धूमायमाना:	३.२१.११
धूम्रवर्णा	३.२३.३३
धूम्राभिधानाश्च	३.२९.७७
धूम्रार्चिरूष्णा	३.३५.८३
धूलीभिस्तुमुली	३.२२.७७
धूलीमयमिवाशेषं	३.२३.१२
धृतदेवोपदेवा	२.७१.१३१
धृतपिंग	२.२४.६१
धृतराष्ट्र	२.७.२
धृतराष्ट्री	२.७.४४९
धृतरोषा	३.२४.१६
धृतस्य दुर्दमो	२.७४.११
धृतास्तेन	३.२९.९३
धृतिमालंब्य	३.११.२७
धृत्यास्तु	१.९.५९
धृत्वा जुहाव	२.१.३१
धृष्णे: पुत्र:	२.१.१०७
धृष्टकेतोस्तु	२.६७.७७
धैर्यमारोप्य	२.३०.२०
धौतखङ्गलता	३.२५.४४
ध्यात्वा प्रसादं	२.१०.६५
ध्याननिष्ठाय	२.१५.३४
ध्यानपूर्वं	३.४४.३२
ध्यानासनं	२.१३.९५
ध्यानेन देव	२.२२.७६
ध्यानेन मनसा	१.७.३९
ध्यानेन मोक्षं	२.१९.५१
ध्यानं तीर्थं	२.१३.१३७
ध्यायत: परया	३.३८.८२
ध्यायतस्यतस्य	१.७.१९२
ध्यायता	१.३८.१३
ध्यायतो	१.१३.१३६
ध्यायन्ति	१.२७.१२४
ध्यायेच्छ्रीनगरं	३.३८.३०
ध्रुवं कर्मानु	२.४७.३०
ध्रुवं कीलो	१.२४.१४०
ध्रुवं च	१.३६.८९
ध्रुवमेकाक्षर	१.३५.१२९
ध्रुवस्य	१.२२.८
ध्रुवाग्र	३.२.१४५
ध्रुवाज्जनान्तरं	३.२.४०
ध्रुवात्सृष्टिं	१.३६.९६
ध्रुवेण	१.२२.७८
ध्रुवेणाधि	१.२२.१२; ५९

ध्रुवे तु	२.५.८१	नग्ना एव	१.२७.११८	न तेषु लोभो	१.१९.१०५
ध्वजलक्षं	२.७२.८५	नग्नादयो न	२.१४.३४	नत्वा गुरुजनं	२.४९.३२
ध्वजहस्तो	३.३३.७१	नग्नादीन्	२.१४.३५	नत्वा च तां	३.२९.७२
ध्वजानि	३.२२.४०	न च तत्	१.२६.२२	न त्वादृशा	२.३०.२२
ध्वजा बहु	३.२३.१४	न च ताभि	३.४७.५९	नत्वा स्तुत्वा	३.९.२३
	न	न च बन्धनम्	२.७.३१७	न त्विदानीं	२.७१.२३३
न कापि	३.२८.५१	न च सत्राजित:	२.७१.५८	न ददाति च	२.६७.५३
न कामये	२.६८.४१	न चाकाले	२.७.२९९	न दिक्षु न	३.२९.२५
न किंचिदस्ति	२.७३.८४	न चादृश्यत	२.३९.१३	न दिशो न	३.२९.४९
नकुलस्त्वाखु	२.५१.११	न चायं विधि	१.२७.२८	नदीजलै:	१.१९.१००
नकुलाधात	२.२३.६३	न चास्य	१.३६.१६८	नदीतीरेषु	२.१९.४५
नकुलावलि	२.२३.६२	न चेत् स्वय	२.२३.५४	नदीनां च	१.२७.५९
नकुली	३.२३.५२	न चेदकाले	२.५२.२८	नदी प्रवर्तते	२.१३.२४
नकुलैर्दश्य	३.२३.६१	न चैता:	२.१०.३३	नद्यश्चान्या:	१.१९.४७
न केवलं	२.२४.११	न चरा	१.१७.९; २.६१.२७	नद्यस्सागर	२.१४.३१
न केवला	३.१४.१५			नद्यास्तस्याश्च	२.१३.२५
नक्तं तु	२.१४.३	न जातु काम:	२.६८.९७	नद्यां योग	२.१३.८०
नक्तं सृजन्	१.५.८६	न जातु शस्त्र	२.५७.२१	नद्या: स्रोतस्तु	२.१८.४०
नक्तसत्त्वाश्च	३.२५.७०	न जानन्ति	३.२१.७३	ननाम चरणान्	२.४२.२५
नक्ताहार	२.७.६६	न तत्र गन्तुं	३.३५.१२	न नाश उदक	१.२२.१७
नक्षत्रग्रह	१.६.१७	न तत्र दस्यु:	१.१९.१२०	न निद्रां पार्वती	३.३०.८९
नक्षत्राणां	२.११.२६; ७४.२३५	न तत्र वर्षं	१.१९.१२३	न निन्दितो	२.५०.१०
		न तत्र सूर्य:	१.१७.१०	ननु वै	२.५२.२७
नक्षत्राणि च	१.२४.८४	न तत्रास्ति	१.१९.२४	न नूनं	२.६९.२०
नक्षत्रेऽब्दं	१.२३.८७	न तदर्थे	३.२७.१९	नन्द: कन्दर	२.७.२३४
नक्षत्रेभ्यो	१.२४.१२१	न तदश्नन्ति	२.१५.५६	नन्दनोद्यान	३.९.३९
न क्षीयते	३.३.९४	न तस्य पत्न्य:	२.८.७३	नन्दव्रज	२.३६.२५
न खल्वयं	२.५९.२९; ३५	न तस्य परमं	१.२७.४८	नन्दिना च	३.१०.२८
न गन्तुं	३.३५.६५	न तान्परि	१.२७.९३	नन्दिनो	३.३०.७६
नगमण्डल	१.१८.६५	न तां ग्राप्स्यामि	२.५०.२७	नन्दिभृङ्गि	३.३०.७५
नगराद्वार्यनु	२.६७.४४	न तासां नाम	१.१९.९८	नन्दीश्वरस्य	२.१३.६४
नगराद्योजनं	१.७.१११	न तासां प्रति	१.७.४६	नन्दो द्रोण:	२.७१.२३९
नगरैश्चैव	१.१९.१०१	न तु दिग्विजया	२.५२.४१	न पारगो विंदति	२.१९.६३
नगोना तु	२.६२.२९	न तेन शिरसा	३.२१.२७	न पुष्पशयने	३.३०.७७

न प्रादाच्च	२.५१.५९
न प्राप्यते	३.३८.७७
न प्रीणन्ति	२.११.६७
न बभूवुस्तदा	२.९.४८
न ब्रह्मा न	३.३९.११६
न ब्रह्मा नैव	३.४०.६६
न ब्राह्मणं	२.१९.२१
नभेवलय	३.२६.३५
नम: कपाल	२.२५.७५
नम: किशोर	२.३३.१४
नम: कृष्णाय	२.३३.१८
नम: सकल	२.२५.८
नम: सहस्र	३.१३.७
नम: सुरासुर	२.२५.१९
नम: स्वाहायै	२.२१.१८
नमन्नरेन्द्रमुकुट	२.५०.१८
न मया	२.७४.५१
न मर्त्तव्यं	२.४७.८४
नमश्चकार	२.३८.६
नमस्करोमि	२.३२.१५
नमस्कार्याश्च	३.४.६८
नमस्तुभ्यं	१.२५.६४
नमस्ते त्रिषु	२.७२.१९४
नमस्ते देव	२.२४.२५; २५.५
नमस्ते नील	२.२४.२६
नमस्ते सकला	२.२५.६; ७
नमस्त्रिपथगा	२.२५.११
नमस्त्रैलोक्य	१.२५.६५
नमस्यश्चैव	१.३७.६
नमस्ये शिव	२.३२.२५
न मीमांस्या:	२.१५.५
नमुचेरिन्द्र	१.२०.१६
नमो गोपी	२.३३.१३
नमो दिग्वाससे	१.२७.९८
लमरे लम: कारण	२.३७.१५
नमो नम: क्षये	१.१.१
नमो नमस्तेऽखिल	२.३६.५३
नमो नमस्तेजग	३.१३.२५; ३०.११
नमो नमस्ते रजसे	३.१३.२४
नमो नमो लोक	३.१३.२६
नमो भवाय	१.२७.६७
नमो विश्वात्मने	२.२५.७१
नमो व: पितर:	२.११.६२; ६४
नमोऽस्तु ते	१.२६.३२; २६.४७;४८; ४९; ५०
न यज्ञहवने	२.७.२७३
न यज्ञा:	३.९.३३
न यष्टव्यं	१.३६.१३१
नरकश्च हत:	२.६३.१०२
नरकाख्यो	३.२९.१२५
नरकिन्नर	१.५.९१; ८.५८
न रक्षितारो	१.३१.४८
नरनाथवधे	२.३१.१३
नरनारीगणेभ्य:	२.११.१०४
नराणां स्वापनं	१.४.२७
नरिष्यन्तश्च	१.३८.३१
नरिष्यन्तस्तथा	२.६०.३
नरिष्यन्तस्य	२.६१.८
नरेन्द्रसामन्त	२.२७.१३
नर्मदातीररतीर्थ	२.२६.११
नर्मदां धर्म	२.२६.३८
नर्मदां नृप:	२.७०.३२
नर्मदोत्तर	२.३८.३५
न लभ्यते	२.४७.१४
नलवंश	२.४७.१९०
नलो द्वाविति	२.६३.१७४
नल्वाष्टक	३.३७.४६
नवकर्पूर	३.३७.७९
नवकोट्य:	१.२१.६९
न वक्तव्यं	२.१५.२०
नव क्षणस्तु	३.१.२१२
नवचन्द्रो	२.७.२४४
नवती द्वे	१.१५.२९
नव नागास्तु	२.७४.१९४
नवनीतल	२.३६.२६
नवप्रसूतां	२.५१.९
नव प्रसून	३.३९.९१
नव ब्रह्माण	१.५.७१; ९.१९
नवमं पर्व	३.१९.९
नवमाणिक्य	३.१०.६१
नव यानि	१.२९.१८
नव योजन	१.२१.७
नव लावण्य	३.३६.५५
नवविंशे युगे	२.७४.२५२
नवसस्यानि	२.१६.४८
नवार्चिर्लोहित	१.२४.१३३
न व्यवर्द्धत	१.९.९
न व्याधिजं	३.८.६०
नव्यानि सर्वाणि	३.३०.३२
न शक्नुवंति	१.२५.६२
न शक्य आनु	१.३५.१५८
न शक्यं	२.७.४६५; ३.२.१९८
न शक्य:	२.७०.६
न शक्यन्ते	१.१५.६
न शक्यमन्यथा	२.७३.४९
न शक्यमानु	१.१३.१०७
न शक्यमिह	२.६७.१५
न शक्यमुत्	२.५८.९
न शक्या	२.३.९५

न शक्यो	१.१९.७९
नश्यत्सापस्तदा	३.३.१०
नश्यन्त्युल्केव	२.९.६३
नष्टचन्द्रा	१.२८.५०
नष्टं चैव	३.३.८२
नष्टं स्यात्	२.१९.३६
नष्टेऽनलेऽन्ध	३.१.१७५
नष्टे धर्मे चतुर्थ	२.७३.८९
नष्टे धर्मे तदा	२.७१.२४१; ७३.९७
नष्टे धर्मे प्रति	१.३१.९६
नष्टे श्रौते	१.३१.९५
नष्टेषु	२.२.२९
नष्टैरशीलै:	३.३८.७८
न संकरश्च	१.१९.१०४
न संख्यां	१.१९.४८
न सति	२.५०.४
न सन्देह	२.३८.९
न समास्ते	२.८.७०
न सस्यानि	१.३६.१९८
न सुरेषु	३.२२.७०
नस्तो	३.५.३२
न स्त्रियं	२.७१.२३१
न हंतव्यो	२.५.७२
न हिनस्ति	१.१०.३६; ५४
न हि पूर्व	१.३६.१९७
नहुष: कररोमा	२.७.३७
नहुष: प्रथम:	२.६७.२
नहुषस्य	१.२.२४; २.६८.१२
न ह्यन्योऽस्ति	२.४८.३४
नाकस्य शकुनि:	२.५९.१३
नाग ऐरावत	१.२३.१४
नागकोटी	२.७.२४६
नागचम्पक	२.२२.३६
नागपाशं	२.३२.५७; ३.१५.२०
नागमैश्च	३.३९.२७
नागवीथ्युत्तरा	१.२१.७६
नागादृष्टि	२.६१.५३
नागा देवर्षय	१.२६.५
नागानां वै	१.६६.२१४
नागारिगायै	२.३९.४१
नागास्तु	२.३८.२१
नागास्त्रं	२.४०.५७
नाजुहाव	१.१३.४६
नाडायनीय:	१.३५.४१
नाडीभिर्वायु	१.२२.१५
नात: परतरं	२.३६.२१६
नातिक्रामपि	२.५८.३३
नातिलंघति	३.१९.९१
नातिहिंसति	१.७.५८
नात्मार्थे	३.६.५२
नात्यर्थ	३.९.१३
नात्यर्थं	२.६३.१२१
नात्युल्बणं	१.२५.४२
नाथ इत्येष	२.३८.२१
नाथाय	२.३६.४९
नाथान्तरमिति	३.३७.२६
नादयन्	२.२६.२४
नादात्मिका	३.४४.८७
नादेयीश्चैव	१.२४.२५
नाधिकान्न	१.९.६९
नाधीयते	१.३१.३९
नानाऋतु	३.३१.६५
नानाकृति	१.४.२२
नानाखग	२.२१.३९
नानागतिषु	२.७.३०९
नानाछन्दो	१.५.१९
नानाजन	१.१५.१०; २०.३
नानात्व	१.१५.११३; ३.३७; ३.२.२५९; ३.५५
नानाद्रुम	१.२५.२६
नानाधातु	२.२२.९
नानामणि	२.३५.५३; ४१.१९
नानापतत्रि	२.२२.६८
नानापिपीलि	२.७.४२३
नानापुष्पा	२.२२.३१
नानाप्रकारै:	२.७.१५६
नानाप्रहरणै:	२.४०.५४
नानारत्न	२.४१.२६; ३.२.२३९
नानारत्नै:	३.३४.८६
नानारूप	१.२२.४३
नानारूपं	१.८.६८
नानारूपासु	१.२८.८८
नानावर्णो	२.२२.५२
नानावादित्र	२.४८.२३; ५५.११
नानाविध	३.२३.३०
नानाविधानि	२.४१.६
नानाविधाभि	३.२०.३
नानाविधायु	३.३६.५९
नानाविधालय	२.२७.३८
नानाविधेषु	३.३०.९९
नानाविभूषा	२.३९.९६
नानाविहग	२.२२.४३
नानावृक्ष	२.४१.२०; ३.३१.५४; ३२.२; ३७.१००

नानाशस्त्र	२.३८.२३; ४०.२०
नान्यच्छरीर	३.३.८४
नान्यस्येदृग्	२.२४.९
न्नान्यस्सर्वगतो	१.२५.१२
नाभिविष्य	२.६७.१००
नाभागस्तस्य	२.६३.१७०
नाभिबंधन	१.१५.१८
नाभिर्वित्तस्तु	१.३५.४३
नाभिश्चोदर	२.७२.४९
नाभेर्निसर्गं	१.१४.५९
नाभेस्तु	१.१४.४८
नाभौ पृथग्	२.७.२९०
नाभौ स्वाधि	३.४४.८३
नाभ्यरण्यां	२.७२.१९
नामकीर्तन	३.३२.६७
नामतस्तान्	२.७.३३६
नाम देहि	१.१०.८
नामरूप	३.१३.१९
नामस्तोत्रे	२.७२.१९५
नामात्म	१.५.९५
नामान्यस्योप	२.४२.३२
नामान्येतानि	२.३.२०
नाम्ना कनक	२.१३.११३
नाम्ना च	१.१४.१६
नाम्ना दत्तानि	२.९.१०
नाम्नांशुमंतं	२.५४.३४
नाम्ना रक्षो	२.७.६२
नाम्ना समुद्र	१.८.८०
नाम्ना ह्रदा	१.१८.७३
नायको	३.४४.४५
नारदः	१.१.१११
नारदः पर्वत	१.३५.९५
नारदा श्री	३.४४.९१
नारायणं	१.२४.४९
नारायणः	२.३६.४०
नारायणात्	१.५.१०९
नारायणास्त्र	३.२६.१०८
नारायणो	२.७१.१९९
नापर्हतस्तावपि	२.१५.५०; ५३
नावृष्ट्या	३.१.१३८
नाव्रती न	२.१५.१८
नाशयामास	३.२९.११६
नाशयामासु	३.२९.१२९
नाशयिष्यन्ति	३.२१.९२
नाशाय वचनं	२.२.१३
नाशुचिर्नाप्य	२.७१.१२४
नाशुद्धाय	१.३६.१२३
नाशुभं विद्यते	२.१५.५६
नाश्रद्दधाने	३.४.७०
नासत्यं चैव	२.५९.२५
नासव्यं पातये	२.१९.४६
नास्ति गुर्वधिकं	३.४३.७३
नास्तिको	२.९.७१
नास्तीति	२.७१.७८
नास्त्राणां	२.२४.३६
नास्माकं	२.७४.५४
नाहं पुत्राभि	२.५.५४
नाहं वेश्म	२.६७.६०
नाहारे वा	३.३०.८७
निकुम्भश्चक्र	२.६.३३
निकृत्यनृत	१.९.६४
निकृत्तगात्राः	२.२६.२८
निक्षेपहारके	२.१९.३७
निगर्भयोगिनी	३.१९.४२
निगृह्य तं च	१.३६.१४१
निग्रहे बुद्धिमनसोः	२.१३.१४१
निघ्नन्दृप्ता	२.४८.९
निजधान	२.४८.१५
निजघ्नु	१.२.२२; २.२६.३६
निजाम्भसा	२.५६.४९
निजोत्थैः	३.३२.३६
नितुन्दश्च	२.७.३८०
नित्यं च	३.४१.८०
नित्यं जपति	२.३४.३६
नित्यं जयति	२.१६.२३
नित्यं व्रज	२.३७.११
नित्यं सञ्चरते	३.७.१८
नित्यक्लिन्ना	३.२५.९५; ४४.१४५
नित्यपुष्प	१.१७.२४; १९.४०
नित्याकलान्तरे	३.३६.६७
नित्या काल	३.२५.७६
नित्या च दूती	३.४४.१४६
नित्यानां च	३.३१.२३
नित्यानां विक्र	३.२५.१०९
नित्या नील	३.१९.५७; ४४.१४७
नित्या प्रमोदिनी	३.४४.१४९
नित्याभिः	३.२५.१०१
नित्याय च	२.७२.१९३
नित्यार्चनं	३.४३.५६
नित्ये निरातंक	३.३०.२१
नित्येशस्थायिनः	२.७२.७०
नित्योद्यता	३.३७.३८
निदेशाद्वै	२.२६.२
निद्रयापहृता	२.५.६५
निद्रितो	२.४१.३५
निधनं ब्रह्म	३.२.६७
निधनं सप्तमं	१.३३.३९

निधनानीह	१.३५.२०२
निधने संप्र	१.३६.१३५
निधाय चाद्भिः	२.१४.६१
निधिभिश्च	३.३३.७६
निध्रुवा:	२.८.३३
निन्दां तामाहु	१.३३.५१
निपपात	२.५८.१९
निपीडयन्	३.३२.४७
निपीड्य शिरसा	२.२१.६
निमित्तमप्रती	३.३.७६
निमित्तानि	३.२९.४६
निमिर्नाम	२.६४.३
निमील्य	३.४३.४
निमेषतुल्य	३.१.२११
निमेषश्चानु	१.२२.७०
निमेषा	३.१.२१५
नियतिः	३.३७.६०
नियन्त्रितांत:	२.२५.५०
नियमानखिलां	३.३०.७२
नियम्य सह	२.५१.२०
नियोजयति	२.१३.१४३
निरञ्जनत्वा	३.३.६०
निरयात्सागरा:	२.५६.५०
निरये पतनं	२.५६.३५
निरस्यायुध	३.२७.६०
निराख्योपा	२.९.६४
निरात्मके	३.३.१०७
निरानन्दे	१.३५.१८८
निरालोकं	२.७.२९४
निरालोके	३.३.१५
निरिन्द्रियाणां	३.३.२७
निरुक्तमस्य	३.४.५५
निरूपयस्व	२.२३.७७
निरूपितमिव	२.५७.६५
निरौषधिरसा	३.९.३५
निर्गच्छतां	३.२६.२२
निर्गच्छदिव	३.२५.३८
निर्गतं यद्	३.४३.५९
निर्गतो	३.९.२७
निर्गमे	३.२६.६०
निर्गुणत्वा	३.२.३१२
निर्जित्य	२.६९.३६
निर्दग्धदेहा:	२.५३.५०
निर्दग्धमासीत्	३.२९.१४४
निर्दग्धुकामं	२.५९.६६
निर्दग्धुं पृथि	२.६३.४५
निर्दग्धेषु	१.५.१३०
निर्द्दग्धो	१.२५.५७
निर्द्वन्द्वा	१.२१.१५८
निर्धूत	२.४०.६२
निर्बन्धेन	२.५६.१५
निर्भयं	२.१२.१८
निर्भया	३.१०.२६; १३.३३
निर्भर्त्स्य	२.७४.६४
निर्ममेऽथ	३.७.२४
निर्यन्तरस्तु	३.४.६४
निर्ययौ	२.२६.२२
निर्याय	२.२७.३५
निर्विकारो	२.७.२६०
निर्वातिष्वथ	१.२८.१४
निर्विद्य	३.२७.५५
निलिल्यु:	२.४४.२
निवर्त्तते	३.२.४५
निवर्तस्व	३.२६.९३
निवार्य	२.४६.१९
निवासो	३.६४.६५
निविष्टा	२.३६.९
निवृत्तान्य	२.२१.५९
निवृत्ता वर्त	१.५.५२
निवृत्तिः	१.१९.४७
निवृत्तिश्च	३.३५.९८
निवेदयामास	२.७१.२१८
निवेशितानि	१.१४.४०
निवेश्य	३.४३.३०
निवेष्ट्य	३.३४.४६
निशश्वास	३.३०.७३
निशायामिव	१.७.४
निश्चक्राम	२.२६.४२
निश्चय:	१.२१.१३१
निश्चितं	२.३३.३१; ६९.३४
निश्चेरु:	२.५३.३२
निश्यादीनां	१.१.१२०
निश्शेषयति	२.३९.२३
निश्शेषशून्या	२.४८.१६
निश्शेषास्तु	२.७४.२२४
निश्शेषितं	२.४१.५
निशशेषे	१.३१.२९
निश्शेषेषु	३.१.११७
नि:श्रीको	३.९.१९
निषंगेण	३.२५.७१
निषधस्य	२.६३.२२
निषसादासने	२.२६.४७
निषादवंश	१.३६.१४४
निषिक्ता	१.७.११
निषेण्य	२.३६.५१
निष्कामो	३.४१.६७
निष्कुलादस्यस	१.२०.१७
निष्क्रमन्ते	३.१.२०३
निष्क्रमोऽध्व	२.१४.६८
निष्क्रम्यमाणो	२.४३.२२

निष्क्रामत्यथ	१.२८.५७	नूनं कथं	२.७.२८१	न्यङ्कव: शरभा	२.७.१७४
निष्टब्धाक्षा	२.७.३९३	नृगा कृमी	२.७४.१८	न्यदधान्	२.२३.१४
निष्ठीविते	२.१४.१०१	नृत्यत्कबन्ध	३.२९.५०	न्यरुणच्च	१.१८.३५
निष्प्रकंप्य	३.१.१०३	नृत्यद्भि:	३.२८.२४	न्यवेदयद्यथा	२.२१.६८
निस्तेजसो	१.७.१५८	नृत्यन्तं	१.२७.१४	न्यसेदनंग	३.४४.१२३
निस्तेजाऽस्को	३.९.३६	नृत्यन्निवाजौ	२.४१.८	न्यस्तव्य	३.४४.७
निस्संगा	३.२.८८	नृपाश्चौदार	२.५२.४२	न्यस्ते शस्त्रे	२.७२.१२६
निस्सीमां	१.१.१६२	नेत्रद्वयं	३.३९.१५	न्यायागतानां	२.६६.८३
निस्सृतं	१.२३.७३	नेष्यामो	३.२४.२५	पक्षमासार्द्ध	१.२५.७४
निस्सृत्य	३.२७.५६	नैका मृग	२.७.४२५	पक्षाणां	१.२४.१४२
निस्स्वाध्याय	१.३६.१३०	नैतच्छक्यं	१.२४.१५०	पक्षिणस्तु	१.८.४३
निहत:	२.६.३२	नैतस्या:	३.४०.९३	पक्षिणां	२.७.२५६
निहता	२.७२.८२	नैतावत्	२.३४.२२	पङ्कजै:	२.२२.६४
निहता:	२.४१.४०	नैधनेऽस्मिन्	२.७२.५८	पञ्चकामा	३.१९.६९
निहतानेक	२.४७.७७	नैमित्तिक:	३.१.१२८	पञ्चचूडा	२.७.१४
निहत्य	२.३९.१; ६७.९१	नैमिषे सत्र	३.४.४५	पञ्च तस्या	१.३५.२
निहन्मि	२.११.८१	नैर्ऋतानां	२.७.१६३	पञ्चत्रिक	३.३८.१५
निर्हारा	१.१६.६७	नैला इति	२.७.१४८	पञ्चत्रिंशत्	१.३१.११९
नीपो विभीतक	२.११.११४	नैव चित्रं	२.२८.२३	पञ्चविंशत्तु	२.७४.११५
नीरक्षीर	३.२४.३६	नैव मूर्द्धाभि	२.७४.२०१	पञ्च देवगणा:	१.३६.२६
नीरंध्रंचित	२.२२.५५	नैव यज्ञहरा	१.२.३४	पञ्चधारासु	३.१६.२०
नीलकण्ठ	१.२५.९८	नैव संकल्पित:	२.६६.५१	पञ्चपर्वसु	३.४३.८३
नीलकण्ठा:	३.२२.५२	नैवागमन	२.३०.२६	पञ्चवाणेश्वरी	३.३७.१२
नीलकण्ठेति	१.२५.६	नैवात्र व्याघ्र	२.३४.२०	पञ्चमीपंचम	१.१०.४६
नीलग्रीवान्	१.९.७७	नैषधं यत्स्मृतं	१.१४.४९	पञ्चमे	१.२०.३५
नीलता येन	१.२५.८	नैष्पाधान्य	२.७४.१९६	पञ्चमोऽनुग्रह:	१.५.५१
नीलन्तु	१.१४.५०	नो चेद्दुराशया	३.२६.२४	पञ्चयोजन	३.३१.८४
नीलश्च	१.१५.२२; २८	नो ददामि	२.१५.२२	पञ्चलोह	३.३१.७६
नीलांगा	२.८.६६	नोपायं विंदते	२.७.१०४	पञ्चलोहमय:	३.३१.७५
नीलाम्बर	३.२९.१२०	नोवाच किंचिद्	२.४२.१८	पञ्चवर्षशता	२.७४.१७६
नीलाश्चित्राश्च	२.७.४२६	नौकेश्वरीभि	३.३५.३९	पञ्चवर्षसह	१.१९.२६
नीले तु	१.१७.३५	न्यग्रोधमेक	२.१०.९	पञ्चवर्षाणि	२.७४.११७
नीले मेषे	३.३१.१७	न्यग्रोधश्च	२.७१.१३३	पञ्चविंशति	३.३९.३५
नीलोत्पलैश्च	३.३५.८९	न्यग्रोधो	२.७.११८	पञ्चवेदान्	२.१५.२५

पञ्चस्वेतेषु	१.१४.४३;	पत्तनेषु च	३.३८.६१	परत्रयाणां	३.४०.६
	३५.९१	पत्नी तु	२.६३.१३०	पर ब्रह्म	३.१५.४७
पञ्चाक्षरी	३.४४.२९	पत्नी प्राचीन	१.३६.९९	परमं	२.४.८
पञ्चाधिकैः	३.१८.१२	पत्नी मरीचेः	१.११.११	परमः	१.४.२६
पञ्चानां	१.१३.१३१	पत्नीषु	१.१०.३	परमब्रह्मणे	१.३५.१३५
पञ्चापश्चात्म	३.८.२९	पत्नी हिम	२.१०.७	परमाणुः	३.२.११७
पञ्चालान्काशि	१.२८.५१	पत्रमूल	२.७४.२२२	परमात्मेय	३.३८.७५
पञ्चाशत्कोटि	३.३७.९०	पत्रोर्णं	२.११.६६	परमार्द्धार्द्ध	१.७१.०७
पञ्चाशत्तु समाः	२.७४.१६३	पथ्या च	२.१.१०३	परमेष्ठी	१.१४.६५;
पञ्चाशत्तु सह	१.२१.१५	पदक्रान्त	२.६१.३७		२६.३३
पञ्चाशीति	१.२९.८७;	पदानि यो	२.७२.२३	परशृंगं	२.१२.२२
	६९.२३	पद्भ्यामेव	२.७१.७६	परस्परस्थिता	१.२४.१२६
पञ्चाहात्	३.८.९	पद्मत्रिखण्ड	३.४४.११	परस्परात्	१.६.११;
पञ्चते वेकृताः	१.५.५८	पद्मनाभं	२.७.१३०		२.७४.२५७
पञ्चैव तु	३.१.८३	पद्मनाभः	३.३४.८१	परस्परानु	१.२४.१९
पट्टिशैर्द्रुघणैः	३.२५.६०	पद्मप्रभाः	१.१७.११	परस्परान्वया	१.४.१०
पट्टिशैर्मुद्गरैः	३.२२.१०	पद्मराग	३.३३.१४	परस्परावृताः	१.१९.१६०
पट्टिशैर्मुसलैः	३.२३.७१	पद्मवर्णं	२.७.१२९	परस्परैः	१.२०.९
पठतां शृण्वतां	२.३६.४५	पद्मश्चैव	२.७.३२९	परस्परोत्थितः	१.१२.३५
पठ्यमानाखिल	२.२१.४७	पद्मस्यैतद्	२.७.३५९	परस्य कटके	३.२१.५१
पणवानक	३.२५.४९	पद्माटवी	३.३६.४८	परस्य कटकं	३.२५.३१
पणश्चैवास्य	१.३४.६०	पद्मत्वात्	१.८.३७	पराक्रमं	३.२३.४५
पण्ड्याश्च	१.१६.५६	पपात दैत्य	३.२७.८५	परात्परतरे	३.१३.८
पतते नरके	३.२.१७१	पपात भूमौ	२.४०.३४	परात्परायै	२.३९.३८
पतन्तं सोम	२.६५.९	पपात संस्पृशन्	२.२४.६५	परान्धकारं	३.२९.६०
पतन्ति नरके	३.२.१७०	पप्रच्छ कार्त्ति	१.२५.१६	परापवाद	२.५०.१२
पतमानानि	१.१७.२७	पप्रच्छ कुशल	२.२१.६३;	पराभवाय	२.७२.११८
पतितश्च	२.२५.७०		२६.४८	परार्द्धसंख्या	३.२८.६५
पतिताः	२.१४.४४	पप्रच्छुरमिता	१.२.३८	परार्धाधिक	३.२९.३७
पतिता धर्म	३.२.२०७	पप्रच्छुर्मात	३.२.११२	परावसुश्च	१.२३.१३
पतिते पुष्क	२.४०.१९	पयः कीर्तिः	२.७.२४०	पराशर	२.१०.८०
पतिते भार्गवे	२.४०.६१	पयस्विनीं	२.२९.२३	पराशरश्च	१.१.१०
पतिते शकले	२.४०.१४	पयेययश्च	३.३४.४७	पराशराज्जातु	३.४.६६
पतिहीना	३.७.६६	परत्वेन	२.७.३७२	पराशराणाम्	२.८.९६

परा सूक्ष्मा	३.३५.९९
पराहतानां	२.१४.९७
परिकल्पित	३.२२.१५
परिक्रम्य	२.३२.६०
परिखावलये	३.३५.६१
परिगृह्य च	२.५४.७
परिग्रहं न	१.७.१३५
परिचंक्रमया	२.५२.४०
परिचर्यासु	१.७.१३६
परिचारैः	२.२६.४४
परिच्छिन्नः	१.१९.१५४
परिणाहो	१.३२.३
परितुष्टास्मि	३.२८.८६
परितो बिन्दु	३.३७.४४
परितो भ्राम्यति	३.३५.४
परितो विभ्रम	३.२७.३२
परिदद्यान्मृद	२.१४.९२
परिधाय	३.३८.२१
परिनिर्वाति	२.१३.१४२
परिपक्व	३.३.६४
परिपूर्ण	२.३३.२२
परिमाणं	१.१.८८
परिमण्डल	१.१५.४१
परियान्ती	१.२३.१०८
परिवर्त्त	१.२२.१३
परिवर्त्य	३.४२.१५
परिवव्रु	२.५३.२३
परिवादात्	२.१९.५९
परिवृत्तं	१.३४.३
परिस्नुता	२.६६.६०
परीत्य पृथिवीं	२.२४.३७
परीत्य पृथ्वी	२.५३.६
परीत्यैवं	२.२४.४४
परेण तस्य	१.१९.१४९
परेण पुष्कर	१.१९.२४८
परेषां मर्म	३.२७.४७
परे स्थितो	३.२.१०७
परैरदृश्य	३.२५.५०
परोपतापि	२.५३.४४
परं ज्योति	२.२२.८०
परं ब्रह्म	३.२.१०६
परंसहस्रा	३.३१.५५
परं ह्यवर	२.७३.९६
पर्यन्यजननी	१.११.२८
पर्जन्यो दिग्गजा	१.२२.४९
पर्यंकस्था	२.४९.२७
पर्यश्नाति	३.२.१६१
पर्यागच्छेत्	१.१२.६७
पर्यायकाले	१.३५.१५४
पर्यायपरिमाणं	१.१.७५
पर्यायपरिमाणेन	१.२१.१९
पर्यायवाचकैः	३.३.८०
पर्यायसन्नि	१.१९.१९७
पर्यासपरिमाणं	१.२१.३
पर्यासपरिमाणेन	१.२१.१८
पर्वताकाश	१.२०.५
पर्वतानां	१.२७.८१
पर्वताश्चाव	१.३६.१५७
पर्वतैः सुमह	१.३.३०
पर्वतो हिम	३.१३.१२२
पर्वशः पर्व	१.११.१५
पर्वशस्य	१.११.३९
पलकं नाग	३.१९.५१
पलायितं	३.२५.१०५
पलायितानां	३.१२.६५
पलालधूम	१.२३.९१
पलाशप्लक्ष	२.११.१०९
पवर्गेण परि	३.३७.६
पवित्रं च	२.११.१०६
पवित्रा संतति	१.१९.६२
पवित्रे परमे	२.१४.५९
पशवः पक्षिणः	१.६.४४; ७.४८
पशुयज्ञेन	३.६.७३
पशूनां त्वं	१.१०.१३
पशूनां द्रव्य	१.३२.४७
पशूनां	१.३२.१६
पशूनां पतये	२.७२.१८५
पशूनां	२७४७८
पश्चाच्चतुः	३.३९.१३
पश्चात्कांची	३.४०.१६
पश्चात्किम्	३.३०.३
पश्चाद्भगे	३.२६.३८
पश्चान्मृगी	२.३४.१४
पश्चिमद्वार	३.३६.४२
पश्चिमेन	१.२६.४१
पश्यता	२.२३.७०
पश्यतां च	१.२६.५७
पश्यतां सर्व	२.५७.४४
पश्यति स्म	३.४१.४
पश्य सिंहा	२.५१.७
पश्यन्ति	३.२.१९३
पश्यन्त्येवं	३.३.७८
पश्यन्विशा	२.२७.२९
पश्यायमस्त	२.२८.५
पाखण्डांस्तु	१.३१.८०
पाखण्डा वैकृताः	२.१४.३९
पाखण्डास्त्रं	३.२९.६३
पाटलेनैव	३.३१.५९
पाटीरपङ्क	२.१०.११
पाणिग्रहण	३.३९.८३
पाणिपात्राः	२.६३.७८;९६
पाणिवाग्घ्राण	३.३७.५९

पाण्डवानां २.७१.६५
पाण्डुभूमि १.२०.१४
पाण्ड्यश्च २.७४.६
पातकानां २.२३.६७
पातयन् पृथिवी २.२८.४७
पातयेयमहं २.६३.१०६
पाताल ३.३३.५३
पातुं क्षमास्ते ३.२१.६३
पात्रं तु शैल १.३६.२२४
पात्रं भवति २.१६.१९
पात्राणां पयसां १.१.१०६
पात्राणि च १.३७.१२
पादं वाथार्द्धपादं १.२५.१११
पाद: क्रांत ३.१.२
पाद: प्रोक्तो २.१.१
पादप्रणामावनतं २.२५.८८
पादभागसपादं २.६२.४०
पादमिश्राव १.७.६५
पादाग्रलंबि ३.४०.१२४
पादाना १.३४.३३
पादाव १.७.६४
पादेन १.२४.१८
पादेनैके २.६२.३८
पादोपधान ३.३७.६३
पादौ प्रक्षाल्य २.१४.१०६
पादौ बाहरणं २.६२.४२
पादौ सं २.७२.१२१
पापरोगी २.१९.४०
पापानामधिक ३.७.२
पापे मदनुजं ३.२२.७९
पाप्मानं २.१५.२४
पाप्मापहं २.११.१६
पायात्कपालं २.३३.७
पायाद्य: स २.४३.१०

पारदा मुक्त २.६३.१३७
पारम्पर्येण ३.७२.९०; ४१.१९
पारावताश्च १.३६.८; ९
पाराशर्यस्तु १.३५.४४
पारिजात २.३२.६; ३.३९.९३
पारिजात: २.७.१८१
पारिजातो २.७.२३६
पार्थिवा देव २.६६.७०
पार्थिवा व्यव २.७४.२१९
पाथिवी सा १.१०.६९
पार्वण्यस्थितय: १.१३.१६
पार्वतीशंकरौ २.४१.३८
पार्वती सुप्र २.४२.५३
पार्वत्याश्चरणो २.४२.२६
पार्वत्या सह १.२५.२३
पार्श्वत: १.२१.१०४
पार्श्वद्वय ३.२०.२८
पार्श्वद्वयेऽपि ३.१६.२४
पार्श्वमुत्तर १.१५.१९
पार्श्वस्थं २.६७.४०
पार्षदप्रवरा २.४१.३३
पालजयित्वा २.६८.१०५
पालाशं १.३६.२२५
पालीवतंस ३.१०.६७
पावकं १.१२.२
पावकि: १.१२.५
पावनं २.२०.१०
पावना २.१५.२७
पांशव: २.७.२८३
पाशांकुश ३.४०.१००
पाशायुधै: ३.२२.१४
पाशिन्यो ३.२४.२२

पाहि मां २.३५.५६
पिङ्गलाक्षं २.४१.२७
पिङ्गलायां २.७.३४६
पिङ्गलोद्‌वृत्त २.७.४६
पिङ्गाक्षा २.७.७५
पिचुलांबष्ठ २.२२.३८
पिण्डं गृह्णाति २.१३.९१
पिण्डनिर्वपणं २.११.७८
पिण्डनिर्वपणे २.११.१९
पिण्डान् परि २.११.६०
पिण्डोदक २.५४.४३
पिण्याकं २.१४.५५
पितरं २.१०.५८
पितर: २.४७.२०
पितरश्चोप १.२३.७१
पितरस्तस्य २.९.७२; १६.२१
पितरस्ते १.१३.३१; ३३; २.९.२५
पितरो हृष्ट २.११.८६
पितरोह्यभवं १.८.१४
पितरौ ते २.२१.३०
पितस्तव २.४४.१४
पितस्तु २.४६.२
पिता चैन २.६३.८१
पितामहो ३.१५.३९
पितामहमहं २.२१.८; १३
पितामहस्तु ३.३९.१०२
पितामहस्य २.२३.६२
पिता सोमस्य २.६५.१
पितुर्न ते २.४७.२८
पितुर्मम २.७२.११६
पितुश्चापरि २.६३.१०७
पितु: पित्रोश्च २.२१.६७
पितु: प्रेतस्य २.४७.६

पितृकर्मणि	२.६३.१९
पितृगन्धर्व	२.१.५; ३.४.२
पितृगणेभ्य:	२.११.२९
पितृतृप्तिमरं	२.४७.१९
पितृदेव	१.२३.२४
पितृपिंड	२.४७.१७
पितृभक्ताय	२.१४.११७
पितृभक्त्या	२.१९.५४
पितृभिर्दानवै:	१.३६.११५
पितृभि: सह	१.१९.२८
पितृवन्मन्य	१.१३.२
पितृवंश	१.१.६३; १३.८८
पितृंश्चैव तथपा	१.८.२९
पितृंस्तु यो यजे	२.२०.६
पितृस्तेऽपूज	२.१०.११२
पितृणां दुहिता	२.१३.७६
पितृणां निर्वपे	३.१९.४८
पितृणां प्रजया	१.३५.१९४
पितृणां मानसी	२.१.७७
पितृणामादिसर्गं	२.२०.१५
पितृणां द्विप्रका	१.१.९१
पितृणामाधि	२.५९.८०
पितृणामानु	२.१०.१००
पितृणां हि	२.१०.११७; १२.२८
पितृन्पितामह	२.२१.१०
पितृन्पितामहां	२.११.५९
पितृन् प्रीणाति	२.१०.१०३
पित्तमग्नि:	२.७२.५०
पित्रा तु	२.६३.९५
पित्रोरनुज्ञया	३.८.१७
पित्रोराराधनं	२.१९.४७
पित्रोश्चकार	२.२१.३
पित्र्यं तु त्रिषु	२.११.२०
पिनाकपाणय:	३.२.२५४
पिनाकपाणि	२.२६.५४
पिनाकिने	२.७२.१७३
पिपासिताय	२.१५.१९
पिपासितो	२.३४.१३
पिप्पली मारिचं	२.१४.१९
पिबश्चषक	३.३५.५५
पिबन्ति द्विलवं	१.२८.२९
पिबन्तो मधु	२.७.१९९
पिबन्तीनां	३.३५.२०
पिबन्त्य इव	३.२०.१७
पिबन्त्यम्बुमयं	१.२३.६५
पिबन्त्यो ललिता	३.३३.२१
पिबन्नप: स	१.१२.३६
पिशाचा:	२.७.३९५
पिशाचान्	२.१४.११३
पिशाचानां	२.७.४११
पिशाचा विनि	२.७.४०६
पिशाचा: स्कंदिन:	२.७.४००
पिशाचै: सह	२.६०.२८
पिशिताशिषु	२.६८.४४
पिहिता ललिता	३.३६.४०
पीडापर	२.७.१३५
पीतद्रव्येण	३.४१.५३
पीतं च	१.२३.३९
पीतवर्णा	३.२३.३४
पीतवर्णै:	३.४१.१३
पीतश्च	१.१५.२०
पीत्वा जलं	२.३४.२४
पीत्वातिरामं	२.४०.३३
पीत्वार्द्धमासं	१.२८.२७
पीनवृत्ता	१.५.१४
पीयतेऽसौ	१.१०.७५
पीलव: काक	३.३१.५८
पीवर्यां वेद	१.११.८
पुंस: सन्नि	२.१३.६८
पुंसां ताप	२.५२.२३
पुंस्कोकिल	३.३०.६९
पुच्छदेशे तु	३.९.५९
पुटाकारौ करौ	३.४२.७
पुंडरीका पयोदा	१.१८.७०
पुंडरीकाऽज	२.७.८
पुंडरीकात्	१.१९.३९
पुंडरीके	२.१३.५६
पुंड्रकेतुं	३.२५.९७
पुंड्रश्च	२.७१.१८६
पुंड्रेक्षुचाप	३.४०.१२५
पुण्यश्लोक	२.३६.४१
पुण्यस्यार्द्ध	३.७.६१
पुण्यं सनत्	२.१३.६६
पुण्या पुष्करिणी	२.१३.९६
पुण्यामाख्यात	१.१.३६
पुण्यायां	२.१३.८१
पुण्यो हि	२.१३.४
पुत्रं कनक	१.११.३५
पुत्रं शंखपदं	२.८.१९
पुत्रगोत्रकरौ	२.८.२८
पुत्रत्वं	२.६६.३५
पुत्रत्वे	२.१.१०
पुत्रं त्रिलोक	२.५.५३
पुत्रदार	२.१७.२
पुत्रं नाम्ना	२.८.१८
पुत्र: कीर्ति	२.६४.१२
पुत्र: सर्वगुणो	२.१.११५
पुत्र: सुकन्या	२.६१.१९
पुत्रमप्रतिमं	२.१.११७
पुत्रमध्याप	१.३५.३१
पुत्रमित्र	३.१३.३५

पुत्रमिन्द्रवधे	२.५.५०
पुत्रवत्यौ	२.५१.२७
पुत्रश्च	१.१२.४१
पुत्रस्तु	२.७०.२६
पुत्राः पितृत्व	२.९.२६
पुत्राणां	२.६३.६२
पुत्रानुत्पाद	२.७४.२७
पुत्रान् धर्मार्थ	२.७४.६९
पुत्रान् पंच	२.१०.८१
पुत्रान् सर्वान्	२.५२.३८
पुत्रान् हिरण्य	२.६७.४७
पुत्रा मणिवर	२.७.१३१
पुत्रार्थमागता	२.६७.४८
पुत्रार्थे साधया	२.६६.३८
पुत्रावाहूय	२.७.५८
पुत्रास्तस्य	२.४०.२२; ४५.१०
पुत्रे नास्ति	२.६६.५५
पुत्रैरध्यापिता	३.२.१७६
पुत्रैस्तस्य	२.५६.३
पुत्रैः सवीति	२.४७.६८
पुत्रो भवि	२.५१.२८
पुत्रो भीमरथ	२.६७.२६
पुत्रो योऽस्य	२.६१.१२
पुत्रौ रामस्य	२.७१.१६६
पुनः कैलास	३.३०.९७
पुनः पतति	३.१.१७२
पुनः पप्रच्छ	२.३४.४३
पुनः पुनः	३.२९.८
पुनः पुनरथा	२.६७.४९
पुनः पुनश्च	२.५७.३८
पुनः पुनस्तप्य	३.३०.८८
पुनः प्रजास्तु	१.२९.६१
पुनः प्रवर्तितः	२.१.११
पुनः प्रवृत्तो	२.४०.३८
पुनः शुद्धोदकैः	२.४३.३१
पुनः सत्यवती	२.६६.५२
पुनः सर्गे	१.५.१२९
पुनः स सिंह	३.२४.८४
पुनः सिंहासनं	३.१०.२५
पुनः सृजति	१.५.९०
पुनः स्वायंभुवो	१.२९.६२
पुनरन्यत्	३.४०.५७
पुनरन्यं महा	३.४०.४६
पुनराह यमो	३.७.५७
पुनरुक्त	१.३६.२५; ३.१.३७
पुनरुक्ति	२.७४.२४८; २७५
पुनरेव तदग्रे	३.१२.६१
पुनरेव महा	२.८.२७
पुनर्गत्वा दंड	३.२८.८०
पुनर्गिरिवरं	३.४४.९०
पुनर्गृहीत्वा	३.१०.७४
पुनर्द्वारवतीं	२.७१.४८; ९१
पुनर्नत्वा	३.३१.१४
पुनर्भूतल	३.४४.१६
पुनर्महर्षयः	१.३६.१४६
पुनश्च तेजसा	१.३५.१२८
पुनश्च त्रिविधं	१.३५.५९
पुनस्तेनैव	२.३७.९
पुनीह्यात्म	२.३०.६४
पुन्नागा नाग	३.३१.५७
पुरग्राम	२.४७.५३
पुरं बलेः	१.२०.४३
पुरस्ताद्ब्रह्म	३.२.२३३
पुरस्य	३.२२.२६
पुरा कांचीपुरे	३.७.१०
पुरा कृतयुगे	१.२५.१५; २७.६
पुराकृति	१.३३.४८
पुराणं लोक	१.१.८
पुराणज्ञाः	१.३.४५
पुराणामृतकं	२.७.२९७
पुराणि हित्वा	२.७३.१२०
पुरान्तद्व्यणुका	३.३.३
पुरातिक्रान्त	१.३३.५४
पुरा त्रयं	२.३८.४
पुरा दाक्षायणीं	३.११.२
पुरा देवासुरे	२.४२.३८
पुराभगवती	३.६.५३
पुरा भंडासुरो	३.१०.७९
पुराभुज	२.६९.२९
पुराभूद्युवना	२.६.५९
पुरामरपुरा	३.६.११
पुरा महेश्वरं	२.६०.२३
पुरा समाप्य	२.४७.५६
पुरा हि चंडिका	३.२१.५७
पुरी कांचीपुरी	२.४०.८५
पुरीं पुरोधसा	३.९.११
पुरीं प्रतिगते	२.३०.५
पुरुं जज्ञेऽथ	२.६.२५
पुरुकुत्सश्च	१.३२.१०८
पुरुषं	३.३.९६
पुरुषः	२.७१.२३८
पुरुषत्वाच्च	१.३२.८४
पुरुषाः	२.७१.१६
पुरुषान्य	१.५.११८
पुरुषो	१.३.२१
पुरूरवस	१.१.८९
पुरुरवो	२.२.३१
पुरैवोदयतः	३.१२.४२
पुरैश्च विविधा	२.७.१९६
पुरैश्च विविधै	१.५.९९

पुरोद्यानं ३.४४.१००
पुरोहिताभि ३.७.३७
पुलस्त्यं च १.९.२४
पुलस्त्य: ३.२.४८
पुलस्त्योऽत्रि: १.९.५४
पुलहस्यात्मज: २.७.४४५
पुलिन्दा विन्ध्य १.१६.५८
पुलोमा कालिमा २.६.२४
पुलोम्नश्चैव २.१.७५
पुष्करं सप्तमं १.१९.१०८
पुष्करा नाम १.२२.४२
पुष्कराक्षोऽपि २.४०.९
पुष्कराधिपतिं १.१४.१४
पुष्करांश्च १.१८.४५
पुष्करे तु २.३५.४१
पुष्करेष्वक्षयं २.१३.४०
पुष्कलावर्तक ३.२४.४६
पुष्कलावर्तका ३.२८.६३
पुष्टानां पति ३.३४.९
पुष्टि: प्रत्यक्ष १.७.१४१
पुष्टिर्ऋद्धि: ३.३५.४९
पुष्टिं प्रजास्तथा २.१०.१०४
पुष्टिं प्रजां २.२०.७
पुष्पदन्तो २.७.३३७
पुष्पमित्रस्तु २.७४.१५०
पुष्पमूल २.१५.५९
पुष्पराग ३.३३.१०
पुष्पारागादि ३.३३.५
पुष्पवृष्टिं ३.३०.५३
पुष्पस्तस्य २.६३.२०९
पुष्पसिंह ३.३२.२२
पुष्पाणां च २.१२.३७
पुष्पाणि २.११.७१; ३.४३.२२
पुष्यं–द्र. पुष्प
पूजनं चैव २.१२.२५
पूजयामास २.२२.७१; २६.४६
पूजयित्वा तु २.१६.२४
पूजयित्वा शिवं ३.७.४९
पूजयेत २.१२.२
पूजयेद्यज २.११.७३
पूजयेद्विन्ध्य ३.४१.६३
पूजाकोटि ३.४३.५२
पूजात्रैका ३.४१.३०
पूजां विधाय ३.२७.४०
पूजिता दु:ख ३.४१.२०
पूतना नाम २.७.१६१
पूतो भवति २.१३.१२७
पूरयित्री ३.५.१०
पूर्णं मत्वा २.६८.७३
पूर्णं वर्ष २.७४.१२२
पूर्णं शत ३.२.१३०
पूर्णब्रह्म २.३३.२३
पूर्णब्रह्मे ३.४९.९७
पूर्णापूर्णामृता ३.३५.९३
पूर्णामावास्य १.२८.३६
पूर्णायामे २.१९.१४
पूर्णे काव्यस्तदा २.७३.१९
पूर्णेन्दो: पूर्ण १.२८.४३
पूर्णे युग १.४.३४
पूर्णे व्रते २.७०.१३
पूर्णे शत १.२१.६५
पूर्णोदरी च ३.४४.५५
पूर्यमाण: १.२.४३
पूर्यमाणा १.२१.२४
पूर्यमाणे २.५३.५४
पूर्वं कृतयुगं १.२९.२४
पूर्वं त्रैलोक्य १.२६.२
पूर्वं निवेदयेत् २.१२.२६
पूर्वं पूर्वे ३.२.५६
पूर्वं सप्तर्षय: २.१.१४
पूर्वं स्वायंभुवे १.३०.६
पूर्वं हिमवता ३.३१.९७
पूर्वकक्षांतरे ३.३४.७४
पूर्वजन्मनि १.३१.८६; २.७३.१११
पूर्वदेवेषु १.३५.१९६
पूर्वदेहाधिक ३.३०.४६
पूर्वप्रौष्ठपदे २.१८.१९
पूर्वमन्वन्तराणां १.३५.२०४
पूर्वमन्वन्तरे १.३५.१८९
पूर्वमाडीवके २.६३.२६
पूर्वमेवाह २.५०.५५
पूर्वमण्डं तु २.७.२७८
पूर्ववत् स तु ३.४.१०
पूर्ववत् संप्र १.३५.१८६
पूर्ववद् गोपुर ३.३४.५५; ३५.३
पूर्ववन्निर्ममे १.७.१७
पूर्वसंध्या २.५३.३०
पूर्वस्यां दिशि २.७१.१२६
पूर्वाचार्यमतं २.६२.१
पूर्वादिदिश ३.३६.६२
पूर्वाद्यष्टसु ३.३३.५४
पूर्वापर १.२४.१०९
पूर्वाम्नायमयं ३.३६.४१
पूर्वाह्णे १.२१.४७
पूर्वेण वदनेनं १.२६.४०
पूर्वे वंश २.६३.१७१
पूर्वेषां क्षेम २.७.५१
पूर्वै: पूर्वगत १.३२.४१
पूर्वोक्तमर्ध्य ३.३६.३२

पूर्वोक्तलक्षणै: ३.३६.१०
पूर्वोक्त शृङ्ग ३.३१.३०
पूर्वोक्तस्य तु ३.३१.४१
पूर्वोक्ता या १.७.१९१
पृथक्तास्तु १.७.९
पृथङ्माता २.११.६१
पृथाजज्ञे २.७१.१५३
पृथिवी चान्त ३.२.११
पृथिवीविषयं २.३.३४
पृथिवीसंभवै: १.२३.८२
पृथिव्यम्ब्वग्नि १.१९.१७५
पृथिव्यादि १.२८.२
पृथिव्याद्यास्तु १.१९.१८४
पृथिव्या मण्डलं १.२१.२५
पृथिव्यै २.७२.१९१
पृथुना १.३७.४
पृथुमानाभि ३.२२.६२
पृथुरेव १.३७.७; ११
पृथु: श्रवा: पृथु २.७०.२२
पृथुश्रवास्तथा ३.१.६५
पृथुस्तस्मात् १.३६.१४७
पृथोश्चापि १.१४.६८
पृथो: सुतायां २.८.९८
पृथ्वी दुग्धा १.७.१५०
पृथ्वीपवन २.३२.३१
पृथ्वी रसवती १.७.४२
पृथ्व्यादयो १.१९.१८२
पृश्निमेधा १.३६.५९
पृष्टश्च २.२५.८५
पृष्टेन १.१.३७
पृष्ठत: ३.२५.१६
पेषयित्वाञ्जनं २.११.५४
पैशाचेन २.७.८३
पैष्टिकं ३.७.६४
पौन:पुन्येन ३.१२.६२
पौरजान २.५५.२३
पौरवाणां २.६८.२०
पौरवी २.७१.१६१
पौराणां २.६३.१६५
पौरुकुत्स्यं २.६६.३६
पौरुषं कर्म १.८.६३
पौरुषेयसुता: २.७.९३
पौर्णमासी १.२८.४१
पौर्णमास्यां १.२३.६३
पौलस्त्यश्चैव १.३६.१८
पौलस्त्या २.८.६२
पौलहश्चरक १.३६.४८
पौलहो ३.१.८०
पौलोम्य २.१.९१
पौष्यंजिश्च १.३५.५५
प्रकटित २.४३.४
प्रकाशयामास ३.२६.१०७
प्रकाशश्चा १.२१.१०७
प्रकाशा १.५.४४
प्रकाश्यमानं २.५३.१९
प्रकाश्यो २.७१.१९८
प्रकृति: २.४२.४७
प्रकृतिभ्य: १.१५.८
प्रकृतिविकृति २.४३.३
प्रकृतिस्थं १.२७.७५
प्रकृतौ ३.२.३१०
प्रकृष्टं २.१०.३४
प्रकृष्टदो ३.२०.३६
प्रक्रिया कल्प १.३१.२४
प्रक्रिया प्रथम: ३.४.४३
प्रक्षोभं परमं २.५७.४८
प्रक्षोभं भृश २.५७.६३
प्रखतास्त्रिषु २.१२.४
प्रख्यापयित्वा १.६.३९
प्रगृहीतायुधं: २.७३.१०६
प्रचण्डसिंह ३.२७.९९
प्रचण्डेन ३.२२.६८
प्रचलद्द्रोणि ३.२२.९५
प्रचेताश्चैव १.३६.१३
प्रचेलु: प्रबल ३.२२.१९
प्रचेलु: शक्तय: ३.१७.२५
प्रच्छाद्यति ३.१.१७७
प्रजग्मु: २.५७.६२
प्रजा: कर्म १.२५.५१
प्रजा: सृजेति १.९.६८
प्रजानां पतय: १.३६.८४; ३.२.३४
प्रजानां पृथिवी १.३६.१८३
प्रजानां रंजना १.२९.६४
प्रजापतय २.१.४८
प्रजापति १.२४.५१; २.७.२८६; ३००; २०.२
प्रजापते: १.३६.१०३
प्रजापतेर्गवां २.११.२८
प्रजापतेश्च १.१३.८५
प्रजाभि: ३.१.३२
प्रजाभिर्देवता १.१३.१०२
प्रजार्थं १.३५.१९०
प्रजावानेति १.१०.८७; २.६३.२१५
प्रजाविवर्द्ध २.२.२४
प्रजाश्च सर्व २.५०.३
प्रजासर्गं १.३६.७
प्रजासु चानि १.३५.१८७
प्रजासु भ्रूण १.३१.७०
प्रजास्तमन्व २.५५.२४

प्रजा ह्युप २.७४.८९
प्रजेशदेवर्षि १.२५.२१४
प्रजैषिणस्ते १.२१.१६८
प्रज्ञां चैव यश: २.१२.३३
प्रज्ञासंधिश्च १.३.१८
प्रणम्य दंड ३.२८.६०
प्रणम्य दण्डवत् ३.४०.१३१
प्रणम्य मुनि ३.१२.३६
प्रणम्य सा ३.६.१७
प्रणम्यैव २.७२.११७
प्रणवाव १.३५.१३०
प्रणश्यति १.७.७३
प्रणष्टे ३.३.८
प्रणाम २.४९.४१
प्रणामश्चेति ३.४३.१४
प्रणिपत्य स च ३.२५.७७
प्रणिपत्य यथा २.४२.२३
प्रतर्दनस्य २.६७.६९
प्रतर्दना: १.३६.२७
प्रतल्कान्यो १.१२.२३
प्रतापविषमै २.२२.४२
प्रतिगृह्याप्सरो ३.१५.३३
प्रतिज्ञा दुर्लभा २.३१.२९
प्रतिद्वन्द्विबलार्थं ३.११.३५
प्रतिपक्षसुत २.६८.८
प्रतिपच्छुक्ल १.८.५२
प्रतिपत्कृष्ण १.२८.३९
प्रतिपत् प्रति १.२८.६२
प्रतिपत्स्यन्ति २.४.१५
प्रतिबभ्रु ३.२३.८०
प्रतिभाति २.७२.१६०
प्रतिलभ्य २.९.६२
प्रतिलोके ३.२.७
प्रतिलोमेन ३.४४.५
प्रतिशापश्च १.१.६४
प्रतिषेधोपदेशौ १.३३.४६
प्रतिष्ठां ३.६०.२२
प्रतिष्ठितायां १.३०.८
प्रतिस्रोतात्म १.९.३१
प्रतिहत्य २.२६.२०
प्रतिहर्तेति १.२४.६६
प्रतीचीने ३.२२.२४
प्रतीच्यां १.११.४३
प्रत्तानामनु २.५९.८
प्रत्यक्षं दृश्यते २.१३.९२
प्रत्यक्षमर्चिता २.१७.२२
प्रत्यक्षाभि १.३३.२६
प्रत्यवोचन्पुन: १.२.१
प्रत्यहं चरते १.२१.८७
प्रत्यहं तुलसी ३.४१.८
प्रत्यागते १.६.८
प्रत्यादेशो २.१३.९०
प्रत्याहारं ३.३.१
प्रत्याहार: ३.१३.१५
प्रत्याहारे ३.२.२९३
प्रत्याहारेण ३.२.२१४
प्रत्याहारै: १.६.३६
प्रत्याहते १.३७.३०
प्रत्युज्जगाम २.४९.४०
प्रत्युवाच ततो १.२७.४७; ३६.१९३
प्रत्युवाच तदा १.२६.८
प्रत्युवाच महा १.२५.५९; २.५.५१
प्रत्यूषस्य २.३.२७
प्रत्येकं योध ३.२७.९३
प्रत्येकं वीर २.२६.१३
प्रथमं पर्व ३.२०.२
प्रथमं प्रसृतै: ३.२२.५७
प्रथमं मेरु ३.३१.१६
प्रथम: सर्व ३.१९.२९
प्रथमा मुख्य ३.३७.३६
प्रथमे मेरु ३.१.५५
प्रथमे युद्ध ३.२५.३५
प्रथमो नार २.७२.७३
प्रथितं जाह्नवी २.५६.४८
प्रथिता ब्रह्मण: १.१३.९०
प्रददौ तुरगं १.५४.५६
प्रददौ पादयो २.३.५६
प्रदोषा च ३.३२.१२
प्रद्युम्नश्च ३.२९.१२८
प्रधानगुण १.४.१२
प्रधानं प्रकृतिं १.३.९
प्रधानमात्म १.३५.१३४
प्रधानसम १.५.३१
प्रध्याय हि २.१.११८
प्रनष्टे रूप ३.३.१४
प्रनष्टेषु १.२६.३
प्रपातविषमै १.१५.३०
प्रभवश्च १.१३.१२६; २.१.९०
प्रभामालि ३.४४.१४८
प्रभाव: २.४७.६३
प्रभावरूप १.१३.१००
प्रभावेण २.६८.५५
प्रभासस्य २.३.२९
प्रभा हि १.२१.५६
प्रभुनियत २.४३.७
प्रभुर्मुख १.२०.४९
प्रभूतराग ३.३५.६७
प्रभूतविरह ३.३०.८६
प्रभूताध: ३.४४.१८

प्रभृशाश्चैव	३.३४.३६	प्रशंसा	१.१.९४; ३३.४४	प्रहरांते	३.१.१३१
प्रभ्रश्यन्ते	३.१.१२१	प्रशस्ता	२.१०.११०	प्रहारैः	२.२४.८२
प्रमतेश्च	१.१.९९	प्रशान्तवाते	१.६.५९	प्रहेतितनयः	२.७.९१
प्रमथानां	२.४२.३३	प्रशान्तस्तु	२.७०.३१	प्रह्वाञ्जलि	१.२६.३१
प्रमाणं मण्डला	१.२१.८४	प्रशान्तोऽग्निः	१.१२.२९	प्रह्लादस्तं	२.७३.४४
प्रमाणं योजना	१.१.६९; ७६	प्रशपाम्यति	३.३.१७	प्रह्लादस्य	२.७२.९४;
प्रमाणं वै	२.७४.२२८	प्रश्नमेकं	१.३४.६४		७३.७१
प्रमादस्तत्र	१.३६.१६२	प्रश्नानुज्ञा	१.३३.४३	प्रह्लादो	२.७२.७९
प्रययौ रथ	२.५०.३३	प्रसन्नः	२.३१.३९	प्राकाम्य	३.१९.५
प्रययौ स्व	२.५६.३७	प्रसन्नचेतसं	२.५८.१५	प्राकार	३.९.४०
प्रयांति	२.५०.२३	प्रसन्नोऽस्मान्	२.५४.३३	प्राकारस्य	३.२७.४१
प्रयुज्यते	१.३४.२४	प्रसर्पंति	१.२३.८५	प्राकाश्यं	१.२१.५८
प्रयोगदोष	३.४१.६६	प्रसह्य गां	२.२९.२	प्राकृतं देवि	१.३.२४
प्रयोगे	१.१.१५५	प्रसह्य हरणे	२.२८.५७	प्राकृता	१.५.५९
प्रवक्तुमुप	२.४१.३७	प्रसादतो	२.७४.५७	प्राकृते	१.५.११७;
प्रवर्तन्ते	१.३२.७३	प्रसादभूमिः	३.४३.८०		२.६२.३३
प्रवर्तमाने	३.२८.४३	प्रसादयामास	२.६६.५०	प्रागप्येते	२.८.७२
प्रवत्रयति	१.३२.६६	प्रसादयिष्ये	२.५०.३०	प्रागाधायैषु	३.४४.१७
प्रवर्तिते	१.६.४०	प्रसाद्य तु	२.७१.८५	प्रागायताः	१.१५.१४
प्रविकीर्ण	२.२१.४५	प्रसीद जय	२.५७.५९	प्रागुक्तमेव	३.२०.६२
प्रविवेश	२.२१.५१;	प्रसीद नो	२.५२.२१	प्राग्दक्षिणा	२.११.८०;
	७१.८०	प्रसीद विप्र	२.५४.३१		१३.१३
प्रविसन्ति	१.३५.१७०	प्रसीद विश्वे	३.१३.२८	प्राग्दक्षिणां	२.१३.१३१
प्रविश्य तत्र	२.४४.१९	प्रसीदन्ति	१.७.१२१	प्राग्देशजाताः	३.१६.१८
प्रविश्यच तु	३.४४.१	प्रसूतान्ये	२.५९.१०	प्राचीनबर्हिषं	१.३७.२४
प्रविष्टमपि	३.२४.९४	प्रसूताः सप्त	१.१८.४३	प्राचेतसस्य	३.१.२७
प्रविष्टो	२.७३.९८	प्रसूत्यामपि	१.१.५९	प्राच्यान्	१.३१.८२
प्रवृत्तपूर्वौ	३.४.२३	प्रसूनजल	२.२१.४२	प्रांजलिः	२.१२.४६
प्रवृत्तयश्च	१.१.१४८	प्रसूनलाजा	२.२७.२६	प्रांजलिर्वज्र	२.५.७३
प्रवृत्तिकाले	३.४.२४	प्रसूनांजलि	२.४३.२३	प्राजापत्य	२.३.४०
प्रवृत्तिमकरोत्	३.८.२६	प्रसूयध्वं	२.४.१०	प्राजापत्या	२.३.८८; १०३;
प्रवृत्ते घोर	३.२३.२८	प्रसेनमवधीत्	२.७१.४३		१७.३
प्रवृत्त्यैव	३.८.२७	प्रसेनश्च	२.७१.२१	प्राणजांस्तु	१.५.८४
प्रशमय्य	३.२५.८२	प्रस्थानानि	१.७.१७२	प्राणस्थानानि	३.३.६६

प्राणस्य	१.११.९
प्राणात् प्रजा	१.३७.५०
प्राणादक्षो	१.५.७४
प्राणात्रि	२.३९.५१
प्राणानां	३.१.६८
प्राणान् संधार	३.२९.३१
प्राणापान	१.१३.१३०; २.३.१९
प्राणापानौ	२.७२.५२; ३.४३.७७
प्राणांस्त्यक्त्वा	२.३५.३२
प्रात: पञ्च	३.४०.७१
प्रातर्गृ	२.१४.७०
प्रातस्तत:	१.२१.११९
प्रातिमेधी	१.३३.१९
प्रादाच्च	२.६३.१४८
प्रादुरासीत्	३.३९.१८
प्रादुर्बभूवु	१.७.८३
प्रादुर्भावं	२.७३.७३
प्रादुर्भावो	१.१.१४९
प्रादुर्भूतं	१.२५.५५
प्रादुर्भूता	१.७.१२८; २.६.६२; ६३
प्राधानिकी	३.४.४६
प्राधान्यत:	२.७४.१०९
प्रापणीयं	३.३१.९५
प्रापद्यंत	२.७२.१२९
प्राप्तहर्षो	३.४०.११४
प्राप्त: पर्याय	२.७३.५०
प्राप्ता: स्म	२.४७.२६
प्राप्ते त्रेता	१.३५.१०८
प्राप्ते प्राप्ते	२.३.१०९
प्राप्तो दास्यसि	२.५४.३५
प्राप्तौषधि	१.९.३
प्राप्नुयाद्	२.३.१३१
प्राप्नुवंति	३.१.१४१
प्राप्नोति	२.१६.३४
प्राप्नोत्यत्रं	१.२८.९०
प्राप्यावभृथ	२.६५.२७
प्रायशो	२.१३.५२
प्रायश्चित्तं	२.९.१९; ४७.२७
प्रायश्चित्तेष्व	१.१२.४२
प्रायादुत्तंक	२.६३.५०
प्रायेणानु	२.७.१४४; ४३६
प्रायोऽद्य	२.२३.६५
प्रायोपवेशम्	१.३५.३४
प्रारम्भन्ते	१.३५.१९३
प्रार्थये त्वां	२.२४.१४
प्रार्थयन्ति	१.२१.१११
प्रार्थितो	३.९.१२
प्रावृषेण्यप	३.२०.५
प्रांशवो	२.७.३४२
प्राशितं	२.७४.८५
प्रासादा	२.२८.३५
प्राह नाधि	२.२१.७३
प्राहिणोदव	२.७४.७६
प्रियव्रतस्य	१.१.६६; १४.६
प्रियव्रतात्	१.१४.७
प्रियव्रतोत्तान	१.९.४१; २९.६३
प्रियव्रतोऽभ्य	१.१४.१०
प्रीणाति	१.२३.३८
प्रीताऽहं	२.५.६२
प्रीतिताप	१.३२.५८
प्रीतिप्रसन्न	२.२७.४; २४
प्रीतिमानभवद्	१.५.४६
प्रीतियुक्तो	२.६८.६४
प्रीतेन	२.७३.५६
प्रीतोऽस्मि	२.२४.३३
प्रीतोऽहं	१.२६.५९
प्रीत्या प्रयान्ति	२.५०.२४
प्रीत्याह	२.४९.४९
प्रीत्यां पुलस्त्य	१.११.२६
प्रीयन्ते पितरो	२.११.२२
प्रेत्य च	२.१३.२
प्रेषयित्वा	३.६.२२
प्रोक्त: सनत्	२.१९.५३
प्रोक्षणं	२.१४.६७
प्रोक्ष्य भूमि	२.१२.४४
प्रोत्साहने	३.२२.९२
प्रोद्गतैश्च	३.२८.८
प्रोवाच तं	१.१०.२१
प्रोवाच दीर्घ	२.७४.६१
प्रोवाच मति	२.७२.१५१
प्रोवाच वचनं	२.६०.२५
प्रोवाच संहिता	१.३५.३
प्रोवाचाखिल	२.३४.३३
प्रोवाचाथ	१.३५.३३
प्लक्षद्वीपं	१.१४.३५; १९.१
प्लक्षद्वीप:	१.१९.२८
प्लक्षद्वीपस्य	१.१९.३४
प्लक्षद्वीपादयो	१.१९.७८
प्लक्षद्वीपादिषु	१.१९.२५
प्लक्षद्वीपे तु	१.१९.१३८
प्लक्षवृक्षेण	१.१९.४८
प्लक्षो नाम	१.१९.३०
प्लवंतो भांति	२.३८.२५
प्लावयन्तो	३.१.१७०
प्लुतं विप्रेषु	२.१६.६
फ	
फणिशीर्ष	३.२२.१२
फलपुष्पा	२.५.६०
फलमल्प	२.४९.५६

फलमूल २.११.४८
फलशुक्ति ३.१६.२१
फल्गुपात्रेषु २.११.३८
फालं वह ३.२.९९
फाल्गुनीषु २.१८.६
फूत्कारी ३.२०.६०
फेत्कारैश्च ३.२७.८९

ब

बका नाम २.६.३६
बकुलप्रसवा ३.२८.७३
बद्धपद्मासनो २.२४.१६
बद्ध्वा तु ३.४१.४३
बद्धांजलि ३.४०.२६
बधिरीकृत २.४९.१९
बध्नन्तो भोग ३.२३.३९
बन्दिनो मागधा ३.२६.३२
बन्धुपालित २.७४.१४७
बन्धूनां चैव ३.६.४५
बभूव च्छत्र २.५७.६०
बभूव तस्मिन् १.१४.६३
बभूव नृप २.५०.१५
बभूव पुष्प २.३९.३३
बभूव वसुधा २.६३.१७२
बभूव हैहयै: २.४८.१४
बभूवुरथ ३.१२.१२
बभूवुर्धार्मिका: ३.६३.३२
बभूवु: शत २.७.३०६
बभ्रून् वै २.७.३६२
बर्हिकेतु: २.६३.१४७
बलबन्धु: १.३६.६४
बलवर्णकरी १.७.५१
बलवन्तोऽपि ३.९.५८
बलक्षुततपो १.३७.२५
बलस्य तेज: १.११.४
बलाकागर्भ १.२२.३६
बलादिच्छसि २.२९.३
बलाहक ३.२४.४
बलाहक: प्रथमत: ३.२४.९
बलाहकमुखा: ३.२४.७
बलाहकाद्यास्ते ३.२४.८१
बलाहको ३.२४.३९; ४३
बलिं च २.७३.८३
बलिर्भार्यां २.७४.७७
बले: पुत्राश्च २.५.४४
बलेन तपसा १.२९.८३
बले राज्याधि २.७२.९१
बलेश्चाप्रतिमत्त्वं २.७४.३१
बलेस्तु ब्रह्मणा २.७४.२९
बलैरशनि २.७.२५९
बल्बज: २.११.११५
बहवो मुनय १.२७.७
बहुकुप्यकृतं २.१८.१४
बहुत्वाच्चैव २.७.१४९
बहुत्वान्नाम २.७.३२
बहुना किमिहो ३.३७.८८
बहुनेत्रै: १.२५.३८
बहुपुत्र: २.१.५४
बहुपुष्प १.१९.७०
बहु मेने ३.२३.९५
बहुयोजन १.२०.३४
बहुरक्त ३.२३.२५
बहुरूपाय २.७२.१७४
बहुवर्ण ३.२८.७४
बहुशीर्षान् २.७.३६३
बहुशो २.५१.६६
बहुहव्येन्धने २.११.९७; ९९
बहूनि २.७.१०३
बहून् वर्ष २.७.२२३; २७२; १०.३०
बह्वपत्ये २.६.२६
बह्वयस्तत्रो ३.३५.१३
बह्वर्थश्च १.२४.७७
बाणवर्षं २.४०.२५
बाणवर्षेण २.४०.२६
बाणस्य चेन्द्र २.५.४५
बाणादिदिव्या ३.३०.२६
बाधते सकलां ३.११.१७
बाधितुं भुवि २.४७.३१
बार्हस्पत्यं १.१.१३५
बार्हस्पत्ये २.१५.३२
बालरोग २.३६.४७
बालसूर्याभि १.२०.५१
बालाग्राण्यष्ट ३.२.१२१
बाला चैवात्र ३.३६.२३
बालादास्ते २.७.३९८
बालानां २.७.१५९
बालारुणतनु: ३.२६.७५
बालार्कपाटला ३.१०.५७
बालिशा २.२.२१
बाष्कलस्य २.५.३९
बाल्कलि: १.३३.४
बाष्कलिस्तु १.३५.५
बाहुभ्यामेव २.७१.४७
बाहुभ्यां २.४१.५३; ३.४०.२७
बाहोर्व्यसनिन २.६३.१२६
बाह्यकायां २.७१.६
बाह्यतो १.२१.२६
बाह्यमाभ्यन्तरं १.२३.४८
बाह्लीका १.१६.४६; २८.९३
बिन्दुपीठस्य ३.३७.९३

बिन्दुपीठेश	३.३६.४७
बिन्दुस्थिते	३.३०.२८
बिभ्रति हेम	४३.३९.११
बिभ्रत्योऽदभ्र	३.१९.२७
बिम्बस्य तस्य	३.३९.९५
बिम्बीं च	३.८.४२
बिल्वजम्ब्वाम्र	२.७.४२९
बिल्वोदुम्बर	२.११.१०५
बिसांकुराणि	३.१९.२०; ३६.७१
बीजाकर्ष	२.७.३८५
बीभत्सं	२.६५.४४
बुध इत्यकरोत्	२.६५.४४
बुधात्सा	२.६०.१७
बुधेन सम	१.२४.१०७
बुधेनोत्तर	२.६०.१६
बुधो मनो	१.२४.९०
बुद्धाय चैव	२.७२.१७७
बुद्धिं चक्रे	२.७३.२०
बुद्धिं मानसि	२.१३.१३९
बुद्धितः ससृजे	१.९.९१
बुद्धिर्मनश्च	३.३.२२
बुद्धिर्लज्जा	१.९.५०
बुद्धौ ज्ञानं	१.२६.३८
बुद्ध्यते पुरुष	१.३.२३
बुद्ध्यात्मना	२.४.१६
बुद्ध्यान्विष्य	१.७.११९
बुद्ध्वाऽस्य	१.१८.१७
बुद्ध्वा तदन्तरं	२.७३.१६
बुभुजे विषयान्	२.४९.५९
बृंहितश्रवणा	२.२२.१९
बृहती पुरू	२.७१.२५५
बृहदश्व	२.६३.२९
बृहदश्वं	२.६३.३४
बृहदश्वो	२.६३.३३
बृहदाद्यानि	३.१.१०८
बृहदुक्थस्य	२.६४.९
बृहद्बलः	३.३९.२
बृहस्पति	२.९.३९
बृहस्पतिं तु	२.८.४
बृहस्पतिरिदं	२.९.४५
बृहस्पतिसमो	३.३९.११३
बृहस्पतिस्तु	२.७३.१५
बृहस्पतेः	२.१.१०८
बृहस्पतेः स	२.६५.२९
बृहस्पतेस्तु	२.३.२८
बैल्वे लक्ष्मीं	२.११.३९
बोधरूपं गुरुं	३.४३.२८
बोधिताऽपि	२.७३.३६
बोध्यां तु	१.३४.२७
ब्रह्मकार्य	३.२.७७
ब्रह्मक्षत्रमयं	२.१.९८
ब्रह्मक्षत्रविशां	३.६.४०; ८.४७
ब्रह्मक्षत्रिय	२.३१.३२; ३.६.३८
ब्रह्मक्षत्रेषु	२.७२.५
ब्रह्मघोषैः	३.२.२४२
ब्रह्मघ्नश्च	२.१४.४३
ब्रह्मघ्नौ तौ	२.५.३५
ब्रह्म च	२.१.६८
ब्रह्मचर्यं च	२.१३.९४
ब्रह्मचर्यं जपो	१.३२.४६
ब्रह्मचर्यं तथा	१.३०.३८
ब्रह्मचारी च	२.७.२२८
ब्रह्मचारी शत	२.६.३९
ब्रह्मज्योतिः	१.१२.२५
ब्रह्मज्ञस्य	३.७.४
ब्रह्मणः प्रति	१.१.१४२
ब्रह्मणः सृजतः	१.१३.१
ब्रह्मणस्तदहः	१.३१.११५
ब्रह्मणस्तु	१.८.५६
ब्रह्मणा	१.३४.१२
ब्रह्मणा तु	२.६०.४
ब्रह्मणानां तु	१.३५.१८
ब्रह्मणा निर्मितः	१.१.८२
ब्रह्मणा यज्ञ	२.२२.४९
ब्रह्मणा यत्पुरा	१.२.४७
ब्रह्मणा लोक	१.७.१८४
ब्रह्मणा वै	२.४.१
ब्रह्मणे चैव	१.२५.६६
ब्रह्मणे धर्म	१.३३.४०
ब्रह्मणो भवनं	१.२७.४१
ब्रह्मणो मानसा	१.३२.९७
ब्रह्मणो वचनं	२.३२.१
ब्रह्मणो वचनात्	१.३४.९
ब्रह्मणोंऽशौ	१.८.२९
ब्रह्मतुण्डह्रदे	२.१३.७३
ब्रह्मत्वम्	२.४७.४९
ब्रह्मत्वे	१.४.१९
ब्रह्मदण्डहताः	२.५४.२५
ब्रह्मदेव	२.१९.२४
ब्रह्मन्किमनया	२.२८.२०
ब्रह्मन्किमिदम्	२.२३.३९
ब्रह्मन्नृपति	२.२८.६६
ब्रह्मपादावधि	२.५६.५
ब्रह्मपुत्र	२.३१.१; ३४.१
ब्रह्मभूता	३.१२.६७
ब्रह्मरूपेण	३.९.६२
ब्रह्मर्षीन् वै	२.२.१७
ब्रह्मर्षे येन	२.६७.९८
ब्रह्मर्षेर्वचनात्	२.८.७९
ब्रह्मलोकः	३.२.३८; ७९

ब्रह्मलोकात् ३.३४.६८
ब्रह्मलोके ३.२.६४; ७५
ब्रह्मलोको ३.३१.३१
ब्रह्मवादी २.६६.२
ब्रह्मविक्रयिण २.१५.४८
ब्रह्मविष्णु ३.१०.८३; ३७.५०; ४०.९४
ब्रह्मवेद २.१.२६
ब्रह्मशापाभि २.६६.१०
ब्रह्मशापेन २.३.८
ब्रह्मस्वं २.२८.४०
ब्रह्महत्यां १.३५.१९; ३.२.१५५
ब्रह्महत्याभि २.२३.६३
ब्रह्महा ३.७.५०
ब्रह्मा कमल १.४.२०
ब्रह्मा चैव ३.२०.५२
ब्रह्माणं कारणं २.३.९१
ब्रह्माणं तोष २.७.२७०
ब्रह्माणं पूज २.४७.५२
ब्रह्माणं लोक १.१.३
ब्रह्माणं सर्व ३.४०.८
ब्रह्मा तान् १.७.१७१
ब्रह्मा तु १.७.२
ब्रह्मात्मजो ३.१२.४५
ब्रह्मादिदैवतैः १.२७.३३
ब्रह्मादिपिपील ३.८.२३
ब्रह्मादिभिस्ते ३.१.२५
ब्रह्मादीना ३.६.२०; ३७.३७
ब्रह्मादीनां १.२७.६५; ३.१९.१०; ३९.१२०
ब्रह्मादीनि ३.३.७५
ब्रह्माद्या: ३.२०.१३; ३१.१५
ब्रह्मापेतो १.१८.१७
ब्रह्मा बुद्धि १.४.१३
ब्रह्मार्पण ३.८.५४
ब्रह्मा वा ३.२१.७५
ब्रह्मा विष्णुश्च ३.३०.८; ३९.३०
ब्रह्मासने २.५७.६
ब्रह्मास्त्रं च २.४०.२८
ब्रह्मिन्निष्ठाग १.३२.१२०
ब्रह्मीमुख्या ३.१९.७०
ब्रह्मेशविष्णु ३.१८.८
ब्रह्मोपदेश १.१२.८
ब्रह्मोवाच २.१२.७
ब्राह्मं कृत २.१४.४६
ब्राह्मं धाम ३.९.४३
ब्राह्मं सोम्यं २.३.४८
ब्राह्मणं कल्प १.३१.१४
ब्राहमण: क्षत्रियो २.१४.३८; ३.२.२८८
ब्राह्मणप्रमुखा २.६८.७७; ८०
ब्राह्मणा: क्षत्रिया १.७.१३३; १६.१३; ४९; २.६७.५
ब्राह्मणा: शूद्र २.७४.१३९
ब्राह्मणादीं २.५०.२
ब्राह्मणाद्यैः २.५५.९
ब्राह्मणाननु १.२९.५७
ब्राह्मणानां १.७.१६२; २.३५.११
ब्राह्मणा वै २.३.५
ब्राह्मणांस्तर्प २.४७.१८
ब्राह्मणो नाव २.२८.५४
ब्राह्मणो मन १.७.२७
ब्राह्मणोऽयं २.२८.५२
ब्राह्मणो! हृदयं ३.३३.२४
ब्राह्मण्यं २.६६.७७
ब्राह्मी माहे ३.३६.५८; ४४.१११
ब्राह्मी मुखैः ३.३०.१९
ब्राह्मो नैमित्तिक: ३.१.१२९
ब्रुवंश्च २.७.५०
ब्रुवस्यात्र ३.८.५१

भ

भक्तानुकम्पी २.२३.३३; ३.२.२५८
भक्ता यज्ञ १.५.२३
भक्तिश्रद्धा ३.८.३६
भक्तिं २.२५.४४
भक्तेस्तु २.३६.३
भक्तैस्तथा १.१०.८६
भक्त्या त्व ३.३९.४५
भक्त्या निमित्तं २.७.२०३
भक्त्या परम २.११.३२; २१.८१
भक्त्या शुश्रू २.५१.२३
भक्त्या ससं २.२४.६४
भक्षयच्छशकं २.६३.१४
भक्षार्थममृतं १.२३.६६
भक्षार्थमिह २.७.७२
भक्ष्यजातं २.१६.४१
भक्ष्यभोज्य २.१६.४९
भक्ष्यमन्त्रं २.१२.४९
भक्ष्यांश्च २.१६.४५
भगवन् कीदृशं ३.५.३६
भगवन् केन २.७०.४
भागवत्त्रयस्त २.६३.४७
भगवन् भूत १.२५.४१

भगवन् मेघ	१.२५.८२
भगवन् यदि	२.६७.२२
भगवन् सर्व	३.६.२; ६.३३; ८.३८; ९.१; १२.३७
भगवन् सर्वमा	३.७.१
भगवन् सर्ववृत्तज्ञ	३.१०.३०
भगवांस्तद्वच:	३.९.२९
भगवानपि	२.५६.३२
भगीरथो	२.७४.२६६
भजते	२.७४.२६६
भजमानस्य	२.७१.३
भण्डस्य	३.२६.९७
भण्डासुर	२.३४.५७; ७३; ३७.१५
भण्डासुरं	३.२०.१०६
भण्डासुरस्य	३.१९.१६; ९४; २०.११
भण्डासुनान्	
भण्डासुरेण	३.१९.८६
भद्रबाहु:	३.३३.३२
भद्रबाहुश्च	२.७१.२५०
भद्रमस्य	२.५९.१२
भद्रशालवनं	१.१५.५८
भद्रसेनस्य	२.६७.६५; ६६; ६९.७
भद्र सेनापते	३.२४.२
भद्रसोम	१.२२.२२
भद्रं मृगुं	१.२९.८०
भद्राणीमानि	१.२९.८०
भद्रा शूद्रा	२.८.७५
भद्राश्च:	२.६३.६३
भद्रासन	३.३९.५८
भद्रे त्वं	३.३०.९१
भद्रो य:	२.७.३३१
भयभीता	२.७.३३१
भयसम्मूढ	२.२५.६४
भयाद्यथा	२.७१.२२५
भयास्त्र	३.२९.६८
भरणाच्च	१.१६.६
भरणीषु	१.२४.१३७
भरतस्यात्मजौ	२.६३.१९०
भरद्वाजस्तथा	३.१.१२
भरद्वाजेन	१.१६.४५
मर्तव्या	२.५९.४३
भर्तारं	१.९.३६; २.४५.११
भर्तु: प्रियार्थे	३.७.५२
भर्तु: समीपं	२.५९.४५
भर्तुर्वचन	२.६६.४४
भर्तुशोक	२.३०.३५
भलन्दनस्य	२.६१.४
भवत: सुकृतै:	३.२७.८
भवता रक्षणं	२.६३.६५
भवतां कथ	३.१.५
भवतां सुविधा	३.९.४९
भवतीनामयं	३.२६.२६
भवतोऽनु	२.६८.८७
भवतोर्नाम	२.४३.२२
भवत्प्रभाव	२.२५.२१
भवत्यभी	२.४७९२
भवत्यस्मा	१.२४.५२
भवत्येक	२.३.८१
भवत्यौ	२.५१.२४
भवदित्यु	१.३८.१६
भवद्भि:	३.५.१७
भविद्भस्तु	३.७.५५
भवधर्म	३.१.४१
भवनं	३.३६.३१
भवनानि	३.३३.४०
भवन्तं तु	२.४४.१६
भवन्तं मोहितं	३.१२.५०
भवन्ति पितर:	२.११.५१
भवन्ति रुचिरा	३.११.४९
भवन्तिस्तु	३.३४.१२
भवन्ति हि	२.१४.११०
भवन्तु ते	२.५२.३३
भवन्तु मम	२.५.७८
भवन्तु वशगा:	२.५.१७
भवन्त्यन्योन्य	१.१९.१८७
भवभय	२.४२.२९
भवस्य दयित:	१.१८.१९
भवस्य या	१.१०.७७
भवस्य रूप	३.२.२५१
भवताञ्छक्तश्च	१.२५.८४
भवान् रजत	२.७.१११
भवान् विशेष	१.१.३३
भवाभिशाप	२.१.१५
भवाय विश्व	२.७२.१७०
भविता भद्र	२.७४.१४५
भविता मानुषो	१.१३.६९
भविष्यच्छोभ	३.३.२१; १२.३८
भविष्यतां	१.१.१३६
भविष्यति ध्रुवं	२.६०.२६
भविष्यति मनु	२.१२.१२
भविष्यति समा	२.७४.१५३
भविष्यति सुत	२.७४.१५५
भविष्यतो	१.३५.३५
भविष्यत्यथ	२.४२.४०
भविष्यत्येव	२.१२.१०
भविष्यन्ति कुमार	२.७४.८६
भविष्यन्ति च	१.३५.१५१

भविष्यन्तीह	२.७४.२०२
भविष्यन्तु	२.५२.३२
भविष्यामि	२.५२.३१
भविष्ये तु	२.७४.२५६
भवेत्सर्व	२.७१.१०
भवेयुर्वेद	२.१.६६
भव्येति	१.३८.१८
भस्मना	१.१७.१२३
भस्मनीव	२.१९.३९
भस्मपाण्डुर	१.२७.१२१
भस्मसं	२.२५.१२
भस्मसर्वं	३.१.१७८
भस्मसाध्यं	१.२७.१०८
भस्मस्नान	१.२७.११५
भस्मीकृतं	२.२५.६२
भागीरथ्यां	२.१३.१००
भाजनं ते	३.१३.३४
भान्ति	१.८.२८
भारतस्य	१.१८.८२
भारतस्यास्य	१.१६.८
भारतैः	१.२.२९
भारद्वाजाः	२.१.१११
भारद्वाजो	१.३५.६४
भार्गवं	२.३८.११;४१.३४
भार्गवः श्रुत	२.३५.३६
भार्गवः सप्तम	३.१.९३
भार्गवात्	१.२४.१०५
भार्गवो	१.३३.१६;३८.२७
	३.१.११३
भार्या कृता	१.२७.१५
भार्या पुरो	१.२९.७६
भार्यां	३.७.४३
भार्ये	२.१.७४
भाले	३.४४.८१
भावग्राह्य	३.२.२९१;३.९९
भावयन्नेव	३.४१.२६
भावाभावौ	१.२४.५५
भाविनोऽर्थ	१.३१.१०३;
	२.६३.७९;३.२.५९
भावौ	२.७२.४७
भाव्यः पुरीष	२.७४.१६६
भाव्यः सो	२.५९.८१
भासयत्येव	१.२७.११०
भास्वरा	२.७.१६५
भिक्षां	३.४०.८३
भिक्षोर्व्रतानि	१.७.१७९
भित्त्वा	१.१८.३३
भिद्यते	३.३.८३
भिद्यमानेव	३.२६.६३
भिन्दन्	३.२२.२१
भिन्नदेहाः	१.२८.८०
भिन्नाञ्जन	२.२३.९
भिन्नैर्वर्णै	३.३८.६३
भिषग्जीवी	२.१९.३५
भीतस्तं	२.५.६९
भीतास्तस्य	२.४८.२४
भीमः शत	२.७.२३५
भीमश्चित्र	२.७.३
भुक्त्वा	३.१.११९
भुजंगश्च	१.२३.१७
भुजंगेश	३.४४.५४
भुनक्त्याक्रम्य	२.२२.६१
भुञ्जन्नसाव	१.२१.१०२
भुवनै	१.१५.४८
भुवनो	२.१.८९
भुव्यत्यजत्	३.३०.१००
भूतं त्विदं	२.६७.५१
भूतं भव	२.३५.३
भूतत्वात्ते	१.८.४०
भूतप्रेता	२.४१.२९
भूतभव्य	१.१.१०८;
	१.२५.८१;
	२.७२.१८७
भूतभव्यानि	१.२९.७९
भूतभेदाश्च	३.४.३८
भूतले यानि	३.१.१४९
भूतले विवि	२.५२.४३
भूतसम्मोहनं	१.२२.५
भूतात्मा	१.३२.९५
भूतादि	३.३.३१
भूतादिर्महता	१.३.३४
भूतादिश्च	१.१९.१६४
भूतानि च	२.४२.३४
भूतानुवादिनः	२.३.१२६
भूतान्यालोक	१.१९.१८६
भूतान्यप	१.१७.३७
भूता भवा	३.१.११२
भूतारम्भ	१.२१.१६१
भूतार्त्तव	२.२२.३०
भूतावाप्ति	२.७२.५४
भूतास्तु	२.७.४४०
भूताः सर्पाः	२.८.७१
भूतिनन्द	२.७४.१८२
भूतिर्भूमिः	३.४४.७४
भूतेन्द्रियेषु	३.३.२०
भूतैश्चोप	१.१.७२
भूत्याम्	३.१.५१
भूत्वा	१.२२.२३
भूपद्विज	३.६.४८
भूपव्याकोप	२.४८.४२
भूमण्डल	३.१६.२६
भूमावसव्यं	१.२८.८६

भूमिका	३.३१.४६
भूमिमित्र:	२.७४.१५८
भूमिराक्षसका	२.७.१५३
भूमिरापो	३.३७.५८
भूमिलेखा	१.२४.११५
भूमिशायी	२.३४.७
भूमेरध:	३.२.१५२
भूमौ कुशो	२.२०.११
भूम्यन्तरं	३.२.३९
भूय: सूत	१.२७.१
भूय एव	३.१.१३६
भूयश्च	१.२७.१०१
भूयिष्ठं	१.३१.५३
भूयोऽपि	२.४६.३३
भूयो जज्ञे	२.३.७८
भूरादिषु	३.२.५०
भूरिन्द्र	२.७१.२५९
भूलोकप्रथमा	३.२.३२
भूलोकवासिन:	३.२.४१
भूलोकसुन्दरी	३.३८.३६
भूलोकेऽस्मिन्	३.३९.९९
भूलोकोऽयं	१.३८.१२
भूषणानि	३.९.८१
भूषणै:	३.३८.२७
भू सत्तायां	१.३८.१४
भृगुर्मरीचि	१.१३.५४;३२.९६
भृगुस्तु	१.९.२२
भृगुस्त्वमिति	२.१.३६
भृगुं ख्यातिं	२.२२.२
भृगो: ख्याति:	१.११.१
भृगोरपि	१.२७.२२
भृगोराश्रम	२.६३.१२२
भृगोश्च	२.६६.५७
भृगोश्चाहं	२.३२.३७
भृगोस्तु	१.३८.४;
	२.१.८८
भृग्वंगिरा	१.५.७०;१३.१०३;
	२.१.२१
भृग्वंगिरो	१.९.१८
भृग्वत्रि	२.२३.४
भृग्वादयश्च	१.१३.८३
भृग्वादयस्तु	१.९.२६
भृग्वादयो	१.६.७०;
	३.१.१८६
भृग्वादीना	१.१.६१
भृङ्गालिनव	३.१०.५३
भृशं चानु	३.२.२६१
भृशं विलोल	२.२६.२६
भेरी	३.२४.१४
भेरुण्डा	३.१९.५८
भैरवै:	३.३२.२२
भैरवोऽपि	३.४०.७०
भोक्ता	१.३.१९
भोगिभोग	३.२३.६०
भोगेच्छया	३.७.७७
भोजनं	१.१९.१४७
भोजयामास	२.६३.१०५
भोज्यभोक्तृत्व	३.२.३०९;४.१७
भो भो मदीया	३.२६.५२
भो भो राक्षस	२.७.२५३
भो विश्व	३.३१.८
भौत्यस्यान्ते	१.१.१३७
भौमान्तरिक्ष	३.२१.२०
भौवनस्य	१.१४.७०
भ्रमतो	१.२.८;२२.७७
भ्रमन्तम्	१.२३.९४
भ्रमन्ति	१.२२.३
भ्रमन्मन्त्रा	३.४१.४९
भ्रममाण:	३.४४.४१
भ्रमरी	२.७.३९२
भ्रमिमारोप्य	२.५९.७२
भ्रष्टैश्वर्या	२.१०.६२
भ्राजते च	२.१६.३७
भ्रातर:	२.८.१०१
भ्राता कुश	२.६४.१९
भ्राता शनै	२.५९.८२
भ्रातृत्वान्	२.७१.७९
भ्रातृभ्याम्	३.१०.८२
भ्रातृणां	२.२१.६४;४६.१०
भ्रान्ताचारो	३.४४.४२
भ्रामयित्वा	२.५८.१६
भ्रुकुटीह	३.२७.८७
	म
मकराकार	३.३५.२२
मक्षिप्रच्छेद	२.६२.२१
मखशत्रु	३.२६.४८
मखेषु ये	२.१९.२५
मग्ने मण्डूष	२.५६.४६
मघवन्तश्च	१.३८.८
मङ्गले	२.३८.५१
मज्जानमथ	३.२०.१८
मञ्जुघोषा	३.३३.१९
मणिनागस्य	१.२०.३०
मणिभद्र:	३.३३.७८
मणिमन्तं	२.७.४५३
मणीनाम्	३.२१.१३
मण्डलानां	१.२१.८३
मण्डलेन	१.१५.४५
मण्डूकं	२.७.१२३
मण्डूकानां	२.७.४१८
मतंगस्य	२.१३.१०६
मतंगो	३.३१.९०

मति: परि	१.३६.७२
मतिभेदेन	१.३१.१०
मतिश्च	१.३६.५५
मत्कृते	१.३६.१८२
मत्तमुद्दण्ड	३.१६.९
मत्तं यातीति	२.७.३५१
मत: पर्वत:	३.२४.४५
मत: पूर्वे	२.३.१२७
मत्तो भवेन्न	२.७.२६५
मत्प्रसादाच्च	२.१०.३२
मत्प्रसादेन	२.२४.४५; ३.३०.६०
मत्स्यराजे	२.३९.१
मत्स्यै: प्रीणन्ति	२.१९.४
मथितो	१.१२.३९
मध्यमाने	१.२५.४५; ३.९.५३;६६;७०
मदं नाम्ना	१.१८.३
मदनाथो	३.४४.४४
मदीया	१.१८.२७
मदीयायां	२.६५.३८
मद्यं कलंजं	३.८.४१
मद्यं पीत्वा	३.७.६९
मद्रका	२.६२.४१
मद्रायां	२.८.७७
मद्रूपां	२.६७.४३
मधुकृष्णा	३.३२.५५
मधुकृष्णौका	३.३२.५६
मधुकैटभयो:	१.३७.२
मधुद्रवा	२.२२.३२
मधुपर्क	२.३५.५२
मधुमाधवौ	१.१३.९
मधुमांसोदनै:	२.७.४०९
मधुशाक	२.७४.२१६
मधुशुक्ला	३.३२.५०;५१;५३
मधुशुक्लै:	३.३२.५२
मधुश्च	३.२९.७५
मधुश्री:	३.३२.२३
मध्यं राज	३.१४.११
मध्यग	१.२१.३७
मध्यम	२.६१.३३
मध्यमा	३.४२.६
मध्यमे	३.४२.४
मध्यमो	१.११.२७
मध्यवृत्तं	३.४४.४४
मध्यषड्जा	२.६१.३४
मध्याग्रे	३.४२.१७
मध्या च	२.३४.४१
मध्यादिकर	३.४४.८
मध्याश्चैव	१.१०.३५
मध्याह्न	१.२१.१२०
मध्याह्नार्क	३.२.२३६
मध्ये काञ्ची	३.४०.१०३
मध्ये च	३.९.६१
मध्ये तस्य	१.१५.२५
मध्ये त्विला	१.१५.२४
मध्ये स्थितस्य	३.३१.३२
मध्ये हिमवत:	१.१८.१
मध्वमा	३.३२.५७
मध्वाज्य	३.४०.९५
मध्वादय:	१.१३.४
मननाच्च	१.८.२०
मनशाल	३.३५.२५
मन: शिला	१.१८.१०
मनसा कर्मणा	१.३१.३३
मनसा गत	१.३४.४३
मनसा वाञ्छितं	३.४१.११
मनसैव	२.५२.२४
मनस्विन्यां	१.११.७
मनुना सह	२.५९.५५
मनुनैव	२.६०.११
मनुर्वैवस्वतो	२.५९.३८
मनुष्यचर्मणा	३.४३.६८
मनुष्यपितर	१.२८.७१
मनुष्यलोके	२.७१.१४८
मनुष्याणां	२.७२.४१
मनुष्यानौष	१.२४.३१
मनुष्या वर्त	१.३२.५
मनुं कृत्वो	१.३७.१६
मनुं यमीं	२.५९.३२
मनु: सप्तर्षय	१.३२.३८
मनुस्तच्च	२.५९.५१
मनो: स्वायं	१.१३.१०५; १४.४
मनो: स्वारो	१.३६.२०
मनोऽधिक	३.४१.४७
मनोऽभि	१.७.५०
मनोजव:	१.३६.७५
मनोजवा:	२.१.५६
मनोज्ञैस्तत्र	१.३२.१९
मनोनुगात्	१.१९.७२
मनोरजायन्त	१.३६.१०५
मनोरादिम	३.३८.६४
मनोवैवस्वत	१.३७.४७; ३८.३२; २.१.३; ३.१.६
मनोवाक्काय	३.७.६२
मनोहर	२.६१.३९; ४१
मन्त्रं वक्ष्या	२.११.१७
मन्त्रं श्रीचक्र	३.४१.३
मन्त्रं साधयतो	२.३४.३७
मन्त्रचोरान्	३.३३.५९

मन्त्रज्ञानां २.९.६९
मन्त्रयित्वा ३.२६.४३
मन्त्रव्याहा १.३५.१०२
मन्त्रशक्त्या ३.४४.१२
मन्त्रांस्तान् १.३०.९
मन्त्राः प्रादुः १.३२.६८
मन्त्रादि १.२.३२
मन्त्रा नव १.३३.४२
मन्त्रार्थं तत्र २.७२.१२३
मन्त्रिणी ३.३१.९३
मन्त्रिणीदंड ३.२६.१०२
मन्त्रिणीं त्वरया ३.२८.९२
मन्त्रिण्या ३.२६.२५
मन्त्रिनाथा ३.१८.३६; १७.६१
मन्त्रिष्वमात्य २.४९.४५
मन्त्रेण पूतं ३.२८.८८
मन्त्रैः सहोर्ध्वं १.३५.१५३
मन्त्रो मन्त्र १.३३.५८
मन्थानं मंदरं ३.९.५१
मंन्दं वीजति २.२६.९
मन्दबाह्योऽथ २.७१.१६७
मन्दमन्दस्मितो ३.३९.८९
मन्दरक्षोभण ३.६९.३३
मन्दस्फुरत् २.२७.३
मन्दाकिनी १.१६.३०; ३.३८.४७
मन्दात्मानो १.३६.१३८
मन्दारकुन्द २.२७.१८
मन्दिरं पर ३.३९.५९
मन्मथांग १.२५.६७
मन्येऽहं २.२४.१०
मन्वन्तरं च १.१.९५
मन्वन्तरं मया १.३६.६
मन्वन्तरं यथा १.३५.१७६
मन्वन्तरप्रती १.३५.१८५
मन्वन्तरप्रस १.१.६५
मन्वन्तरमथा १.३६.८६
मन्वन्तरस्य १.२९.३८; ४०; ३५.१६६; १७८
मन्वन्तराणां १.१.४६; १.३५.२०६; २०८; २०९; ३.१.७
मन्वन्तराणि १.६.६; १.३६.१; २; ३.१.३
मन्वन्तराण्य १.३५.१५९
मन्वन्तराधि १.३१.१०९; ३.१.३३
मन्वन्तरास्तु १.३५.१६४
मन्वन्तरेण १.३४.१०
मन्वन्तरे पुरा १.३५.१९७
मन्वन्तरे भवि २.३.१३
मन्वन्तरे यथैक १.६.१८
मन्वश्रतरेश्व ३.४.५१
मन्वन्तरेषु १.१.१०२; ९.५८; ८५; १३.५; २४.८६; २७.२७; ३१.१२४; ३२.४३; ३५.१५०; ३९.२३; २.३.१०८; ३.१.१२३
मन्वन्तरेष्वतीतेषु १.३५.२०५; ३६.१९६; २.८.२४
मन्वादिकं २.१.६
मन्वादीनां १.३२.३९
मन्वानश्च ३.२५.५८
मम चक्रावतारो २.३७.२८
मम ज्येष्ठेन २.६८.८२
मम तुल्यबलो १.२५.१०६
मम नष्टानि ३.२७.७
मम पार्श्वे २.६७.३५
मम पुत्रा २.७१.२११
मम प्रभावाद् ३.७.४८
मम यत्त २.५०.२८
मम वंशे ३.४०.९१
ममाक्षिजा ३.४०.१०६
ममातिप्रिय २.३९.५०
ममानुजध ३.२२.८२
ममापराधाद् २.५.७६
ममाश्रम २.६३.३६
ममैताविति २.७४.७४
ममैष २.१.३७
ममोद्विजन्ति २.७.१०५
मया काष्ठं ३.७.१६
मया च २.४०.१०७
मया चैत ३.४.६७
मयाज्जज्ञे १.९.६५
मया त्रिगुण १.२५.४८
मया नु १.२५.११५
मया प्रकाशितं २.३३.३७
मया संबोधिताः २.७३.४३
मया सह २.७३.९; ६७.६१; २.३२.४३
मयूरः कुक्कुट २.१०.४७
मयूरकेकिनी २.२२.२८
मयूराः कल २.७.४५६
मयैवागतं २.२४.३५
मरीचये १.९.५५

मरीचिः	३.२.४७
मरीचिगर्भास्ते	२.१०.८८
मरीच्याद्यैः	३.३४.६९
मरुतस्ते	२.५.७९
मरुतां च	२.५.१०६
मरुतेन कथ	२.६८.१
मरुत्तस्य	२.८.३५
मरुत्तस्तस्य	२.७०.२५
मरुत्वत्यां	२.३.३२
मरुत्संघट्ट	२.२२.१०
मर्दयन् ककुभां	३.२२.३
मर्दयन्ति	३.२३.८८
मर्दयन्तो	३.२५.६१
मर्दयामास	३.२४.५७
मलकं	३.१०.६
कलकश्च	३.२१.८५
कलकाद्या	३.१०.२
मलदेन	३.२८.४०
मल्ला	१.१६.५५
मल्लिका	२.३५.२२
महतश्च	१.३२.७६
महता राज	१.३६.१५४
महता बिक्र	३.२०.१४
महता सुकृते	२.५६.१४
महत्त्वमृषिभि	१.२०.५८
महत्यन्तः	२.७१.४२
महदादि	३.३.६
महदाद्यं	१.३.७; ३.३.९०
महर्लोक	१.६.७२; ३.२.३१
महर्लोकाय	१.३५.१७९
महल्लोकेति	३.२.६
महल्लोको	१.२१.२२
महर्षयस्तु	१.३०.१६
महर्षिसर्गः	१.१४.३
महर्षे देहि	२.२६.५०
महाकलक	३.२५.९१
महाकाली	३.३२.६
महाकालीं	३.३२.४
महागणपति	३.३६.१८
महागणेश्वरः	३.१४.८
महाग्रहो	१.२४.५०
महाचक्र	३.२६.४
महाजम्भस्य	१.२०.२१
महाज्वाले	३.२.१५७
महाञ्जन	३.२.२११
महात्रिपुर	३.३८.८१
महादानानि	२.३३.३२
महादेवः	१.१९.१४१
महादेवप्रसा	२.३.७०
महादेवस्य	१.२६.१; ३.२.२६४; २६७
महादेवाय	२.२५.१४
महाद्रुमस्य	१.२४.२१
महाधृतिसुतो	२.६४.१३
महाननन्य	२.५१.६
महानन्दा	२.७४.२२७
महानन्दि	२.७४.१३९
महानयं	२.५.१८
महानर	३.२२.४
महानाभः	२.५.३१
महानील	३.२०.४२
महानीली	३.४१.५४
महानुभावा	१.३६.५७; ३.१.२६
महान्तं	३.२.२२७
महान्तो	३.२०.७९; ३७.३१
महापद्मः	३.२०.५४
महापद्माटवी	३.३५.७९; १०२; २०५
महापर्वत	१.५.१३
महापीठ	३.३७.४७
महाप्रकाश	३.३५.४६
महाप्रमादः	३.२६.१२
महाप्राज्ञा	१.३०.२४
महाबलास्ते	२.६.३
महाबलेनप	२.७२.२१
महाबलो	२.७२.७८
महाबलौ	२.७.६९
महाभये नाथ	२.४१.१४
महाभागा	२.५९.४०; ६३.१५९
महाभूत	१.५.१०१; १५.३; ३.२.२७५
महाभूतेषु	१.८.६१; ३.४.३३
महाभोजश्च	२.७१.२
महामहो	२.५९.८३
महामात्र	२.३८.२४
महामुक्ता	३.२०.९६
महायवाश्च	२.१४.१२
महायाग	३.१२.६६
महायोग	२.७.९२
महायोगै	१.३६.१७९
महायोगान्	२.७.२६७
महाराज्ञी	३.३३.१६; २८
महारोगा	३.२९.६९
महारोम्णस्तु	२.६४.१४
महार्हरत्नो	२.२६.५९; २७.५९
महालक्ष्मी	३.१९.८; ४०.१०५; ४४.१२
हलालये पदं	२.१३.८३

महावज्रे ३.२५.९६; ३७.३४
महाविभक्त २.७.३४४
महावीतं तु १.१९.११७
महासर ३.१९.७६
महासुरं ३.२९.१४२
महासुरा २.७२.१०६; ३.२९.७४
महासेनं १.२५.१७
महिमान: १.३८.२४
महिम्ना २.५.२०
महिषस्कंध ३.२५.३६
महिषा १.८.४९
महिषाश्व ३.४१.५५
महिषोष्ट्र २.७.१७५
महीतलात् ३.२.१२९
महीमंडल १.१८.९
महीरुहा ३.१३.१६
महीशत्व २.१७.१४
महेति ३.२.२१
महेन्द्र: २.१३.१७
महेन्द्रभय २.१८.८१
महेन्द्रस्य १.२१.४४
महेन्द्रस्यामर १.२१.४४
महेन्द्रादौ २.५६.२३
महोत्सव २.४९.१५; ५०.९
महोदधि ३.२३.१८
महोदधौ २.१३.१२९
महोदर: २.८.५५
मांगल्य ३.३९.८७
मांसभक्ष २.६३.२४
मांसभार २.२३.१२
मांसमानय २.६३.१२
मांसाक्षं २.१४.१७
मांसात्तु २.७२.४४
मांसेन २.२३.७४
माकन्द ३.१०.५२
माकुर्वतु ३.७.४०
माड्या: २.७१.१०२
माणिक्य ३.४०.१२७
मातंगकन्यका ३.३१.१०५
मार्तगस्य ३.३१.१०२
मातंगी ३.१९.८०
मातङ्गो ३.३१.८९
मातरं २.७.६७
मातर्भक्षे २.७.६०
मातापितृ २.२३.७२
माता यथा २.७.५९
मातुरर्थे २.४६.८
मातुलस्य ३.८.७
मातृकां ३.४४.७
मातृतुल्यश्च २.७.५५
मातृभि: २.१०.५२
मातृसङ्गे ३.८.३
मा त्वं २.७२.१३४
मात्रा २.६७.३६
माद्रवत्या २.७१.१५५
माधवं २.६३.१८६
माधवस्य १.३१.७७
माननीयो २.२३.३५
मानव: २.६०.१५
मानवे १.३५.९६
मानस: २.२.१४
मानसा २.१०.९७
मानसोत्तर १.२१.३४; ६८
मानुषाख्येन ३.१.२३१
मानुषाणां २.७.२५७
मानुषाश्चोप २.५९.१९
मानुषास्थीनि २.१४.७९
मानुषेणैव १.२९.११
मानुषेषु २.७३.८७
मानुष्य: २.७३.८८
मानुष्ये २.७२.१२
मान्धाता २.७३.९०
मा भैरेव २.२५.६०
मामकै: २.६७.५२
मायायां ३.२२.७४
मायारथं ३.२७.३०
मायाविनी ३.२६.५५
मायाविलासा: ३.२१.९३
मायावी २.६.२९; २४.६
मायाशक्तेर् ३.२३.६७
मारिषा १.३७.३७
मारिषायां १.३७.४१
मारीचं १.१३.७९; २.५.४८
मारीचा २.१.५०
मारीचि: ३.२.३३
मार्कण्डेयादि ३.३९.५५
मार्गशीर्षे १.२४.३७
मार्गे २.३०.१९
मार्जारो २.७.३०३
मार्तंडजननं २.७.१९८
मार्तंडभैरवस्तत्र ३.३५.४५
मार्तंडस्य २.५९.७७
मालिनी ३.३६.९६
मा शोकभवं २.४०.४७
माषा मुद्गा १.७.१४५
मासश्राद्ध १.२८.७८
मासस्याहानि ३.१.७५
मासा: षडर्तवो १.१३.२४
मासा: संवत्सरा १.२४.५७

मासार्द्धमास	१.१३.१३
माहात्म्यमस्या:	३.४०.१४१
माहाराष्ट्रा	१.१६.५७
मितभाषा:	२.७.२०२
मित्रज्योतेस्तु	२.६८.५
मित्रबाहु:	३.१.९५
मित्राणि	२.१६.१८
मित्रावरुण	२.८.९९
मित्राश्च	३.२०.४८
मित्री च	३.३७.२९
मिथिर्नाम	२.४६.६
मिथुनं	१.१५.७८
मिथुनानां	१.७.३४
मिथुनानि	१.१५.७७
मिथ्यापवादं	२.७१.३७
मिथ्यासंकल्पिन:	२.१५.४६
मिलित्वा	३.३२.६६
मिश्रकेशी	२.७.६
मिश्राणां	१.३३.३१
मिषत:	२.५३.३८
मिषतस्तु	२.६३.११३
मिषतां	२.६३.११२; ७२.१३६; १४९
मीनामीना	२.७.४१४
मुकुट:	३.३१.४७
मुक्तात्मा	१.१०.६७
मुक्ता ध्येया	३.३८.६७
मुक्तावैदूर्य	२.१६.१३
मुक्ताशालस्य	३.३३.५५
मुक्तास्तेनाथ	२.४८.४९
मुखदर्पण	३.१०.६४; ३७.७६
मुखादेवा	१.५.८५
मुखे कृत	१.३५.१८५
मुखेभ्यो	१.३७.३२
मुख्यादयस्तु	१.५.१०५
मुख्यामुख्यान्	१.५.८७
मुचुकुन्दस्य	१.२.४४
मुञ्च मां	२.७४.५२
मुञ्चन्त्यो	३.३८.५७
मुण्डपृष्ठे	२.१३.११०
मुण्डांश्च	२.७.३६४
मुदाट्टहास	३.२८.९३
मुद्राविरचना	३.१९.११; ४२.१
मुद्राविशेष	३.४१.२१
मुद्राश्च	३.४.८५
मुनयश्चक्रु	२.४७.५०
मुनयस्तं	२.४७.४१
मुनिक्रोधानल	२.५३.३३
मुनिना	२.२८.२६; ४९.४३; ५१.३३
मुनिमध्ये	२.५०.४७
मुनि पञ्च	३.२.२७४
मुनिश्च	१.१४.२३
मुनिश्चैव	१.३६.७१
मुनिस्तस्य	२.६४.२०
मुनींश्च	२.२२.३
मुने परग	२.३५.१
मुनेश्च	१.१४.२६
मुमुचु: पुष्प	२.१०.३७
मुमुदे विविधै	२.५६.३४
मुमोच राजा	२.६९.३७
मुमोचास्त्रं	२.४८.२०
मुष्णंस्तेजांसि	२.४२.२२
मुसलं च	३.२०.७
मुहु: किल	३.२४.२०
मुहुराकाश	३.२१.१०
मुहुरुच्चावचा:	३.२९.४२
मुहुरेवं	३.४०.४३
मुहूर्तं	२.६१.२३
मुहूर्तमात्रेण	२.४०.१८
मुहूर्तमिव	२.५३.२२; ५७.३४
मुहूर्तानां	१.२४.१४३
मुहूर्ता बंधुरा	१.२२.६९
मुहूर्ताश्चैव	२.३.६५
मुहूर्तास्तिथयो	२.७२.३०
मुहूर्तैस्ताव	१.२१.९०
मुहूर्तो देव	३.१५.१५
मुहूर्तो विजयो	२.७१.१०६
मूकास्त्र	३.२९.८९
मूर्छनायोजना	२.६१.४८
मूर्छना हरिणा	२.६१.४५
मूर्त्तिं रज	१.८.३०
मूर्त्तिमन्ति	२.१.२३
मूर्त्तिरस्य	१.१३.११२
मूर्त्तिरिका	१.२७.५३
मूर्त्ते च	३.३९.६९
मूर्द्धांघ्रियोरपि	३.४४.११३
मूर्द्धानं वै	१.५.१०७
मर्घ्युपाघ्राय	२.४२.५२
मूलकस्यापि	२.६३.१८०
मूलाद्याज्ञा	३.४४.२४
मूलेनारोग्य	२.१८.१०
मृग एक:	२.३४.१२
मृगमेष	१.२५.३५
मृगया	१.३२.३९
मृगव्याध	२.२४.८७
मृगश्यामस्तु	२.७.२३२
मृगश्चापि	२.३५.५९
मृगाणामथ	२.८.११
मृगान्नाना	२.२६.२७

मृगी च २.७.१७२
मृगै: सिंहै: २.३५.४६
मृतसंजीविनीं २.३०.५३
मृते शरद्वति १.१.१६१
मृत्युदत्तौ ३.२९.८४
मृत्युश्चक्रे १.२.७
मृत्योर्व्याधि १.९.६६
मृद: पञ्च २.१४.९३
मृदंगमुरजा ३.१६.३
मृदवस्तु २.१३.८
मृदा प्रक्षाल्य २.१४.७५; ९०
मृदुना २.६७.४१
मृदुभिस्ते १.२.२७
मृद्वासने ३.३८.२९
मृधे सहस्त्रं २.६९.३९
मेकलायां २.७४.१८८
मेघडंबरक ३.२५.४७
मेघयामो २.४२.२०
मेघा इति २.७४.१८९
मेघानां १.२२.३०
मेघा वायु १.२२.१६
मेघाश्चा १.२२.५७
मेदादश्च २.७.९४
मेनस्य २.७.१७
मेना च ३.१३.३०
मेनायां २.९.२
मेने निजं २.४०.४०
मेरुं प्रदक्षिणं १.१७.२८
मेरुमन्दर ३.२०.८९
मेरो: पश्चिम १.१७.१६
मेरोरिव ३.२१.२२
मेरोर्मध्यात् १.२१.१४
मेरोस्तु १.१७.२३; १३.३६
मेलयित्वा ३.३१.४२; ४३
मेषान्ते १.२१.१४४
मेहनाच्च १.२२.२९
मैथिलं २.३९.८
मैथुनस्या १.३२.५१
मैथुनान्त २.५९.७५
मैनाकश्चैव २.९.३
मोक्षं योग २.१०.११४
मोक्षप्रदे ३.३०.१३
मोघास्तस्य २.१७.८
मोहकस्तु ३.४४.४३
मोहने ३.२०.२०
मोहितानथ ३.१२.४७
मोहिता मा १.२७.१७
मोहितेष्वथ ३.१२.३४
मौनी विशुद्ध ३.३८.२६
मौहूर्त्तिकी १.२१.६६
म्लेच्छराष्ट्रा २.७४.१२

य

यं काम: क्रोध: २.४२.३१
यं वेदवादै २.३७.१६
यं वै प्रसन्ना २.३७.१९
य: कश्चित् १.३३.३६; ३७
य: कालरूपी २.३२.३२
य: कुक्कुटा ३.२.१६५
य: पठेद्वै १.२७.१२९
य: परं २.७२.३८
य: पश्येत् ३.४३.५१
य: पुमान ३.४१.७२
य: पुरा २.७२.१७
य: पूर्वं २.४७.६९
य: प्रसन्न: ३.४३.६६
य: प्रह्लादो ३.२९.१००
य: प्रातरुत्थितो ३.१५.५५
य: प्रीणाति ३.४१.१०
य: शस्त्र २.४१.१०
य: श्वेत १.२१.१३८
य: सहस्त्रतमो ३.२.२००; २०३
य: स्थिरो २.४२.३५
य; स्त्रष्टा १.२६.९
य इज्यो १.३५.३
य इदं च्यवनं २.६७.१०५
य इदं जन्म २.७१.१९५
य इदं धारयेन्नित्यं ३.१.२४३
य इदं शृणुया ३.३९.११२
य इमां १.३.२
य एष १.८.३४
यक्षकिंपुरुषां २.४१.३०
यक्षभूत २.७.१८३
यक्षसेनापति: १.१८.८
यक्ष: पुण्यजना २.७.१६२
यक्षाणां च २.८.१६
यक्षाणां तु २.७.११७
यक्षाणां राक्ष २.८.८
यक्षात्मजो १.३६.२१७
यक्षान्महो ३.१०.८७
यक्षा विद्या २.१०.३८
यक्षा वीरा १.१५.६७
यक्षाभिश्च ३.३३.७७
यक्षो रजत २.७.११९
यक्ष्यते वाज २.७४.१८५
यच्च काम २.६८.१०३
यच्च किंचि २.७२.१५९
यच्च किंपुरुषं १.१७.१
यच्च ब्रह्मसुता २.३५.४४
यच्चरण ३.३९.३१
यच्चाप्यस्ति १.३३.२७
यच्चेह दैविकं १.१९.१७४

यच्छिष्टं तु	१.३४.२२
यजध्वं	३.६.५५
यजनाध्यापने	१.७.१६४
यजन्तं पशुभि	१.३०.११
यजमानं च	२.१२.२९
यजमानं तु	२.७३.७५
यजमानं दिलीपं	२.१०.९२
यजुर्धाम च	१.११.१६
चजुर्वेदश्च	२.१.२४
यजुषां	१.३५.७३
यजूंषि	१.८.५१; २९.५१
यज्वा दान	२.७१.१७
यज्वानो ये	१.२८.७२
यज्ञद्रोहकृतां	३.२०.२४
यज्ञप्रवर्त्तनं	१.३०.४८
यज्ञबीजै:	१.३०.२०
यज्ञभागे	२.६७.१०१
यज्ञरूपा	३.१३.१७
यज्ञश्च	१.९.४४
यज्ञस्य	२.३०.५९
यज्ञस्यावभृथे	२.७२.८७
यज्ञान् वेदान्	२.१९.६८
यज्ञापेतो	२.७.९८
यज्ञावधारणं	१.३१.४
यज्ञे चाहूय	२.७३.६५
यज्ञेन देवा	१.३०.४४
यज्ञेनोपाह्व	२.७३.६४
यज्ञे पुन:	२.७३.७०
यज्ञे यस्य	२.१०.९१
यज्ञेष्वनिधनं	२.८.८०
यज्ञैर्व्यवहरं	१.१०.४४
यज्ञैश्चित्वा	२.५.९८
यज्ञोपवीतं	२.१६.५
यतिर्ज्येष्ठस्तु	२.६८.१३
यतीनां वा	१.२७.२९
यतो दक्षिण	३.२६.२१
यतो नित्य	१.१९.८६
यतो मन्त्राम	३.३१.१०१
यतो यतो	२.४०.१६
यत: पति:	१.१३.१४२
यत्कार्यार्थे	१.३२.३८
यत्किंचित्	२.१९.१६;
	३.४०.४
यत्तदग्रे	१.२५.६०
यत्तद्भवति	१.७.७८
यत्तद्रत्नं	२.७१.९४
यत्तद्वै पूर्वत:	१.२१.१४२
यत्तेजसं	३.२.२९५
यत्ते सुतस्य	२.४२.१३
यत्तोया	२.५४.५२
यत्त्वया कवचं	२.३७.७
यत्पश्ये चरणौ	३.३०.६३
यत्पीत्वा	३.३५.४
यत्पृथिव्यां	२.६८.९८
यत्र क्रीडति	३.१२.२६
यत्र गंगा	२.३७.५
यत्र गेय	३.२०.९१
यत्र चास्ति	३.२१.२
यत्र ते ब्रह्मण:	३.२.१४०
यत्र धूमं	२.४४.५
यत्र पापहरा	२.३८.३
यत्र मृत्यो	२.१३.६
यत्र वर्षे	२.१३.५
यत्र वाचो	१.२५.११
यत्र श्राद्धानि	२.१३.३३
यत्र श्रीनगरे	३.३०.१०७
यत्र षोडशधा	३.३१.११
यत्र सर्वे	२.५६.१०
यत्र सा गोमती	१.२.९
यत्र सायंतने	२.४४.६
यत्र सिंहा	२.४४.४
यत्र स्थित्वा	३.१२.४
यत्र स्नात:	२.४७.१५
यत्रान्ते	२.४४.७
यत्रास्ते	१.२६.४
यत्राहमुपपद्ये	१.१३.५९
यत्रेदं क्रियते	१.३५.१४०
यत्रोदेति	३.१३.२३
यत्रोद्यन्दृश्यते	१.२१.५०
यत्स्वयं	१.४.३३
यत्स्वस्था:	१.४.२४
यथा खलु	३.१९.८९
यथा गजेन्द्रो	२.३८.४१
यथा चक्ररथं	३.३१.३
यथा तु	२.६८.५९
यथा ते	१.७.११७
यथादित्य	१.२७.२०
यथा दीपो	३.४०.६४
यथा दृष्टस्य	२.६२.२४
यथा देवैश्च	१.३६.११८
यथा दैत्याश्च	३.९.५४
यथा धृता	१.१३.२२
यथा ध्यानस्य	३.४३.४७६
यथा निली	३.४३.४७
यथा पश्चा	३.२५.६८
यथा पुरूरवा	१.२८.५
यथापूर्वं	३.३६.२६; २७
यथा प्रभाकरो	१.२४.६३
यथा बभूव	२.७२.६३
यथा यथा	१.३६.११९
यथा यष्टा	२.६९.५७
यथा युगानां	१.३१.१२०

यथा यूथं ३.४.४०
यथायोगं १.७.९१
यथार्थनाम ३.२१.६५
यथावद्वर्त २.१५.३०
यथवन्मन्त्र २.२६.१९
यथा वायु ३.१.२४०
यथाऽऽवृत: १.९.३०
यथाशक्ति १.३१.७३
यथा शक्तिर्महा ३.२८.३३
यथाशयोप १.३२.१८
यथा शुभेन ३.१.२०६
यथाश्रमेषु ३.१२.१८
यथा सद्गुण ३.२८.३२
यथा सा ३.२८.६६
यथा सूर्यस्य ३.१.१९९
यथेदं कुरुते ३.३.२
यथेह लोके ३.३.७०
यथैव श्रृणुमो २.७१.१५
यथोत्पन्न १.५.८२
यथोद्दिष्टफलं २.१३.४६
यथोपनीतै १.३०.२६
यदंडं तद्बलं २.७.२८५
यदंडमासीत् ३.२.२३०
यदत्र तथ्यं २.६५.४२
यदर्थं ते २.९.८
यदह्ला कुरुते १.२३.१००
यदाऽस्य २.२.४
यदा कदाचित् ३.४१.७५
यदा चन्द्रश्च २.७४.२२५
यदा चैते २.४.३५
यदा तमसि १.४.४
यदा तु १.२८.६
यदा न कुरुते २.६८.९९
यदा न धारणे २.६५.८
यदा न प्रति २.७३.३५
यदा न शक्यते १.३६.१४०
यदा नैवोत्तरं २.४२.४६
यदा परान्न २.६८.१००
यदा प्रजास्तु १.९.१७
यदा प्रसृष्टा १.७.१५१
यदा यदा ३.२०.७५
यदाहारो २.२०.१२
यदि तुष्टा ३.१२.५१
यदि तुष्टासि ३.१३.३१
यदि तुष्टोऽसि ३.११.२०
यदि ते देवता ३.४३.२
यदिदं भारतं १.१६.२
यदि दद्या २.७१.१०९
यदि देव २.२५.३६
यदि नस्त्वं २.७३.४६
यदि पास्यति २.७२.१२०
यदि प्रमाणं १.३०.२९
यदि मे पर्वता १.५३.४२
यदि राजा सुरै: २.३१.६
यदि शक्रादिभिर्देवै: २.२४.७१
यदीक्षेते १.२८.४४
यदुं च २.६८.१६
यदुत्तरे १.१४.५१
यदुर्ययाति १.१३.९२
यदुवंश १.१.१२१
यदेतदुक्त १.२४.२
यदेव नित्यं ३.४३.७९
यदोर्वंशं २.६९.१
यदो: पुत्रा २.६९.२
यद् गत्वा ३.३.१०४
यद्गन्धाघ्राण ३.१५.२८; २८.६४
यद्दण्डकवनं २.१३.१०७
यद्दग्धमीश ३.३०.५५
यद्दर्शनादभूदीश: ३.६.८
यद् बलेन ३.२३.६८
यद्यत्कृतवती ३.३८.८३
यद्यदिष्टतमं १.३२.५४
यद्यन्यथा २.६६.५४
यद्यपि स्त्री ३.२१.४३
यद्ययं भार्गवो ३.३४.५०
यद्रूपं यद्गुणयुतं ३.५.२४
यद्रूपशालिनी ३.१०.८९
यद्वर्णा तु २.७.५६
यद्वेष्टितशिरा २.१९.४१
यन्त्रिणी तंत्रिणी ३.१७.४६
यन्मयाऽपकृतं २.२४.२९
यन्मां द्रष्टु २.४९.५३
यन्मार्त्तण्डो २.५९.३०
यमजिह्वैक ३.२०.८२
यमस्तु तान् ३.७.५४
यमस्तु यानि २.१८.१
यमस्य भगिनी २.१३.७२
यमाय वैव २.११.९४
यमुनाप्रभवे २.१३.७१
यमुनो वेग २.३६.२४
यमो वह्नि १.३६.३३
यमौ प्रासूत २.५९.२३
ययांगुल १.७.९६
ययाति: २.६८.६८
ययातेश्चरितं २.६८.१०७
यया लब्धेदृशी २.२८.२८
यया सृष्टास्तु १.८.१५
ययैव दृष्टया ३.२९.१२
ययौ तदूर्ध्वं २.४१.२४
ययौ वीथीं ३.१५.३१
ययौ संच्छादय २.२६.२५

यवना:	२.६३.१२७
यवमध्यै	३.२२.१३
यवीयसस्तु	१.३५.५३
यवीयसी	२.८.८३
यश: कीर्ते:	१.९.६२
यशोधराया	२.१.८७
यश्चरेद्विधि	२.१५.३१
यश्चायं मण्डले	१.२४.१६
यश्चासौ	१.२४.११; २३
यश्चैतच्छृणु	२.१९.७१
यश्चैवं	१.३६.१२५
यश्चैष	१.१३.१४८
यष्टार:	२.७.१९०
यस्तथा	२.५१.२०
यस्तान्निन्दति	१.२७.९४
यस्तिष्ठेदे	२.९.७४
यस्तु दुष्टै	२.३१.११
यस्तु धारयते	१.२५.९९
यस्तुश्राद्धे	२.१५.१३
यस्तेऽपराधं	२.४४.१५
यस्त्वयं	१.६८.४९; ५३
यस्त्वेक	२.३७.१७
यस्त्वेतत्	३.१४.१४
यस्माच्च	२.७.४७३
यस्मात्कल्पायते	१.३.५
यस्मात्काल	१.१३.१२३
यस्मात्क्षेत्रं	३.३.८७
यस्मात्ताम	१.२८.४५
यस्मात्ते	२.१४.१०; ७२.१४२
यस्मात्तेऽवाक्	१.५.४८
यस्मात्तेषां	१.५.३४
यस्मात्त्वमीदृशे	२.७४.४५
यस्मात्पुर्यनु	३.३.९५
यस्मात्पुरा	१.१.१७३
यस्मात्प्रवृत्तय	२.७३.५४
यस्मात्प्रोक्तं	१.९.८९
यस्मात्सृष्टास्तु	१.१९.१८३
यस्मादजेय	३.३५.६८
यस्मादवमता	१.१३.३६
यस्मादस्य	३.२.१०५
यस्मादूर्ध्वे	१.५.४३
यस्माद्दृषंति	१.३२.८९
यस्माद्दाक्षायणी	२.७.४७२
यस्माद् बृंह्यते	१.३.२२
यस्माद् भवन्ति	१.१०.३१
यस्माद् वाचो	३.४.११
यस्माद्विना	२.६७.५६
यस्माद्विश्व	२.३.१२०
यस्मान्न	२.६९.४५
यस्मिंश्च	१.३६.१२१
यस्मिंस्तु	१.३६.१८८
यस्मिन्कृष्णो	२.७४.२४१
यस्मिन्दोषा:	२.१५.६
यस्मिन्नंड	१.३.२९
यस्मिन्ब्रह्मा	१.२२.४६
यस्मिन्युगे	१.३२.२
यस्मिन्सो	१.१९.४१
यस्मै श्राद्धानि	२.१९.५६
यस्य प्रभावा	२.४०.४३
यस्य भक्तेषु	३.२.२६५
यस्य यस्याऽन्वये	१.१.३४
यस्यांशांशेन	२.३२.२९
यस्या गर्भ	२.४३.९
यस्यातिथ्यं	२.३०.६७
यस्यान्ववाये	२.१.११४; ७०.१५
यस्याष्टादश	२.५०.१६
यस्याहमिन्द्र:	२.६७.९३
यस्येषत्कोप	२.३२.३०
या कामेश्वर	३.३७.२४
यागे समर्चित	३.२८.९०
या चाप्यन्या	२.१७.५
याजयित्वा	३.२.७६
याज्ञवल्क्य	१.३४.६१
याज्ञवल्क्यस्य	१.३५.२८
याज्ञवल्क्यो	१.३४.४५; ६३
या तत्र	२.३.८३
यातनाश्चा	३.२.१९०
या तु देवी	१.१३.७८
यातुधानस्तदा	१.२३.११
यातुधाना	२.८.६१
यात्यवस्था	३.३.२८
या त्वर्द्धा	१.९.३५
याथातथ्येन	२.६२.२८
या दुस्त्यजा	२.६८.१०१
या देवी दण्ड	३.२६.४०
यानि किंपुरुषा	१.१८.७४
यानि प्रोक्तानि	२.६२.३५
या भाति	३.३९.४०
यामत्रितय	३.२५.९३
याममात्रे	३.४०.७५
यामशक्रार्जितै	१.२९.६७
यामा इति	१.९.४५
यामादयो	३.२.५१
यामाहु	३.३९.२१
यामेतं	२.७१.२२८
यामेव	२.७१.२१४
याम्येभागे	३.३३.५६
या राधा	२.४३.८
यावकश्री	३.१०.५८
यावच्च	३.३.११०

यावत्पोषण	२.२३.७५	युगे युगे	२.३१.७४; ३७.५३; ७४.२४७	ये तु वृत्ते	२.१५.६३
यावत्प्रक्षीयते	१.२३.७८			ये ते स्वायं	३.२.२३
यावत्यश्चैव	१.२३.९६	युगेषु त्रिषु	२.६७.३३	ये द्वादश	१.१.५५
यावद्वाचः	१.२५.९	युगेषु यास्तु	१.३२.१	ये धर्मं	२.१४.४०
यावन्ति	२.३६.५८	युते बाहुसहस्रेण	२.४०.२१	येन गंगा	२.६३.१६७
यावन्नोपैति	२.२५.२७	युधिष्ठिर	२.३६.३८	येन ते निहता	२.७२.२०
या वह्निवासिनी	३.२५.८१	युद्धं कलिंगं	२.७४.२८	येन त्वामा	२.५९.५९
या वाऽस्य	२.७२.८	युद्धे च मरणं	३.२७.४८	येन प्रोक्त	२.१९.७४
या वै तासां	२.१०.२०	युद्धे पराजिता	२.२४.४८	येन प्रोद्भूत	१.२५.६१
या वै प्रजा	१.१३.१०८	युद्धेष्वनुद्यम	३.२८.४८	येन येन	२.१९.१७
या ससर्जादि	२.१३.२१	युद्धयद्वराह	२.२२.१६	येन सैंहं	२.७२.१६
यासां स यः	२.७.१३८	युयुधाते	२.३९.२५	येनैव सृष्टाः	३.१.२०५
यास्तु शेषां	२.३.५५	युयोज	२.५७.४७	येनैवाधिष्ठितं	१.५.१३८
यास्त्वलभ्या	३.१२.३१	युवना	१.३६.७६	ये पापिष्ठा	३.३०.६३
यास्याम्यन्तः	२.४१.४९	युवनाश्वस्य	२.६६.२९	ये पुत्रा जज्ञिरे	२.७१.१७५
यास्याम्यहं	२.७२.१०८	युवयोर्हस्त	२.७.६५	ये पुनर्ज्ञानिनो	३.३३.४९
युक्तात्मानं	२.७४.९८	युवराजोऽपि	३.२५.३	ये भूलोकगता	३.३३.४३
युक्त्वारोच	३.४१.५६	युवा रूपेण	२.६७.७१	ये रुद्रास्तान	३.३३.८८
युगधर्मे	२.७२.६५	युवैव राज	२.५५.३६	ये वहन्ति	१.११.५
युगपत्समये	१.२९.४२	युष्मदर्थं	२.७२.९९	ये विभक्तास्तु	३.६.६५
युगपत्सर्व	२.१०.४२	युष्माकं	१.३७.३८	ये वै त्वदीयं	२.३७.२२
युगसन्ध्यांशक	१.२९.४	युष्मान्विना	३.२७.५	ये वै देवास्त्रय	३.१.९९
युगाक्षकोटि	१.२२.७६; ७९;८१	युष्माभिर्यस्य	२.४८.२८	ये वै परिग्रही	१.७.१५४
		यूपान्	२.७२.२७	ये शिष्टास्तान्	३.१.३५
		यूपा मणि	१.१८.२८	ये श्रीपुर	३.३७.१०२
युगाक्षकोटी	१.२२.७१	यूयं तप	२.७२.१९०	ये श्रूयन्ते	१.३५.११३
युगाख्या	२.७३.५१	येऽर्चयन्ति	३.५.२९	येषां च वर्ष	३.३३.९०
युगाख्यानाव	२.७४.२७४	ये अन्येषु	३.३३.९२	येषां मदीय	३.३०.६४
युगाख्या या	१.३५.२७२	येन केना	२.३९.४९	येषामधिपति	२.७.१४३
युगादिनिधना	२.१.७१	ये चान्ये	१.७.१५६; ३६.१४५	येषामर्थाय	२.६७.८३
युगान्ते	२.६९.३८			येषामेते	३.३.४०
युगान्तेस्वन्तको	२.७२.३९	ये चापि देवा	३.१.२०७	येषु क्षेत्रेषु	३.३१.२१
युगापाये	२.२६.३३	ये चाप्याश्रम	१.२८.७४	येषु यच्च	२.११.३५
युगाभिमानी	१.१३.१३९	ये तु मूलविद	२.२३.७९	येषु स्वर्ग	२.१९.५७

ये हि मे १.२७.९२
यैर्व्याप्ता २.६८.१०६
यैस्तु तप्तं २.६८.७२
योगं त्वनुपमं ३.२.२८६
योगज्ञाने २.३२.२१
यो गतिर्धर्म २.७२.३५
योगपट्टेन २.२१.५४
योगपट्टो २.२१.५५
योगसिद्धा २.५९.१६
योगिनाम १.७.१८२
योगिनी २.१०.७८; ३.३७.२५
योगी कृतयुगे १.२७.५१
योगीन्द्र २.५३.२१
योगी योगेन २.६३.५९
योगेन तपसा २.९.५३
योगेन स्वां ३.११.५
योगेश्वर: २.१३.५०
योगेश्वराणा २.१९.६१
योगेश्वरै: २.१३.४२
योजनत्रय ३.१७.१२
योजनाग्रेण ३.२.११३
योजनानां च ३.२.१२८
योजनानां यथा १.१.५०
योजनानां सहस्रं १.१५.३९; २.५८.३५
योजनानां सहस्राणि १.१५.४३; १७.१५; १९.११३; २१.११५
योजनायत ३.३४.६०
योजनायतमूर्ति: ३.२४.५६
योत्तमा भक्ति २.३४.४९
यो ददाति ३.१९.२०
यो दद्याच्चानु २.१५.५७
योधयामास ३.२८.१०७
योनि: सप्रवि १.१३.१२४
योनिर्निशाकरो १.१३.१२९
यो भंडदानव ३.२९.१४७
यो भंडदैत्यस्य ३.३०.४०
यो मेरु ३.३१.२८
योऽम्बुना १.७१.१०२
योऽयं चतुर्दिशं १.२२.६
योऽयं प्रधानां २.७.२९३
योऽयं वा २.३५.३१
योऽयं संदृश्य २.३४.२९
यो यस्य ३.१.४७
यो वात्र १.३५.१६
यो विभु: १.३५.१६
यो विष्णुं २.३२.३६
योऽत्रसावग्ने १.१२.१
योऽसावाहव १.१२.१४
योऽसौ तारामये ३.२.१३५
योऽस्या: संजायते २.७१.२३२
यो ह्यनिष्टान् २.९.२८
यौवनं २.६८.६१; ७६
यौवनाश्वेन २.७४.८
यौवनेन ३.२६.२८
यौवराज्य ३.२८.१०

र

रक्तसोपान २.३२.१०
रक्तस्रोतो ३.२०.६५
रक्तारुणायां ३.२२.४१
रक्ताशोक ३.१९.४७
रक्ष: पिशाच १.१७.३३
रक्ष इत्येष २.७.६१
रक्षणं चैव २.१२.१४
रक्षणे विनि २.७३.११९
रक्षंतीमा: १.३८.२५
रक्षांस्यनु २.७.१६४
रक्षा विधेया २.४०.३२
रक्षिता स २.७०.२
रक्षिष्यतीति २.४१.७४
रक्षोघ्नं च २.११.३४
रज: प्रकाशको १.४.७
रज: सत्त्व २.७.४७०
रजत: पृथु २.१.७९
रजश्चैव ३.१.८६
रजसे चैव १.२५.७१
रजस्वलां ३.८.१५
रजिपुत्रो २.६७.९२
रजियेत २.६७.८४
रजे: पुत्र २.६७.८०
रजोऽन्धकार ३.२३.२७
रजोगुणा २.२५.२०
रजोमात्रा १.८.१९
रज्जुदोलो १.१९.११
रणे भग्नं ३.२८.१
रणे विजेतुं २.७२.१२८
रति: प्रीतिर् ३.१९.६४; ७१
रतिर्मेधा ३.४४.४२
रत्नकंकण ३.३९.८१
रत्नकुम्भ ३.३५.१०३
रत्नद्वीप २.२२.५७
रत्नधातु १.१८.५
रत्नभाक्त्वेन २.२८.६९
रत्नभूता १.३७.३६
रत्नसिंहासने २.४२.२४
रत्नाकरास्तथा १.१९.५; ३५
रत्नान्येतानि १.२९.७७
रत्निमात्रा: २.११.७५
रथकूबर ३.२४.३४

रथचापादिकं २.२५.४७
रथज्याशंख २.४६.१५
रथनागाश्व १.३६.१६५
रथं तमोमयं १.२३.८९
रथवंशेषु ३.२२.३५
रथानां मेघ २.७१.१२३
रथांश्च तुरगा ३.१५.२५
रथाश्च रथ ३.३४.२४
रथास्त्रचक्रः १.२३.५१
रथिनो १.९.७२
रन्तिश्च रनित २.७१.१९२
रमणो विस्मिता ३.४४.३६
रमते तत्र २.६७.५९
रममाणा ३.३०.९८
रममाणो २.४९.६३
रम्भकश्च १.२३.८
रम्भास्तम्भ २.३९.१७
रम्यकात्परतः १.१५.३४
रवे रश्मि १.२४.६५
रवैः कीचक २.२२.५०
रससिद्धि ३.३६.५२
रसातल १.१९.१७१
रसातल ३.१३.९
रसास्तमुप २.१६.१७
रहस्यं संप्र ३.३९.८
रहस्याम्नाय ३.३९.२८
रहस्याहूय ३.४०.८९
राक्षसं तं २.७.७३
राक्षसस्य २.६३.६८
राक्षसास्ते १.८.३२
राक्षसेन्द्रस्य १.२०.३३; ४०
राक्षसैश्च १.३६.२१८
राक्षसैस्तु १.७.१९५
राक्षसो वा १.२७.१८
राजचक्र ३.२६.३७
राजतं पात्र १.३७.२०८
राजतं राज २.११.१
राजतेषु ३.२.२४०
राजते हि २.११.३
राजन्नखिल २.२८.७
राजन्नेवं २.४४.१
राजपत्न्यौ २.५१.२२
राजपुत्रस्तु २.७०.३७
राजभाषा २.१४.१३
राजर्षयः पुन १.३५.९०
राजर्षयस्तथा १.३५.१००
राजर्षेर्जनक १.३४.३७
राजवृत्ताः १.३१.४३
राजसूयाभि १.३६.११३
राजा तं २.३२.४
राजाधिदेवः २.७१.१३७
राजाधिदेवी २.७१.१५१
राजा न २.३२.४१
राजानः शूद्र १.३१.४१
राजानः श्रेणि २.७४.२६४
राजानः संप्र २.७४.२०६
राजानो नान २.७.२०८
राजानो हत २.४८.१८
राजापि ३.४०.११२
राजा शत २.७४.१४८
राजासुरं नाम ३.२९.१२१
राज्ञस्तस्यार्थ २.४९.६५
राज्ञस्तु २.७०.२८
राज्ञां तु २.५०.५६
राज्ञी भव ३.१४.२८
राज्ञी राज्याभि १.२२.३८
राज्ञैव राज २.२८.५३
राज्ञो महति ३.१५.४४
राज्यं च २.७.२७१; ६८.७५
राज्यं देयं २.३३.३६
राज्यं स २.६६.२१
राज्यकामो २.११.२१
राज्यप्रदायै २.३९.४३
राज्यार्धेनाथ २.२८.७१
राज्येऽभिषिच्य २.५६.३०; ३३
राज्ये बन्धुषु २.५६.३६
राडिश्च १.३५.५१
राणायनीयिः १.३५.४४
रात्रिस्तु ३.१.१३५
रात्रौ दिवा २.७.३१०
रात्रौ स्वप्ने ३.४०.१२२
रात्र्यर्द्धे १.२१.४३
राधया सहितः २.४२.२१; ४४.२९
राधोत्संगात् २.४३.१८
रामं क्षत्रिय २.६६.६३
रामं त्वागत २.४६.१६
रामः शक्तिं २.३९.३१
रामभक्तोऽसि २.४३.२७
रामस्तु चेतनां २.४०.६३
रामस्तु तौ २.३४.१९
रामस्तु दृष्ट्वा २.४१.३
रामस्य पुरतो २.३०.१८
रामस्य महिषी २.६४.१६
रामस्य वचनं २.२३.५६
रामस्याभूद् २.५७.५८
रामाय सेषु २.२३.१६
रामाहं सुप्र २.२५.३३
रामेण गच्छता २.३५.३८
रामेण तत्राति २.४०.१७
रामेण मार्ग २.३४.३

रामेण युयुधु २.३९.११
रामेण हन्य २.२४.८४
रामेणोत्थापित २.२५.६१
रामेश्वराय २.३३.१२
रामोऽपि क्रोध २.२५.५४
रामोऽपि नृप २.२१.२
रामोऽपि रथ २.४६.१३
रामोऽपि वार्यु २.४०.२९
रामोऽपि सन्ध्यां २.३५.४२
रामोऽपि हत्वा २.२४.८६; ४१.१५
रामोऽस्मि २.३५.५०
रामोऽहं तव २.४४.१२
रामो दाशरथि २.६३.१८५
रामोदितं २.३८.१३
रामो मतिमतां २.२२.६९
रावणं कुम्भकर्णं २.८.४७
राशौ दृष्टे ३.२.१०९
रासारभ २.३३.२१
राहो: सा २.५.१३
रिक्तपाणिस्तु ३.४३.६७
रिक्तपात्रं ३.१०.२१
रिपोराधत्त १.३६.१०२
रुक्मेषु: पृथु २.७०.२९
रुक्मेषुरभव २.७०.३०
रुचका: कुटजा: ३.३१.६४
रुचे: प्रजापते १.९.४३
रुदतो द्रवत १.९.७८
रुद्रं धर्मं १.९.१
रुद्रं ब्रह्माण २.३.१०२
रुद्रकान्तमिति १.१८.७२
रुद्रकोपानला ३.१२.१
रुद्रदत्तेन २.३९.७
रुद्रनौका ३.३५.१००
रुद्रलोके ३.३३.८७
रुद्रस्त्वं देव १.१०.७
रुद्रस्य मूर्त्तय १.२७.५२
रुद्राणी सातु २.१०.२२
रुद्राततताविनौ ३.३४.१०
रुद्राश्च परि ३.२०.४७
रुधिरान्धौ ३.२०.४७
रुरुकस्तनय ३.२.१६९
रुरोद सुस्वरं १.१०.५; २.५.७०
रूपं निवर्तयेय २.५९.६९
रूपश्री २.७.२३२
रूपादय: १.१.७४
रूपौदार्य २.४९.६०
रेतोधास्तुभ्य २.१.४१
रेमे रामश्च २.६१.२५
रेमे स हैहय २.२७.२५
रे रे तिष्ठत ३.२५.८५
रेवतीपूतना २.५९.१४
रेवती माधवा ३.४४.६१
रेवतीष्वेव १.२४.१३४
रैवतस्य तु १.१९.९२
रोगिणं पुल्कसं २.३८.३४
रोचनाकुंकुमा ३.४१.३७
रोमन्थत: परा २.२१.४४
रोमाञ्चोद्भिन्न २.२४.२१
रोहिण्या जज्ञिरे २.३.७४
रौच्यस्यैते मनो: ३.१.१०५
रौद्र: सार्प २.३.३९
रौप्यशाल ३.३१.७८
रौरवेण तु २.१९.६

ल

लक्षणं ब्राह्मण १.३३.४९
लक्षणं सूत १.१.१०१
लक्षणां विस्तरा: २.१.२७
लक्षणैर्नारका १.५.५०
लक्षत्रितय ३.४१.२९
लक्षद्वयेन ३.४१.२८
लक्षद्वितय ३.३८.३४
लक्षयोजन २.३२.२
लक्षराजन्य २.३९.१९
लक्षैकादश ३.३८.३८
लक्ष्मी: कीर्ति १.२६.४५
लक्ष्मी: सरस्वती ३.७.७२
लक्ष्मीश्च ३.४४.६२
लघुहस्ततया ३.२२.५४; २८.६७
लज्जाया विनय: १.९.६१
लडुन: पट्टसेनश्च ३.२१.८३
लता वनस्पति २.७४.६१
लब्ध्वा नामानि १.१०.१८
लभते च २.११.४४
लम्पाकानान्ध्रका २.७३.१०९
लम्पाकारान् २.३१.८४
लम्बमान ३.२३.३७
लम्बोदरा २.७.३८९
ललाटगण्डयो ३.४४.१२७
ललाटन्तप ३.४०.४१
ललितां शरीणं ३.२९.७९; १०१
ललिता चक्र ३.२०.९०
ललिता तां ३.२९.१३७
ललितादर्शन ३.३३.८५
ललिताध्यान ३.३२.५
ललितापरमे ३.१६.७; १७.३७; ३०.६; ३३.३१
ललितापूजन २.३२.२०
ललितामन्त्र ३.३३.९; ३८; ३४.९२
ललितायां कार्य ३.२०.४५

ललितायां भक्ति ३.३३.४
ललिताया जपै ३.३५.४७
ललितासदृशा ३.२६.७४
ललितासम ३.१९.५३
ललितासैन्य ३.२५.५३
ललिता सैव ३.३९.१४
लवणेन १.१५.१३
लवाल्लवं २.७४.२०५; २४०
लवास्त्रिंश ३.१.२१३
लशुनं गृंजनं २.१४.२२
लाभालाभौ १.७.५७
लालाट्या २.६६.७३
लिखन्तु सर्वे ३.३७.९१
लिखितामिव ३.४१.४८
लिखित्वा ३.४१.६०
लिखेद्रोचन ३.४१.४०
लिंगं प्रपात १.२७.३०
लिपिकल्पद्रुम ३.४४.२२
लिप्सां चक्रे २.७१.३३
लीयन्ते रश्मयो १.२१.५२
लीयन्ते सर्व ३.३.२४
लीलया २.३२.५५
लीलामात्र ३.४०.३०
लुब्धा अनृत २.७४.२०४
लुलिता क्रीडता २.६९.२०
लेखाया १.२१.५५
लेख्येव सचित्र २.४०.४१
लेभे जाम्बवतीं २.७१.४९
लेलिहानाय २.७२.१६४
लेहिष्यस्य २.७४.७९
लोककृल्लोक १.१.६
लोकत्रयस्य १.३८.२२
लोकत्रयैक १.२५.७०
लोकद्विषं ३.१९.८३
लोकपाला: १.१.७९; २.१.१५६
लोकपालोपरि १२.११.८५
लोकसंव्यव १.२१.१६६; २४.१४७
लोकसन्तान १.२१.१०३
लोकहेतो ३.५.८
लोका: सन्तानका २.९.५२; १०.३
लोका: स्वस्था २.६३.४३
लोकानां स २.६१.७
लोकान्तरं च ३.२.२१२
लोकान्प्रकल्प १.५.२९
लोकान्सप्त ३.२.२८१
लोकापवाद २.५१.६९
लोकार्द्धे समिता १.१९.१५३
लोकालोक १.२१.१०१
लोकेऽप्यथा २.४.१४
लोके त्वमपि ३.४०.२८
लोकेनालो १.२१.१०७
लोके वेदे १.३४.५१
लोके रेष्ठतमं २.१६.१
लोकेषु तेषु २.१०.९४
लोकेषु सर्व ३.३.३५
लोकोत्तरे ३.२३.९६
लोपामुद्रा ३.४२.१४
लोभमोह ३.९.६०
लोभेन हत १.२.२१
लोमपादं २.७०.३८
लोलेक्षणायै २.३९.४२
लोहादिसप्त ३.३२.१
लोहिण्यो २.६६.७१
लोहिताक्ष १.२०.१८
लौकिकं ३.४३.३९
लौकिकेन १.२९.५
लौहित्ये २.१३.१०३

व

वंश: करीर: २.१४.२१
वंशभाजस्तु २.७४.८८
वंशस्य कारणं २.६३.१५८
वंशानामानु २.५९.२; ५
वंशे तु यस्य ३.३८.७३
वंशे प्रधाना २.६३.२१४
वंशे महति २.२८.४६
वंश्यानुचरितं १.१.३८
वक्ता वेद २.१५.४९
वक्त्रश्रिया ३.४०.१२६
वक्त्रांगहस्त २.७.३८८
वक्त्राद्यस्य १.५.२०८
वक्ष्यमाण ३.३३.७
वक्ष्यामि तान् १.१.४०
वक्ष्यामि नाम १.१२.७
वक्ष्यामि विधि २.११.८
वक्ष्याम्येतान् १.३६.५
वच:श्रुत्वा १.२५.१४
वचनं जगृहु ३.७३.३२
वज्रघोष ३.२१.८१
वज्रप्रभा ३.१७.३
वज्रप्रवर्त्तनं १.१.९३
वज्रबाणाभि ३.२३.४७
वज्रबाणै: ३.१६.३२
वज्ररत्न ३.२३.८७
वज्ररत्नैक ३.३३.३०
वज्रशक्ति: ३.३७.१७
वज्रसंहनना: ३.५२.३
वज्रस्फटिक १.२५.२५
वञ्चितान् २.७३.२३
वञ्चिता बत २.७३.२४
वत्सं चित्ररथं १.३६.२२१

वत्सं तु मम	१.३६.१९४
वत्सं वैश्रवणं	१.३६.२१६
वत्सं स्वायंभुवं	१.३७.१४
वत्सं स्वारोचिषं	१.३७.१५
वत्सः सुमाली	१.३६.२१९
वत्सः सोम	१.३६.२०४
वत्सराये	२.१.६०
वत्सरो	१.३२.१०१
वत्सागच्छ	३.३०.५७
वत्सागच्छेति	२.२९.७१
वत्सारान्निध्रुवो	२.८.३०
वत्सा विदा	२.१.१००
वत्से त्वं	३.२६.२९
वत्से त्वमति	३.२६.८१
वदस्व किं	२.५९.८१
वधार्थं सुर	२.७१.१०२
वनं पुष्प	२.१६.२९
वनमाली	२.३६.३०
वनवास	२.२८.१८
वनस्पतीनां	२.७.४६०
वनानां प्रथमं	१.३१.११०
वनायुजाश्च	३.१६.१६
वने चैत्ररथे	२.६६.६
वन्दे वशिन्या	३.३०.२५
वन्यमूल	२.१४.२९
वयं तप	२.७२.११३
वयं दीक्षां	१.३६.१३४
वयमभ्युप	२.७१.३२
वयांसि	२.२६.१०
वरं वरय	२.२५.३४; ३९.४७
वरं वृणीध्वं	३.१२.६
वरदानास्त्र	३.२४.९५
वरदानेन	२.६८.८९

वरदाभय	३.४४.७७
वरदो नाम	३.४४.६९
वरमर्हामि	२.५४.४१
वरमागमनं	२.५६.३९
वरयामास	२.७१.१२
वरस्थिरं	३.४४.९४
वरांशो ह्येष	१.२१.१३०
वराभयालंकृत	२.३९.४०
वराभीति	३.४४.२०
वराहयूथपाः	२.२६.२९
वराहेऽस्मिन्	२.७२.७२
वरिष्ठाश्च	१.३६.५२
वरुणं च	२.७२.५४
वरुणश्च	२.५.९५
वरुणश्चैव	३.४४.३०
वरुणस्य	२.५९.६
वरेणच्छन्द	२.७२.१५७
वर्जनीयानि	२.११.७२
वर्णकर्माणि	१.७.१७०
वर्णत्रय	३.५.२८
वर्णधर्मश्च	१.७.१६०
वर्णमेवा	२.६२.२४
वर्णव्यत्यास	१.३१.८१
वर्णस्तथा	३.१.६०
वर्णस्थान	२.६२.२२
वर्णज्ञस्य चैवालं	२.६२.२५
वर्णानां विपरि	१.३१.६
वर्णांशो नन्दना	१.१६.२८
वर्णाश्रमपरि	२.७४.२१२
वर्णाश्रमविभा	१.३१.१२७
वर्णाश्रमविरुद्धा	३.२.१७७; ३.४०
वर्णाश्रमव्यव	१.२.५५; ३०.४
वर्णाश्रमाः	२.७.४०९
वर्णाश्रमाचारकृतः	१.७.६९

वर्णाश्रमाचारयुक्तः	१.३१.१०७; ३३.७४
वर्णाश्रमाचारयुक्ता:	१.१४.४१
वर्णाश्रमाचारयुतं	१.२९.४६
वर्णाश्रमाचारयुतः	३.२.३१३
वर्णाश्रमाणां	१.३१.३६; ३.३९.२६
वर्णाश्रमेभ्यः	३.२.१३७
वर्णाश्रमेषु	१.३२.२३
वर्ण्यमाना	३.३७.८७
वर्तते मदिरा	३.२०.७३
वर्तते मदिरा	३.२६.११
वर्तते रथ	३.३२.२८
वर्तते विन्ध्य	१.२४.७२
वर्तन्ते दिवि	१.१२.५२
वर्तन्ते वर्त	२.९.१५
वर्तन्ते साम्प्रतं	१.२७.४४
वर्तमानस्ततः	१.२७.४४
वर्तयन्ति	१.३६.२१२
वर्धन्ते च	१.२१.१२३
वर्धन्ते तेजसा	२.३.१२१
वर्धमानमयो	३.१२.२०
वर्धमानो	२.७.२७९
वर्धिनी च	३.४४.७०
वर्षं रमणकं	१.१५.६२
वर्षं हैरण्वतं	१.१५.६६
वर्षत्यजस्त्रं	२.११.४०
वर्षद्वयेन	२.४६.३२
वर्षन्त्येते	१.२२.४४
वर्षन्त्यो	३.३२.३०
वर्षा धर्मो	१.२२.११
वर्षाणां च	१.२४.१२८
वर्षणां चापि	१.२४.१४१
वर्षाणि तत्र	१.१९.७१

वर्षाणि पर्वता १.१९.४६
वर्षाणि यानि १.१५.४६
वर्षास्वति २.१४.१४
वर्षे किंपुरुषे १.१७.५
वलभ्यलिंदां २.२६.६०
वल्गाविभाग ३.२२.९१
वल्लीकीवेणु १.२५.३२
वल्लभो ३.३६.१३
ववर्ष शर ३.२६.९९
ववर्षाश्चर्य ३.१५.३६
वबुश्च परुषा ३.५७.५०
ववृधाते २.४०.३०
ववृधे च २.५१.३६
ववृषुर्जल २.४०.७
वशिनी चैव ३.१९.४८
वशिन्याद्य ३.३७.२
वशिन्याद्या ३.३७.३
वशिष्ठपुत्राः १.३६.३८
वशी चकार २.२२.७४; ७५
वशे तिष्ठन्ति २.१६.३५
वश्यामात्य २.५१.१५
वषट्कार २.७२.१८६
वसति तेषु १.१५.३१
वसन्ति २.३२.५
वसन्ते कपिलः १.२४.४१
वसन्ते चैव १.२४.३२
वसन्तेन च ३.३०.६८
वसिष्ठं २.६३.१५
वसिष्ठनामा २.६९.४४
वसिष्ठमाश्रमो २.४८.३०
वसिष्ठश्चापि १.१.१६
वसिष्ठश्चैव १.३२.११५
वसिष्ठसंश्रृति १.१.१५२
वसिष्ठस्तु २.६३.१७७
वसिष्ठस्य २.८.९७
वसिष्ठेनैव २.५४.२३
वसिष्ठो २.६३.१३६
वसुदेवकुले २.७२.९
वसुदेवश्च २.७१.२३५
वसुदेवस्तु २.७१.२०९
वसुदेवात्मजः २.३६.२२
वसुदेवो २.७१.१४६
वसुधातल १.३०.३२
वसुध विचिता २.५३.१०
वसुमध्यात् २.१.४६
वसुमित्र २.७४.१५२
वसुरेताय २.७२.१६६
वसोर्वाक्य १.३०.४७
वस्त्राभावे २.१६.४८
वस्त्रै रत्न २.११.५०
वस्वादित्य २.२५.२४
वस्वौकसारा १.२१.३०
वहत्कोपा ३.२९.६१
वहन्ती ३.३५.३२
वहन्ती मुण्ड २.३९.३४
वहन्मुहु ३.२५.२३
वह्निप्राकार ३.२६.१९; २९.३२
वह्निबाणं ३.१९.३०
वाक्यार्थ २.६२.३
वाक्सिद्धि ३.३६.५३
वाग्भवादीनि ३.४४.१३
वाग्युद्धं २.४१.५२
वाङ्मनःकर्म १.१३.५७; ३१.२०
वाचामगोचर ३.१८.६
वाचा वाच ३.३८.४३
वाचा वृद्धानृ ३.१.१०९
वाचा वृद्धाश्च ३.१.१०७
वाचोरणिः १.२.४४
वाचोवेदा ३.४.७२
वाजश्रवाः १.३२.१०२
वाजिपो ३.१.५८
वाजिमेधं २.५२.३६
वाजिवक्त्र ३.१८.१३
वाञ्छितार्थ २.५७.१६
वातपात ३.१०.५५
वातपुत्रो २.७.९६
वातश्चैव २.७१.१३८
वातस्कन्धाधिपा २.५.८४; ८५; ८७; ८८; ८९
वातात्मिका १.१०.७०
वातानीक १.२२.९
वात्सल्यसहिता ३.४१.७०
वाताः सम १.३४.५२
साद्यादिभि २.२७.३७
वानप्रस्थाय २.१५.३५
वानप्रस्थेन २.१५.३६
वानप्रस्थो २.१५.१६
वानराकृतय २.७.३९०
वानराः किन्नरा २.७.१७६
वापः स्यादव २.६२.२०
वाप्याममृत ३.३५.५
वामजानौ ३.४४.११०
वामदेव ३.३९.५६
वामदेवोंऽजनः २.७.३३९
वामनेन २.७२.७७
वामभागे २.३२.२३; ३.३६.३०; ३९.१०६
वामया ३.४४.३७
वामांसेन ३.१०.८१

वामेतरो	२.२१.५३
वामेवामे	३.१०.१८
वायतेजो	१.३४.५
वायव्यमस्त्रं	२.३८.४४
वायव्याभि	१.२३.९३
वायव्यः	१.१३.९३
वायुं कृत्वा	१.३७.१३
वायुं पुरा	१.२२.४५
वायुः प्रजापति	१.१३.१३४
वायुः प्रवेशनं	२.७२.५१
वायुना तस्य	१.१.४४
वायुभूत	३.७.४१
वायुभूतं पतिं	३.७.४४
वायुर्दश	१.३.३३
वायुर्भुव	३.२.२०
वायोः संचर	१.१०.७२
वायोः स्पर्शश्च	१.२६.३७
वारणो वारणा	२.७.३५०
वारयामास	२.४४.२५; ५१.५७
वाराणसीं किमर्थं	२.६७.३०
वाराणसीं महा	२.६७.३९
वाराणस्यां	२.१३.१०१; ७४.१२८
वाराहेण	२.१९.५
वारिजा	२.७.२३
वारि सुस्राव	२.६३.५६
वारुणा भृगव	२.१.३९
वारुणीतरणि	३.३५.३३
वारुण्या	३.३३.६५
वार्जिनीव	२.७०.१६
वालकांड	३.२२.६१
वालखिल्याः	१.३५.९४
वाली विजित्य	२.७.२६७
वासन्ती	३.२४.७७
वासितार्थे	२.२२.१८
वासुकेः	३.९.५७
वास्तोष्यते	२.७२.१७५
वाहनादवरुह्येश:	३.१०.४३
वाहशीला तु	२.७.४६८
विंशतिर्योजनं	३.३६.३६
विंशतिः सुतपा	३.१.१६
विंशत्यक्षौ	३.२२.७६
विंशद्धनंषि	१.७.११२
विकचः कपिलो	२.७.३३३
विकटः कवटो	२.७.२३८
विकटः स्तब्ध	१.२७.४२
विकटानन	३.२४.५०
विकटाय	१.२७.७६
विकर्णाख्यश्च	३.२४.४९
विकलाश्छिन्न	३.२३.७५
विकसत्कुसुम	३.१०.५१
विकसत्सु	२.२६.१५
विकारपारं	२.१९.६४
विकारेष्ववि	३.४.७
विकारैः प्रति	३.४.१२
विकासि	३.३७.५५
विकीर्णकेश	३.२३.२६
विकीर्णकेशो	३.२९.७
विकीर्यमाणः	२.४९.२४; ५५.१७
विकृतस्त्रस्त	१.२७.११
विक्रांता	२.६७.७९
विक्रोश्य	२.५३.४५
विक्षोभश्च	२.६.६
विख्यातं	३.३९.१६
विख्याता	२.६३.६६; ७१.७२
विख्यातो	२.७१.१८८
विख्यापनं	२.१४.२१२
विख्यापनार्थं	१.१.१३
विग्रहो	२.७२.४२
विघ्नं तन्त्रा	१.१३.७१
विघ्नेशो	३.४४.६५
विचचार	२.२२.४५; ६२
विचरत्य	१.२५.१०५
विचरन्तु	२.५.१०१
विचारणाच्च	१.३१.२१
विचार देवैः	२.७१.२४४
विचार्य यस्माद्	२.७४.९१
विचित्य	२.५३.४
विचित्रवीर्य	२.१.७०
विचित्रवेषा	२.२७.२
विचित्रांगान्	२.२६.६५
विचित्रार्थ	२.२४.३
विचिन्त्य	२.४०.४२
विजगाह	२.२६.३९
विजज्ञे मणि	२.७.१२२
विजज्ञे वै	२.७.१२७
विजयश्री	३.६.३०
विजयस्य	२.६८.९
विजिगीषु	२.४८.१०
विजित्य	२.४८.२२
विज्ञातश्चैव	२.४.३
विज्ञाता चैव	२.३.७
विज्ञापना	३.१९.८८
विज्ञायेश्वर	३.२.२७२
विज्ञेयः स तु	१.१९.६४
विडंवना	३.२१.३८
विततानेक	२.२२.३४
विततार	३.२७.१०४
वितिर्नियो	२.३.१७

वित्तः क्रतुः	१.३६.३१	विनयाचार	२.५२.५	विप्रतितित्तिं	१.८.७
विदार्य रामस्तं	२.४०.१५	विनयेनोप	१.१.१८	विप्रशापेन	२.२५.५८
विदिते तु	३.४३.४८	विना तां	२.५०.२२	विप्रास्तथा	३.४.४२
विदीर्णमिव	३.२६.६९	विना पतिमहं	३.७.४५	विप्राः सर्वेऽपि	३.९.३४
विदुर्जन्मर्क्ष	२.१.५८	विनायक	१.२५.३०	विभवेऽमर	२.२५.१०
विदूरभावा	१.२१.५४	विना यज्ञोप	२.१४.१०३	विभागमस्य	१.६.६०
विद्यते	२.२१.८०	विनाराधनतो	३.१२.४१	विभातीयं	३.१४.१६
विद्याधिदेवता	३.१४.६	विनाशितेषु	२.५६.२५	विभातीवाहित	२.२२.५१
विद्यायाः	१.३२.३४	विनिघ्नन्	२.४६.२९	विभायामर्ध	१.२१.३९
विद्यारूपस्य	३.२९.९०	विनिघ्नन्सर्व	२.७३.११४	विभिन्दन्तश्च	३.२७.९६
विद्युतोऽत्र	२.७.२४	विनिद्राक्षः	२.२८.९	विभिन्नराज्य	२.४८.३३
विद्युतोऽशनि	१.५.८८; ८.५४	विनिवृत्त	१.५.११६; ३५.१९८	विभिन्नास्तु	२.७.५७
विद्युत्पुत्रो	२.७.९५			विभुः पुत्रं	२.६३.१४९
विद्युत्समद्युतिभि	३.१८.९	विनिवृत्ते च	३.१.२३३	विभुः प्रवा	१.१२.२०
विद्युत्स्फूर्जः	१.२३.१९	विनिवृत्ते तदा	३.२.२८९	विभुरिन्द्र	१.३६.६१
विद्युद्गुण	१.२२.३४	विनिवृत्ते प्रजा	२.२.१	विभुर्लोकस्य	३.२.२३२
विद्युन्माजि	३.१९.७५	विनिष्कृष्य	१.१.११०	विभुस्तथा	२.४०.३५
विद्राव्य	२.२९.२१	विनीतश्च	१.३६.४०	विभ्रष्टव्य	३.२६.६
विद्रुमद्रुम	३.१९.२२	विनीता नव	३.३८.५९	विभ्राज	३.३९.८२
विधत्स्व भागं	२.६७.१३	विनैवाज्ञां	२.३१.३५	विभ्रान्त	२.७३.२१
विधातापि	३.९.४४	विनोदेन	३.३९.८४	विभ्रान्ताः	२.७.११५
विधाताम्लान	३.१५.५७	विन्दानुविन्दा	२.७१.१५८	विमले च	२.१३.३८
विधाता सर्व	१.१३.१३३	विन्ध्यकानां	२.७४.१८६	विमानचारिणः	१.२५.५०
विधिना	२.६४.१८	विन्ध्यपाद	१.१६.३४	विमानयानै	२.१०.३६
विधिरन्यै	३.२.२२९	विन्ध्यशक्ति	२.७४.१८४	विमुक्तपाश	२.२९.१९
विधिर्हौत्र	१.३२.६४	विन्ध्यश्च	१.१६.१९	विमोहे पतते	३.२.१५९
विधिवज्जुहुवु	३.१२.६८	विपन्नमुसले	१.७.१७७	विरजं चैव	१.११.१३
विधिवत्कृत	२.२६.१२	विपर्ययं तु	२.७४.६०	विरजां	३.१.२२
विधीर्यते	१.१२.२८	विपर्ययेण	१.५.६१; ७.८१	विरजा नाम	२.१०.७५
विधूय शर	२.३९.१५	विपश्चिदिन्द्रो	२.३.१५	विरजे	२.१३.८४
विधौ नित्यं	३.३९.७४	विपादकाः	२.७.३९९	विरजो	२.७.२१२
विध्वस्त	२.५२.६	विपादांगारिका	२.७.३८२	विराजमसृजद्	१.९.३९
विध्वस्यमाने	२.५२.७	विपाप्मा	२.६३.२१६	विराटप्रमुखा	२.६३.११
विनयश्च	२.६३.११८	विप्रकृष्टेषु	२.१४.७८	विराटसुतो	१.१४.६९

विराधस्य	१.२०.२९
विरुद्धलोका	२.२३.५९
विरेजु	२.५३.३४
विरोचनकुलं	२.७३.८६
विरोचनस्यच	२.५.४१; ५९.२०
विललाप	२.३०.९; ४६.३
विलसत्तिल	३.३९.९०
विलीना	३.१०.८६; २१.७१
विलोक्य	२.५२.२९; ५६.४३
विलोक्यमानो	२.४७.८०
विलोक्य वि	३.२७.३५
विलोहितैक	२.७.३९
विवर्णरस	१.१०.३४
विवस्वांस्तु	२.५९.६५
विवस्वाञ्छ्रावणे	१.२४.३६
विवस्वानदिते:	१.२४.८८; १२९
विवस्वानेव	२.५९.५८
विवस्वान्क	२.५९.३३
विवादे	१.२५.१०२
विवाहं	२.५१.५०
विविक्तदेश	३.४१.८१
विविक्तरथ्या	२.२७.१४
विविध:	१.१.१३८
विविधा	३.२८.६९
विवृत्तिसम	१.३२.८६
विवृत्य	२.२१.५६
विवेश तच्चन्द्र	१.१०.६१
विवेश तत्तदा	१.१०.२३; ४७;५२
विवेश तस्य	१.१०.४३
विशन्ति	१.१९.१२९; २४.८०
विशल्यकरणी	१.१९.३९
विशश्राम	२.२६.४१
विशस्ता	३.२.१६८
विशाखानां	१.२१.१४६
विशालभोगो	१.२०.४८
विशालस्य	२.६१.१३
विशिखान्	१.९.७१
विशिष्टा	३.३१.८१
विशुक्र भवता	३.२७.२४
विशुक्रं नाम	३.१०.८०
विशुक्रं मर्द	३.२८.१०६
विशुक्रश्च	३.२१.२५; २७.१०
विशुद्धमुक्ता	१.२५.४०
विशुद्धिबहुला:	१.६.३०
विशेषं ज्ञातु	२.६६.७८
विशेषतस्तु	२.४१.४४
विशेषेणा	२.७२.१३८
विशोका:	१.७.४७
विश्रुतं यत्	२.५८.१८
विश्रुतास्तु	२.३.७६
विश्वं सिसृक्ष:	१.२.२७
विश्वं हि	२.६६.४९
विश्वकर्मात्मजा	२.५९.२१
विश्वकर्मा सुर	२.५९.१७
विश्वकर्मा स्वयं	१.२.१९
विश्वतारा	१.३.३
विश्वस्तद्रव्य	३.७.५
विश्वस्फाणि	२.७४.१९३
विश्वस्य	२.७.३
विश्वाची	३.९.७८
विश्वाच्या	२.६८.७०
विश्वामित्रं	२.६६.५८
विश्वामित्रप्रसा	२.६३.११४
विश्वामित्रस्तु	१.३२.११७; ६३.१०९; ६६.६५
विश्वामित्रस्य	२.६६.६६; ६८
विश्वास	२.७२.१८८
विश्वावसु	३.१४.४; २०.१०१; २३.१०
विश्वावसु:	२.६६.२३
विश्वे च	२.१०.१०९
विश्वेदेवास्तु	२.३.३०
विश्वेश्वर	१.२७.६६
विषं हन्त्यु	२.२८.४१
विषंग: परम:	३.२५.१००
विषंगमनु	३.२५.४६
विषङ्गस्तु	३.२१.४८
विषण्णवदना	२.६७.३७
विषं तस्य	१.२५.१००
विषयं स	२.४८.११
विषयाविष	३.२.३०२
विषयैर्मरुतो	१.२.४१
विषाणखुर	२.२९.२०
विषादमगम	२.५७.७०
विषादव्याकुला	१.७.१२३
विषुवं तं	१.२१.१४७
विशेण	३.२८.३९
विष्कम्भ	१.२१.८
विष्टभ्य	२.७.२४८
विष्णुं कीर्ती	१.१३.८०
विष्णुं शिवं	३.३९.१०४
विष्णु: किमर्थं	२.७२.४
विष्णु: प्रजा	२.३.११
विष्णुना च	२.३.४४
विष्णुना रक्षितं	२.७२.१३५
विष्णुस्तेषां	२.७१.२६२
विष्णो: पदानि	२.३५.४३

विष्णोरंशेन १.२९.७८; २.५२.१५; ५७.१५
विष्णोश्च ३.२१.४०
विसर्ग २.६१.१
विसर्जयामास २.३४.३५
विसस्मरु ३.१२.३२
विसृष्टस्तेन २.२५.४३
विस्तरं तस्य २.५९.८५
विस्तरस्तु १.३५.१६३
विस्तराच्च १.५.६०
विस्तरान्म १.१५.९; १९.१९२
विस्तरावयवं ३.१.४
विस्तरेण १.३६.११
विस्तरेणानु १.१.३५; २.४८; ११.४५; ३६.४२
विस्तरेणैव २.७२.६
विस्तारमपि ३.३१.४१
विस्तारान् १.२४.१०६
विस्तीर्ण १.२०.५३
विस्तीर्णं १.२४.१२०
विस्फूर्जनो २.७.१३४
विस्मितो २.३९.३०
विस्मृत्य ३.११.२६
विस्वरोऽष्ट २.६२.१०
विहरति १.१९.६०
विहाय १.५७.७१; ३.२.२७७
विहारार्थं २.७३.९९
विहित: २.७.३२३
वीक्ष्यमाणो २.२२.४६
वीज्यमानो २.२२.४७
वीणावती ३.१७.३४
वीणावेणु २.२८.२; ५५.१३; ३.१५.३०
वीतरागा १.३५.७; ३.२.८७
वीथ्याश्रयाणि १.२३.५२
वीरकं २.४१.२८
वीराभिमानिन: २.३९.४
वृको वृकाश्वो २.७१.२५२
वृक्षगुल्म १.७.१४९
वृक्षमूलप्रदेशे २.७.२५१
वृक्षस्यार्वाग्गता: १.७.११८
वृक्षाणां ३.३४.११
वृक्षाणामौष १.१.५१
वृक्षाश्च ३.३४.७
वृतो महान् १.२१.२८
वृत्तं वज्रं १.७.१०८
वृत्तभावा १.१७.२१
वृत्ता कर्म २.७.४१७
वृत्ताकृति १.१५.१७
वृत्तिराशी १.३६.५४
वृत्तिरेषा २.१५.५१
वृत्तीनामेष १.३६.११२
वृत्त्यर्थमभि १.७.१४०
वृत्रकाया १.१८.१४
वृथा मुण्डाश्च २.१५.४२
वृथा व्रती २.१४.४१
वृद्धस्त्रीबाल २.४८.३९
वृद्धाश्चा १.३२.३१
वृद्धिक्षयौ १.२३.७९
वृन्दाप्राणेश्वर: २.३३.२५
वृन्दावनान्त २.३६.३२
वृषं यस्तु २.१४.३७
वृषदर्भ: २.७४.२३
वृषदर्भा: २.७४.२४
वृषस्थ तु २.६.३४
वृषोत्स्रष्टा २.१९.१५
वृषो भेत्ता १.३६.५७
वृष्टिरोषधय २.७२.९८
वृष्टिर्गर्भ १.२२.४०
वृष्ट्यर्थं १.१९.८५
वृष्ट्या क्षितौ १.६.५२
वेगवत्यश्च २.७.२१
वेगात्प्रपततो ३.२७.२८
वेणीकृत ३.१९.२९
वेणी वैतरणी १.१६.३३
वेत्थ वाच १.२५.१३
वेदं च वेदितव्यं २.१९.६७
वेदघोषै: २.८.३६
वेददृष्टेन २.४९.२१
वेदना: कटुका: ३.२.२०८
वेदमन्त्र १.२७.२१
वेद मिथ्या २.७१.५४
वेदविप्लावका ३.२९.१३२
वेदवेदांग २.७.१९१
वेदव्यासस्ततो २.७३.९३
वेदव्यासे १.३५.१२६
वेदशाखा १.३३.२१
वेदशास्त्र १.३१.२७
वेदस्कन्धो १.५.१७
वेदस्य वेदितव्यं २.१९.६६
वेदांश्चैवा २.१७.१६
वेदानध्याप २.३५.१४
वेदा न शक्ता २.३२.२७
वेदा नि:श्वसित ३.३९.३२
वेदान्यस्त्वामृते २.२८.४४
वेदे नाश १.३४.६
वेदे स्मृतौ ३.१.३०
वेद्यर्द्धे दक्षिणे १.१५.३७
वेद्यो यो २.७२.४०

वेलां च १.१३.३७
वैकारिकाश्च २.७.४३४
वैकुंठा नाम २.३.५८; ४.३२
वैकुंठाश्चाक्षषे २.३.६७
वैकुंठो दक्षिणे २.३२.३
वैकुंठो नामतो २.३.११७
वैखानसा २.१.५७
वैदर्भी रुक्मिणी २.७१.२४२
वैदलानां २.१४.६२
वैदूर्याख्य ३.३३.४१
वैद्युतस्याग्नि १.२०.३६
वैद्युतेन १.२४.१३
वैद्युतो जाठरः १.२४.१२
वैद्युतो वैद्युत १.२४.३४
वैनः प्राचीन १.३५.४५
वैनतेय १.१.११६
वैन्यः पृथु १.३२.१०६
वैन्येनेयं पुरा १.३७.२०
वैभ्राजं सुरभिं २.७.१०२
वैमृगः २.६.११
वैराग्यमात्म १.९.९०
वैराजमुप ३.२.६०
वैराजः पुन ३.२.६५
वैराजा यत्र ३.२.१४१
वैराजास्ते ३.२.७०
वैराजेषूप ३.२.६३; ६६
वैलाटशिखरे २.१३.१८
वैवर्त्येन तु १.५.६३
वैवस्वतनि १.३७.५८; ३.१.३६
वैवस्वतस्य १.१.१०९; ३७.६०; २.५९.८६
वैवस्वतांस्तेषु २.४.२३
वैवस्वताय २.१२.३९
वैवस्वतेन १.३६.८१
वैवस्वतेऽन्तरे १.३६.१९९; २.३.६०; ३.१.२९
वैवस्वतो १.२१.३१; ३.१.५२
वैशम्पायन १.३५.८; २७
वैशाल्या २.७१.१७४
वैश्यं दश २.६.४३
वैश्यस्तु लभते १.२५.१०८
वैश्यानित्येव १.७.१५७
वैश्यायामदधा २.७१.१८५
वैश्यावद् ३.८.५०
वैश्योऽपि २.५१.३१
वैश्रवणानुज २.७१.१६०
वैश्वदेवं च २.१४.५
वैश्वरूप्यं तु १.२८.९९
वैश्वानरं २.३.४७
वैश्वानरा ३.२.२८०
वैषुवायन ३.२९.५
व्यक्तं तर्केण ३.२.२१३
व्यक्तानि तु ३.२.१४
व्यक्ताय १.२५.७२
व्यक्ताव्यक्तं १.१.१४५
व्यक्ताव्यक्तस्वरू २.२४.२७; २५.१८
व्यक्तास्यं ३.१७.१०
व्यक्तैः ३.४४.६
व्यजनं २.१६.९
व्यजायत २.७१.१९०
व्यजृम्भत २.५३.२७
व्यञ्जयन्त्सो ३.२८.३०
व्यतीताः ३.२.५७
व्यतीतौ १.५.८०
व्यतीपाते १.२८.४०
व्यथितातित २.२९.१८
व्यद्रवन्त २.७२.१३३
व्यपगत १.२७.१२८
व्यपेतकोशा ३.२.२१५
व्यभ्राजता २.२७.२८
व्यसिष्यति २.१३.७७
व्यस्तदण्डा १.२९.७०
व्यस्मयन्त २.५८.२३
व्यस्यते १.३५.१४४
व्याकर्षणं २.१५.४५
व्याकुलाश्च १.३१.९४
व्याख्यातु ३.४.९
व्याघ्रस्य २.७.२०९
व्याघ्रादि ३.२२.१७
व्याघ्रेणा २.२५.५३
व्याधजाति २.२३.४६
व्याप्तानि २.७.४५२
व्याप्यज्योत्स्नेव ३.२.२६६
व्यामेनैवोच्छ्रयो १.२९.७३
व्यालानां २.७.४७७
व्यालैः ३.२३.३२
व्यासाः १.३३.३३
व्याहारै ३.२.१८
व्युच्छिद्य १.२८.४८
व्युच्छिन्न १.६.९
व्युष्टायां च ३.१.१९७
व्युष्टायां तु १.२४.७
व्रजसाराश्च ३.२३.८३
व्रतं चर २.७२.११९
व्रतं पाशुपतं १.२७.११६
व्रतस्यास्य २.४७.८९
व्रतैश्च २.४४.३४
व्रतैस्तपोभिः २.४४.३७

व्रतोपवास	२.३३.३३
व्रतो विष्णु:	१.३६.५६
व्रात्यतां	२.४८.४७
व्रियतां च	२.५४.३८
व्रीहयश्च	१.७.१४४
श	
शंयुस्त	२.९.४९
शंसन्ति	२.७०.२३
शंस्यस्त्वाह	१.१२.१२
शका भद्रा:	१.१६.४८
शका यवन	२.६३.१४०
शकुनानि	२.३८.३०
शक्तय: षष्टि	३.३२.६२
शक्तयस्तास्तु	३.२४.७१
शक्तयो	३.२४.७२
शक्तिचक्र	३.२६.८
शक्तिचक्रे	३.४१.४५
शक्तिच्छन्दो	३.२२.४३
शक्तिध्वस्त	३.२९.५२
शक्तिनाशा	३.२९.६५
शक्तिप्रज्ञा	१.२.३५
शक्तिरन्या	३.२४.३२
शक्तिरूपा	३.१९.८४
शक्तिरेव	३.२१.५९
शक्तिर्ज्येष्ठा	१.२.१०
शक्तिसेनां	३.२९.७८
शक्तिसैन्यानि	३.२६.६५
शक्तिस्तु	३.२१.६०
शक्तीनां	३.२२.३४; २४.३७; २५.६५
शक्तीनामखिलं	३.३०.५
शक्तोऽसि	२.७.२५८
शक्त्यैकराज्य	३.१८.५
शक्रोप्यपि	२.२६.५२
शक्र: सर्वेषु	२.५.६१
शक्रस्याग्नेर्य	३.२६.५३
शक्रस्यापि	२.२३.२१
शक्रहन्तार	२.५.४९
शक्रादय:	२.३२.२८
शक्रेण	१.२२.४१
शङ्कमानो	२.७४.१८७
शङ्कर:	२.३२.५२
शङ्करस्तु	२.४०.६२
शङ्कराय	१.२७.७०
शङ्कामवापु	२.२१.५८
शङ्कुकर्णो	२.८.५८
शंखकुन्द	३.१.१६१
शंखचक्रगदा	१.२६.१२
शंखणस्य	३.६३.२०६
शंखाख्यस्य	१.२०.२२
शंखिनी	३.४४.६०
शंडामर्क	२.७३.६३
शचीन्द्रौ	३.४३.७५
शतं कोटि	३.२.९६
शतं च	२.७४.२६८
शतं तानि	२.७.३७३
शतं पूर्णं	२.७४.१५६
शतं वर्ष	२.५.१४; १०.१०
शतं वै	२.७४.२६७
शतं सहस्रं	३.२.२३१
शतक्रतुश्च	२.३.६२
शतद्रुश्च	१.१६.२५
शतधन्वा	३.३४.२८
शतब्राह्मण	३.६.४२
शतमक्षौ	३.२३.९; ५०
शतमाहु:	३.२.१००
शतयोजन	३.२१.५; २६.२०; ३०
शतरुद्रिय	३.३४.५२
शतरुद्रे	१.९.८४
शतवेरि	२.७.४३८
शतसंख्यै	१.१८.२०
शतसूर्य	१.२६.१३
शताक्षौहि	३.२३.९१
शतादीनि	३.२.१०३
शतानां च	३.१.२२४
शतानि त्रीणि	१.२९.१०; २.७४.१७५
शतानि संहि	२.६३.२०८
शतानीको	३.१.७२
शतारैश्च	१.२३.५४
शते द्वे	१.२१.८४
शत्रून् हन्तुं	२.४८.७
शत्रैर्वधे	२.५.७७
शनैरिव	२.२१.५७
शनैश्चरं	१.२४.७१
शनैश्चरो	१.२४.८३
शत्रोऽस्तु	१.१०.८८
शप्त: पुरा	२.३०.७०; ४२.३७
शप्ताऽहमस्मि	२.५९.५७
शब्दमात्रं	३.३.१९
शब्दादीन्	३.२.२७६
शमयत्यशुभं	१.२५.१०१
शमात्मकं	२.६६.४१
शमात्मकमृजुं	२.६६.५३
शमीपुत्र:	२.७१.१३९
शम्बरश्च	३.२९.१२३
शरच्चारु	३.१०.६८
शरणं भव	२.२४.२८; ४८.६१; ५२.२६
शरणं रत्न	२.१६.१२

शरणागत ३.४१.७१
शरण्यमन्यत: ३.२१.३३
शरद्धन्या: १.२३.१२
शरद्वसन्त १.२१.१२४
शरभ: २.६.१२; ७.३०४
शरमाणा १.६.५३
शरसात्कार ३.२७.९१
शरांश्च १.३६.१४९
शरावसंस्थित १.१५.४४
शरीरं तस्य २.५.२८
शरीरं प्रजहन् ३.३.६९
शरीरत्राण २.२३.४९
शरीरमर्थं ३.४३.३५
शरीरस्येह १.२५.१०३
शरेण चैकेन २.३८.४८
शरैस्तु विक्षता २.१४.२४
शर्मिष्ठाया: २.६८.४६; ७९
शर्व: पशुपति ३.३४.२७
शर्वस्तुल्य ३.४.३०
शर्वस्त्वं देव १.१०.१०
शर्वस्य या १.१०.७८
शर्वेति १.१०.३७
शर्वोऽपि ३.१०.५०
शलश्च २.६.१९
शलात्मजो २.६७.६
शशबिन्दु: २.७०.१९
शशभक्षाद २.६३.१७
शशादस्य २.६३.२५
शशाप तं २.७४.४४
शश्वच्च १.१०.२४
शषासा इति ३.४४.२८
शस्त्रक्षत ३.२८.७५
शस्त्रग्रहण २.५७.२२
शस्त्रजीवी ३.८.४५
शस्त्राघट्टन २.२७.८८
शस्त्रास्त्रग्राम २.३२.५९
शस्त्रेण वा २.१७.१९
शाकद्वीपं १.१९.८०
शाकद्वीपस्य १.१९.१०९
शाकद्वीपे १.१९.१४०
शाकल्य: प्रथम १.३४.३२
शाकल्यवद १.३४.५५
शाकल्येनैव १.३४.५८
शाकिनी ३.२०.१६
शाकै: कार्या २.१७.४
शाखानां १.१.१००
शान्तक्रोधं १.३५.३५
शान्तयित्वा २.७३.११५
शान्ता ये १.७.१३२
शान्तिदेवा २.७१.१८०
शापस्यान्ते २.६७.७२
शापाच्छूद्रत्व २.६१.२
शापान्महेश्वर २.१.९
शापार्थ १.१३.५६
शाम्भवास्त्रं ३.२९.१३८
शार इत्येव १.५.१३५
शार्ङ्गं धनु: ३.२२.७८
शार्दूलहरिभि: २.३५.२१
शार्याता २.६३.४
शलद्वारस्य ३.३१.३७
शालमूल ३.३१.३६; ५२
शालूकिर्नारद २.७२.३
शाल्मलस्तु १.१९.५०
शाल्मस्य १.१४.१२
शाल्मले १.१४.१२
शाश्वता: १.४.६
शास्त्रमौशनसं २.३०.५४
शिखण्डिनी १.३.२३; ३७.२३
शिखायां च २.४०.१२
शिखिभ्यो २.१५.६४
शिथिली ३.२१.१८; २८.५०
शिबे: शिवपुरं २.७४.२१
शिर: प्रावृत्य १.१०.४०
शिरसश्चा १.५.७५
शिरीषकोमल ३.१०.६३
शिरीषदाम ३.३७.७४
शिल्पाजीव १.७.१६३
शिल्पिनां २.३२.७
शिवलोकं २.३१.३४
शिवशक्ती ३.३९.३६
शिवशैला १.१८.४२
शिवस्तु १.१६.३७
शिवस्य २.४२.४९
शिवेनैव ३.११.२९
शिवोऽप्यत्रैव ३.३९.५०
शिवोद्भवमिदं ३.३.६९
शिवो वा यां ३.५.३०
शिवो व्युत्थाय ३.४०.४२
शिशिरर्तु ३.३२.३८
शिशिरेषु ३.३०.९३
शिशुनागा २.७४.१३५
शिशुपाल २.३६.३५
शिशुपालो ३.२९.१२२
शिशुमारस्य १.२०.२७
शिश्नं संव १.२३.१०४
शिश्नं संवृषणं १.२७.१२; ४३
शिष्टाचारा १.३२.५७
शिष्टैस्तु २.१४.८२
शिष्यं ब्रह्म १.३४.४६
शिष्य: स्वय १.२.३९
शिष्यमाहूय ३.४३.२१

शिष्या हिरण्य १.३५.४०
शिष्येभ्य: प्रददौ १.३५.९
शिष्यो यदि ३.४३.४६
शीकरं संप्र १.२२.५२
शीघ्रमागच्छ २.३८.१२
शीतदुर्दिनवाता १.२२.३२
शीतवातातपा १.७.८१
शीतोष्णवीर्यौ १.२२.२१
शीर्षाणि २.१.८५
शीलादि ३.४३.४४
शुकवागमृता २.३६.२७
शुकस्य च १.१.१५१
शुक्रं त्याक्षीश्च २.७४.४३
शुक्रश्रीश्च ३.३२.२५
शुक्रस्याप्यम्ययं १.२४.९५
शुक्राद्गर्भ: २.७२.४५
शुक्रेण च २.६८.८६
शुक्रेणाराधनं १.१.१२९
शुक्रे हुतेऽथ २.१.३४
शुक्रो देवस्तु १.२४.८९
शुक्लपक्षे १.१९.१३१; ३.४३.९
शुक्लप्रतिपदा ३.३२.५८
शुक्लाऽभिजन १.१५.६३
शुक्लास्ता १.२४.३
शुक्लैस्तृणैर्वा २.१४.७१
शुचये परि २.७२.१८०
शुचि: सौरस्तु १.१२.३
शुचिकामा २.१४.११५
शुचेरग्ने: १.१२.४४
शुद्धत्वात्र ३.३.९८
शुद्धषड्जस्वरं २.६१.५१
शुद्धा तृतीय ३.४४.१५
शुद्धा निरंजना: ३.२.३११
शुद्धि: स्याद् ३.८.१०
शुनक: स्वामिनं २.७४.१२३
शुनामुखां १.१८.४९
शुभा: प्रवृ १.२९.५८
शुभे दृष्टे ३.४३.३२
शुभो हवि: ३.१.९०
शुशुभे २.७३.८०
शुश्रूषाभि २.५.५९
शुश्रूषा यत्र १.१७.२
शुश्रूपे २.७२.१५६
शुष्का: पूर्व १.६.४७
शूकरे ब्रह्महा ३.२.१५४
शूद्रा: श्राद्धेष्व २.११.८७
शूद्राणां तु ३.६.४४
शूद्राणामत्य १.३१.४०
शूद्रा धर्मं १.३१.६०
शूद्रावत्स्यात्तु ३.८.४९
शूद्रेणापि २.१२.१
शून्यकस्य ३.२१.९६
शून्यके नगरे ३.२९.२१
शून्यां पुरीं २.६७.५८
शून्यागारप्रिया: २.७.३९७
शून्येषु लोक ३.१.१२५
शूरश्च शूर २.६९.५०
शूरसेना १.१६.४१
शूरसेनास्त्रयो २.७४.१३८
शूरा: स्थूल २.७.३३६
शूरा दीनायत २.७.३४५
शूराश्च कृत २.७४.१०५
शूलं च ३.२९.८१
शूलखड्ग ३.२०.३३
शूलादीनि २.४०.५५
शृंगवान् १.१७.३६
शृङ्गार ३.१७.२३
शृङ्गाराख्य ३.३५.७२
शृङ्गारागार ३.३५.६०
शृङ्गै: खुरैर्वा २.१९.१८
शृणु कुम्भज ३.३०.४
शृणुतांगिरसो २.१.१०१
शृणु तात २.३०.६९; ३१.१५
शृणु तेषां १.३.१
शृणु देवि २.४२.३०
शृणु द्वादश ३.१७.१८
शृणुध्वं मे ३.२.९१
शृणुध्वं यत्र १.२.४
शृणुध्वै वै २.७१.२२४
शृणु प्रिये २.३४.४४; ३५.९
शृणु यैर्भवतो ३.२५.२७
शृणु राजन् ३.३४.५; ३५.४
शृणु राम प्रव २.३१.८
शृणु राम महा ३.३१.१८; ३६.२; ३७.३
शृणु वत्स प्रव २.३३.२
शृणुष्व १.२५.२२
शृण्वन्ति ऋषय: २.३६.१०
शृण्वन्तु ऋषय: २.३१.५
शेपु: शापैस्तु १.२७.१९
शेषकर्कोट ३.३३.३६
शेषशब्द: १.३२.३७
शेषस्य २.७४.१८०
शेषा: पञ्च १.२४.४७
शेषाणां तु १.१९.१८५
शेषाणां प्रकृति: १.२४.४८
शेषाश्चाश्रमिण: १.२७.११७
शेषेभ्यो १.३.२०
शैव्या धन्यानि २.७१.२४३
शैलराजे १.१५.४९

शैलशृङ्गाणि	२.७.४५५
शैवागमा	३.३४.८९
शोक: सर्वे	२.३०.२३
शोभसे त्वं	१.२५.८९
शोभितं	२.३२.८
शौक्रं शुक्रो	१.२४.८२
शौनकस्तु	२.३५.६०
शौर्पारके	२.१३.३७
शौल्कायनि	१.३५.५८
श्मशान	२.२५.९; ३.२४.५३
श्याम:	२.७१.१५०
श्यामकंचुक	३.३२.३
श्यामले	३.३.४९
श्यामाकास्तत्र	२.१४.७
श्यामापति:	१.३३.६
श्यामायना	२.६६.७२
श्यामायनि	१.३५.१२
श्यामो युवा	२.६३.१९३
श्यामोष्णीष	३.२५.४५
श्येनभद्र	१.३६.७०
श्रद्दधान:	१.२५.११३
श्रद्धया श्राद्ध	२.१९.६९
श्रद्धामर्षण	३.४४.१२०
श्रमेण महता	२.२६.३७
श्रयन्तु ब्रह्म	२.१.६७
श्रवणं गुरु	१.७.१७८
श्रवणं च	२.३.५२
श्रवणान्तं	१.२४.१४४
श्रवणे चोत्तरा	१.२१.७३
श्रवणेन तु	२.१८.११
श्राद्धं तत्र	२.१३.४७
श्राद्धं तत्राक्षयं	२.१३.४८
श्राद्धंदद्याद	२.१७.२१
श्राद्धं नवम्यां	२.१७.१५
श्राद्धं य:	२.१८.२
श्राद्धकर्मणि	२.१८.२३
श्राद्धकर्मण्ययं	२.११.६
श्राद्धकल्पे	२.१५.२९
श्राद्धकालेषु	२.११.४९
श्राद्धनिर्जित	२.१८.१२
श्राद्धानि चा	२.१३.४४
श्राद्धानि पुष्टि	२.९.३१
श्राद्धीया	२.१९.२७
श्राद्धे चैतानि	२.१६.३६
श्राद्धे छत्रं तु	२.१६.११
श्राद्धे प्रीतास्तत:	२.९.६५
राद्धे येभ्य:	२.९.६५
श्राद्धेष्वेतानि	२.९.३२
श्राद्धेष्वेतानि	२.१६.२४
श्राद्धेऽस्माकं	२.१२.९
श्राद्धे ह्युपानहौ	२.१६.१०
श्राद्धैराप्याय	२.९.२९
श्राद्धैराप्यायित:	२.९.३०
श्रिता दक्षिण	१.३५.१४७
श्रिया विकुर्वन्	२.२८.४८
श्रीं कृष्णाय	२.२३.१०
श्रीकण्ठदर्शनो	२.२४.६३
श्रीकण्ठ सर्व	३.४०.६८
श्रीकण्ठानन्त	३.४४.४९
श्रीकामकोष्ठ	३.४०.१; ६३
श्रीकामाक्षीति	३.४०.२
श्रीकृष्णमन्त्रं	२.३१.३७
श्रीकृष्णेति	२.३३.११
श्रीगर्भ:	२.७२.१४
श्रीगुरुं	३.४३.७१; ८७
श्रीगृहस्याग्नि	३.३९.६३
श्रीचक्ररथ	३.२८.१७
श्रीदेवता	३.३३.६६; ३९.६८
श्रीदेवायां	२.७१.१८१; ३.३३.९५
श्रीदेवीदर्शना	३.३९.१७
श्रीदेवीध्यान	३.३३.८२
श्रीदेवीन्यास	२.४१.२७
श्रीदेवीसोदरं	३.३९.४८
श्रीदेव्या	३.३१.८६
श्रीदेव्या:	३.२९.२; ४१.७
श्रीध्यान	३.३७.५४
श्रीनाथ	३.४०.९०
श्रीपर्वतस्य	२.१३.३१
श्रीपुरे	३.३१.८७
श्रीबलिं	३.४१.२४
श्रीभूशक्तिश्च	३.१९.७४
श्रीमतामनु	२.७०.२१
श्रीमनोज्ञे	३.३९.१०८
श्रीमान्भीमस्य	२.६६.२४
श्रीमान्व्यासो	२.१०.७९
श्रीमूलप्रकृति	३.४४.१९
श्रीविरिञ्चौ	३.४०.७
श्रीशम्भुनाथस्य	३.३०.३३
श्री: परांबा	३.३६.२२
श्रुतं सर्वं	२.३३.१
श्रुतं सुमहदा	३.४.१
श्रुतकर्मा	२.५९.४९
श्रुतज्ञयस्तु	२.७४.११४
श्रुतमेतन्	३.३८.१
श्रुतं मया	१.२५.११७
श्रुतय:	३.६.६४
श्रुतश्रवा	२.५९.४८
श्रुतश्रवा:	२.७४.१११
श्रुतिज्ञै:	२.३.१२९

श्रुतिर्गृणानो	१.१३.९६
श्रुतिस्मृत्यु	१.३१.७२
श्रुत्वा तमृषय:	२.२३.२
श्रुत्वा तु	१.२५.४; २.३५.५
श्रुत्वा पादं	३.१.१
श्रुत्वा राजा	२.४८.४
श्रुत्वा वाक्यं	१.२५.२१; ४४; ५३; ३०.२५
श्रुत्वा विचार्य	२.४४.२१
श्रुत्वा शङ्कां	३.४०.७९
श्रुत्वाहं	२.४४.१८
श्रुत्वैतत्सकलं	२.३०.१
श्रुत्वोदन्तं	३.२५.१०८
श्रूयतां	१.१३.१११
श्रूयतामभि	१.२७.५
श्रूयते हि	१.२७.२१
श्रेयो मह	१.३०.३९; ६६.८६
श्रेष्ठाय	२.२१.७७
श्रोणिं वक्ष:	२.७२.२८२
श्रोतुमिच्छामि	२.४१.४६
श्रोत्रता	२.९.५; ७२.५
श्रौतं स्मार्त्तं च	३.३.४२
श्रौतस्मार्ते	१.२९.४४
श्लाध्ययौवन	१.३१.१०८
श्लेषं संसक्त	२.५९.६८
श्लेष्मला:	२.१०.२३
श्वफल्कस्तु	२.१४.८
श्वफल्क: का	२.७१.१०३
श्वभिश्वानु	२.७१.१०६
श्वसूकरोप	२.२६.३२
श्वेतबाल	२.१४.४९
श्वेतव्यजन	२.५५.१५
श्वेतश्च	१.१४.३२
श्वेतस्तु	१.१४.३३
श्वेता: कृष्णा:	२.८.९५
श्वेता: शोणा:	२.३.७७
श्वेता च	२.७.१७३
श्वेतातप	३.२९.५१
श्वेताभ्राभ	२.७.३२७
श्वेताया	२.७.१८०
श्वोभूते	३.४०.६९
ष	
षट्कर्मनिरता	१.३५.१०५
षट्केतु:	३.११.८७
षट्दशा	३.३१.३५
षट्पदोद्गीत	१.२५.२७
षडंगदेवी	३.३०.१५
षडंगविद्	२.१५.२८
षडशीति	१.३५.१०
षडुपायान्	३.२१.५३
षडेते मनवो	१.३६.४
षड्जर्षभश्च	२.६२.३२
षड्जर्षभौ च	२.६१.३०
षड्दन्तस्य	२.७.३२८
षड्भि:	१.२४.३८
षड्विंशति	१.२९.१९
षड्विंशत्तत्त्व	३.३४.९०
षण्णवत्यंगुलं	३.२.१२४
षण्मासान्	३.१५.५९
षण्मासाभ्यास	३.४१.५१
षष्टिं चैव	२.८.५३
षष्टिं पुत्र	२.६३.१५७
षष्टि: पुत्र	२.५१.२९; ६३.१६१; ३.३२.६०
षष्टिश्चैव	१.२९.२१
षष्टिषष्टि	३.३२.६३
षष्ठं वै	१.१०.१४
षष्ठ: परिवहो	१.२२.५०
षष्ठ: प्रभाकर	१.१४.२८
षष्ठ: शिला	१.२०.१५
षष्ठश्च	१.३२.११६
षष्ठे काले	३.२.३७
षष्ठे खल्वपि	१.३६.६६
षष्ठे तले	१.२०.३९; ४२
षष्ठो वसिष्ठ	१.३८.२९
षष्ठो हरि	१.१९.५२
षोडशाक्षर	३.४१.१७
षोडशानां	२.७.३८१
षोडशार्चि	१.२४.१३१
षोडशार्ण	३.४३.२९
षोडशावरणे	३.३४.१
षोडशावरणै	३.३४.४
षोडशीक्षेत्र	३.३१.१०
षोडशे	३.३४.४९
स	
संयुक्तान्	२.११.४३
संयुज्यन्ते	३.३.३२
संयोग:	१.५.११९
संयोगजं	३.८.३९
संयोज्यात्मा	२.७१.७
संरक्षता	१.१.१२७
संरक्ष्यमाण	२.५४.९
संरज्यमाने	२.२६.८
संरब्धा	३.१.४६
संरब्धानेक	२.२२.२२
संवत्सर:	१.१३.१८
संवत्सरसह	१.३६.१००
संवत्सरसुतो	१.१३.२३
संवत्सरस्य	१.२२.६७; २.६३.३९

संवत्सरास्तु	१.२३.७६	संहारभै	३.२०.९२	सख्यौ तु	३.४०.३५
संवर्तेन	२.६१.५	संहिता	१.३१.१३	स गच्छंश्चिन्त	२.२८.२७
संवीक्ष्य	३.३९.७२	संहृतास्त्र	२.५८.२	स गच्छति	१.२८.७
संवृता कूट	३.३६.३५	संहृत्य	३.१.१२६	स गच्छन्पथि	२.४६.१
संवृत्य तं	१.२४.१०	संह्लादश्चैव	२.५.३४	स गच्छन्नरकं	२.१९.६०
संश्रयन्ति	१.७.९२	संह्लादस्य	२.५.३७	स गतो	२.६३.१३
संश्रयित्वैक	२.१३.६०	स इडा	१.१३.११८	स गत्वा	२.२१.१९; ३७;
संसत्सु	२.१८.७	स इमां	१.३७.३९		२२.८; ४४.३६
संसारवैरी	२.३६.३४	स एक	३.२७.१०१	स गद्गद	२.२४.२२
संसारस्तीर्थ	३.९.७	स एव दक्षः	२.२५.२८	सगरं स	२.५४.५५
संसारिणश्च	३.३५.६६	स एव द्वीप	१.१९.११४	सगरस्य	२.५८.३६
संसारिणोऽपि	३.४३.४२	स एव मदिरा	३.२८.५७	सगरस्यात्मजा	२.६३.१५३
संसारे	३.३.५६; ९२	स एवमुक्तो	२.६८.३७	सगरः स्वां	२.६३.१३७
संसिद्धकायो	१.७.१५३	स एव वायु	२.५.२१	सगुणं	३.४०.२३
संसिद्धकार्य	१.४.१४; ३२.७७	स एव सर्वत्र	१.१९.१७८	सग्राहनक्र	२.५६.४१
संसिद्धये	१.३२.८५	स एष पशु	२.६९.२४	स घोर	१.३७.१०
संसिद्धिरेवं	१.२८.३३	सकण्ट	२.२३.११	सङ्कल्पः	१.१६.१५
संसेकजानां	३.२.२०१	स कथं गां	२.७२.१३	सङ्कल्पभूषणो	३.३८.२८
संसेव्यमानश्च	२.४९.३३;	स कदाचिद्	२.२१.५; ४८.५;	सङ्कल्पमात्रेण	३.३१.९
	५५.२०		५१.५५; ७१.२२	सङ्कल्पा	२.३.३
संस्खलत्	३.२८.९६	स कल्प	१.३६.२०२	सङ्कल्पायां	२.३.३३
संस्तभ्य	२.७२.१३२	स कुरंडः	३.२१.७३	सङ्कल्पो	१.३.१६
संस्तुताय	२.७२.१६५	स कुण्डलां	२.८.६८	सङ्करं	२.७४.२३८
संस्तूयमानं	२.२४.५९	सकृदभ्य	२.१३.१	सङ्कष्टे	२.४२.४४
सस्तूयमानः	२.५५.१४	सकृदेव	१.७.७५;	सङ्कुतैरपि	२.६८.११
संस्थिति	१.२१.२०		३५.१३६	सङ्केतगामिनः	२.४८.१२
संस्थितेनैक	१.२२.६१	सकृद्युक्ते	१.२३.५५	सङ्केताविषयां	२.५०.१७
संस्थित्यां	१.७.१५९; १६८	स कृष्ण	२.७१.९८	सङ्क्रामयामास	२.६८.६३
संहता	१.३२.१०	स कोशात्	३.२७.१५	संक्षुब्ध	२.५७.४१
संहताश्चैव	३.२.२४३	स क्रोधेन	२.४०.६	संक्षोभद्रावणा	३.३६.६१
संहर्ता	१.२६.३९	स क्रोधोऽपि	२.४८.४३	संक्षोभिणी	३.३०.२०; २२
संहर्त्रे	१.२८.६८	स खलूवाच	३.२.२६९	संक्षोभिण्याद्यं	३.३६.८६
संहारगुप्त	३.२४.४०	सखि सम्पत्करि	३.२२.९६	संक्षोभो	१.३१.३८
संहारगुप्तं	३.२४.४०	सख्यमासीत्परं	२.७२.६९	संख्याति	२.२७.१०

संख्याय	३.२.१९७
संख्यां चैव	१.१५.५
संख्याश्च	३.१९.२
संख्ययेह	१.२९.३
संख्येयं	३.२.१०८
संगीतयोगिनी	३.१७.३३; ४५
संगृहीत्वा	२.७.८०
संग्राम:	२.७२.७४
संग्रामजिच्च	२.७१.२५१
संग्रामांस्तु	२.६९.१३
संग्रामे	२.७४.३०
सग्राह्य	२.७२.५७
संघुष्यमाणं	२.२२.६६
स च तत्रा	२.५१.२१
स च तस्मा	२.७४.६८
स च तं	२.७.२५२
स च तान्	३.२१.३०
स च भंड:	३.२१.२१
स च शक्त:	२.२९.१२
स चापि	१.१९.३१; २.५६.४०; ३.३.५८
स चायं	३.३.६७
स चाशीर्भिस्तु	२.३०.५७
स चिन्तयित्वा	२.७.२८४
सचित्र:	२.२६.२३
सचेतना:	३.३.३१.
सजंभो	२.७२.४१
स जरां	२.६८.२९
स जीवो	३.३.६८
सज्जकार्मुक	३.२५.८७; ३४.५
सज्जं कुरु	२.३८.१७
स ज्ञाता	२.५.२२
सञ्छाद्येमां	१.६.५४
सञ्ज्ञात	२.४४.२६
संज्ञा तु	२.५९.५०
संज्ञापुत्रस्तु	३.१.२८
सततं	२.११.१२; ३४.९
स तत्प्राप्य	२.६५.२२
स तत्र	२.२५.५०; ७१.१०५
स तथा	२.२९.११
स तथेति	२.६७.८९
स तदाज्ञा	२.३२.१७
स तदा तै:	१.३१.७९
स तदाश्रम	२.३०.५५
स तदा ह्यहुते:	१.२८.५३; ५८
स तं देशं	२.६३.१४४
स तनो	३.३०.७८
स तमादिश्य	२.६३.४८
स तमामुच्य	२.७१.३०
स तया	२.७३.१२
स तस्मिन्	२.२१.३३; ४७.४०
स तस्मै	२.४६.१२; ५१.५८
स तस्य	१.२२.६४
स तस्या	२.४९.३
स तान्दृष्ट्वा	२.४६.६
स ताभ्य:	२.६५.७
स ताभ्यां	२.२१.३५; २५.७८
स तां दृष्ट्वा	२.५९.७८
सतां संरक्षणा	२.५७.२३
सतां साप्तपदे	२.३०.१२
सती ख्याति	१.९.५२
स तु कश्चि	२.५१.५४
स तु दन्त:	२.४२.४
स तु द्वादश	२.६३.१०२
स तु पृष्ठ	२.४२.९
स तु प्रसेनो	२.७१.३८
स तु यत्नेन	२.५४.४९
स तु राजा	२.३०.७५; ६३.११६
स तु सत्यव्रतो	२.६३.८३
स तु सम्मोह	३.३५.६३
सतृष्णो	३.३.४३
स तेन निगृ	२.७४.५०
स तेन परि	२.७१.१२५
स तेन रथ	२.६५.१४; ६८.१९
स तेन सहित:	२.५५.२५
स तेनानु	२.२५.७७
स तै: सह	२.५७.२६
सत्कारै	१.१.२०
सत्कृत्य	२.४९.२०
सत्यकात्	२.७१.११६
सत्यजित्	२.७४.१२०
सत्यधर्म	१.५.२१
सत्यनेत्र	१.३६.६३
सत्यभामा	२.७१.६४; २४९
सत्यभामो	२.७१.५७
सत्यमेवा	३.४०.३६
सत्यं रूपं	१.७.७
सत्यलीला	३.४४.५७
सत्यवाक्	२.३६.३६; ६६.३
सत्यव्रत:	२.६३.९४
सत्यव्रतो	२.६३.८८
सत्यं ब्रूहि	२.६५.४०
सत्यस्तु	३.२.१६
सत्यस्त्रवसम	१.३४.२९
सत्यादीन्	३.१.१८७

सत्यादेकार्णवे १.५.२६
सत्यानामपि १.२६.३४
सत्यानृतं १.१९.१२१
सत्याभि
१.३६.९७;३.४.२५
सत्यायाम २.३.११५
सत्यासत्यं २.१५.६६
सत्याः सुरूपाः १.३६.४३
सत्या ह्येते १.३६.३६
सत्येति ३.२.२५
सत्येन १.३५.२०१;
६०.१३
सत्रमारेभिरे १.२.२६
सत्राजितं २.७१.६०
सत्राजितः १.१.१२४
सत्रे तु २.२०.२०
स त्वं गच्छ २.५४.२७
स त्वं धैर्य २.५४.१६
स त्वं मदा २.२३.३७
स त्वमात्म २.५७.१७
सत्त्ववान् २.६३.१९७
सत्त्वं कृतं १.७.६०
सत्त्वजातै २.२२.६०
सत्त्वबुद्धि १.८.१३
सत्त्वमात्रा १.३.१५
सत्त्वान् १.३.१५
सत्त्वोद्रिक्ता २.३.११२
सत्त्वोद्रेका १.५.४; १४१
स ददर्श २.५७.२८
स दन्तिवदनः ३.२७.७७
सदसत्कर्म ३.१५.९
सदस्यान्य २.७२.२८
सदा कश्चित्त ३.३९.११८
सदाचन्द्रस्तु २.७४.१८१
सदा च स २.३९.४४
सदा जपतः ३.३३.४६
सदाणिमा ३.३०.१८
सदा दद्यात् २.११.४१; ४२
सदा दयार्द्र ३.३८.४९
स दान २.६६.८४
सदा पूर्ण ३.३५.५६
सदामदा ३.१७.३५
सदा विघूर्ण ३.२०.२७
सदा वै २.१९.५०
सदाशिवं च ३.४४.१०
सदाशिवस्तु २.३३.४;
३.३९.११७
सदा सर्पि २.११.५८
सदा स्फुरद् ३.३७.८
सदिति १.३२.२०
स दुरात्मा ३.२६.१३
सदृशानूपत ३.१.४४
स दृष्ट्वा २.३१.२६
स दृष्ट्वोपहतं २.६३.१६
स देवो २.२७.७४
सदैव मदिरा ३.३१.८०
सदैव मन्युना ३.३३.८०
सदैव संजप ३.३२.३१
सद्गुरोस्तु ३.३८.१६
सद्भक्त ३.४३.६९
सद्यः प्रसूत २.७.४८
सद्यश्चोत्प ३.२.४३
सद्यः सह २.४०.६६
सद्यो जातौ २.७.४९
सद्रत्न २.४९.१४
स धर्मविजयी २.६३.१४२
सनत्कुमार २.६५.२४
सनत्कुमारेण २.७.९६
सनन्दनश्च ३.२.२७३
स नातिप्रीति २.५१.४९
सनाथशक्ति ३.२६.९६
स निर्जित्य २.७.२५०
सन्ततिं ते १.२१.१७०
सन्तान ३.३२.२४
सन्तानहेतो १.१.१५३
सन्तानार्थ १.२७.७८
सन्ताप ३.२८.७३
सन्ताप्यते ३.२.१५६
संतारो २.६२.१६
सन्ति ते २.६८.३६
सन्ति वेद २.१४.५७
सन्तु कल्पतरोः ३.३७.८१
सन्तुष्टा ३.३९.४४
सन्तुष्टाश्च १.३५.१०१
सन्तुष्टनैव ३.५.३४
सन्तो भुजिष्यच २.४२.१६
सन्तोष्य ३.७.३२
सन्त्यज्य २.२३.७८
सन्ददर्शग्रतो १.३३.१७८
सन्दधे २.४०.११
सदृष्टो २.३५.३३
सन्धाने ३.२९.५९
सन्ध्याकर्म ३.४३.१०
सन्ध्यां तु १.२१.११३
सन्ध्यामुहूर्त १.२१.११८
सन्ध्यायां २.१३.५९
सन्ध्यास्ति १.३३.३
सन्ध्यास्व १.३१.७५
सन्नतेरपि २.६७.७३
सन्निधिः २.२३.४१
सन्नियम्ये २.२४.७१
सन्निवर्त्यानु २.४७.१००

सन्निविष्टाः १.७.१६
सन्निवेश्य २.४७.७३
सन्न्यस्य २.६८.६
सन्न्यस्येह २.४.५
स पंक्ति २.१९.७०
स पुत्र २.७३.८१
स पुत्रः २.६८.७३
स पुनः २.४.३६
स पूर्वं २.२९.१३
स पृष्टस्तेन २.३५.५३
स पोत २.२१.४३
सप्त गर्दभिन २.७४.१७२
सप्तगोदावरे २.१३.१९
सप्त गौसवना २.६१.३६
सप्ततिश्चैव १.२१.१२९
सप्त तेषु ३.२.९
सप्तद्वीप १.२१.९; २.११.३३; ३.२.२९४
सप्तद्वीपां २.६८.९२
सप्तद्वीपांश्चित्र २.६९.४०
सप्तद्वीपेश्वरो २.७४.१६
सप्तधा ३.१.१६७
सप्तनिग्रह ३.२४.६३
सप्त प्रकृत १.१९.१९५
सप्तमं १.१०.५५; १४.३०; १९.५९
सप्तमी २.७१.१३२
सप्तमे १.३८.१
सप्तमो २.७३.९२
सप्तयोजन ३.२०.९५
सप्तर्षयः २.७४.२३०; ३.१.१८८
सप्तर्षयो १.३६.२१; २.७४.२६०
सप्तर्षिमंडलं ३.२.१३४
सप्तर्षीणां १.७.८१; २.७४.२३२
सप्तर्षीन् १.३८.२६
सप्तलोक ३.२४.१८
सप्त लोकान् ३.२४.१७
सप्त वै २.७४.१५४
सप्तविंशति २.६५.२१; ७४.२३१
सप्तषष्टिं २.७४.१७४
सप्तषष्टिस्त १.२९.३९; ३५.१६५
सप्तसप्त १.७.१३
सप्तस्वरास्त्र २.६१.२९
सप्तानां १.१४.३८; २१.२
सप्तैते २.१०.१
सप्तैव १.२९.३३
सप्तैवास्मिन् १.१६.१८
सप्रजानि १.३५.१६१
सप्रधानाः १.३३.२
सप्रधानास्तु २.७.२३१
सप्रमाणास्तु १.३६.४५
सप्रयोगं २.२५.३९
स प्रविश्य २.२१.२१; ५१.३४; ५५.१९
स प्रसेनाय २.७१.३१
स बाल्य एव २.५१.५५
स ब्रह्मा २.३४.३२
स भवान् २.५०.५७
स भवेत् २.३३.३५
सभानरः २.७४.१३
सभायां ३.४०.४७
स भीतः १.३६.१४३
स मज्जे २.१९.५८
स मण्डल १.१९.१११
समतीतस्य १.६.३
समतीतास्तु ३.१.३४
स मदालस ३.२८.५९
समन्तराः १.१६.५४
समन्तात् १.१९.१६१; १६३; २.२२; ४०.५८
समन्त्रतन्त्रं २.४७.९१
समन्त्राहुति २.२१.४०
समन्वितानि १.२८.८४
सममायुश्च १.१९.११९
समयं २.५८.२२
समये २.७.२६६
समश्च २.२३.१९
समस्तजप २.३६.१८
समस्तदान ३.९.५२
समस्तमपि ३.१७.३०; २४.९९; २६.११७
समस्तरत्न ३.३५.७५
समस्तलोक ३.३७.८३
समस्तवाङ् ३.२३.५३
समस्तविद्यासु २.३९.३९
समस्ताभ्यां २.२१.३१
स महात्मा १.३२.८३
समाक्रामत २.६७.९६
समागच्छत्य १.२८.२८
समागत २.४०.४८
समागमः २.७४.१००
समागम्य ३.३९.६५
स मातामह १.३६.१२८
समाधिगत २.५३.२०
समाधिभंग २.५२.१९

समाधिविरतौ	२.५२.१८
समानतो	१.५.७६
समानधर्मिणी	३.१५.६
समापयित्वा	१.१.१६७; २.५५.६
समापेतु	१.३६.१५०
समाप्य च	२.४७.९८
समा भोज्यन्ति	२.७४.१६०
स मामुवाच	२.४४.१७
समाः शतं	२.७४.११२
समाः षण्ण	२.७४.१७९
समसव्यास	२.१.१२
समासाद्य	२.२४.५४
समासाभि	२.७.४३९
समाहनि	३.१.२१९
समित्कुशा	२.२१.४१
समित्पुष्प	२.३४.८
समिद्भिः	२.११.११२
समिधश्चा	२.५.५७
समिरण	३.२.२६२
समुच्छ्रित	२.४९.१३
समुत्कर्षाय	१.३३.३०
समुद्यतो	२.४०.५३
समुद्रं खान	२.६३.५४
समुद्रं दक्षिणं	२.७.२४९
समुद्रगाः	२.१३.१२६
समुद्रतनयायां	१.३७.२६
समुद्रमन्त्यं	३.२.१०२
समुद्राद्वायु	१.२२.२५
समुद्रान्त	२.१९.३२
समुद्राश्चैव	१.५.१३१
समुद्रे च	२.१९.६२
समुद्रेभ्यो	३.१.१५१
समुद्रोपान्त	२.५६.५५
समूल	१.७.४९
समेत्य	३.११.२४
स मैथुनेन	२.२.५
समोदं	२.१५.२३
सम्पत्करी	३.२२.३७; २८.१०१
सम्पद्यते कृतं	१.३५.१८२
सम्पद्वसुस्तु	१.२४.७०
सम्पन्नश्चैव	२.७.३१८
सम्पातिं च	२.७.४४७
सम्पूर्णमण्डलः	१.२८.६४
सम्पूर्णे तु	२.५१.३७
सम्पूर्णे स्थिति	१.३५.१८०
सम्पृष्टो	२.३१.२७
सम्प्रकालन	३.१.२२६
सम्प्रक्षाले	३.३.५
सम्प्रगीथेषु	१.३०.१२
सम्प्रयास्यति	२.५४.४२
सम्प्रलीनेषु	३.३.२३
सम्प्रहृष्टा	२.५३.१६
सम्प्राप्ते	२.३.११०
सम्प्राप्तेषु	३.१.१२२
सम्प्रीयमाणः	२.४९.३४
सम्प्रैक्षंतावुभौ	२.७३.२५
सम्बभूवु	३.१२.१५
सम्बभवैव	२.७४.४२
सम्भवन्ति	१.७.२९
सम्भावित	२.४९.६
सम्भावितो	२.२७.३३
सम्भाव्य	२.४९.१०
सम्भूतः	२.७.१०८; ७३.७४
सम्भूतस्या	२.६३.७४
सम्भूय	२.५८.२८
सम्भृतं	१.१९.१२
समीृताच्च	१.२९.६६
सम्भृतो	१.१२.९
सम्भृत्य	२.४७.४६
सम्मितास्तेन	३.२.२०६
सम्यक्	२.२६.१८
सम्यगेव	२.५१.४३
सम्राडग्नि	१.१२.२२
स यतिं	२.६८.१४
स यत्र	२.३८.४०
स यद्वक्ष्यति	२.५०.३१
स याच्यमानो	२.६५.३०
स यां प्रतिज्ञा	२.४९.३७
सरथं	२.४७.३६
स रथस्थो	२.४०.२
स रथो	१.१.८३; २३.१
सरमायाः	२.७.३१२
सरलार्जुन	२.३५.१९
सरलो	२.११.११०
सरसां	२.४७.३
सरस्तीर्थानि	२.१४.८५
सरस्वत्यां	२.१३.६९
सरस्सु	३.३३.४५
सरः स्वंबुज	२.५०.४२
स राज	२.२७.११
स रामः	२.३४.६
सरितः	२.७४.२१३
सरित्सरः	२.३१.९८
स रुद्रो	१.७.४१; २८.८२
सरोवरं	२.२२.६३
सर्गकाले	१.३.१३
सर्गादौ	१.७.६७; ३.११.८
सर्पस्य	२.७.९७
सर्पाणां	२.७.४४४

सर्पान् सृष्ट्वा	१.८.३९	सर्वज्ञेन	३.९.३१	सर्वमापूर्यते	३.३.१२
सर्पा वहन्ति	१.२३.२८	सर्वतः	१.६.५५	सर्वमृत्यु	३.१९.४०; ४४.१३५
सर्पाश्चाज	२.७.१७७	सर्वतस्तमसा	१.५.३३	सर्वमेतदहं	२.२३.५७
सर्पिः स्निग्धानि	२.१६.४७	सर्वतस्तेषु	१.२४.२४८	सर्वमेधा	१.३६.६०
सर्पिणी	३.२३.५५; २४.३; २५.९	सर्वतो	२.२१.५०; ४१.२१; ३.२१.१५	सर्वमेधानपि	२.७.२६९
सर्पो निकृंतनः	३.२.१८४			सर्वयज्ञ	२.१६.५०
सर्वं रजश्च	१.४.१८	सर्वत्र गत	२.१०.२५	सर्वयोनिश्च	३.१९.१५
सर्वं विचार्य	३.२१.५०	सर्वत्र दैत्य	३.२१.१७	सर्वरंजन	३.३६.८३
सर्वं सम्पाद	२.२६.५४	सर्वत्र द्व्यष्ट	३.२८.५३	सर्वरत्नमयं	१.२१.१४१
सर्वं हि	३.२६.९८	सर्वत्र मांद्यं	३.२७.५३	सर्वरत्नसमा	२.७.१९८
सर्वकर्मसु	२.५.५८	सर्वदिक्षु	३.३५.७३	सर्वर्तुक	२.२७.१९
सर्वकामद	२.१.६३	सर्वधातु	१.१५.११; १९.३९	सर्वर्तुकुसुमो	२.५०.३८
सर्वकामदुधा	१.३६.१५८; २२६			सर्वर्तुफल	२.५७.४
सर्वकामदुघा	२.६३.१०३	सर्वधार	३.४४.१३८	सर्वर्तुरमणीया	१.१५.५२
सर्वकामप्रदा	३.१५.७३; १९.३९; ३६.८८	सर्वं तदनु	२.१९.४२	सर्वलक्षण	१.२९.७२; २.४९.६१
		सर्वं तद्यौवना	२.६३.७०		
सर्वकामसमृद्धा	२.६८.६२	सर्वपाप	२.४७.१२	सर्वलावण्य	३.३९.९४
सर्वकामसमृद्धानि	२.१०.१२०	सर्वपापहरं	३.४.५८	सर्वलोक	२.७.१३७; ३.१.१४६
सर्वकामसमृद्धेषु	२.१०.८६	सर्वः प्रत्युप	१.७.७६		
सर्वकामानवा	२.१६.४०; १७.२०	सर्वप्रियंकरा	३.४४.१३४	सर्वलोकेषु	३.४३.७८
		सर्वपूज्या	३.३९.३	सर्ववादेष्वहं	१.३४.४७
सर्वं कार्यं	३.४.१५	सर्वभाव	३.१४.२५	सर्ववेद	२.१९.२२
सर्वग्रहाणा	१.२४.१३९	सर्वभूत	२.८.९; ३.९.१६	सर्ववेदेषु	३.४३.७४
सर्वग्रहानु	२.३६.५०	सर्वभूताधि	२.११.३६	सर्वशः	३.१.१११
सर्वं जानासि	३.१०.३३	सर्वभूताव	१.२४.८	सर्वशृङ्गार	३.३९.१९; ५३
सर्वज्ञः सर्वकर्ता	३.३४.९४	सर्वमंगल	२.३६.१७	सर्वशो	१.१९.१४४
सर्वज्ञजात	३.३०.२४	सर्वमंत्रमयी	३.३६.८४; ४४.३१	सर्वसंक्षोभिणी	३.१९.१३; ३२; ३६.८०; ४४.२८
सर्वज्ञस्त्वं	३.४१.२				
सर्वज्ञाद्यंतरं	३.३६.९२	सर्वमन्वंतरे	१.३५.८४	सर्वसम्पत्ति	३.३८.६८
सर्वज्ञाद्यंतरा	३.३७.१	सर्वमन्वंतरे	२.६८.८८	सर्वसम्पद्	२.४८.२
सर्वज्ञानमयी	३.१९.४३	सर्वमर्हति	२.६८.८८	सर्वसम्मोह	२.१०.४६
सर्वज्ञा सर्व	३.३६.९३; ४४.१३७	सर्वमापूरय	३.३.१८	सर्वसम्मोहिनी	३.१०.८; १९.३३; २६.६२; ४४.२९
		सर्वमापूरयि	३.३.९		

सर्वसाधारण १.२९.६०
सर्वसिद्धिप्रदा ३.१९.३८; ३६.८७; ४४.३२
सर्वसिद्धया ३.३६.९१
सर्वसेनापतीन्द्रेण ३.२९.१८
सर्वस्य जगतो २.४३.२१
सर्वा एकत्र ३.४२.१८
सर्वांगकेश २.७.८६
सर्वांकेशं २.७.४०
सर्वांगकेशा २.७.३८६
सर्वांगसन्धि ३.४१.४२
सर्वांगसुन्दरी ३.३६.८९
सर्वाणि १.३५.१३९; २११
सर्वात्मको ३.८.२८
सर्वात्मना ३.३९.३८
सर्वात्मा १.१३.१३२
सर्वाद्या ३.४४.१४; १३०
सर्वाधार ३.३६.९४
सर्वा नक्षत्र २.३.५४
सर्वानन्दमयी ३.१९.४४
सर्वानहं १.३४.४०
सर्वानुकूल: ३.४१.७३
सर्वान्कामा २.१०.११३
सर्वान्तरात्मा २.३३.२७
सर्वाप्सरो २.८.१५
सर्वाभरण ३.३९.१२
सर्वाभि: ३.३८.४२
सर्वा मणिमयी १.१५.७५
सर्वामरत्व २.५.१५
सर्वायुध: ३.३४.८२
सर्वार्थसाधिका ३.१९.३४
सर्वार्थसाध्यका १.७.१२४
सर्वाश्च ब्रह्म १.९.४९; २.१.१२४
सर्वाश्च शक्ति ३.२६.११५
सर्वास्तांश्च १.९.४८
सर्वास्ता हि १.३५.६७
सर्वास्ता: सुमहा २.१०.१६
सर्वास्तु १.३३.२९
सर्वास्त्रपूज्यं २.३९.२९
सर्वास्त्रस्मृति ३.२९.६७
सर्वे तपस्विनो १.१२.५०
सर्वे तु लोका २.४०.३७
सर्वे ते ऋषय १.१.२३
सर्वे ते क्षत्रिय २.६३.१४१
सर्वे तेजस्विन: २.७.१८९
सर्वे ते मुनय १.३४.५३
सर्वे त्वरोगा: १.१९.२३
सर्वे दशभुजा ३.२.२५३
सर्वे ध्रुव १.२३.९२
सर्वे नागास्तु १.१७.३४
सर्वेन्द्रिय २.७२.५५
सर्वे प्रचेतसो १.१३.४०
सर्वेप्सितप्रदा ३.३६.९५
सर्वे ब्रह्मविद: २.६.३७
सर्वेभ्योऽपि २.३८.३; ४
सर्वे मन्वन्त १.३८.७
सर्वे यज्ञा २.६९.१७
सर्वे लब्धवराश् २.६.२; ८.५८
सर्वे वयं २.१.१७
सर्वे वर्णा २.२०.५
सर्वेषां तपसां २.९.५०
सर्वेषां दंष्ट्रिणां २.८.१३
सर्वेषां दर्श ३.३७.२२
सर्वेषां दैत्य ३.२६.१०७
सर्वेषामपि ३.२५.१३; ३५.७४
सर्वेषामुत्तरे १.२१.५१
सर्वेषामेव १.१३.६३; ३.२.१९६
सर्वेषामेव शै १.१७.२०
सर्वेषां पश्य १.२७.३५
सर्वेषां मृण्मयानां २.१४.६३
सर्वेषां राजतै: २.१०.१०१
सर्वेषां वर्ष १.१७.३१
सर्वेषां सम २.१०.१२
सर्वेषु पुरुषा २.१७.७
सर्वे सत्त्वा: ३.४.२७
सर्वे सूक्ष्म ३.२.५२; ७३
सर्वे ह्युक्ता ३.२.४
सर्वैर्दैवै २.६९.१८
सर्वैश्वर्य ३.७.११
सर्वोन्मादन ३.१९.१४
सवोपभोग्य २.२७.२३
स लब्धतेजा २.६५.१७
स लाजाक्षत ३.१५.३२
सलिले १.५.१०
सलिलेनाप्लुते ३.१.२३२
स लोकविग्रहो ३.२.२२०
स लोहगन्धी २.६८.२३
सवनं १.२४.७६
सवर्णाऽधत्त १.३७.२७
सवर्णा नाम १.१३.३९
सवर्णाया: ३.१.५३
स वर्धमानो ३.३०.१०२
स वर्षर्तु ३.३२.२६
स वामनो २.७३.७८
स वारुणै: ३.३०.३०
सवालखिल्या: १.३५.७१
स विजित्य १.३४.५४
सविता दशभि १.२४.३९
सविता पंचमे १.३५.११८

सविता मृत्यवे	३.४.७	स सह्यं	२.५७.२७	सहस्रमवगा	१.१७.१८
सवितुर्दक्षिणं	१.२१.१६५	स साधको	२.३३.३०	सहस्रयुग	१.२७.४९
सवितुश्चास्य	२.५१.२४	सस्नेहं	३.१०.४४	सहस्रशत	२.७.१५८; ९.६७
सविशेषः	१.१.४९	स स्रष्टा	१.६.७५;	सहस्रशीर्षा	१.५.३; १४०;
सविस्फुलिंगं	२.६३.४१		३.१.१८९; २०४		३.६३; ३.१.१८२;
स वेदमेकं	२.१०.६९	सहः श्रीश्च	३.३२.३७		३९.३३
स वै दिव्यौ	२.६८.२७	सहकच्छाः	२.१६.६२	सहस्रसंख्य	३.२९.१०४
स वै नारायणो	१.६.६६	सहदेवस्य	२.६८.१०	सहस्रसंख्या	३.३३.९३
स वै प्रणत	२.७४.१२४	सहदेवा	२.७१.१६२	सहस्रस्तम्भ	३.३५.२
स वै बाहु	२.६९.२५	स हन्त्यस्मा	२.४८.३२	सहस्राक्षौहिणी	३.१७.५१;
स वै भ्रामयते	१.२२.७	सह हनयमानः	२.२९.१४		२९.११३
स वै राज	१.९.४०	सह प्रजा	३.१.२०९	सहस्राणां	१.२९.३१;
स वै वेगं	२.६९.२७	सह रक्षःसुतः	१.१२.३७		२.७४.२४२;
स वै शंखपदः	१.११.३३	सहरक्षो	१.१२.६		३.२.२३५
स वै शरीर	१.४.१५	सहर्षं बहु	२.४९.२९	सहस्राणि	१.३५.७०;
सव्यंजनं तथा	२.१६.५१	सह सप्तर्षि	१.३१.१०५		३.२.९७
सव्यंजनं तु	२.१६.४	सहसा निपत	२.२२.२०	सहस्राण्यति	१.२१.८१
सव्यं दक्षिणदेशे	३.४२.१२	सह सायुज्यकैः	३.२.३०७	सहस्रांशो	१.२४.९४
सव्योत्तराभ्यां	२.११.५२	सहस्रं यत्तु	१.६.४५	सहस्रेणैव	३.२.२०२; २०५
सशब्दमुद्भ्रान्त	२.५३.३६	सहस्रं क्षत्रिय	२.६१.३	सहामेधस्य	१.२०.३७
स शर्मः	२.३१.१६	सहस्रकुक्षये	२.७२.१६९	सहास्माभि	२.१२.११
स शर्वसिद्धादि	३.३०.२३	सहस्रकोटयः	३.३०.५९	सहितं सकलै	२.२४.५८
स शापेन	२.६४.४	सहस्रचरणं	२.७२.१८	स हि नाग	२.६९.३६
स शीघ्रमेव	१.२१.४५	सहस्रजित्सुतः	२.६९.३	स हि पूर्वं	२.२.१५
स शैलो	३.११.६	सहस्रदंष्ट्रा	२.७.४१५	स हि राम	२.६३.१६९
स श्रुत्वा	२.५०.४६	सहस्रधारो	१.३६.२९	स हि वर्षायुतं	२.६९.१०
स संध्यांशेषु	१.३१.११३	सहस्रं देवताः	३.२०.६७	स हि वेद	२.६५.१०
ससमुद्रा	१.१४.५	सहस्रनल्व	२.१९.१९	स हि सप्तर्षि	२.१०.४०
ससमुद्रामिमां	१.५.२८	सहस्रनाम्नां	२.३६.१९	सह्यं शिखरिणं	२.५६.२२
ससंभ्रमं	२.२५.३	सहस्रपत्र	३.३८.१८	सह्यस्य	१.१६.४३
ससर्ज सर्व	२.२.२	सहस्रपादः	३.२.२४४	सह्ये ततु	२.५८.२४
ससर्ज सहसा	३.१२.२१	सहस्रपादसौ	१.२४.२४	साककलोप	२.६१.४६
ससर्ज सृष्टं	१.५.३०	सहस्रमन्य	१.७.३६; ३५.८२	साक्षाच्च	३.३५.२९
स सर्वै	३.४.५२	सहस्रमपि	३.२.९५	साक्षत्सैव	३.४१.५

साक्षाद्भक्तो	२.३०.७६	साधवो ये	२.३१.९	साम्प्रतं	२.७.३१४
साक्षाद्भृगु	२.४४.११	साधिकाक्षर	३.३७.७	साम्प्रतस्य	३.१.२१
सागरत्वं	२.६३.१५०	साधु गच्छा	२.७२.१०१	साम्प्रतान	३.१३.११३
सागरस्य	२.५६.४	साधुभिः	१.२०.११	साम्यावस्था	१.३१.१०१
सागराः शोष	३.२९.२९	साधु वाऽसाधु	२.२३.७६	साम्राज्यचिह्न	३.१४.२९
सागराणां	२.८.१४	साधु साधु	२.३५.६;	साम्राज्यसूचकं	३.१५.२३;
सागरा विजयं	२.६१.४०		३.२४.८६		४०.१०४
सागरास्ता	२.५३.५१	साधुसाध्विति	२.७२.१४८;	सायकै	३.२६.१०४
सांख्यज्ञान	१.३५.१३३		३.२४.१०३	सायंतन	३.१९.२४
सांख्ययोग	२.३.८९	साधूनां	१.३१.४६	साहाह्ने	१.२८.३८
सांख्याय चैव	२.७२.१६६	साध्यापुत्रा	२.३.४	सारण्यकं	१.३५.७२
सांख्ये लक्षण	१.१.१३९	साध्या विद्या	१.२६.४३	सारस्वतः	२.१.९४
सांगुष्ठेन	२.१५.६१	साध्यांशौ	१.७.६२	सारस्वतस्तु	१.३५.११९
सा च नित्या	३.२६.३३	साध्वी	२.६३.७१	सारस्वतस्त्रिधा	३.४.६१
सा च पुत्री	३.२६.११३	सानुर्भानु	२.७१.१४७	सावधानाः	३.२५.५२
सा चोप	२.७१.८	सांत्वितस्तेन	२.४६.५	सावनेन	३.१.२२१
सा तत्परि	२.५९.६३	सांत्व्यमाना	२.४५.१५	सावर्णमनव	३.१.२३
सा तत्पात्रं	३.१०.१४	सांद्रसौरभ	३.३९.९२	सावर्णस्य	३.१.९
सा तत्र	३.३५.३०	सापविद्धा	१.८.६; २१	सावर्णा	१.१.१०४
सा तथोक्ता	२.१०.१३	सा पर्य	३.३०.४४	सावर्णिका	१.३५.६९
सा तनु	१.१०.१४	सापि तं	३.१४.२४	सावर्णिके	२.७३.५२
सा तु नारा	१.११.३	सा भाव	२.१०.९८	सा वैष्णवी	१.२०.५५
सा तु भर्तु	२.६३.१३१	साभिनंद्य	२.४९.२८	सा शक्र	३.३०.१०५
सात्यकि	२.७१.१०१	सामगान	१.३३.९	सा शशाप	२.५९.५३
सा त्वं	१.३६.१९१	सामगेषु	१.३६.१६०	साश्रयः सो	१.२४.१४९
सात्त्वता	२.७१.१	सामंताना	३.१४.१०	सा श्रुत्वोदंत	२.४२.१०
सा त्वन्यं	२.१०.५६	सामभिः	१.३४.२०	साश्वं हतं	२.७१.४०
सात्विकी	२.३.८४	सामवेदश्च	२.१.२५	सासुरं	१.१३.१०६
सादयामास	२.६६.२६	सा मातु	२.७१.१०७	सा स्वचेतसि	२.४५.१२
सादस्य	२.४७.५१	सामानि	२.८.५२	साहसो	२.३०.४४
सा दिवं	१.९.३४	सामान्य	१.३१.१६	सा हन्तुं	३.२५.८४
सा देवी	३.१०.९०	सामन्येषु	१.३२.२२	सा हि कामा	१.९.१५
साधनात्तपसो	१.३२.२५	सा मृता	२.३५.२९	सा हि नित्या	३.३१.२२
साधयामास	२.३२.६१	साम्ना	२.७.३२५	सा हि सत्य	२.६६.५९

सिंहव्याघ्र	३.६.५०
सिंहातंका	१.२९.७१
सिंहासन	३.१४.१२;
	१५.३४
सिंहासना	३.१८.१४
सिंहास्य	३.२९.१०३
सिंहिकाया	२.६.१८
सिकत्यश्च	३.३४.४४
सितश्मश्रु	३.६८.३४
सितामध्वाज्य	३.४३.२८
सिद्धचारण	१.१९.७४;
	२.१३.१२३
सिद्धत्व	२.३३.३४
सिद्धयो ह्यणि	३.१४.७
सिद्धा अग्नि	३.२०.४६
सिद्धाः किंपुरुषाः	३.३०.९
सिद्धात्मानो	१.५.६२; ७.१३१
सिद्धा दिव्य	३.३३.६८
सिद्धानां	२.१३.१२४
सिद्धार्थकानां	२.१४.६४
सिद्धार्थकैः	२.१४.५२
सिद्धिक्षेत्र	२.१३.१४
सिद्धिमृद्धं बलं	३.२८.८९
सिद्धेन्द्रैश्च	२.३१.२३
सिद्धोऽसि	२.४३.१३
सिनीवाली	१.११.१८;
	३.३२.१३
सिन्दूरकांचन	३.४४.४८
सिन्दूरवर्ण	३.४१.६१
सिन्धुको	२.७४.१६१
सिन्धुसागर	२.१३.५७
सिन्धोरुत्तर	२.१४.८१
सिसृक्षमाणो	१.२.५
सिसृक्षु	१.८.३
सीता	१.१८.४१
सीतां	१.१२.१६
सीमन्तरेखा	३.१०.६९
सुकर्माणं	१.३५.३२
सुकर्माणः	३.१.८४
सुकर्माणो	३.१.१००
सुकाला	२.१०.९६
सुकुमारं	१.१४.१९
सुकुमारक	२.७१.४४
सुकुमारा	२.११.१६
सुकुमारी	१.१९.९६
सुकेतोरपि	२.६४.८
सुखं सुनेत्रं	२.७.४५०
सुखदं मोक्षदं	२.३६.१२
सुखदुःख	३.३.९३
सुखमायुर्बलं	१.१९.२१;
	३१.११२
सुखभिच्छसि	२.२३.८१
सुखा नाम	१.२१.३२
सुखायामथ	१.२१.४२
सुखायामर्द्ध	१.२१.३८
सुखा ह्येते	३.१.२०
सुगन्धा	२.७१.१६३
सुगन्धाश्चाथ	२.७.२६
सुग्रीवस्य	२.७.२२१
सुघोर	३.१ १६८
सुचन्द्रः	२.३९.२४
सुचन्द्रे	२.६१.१४
सुतप्रसूति	२.४०.१; ६१.४०
सुतपाः पौल	३.१.६४
सुतपाः शंकु	१.११.४२
सुतां जांबवती	२.७१.५०
सुतां सुमहता	२.२.६
सुत्राममाणः	३.१.९७
सुदासस्य	२.६३.१७६
सुदीर्घमुखिगौ	३.४४.५६
सुदुर्मदः	३.२२.६३
सुदुश्चरं	२.६५.३
सुदृढ़ं	३.२६.८५
सुदृष्टा	२.२८.२४
सुदेष्णां	२.७४.७०
सुद्युम्न	२.६०.१४
सुधामा	१.२१.१५७;
	३०.४०
सुधामानो	३.१.६७
सुधामा स	१.११.१४
सुधामृतं	१.२८.१२
सुधृतिस्तस्य	२.६१.९
सुधृतेरपि	२.६४.१०
सुनया	२.६४.२३
सुनेमि	३.१:६१
सुन्दरी चक्र	३.१८.१५
सुन्दरी नाम	३.३६.७८
सुपर्वा वृषभः	३.१.८८
सुपुत्रः सानुग	२.४७.७४
सुप्ता म्रियन्तः	२.७.११३
सुप्रतीकस्तु	२.७.३४१
सुप्रसन्ना	३.४०.१३५
सुबाहुः	२.६३.१८७
सुभद्रायां	२.७१.१७८
सुभ्रूलते	३.४०.१२८
सुमतिः	३.१.१७
सुमतिश्चापि	२.५१.३९
सुमह	२.१६.१४
सुमहान्	२.१०.३१
सुमेरुः	१.१५.४२
सुमोहिनी	३.१२.१३
सुयज्ञ	२.७१.८७

सुरचित	१.२७.१००	सूचीमुख:	३.२१.७८	सृष्टो वर्ण:	२.६२.६
सुरभ्यनुमते	२.३.७९	सूचीमुखश्च	३.२४.४४	सेनापतिषु	३.२१.९८
सुरराज इव	२.४७.३१	सूचीमुखा:	३.२४.४७	सेनापतीनां	३.२३.२०
सुराणाम	२.७.२७६; ३.१०.५; ९; ३१	सूत: पूर्वेण	१.३६.१६४	सेनार्थं नगरी	३.३१.८५
		सूर्य एव	१.२४.५४	सेवक:	३.८.४४
सुरारणी	२.७२.२२	सूर्यमूला	१.२२.५८	सेवते गोपिका	२.३४.४२
सुरासुर	२.७२.८८	सूर्यरश्मि	१.१.८७	सेवते सततं	३.२०.१२
सुरासुरै	२.२५.५४	सूर्यश्च	२.७.९०	सेवागत	२.५०.१९
सुरेणुरिति	२.५९.३४	सूर्यस्तस्मिन्	१.२३.७४	सेवार्थं	३.३९.७०
सुलावण्या	३.४४.३९	सूर्यस्यांड	२.७.३२४	सेवितस्तु	३.३४.५१
सुवर्णपुंखं	२.५७.४६	सूर्यस्यापि	३.३५.४२	सेविता	२.६८.४४
सुवर्णमय	३.३३.२	सूर्यस्याप्याय	१.२३.२६	सेव्यते	१.२३.५०
सुविभुस्तु	२.६७.७६	सूर्याग्नि	१.२१.१०९	सेव्यमानो	३.२.३१६
सुवृत्ताय	२.७२.१६८	सूर्याग्नीनां	३.१.१४५	सैनापत्येन	२.१०.५०
सुव्रतस्य	२.७४.२२	सूर्याचंद्र	१.१.८१; २१.१; २४.७८	सैन्धवो	१.३५.६१
सुशर्मा	२.७४.१५९			सैन्यं च	३.२४.२१
सुश्रुतस्य	२.६४.२२	सूर्यात्मकं	३.३५.८५	सैन्यं सज्जं	२.३८.१९
सुषुम्णाप्या	१.२८.३१	सूर्यादीनां	१.१.८५	सैन्यं समस्त	३.२९.१४६
सुषुम्णो	१.२४.६६	सूर्यायुताना	१.२६.४६	सैव कारण	३.३९.११९
सुषुवे	२.३.७५	सूर्यारका:	१.१६.६०	सैव जानाति	३.३७.९६
सुसत्यं	३.२.२८४	सूर्येण गोभि	१.२३.४०	सैव तस्यैहिकं	३.४.६९
सुसंधेश्च	२.६३.२१२	सूर्येण विषुवं	१.२१.१४८	सैव नि:शेष	३.२५.२०
सुसाधयित्वा	१.३१.८९	सूर्येण सह	१.२८.५१	सोऽकरोत्तु	१.३५.५०
सुसूक्ष्मज्ञान	१.३४.६५	सूर्यो द्वादशभि:	१.२१.८९	सोऽग्निर्यमश्च	१.१३.१२२
सुसूक्ष्मत्वेन	२.२५.२९	सृगाला गवया	२.५१.१२	सोऽतीत्य	२.२२.५
सुस्निग्ध	२.२१.३८	सृजति ग्रसते	१.६.६७	सोऽनुज्ञात	३.२४.७९
सुस्वरूप	२.७२.१५४	सृजते ग्रसते	१.४.२८; ३.२.२९८	सोत्सेधरंध्र	१.७.१०३
सुहोत्रस्या	२.६६.२५			सोपानानि	३.३७.२७
सूकरा	३.२२.१८	सृजत्यथानु	२.३.८७	सोपानावल	३.३५.८
सूक्ष्म: स तु	१.३.१४	सृज्यते ग्रस्यते	३.३.१०८	सोपासंग	१.२३.८१
सूक्ष्मश्चैव	२.६.९	सृज्यमाना:	१.९.२९	सोऽपि त	३.७.१४
सूक्ष्मा:	३.२.२२६	सृजयमानेषु	२.७.२७६	सोऽपि ब्रह्माग्नि	२.५५.५७
सूक्ष्मा श्चौ	२.७.१६६	सृञ्जयस्य	२.६१.१५	सोऽपि सत्यहित:	१.३४.३०
सूक्ष्मोत्तर	२.२७.३६	सृष्टा लोके	२.७२.३३	सोऽप्युपायं	१.७.५

सोऽब्रवीदष्टमं	१.१०.१७	सौम्यान्बर्हिषद:	१.२८.१५	स्त्रीमात्र	३.२५.२६
सोऽभवद्	२.६३.८९	सौम्याने	२.१०.१०२	स्त्रीराष्ट्र	२.७४.१९९
सोऽभिषिक्तो	२.६५.२०	सौम्यास्तु	१.२८.१८	स्थली च	३.३३.११
सोऽभिषिच्य	१.१४.६१	सोम्यै: सुधा	१.१८.१३	स्थाणुभूतो	२.१३.७४
सोऽभ्यषिंचत्	२.७.२७	सौरं सौम्यं	१.२१.१३७	स्थातोनित्रीनरो	२.६२.४
सोम: सर्वै	१.१३.१२७	सौराष्ट्रं च	३.२३.३१	स्थानं गणपते	२.६७.५५
सोऽसृजद्	१.५.७३	सौवर्णं	१.३६.२०६	स्थानमैन्द्रं	१.७.१६६
सोऽहं त्वत्तेजसे	२.५८.१०	सौवीरा	२.६१.३१	स्थानवीरा	१.२७.९
सोऽहं प्रजा	१.३६.१८९	सौहोत्रिरपि	२.६६.२७	स्थानात्मन:	१.५.६९
सोम इड्वत्सर:	१.२८.२२	स्कन्दस्तेषा	२.५९.१५	स्थानात्मनस्तु	१.७.२१
सोमकश्च	१.१८.७७	स्कन्दोऽसौ	३.१.६२	स्थानानि	३.४४.१२१
सोमपा:	२.१०.६६	स्तनकुड्मल	३.१०.६२; ३७.७३	स्थानान्येतानि	१.२४.९३
सोमपास्तु	१.३६.१६			स्थानाभि	१.५.६५
सोममाप्याय	२.१२.२७	स्तनयो	३.४४.८२	स्थाने	२.२६.१४
सोमश्च	१.११.२४	स्तनौ स्वाहा	३.१३.१४	स्थानेषु	१.२८.८३; ३.४.४८
सोमस्य कृष्ण	१.२३.६७	स्तब्धेक्षणै	२.५०.३४		
सोमस्य तु	२.६६.१	स्तम्भिनी	३.२७.३४	स्थापनां	१.३६.१२९
सोमस्य भगवान्	२.३.२३	स्तम्भोत्पन्नेन	३.२१.५६	स्थापयिष्यंति	२.७४.२१९
सोमस्य शुक्ल	१.२३.५९	स्तुत्वैवं	२.४३.११	स्थापिता जगतो	२.७२.१५
सोमस्येति	२.६५.४३	स्तुवत्यामेव	३.४०.३१	स्थावरं देहि	२.७०.५
सोमाच्चैवामृत	१.२८.४	स्तुवन्ति ये	३.१८.१८	स्थावराणां	१.१३.२५
सोमाधारं	१.२२.२०	स्तेनश्च	२.१५.५५	स्थावराणि	१.३६.१५३
सोपापिस्तस्य	२.७४.११०	स्तोकं स्तोकं	३.७.२७	स्थावरादीनि	३.१.२०१
सोमावि	१.३३.१५	स्तोत्रं तत्ते	२.३६.११	स्थिता वयं	२.७३.३४
सोमे तृतीयो	२.५.८०	स्त्रिय: कुमुद	१.१५.५९	स्थितिकाले	१.६.२४
सोमे सुते	१.३६.१५९	स्त्रिय: शूद्रा	३.३.६८	स्थितिरेषा	१.२०.१०
सोल्कापाता	२.५७.५१	स्त्रियो वैश्या:	३.४३.८१	स्थितिश्च	३.३५.९५
सोकुमार्य	२.१२.३४	स्त्रीणामर्धार्ध	३.७.७१	स्थितो य	२.१४.१०५
सौत्येऽहन्यति	२.५.४	स्त्रीद्विष्टाँल्लोक	३.३३.६०	स्थित्वा दिनानि	२.२५.८६; ४.९४
सौदामिनी	३.३३.२५	त्रीपुंसो	२.४१.४३	स्थित्वा नातिचिरं	२.२१.२५; २६.४९
सौभाग्य	२.२७.२०	स्त्रीबाल	१.३१.६८		
सौमिं ददौ	२.७१.१९३	स्त्रीभि	२.२७.९	स्थित्वानुगा	२.२७.४२
सौम्यश्चापि	२.३.४३	स्त्री भुक्त्वा	३.८.५५	स्थूलमुक्तो	२.२२.५४
सौम्या	१.२३.७५	स्त्रीभूता:	२.६०.२७	स्थूलमौक्तिक	३.३७.७७

स्थूलशीर्षा	१.९.७३
स्थूलान्	२.७.३६०
स्थूलाश्च	२.८.६७
स्नात्वा कंपा	३.४०.११५
स्नात्वा चैतेषु	३.५६.१७
स्नात्वा तेषु	२.४७.५
स्नात्वा नित्य	२.४१.१६
स्नात्वा सचैलो	२.१४.८९
स्नात्वा स्वर्ग	२.१३.६३
स्नानदान	२.४७.१०
स्नानं वस्त्रं	३.४३.१३
स्नापयन्ति	१.२७.९७
स्निग्धकण्ठा:	२.२८.३
स्निग्धप्रायांश्च	२.१६.४२
स्पर्शाकर्षण	३.४४.११८
स्पर्शाकर्षणिका	३.१९.१८
स्फटिकांजन	२.२२.१२
स्फाटिकै	३.२.२४५
स्फीतान्यपेत	२.५०.५
स्फुरच्चन्द्र	३.१०.७०; ३७.८२
स्फुरत्त्रितय	३.२८.२२
स्फुरत्फलै:	३.२३.८२
स्फुरद्दाडिम	३.२७.८०
स्फुरन्मुकुट	३.२१.२३
स्फूर्जज्ज्योति	१.२१.११४
स्मयमानेव	३.२२.९६
स्मरन्पूर्वकृतं	२.४८.१३
स्मरादेर्वाच्यतां	३.३८.११
स्मार्तो वर्णा	१.३२.३४
स्मृता बर्हि	१.१३.८
समृतेस्त्वंगिरस:	१.११.१७
स्मृतो द्वादश	२.७२.७६
स्मृत्याऽपि	२.५६.१६
स्यमंतकं	२.७१.७७
स्यमंतको	२.७१.३२
स्यस्तु संवत्सरं	२.१६.४६
स्येनस्तु अपरो	२.६२.१३
स्रंसमान	३.३८.५२
स्रष्टा धर्मस्य	१.३६.१३७
स्वकीय	३.२०.२९; २६.८३
स्वकैरावरणै:	१.२१.२३
स्वगुरूक्त	३.४०.१३३
स्वगोष्ठी	३.२०.६६
स्वचक्रस्य	३.२६.२७
स्वच्छंदचारी	२.२४.८
स्वं चादास्या	२.६८.४८
स्वं चैव	२.६८.५८
स्वतंत्रं	३.८.४६
स्वतंत्राहं	३.१५.२
स्वधर्मं	२.२३.७१
स्वधर्मादा	२.२३.७३
स्वधाकारश्च	१.२६.३५
स्वधा वाच्या	२.१२.४५
स्वधां चैव	१.९.५७
स्वनामगोत्रे	२.२१.२६
स्वपतो	१.६.३५
स्वपर्तिसह	२.२२.२४
स्वपन्तमेत्य	२.२८.१
स्वपीठोत्तर	३.३९.७८
स्वपुरे त्रैपुरे	३.४०.१२०
स्वप्नेऽपि	३.२३.२
स्वप्नेशी	३.२८.४१
स्वप्ने संदर्श	२.६७.४२
स्वभक्त	२.२५.१५
स्वभावकारिता:	३.२.३०६
स्वमृडीको	१.३६.३५
स्वयं कृत्वा	२.७४.२१७
स्वयमागत	३.७.२२
स्वयमाचरते	१.३२.३२
स्वयं प्रकाश	३.१४.१३
स्वयंभुवस्तु	२.१.३०
स्वयंभुवो	१.४.३०; ३५.१४३
स्वयंव्यक्त	३.३९.१०५
स्वरस्वर	२.६२.१८
स्वरा मनस्विनी	१.३६.९०
स्वर्गता दिवि	१.२८.७७
स्वर्गशत्रु:	३.२६.४९
स्वर्गादौ	१.७.१५
स्वर्गी भवति	२.१३.१३५
स्वर्गीयमेतत्	१.३५.२१३
स्वर्भानु:	१.२४.९२; २.६.८
स्वर्भानोस्तामसं	१.२४.९७
स्वर्भानोस्तु	१.२४.१०२
स्वर्लोकं वै	३.२.१९
स्वर्लोकवा	३.२.२७
स्वसमीप	२.२१.२३
स्वसारो	२.७.९९
स्वस्तृतीयस्तु	३.२.१५
स्वस्त्रीमृतमतीं	३.८.१३
सवस्वामिनी	३.२०.२३
स्वागतं ते	१.१.२४
स्वागतं वो	२.५७.११
स्वागत:	२.६४.२१
स्वां च	२.७४.७१
स्वाचारभाव	२.४९.६२
स्वातिना	२.१८.८
स्वात्मानं	३.४४.२
स्वात्मन्यव	३.३.५७
स्वादका:	२.७.३०७

स्वादनाश्चा १.५.५३
स्वादूदकेनो १.१९.११५; १२६
स्वाधिवासं २.२३.४३
स्वाध्याय २.२१.२०
स्वां तनुं १.९.३२
स्वामिचित्त ३.१६.१९
स्वामिना १.३२.५०
स्वामित्र २.२४.७०
स्वामी सर्वस्य १.४.२५
स्वसयंभुवनिसर्गे १.२२.१
स्वायंभुवसुतायां १.९.४७
स्वायंभुवस्य १.१.६७; २८.१००
स्वायंभुवाद्या: १.३७.५७
स्वायंभुवीं १.१३.७५
स्वायंभुवे न १.३६.२४
स्वायंभुवेंऽतरे १.११.४४; १३.३८;१४.७४; २९.६८; २.३.१८; ८.२३
स्वायंभुवो १.१३.११०; ३६.३
स्वायुधश्च ३.३४.३७
स्वारोचिषश १.३६.६५
स्वारोचिषादिषु १.१२.५१
स्वारोचिषे २.३.११; ६६
स्वीकर्त्तव्या २.२८.५८
स्वीकुर्यात् ३.४३.३४
स्वेच्छाविहारी ३.६.२४
स्वेदक्लिन्न २.७.४२२
स्वेन स्वे २.६२.१२
स्वेन स्वेनाधि १.७.४४
स्वेनांगुल १.३२.४
स्वेनांगुलि १.३२.९
स्वेनात्मना ३.३.१०१
स्वैः स्वैर्मंत्रैस्तत्र ३.३२.५९
स्वोचितान्येव २.५०.८
स्वोत्संगे २.४२.५६

ह

हंसं तु प्रथमं २.७.२७८
हंससार २.२२.६५; ५०.४१
हंसस्वारौ १.३६.३२
हंसा सरस्वती २.७.१०
हंसेन भृगुणा ३.३८.१३
हंसो ज्योति २.७.११
हत: प्रसेन: २.७१.६७
हतराज्यो २.६७.९७
हतशिष्टा: ३.२४.१०१
हतावशिष्टा ३.२२.६६
हते पितरि २.७१.६३
हतेषु तेषु २.२४.१
हतेष्व २.२४.८५
हतौजा २.६७.९९
हत्वा तं २.३७.२७
हत्वा तु २.२४.८३
हत्वापि मां १.३६.१८४
हत्वा मृगान् २.६३.९१
हत्वा सपुत्रा २.३४.५४
हत्वा हत्वा २.५१.६५
हननस्तेय ३.६.३७
हनिष्यति २.३०.७२
हनुमद्भ्रातरो २.७.२२७
हन्त राम २.३७.२६
हन्त वोऽहं १.१५.४
हन्तुं कं २.४७.२९
हन्तुमिच्छसि २.३२.५०
हन्यमान ३.२९.४८
हन्यमाना ३.२९.४८
हयग्रीवां ३.५.९
हयसंचार २.५४.८
हयस्थै ३.२८.३६
हरकल्प: २.६.२०
हरनिकट २.४३.६
हरये नम २.३३.८
हरिण्यां २.३.११६; ४.३०
हरितं २.७.१७९
हरिताल २.१९.३७
हरितै १.२३.४७
हरिदाप्यं १.२४.९६
हरिर्हरिद्धि १.२३.४३
हरिवर्ष १.१४.४६
हरिवर्षात्परं १.१५.३३
हरिश्चन्द्रस्य २.६३.११७
हरीतक्य ३.३१.६२
हर्यश्वस्य २.६३.६४; ६४.११
हर्षेणाढ्य ३.२०.१०३
हलं च ३.२०.६४
हलाहलं ३.२३.३८
हलोर्द्धर्ण ३.३४.५९
हविषं २.१४.५१
हविष्यांश्च २.१.११०
हवींषि २.१९.२
हव्यकव्य २.५२.९
हसतलाघव ३.२६.१११; २९.५८
हस्तविंशति ३.३६.७४; ३७.११; ३२
हस्तश्चित्रा २.३.५०
हस्तादांश्च २.७.३६९
हस्तियुद्ध २.७.३४७
हस्ते शिवपुरं ३.४३.३
हस्तौ विन्यस्य ३.४४.१४
हादिरूर्ध्वादि ३.४४.२५

हा नाथ प्रिय	२.३०.१०
हा पुत्रा	३.२७.२
हारका	२.७.१५२
हारकेयूर	३.४४.२१
हालिनिर्ज्या	१.३५.४८
हा समस्त	३.२७.३
हास्ये कशिर्हि	२.१.१२१
हा हतोऽस्मि	३.२७.९
हाहाकारं	३.२४.७३
हाहाकारो	२.४२.६
हाहा हूहूश्च	१.२३.७
हाहेति दूरं	३.२१.१२
हिंसा माया	१.३१.३७
हिंसास्वभावो	१.३०.२७
हिंस्राहिंस्रे	१.५.९३; ८.६०; ३.४.३२
हितं तदात्मन:	२.३५.४०
हितार्थं	२.२१.७४
हिमं च	२.१३.१०५
हिमप्रपतने	२.१४.२
हिमप्रायश्च	१.१५.१५
हिमवच्छिखरे	२.१२.५
हिमवच्छैल	३.३०.९२
हिमाद्रे	२.२४.५१
हिमोद्गताश्च	१.२४.२८
हिरण्मयस्तु	२.५५.४
हिरण्यकशिपु	१.३.२८
हिरण्यकशिपू	२.५.१२; ८.५१; ७२.६८
हिरण्यकशिपो	२.५.२५
हिरण्यगर्भ:	२.५.६; ३३
हिरण्यनाभ:	१.३.२६; २.६५.२३

हिरण्यबाहु:	१.३३.८; ३५.३८; २.६३.२०७
हिरण्यरोमां	१:३६.६२
हिरण्यवर्णा	२.६५.१८
हिरण्यशृंगे	१.१८.६३
हिरण्याक्ष	२.५.३०
हिरण्याक्षो	१.१९.१३
हिरण्याय	३.१२.७
हींकार:	१.३३.३८
हीना देवै	२.७.१६७
हीना ये	१.८.३६
हीयमानं	३.२७.१००
हुंकारा:	३.१६.६
हुम्बको	३.२१.७९
हुते चाग्नौ	२.१.३५
हुते वै	१.१३.६८
हुते सम	२.१.४३
हुत्वाऽऽहुतिं	१.१३.७३
हुबको	३.२५.२८
हूयमाना	२.२१.४६
हृच्छय	१.१२.३४
हृतराज्य	२.६३.१२८
हृदयस्थापि	२.१३.१८; ३९.२९
हृदिकस्य	२.७१.१४०
हृदि ध्यायंश्च	३.४०.४३
हृदि नारायण:	१.२३.१०५
हृदि शुक्रं च	३.४४.७९
हृद्देवी च	३.३७.४२
हृष्टपुष्टा:	१.२९.९०
हृष्टै: शब्दादि	३.२.२४१
हृष्यते	२.६७.३४
हेति: प्रहेति	२.७.८९

हेतुनिष्ठश्च	२.१३.१३६
हेतुभि: शास्त्र	२.४६.४
हेतौ प्रति	३.३९.४२
हेमकूटं परं	१.१५.३२
हेमकूटस्य	१.१८.६६
हेमताल	३.३४.५८
हेमन्तर्तु	३.३२.३५
हेमन्ते	१.२४.३३; ४२
हेमप्राकार	३.३३.६
हेरम्बं	२.४२.८
हे रेणुके	२.३०.४३
हैमन्तिकौ	१.२३.१६
हैहयश्च	२.६९.४
हैहयाना	२.४८.१७
हैहयास्त्रं	३.२९.१०९
हैहयैस्ताल	२.६३.१२०
होता यज्वा	१.३६.१५
होतुमिच्छंस्तु	३.१२.६९
होमतर्पणयो:	३.४१.३१
होमधेनुरियं	२.२८.६८
होमो हव्यं	३.१.१९
ह्रसतस्तस्य	१.२२.८०
ह्रस्वबाहुं	२.८.४३
ह्रस्वरोमा	२.६४.१५
ह्रस्वा	२.७३.१२१
ह्रस्वा:	३.४४.२७
ह्रस्वास्यं	२.७.४१
ह्रस्वैर्दीर्घै	१.२५.३६
ह्रादिस्तु	३.३८.१०
ह्रासवृद्धिं	१.२१.११७
ह्रियन्हरि	१.२३.४२
ह्रीमंत	३.२.२४९
ह्रीं श्रीं क्लीं	२.३३.१५
ह्रेषमाण	३.२३.१०

***

पुराणेतिहास-ग्रन्थाः

अग्निमहापुराणम्। महर्षिव्यासविरचितम्। हिन्दी अनुवाद सहित। अनु. एवं सम्पादक - डॉ. सुरकान्त झा 775.00

Angi Puranam : A Study : By S. D. Gyani 150.00

अद्भुत रामायण । 'हरि' हिन्दी व्याख्योपेतम् । व्याख्या. पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी 95.00

अष्टादशपुराणपरिचय । (पौराणिकप्रभापरिशीलनम्)। डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी H.B. 250.00, P.B. 150.00

गणेशपुराणम्। शोधपूर्ण भूमिका+हिन्दी एवं संस्कृत में कथासार + संशोधित मूलपाठ एवं हिन्दी अनुवाद तथा बृहद्
परिशिष्ट एवं श्लोकानुक्रमणि सहित। संपा.+अनु. आचार्य डॉ. महेशचन्द्र जोशी, सम्पूर्ण (1-2 भाग) 1800.00

गरुड़पुराणम् । (प्रेतकल्पः)। हिन्दी टीका सहित । सम्पादकोऽनुवादकश्च— डॉ. महेशचन्द्र जोशी 75.00

दत्तपुराणम् । ([illegible]पनामकम्) । 'वासुदेवी' संस्कृत टीका [illegible]म् ।
टीका[illegible]— स्वामी श्रीमद्वासुदेवानन्द सरस्व[illegible] 500.00

पद्मपुराणम्। [illegible]द्वैपायनव्यासविरचितम्। श्लोका[illegible]का सहित। 1-6 भाग सम्पूर्ण 4000.00

पुराणपञ्चलक्ष[illegible] [illegible]लक्षण-प्रतिपादक मूल सन्दर्भ-[illegible] ग्रन्थः ।
ह्विलबाल्ट[illegible] सार्मण्य (जर्मन, विदुषां सङ्क[illegible]पादक— डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री ।
देवनागरी सं[illegible] 750.00

पौराणिक रहस्यों का [illegible]क्षात्मक अनुशीलन। डॉ0 श्रीकृ[illegible]त्रिपाठी 300.00

प्रणवकल्पः । गङ्गाधरेन्द्रसरस्वतीकृत प्रणवकल्पप्रकाश प्रणवभाष्यसहितः 75.00

ब्रह्माण्डपुराणम् । मूलमात्र । आंग्ल भूमिका एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित । सम्पादक— के. वी. शर्मा 795.00

ब्रह्माण्डमहापुराण-श्लोकानुक्रमणिका । सम्पादक— डॉ. के. वी. शर्मा । 200.00

बृहद्धर्मपुराणम् । श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्। हिन्दी अनुवाद सहित। अनु. एस. एन. खण्डेलवाल 675.00

बृहद्धर्मपुराणम् । महर्षि वेदव्यास प्रणीतम् । म.म. हरप्रसाद शास्त्री सम्पादित टिप्पणी विभूषितम् । 300.00

बृहन्नारदीयपुराणम् । वेदव्यासप्रणीतम् । महापण्डित ह्रषिकेश शास्त्री सम्पादित टिप्पणी सहितम्। 300.00

महाभारतकोशः । (महाभारत के नाम और विषयों की अनुक्रमणिका) सम्पादक— डॉ. रामकुमार राय, सम्पूर्ण 1100.00

लिङ्गमहापुराणम्। महर्षि व्यासकृत। (परिचय, विषय-सूची, संस्कृत मूल, हिन्दी अनुवाद, कठिन शब्दों का अर्थ और
टिप्पणियाँ, श्लोकानुक्रमणिका और विषयानुक्रमणिका सहित)
अनुवादक एवं सम्पादक—पं0 द्वारका प्रसाद मिश्र शास्त्री 795.00

वाराहपुराणम्। विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद एवं श्लोकार्धानुक्रमणिका सहित।
अनु. एवं सम्पादक डॉ. सुरकान्त झा 1250.00

Vishnupuranam : A Prose English Translation by Manmatha Nath Dutt (Shastri) 250.00

श्रीमद्शिवधर्मपुराणम्। (उपपुराण) शैवमतप्रतिपादकं नन्दिकेश्वरसनत्कुमार संवादमयं।
मूल एवं **'मोहनबोधिनी'** हिन्दी टीका सहित। संपा. + अनु. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 375.00

श्रीमद्शिवधर्मोत्तरपुराणम्। मूल एवं हिन्दी टीका सहित। संपा. + अनु. श्रीकृष्ण 'जुगनू' शीघ्र

साम्बपुराणम् । (उपपुराणम्) सम्पादकः समीक्षकश्च— डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी 200.00

स्कन्दमहापुरणम्। श्रीकृष्णदैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचितम्। हिन्दी अनुवाद सहित। अनु. एस. एन. खण्डेलवाल
प्रथम खण्ड (माहेश्वरखण्ड) 1250.00, द्वितीय खण्ड (वैष्णवखण्ड) 1500.00,
तृतीय खण्ड (ब्रह्मखण्ड) 1200.00, अन्य खण्ड शीघ्र

स्कन्दमहापुराणम् । महर्षिवेदव्यासप्रणीतं । 1-7 खण्ड, 8 जिल्दों में सम्पूर्ण । 4000.00

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi.**

ISBN : 978-81-7080-423-9 (उत्तरार्द्धम्-Vol. II) , 978-81-7080-424-6 (Set) ₹ 2000.00 (Set in 2 Vols.)